समर्पण

जीवनकी उषाके छिटकतेही, पत्नीके लिए कही जाती
जिनके पर्यटन और शिकारकी कथाओंने मनपर
अमिट छाप छोड़ा; जिन्होंने स्वजन-वियोजक
चिरप्रोषित नातीको एक बार देख लेनेकी
अपूर्ण कामनाके साथ संसारसे
प्रस्थान किया; उन्हीं स्वर्गीय
मातामह श्री० रामशरण
पाठककी कृतज्ञता-
पूर्ण स्मृतिमें

प्रकाशकीय निवेदन

हिन्दी पाठकोंके सम्मुख आज महाबोधि ग्रन्थमालाके तृतीय पुष्पके रूपमें, विनय-पिटकके हिन्दी अनुवादको लेकर उपस्थित होनेमें हमें बहुत प्रसन्नता हो रही है। अगले सालके लिए 'दीघ-निकाय'का अनुवाद तैयार हो रहा है। इनके अतिरिक्त हम और भी कितने ही प्रसिद्ध बौद्ध-ग्रन्थोंके हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करना चाहते हैं। हमारे काममें जिस प्रकारसे कितने ही सज्जनोंने आर्थिक सहायता और उत्साह प्रदान किया है उससे हम उत्साहित जरूर हुए हैं; किन्तु, इस कामको अच्छी तौरपर सफलताके साथ चलानेके लिये हमें और सहायताकी आवश्यकता है। आप दो प्रकारसे हमारी सहायता कर सकते हैं; (१) एक तो आठ आने भेजकर हमारे स्थायी ग्राहक बन जावें, इससे हमारी उत्साह-वृद्धि भी होगी तथा आपको पुस्तक पौने मूल्यमें मिल जावेगी; (२) हमारे राजा महाराजा और लक्ष्मीपात्र द्रव्यसे हमारी सहायता करें।

ग्रन्थमाला के द्वितीय पुष्प मज्झिम-निकाय के प्रकाशित हो चुकने पर, जिन और निम्न-लिखित दानियोंने हमें उसके मुद्रण-व्यय भारको हलका करनेमें सहायता दी है, हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं—

१—महाराज भूटान	८००)
२—श्रीमती ई० हेवावितारने (लंका)	५००)
३—महामान्य सर तेज बहादुर सप्रू (प्रयाग)	२५०)
४—डा० कैलाशनाथ काटजू	२००)
५—श्रीमती रूपाशी बाला बरुआ	१००)
६—श्री० योगेन्द्रलाल बरुआ	१००)
७—श्री० यू० थ्विन्	१००)

विनय-पिटकके मुद्रणमें भी हमें निम्नलिखित सज्जनोंने द्रव्यकी सहायता दी है—

१—सेठ युगल किशोर बिड़ला	५००)
२—श्री० जोज़ेफ ऐल्स (लंका)	१००)
३—श्री० आर० एस० पंडित (प्रयाग)	३०)

२८-८-३५

विनम्र
(ब्रह्मचारी) देवप्रिय
प्रधान मंत्री, महाबोधि सभा
सारनाथ (बनारस)

प्राक्कथन

मज्झिम-निकायके छपते वक्त, मैंने इस वर्ष वि न य पि ट क का अनुवाद करनेकी बात लिखी थी। अबकी बार संस्कृत ग्रंथोंकी खोजमें मुझे तिब्बत आना पळा। मैं जानता था, कि यहाँ खोजके काममें ही बहुत समय लग जायेगा, इसलिये तिब्बतके भीतर (डो-मो=छुम्बी उपत्यकामें) पहुँचते ही मैंने अनुवादके काममें हाथ लगानेका निश्चय कर लिया। हमारे खच्चरवालेका घर डो-मोके पद्-मो-गङ गाँवमें था। २७ अप्रैलको वहीं विश्राम करते वक्त अनुवाद प्रारम्भ किया गया। सारा अनुवाद २७ दिनोंमें हुआ, जिसका विवरण इस प्रकार है—

			स्थानका नाम
अप्रैल	२७	१ दिन	पद्-मो-गङ
मई	२–४	३ ..	फ-रि
..	१२	१ ..	ग्यां-चे
..	२१–२५	५ ..	ल्हासा
..	२९–३१	३ ..	..
जून	१,२	२ ..	..
..	४–६	३ ..	..
..	८,९	२ ..	..
..	११–१७	७ ..	..
		२७	

बु द्ध च र्या का अनुवाद ६८ दिनमें समाप्त हुआ था, म ज्झि म - नि का य का ३८ दिनोंमें, और अबकी बार इस विनय-पिटकका सिर्फ २७ दिनोंमें। मेरे मित्र अनुवादकी सभी त्रुटियोंको इस शीघ्रताके कारण बतलाते हैं, यद्यपि उसकी अधिक जिम्मेवारी कामके नयेपन और मेरी अल्पज्ञतापर अधिक है। तो भी इस ग्रंथमें कुछ त्रुटियोंके दूर करनेका प्रयत्न किया गया है।

इस अनुवादमें श्रीराजनाथ, एम० ए० की द्रुतगामिनी लेखनीने बहुत सहायता की है। अबकी बार अपनी परीक्षा देकर वह ल्हासाकी यात्रा करने आये थे। वह कुछ पत्रोंको छोळ भिक्खु-पातिमोक्ख, भिक्खुनी-पातिमोक्ख और महावग्ग सारा ही, तथा चुल्लवग्गके तीसरे स्कन्धकके कुछ अंश तकको लिखकर ७ जूनको भारत लौट गये। श्रीराजनाथका इस सहायताके लिये कृतज्ञ होना जरूरी है। इसके साथ ही ल्हासाकी छ् - त्रि न् - ग र् कोठीके स्वामी साहु ज्ञानमान और साहु पूर्णमानने भी निवास और भोजनका उत्तम प्रबंध करके कम सहायता नहीं पहुँचाई है, इसलिये उनके लिये भी कृतज्ञता प्रकाश करता हूँ।

इस वर्ष 'दीघ-निकाय'का अनुवाद करना था। उसके कितने ही सूत्रोंका अनुवाद मैं पहिले कर चुका था, बाकीका अनुवाद मेरे कनिष्ट भाई भिक्षु जगदीश काश्यप, एम० ए० ने कर डाला है। अगली गर्मियोंमें जापानमें रहते वक्त, उस अनुवादकी आवृत्ति होगी। भिक्षु काश्यप और श्री कृष्णदेव, बी० ए० ने परिशिष्ट तैयार करनेमें बहुत सहायता की है। और उन्होंने तथा पण्डित उदयनारायण त्रिपाठी, एम० ए० और भदन्त आनन्दने प्रूफ़-संशोधनमें बहुत सहायता की है।

भदन्त आनन्द कौसल्यायनने अपनी प्रतिज्ञानुसार अबकी साल १०० जातक-कहानियोंका अनुवाद कर डाला है, और ग्रंथ प्रेसमें है। आशा है चार और भागोंमें वह जातकोंको हिन्दीमें ला देंगे।

ल्हासा ।
९-९-३४ ।

राहुल सांकृत्यायन

भूमिका

बुद्धके उपदेशोंको तीन पिटकोंमें बँटा कहा जाता है। यथार्थमें मातिकाओंको छोळ शेष अभिधर्मपिटक पीछेका है; और इस प्रकार बुद्धके कथित उपदेशों और नियमोंके लिये हमें सुत्त और विनय पिटकोंकी ओर ही देखना पळेगा। चुल्लवग्गके पंचशतिका स्कंधक (पृष्ठ ५४८)में पाठक सिर्फ धर्म (=सुत्त) और विनयके ही संगायनकी बात पायेंगे। सुत्तपिटकके ग्रंथोंके बारेमें मैंने धम्मपदके अनुवादके समय कुछ कहा है। यहाँ विनय-पिटकके बारेमें कुछ विशेष परिचय देना अनावश्यक न होगा।

विनय (=Discipline) कहते हैं नियमको। चूँकि इस पिटकमें भिक्षु-भिक्षुणियोंके आचार-संबंधी नियम तथा उनके इतिहास और व्याख्याओंको जमा किया गया है, इसलिये इसका नाम विनयपिटक यथार्थ ही है।

चुल्लवग्गके सप्तशतिका स्कंधक (पृष्ठ ५४९)से मालूम है कि बुद्ध-निर्वाणके १०० वर्ष बाद बौद्ध भिक्षु दो निकायों (=सम्प्रदायों)में विभक्त हो गये—प्राचीन बातोंके दृढ़ पक्षपाती स्थविर कहलाते थे, और विनय-विरुद्ध कुछ नई बातोंके प्रचार करनेवाले महासांघिक। पालीकी कथावत्थु-अट्ठकथा, दीपवंस, महावंस तथा कुछ और ग्रंथोंके अनुसार बुद्ध-निर्वाणके २२० वर्षों बाद सम्राट् अशोकके समय महासांघिकों और स्थविरोंमें फिर कितने ही छोटे मोटे मतभेद होकर १८ निकाय हो गये। कथावत्थु-अट्ठकथाके अनुसार यह शाखाभेद इस प्रकार है—

[illegible] अनुवादित भदन्त वसुमित्र-प्रणीत अष्टादशनिकाय ग्रंथके अनुसार यह अठारह [illegible] इस प्रकार है—

यद्यपि दोनों परम्पराओंमें भेद है, तो भी इन पुराने निकायोंके अठारह भेदको सभी सम्प्रदायों और देशोंके बौद्ध ग्रंथ मानते हैं। ईसाकी चौथी पाँचवीं शताब्दीमें महायानके प्राबल्यके पूर्व भारत और वृहत्तर भारतमें कहीं न कहीं सभी निकायोंके अनुयायी मिलते थे, जिनमें दक्षिण भारतमें सम्मितीय और चैत्त्यवादी, लंकामें स्थविरवादी तथा उत्तर भारतमें सर्वास्तिवादी प्रधान स्थान ग्रहण करते थे। १८ निकायोंमें सबके सूत्र, विनय और अभिधर्मपिटक भी थे, जिनमें कितनी ही जगहोंमें भेद होनेपर भी वह महायान-सूत्रोंकी अपेक्षा आपसमें बहुत अधिक सादृश्य रखते थे। उन निकायोंके नाशके साथ उनके पिटकोंका भी सर्वदाके लिये लोप हो गया है; सिर्फ़ महासांघिक, सर्वास्तिवादी तथा एकाध औरके कुछ ग्रंथ चीन और तिब्बतकी भाषाओंमें अनुवादित हो अब भी मिलते हैं।

सर्वास्तिवाद और स्थविरवादके विनय-पिटकोंकी तुलना

जिस अनुवादको हम पाठकोंके सामने रखते हैं, वह स्थविर-निकायका है। स्वर्गीय फ़्रेंच विद्वान मेनार्‌ने लोकोत्तर-वादियोंके म हा व स्तु नामक विनयग्रंथको संस्कृतमें छपवाया है, किन्तु वह लोकोत्तर-वादियोंके विनयपिटकका एक अंश मात्र ही है। हाँ, भोटभाषामें अनुवादित मूल सर्वास्तिवादियोंका विनयपिटक सम्पूर्ण है, उससे तुलना करनेपर हमें दोनोंमें बहुत समानता मिलती है। यद्यपि आजकल पाली विनयपिटकमें प रि वा र[1]को भी शामिल किया जाता है, किन्तु उसके देखनेहीसे मालूम होता है, वह वि भं ग और ख न्ध क ग्रंथोंका संक्षेप मात्र है; और वह पढ़नेवालोंकी सुगमताके लिये बादमें बनाया गया। विनयका विभाग स्थविरवादीय पिटकमें इस प्रकार है—

---

[1]प रि वा र के अनुसार लंकामें विनय-परम्परा—
१—बुद्ध
२—उपालि
३—दासक
४—सोणक

१—विभंग { १—भिक्खु-विभंग
२—भिक्खुनी-विभंग }

२—खन्धक { १—महावग्ग
२—चुल्लवग्ग }

मूल सर्वास्तिवादके विनय-पिटकमें ग्रंथोंका विभाग इस प्रकार है—

१—विभंग { १—भिक्षु-विभंग
२—भिक्षुणी-विभंग }

२—विनय-वस्तु { १—विनय-महावस्तु
२—विनय-क्षुद्रकवस्तु }

५—सिग्गव
६—मोग्गलिपुत्त तिस्स
७—महिन्द
८—अरिट्ठ
९—तिस्सदत्त
१०—काल सुमन (१)
११—दीघ सुमन
१२—काल सुमन (२)
१३—नागत्थेर
१४—बुद्धरक्खित
१५—तिस्स
१६—देव
१७—सुमन (१)
१८—चूलनाग
१९—धम्मपालित
२०—खेम
२१—उपतिस्स
२२—फुस्स देव (१)
२३—सुमन (२)
२४—पुस्स (पुष्फ) (१)
२५—महासीव
२६—उपालि (२)
२७—महावग्ग
२८—अभय
२९—तिस्स (२)
३०—पुस्स (पुष्फ) (२)
३१—चूल अभय
३२—तिस्स (३)
३३—फुस्स देव (२) (चूलदेव)
३४—सिव

इसके देखनेसे मालूम होगा, कि विभंगके संबंधमें तो दोनों निकाय एक राय रखते हैं, किन्तु दूसरे भागके लिये स्थविरवादी ख न्ध क नाम देते हैं, और मूलसर्वास्तिवादी वि न य व स्तु। लेकिन उनके वर्णित विषयोंको देखनेसे मालूम होगा कि ख न्ध क और वि न य-व स्तु दोनोंके विस्तार और संक्षेप का ख्याल छोळ देनेपर, वह एक ही हैं। खन्धककी भाँति विनय-वस्तुमें भी हर एक विनय-नियमके बननेका इतिहास दिया हुआ है। पालीमें भी पे त व त्थ, वि मा न व त्थु ग्रंथोंके वत्थु नामकरण उनमें कथाओंके संग्रह होनेके कारण हुए हैं। धम्मपदकी अट्ठकथामें भी कथाके लिये व त्थु (=वस्तु) शब्दका प्रयोग बराबर हुआ है। इस प्रकार मूलसर्वास्तिवादियोंका वि न य व स्तु (=विनयकी कथाएँ), महावस्तु, क्षुद्रकवस्तु नाम बिल्कुल ही युक्तियुक्त हैं। इसके विरुद्ध स्थविरवादियोंका ख न्ध क, तथा महावग्ग, चुल्लवग्ग नाम उतने सार्थक नहीं हैं। सच तो यह है, कि पालि-विनयपिटकवालोंको भी ख न्ध क का विनय-वस्तु नाम होना उसी तरह ज्ञात था, जिस तरह सुत्तपिटकके नि का यों का आ ग म नाम होना। चु ल्ल व ग्ग के बारहवें सप्तशतिका-स्कंधक (पृष्ठ. ५५७) में इसीलिये चा म्पे य क-स्कं ध क की जगह चा म्पे य क-वि न य-व स्तु कहा गया है। वहीसे यह भी मालूम होता है, कि विनयपिटकके प्रथम भाग विभंगका पुराना नाम सु त्त-वि भं ग था। मूलसर्वास्तिवादके विनयमें पहिले भागको प्रातिमोक्ष-सूत्र और विभंग इन दो भागोंमें बाँटा गया है। भोटग्रंथ-सम्पादकोंने विभंगको प्रातिमोक्ष-सूत्रका भाष्य (=देऽ्-दोन्-र्ग्यं-छेर्-व्शद्-प) कहा है। वस्तुत-विभंगका शब्दार्थ भी (अर्थ-)विभाजित करना ही होता है। चुल्लवग्गके सप्तशतिका स्कंधकमें आये सुत्त-विभंगसे मतलब प्रातिमोक्ष-सूत्रोंका भाष्य ही है। मूलसर्वास्तिवाद-विनय-पिटकमें हम प्रातिमोक्ष-सूत्रोंको अलग पाते हैं, किन्तु पाली विनयपिटकमें पातिमोक्खपर अलग अट्ठ-कथा होनेपर भी उसे पिटकके भीतर सम्मिलित नही किया गया: कारण यह था, कि वि भं ग में वह मूल सुत्त भी आते हैं। मैंने अपने इस अनुवादमें सुत्त-विभंगके भाष्यवाले अंशको छोळ, सिर्फ़ प्रातिमोक्ष-सूत्रोंको ही लिया है।

प्रातिमोक्ष-सूत्र भिक्षु प्रातिमोक्ष और भिक्षुणी-प्रातिमोक्ष इन दो भागोंमें बँटे हुए हैं। प्रातिमोक्ष में आये नियमोंकी संख्या मूलसर्वास्तिवाद और स्थविरवादमें इस प्रकार है—

भिक्षु-नियम	स्थविरवाद	मूलसर्वास्तिवाद
१—पाराजिक	४	४
२—संघादिसेस	१३	१३
३—अ-नियत	२	२
४—निस्सग्गिय पाचित्तिय	३०	३०
५—पाचित्तिय	९२	९०
६—पाटिदेसनिय	४	४
७—सेखिय	७५	११२
८—अधिकरण-समथ	७	७
	२२७	२६२

भिक्षुणी-नियम	स्थविरवाद	मूलसर्वास्तिवाद
१—पाराजिक	८	८
२—संघादिसेस	१७	२०
३—निस्सग्गिय पाचित्तिय	३०	३३
४—पाचित्तिय	१६६	१८०
५—पाटिदेसनिय	८	११

भिक्षु-नियम	स्थविरवाद	मूलसर्वास्तिवाद
६—सेखिय	७५	११२
७—अधिकरण-समथ	७	७
	३११	३७१

इससे मालूम होगा, कि स्थविरवादके विनयकी अपेक्षा मूलसर्वास्तिवादके विनयमें भिक्षुओंके ३५ और भिक्षुणियोंके ६० नियम अधिक हैं। खन्धक और विनयवस्तुके मिलानेपर भी मूलसर्वास्तिवादमें अधिक परिच्छेद मिलते हैं। जिस प्रकार स्थविरवादियोंका खन्धक महावग्ग और चुल्लवग्ग (=क्षुद्रक-वर्ग)में बँटा है, वैसे ही मूलसर्वास्तिवादियोंका भी महावस्तु, क्षुद्रकवस्तु (=चुल्ल-वत्थु) दो भागोंमें बँटा है। क्षुद्रकवस्तुके बाद आये दो उत्तरग्रंथ तो क्षुद्रकवस्तुके ही परिशिष्ट हैं। पाली महावग्ग, चुल्लवग्ग और महावस्तुके परिच्छेदोंकी तुलना इस प्रकार है—

		महावस्तु
महावग्ग	१—महास्कन्धक	१—प्रव्रज्यावस्तु
	२—उपोसथस्कन्धक	२—उपोसथवस्तु
	३—वर्षोपनायिकास्कन्धक	४—वर्षावस्तु
	४—प्रवारणास्कन्धक	३—प्रवारणा वस्तु
	५—चर्मस्कन्धक	५—चर्मवस्तु
	६—भैषज्यस्कन्धक	६—भैषज्यवस्तु
	७—कठिनस्कन्धक }	{ ७—चीवरवस्तु
	८—चीवरस्कन्धक }	{ ८—कठिन-आस्थान-वस्तु
	९—चम्पेयवस्तुस्कन्धक	९—कौशम्बकवस्तु
	१०—कौशम्बकस्कन्धक	१०—कर्मवस्तु
चुल्लवग्ग	१—कर्मस्कन्धक	
	२—पारिवासिकस्कन्धक	११—पारिवासिकवस्तु
	३—समुच्चयस्कन्धक	१२—पुद्गलवस्तु
	४—शमथस्कन्धक	{ १३—शमथवस्तु
	५—क्षुद्रकवस्तु[1]स्कन्धक	{ १४—अधिकरण-वस्तु
	६—शयन-आसनस्कन्धक	१५—शयनासनवस्तु
	७—संघभेदस्कन्धक	१६—संघभेदवस्तु
	८—व्रतस्कन्धक	
	९—प्रातिमोक्षस्थपनस्कन्धक	१७—प्रातिमोक्ष स्थपन वस्तु

इस प्रकार चुल्लवग्गके अन्तिम ३ स्कंधकोंको छोळ, बाकी सभी स्कन्धक महावस्तुमें आ गये हैं। चुल्लवग्गके अवशिष्ट स्कंधक, क्षुद्रक-वस्तु[2]में आ जाते हैं, और इनके अतिरिक्त वहाँ बहुतसी और आते हैं, जो कि पाली-विनय-पिटकमें नहीं मिलतीं।

[1] इनमें कथायें छोटी छोटी हैं, इसलिये इसे क्षुद्रकवस्तु-स्कंधक कहा गया है।

[2] मूलसर्वास्तिवादके विनय-पिटकका भोट-भाषानुवाद १२ पोथियों (दुल्-व क, ख, ग, ङ, च, छ, ज, झ, त, थ, द, न, प)में हुआ है जिनमें—

महावस्तु क, ख, ग, ङ,

मूल सर्वास्तिवादकी अपेक्षा संक्षिप्त होना भी पाली-विनय-पिटकके अधिक प्राचीन होनेमें प्रमाण है।

विनय-पिटककी टीका

अशोकके समय सर्वास्तिवादका केन्द्र मगधमें नालंदा थी, पीछे मथुराके पास उरुमुंड पर्वत (=गोवर्धन) उसका केन्द्र बना। संभवतः इसी समय इसका पिटक संस्कृतमें हुआ। मथुरावाले सर्वास्तिवाद या आर्य स र्वा स्ति वा द की पुस्तक अशोकावदान इस वक्त उपलब्ध है। मथुरामें जब शकोंकी प्रधानता हो गई, और आर्यसर्वास्तिवाद उनका विशेष श्रद्धा-भाजन हो गया, उसी समय उनका केन्द्र कश्मीर-गंधार चला गया; जहाँपर कि शक-साम्राज्यका केन्द्र था। इस तौरसे सर्वास्तिवादका नाम मू ल-स र्वा स्ति वा द है। सम्राट् कनिष्कके समय (ईसाकी प्रथम शताब्दीमें) कुछ मतभेदोंके मिटानेके लिये विद्वानोंकी एक सभा की गई, जिसमें त्रिपिटकके लेखबद्ध करनेके अतिरिक्त तीनों पिटकोंपर वि भा षा नामकी टीकायें लिखी गईं। इन्हींके कारण पीछे सर्वास्तिवादयोंका नाम वै भा षि क पळा। (विनय-विभाषा का अनुवाद सिर्फ चीन-भाषामें मिलता है)। यह टीका उन परम्पराओंपर अवलम्बित है, जो कि तब तक गुरु-शिष्य क्रमसे चली आती थी।

स्थविर-वादियोंका विनय पिटक, जो कि पाली-भाषामें है; सम्राट् अशोकके पुत्र और पुत्री महेन्द्र और संघमित्राके साथ भारतसे सिंहल (लंका) पहुँचा। तबसे अब तक लंका स्थविरवादका केन्द्र है। इसमें आई कथाओंकी प्रामाणिकता साँची, कनेरी आदिके स्तूपोंसे निकली अशोक कालीन आचार्यों की अस्थियोंसे हो चुकी है। इसके विनय पिटककी टीकायें=अट्ठकथायें पहिले कई थीं। कु रु न्दि-अट्ठकथा, म हा प च्च रि-अट्ठकथा, सं खे प-अट्ठकथा, अ न्ध क-अट्ठकथा, म हा-अट्ठकथा आदि कितनी ही अट्ठकथायें बनी थीं, जिनमें कुछ सिंहलकी तत्कालीन प्राकृत भाषामें थीं। पाँचवीं शताब्दीके आरम्भमें भारतीय आचार्य बुद्धघोषने इन्हीं अट्ठकथाओंकी सहायतासे पाली भाषामें अपनी अट्ठकथायें लिखीं; जिनकी उपयोगिता अधिक होनेके कारण पहिलेकी अट्ठकथायें पीछे लुप्त हो गईं। बुद्धघोष-विरचित विनय-अट्ठकथाका नाम स म न्त पा सा दि का है। मूल विनयकी भाँति यह अट्ठकथा भी बहुतसी ऐतिहासिक सूचनायें देती है। अशोकके समयकी बौद्ध सभा और सिंहलमें धर्म-प्रचारके बारेमें तो इसमें सविस्तर वर्णन मिलता है (इसे मैं अपनी बु द्ध च र्या के अन्तमें अनुवादित कर चुका हूँ)। इसमें आये सिंहलके आचार्यो और तत्कालीन राजाओंके नामसे मालूम होता है, कि पुरानी अट्ठकथाओंके निर्माणका समय ईसाकी तीसरी शताब्दीसे पूर्व ही पूरा हो चुका था।

पाठ-परिवर्तन

बुद्ध-निर्वाणसे (४८३ ई० पूर्व) से लेकर राजा व ट्ट गा म नी (२९–१ ई० पूर्व) के काल तक स्थविरवादियोंका त्रिपिटक बराबर कंठस्थ ही चला आया था। वट्टगामनीके समय लंकामें त्रिपिटक लेख-बद्ध किया गया। इन चार सौसे अधिक वर्षो तक कंठस्थ ले आनेका प्रभाव एक तो यह पळा, कि मूल त्रिपिटककी भाषा, जो पहिले मागधी थी—का उच्चारण बिगळकर महाराष्ट्रीसा हो गया। वस्तुतः यह स्वाभाविक ही था। सिंहलके प्रथम प्रवासी गुजरात (=लाट) से वहाँ पहुँचे थे। पुरानी महाराष्ट्रीकी

भिक्षु-प्रातिमोक्ष और विभंग च, छ, ज, झ
भिक्षुणी-प्रातिमोक्ष और विभंग त
[1]क्षुद्रकवस्तु थ, द
उत्तर-ग्रंथ न, प

भाँति ही उनकी भाषामें भी श का पूरा बायकाट था, और र को ल में बदल देनेका रवाज न था। इसके विरुद्ध स की जगह भी श, तथा र के स्थानपर ल (जैसे राजाका लाजा) कहना मागधी भाषाके विशेष लक्षण थे। महेन्द्रके सिंहल-आगमन (२४७ ई० पू०)से प्राय: ढाई सौ वर्ष तक त्रिपिटकके कंठस्थका भार सिंहलके गुजराती-प्रवासियोंको मिला था, जिनके उच्चारण मागधीसे बिल्कुल ही उल्टे थे, यही कारण है, जो पलिबोध (=परिबोध) आदि कुछ शब्दोंको छोळ जिनमें मागधी व्याकरणके अनुसार र के स्थानपर ल कायम रक्खा गया, मागधीकी सभी विशेषतायें लुप्त हो गईं; और एक प्रकारसे वर्तमान पाली त्रिपिटक मागधी न होकर प्राचीन गुजराती भाषाका त्रिपिटक है।

इसके कंठस्थ रहे आनेका एक और प्रभाव पळा। हाँ, उस परिवर्तनका स्थान अधिकतर सिंहल न होकर भारत था, जहाँपर कि बुद्ध-निर्वाणके २३६ वर्षों बाद तक वह रहा था। यह प्रभाव था याद करने के सुभीतेके लिये बहुतसे एकसे अर्थवाले पाठोंको बिल्कुल उन्हीं शब्दोंमें दुहराना।

मूल बुद्ध-वचन

त्रिपिटकमें कुछ गाथाओंके प्रक्षिप्त होनेकी बात तो पुराने आचार्योंने भी स्वीकार की है[1]। मातिकाओंको छोळ सारा अभिधर्म-पिटक ही पीछेका है, इसीलिये जिस प्रकार सुत्त-पिटक और विनय-पिटकमें स्थविरवादियों और सर्वास्तिवादियोंके पिटकोंके पाठकी समानता है, वैसा उसमें नहीं। मैं अपने दूसरे लेख महायान बौद्ध धर्मकी उत्पत्ति[2]मे यह भी लिख चुका हूँ, कि अभिधर्म-पिटकका एक ग्रंथ-कथा-वत्थु का अधिकांश अशोकके समयमें न लिखा जाकर बहुत पीछे ईसा पूर्व प्रथम शताब्दीके वैपुल्यवादी आदि निकायोंके विरुद्ध लिखा गया है। चुल्लवग्गके पंचशतिका और सप्तशतिका स्कंधकोंमें भी धर्म (=सुत्त) और विनयकी ही बात आती है; यह भी उक्त बातकी पुष्टि करती है।

फिर प्रश्न होता है, क्या सुत्त-पिटक और विनय-पिटक सभी बुद्ध-वचन हैं? सुत्त-पिटकमें मज्झिम-निकायके घोटमुख सुत्तन्त (९४)की भाँति कितने तो स्पष्ट ही बुद्धनिर्वाणके बादके हैं। खुद्दक-निकायके पटिसम्भिदामग्ग और निद्देस जैसे कुछ ग्रंथ तो अधिकांशमें सिर्फ पहिले आये सूत्रोंके भाष्य मात्र हैं। सुत्त-पिटकमें आई वह सभी गाथायें, जिन्हें बुद्धके मुखसे निकला उदान नहीं कहा गया, पीछेकी प्रक्षिप्त मालूम होती हैं। इनके अतिरिक्त भगवान् बुद्ध और उनके शिष्योंकी दिव्य शक्तियों और स्वर्ग-नर्क देव-असुरकी अतिशयोक्ति पूर्ण कथाओंको भी प्रक्षिप्त माननेमें कोई बाधा नहीं हो सकती। इन अपवादोंके साथ संक्षेपमें कहा जा सकता है, कि सुत्त-पिटकमें दीघ, मज्झिम, संयुत्त, अंगुत्तर चारों निकाय, तथा पाँचवें खुद्दक-निकायके खुद्दकपाठ, धम्मपद, उदान, इतिवुत्तक, और सुत्त-निपात यह छ ग्रंथ अधिक प्रामाणिक हैं। बल्कि खुद्दक निकायके इन ग्रंथोंमें अधिकतर पहिले चारों निकायोंके ही सूत्रों और गाथाओंके आनेसे, तथा कितने ही ऐतिहासिक लेखोंमें चतुर्निकायिक शब्द आनेसे तो दीघ, मज्झिम, संयुत्त और अंगुत्तर इन चार निकायोंको ही यह स्थान देना अधिक युक्तियुक्त मालूम होता है। इन चारोंमें भी मज्झिम-निकाय अधिक प्रामाणिक है।

[1] महावग्ग, महाखन्धककी अट्ठकथामें नेरंजराय भगवा आदि गाथाओंको पीछे डाली (पच्छा पक्खित्ता) कहा गया है।

[2] गंगा-पुरातत्त्वांक पृष्ठ २१०।

विनय-पिटक

बुद्धचर्याके प्राक्कथनमें मैंने लिखा था—"इस पुस्तकमें कुछ जगह एक ही घटनाको अट्ठकथा विनय, और सूत्र तीनोंके शब्दोंमें दिया है, उसके देखनेसे मालूम होगा, कि सूत्रोंकी अपेक्षा विनयमें अधिक अतिशयोक्ति और अलौकिकतासे काम लिया गया है; और अट्ठकथा तो इस बातमें विनयसे बहुत आगे बढ़ी हुई है। और इसीलिये इसके ही अनुसार इनकी प्रामाणिकताका तारतम्य मान लेनेमें कोई हानि नहीं है।" इस प्रकार प्रामाणिकतामें विनय-पिटक सुत्त-पिटकसे दूसरे नंबरपर है। विनय-पिटकमें भी परिवारके पीछे लिखे जानेकी बात मैं पहिले कह चुका हूँ। विभंग और खन्धकमें विभंग तो पातिमोक्ख-सुत्तोंपर व्याख्या मात्र है, इस व्याख्यामें भी पड्वर्गीय भिक्षुओंके नामकी बहुत सी नजीरें तो सिर्फ उन अपराधोंका उदाहरण देने मात्रके लिये गढ़ी गई जान पळती हैं। यद्यपि ऐसी नजीरें खन्धकमें भी पाई जाती हैं, किन्तु वहाँ उनकी संख्या अपेक्षाकृत कम है। इस प्रकार विनय-पिटक का सबसे अधिक प्रामाणिक अंग भिक्षु-भिक्षुणी-प्रातिमोक्ष (० पातिमोक्ख) है, फिर खन्धकका नंबर आता है; और विभंग उसके बाद। खन्धकमें भी पातिमोक्खमें आये, पाराजिक[1] से खिय आदिके कितने ही नियम फिरसे दुहराये गये हैं। खन्धकके महावग्ग, चुल्लवग्ग पहिले एक ही ग्रन्थके रूपमें थे, जैसे कि वह मूल सर्वास्तिवादियोंके महावस्तुमें मिलते हैं, सिर्फ पंचशतिका और सप्तशतिका जैसे कुछ अध्याय पीछेके जोळे हैं।

बुद्धके सम्बन्धमें

खन्धकमें बुद्धके जीवनके कितने ही अंग ही नहीं आते, बल्कि कहीं कहीं तो भगवान्‌के एक स्थानसे दूसरे स्थान, वहाँसे तीसरे स्थान—इस प्रकार छ छ सात सात स्थानों तककी यात्राका वर्णन आता है। किन्तु इन यात्राओंको सीधे तौरपर जीवनके लिये इस्तेमाल नहीं किया जाता, क्योंकि कितनी ही जगह बुद्धके जीवनके बहुत पीछेकी घटनायें नज़ीर देनेके लिये पहिले रख दी गई हैं[2]; और दूसरे प्रत्येक स्कंधकका विनय अलग होनेसे वहाँ यात्राका क्रम टूटा हुआ है। तो भी उनसे सहायता अवश्य मिल सकती है।

विनय-पिटककी उपयोगिता

विनय-पिटक भिक्षुओंके आचार नियमोंके जाननेके लिये तो उपयोगी है ही, साथ ही वह पुराने अभिलेखों तथा फाहियान, इ-चिङ् आदिके यात्रा विवरणोंको समझनेके लिये भी बहुत सहायक है। यही नहीं विनयमें तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक अवस्थाकी सूचक बहुत सी सामग्री मिलती है। यदि चीवर-स्कंधक, चर्म-स्कंधक और भिक्षुणी विभंगमें आये वस्त्र-आभूषण आदिके नामोंको हम साँचीकी मूर्तियोंसे मिलाकर पढ़ें, तो हम उत्तरी भारतके स्त्री पुरुषोंकी तत्कालीन वेष-भूषाका बहुतसा ज्ञान पा सकते हैं। शमथ-स्कंधकमें आई शलाका ग्रहणकी प्रक्रिया तो वस्तुतः समकालीन लिच्छवि गणतंत्रके वोट लेने आदिकी प्रक्रियाकी नकल मात्र है। आजकल भी हमारी कौंसिलोंमें किसी प्रस्तावको पेश करने, बहस करने, अन्तमें सभापति द्वारा सम्मति लेनेके खास नियम हैं। विनय-पिटकके देखनेसे मालूम होगा कि भिक्षु-संघ (जो कि वस्तुतः उस समयके गणतंत्रोंकी नकल थी) में भी प्रस्ताव पेश करते वक्त एक खास आकारमें पेश किया जाता था, जिसे ज्ञप्ति कहते थे। ज्ञप्तिके बाद सदस्योंको

[1] महावग्ग १।४।८ (पृष्ठ १३५)।
[2] देखो पृष्ठ २८९ में पाटलिग्रामकी बात।

प्रस्तावको दुहराते हुये उसके विपक्षमें बोलनेके लिये तीन वार तक अवसर दिया जाता था, जिसे अ न - श्रा व ण कहते थे; और अन्तमें धा र णा द्वारा सम्मतिके परिणामको सुनाया जाता था ।

अन्य पुराने ग्रंथोंकी भाँति इस विनय-पिटकमें वर्णित विषयोंकी सुर्खी देनेका ख्याल बहुत ही कम रक्खा गया है । वस्तुतः यह ग्रंथ तो कंटस्थ करनेवालोंके लिये था, और उनके लिये सुर्खियाँ उतनी आवश्यक न थीं । मैंने सभी जगह अपेक्षित सुर्खियोंको भिन्न टाइपोंमें दे दिया है। अपने पहिलेके अनुवादोंकी भाँति यहाँ भी अन्तमें विस्तृत परिशिष्ट दे दिया है । यदि पाठकोंकी सहायता प्राप्त होगी, तो रह गई त्रुटियोंको दूसरे संस्करणमें ठीक कर दिया जायेगा ।

ल्हासा
७-७-३४ ई०

राहुल सांकृत्यायन

विनय-पिटक-प्रकरण सूची

विषय-सूची

ग्रंथ-सूची

विभाग-सूची

क—पातिमोक्ख-सुत्त

(विभंग)

१—भिक्खु-पातिमोक्ख

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ।

(पातिमोक्ख[1])

१—भिक्खु-पातिमोक्ख

निदान । १—पाराजिक । २—संघादिसेस । ३—अ-नियत । ४—निस्सग्गिय पाचित्तिय । ५—पाचित्तिय । ६—पाटिदेसनिय । ७—सेखिय । ८—अधिकरण-समथ ।

§ (निदान)

(एक भिक्षु—) भन्ते ! संघ मेरी (बात) सुने, यदि संघको पसंद हो (तो) मैं इस नामके[2] आयुष्मानसे *विनय* पूछूँ ।[3]

(चुना जाने वाला भिक्षु—) भन्ते ! संघ मेरी (बात) सुने, यदि संघको पसंद हो (तो) मैं इस नामके[4] आयुष्मान् द्वारा पूछे *विनय* (=भिक्षु-नियम)का उत्तर दूँ ।—

सम्मज्जनी पदीपो च उदकं आसनेन च ।
उपोसथस्स एतानि पुब्बकरणन्ति वुच्चति ॥
(सम्मार्जनी प्रदीपश्च उदकं आसनेन च ।
उपोसथस्य एतानि पूर्वकरणमित्युच्यते ॥)

(संघसे) अवकाश (माँगकर कहता हूँ)—*सम्मज्जनी*=झाड़ू देना (उपोसथागार को साफ करना), *पदीपो च* = और दिया जलाना [(दिन होनेसे—) इस समय सूर्यके प्रकाशके कारण दीपकका काम नहीं है (कहना चाहिये)], *उदकं आसनेन च* = और आसन (बिछाने)के साथ पीने तथा धोनेके लायक जलको रखना, *एतानि*=संमार्जन करना आदि यह चार कार्य (=व्रत) संघके एकत्रित होनेसे पहिले किये जानेसे, *उपोसथस्स* = *उपोसथ*[5] के, *पुब्बकरणन्ति* = "पूर्व-करण", *वुच्चति* = कहे जाते हैं ।

---

[1] मासकी प्रत्येक कृष्ण चतुर्दशी तथा पूर्णिमाको उस स्थानमें रहनेवाले सभी भिक्षु संघके उपोसथागारमें एकत्रित हो इन पातिमोक्ख (= प्रातिमोक्ष)के नियमोंकी आवृत्ति करते हैं ।

[2] यहाँ जिस भिक्षुको उस दिन धर्मासनके लिये चुनना हो, उसका नाम लेना चाहिए ।

[3] संघकी स्वीकृति जान वह भिक्षु संघको प्रणाम कर पाँतीके आरम्भमें रक्खे धर्मासन पर बैठ आगेकी बातोंको कहता है ।

[4] प्रस्तावक भिक्षुका यहाँ नाम लेना चाहिये ।

[5] कृष्ण चतुर्दशी और पूर्णमासी ।

छन्द-पारिसुद्धि उतुक्खानं भिक्खु-गणना च ओवादो ।
उपोसथस्स एतानि पुब्बकिच्चन्ति वुच्चति ॥
(छन्द-पारिशुद्धिः ऋतु-ख्यानं भिक्षु-गणना चाऽववादः ।
उपोसथस्यैतानि पूर्वकृत्यमित्युच्यते ॥)

छन्दपारिसुद्धि = छन्द (=सम्मति=Vote) के योग्य (रोगी आदि होने के कारण उपोसथमें स्वयं उपस्थित न हो सकनेवाले) भिक्षुओंके छन्द और शुद्धता[1], *उतुक्खान* = हेमन्त आदि तीन ऋतुओंमेंसे इतने बीत गये, इतने बाकी हैं—का कहना। यहाँ (बौद्ध-) धर्ममें हेमन्त, ग्रीष्म, वर्षाको लेकर तीन ऋतुयें होती हैं। [(जैसे—) यह हेमन्त ऋतु है, इस ऋतुमें (प्रत्येक पक्षमें एक एक करके) आठ उपोसथ (होते हैं), इस पक्ष से एक उपोसथ पूर्ण हो रहा है, एक उपोसथ (पहिले) चला गया, (अब) छ उपोसथ बाकी हैं]। *भिक्खुगणना च* = और इस उपोसथमें एकत्रित भिक्षुओंकी गणना [इतने] भिक्षु हैं, *ओवादो* = भिक्षुणियोंको उपदेश देना [इस समय उनकी परंपराके लोप हो जानेसे वह उपदेश अब नहीं देना रहा]। *एतानि पुब्बकिच्चन्ति वुच्चति* = छन्द भेजना आदि यह पाँच काम *पातिमोक्ख* कहनेसे पहिले किये जाने से, *उपोसथस्स* = उपोसथ कर्मके, *पुब्बकिचन्ति वुचति* = "पूर्वकृत्य" कहे जाते हैं।

उपोसथो, यावतिका च भिक्खू, कम्मप्पत्ता सभागापत्तियो च ।
न विज्जन्ति वज्जनीया च पुग्गला तस्मिं न होन्ति, पत्तकल्लन्ति वुच्चति ।
(उपोसथे यावन्तश्च भिक्षवः, कर्मप्राप्ताः सभागापत्तयश्च ।
न विद्यन्ते वर्जनीयाश्च पुद्गलाः तस्मिन् न भवंति, प्राप्तकल्यमित्युच्यते ॥)

उपोसथो = (कृष्ण-)चतुर्दशी, पूर्णमासी, (और विशेष कामके लिये संघका) एकत्रित होना—इन तीन उपोसथके दिनोंमें [आज पूर्णमासीका उपोसथ है]। *यावतिका च भिक्खू* = जितने भिक्षु, *कम्मप्पत्ता* = उस *उपोसथ*-कर्मको प्राप्त, के योग्य = के अनुरूप हैं, कमसे कम चार शुद्ध भिक्षु जोकि—(१) भिक्षु-संघ द्वारा न त्यागे भिक्षु, (२) हस्त-पाशको विना छोड़े (वैठकके विरावेको बिना तोड़े) एक सीमाके भीतर स्थित, (३) *सभागापत्तियो च न विज्जति*=(जिनमें) दोपहर बाद भोजन करने आदिके अपराध(=आपत्तियाँ) नहीं वर्तमान होते; (४) *वज्जनीया च पुग्गला तस्मिं न होन्ति*=गृहस्थ नपुंसक आदि वैठकके विरावे (=हस्तपाश)से दूर रक्खे जानेवाले इक्कीस (प्रकारके) व्यक्ति उस (उपोसथ)में नहीं होते, *पत्तकल्लन्ति वुचति*—इन चार लक्षणोंसे युक्त संघका उपोसथ कर्म *प्राप्तकल्य*=उचित समयसे युक्त कहा जाता है।

पूर्वकरण, (और) *पूर्वकृत्यों*को समाप्त कर, (अपने) दोषोंको (एक दूसरेको) वतलाकर एकत्रित हुए भिक्षु-संघकी अनुमतिसे *प्रातिमोक्ष*की आवृत्तिके लिये प्रार्थना करता हूँ।

भन्ते ! संघ मेरी (वातको) सुने—आज पूर्णमासी[2]का उपोसथ है। यदि संघ

---

[1] संघके सामने आनेवाले अभियोग या दूसरे काममें अपनी सम्मति, अनुपस्थित भिक्षुणी दूसरी भिक्षुणी द्वारा भेज सकती है, इसीको यहाँ छन्द कहा गया है। इसी प्रकार रोगी भिक्षुणी अपनी अदोषता (=शुद्धता)को भी दूसरे द्वारा भेज सकती है, जिसे पारिशुद्धि कहा गया है।

[2] यहाँ जिस दिनका उपोसथ हो, उसका नाम लेना चाहिये।

उचित समझे तो उपोसथ करे और प्रातिमोक्ष (नियमों)की आवृत्ति करे।

क्या है संघका पूर्व कृत्य ? आयुष्मानो ! (अपनी) शुद्धि (=अ-दोषता)को कहो, हम प्रातिमोक्षकी आवृत्ति करेंगे, सो हम सभी शान्त हो अच्छी तरह सुनें और मनमें करें। जिससे कोई दोष हुआ हो वह प्रकट करे। दोष न होने पर चुप रहना चाहिये। चुप रहने पर मैं आयुष्मानोंको शुद्ध (=दोष-रहित) समझूँगा। जैसे एक एक आदमीसे पूछनेपर उत्तर देना होता है, वैसे ही इस प्रकारकी सभामें तीन बार तक पुकारा जाता है। किन्तु, जो भिक्षु तीन बार पुकारनेपर याद रहते भी, विद्यमान दोषको प्रकट नहीं करता, वह जान बूझकर झूठ बोलनेका दोषी होता है। आयुष्मानो ! भगवान्ने जान बूझकर झूठ बोलनेको अन्तरायिक (=विघ्नकारक) कर्म कहा है; इसलिये याद रखते हुए दोष -युक्त भिक्षुको शुद्ध होनेकी कामनासे विद्यमान दोषको प्रकट करना चाहिये; (दोषोंका) (अपनेमें) प्रकट करना उसके लिये अच्छा होता है।

आयुष्मानो ! *निदान* कह दिया गया। अब मैं आयुष्मानोंसे पूछता हूँ—क्या इन (आप सब) (निदानमें कही बातों)से शुद्ध हैं ? दूसरी बार भी पूछता हूँ—क्या इनसे शुद्ध हैं ? तीसरी बार भी पूछता हूँ, क्या इनसे शुद्ध हैं ? आयुष्मान् परिशुद्ध हो हैं, इसी-लिए चुप हैं—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ, इति।

निदान समाप्त

---

§१—पाराजिक[1] (१-४)

आयुष्मानो ! यह चार *पाराजिक*[2] धर्म कहे जाते हैं :—

(१) मैथुन

१—जो भिक्षु भिक्षुओंके कायदा और नियमसे युक्त होते हुए भी, शिक्षाको बिना छोड़े, दुर्बलताको बिना प्रकट किये, अन्ततः पशुसे भी मैथुन-धर्मका सेवन करे, वह *पाराजिक* होता है =(भिक्षुओंके) साथ न रहने लायक होता है[3] ।

(२) चोरी[4]

२—जो भिक्षु चोरी समझी जाने वाली किसी ऐसी वस्तुको बिना दिये ही ग्राम या अरण्यसे ग्रहण करे, जिसे (मालिकके) बिना-दिये-हुए ले लेनेसे राजा किसी व्यक्तिको चोर=स्तेन, मूर्ख, मूढ़ कहकर बाँधता, मारता या देश-निकाला देता है, तो वह भिक्षु *पाराजिक* होता है=(भिक्षुओंके) साथ न रहने लायक होता है[5] ।

---

[1] पाराजिकोंके इतिहास और विस्तारके लिये देखो बुद्धचर्या पृष्ठ १४१-४६, ३०९-२२ ।

[2] जिन अपराधोंके करनेसे भिक्षु भिक्षुपनसे हमेशाके लिये निकाल दिया जाता है वे पाराजिक कहे जाते हैं ।

[3] बुद्धधर्म (=शासन)में जो जो उपद्रव···हुए, वह सब वज्जिपुत्तकों (=वज्जी गणके राजपुरुषों)को लेकर ही हुए । देवदत्तने भी वज्जिपुत्तकोंको अपने पक्षमें पा संघमें फूट डाली । भगवान्‌के निर्वाणके सौ वर्ष बाद भी इसी तरह···इन्होंने ही धर्म और विनयके विरुद्ध शिक्षा देनी शुरू की । (-अट्ठकथा) ।

[4] उस समय राजगृहमें वीस मासे (=मासक) का कार्षापण था ।···यह पुराने नील कार्षापणके बारेमें है, दूसरे रुद्रदामक आदिके (कार्षापणों) के बारेमें नहीं (—अट्ठकथा ।)

[5] अन्तर-समुद्रमें एक भिक्षुने सुन्दर आकारके एक नारियलके फलको पा, खरादपर चढ़ा, शंखके कटोरे सा मनोरम पीनेका कटोरा बना, वहीं रखकर चैत्य गिरि (=मिहिन्तले, लङ्का) चला गया । तब दूसरा भिक्षु अन्तर-समुद्रमें जा उसी विहारमें निवास करते, उस कटोरे (=थालक)को देख चोरीके ख्यालसे ले (वह) भी चैत्य गिरिको ही गया । उस कटोरेमें खिचड़ी पीते समय देखकर कटोरेके स्वामीने कहा—यह कहाँ तुम्हें मिला ? अन्तर-समुद्रसे लाया हूँ । उसने—यह तुम्हारा नहीं है, चोरीसे तुमने लिया है—(कह) संघमें पेश किया । वहाँ निर्णय न होनेपर वह (दोनों) महाविहार (अनुराधपुर, लङ्का) गये । वहाँ भेरी बजवा महाचैत्यके पास (संघ)को एकत्रित कर मुकद्मा देखना शुरू किया । विनय-धर स्थविरोंने (संघसे) निकाल देनेकी व्यवस्था दी । उस बैठकमें आभिधर्मिक गोध स्थविर नाम एक विनयमें निपुण (भिक्षु) थे । उन्होंने यह कहा—'इसने इस कटोरेको कहाँ चुराया ?'—'अन्तर-समुद्रमें !' 'वहाँ' इसका क्या

(३) मनुष्य-हत्या

३—जो भिक्षु जान कर मनुष्यको प्राणसे मारे, या (आत्म-हत्याके लिये) शस्त्र खोज लाये, या मरनेकी तारीफ़ करे, मरनेके लिये प्रेरित करे—अरे पुरुष ! तुझे क्या (है) इस पापी दुर्जीवन से ? (तेरे लिये) जीनेसे मरना अच्छा है; इस प्रकारके चित्त-विचारसे इस प्रकारके चित्त-संकल्पसे अनेक प्रकारसे मरनेकी जो तारीफ़ करे, या मरनेके लिये प्रेरित करे तो वह भिक्षु पाराजिक होता है=(भिक्षुओंके साथ) सहवासके अयोग्य होता है[1] ।

(४) दिव्यशक्तिका दावा

४—जो भिक्षु नविद्यमान्, दिव्य-शक्ति (=उत्तर-मनुष्य-धर्म[2])=अलम्-आर्य-ज्ञान-दर्शनको, अपनेमें वर्तमान कहता है—"ऐसा जानता हूँ, ऐसा देखता हूँ," तब दूसरे समय

मूल है ?'—'मूल कुछ नहीं है, वहाँ नारिकेलको फोड़ गरी खा खोपड़ीको फेंक देते हैं; (वह) इंधनका काम देता है ।' 'इस भिक्षुके हाथके कामका क्या मूल्य होगा ?'—'मासा या माससे कम ।' 'क्या सम्यक्-सम्बुद्धने कहीं मास या माससे कमकी (चोरी)के लिए पाराजिककी व्यवस्था देनेके बारेमें कहा है ?' ऐसा कहनेपर,—'साधु, साधु, ठीक कहा, ठीक विचार किया'—एक ओरसे (कह लोगों ने) साधुवाद दिया । उस समय भातिक राजाने भी चैत्यकी बंदनाके लिये नगरसे निकलते वक्त उस शब्दको सुना । (—अट्ठकथा) ।

[1] वसभ राजा (लङ्कामें ६६-११० ई०)की देवी बीमार पड़ी । एक स्त्रीके आकर पूछनेपर महापद्म स्थविरने—मैं नहीं जानता—(यह) न कह, इस प्रकार भिक्षुओंके साथ बात की । सिंहलद्वीपमें अभय नामक चोर (=डाकू) पाँच सौ अनुयायियोंके साथ एक जगह छावनी बाँधकर चारों ओर तीन योजन तक लूटमार करता था । (जिसके कारण) अनुराधपुर निवासी कलम्बु नदीके भी पार नहीं जाते थे । चैत्यगिरिके रास्तेपर लोगोंका जाना बन्द हो गया था । तब एक दिन (वह) चोर—चैत्यगिरिको लूटूँ—(सोच) चला । आरामके नौकरोंने देख कर दीर्घभाणक (=दीर्घनिकाय के पंडित) अभय स्थविर से कहा । (—अट्ठकथा) ।

[2] उत्तर-मनुष्य-धर्म=(१) ध्यान, (२) विमोक्ष, (३) समाधि, (४) समापत्ति, (५) ज्ञान-दर्शन, (६) मार्ग-भावना, (७) फल-साक्षात्कार, (८) क्लेश-प्रहाण (९) विनीवरणता, (१०) शून्यागारमें चित्तकी अभिरति (=अनुराग) ।···अलम्-आर्य-ज्ञान=तीन विद्यायें=दर्शन । जो ज्ञान है वही दर्शन है, जो दर्शन है वही ज्ञान है । ···

विशुद्धापेक्षी=गृही होनेकी इच्छासे, या उपासक होनेकी इच्छासे, या आरामिक (=आराम-सेवक) होनेकी इच्छासे, या श्रामणेर होनेकी इच्छासे ।···

ध्यान=(१) प्रथमध्यान, (२) द्वितीयध्यान (३) तृतीयध्यान, (४) चतुर्थध्यान ।

विमोक्ष=(१) शून्यता-विमोक्ष, (२) अनिमित्त-विमोक्ष, (३) अ-प्रणिहित-विमोक्ष ।

समाधि=(१) शून्यता-समाधि, (२) अनिमित्त०, (३) अप्रणिहित० ।

समापत्ति=(१) शून्यता-समापत्ति, (२) अनिमित्त० (३) अप्रणिहित० ।

ज्ञान=तीन विद्यायें ।

मार्ग-भावना=(१) चार स्मृति-प्रस्थान, (२) चार सम्यक्-प्रधान, (३) चार ऋद्धि-पाद, (४) पाँच इन्द्रिय, (५) पाँच बल, (६) सात बोध्यंग, (७) आर्य-अष्टांगिक-मार्ग ।

पूछे जाने या न पूछे जानेपर वदनीयतीसे, या आश्रम छोड़ जानेकी इच्छासे (कहे)—"आयुष्मान्! न जानते हुए मैंने 'जानता हूँ' कहा, न देखते हुए मैंने 'देखता हूँ' कहा, मैंने झूठ=तुच्छ कहा; (तो) वह *पाराजिक* होता है, यदि अधिमान (=अभिमान) से न कहा हो।

आयुष्मानो! यह चार पाराजिक दोष कहे गये। इनमेंसे किसी एकके करनेसे भिक्षु भिक्षुओंके साथ वास नहीं करने पाता। जैसे (भिक्षु होनेसे) पहले वैसेही पीछे *पाराजिक* होकर साथ रहनेके योग्य नहीं रहता।

आयुष्मानोंसे पूछता हूँ—क्या (आप लोग) इनसे शुद्ध हैं? दूसरी बार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध हैं? तीसरी बार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध हैं? आयुष्मान् लोग शुद्ध हैं, इसीलिये चुप हैं—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ।

पाराजिक समाप्त ॥१॥

फल-साक्षात्कार=(१) स्रोतआपत्ति-फलका साक्षात् करना, (२) सकृद्-अगामी०, (३) अनागामी०, (४) अर्हत्०।

क्लेश-प्रहाण=(१) रागका प्रहाण (=विनाश), (२) द्वेष-प्रहाण, (३) मोह-प्रहाण।

विनीवरणता= (१) रागसे चित्तकी विनीवरणता (=शुद्धि), (२) द्वेषसे चित्त-विनीवरणता, (३) मोहसे चित्त-विनीवरणता।

शून्यागारमें अभिरति=(१) प्रथमध्यानसे शून्य स्थानमें संतोष, (२) द्वितीयध्यानसे० (३) तृतीयध्यानसे०, (४) चतुर्थध्यानसे०, (-भिक्खु-विभंग)।

§२—संघादिसेस[1] (५-१७)

आयुष्मानो ! यह तेरह दोष *संघादिसेस* कहे जाते हैं—

(१) कामासक्तिता

१—स्वप्नके अतिरिक्त जान-बूझकर वीर्य-मोचन *संघादिसेस* है।

२—किसी भिक्षुका विकार युक्त चित्तसे किसी स्त्रीके हाथ या वेणीको पकड़कर या और किसी अंगको छूकर शरीरका स्पर्श करना *संघादिसेस* है।

३—किसी भिक्षुका विकारयुक्त चित्तसे किसी स्त्रीके साथ ऐसे अनुचित वाक्योंका कहना जिन्हें कि कोई युवा किसी युवतीसे मैथुनके सम्बन्धमें कहता है, *संघादिसेस* है।

४—किसी भिक्षुका विकार युक्त चित्तसे अपनी काम-वासनाकी तृप्तिके लिये किसी स्त्रीसे यह कहना—भगिनी ! सभी सेवाओं में 'यह' सर्व श्रेष्ठ सेवा है कि तू मेरे जैसे सदाचारी, ब्रह्मचारी पुण्यात्माकी मैथुनसे सेवा करे, *संघादिसेस* है।

५—किसी भिक्षुका (दूत बन) किसी स्त्रीकी बातको किसी पुरुषसे या किसी पुरुषकी बातको किसी स्त्रीसे जाकर कहना—(तू) जार बन या पत्नी बन या अन्ततः कुछ ही क्षणोंके लिये (उसकी बन), *संघादिसेस* है।

(२) कुटी-निर्माण

६—याचना द्वारा किसी भिक्षुको अपने लिये स्वामिरहित (= नई) कुटी बनवाते समय, (१) प्रमाण-युक्त बनवाना चाहिये। प्रमाण इस प्रकार है—लंबाईमें बुद्धके[2] बित्ते (=बालिश्त)से बारह बित्ता और चौड़ाईमें सात बित्ता। (२) मकानके विषयमें भिक्षुओंको सम्मति देनेके लिये बुलाना चाहिये और भिक्षुओंको मकानकी जगह ऐसी बतलानी चाहिये, जहाँ (मकानके बनानेमें जीवोंकी) हिंसा न हो, जहाँ पहुँचना (गाड़ी या सीढ़ी आदिसे) सुकर हो। भिक्षुका याचना करके हिंसा युक्त तथा पहुँचनेमें कठिन स्थानमें कुटी बनवाना या भिक्षुओंको मकानके बारेमें बतलानेके लिये न बुलाना या (कुटीको) प्रमाणके अनुसार न बनाना *संघादिसेस* है।

---

[1] इस दोषके लिये कुछ समयका परिवास (मुअत्तली) आदि दंड संघ ही दे सकता है, बहुत भिक्षु या एक भिक्षु इसका निर्णय नहीं कर सकते; इसीलिये इसे संघादिसेस कहते हैं। (—अट्ठकथा)।

[2] बुद्ध लंबे क़दके थे। यदि हम उन्हें ६ फुट क़दका मानें तो कुटीका भीतरी भाग $10\frac{1}{2}$ फुट × ६ फुट होना चाहिये।

७—किसी भिक्षुको अपने लिये स्वामियुक्त (= पुराने), बड़े विहारको बनवाते समय (१) मकानके विषयमें भिक्षुओंको सम्मति देनेके लिये बुलाना चाहिये और भिक्षुओंको मकानकी जगह ऐसी बतलानी चाहिये जहाँ (मकानके बनानेमें जीवों की) हिंसा न हो, जहाँ पहुँचना (गाड़ी या सीढ़ी आदिसे) आसान हो। भिक्षुका हिंसा युक्त तथा पहुँचनेमें कठिन स्थानमें कुटी बनवाना या मकानके बारेमें सलाह लेनेके लिये भिक्षुओंको न बुलाना *संघादिसेस* है।

(३) पाराजिकका इलज़ाम लगाना

८—कोई भिक्षु दुष्ट (चित्तसे) द्वेषसे, नाराज़गीसे दूसरे भिक्षुपर निर्मूल पाराजिक दोष लगाता है, जिसमें कि वह इस ब्रह्मचर्यसे च्युत हो (=भिक्षु आश्रम छोड़) जाय। फिर पीछे पूछने या न पूछनेपर वह झगड़ा निर्मूल (मालूम) हो और उस (दोष लगाने वाले) भिक्षुका दोष सिद्ध हो तो *संघादिसेस* है।[1]

९—किसी भिक्षुका दुष्ट (चित्तसे) द्वेषसे नाराज़गीसे दूसरे प्रकारके झगड़े (=अधि-करण)की कोई छोटी बात लेकर दूसरे भिक्षुको *पाराजिक* दोषका लगाना, जिसमें कि वह इस ब्रह्मचर्यसे च्युत हो जाय। फिर पीछे पूछने या न पूछनेपर उस झगड़ेकी अस-लियत मालूम हो और उस (दोष लगाने वाले) भिक्षुका दोष सिद्ध हो, (तो उसे) *संघादिसेस* है।[2]

संघमें फूट डालना

१०—यदि कोई भिक्षु एक मत संघमें फूट डालनेका प्रयत्न करे या फूट डालने वाले झगड़े को लेकर (उसपर) हठ पूर्वक कायम रहे (जब) उसे अन्य भिक्षु इस प्रकार कहें—आयुष्मान्! मत (आप) एकमत संघको फोड़नेका प्रयत्न करें, मत (आप) फोड़ने वाले झगड़ेको लेकर (उसपर) हठ पूर्वक कायम रहें। आयुष्मान्! संघसे मेल करिये, परस्पर हेल मेल रखने वाला, विवाद न करनेवाला, एक उद्देश्य वाला, एक मत रखनेवाला संघ सुख-पूर्वक रहता है। उन भिक्षुओं द्वारा ऐसा समझाया जानेपर भी यदि वह भिक्षु उसी प्रकार (अपनी ज़िदको) पकड़े रहे, तो दूसरे भिक्षु उस भिक्षुको उस (ज़िद)से हटानेके लिये तीन बार तक कहें। यदि तीन बारके कहनेपर उस (ज़िद)को छोड़ दे तो यह उसके लिये अच्छा है; यदि न छोड़े तो यह *संघादिसेस* है।[4]

---

[1] भातिय राजा (लंकामें १४१-६५ ई०)के समय महाविहार-वासी और अभय-गिरि-वासी स्थविरोंका इस विषयमें विवाद हुआ।...राजाने सुनकर स्थविरोंको जमा कर दीर्घकारायण नामक ब्राह्मण मंत्रीको स्थविरोंकी बात सुननेके लिये भेजा। (अट्ठकथा)।

[2] अट्ठकथामें महापद्म स्थविर, महासुम्म स्थविर और गोदत्त स्थविरके मत उद्धृत हैं।

[3] त्रैपिटक चूल-अभय स्थविर लोहप्रासाद (लंका)में भिक्षुओंको विनयकी कथा कह कर उठे (अट्ठकथा)।

[4] उस समय बुद्ध भगवान् राजगृहके वेणुवन कलंदकनिवापमें विहार करते थे। तब देवदत्त, कटमोर-तिस्सक कोकालिक और खंडदेवीपुत्र समुद्रदत्तके पास जाकर बोला—

आओ आवुसो! हम श्रमण गौतमके संघ = चक्रको फोड़ें। आओ!...हम श्रमण

११—उस (संघ-भेदक) भिक्षुके अनुयायी, पक्षपाती एक दो या तीन भिक्षु हों और वे यह कहें—'आयुष्मानो ! मत इस भिक्षुको कुछ कहो। यह भिक्षु धर्मवादी है, नियमानुकूल (= विनय) बोलने वाला है। हमारी भी राय और रुचिको लेकर यह कह रहा है, हमारे मनकी (बातको) जानता है, कहता है। हमको भी यह पसन्द है।' तब दूसरे भिक्षु उन भिक्षुओंको इस प्रकार कहें—मत आयुष्मानो ! ऐसा कहो । यह भिक्षु धर्मवादी नहीं है और न यह भिक्षु नियमानुकूल बोलने वाला है। आयुष्मानों-को भी संघमें फूट डालना न रुचना चाहिये। आयुष्मानो ! संघसे मेल करो। परस्पर हेल मेल वाला, विवाद न करने वाला, एक उद्देश्य वाला, एकमत रखने वाला संघ सुख-पूर्वक रहता है। यदि उन (समझाने वाले) भिक्षुओंके ऐसा कहने पर भी वे (संघ-भेदक भिक्षुके साथी) अपनी ज़िदको पकड़े रहें तो (समझाने वाले) भिक्षु तीन बार तक उस (ज़िद)से हटानेके लिये उसको कहें। यदि तीन बार कहनेपर वे उस (ज़िद) को छोड़ दें तो यह उनके लिये अच्छा है। यदि न छोड़ें तो यह *संघादिसेस* है।

(५) बात न सुनने वाला बनना

१२—यदि कोई भिक्षु कटु-भाषी है, विहित आचार नियमों (= शिक्षा-पदों) के बारेमें भिक्षुओं द्वारा उचितरीतिसे कहे जाने पर कहता है—'आप लोग मुझे कुछ न बोलें, आयुष्मान् लोग मुझे अच्छा या बुरा कुछ मत कहें। मैं भी आयुष्मानोंको अच्छा बुरा कुछ नहीं कहूँगा। आयुष्मानो ! (आप सब) मुझसे बात करनेसे बाज आयें।' तो

गौतमके पास चलकर पाँच बातें माँगें।···'अच्छा हो भन्ते ! भिक्षु (१) जिन्दगी भर वनमें ही रहा करें। जो गाँवमें रहे वह दोषी हो। (२) जिन्दगी भर भिक्षा माँग कर ही खाये। जो निमंत्रण खाये वह दोषी हो। (३) जिन्दगी भर फेंके चीथड़ोंको ही सीकर पहनें। जो गृहस्थोंके दिये वस्त्र को पहने वह दोषी हो। जिन्दगी भर पेड़के नीचे ही रहें। जो छतके नीचे रहे वह दोषी हो। और (४) जिन्दगी भर मछली-मांस न खाये। जो मछली मांस खाय वह दोषी हो।' श्रमण गौतम इसे नहीं मानेगा तब हम इन पाँच बातोंको लेकर लोगोंको समझायेंगे। आवुसो ! इन पाँच बातोंको लेकर श्रमण गौतमके संघ = चक्रको फोड़ा जा सकता है। मनुष्य तो आवुसो ! कठोर जीवनकी ही ओर अधिक श्रद्धा रखते हैं।"

तब देवदत्त अपनी मंडली के साथ जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान् को अभि-वादन कर···एक ओर बैठे हुए···बोला—"···अच्छा हो भन्ते ! भिक्षु (१) जिन्दगी भर वनमें ही रहा करें (आदि पाँचो बातें बोला)।"

"रहने दे देवदत्त ! जो चाहे वनमें रहे, जो चाहे गाँवमें रहे, जो चाहे भिक्षा माँगकर खाय, जो चाहे निमंत्रण खाय, जो चाहे फेंके चीथड़ोंको सीकर पहने, जो चाहे गृहस्थोंके दिये हुए (नये) वस्त्रको पहने। देवदत्त ! (वर्षाको छोड़) आठ मास तक वृक्षके नीचे रहने की तो अनुमति मैंने दे दी है। और उस मांसके (खाने के) लिये मैंने अनुमति दे दी है जिसके सम्बन्धमें, न यह देखा गया हो, न सुना गया हो, न इसका सन्देह ही किया गया हो (कि वह उसके लिये मारा गया है)।"······

(देवदत्तने इस बहानेको लेकर संघमें फूट डाल दी। यह संघ-भेद भी एक संघादि-सेस समझा गया।)

भिक्षुओंको उस भिक्षुसे यह कहना चाहिये—मत आयुष्मान् अपनेको अवचनीय (= दूसरोंका उपदेश न सुनने वाला) बनायें। आयुष्मान् अपनेको वचनीय ही बनावें। आयुष्मान् भी भिक्षुओंको उचित बात कहें। भिक्षु भी आयुष्मानको उचित बात कहें। परस्पर कहने-कहाने, परस्पर उत्साह दिलानेसे ही भगवानकी यह मंडली (एक दूसरे से) संबद्ध है।' भिक्षुओंके ऐसा कहने पर भी यदि वह अपनी ज़िदको पकड़े रहे तो भिक्षु तीन बार तक उस (ज़िद्)से हटानेके लिये उसको कहें। यदि तीन बार कहनेपर वह उस (ज़िद)को छोड़ दे तो यह उसके लिये अच्छा है। यदि न छोड़े तो यह *संघादिसेस* है।

(६) कुलोंका बिगाड़ना

१३—कोई भिक्षु किसी गाँव या कस्बे में कुल-दूषक[1] और दुराचारी होकर रहता है। उसके दुराचार देखे भी जाते हैं, सुने भी जाते हैं। कुलोंको उसने दूषित किया है यह देखा भी जाता है सुना भी जाता है। तो दूसरे भिक्षुओंको उस भिक्षुसे यह कहना चाहिये—आयुष्मान् कुल-दूषक और दुराचारी हैं। आयुष्मानके दुराचार देखे भी जाते हैं, सुने भी जाते हैं। आयुष्मानने कुलोंको दूषित किया है, यह देखा भी जाता है, सुना भी जाता है। इस निवास (-स्थान)से, आयुष्मान चले जायँ। आपका यहाँ रहना ठीक नहीं है।' भिक्षुओं द्वारा ऐसा कहे जाने पर यदि वह भिक्षु ऐसा बोले—'भिक्षु लोग रागके पीछे चलने वाले हैं, द्वेषके पीछे चलने वाले हैं, मोहके पीछे चलने वाले हैं, भयके पीछे चलने वाले हैं। उन्हीं अपराधोंके कारण किसी-किसीको हटाते हैं और किसी-किसीको नहीं हटाते।' तो उन भिक्षुओंको उस भिक्षुसे यह कहना चाहिये—'मत आयुष्मान् ऐसा कहें। भिक्षु लोग रागके पीछे चलने वाले नहीं है, द्वेषके पीछे चलने वाले नहीं हैं, मोहके पीछे चलने वाले नहीं हैं। भयके पीछे चलने वाले नहीं हैं, आयुष्मान् कुल-दूषक और दुराचारी हैं। आयुष्मानके दुराचार देखे भी जाते हैं, सुने भी जाते हैं। आयुष्मानने कुलोंको दूषित किया है, यह सुना भी जाता है, देखा भी जाता है। इस निवास (-स्थान) से आयुष्मान् चले जायँ। आपका यहाँ रहना ठीक नहीं है।' भिक्षुओं द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर भी यदि वह भिक्षु अपनी ज़िदको पकड़े रहे तो भिक्षु तीन बार तक उस (ज़िद)से हटने के लिये उसको कहें। यदि तीन बार कहने पर वह उस (ज़िद)को छोड़ दे तो यह उसके लिये अच्छा है। यदि न छोड़े तो यह *संघादिसेस* है[2]।

---

[1]देखो चुल्लवग्ग(§ २।७)

[2]श्रावस्तीमें ६ आदमी (आपसमें) मित्र थे···। वह आपसमें सलाह कर दोनों अग्रश्रावकों—सारिपुत्र और मौद्गल्यायनके पास प्रव्रजित हुये। पाँच वर्ष बीत जानेपर मात्रिका को खूब सीखकर उन्होंने सलाहकी—देशमें कभी सुभिक्ष भी होता है, कभी दुर्भिक्ष भी; इसलिये हम सबको एक जगह नहीं वास करना चाहिये। फिर उन्होंने (१) पण्डुक और (२) लोहितकसे यह कहा—'आवुसो! श्रावस्तीमें सत्तावन लाख कुल निवास करते हैं। (वह) अस्सी हज़ार गाँवोंसे अलंकृत, तीन सौ योजन विस्तृत काशी और कोसल देशोंकी आमदनीका मुख है, यहीं तुम निश्चल हो (वास करो)।...' (३) मेत्तिय और (४) भुम्मजकसे कहा—'आवुसो! राजगृहमें अट्ठारह कोटि मनुष्य वास करते हैं। (वह) अस्सी हजार गाँवोंसे अलंकृत, तीन सौ

आयुष्मानो ! यह तेरह *संघादिसेस* कहे जाते हैं—नव प्रथम (बार हीमें) दोष (समझे जाने) वाले और चार तीन बार (दोहराने पर)। जिनमेंसे किसी एक दोष-को करके, भिक्षु जब तक कि जानकर प्रतिकार करता है तब तक (और भिक्षुओंके) साथ निवास करनेकी इच्छा छोड़ वह भिक्षु *परिवास*[२] करे। *परिवास* कर चुकने पर फिर छः रात तक वह भिक्षु *मानत्व*[३] करे। *मानत्व* पूरा हो जाने पर वह भिक्षु जहाँ बीस पुरुषों वाला भिक्षु-संघ हो उसके पास जावे। यदि बीस पुरुषोंमेंसे एक भी कम वाला भिक्षु-संघ हो और वह उस भिक्षुको (अपराध) मुक्त करे तो वह भिक्षु मुक्त नहीं है, और वे भिक्षु लोग निन्दनीय हैं—यह वहाँ पर उचित (क्रिया) है।

आयुष्मानोंसे पूछता हूँ—क्या (आप लोग) इनसे शुद्ध हैं ? दूसरी बार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध हैं ? तीसरी बार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध हैं ? आयुष्मान् लोग शुद्ध हैं, इसीलिये चुप हैं—ऐसा मैं धारण करता हूँ।

संघादिसेस[४] समाप्त ॥२॥

योजन विस्तृत अंग और मगध देशोंकी आमदनीका सुख है, वहीं तुम निश्चल हो (वास करो···’। (५) अश्वजित् और (६) पुनर्वसुकसे कहा—‘आवुसो ! कीटागिर पर दोनों मेघोंकी कृपा है, वहाँ (अच्छे) सस्य (फसल) उत्पन्न होते हैं। वहाँ तुम निश्चल हो (वास करो)···।’

[२]देखो चुल्लवग्ग (§२।१) [३]देखो चुल्लवग्ग (§२।३)

[४]उत्तर राजपुत्रने सुवर्णका चैत्य बनवा महापद्म स्थविरके लिये भेजा। स्थविरने अविहित समझ (लेनेसे) इन्कार कर दिया (अट्ठकथा)।

§३—अनियत (१८-१९)

आयुष्मानो ! यह दो अपराध *अनियत* कहे जाते हैं—

(१) मैथुन

१—यदि कोई भिक्षु किसी स्त्रीके साथ अकेले, (ऐसे) एकान्त (=गुप्त) आसन वाले (मैथुन) कर्मके योग्य (स्थान)में बैठे जहाँ उसे श्रद्धालु उपासिका *पाराजिक, संघादिसेस*, या *पाचित्तिय* इन तीन बातोंमेंसे किसी एककी बात चलाये, (तो) बैठना स्वीकार करने पर (उस भिक्षुको) *पाराजिक, संघादिसेस, पाचित्तिय* इन तीन बातोंमेंसे जिसे वह विश्वास-पात्र उपासिका बतलाये उसी (अपराध)का (अपराधी) उसे बनाना चाहिये। यह अपराध (पाराजिक, संघादिसेस पाचित्तिय तीनोंमेंसे एकमें नियत न रहनेसे) *अनियत* कहा जाता है।

२—चाहे आसन गुप्त न हो और न (मैथुन) कर्मके योग्य हो; किन्तु (वहाँ) स्त्रीके साथ अनुचित बातें की जा सकती हों; (तो) जो (जहाँ पर कि) भिक्षु वैसे आसनपर किसी स्त्रीके साथ अकेले एकान्तमें बैठे। उसको देखकर विश्वास-पात्र उपासिका *संघादिसेस* और *पाचित्तिय* इन दो बातोंमेंसे किसी एककी बात चलाये; (तो) बैठना स्वीकार करने पर (उस भिक्षुको) *संघादिसेस* और *पाचित्तिय* इन दो बातोंमेंसे जिसका (दोषी) वह विश्वास-पात्र उपासिका बतलाये उसी (अपराध)का (अपराधी) उसे बनाना चाहिये। यह अपराध भी (*संघादिसेस, पाचित्तिय* दोनोंमेंसे किसीमें नियत न रहनेसे) अनियत है।

अनियत समाप्त ॥३॥

---

§४—निस्सग्गिय-पाचित्तिय[1] (२०-४७)

(१) कठिन चीवर और चीवर

आयुष्मानो ! यह तीस अपराध *निस्सग्गिय पाचित्तिय* कहे जाते हैं।

१—चीवरके[2] तैयार हो जानेपर *कठिन*[3] (चीवर)के मिल जानेपर अधिकसे अधिक दस दिन तक अतिरिक्त (=तीनसे अधिक) चीवरको (पास) रखना चाहिये। इस (अवधि)को अतिक्रमण करनेपर *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।

२—चीवरके तैयार हो जानेपर *कठिन*के मिल जानेपर भिक्षुओंकी सम्मतिके बिना यदि भिक्षु एक रात भी तीनों चीवरोंसे रहित रहे तो *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।

३—चीवरके तैयार हो जानेपर *कठिन*के मिल जानेपर यदि भिक्षुको बिना समयका चीवर (का कपड़ा) प्राप्त हो, तो इच्छा होनेपर भिक्षु उसे ग्रहण कर सकता है। ग्रहण करके (चीवर) शीघ्रही दस दिन तकमें बना लेना चाहिये। यदि उसको पूरा नहीं कर सकता तो प्रत्याशा होनेपर कमीकी पूर्तिके लिये एक मास भर भिक्षु उसे रख छोड़ सकता है। प्रत्याशा होनेपर इससे अधिक यदि रख छोड़े तो *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।

४—कोई भिक्षु *अज्ञातिका* (=जिससे कि उसका पिता या माताकी ओरसे सात पीढ़ो के भोतर तक कोई संबंध नहीं) भिक्षुणीसे (अपने) पुराने चीवर धुलवाये, रँगवाये या पिटवाये (कुन्दी कराये) तो *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।

५—जो कोई भिक्षु किसी *अज्ञातिक* भिक्षुणीके हाथसे बदलौनके अतिरिक्त चीवरको स्वीकार करे तो उसे *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।

६—जो कोई भिक्षु किसी *अज्ञातक* गृहस्थ या गृहस्थिनोसे खास अवस्थाके सिवाय चीवर देनेके लिये कहे तो उसे *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है। खास अवस्था है, जब कि भिक्षुका चीवर छिन गया हो या खो गया हो।

---

[1] जिन अपराधोंका प्रतिकार संघ, बहुतसे भिक्षु या एक भिक्षुके सामने स्वीकार कर उसे छोड़ देनेपर हो जाता है उन्हें निस्सग्गिय-पाचित्तिय (=नैस्सर्गिक-प्रायश्चित्तिक) कहते हैं।

[2] भिक्षुओंके तीन वस्त्र (१) अन्तरवासक (=लुङ्गी), (२) उत्तरासंग (=चादर), (३) संघाटी (=दोहरी चादर)

[3] वर्षावासके अंतमें गृहस्थों द्वारा एक संघाटी प्रदान की जाती है जिसे संघ अपनी ओरसे किसी सम्मानित भिक्षुको देता है। इसी चीवरको कठिन चीवर कहते हैं, क्योंकि इसकी प्राप्ति बहुत कठिन है।

७—उसी (भिक्षु)को यदि *अज्ञातक* गृहस्थ या गृहस्थिनियाँ यथेच्छ चीवर प्रदान करें तो उन चीवरोंमेंसे अपनी आवश्यकतासे एक कम चीवर लेवे[1]। उससे अधिक लेवे तो *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।

८—उस भिक्षुके लिये ही *अज्ञातक* गृहस्थ या गृहस्थिनियोंने चीवरके लिये धन तैयार कर रखा हो—इस चीवरके धनसे चीवर तैयार कर अमुक नामवाले भिक्षुको हम चीवर दान करेंगे। वहाँ यदि वह भिक्षु प्रदान करनेसे पहिले ही जाकर अच्छेकी इच्छासे (यह कहकर) चीवरमें हेर-फेर करावे—अच्छा हो आयुष्मान् मुझे इस चीवरके धनसे ऐसा-ऐसा चीवर बनवाकर प्रदान करें; तो उसे *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।

९—उसी भिक्षुके लिये दो *अज्ञातक* गृहस्थ या गृहस्थिनियोंने एक एक चीवरकेलिये धन तैयार करके रखा हो—हम चीवरोंके इन धनोंसे एक एक चीवर बनवाकर अमुक नाम वाले भिक्षुको चीवर-दान करेंगे। तब यदि वह भिक्षु प्रदान करनेके पहिले ही अच्छेकी इच्छासे (यह कहकर) चीवरमें हेर फेर करावे—अच्छा हो आयुष्मानो! मुझे इन प्रत्येक चीवरोंके धनसे दोनों मिलाकर इस-इस तरहका (एक) चीवर बनवा कर प्रदान करें, तो उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

१०—उसी भिक्षुके लिये राजा, राजकर्मचारी, ब्राह्मण या गृहस्थ चीवरके लिये (यह कहकर) धनको दूत द्वारा भेजें—इस चीवरके धनसे चीवर तैयारकर अमुक नामके भिक्षुको प्रदान करो। और वह दूत उस भिक्षुके पास जाकर यह कहे—भन्ते! आयुष्मानके लिये यह चीवरका धन आया है। इस चीवरके धनको आयुष्मान् स्वीकार करें। तो उस भिक्षुको उस दूतसे यह कहना चाहिये—आवुस! हम चीवरके धनको नहीं लेते। समयानुसार विहित चीवर ही को हम लेते हैं। यदि वह दूत उस भिक्षु को ऐसा कहे—क्या आयुष्मान्का कोई कामकाज करने वाला है? तो भिक्षुओ! उस भिक्षुको आश्रम-सेवक या उपासक—किसी कामकाज करने वालेको बतला देना चाहिये—आवुस! यह भिक्षुओंका कामकाज करनेवाला है। यदि वह दूत उस कामकाज करनेवालेको समझाकर, उस भिक्षुके पास आकर यह कहे—भन्ते! आयुष्मान्ने जिस कामकाज करनेवालेको बतलाया उसे मैंने समझा दिया। आयुष्मान् समयपर जायें। वह आपको चीवर प्रदान करेगा। भिक्षुओ! चीवरकी आवश्यकता रखनेवाले भिक्षुको उस काम-काज करनेवालेके पास जाकर दो तीन बार याद दिलानी चाहिये—आवुस! मुझे चीवरकी आवश्यकता है। दो तीन बार प्रेरणा करनेपर, याद दिलानेपर, यदि चीवरको प्रदान करे तो ठीक न प्रदान करे तो चार बार पाँच बार, अधिकसे अधिक छः बार तक (उसके यहाँ जाकर) चुपचाप खड़ा रहना चाहिये। चार बार, पाँच बार और अधिकसे अधिक छः बार तक चुपचाप खड़े रहनेपर यदि चीवर प्रदान करे तो ठीक, उससे अधिक कोशिश करके यदि उस चीवरको प्राप्त करे तो उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है। यदि न प्रदान करे तो जहाँसे चीवरका धन आया है वहाँ स्वयं जाकर या दूत भेजकर (कहलवाना चाहिये)—आप आयुष्यमानोंने भिक्षुके लिये जो चीवरका धन भेजा था वह उस भिक्षु

---

[1] उदाहरणार्थ—यदि उसके तीनों चीवर नष्ट हो गये हों तो वह दो चीवर ले सकता है, दोके नष्ट होनेपर एक ले सकता है, और यदि एक ही नष्ट हुआ हो तो एक भी नहीं ले सकता।

के कामका नहीं हुआ। आयुष्मानो! अपने (धन)को देखो, तुम्हारा (वह) धन नष्ट न हो जाय—यह वहाँपर उचित कर्तव्य है।

(इति) चीवर वग्ग ॥ १ ॥

---

(२) आसनके कपड़े आदि

११—जो कोई भिक्षु कौषेय[1]से मिश्रित आसनको बनवाये उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

१२—जो कोई भिक्षु स्वाभाविक काले भेड़के ऊनका आसन बनवाये उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

१३—नया आसन बनवाते वक्त भिक्षुको भेड़के ऊनमेंसे दो भाग शुद्ध काला, तीसरा भाग सफ़ेद और चौथा भाग कपिल वर्णका लेना चाहिये। यदि भिक्षु दो भाग शुद्ध काले, तीसरा भाग सफेद और चौथा भाग कपिल वर्णके भेड़के ऊनको न लेकर नया आसन बनवाये तो उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

१४—नया आसन बनवाकर भिक्षुको छः वर्ष तक धारण करना चाहिये। यदि छः वर्षके पहिले ही उस आसनको छोड़े या बिना (ही) छोड़े भिक्षुओंकी सम्मतिके बिना दूसरे नये आसनको बनवाये तो उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

१५—बिछानेका आसन बनवाते वक्त भिक्षुको पुराने आसनके छोरसे बुद्धके बित्ते भर दुर्वर्ण करनेके लिये लेना चाहिये। यदि भिक्षु पुराने आसनके छोरसे बुद्धके बित्ते भर बिना लिये नया आसन बनवाये तो उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

१६—रास्तेमें जाते वक्त यदि भिक्षुको भेड़की ऊन प्राप्त हो तो इच्छा होनेपर भिक्षु ले सकता है। (किन्तु) लेकर लेचलनेवाला न मिलनेपर तीन योजन भर तकही (अपने) ले जा सकता है। लेचलनेवालेके न होनेपर भी यदि उससे आगे लेजाय तो उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

१७—जो कोई भिक्षु *अज्ञातिका* भिक्षुणीसे भेड़के ऊनको धुलवाये, रंगवाये या जटा खुलवाये, उसको *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

(३) चाँदी-सोने रुपये-पैसेका व्यवहार

१८—जो कोई भिक्षु सोना या रजत[2] (चाँदी आदिके सिक्के)को ग्रहण करे या ग्रहण करवाये या रखे हुए का उपयोग करे तो उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

[1] कीड़ेके अंडेसे उत्पन्न होने वाले सूत—रेशम, अंडी, टसर आदि।

[2] रजत कार्षापण (सिक्के)का नाम है जो ताँबेके मापक (=माशा), दारुके माशा और लाहेके माशोंके रूपमें व्यवहृत होता था। अट्ठकथामें सोने, चाँदी, ताँबे, लकड़ी, हड्डी, चमड़े, लाहके सिक्कोंका भी जिक्र आता है।

१९—जो कोई भिक्षु नाना प्रकारके रूपयों (=*रूपिय* =सिक्का) का व्यवहार[1] करे ! उसको *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

(४) क्रय-विक्रय

२०—जो कोई भिक्षु नाना प्रकारके खरीदने बेचनेके[2] कामको करे उसको *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

(इति) कोसिय वग्ग ॥ २ ॥

(५) पात्र

२१—फाज़िल (भिक्षा) पात्रको अधिकसे अधिक दस दिन तक रखना चाहिये। इसका अतिक्रमण करनेपर *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

२२—जो कोई भिक्षु पाँचसे कम (जगह) टाँके (छेद वाले) पात्र[3]से दूसरे नये पात्रको बदले उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है। उस भिक्षुको वह पात्र भिक्षु-परिषद्को दे देना चाहिये। और जो (पात्र) भिक्षु-परिषद्का अन्तिम पात्र है उस भिक्षुको (यह कह कर) देना चाहिये—भिक्षु ! यह तेरे लिये पात्र है। जब तक न टूटे तब तक (इसे) धारण करना।—यह यहाँ उचित (प्रतिकार) है।

(६) भैषज्य

२३—भिक्षुको घी, मक्खन, तेल, मधु, खाँड़ (...) आदि रोगी भिक्षुओंके सेवन करने लायक़ पथ्य (=भैषज्य)को ग्रहण कर अधिकसे अधिक सप्ताह भर रखकर भोग कर लेना चाहिये। इसका अतिक्रमण करनेपर उसे *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।[4]

---

[1] महा अशांतिके कारण (उस समय) एक ही भिक्षुको महानिद्देस (ग्रंथ) कंठस्थ था, तब चारों निकायोंके स्मरण करनेवाले तिष्य (= तिस्स) स्थविरके उपाध्याय महात्रिपिटक स्थविरने महारक्षित स्थविरसे कहा—'आवुस ! महारक्षित इस (भिक्षु)के पाससे महानिद्देस को सीख लो'। (अट्ठकथा)

[2] महासुम्म स्थविरके उपाध्यायका नाम अनुरुद्ध स्थविर था। उन्होंने अपने इस प्रकार के पात्रको घीसे भरकर संघको दिया। त्रिपिटक चूल-नाग स्थविरके शिष्योंके पास भी इस प्रकारका पात्र था (अट्ठकथा)।

[3] आधे आढक भर भात ग्रहण करते थे = मगधकी दो नाली चावलका भात ग्रहण करते थे। मगधकी नाली साढ़े बारह पलकी होती है—यह अन्धक-अट्ठकथामें कहा है। सिंहलद्वीप में प्रचलित नाली बड़ी होती है, तमिल (देश) की नाली (अधिक) छोटी, मगधकी नाली (मध्यम) प्रमाणकी होती है। उस मगधकी डेढ़ नालीके बराबर एक सिंहल-नाली होती है—यह महाअट्ठकथामें कहा है।··· ··· ··· ···नाली भर भात=मगधकी नालीभरका भात। प्रस्थभरका भात = मगधकी नालीसे डेढ़ (= उपड्ढ) नाली भरका भात (अट्ठकथा)।

[4] उपतिष्य स्थविरसे शिष्योंने पूछा···—'भन्ते ! मक्खन, दहीकी गुलिका और छाछ की बूँदे एकट्ठा पकानेमें मिल जानेपर तेज-वर्द्धक, रोग-नाशक हैं ? 'हाँ आवुसो !' स्थविरने

(७) चीवर

२४—ग्रीष्म (ऋतु)[1] के एक मास शेष रह जानेपर भिक्षुको *वर्षिकशाटिका*[2] चीवरके लिये यत्न करना चाहिये। ग्रीष्मका आधा मास रह जानेपर पहनना चाहिये। ग्रीष्मके एक मास शेष रहनेसे पहिले यदि *वर्षिकशाटिका* चीवरकी खोज पड़े; और ग्रीष्मके आधा मास शेष रहनेसे पहिले पहिने तो *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।

२५—जो कोई भिक्षु (दूसरे) भिक्षुको स्वयं चीवर देकर फिर कुपित और नाराज़ हो, छीने या छिनवाये उसे *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।

२६—जो कोई भिक्षु स्वयं सूत माँगकर कोली (= जुलाहा)से चीवर बुनवाये उसको *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।

२७—उसी भिक्षुके लिये *अज्ञातक* गृहस्थ या गृहस्थिनी कोलीसे चीवर बुनवायें और वह भिक्षु प्रदान करनेसे पहिले ही कोलीके पास जाकर (यह कह) चीवरमें हेर फेर कराये—आवुस ! यह चीवर मेरे लिये बुना जा रहा है। इसे लंबा-चौड़ा बनाओ, घना, अच्छी तरह तना, ख़ूब अच्छी तरह बुना, अच्छी तरह मला हुआ और अच्छी तरह छाँटा हुआ बनाओ तो हम भी आयुष्मानोंको कुछ दे देंगे; और नहीं तो कुछ भिक्षा से ही; तो उसे *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।

२८—कार्त्तिककी त्रैमासी पूर्णिमाके आनेसे दस दिन पहिलेही यदि भिक्षुको फ़ाजिल चीवर प्राप्त हो तो (उसे) फ़ाजिल समझते हुए भिक्षुको ग्रहण करना चाहिए। ग्रहणकर *चीवर-काल*[3] तक रखना चाहिये। उसके बाद यदि रखे तो उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

२९—वर्षावास करते हुए कार्तिक पूर्णिमा तक शंका-युक्त=भय-सहित, आरण्यक (=वन) आश्रमोंमें रहते हुए भिक्षु चाहे तो तीन चीवरोंमेंसे एक चीवरको रख दे सकता है; यदि उसे उस चीवरके चलेजानेका डर हो। (किन्तु) उस भिक्षुको अधिकसे अधिक छः रात तक उस चीवरके विना रहना चाहिये। यदि भिक्षुओंकी सम्मतिके विना उससे अधिक (समय तक चीवरके) विना रहे तो उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

कहा। महासुम्म स्थविरने कहा—विहित मांसकी चरबी आमिष-युक्त भोजनके साथ (ग्रहण की) जा सकती है। और दूसरी (चीजें) निरामिष भोजनके साथ किन्तु महापद्म स्थविरने—यह कुछ नहीं—कह खंडन कर कहा—'वातरोगी भिक्षु पंचमूलके कषायसे यवागू (= खिचड़ी)में भालू और सूअरके तेल आदिको डाल पीते हैं, और वह तेज देनेवाली रोगनाशक होती है; (इसलिये) वह (ग्रहण की जा) सकती है। (अट्ठकथा)

[1] आषाढ़ पूर्णिमा तक ग्रीष्मका अन्तिम मास होता है और बादके प्रतिपद्से कार्तिक पूर्णिमा तक वर्षा। (अट्ठकथा)

[2] बरसातमें कपड़ोंके जल्दी न सूखनेसे भिक्षु बरसात भरके लिये लुङ्गीके तौरपर पहनने लायक एक और चीवर ले सकता है, इसे वर्षिकशाटिका कहते हैं।

[3] आश्विन पूर्णिमाके बादकी प्रतिपदासे कार्त्तिक-पूर्णिमा तकका समय।

(८) संघके लाभमें भाँजी मारना

३०—जो कोई भिक्षु संघके लिये प्राप्त वस्तु (=लाभ)को अपने लिये परिवर्तन कराले उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

(इति) पत्त वग्ग ॥३॥

आयुष्मानो ! तीस *निस्सग्गिय पाचित्तिय* दोष कह दिये गये। आयुष्मानोंसे पूछता हूँ—क्या (आपलोग) इनसे शुद्ध हैं ? दूसरी बार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध हैं ? तीसरी बार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध हैं ? आयुष्मान् लोग शुद्ध हैं, इसीलिये चुप हैं—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ।

निस्सग्गिय-पाचित्तिय समाप्त ॥४॥

---

§ ५—पाचित्तिय (५०-१४१)

आयुष्मानो ! यह बानवे *पाचित्तिय* दोष कहे जाते हैं।

(१) भाषण-संबंधी

१—जानबूझकर झूठ बोलनेमें *पाचित्तिय* है।

२—*ओमसवाद* (=वचन मारने)में *पाचित्तिय* है।

३—भिक्षुओंकी चुगली करनेमें *पाचित्तिय* है।

४—भिक्षुका भिक्षु-भिन्न (=*अनुपसंपन्न*)को पदोंके क्रमसे *धर्म* (=बुद्धोपदेश) बँचवानेमें *पाचित्तिय* है।

(२) साथ लेटना

५—जो कोई भिक्षु अनुपसंपन्नके साथ दो तीन रातसे अधिक एकसाथ शय्या रक्खे तो *पाचित्तिय* है।

६—जो भिक्षु स्त्रीके साथ शयन करे उसे *पाचित्तिय* है।

(३) धर्मोपदेश

७—विज्ञ पुरुषको छोड़ जो कोई भिक्षु स्त्रीको पाँच छः वचनोंसे अधिक धर्मका उपदेश दे उसे *पाचित्तिय* है।

(४) दिव्य-शक्ति प्रदर्शन

८—जो कोई भिक्षु *अनुपसंपन्न*को दिव्य-शक्तिके बारेमें यथार्थ भी कहे उसे *पाचित्तिय* है।

(५) अपराध प्रकाशन

९—जो कोई भिक्षु (किसी) भिक्षुके *दुट्ठुल*[1] अपराधको भिक्षुओंकी सम्मतिके विना *अनुपसम्पन्न* (पुरुष)से कहे उसे *पाचित्तिय* है।

(६) जमीन खोदना

१०—जो कोई भिक्षु जमीन खोदे या खुदवाये उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) मुसावाद वग्ग ॥१॥

[1] चार पाराजिका और तेरह संघादिसेस दोष दुट्ठुल कहे जाते हैं।

(७) वृक्ष काटना

११—भूत-ग्राम (=तृण वृक्ष आदि)के गिरानेमें *पाचित्तिय* है।

(८) संघके पूछनेपर चुप रहना

१२—(संघके पूछनेपर) उत्तर न दे हैरान करनेमें *पाचित्तिय* है।

(९) निंदना

१३—निंदा और बदनामी करनेमें *पाचित्तिय* है।

(१०) संघकी चीजमें वेपर्वाही

१४—जो कोई भिक्षु संघके मंच, पीढ़ा, बिस्तरा, और गद्देको खुली जगहमें बिछा या बिछवाकर वहाँसे जाते वक्त उन्हें न उठाता है न उठवाता है, या विना पूछेही चला जाता है उसे *पाचित्तिय* है।

१५—जो कोई भिक्षु, संघके *विहार* (=आश्रम) में बिछौना बिछाकर या बिछवा-कर वहाँसे जाते वक्त उसे न उठाता है, न उठवाता है, या विना पूछेही चला जाता है, उसे *पाचित्तिय* है।

१६—जो कोई भिक्षु, जानकर संघके *विहार*में पहिलेसे आये भिक्षुका विना ख्याल किये, यही सोचकर कि दूसरा नहीं (इस तरह) आसन लगाये कि जिससे (पहलेवाले भिक्षुको) दिक्कत हो और वह चला जाये, तो उसे *पाचित्तिय* है।

१७—जो कोई भिक्षु कुपित और असंतुष्ट हो (दूसरे) भिक्षुको संघके विहारसे निकाले या निकलवाये उसे *पाचित्तिय* है।

१८—जो कोई भिक्षु संघके विहारमें ऊपरके कोठेपर पैर धवधवाते हुए मंच (=चारपाई) या पीठपर एकदमसे बैठे या लेटे उसे *पाचित्तिय* है।

१९—भिक्षुको स्वामीवाला (=महल्लक) विहार बनवाते समय, दरवाजेमें किवाड़ोंके बंद करने और जंगलेके घुमाने या लीपनेके समय हरियालीसे अलग खड़ा हो (वैसा) करना चाहिये। उससे आगे यदि हरियालीपर खड़े होकर करे तो *पाचित्तिय* है।

(११) बिना छना पानी पीना आदि

२०—जो कोई भिक्षु जानकर प्राणी-सहित पानीसे, तृण या मिट्टीको सींचे या सिंच-वाये, उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) भूत-गाम वग्ग ॥२॥

(१२) भिक्षुणियोंको उपदेश

२१—जो कोई भिक्षु (संघकी) सम्मतिके विना भिक्षुणियोंको उपदेश दे, उसे *पाचित्तिय* है।

२२—सम्मति होनेपर भी जो भिक्षु सूर्यास्तके बाद भिक्षुणियोंको उपदेश दे, उसे *पाचित्तिय* है।

२३—जो कोई भिक्षु सिवाय खास अवस्थाके भिक्षुणि-आश्रममें जाकर भिक्षुणियोंको उपदेश करे तो पाचित्तिय है। विशेष अवस्था है, भिक्षुणीका रुग्ण होना।

२४—जो कोई भिक्षु ऐसा कहे—आमिष (=भोजन वस्त्र आदि)के लिये भिक्षु, भिक्षुणियोंको उपदेश करते हैं; उसे *पाचित्तिय* है।

(१३) भिक्षुणीके सम्बन्धमें

२५—जो कोई भिक्षु *अज्ञातिका* भिक्षुणीको परिवर्तनके विना (और तरहसे) चीवर दे, उसे *पाचित्तिय* है।

२६—जो कोई भिक्षु *अज्ञातिका* भिक्षुणीके चीवरको सिये या सिलवाये, उसे *पाचित्तिय* होता है।

२७—जो कोई भिक्षु खास अवस्थाको छोड़ भिक्षुणीके साथ सलाह करके, चाहे दूसरेही गाँव तक, एक रास्तेसे जाय, उसे *पाचित्तिय* है। विशेष अवस्था है—जब कि वह मार्ग काफ़िले (=सार्थ)का है या भय और शङ्का-पूर्ण है।

२८—जो कोई भिक्षु, भिक्षुणीके साथ सलाह करके, तिर्छे उतारने वालीको छोड़, (स्रोतके) ऊपर जानेवाली या नीचे जानेवाली नाव[1] पर चढ़े, उसे *पाचित्तिय* है।

२९—जो कोई भिक्षु जानकर भिक्षुणीके पकवाये भोजनको, सिवाय गृहस्थके विशेष समारोहके, खाये, उसे *पाचित्तिय* है।

३०—जो कोई भिक्षु भिक्षुणीके साथ अकेले एकान्तमें बैठे, उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) भिक्खुनोवाद-वग्ग ॥३॥

(१४) भोजन सम्बन्धो

३१—नीरोग भिक्षुको (एक) निवास-स्थानमें एक ही भोजन ग्रहण करना चाहिये। इससे अधिक ग्रहण करे, उसे पाचित्तिय है।

३२—सिवाय विशेष अवस्थाओंके *गण*के साथ भोजन करनेमें *पाचित्तिय* है। विशेष अवस्थाएँ ये हैं—रोगी होना, चीवर-दान, चीवर बनाना, यात्रा, नावकी यात्रा *महासमय* (=बुद्ध आदिके दर्शनके लिये जाना) और श्रमणों (=सभी मतके साधुओं)के भोजनका समय।

३३—सिवाय विशेष समयके बंधानवाले भोजनके करनेमें *पाचित्तिय* है। विशेष समय है—रोग चीवर-दान और चीवर बनाना।

३४—घरपर जानेपर यदि (गृहस्थ) भिक्षुको आग्रहपूर्वक पूआ (= पाहुर), संथ (= सट्टा) यथेच्छ प्रदान करे तो इच्छा होनेपर पात्रके मेखला तक भरा ग्रहण करे। उससे अधिक ग्रहण करे, उसे *पाचित्तिय* है। पात्रको मेखला तक भरकर ग्रहणकर वहाँसे निकल भिक्षुओंमें बाँटना चाहिये—यह उस जगह उचित है।

३५—जो कोई भिक्षु भोजन कर लेनेपर, तृप्त हो जाने[2] पर, खादनीय या भोजनीयको अधिक खाये या भोजन करे, उसे *पाचित्तिय* है।

---

[1] यहाँ केवल नदियोंसे ही नहीं महातीर्थ पट्टन (= बन्दरगाह)से जो ताम्रलिप्ति या सुवर्णभूमि जावे, उसे भी आपत्ति नहीं है। सभी अट्ठकथाओंमें नदी सम्बन्धी आपत्तिका ही विचार किया गया है, समुद्र सम्बन्धी नहीं (—अट्ठकथा)।

[2] मांसको अलग कर मांसके रस (=शोरवा)को ग्रहण करो—यह कहनेपर, यदि उस

३६—जो कोई भिक्षु (दूसरे) भिक्षुको, खा लेनेपर, तृप्त हो जानेपर, अधिक खादनीय भोजनीयको आग्रह पूर्वक दे—"अहो भिक्षु ! खा, भोजन कर"--यह सोच कि (इसके इस) खानेको लेनेपर (पीछे मैं आक्षेप करूँगा)—उसे *पाचित्तिय* है।

३७—जो कोई भिक्षु *विकाल* (= मध्याह्नके बाद)में खाद्य, भोज्य खाये, उसे *पाचित्तिय* है।

३८—जो कोई भिक्षु रख छोड़े खाद्य, भोज्यको खाये, उसे *पाचित्तिय* है।

३९—घी, मक्खन, तेल, मधु, खाँड़, मछली, मांस, दूध, दही (आदि) जो अच्छे भोजन हैं उन्हें यदि भिक्षु नीरोग होते हुए अपने लिये माँगकर खाये, उसे *पाचित्तिय* है।

४०—जो कोई भिक्षु जल और दन्तधावनको छोड़ विना दिये मुखमें जाने लायक आहारको ग्रहण करे, उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) भोजन वग्ग ॥४॥

४१—जो कोई भिक्षु *अचेलक* (= नंगे साधू), परिव्राजक या परिव्राजिकाको अपने हाथसे खाद्य, भोज्य देवे तो *पाचित्तिय* है।

४२—जो कोई भिक्षु (दूसरे) भिक्षुको ऐसा कहे—"आओ आवुस ! गाँव या कस्बेमें भिक्षाटनके लिये चलें।" फिर उसे दिलवाकर या न दिलवाकर प्रेरित करे—"आवुस ! जाओ, तुम्हारे साथ मुझे बात करना या बैठना अच्छा नहीं लगता।"—दूसरा (कारण) न होने पर, सिर्फ इतने ही कारणसे *पाचित्तिय* है।

४३—जो कोई भिक्षु भोजवाले कुलमें प्रविष्ट हो बैठकी (बैठक बाजी) करता है उसे *पाचित्तिय* है।

४४—जो कोई स्त्रीके साथ एकान्त पर्देवाले आसनमें बैठे तो *पाचित्तिय* है।

४५—जो कोई भिक्षु स्त्रीके साथ अकेले, एकान्तमें बैठे उसे *पाचित्तिय* है।

४६—सिवाय विशेष अवस्थाके, निमंत्रित होनेपर यदि भिक्षु भोजन रहनेपर भी विद्यमान भिक्षुको विना पूछे भोजनके पहिले या पीछे गृहस्थोंके घरमें गमन करे तो *पाचित्तिय* है। विशेष अवस्था है—चीवर बनाने और चीवर-दान (का समय)।

४७—नीरोग भिक्षुको *पुनः प्रवारणा*[१] और *नित्य*[१]*-प्रवारणा*के सिवाय चातुर्मासके भोजन आदि पदार्थ (=प्रत्यय)के दानको सेवन करना चाहिये। उससे बढ़कर यदि सेवन करे तो *पाचित्तिय* है।

में सरसों भरका मांस का टुकड़ा हो, तो उसे छोड़नेपर प्रवारणा (=भोजनकी पूर्ति) होती है; यदि छान लिया गया हो, तो (लिया जा) सकता है—यह अभय स्थविरने कहा है। मांस-रसके लिये पूछनेपर महास्थविरने—एक मुहूर्त ठहरो—कह, 'प्यालेको आवुसो !—लाओ'—कहा। यहाँ कैसा है—पूछनेपर महासुम्म स्थविरने—लानेवालेका गमन टूट गया इसलिये प्रवारणा हो गई—कहा। महापद्म स्थविरने—'यह कहाँ जाता है ? इसका गमन कैसा है ?—ऐसा ग्रहण करनेपर भी प्रवारणा होती है—यह कहकर प्रवारणा नहीं करता है'—कहा (अट्ठकथा)।

[१] रोगी होनेपर पथ्यादिका दान पुनः प्रवारणा और नित्य-प्रवारणा है।

(१५) सेनाका तमाशा

४८—जो कोई भिक्षु वैसे किसी कामके विना सेना प्रदर्शनको देखने जाये तो *पाचित्तिय* है।

४९—यदि उस भिक्षुको सेनामें जानेका कोई काम हो तो उसे दो तीन रात सेनामें बसना चाहिये। उससे अधिक बसे तो *पाचित्तिय* है।

५०—दो तीन रात सेनामें बसते हुए (भी) यदि भिक्षु रण-क्षेत्र (= *उद्योधिका*), परेड (=*बलाग्र*), *सेना-व्यूह* या *अनीक* (= हाथी घोड़ा आदिकी सेनाओंकी क्रमसे स्थापना)को देखने जाये, उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) अचेलक वग्ग ॥५॥

(१६) मद्य-पान

५१—सुरा और कच्ची शराब पीनेमें *पाचित्तिय* है।

(१७) हँसी खेल

५२—उँगलीसे गुदगुदानेमें *पाचित्तिय* है।

५३—पानीमें खेल करनेमें *पाचित्तिय* है।

५४—(व्यक्ति या वस्तुके) तिरस्कार करनेमें *पाचित्तिय* है।

५५—जो कोई भिक्षु (दूसरे) भिक्षुको डरवाये, उसे *पाचित्तिय* है।

(१८) आग तापना

५६—वैसी जरूरत न होते जो कोई नीरोग भिक्षु तापनेकी इच्छासे आग जलाये या जलवाये, उसे *पाचित्तिय* है।

(१९) स्नान

५७—जो कोई भिक्षु सिवाय विशेष अवस्थाके आध माससे पहले नहाये तो *पाचित्तिय* है। विशेष अवस्था यह हैं—ग्रीष्मके पीछेके डेढ़ मास और वर्षाका प्रथम मास, यह ढाई मास और गर्मीका समय, जलन होनेका समय, रोगका समय, काम (=लीपने पोतने आदिका समय), रास्ता चलनेके समय तथा आँधी-पानीका समय।

(२०) चीवर पात्र

५८—नया चीवर पानेपर नीला, काला या कीचड़ इन तीन दुर्वर्ण करनेवाले (पदार्थों)मेंसे एकसे बदरंग (= दुर्वर्ण) करना चाहिये। यदि भिक्षु तीन बदरंग करने वाले (पदार्थों)मेंसे किसी एकसे नये चीवरको बिना बदरंग किये उपयोग करे, उसे *पाचित्तिय* है।

५९—जो कोई भिक्षु (किसी) भिक्षु, भिक्षुणी, *शिक्षमाणा*,[1] श्रामणेर या श्रामणेरी को, स्वयं चीवर प्रदान कर विना लौटाने (की सम्मति पाये) उपयोग करे, उसे *पाचित्तिय* है।

---

[1] जो भिक्षुणी होनेकी उम्मीदवारी कर रही हो।

६०—जो कोई भिक्षु (दूसरे) भिक्षुके पात्र, चीवर, आसन, सुई रखनेकी फोंफी (सूचीघर) या कसरबन्दको हटाकर चाहे परिहासके लिये ही क्यों न रक्खे, *पाचित्तिय* है।

(इति) सुरापान वग्ग ॥६॥

(२१) प्राणिहिंसा

६१—जो कोई भिक्षु जानकर प्राणीके जीवको मारे, उसे *पाचित्तिय* है।

६२—जो कोई भिक्षु जानकर प्राणि-युक्त जलको पीये, उसे *पाचित्तिय* है।

(२२) झगड़ा बढ़ाना

६३—जो कोई भिक्षु जानते, धर्मानुसार फैसला हो गये मामलेको फिरसे चलवाने के लिये प्रेरणा करे, उसे *पाचित्तिय* है।

(२३) अपराध छिपाना

६४—जो कोई भिक्षु जानते हुए (दूसरे) भिक्षुसे *दुट्ठुल्ल*[1] अपराधको छिपाये, उसे *पाचित्तिय* है।

(२४) कम आयुवालेकी उपसम्पदा

६५—यदि भिक्षु जानते हुए बीस वर्षसे कमके व्यक्तिको *उपसम्पन्न* (= भिक्षु वनाना) करें तो वह व्यक्ति अन्-उपसम्पन्न (समझा जाय), वह भिक्षु निन्दनीय हैं—यह इस (अपराध)में *पाचित्तिय* (=प्रायश्चित्त) है।

(२५) यात्राके साथी

६६—जो कोई भिक्षु जानते हुए सलाह करके चोरोंके काफिलेके साथ एक रास्तेसे, चाहे दूसरे गाँव ही तक, जाये, उसे *पाचित्तिय* है।

६७—जो कोई भिक्षु सलाह करके स्त्रीके साथ एक रास्तेसे, चाहे दूसरे गाँव तक ही, जाय, उसे *पाचित्तिय* है।

(२६) बुरी धारणा

६८[2]—जो कोई भिक्षु ऐसा कहे—मैं भगवानके धर्मको ऐसे जानता हूँ, कि, भगवान्‌के जो (निर्वाण आदिके) विघ्नकारक कार्य कहे हैं, उनके सेवन करनेपर भी वह विघ्न नहीं कर सकते। तो (दूसरे) भिक्षुओंको उसे ऐसा कहना चाहिये—"मत आयुष्मान्! ऐसा कहो। मत भगवानपर झूठ लगाओ। भगवानपर झूठ लगाना अच्छा नहीं है। भगवान् ऐसा नहीं कह सकते। भगवान्‌ने विघ्नकारक कार्योंको अनेक प्रकारसे विघ्न करने वाले कहा है। सेवन करनेपर वह विघ्न करते हैं—कहा है।" इस प्रकार भिक्षुओंके कहने पर वह भिक्षु यदि ज़िद् करे तो भिक्षुओंको तीन वार तक उसे छोड़नेके लिये उस भिक्षुको कहना चाहिये। यदि तीन वार कहे जानेपर उसे छोड़दे तो अच्छा; यदि न छोड़े तो *पाचित्तिय* है।

---

[1] चार पाराजिक और तेरह संघादिसेस। [2] देखो 'मज्झिम निकाय' १।३।२, पृष्ठ ८४।

६९—यदि कोई भिक्षु जानते हुये उक्त (प्रकारकी बुरी) धारणावाले (तथा) धर्मानुसार (मत) परिवर्तन न करनेवाले उक्त विचारको न छोड़े भिक्षुके साथ सह-भोज, सह-वास या सह-शय्या करता है, उसे *पाचित्तिय* है।

७०—(क) *श्रमणोद्देश*[1] भी यदि ऐसा कहे—"मैं भगवान्‌के धर्मको ऐसे जानता हूँ कि भगवान्‌ने जो (निर्वाण आदिके) अन्तरायिक (=विघ्नकारक) कार्य कहे हैं, उनके सेवन करनेपर भी वह विघ्न नहीं कर सकते"; तो (दूसरे) भिक्षुओंको उसे ऐसा कहना चाहिये—"आवुस! श्रमणोद्देश! मत ऐसा कहो। मत भगवान्‌पर झूठ लगाओ। भगवान्‌पर झूठ लगाना अच्छा नहीं है। भगवान् ऐसा नहीं कह सकते। भगवान्‌ने विघ्नकारक कार्योंको अनेक प्रकारसे विघ्न करनेवाले कहा है। सेवन करनेपर वे विघ्न करते हैं—कहा है।" इस प्रकार भिक्षुओं द्वारा कहे जानेपर यदि वह श्रमणोद्देश ज़िद् करे तो भिक्षु श्रमणोद्देशसे ऐसा कहें—"आवुस श्रमणोद्देश! आजसे तुम उन भगवान्‌को अपना शास्ता (=उपदेशक=गुरु) न कहना; और जो दूसरे श्रमणोद्देश दो रात, तीन रात तक भिक्षुओंके साथ रहते हैं वह (साथ रहना) भी तुम्हारे लिये नहीं है। चलो, (यहाँसे) निकल जाओ!"

(ख) जो कोई भिक्षु जानते हुए, इस प्रकार निकाले हुए श्रमणोद्देशको, सेवामें रक्खे, (उसके साथ) सहभोजन करे, सह-शय्या करे, उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) सप्पाणक वग्ग ॥७॥

(२७) धार्मिक बातका अस्वीकारना

७१—जो कोई भिक्षु, भिक्षुओंके धार्मिक बात कहनेपर इस प्रकार कहे—आवुस! मैं तबतक इन भिक्षु-नियमों (=शिक्षा-पदों)को नहीं सीखूँगा जबतक कि दूसरे चतुर *विनय-धर*[2] भिक्षुको न पूछ लूँ; उसे *पाचित्तिय* है। भिक्षुओ! सीखनेवाले भिक्षुको जानना चाहिये, पूछना चाहिये, प्रश्न करना चाहिये—यह उचित है।

(२८) प्रातिमोक्ष

७२—जो कोई भिक्षु *पातिमोक्ख* (=प्रातिमोक्ष)की आवृत्ति करते वक्त ऐसा कहे—इन छोटे छोटे शिक्षा-पदोंकी आवृत्तिसे क्या मतलब जो सन्देह, पीड़ा और क्षोभ पैदा करने वाले हैं। (इस प्रकार) शिक्षा-पदके विरुद्ध कथन करनेमें *पाचित्तिय* होता है।

७३—जो कोई भिक्षु प्रत्येक आधे मास *पातिमोक्ख*की आवृत्ति करते समय ऐसा कहे—"आवुस! यह तो मैं अब जानता हूँ कि सूत्रोंमें आये, सूत्रों द्वारा अनुमोदित इस धर्मकी भी प्रति पन्द्रहवें दिन आवृत्तिकी जाती है। यदि दूसरे भिक्षु उस भिक्षुको पूर्वसे बैठा जानें; दो तीन या अधिक *पातिमोक्ख*की आवृत्ति कीजानेपर भी (उसको वैसेही पायें); तो बेसमझीके कारण वह भिक्षु मुक्त नहीं हो सकता। जो कुछ अपराध उसने किया है उसका धर्मानुसार प्रतिकार कराना चाहिये और आगे उसपर मोहका आरोप करना चाहिये—आवुस! तुझे अलाभ है, तुझे बुरा लाभ हुआ है जो कि *पातिमोक्ख*को आवृत्ति करते

[1] भिक्षु बननेका उम्मेदवार। [2] जिसको विनयपिटक कंठस्थ है।

वक्त तू अच्छी तरह दृढ़ कर मनमें धारण नहीं करता। उस मोहके करनेपर (=मूढ़तामें) *पाचित्तिय* है।

(२९) मारना धमकाना

७४—जो कोई भिक्षु कुपित, असंतुष्ट हो (दूसरे) भिक्षुको पीटता है, उसे *पाचित्तिय* है।

७५—जो कोई भिक्षु कुपित, असंतुष्ट हो (दूसरे) भिक्षुको (मारनेका आकार दिखलाते हुए) धमकावे, उसे *पाचित्तिय* है।

(३०) संघादिसेसका दोषारोप

७६—जो कोई भिक्षु (दूसरे) भिक्षुके ऊपर निर्मूल *संघादिसेस* (दोष)का लांछन लगाये, उसे *पाचित्तिय* है।

(३१) भिक्षुको दिक् करना

७७—यदि कोई भिक्षु (दूसरे) भिक्षुको और नहीं सिर्फ़ इसी मतलबसे कि इसको क्षण भर बेचैनी होगी जान बूझकर संदेह उत्पन्न करे, उसे *पाचित्तिय* है।

७८—यदि कोई भिक्षु—दूसरे नहीं सिर्फ़ इसी मतलबसे कि जो कुछ यह कहेंगे उसे सुनूँगा—कलह करते, विवाद करते, झगड़ते भिक्षुओंके (झगड़ेको सुननेके लिये) कान लगाता है, उसे *पाचित्तिय* है।

(३२) सम्मति-दान

७९—यदि कोई भिक्षु धार्मिक कर्मोंके लिये अपनी सम्मति (=छन्द) देकर पीछे मुकर जाता है, उसे *पाचित्तिय* है।

८०—यदि कोई भिक्षु, संघके फैसला करनेकी बातमें लगे रहते वक्त बिना (अपना) छन्द (=सम्मति=vote) दियेही आसनसे उठकर चला जाय, उसे *पाचित्तिय* है।

८१—जो कोई भिक्षु सारे संघके साथ (एकमत हो) चीवर देकर पीछे पलट जाता है—मुँह देखी करके (यह) भिक्षु लोग संघके धनको बाँटते हैं—उसे *पाचित्तिय* है।

(३३) सांघिक लाभमें भाँजी मारना

८२—जो कोई भिक्षु जानते हुए संघके लिये मिले हुए लाभको (एक) व्यक्ति (के लाभके रूपमें) परिणत कराये, उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) सहधम्मिक वग्ग ॥८॥

(३४) राजप्रासादमें प्रवेश

८३—जो कोई भिक्षु *मूर्द्धाभिषिक्त* (=Sovereign) क्षत्रिय राजाके (राजप्रासाद)में राजा और रानीके शयनागारसे बाहर न निकले समय, बिना पहिले सूचना दिये *इन्द्र-कील*[1] (=इन्दखील)के आगे बढ़े, उसे *पाचित्तिय* है।

---

[1] शयनागारका द्वार-स्तंभ।

(३५) बहुमूल्य वस्तुका हटाना

८४—(क) जो कोई भिक्षु रत्न या रत्नके समान (पदार्थ)को *आराम* और सराय (=आवसथ)को छोड़, अन्यत्र लेजाये या लिवाजाये, उसे *पाचित्तिय* है।

(ख) रत्न या रत्नके समान (पदार्थ)को *आराम* या *आवसथ*में लेकर या लिवाकर भिक्षुको उसे (एक जगह) रख देना चाहिये, कि जिसका होगा वह ले जायगा।—यह यहाँ उचित है।

(३६) अपराह्णको गाँवमें जाना

८५—जो कोई भिक्षु विद्यमान भिक्षुको विना पूछे *विकाल*में (=मध्याह्नके बाद) गाँवमें विना किसी वैसे अत्यन्त आवश्यक कामके प्रवेश करे तो *पाचित्तिय* है।

(३७) सूचीघर

८६—जो कोई भिक्षु हड्डी, दन्त या सींगके *सूचीघर*को बनवाये तो (उस सूचीघर का) तोड़ देना *पाचित्तिय* (=प्रायश्चित्त) है।

(३८) चौकी, चारपाई

८७—नई चारपाई या तख्त (=पीठ)को बनवाते वक्त भिक्षु उन्हें, निचले ओटका छोड़ बुद्धके अंगुलसे आठ अंगुलवाले पावोंका बनवाये। इसके अतिक्रमण करनेपर (पावोंको नाप करके) कटवा देना *पाचित्तिय* है।

८८—जो कोई भिक्षु चारपाई या तख्तको रुई भरकर बनवाये तो उधेड़ डालना *पाचित्तिय* है।

८९—(बैठनेका आसन) बनवाते समय भिक्षु उसे प्रमाणके अनुसार बनवावे। प्रमाण इस प्रकार है—लंबाई बुद्धके बित्तेसे दो बित्ता। चौड़ाई डेढ़, और मगजी एक बित्ता। इसका अतिक्रमण करनेपर काट डालना *पाचित्तिय* (=प्रायश्चित्त) है।

(३९) वस्त्र

९०—खुजली ढाँकनेके वस्त्र (लंगोट)को बनवाते समय भिक्षु प्रमाणके अनुसार बनवाये। प्रमाण इस प्रकार है:—सुबुद्धके बित्तेसे चार बित्ता लंबा दो बित्ता चौड़ा। इसका अतिक्रमण करनेपर काट डालना *पाचित्तिय* (=प्रायश्चित्त) है।

९१—वर्षाकी लुंगी (=वर्षिक-शाटिका) बनवाते समय भिक्षु उसे प्रमाणके अनुसार बनवाये। प्रमाण इस प्रकार है—सुबुद्धके बित्तेसे लंबाई छः बित्ता, चौड़ाई ढाई बित्ता। इसका अतिक्रमण करनेपर काट डालना *पाचित्तिय* (=प्रायश्चित्त) है।

९२—जो कोई भिक्षु बुद्धके चीवरके बराबर या उससे बड़ा चीवर बनवाये तो काट डालना *पाचित्तिय* (=प्रायश्चित्त) है। बुद्धके चीवरका प्रमाण इस प्रकार है—सुगत (=बुद्ध)के बित्तेसे लंबाई नव बित्ता और चौड़ाई छः बित्ता।…

(इति) रत्न वग्ग ॥९॥

आयुष्मानो ! यह बानबे *पाचित्तिय* दोष कहे गये। आयुष्मानोंसे पूछता हूँ—क्या (आप लोग) इनसे शुद्ध हैं ? दूसरी बार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध हैं ? तीसरी बार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध हैं। आयुष्मान् लोग शुद्ध हैं, इसीलिए चुप हैं—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ।

पाचित्तिय समाप्त ॥५॥

---

§६—पाटिदेसनिय (१४२-१४५)

(१) भोजनग्रहण और भिक्षुणी

आयुष्मानो ! यह चार *पाटिदेसनिय* दोष कहे जाते हैं।

१—जो कोई भिक्षु (गृहस्थके) घरमें प्रविष्ट *अज्ञातिका* भिक्षुणीके हाथसे खाद्य भोज्यको अपने हाथ ग्रहण कर खाये या भोजन करे तो उस भिक्षुको *पटिदेसना* (प्रतिदेशना=अपराधकी स्वीकृति) करनी चाहिये—"आवुस ! मैंने निंदनीय, अयुक्त, प्रतिदेशना करने योग्य कार्यको किया, सो मैं उसकी प्रतिदेशना करता हूँ।"

२—गृहस्थके घरोंमें निमंत्रित हो भिक्षु भोजन करते हैं। वहाँ वह भिक्षुणी स्नेह दिखलाती हुई खड़ी हो (कहती है)—"यहाँ सूप (उड़द या मूँगकी दाल) दो, यहाँ भात दो," तो उन भिक्षुओंको उस भिक्षुणीको रोक देना चाहिये—"भगिनी ! जब तक भिक्षु भोजन करते हैं तब तक तू परे चली जा।" यदि एक भिक्षुको भी उस भिक्षुणीका (यह कहकर) हटाना ठीक न जँचे कि—"भागिनी जब तक भिक्षु भोजन करते हैं, तब तक तू परे चलीजा" तो उन (सारे) भिक्षुओंको प्रतिदेशना करनी चाहिये—"आवुसो ! हमने निंदनीय, अयुक्त, प्रतिदेशना करने योग्य कार्यको किया, सो हम उसकी प्रतिदेशना करते हैं।"

अपने हाथसे ले भोजन करना

३—जो वह *शैक्ष्य*[1] (सेख) माने गये कुल हैं उन कुलोंमें जो भिक्षु अनिमंत्रित या नीरोग रहते (जाकर) खाद्य भोज्यको अपने हाथसे ग्रहणकर खाये या भोजन करे तो उस भिक्षुको प्रतिदेशना करनी चाहिये—"आवुस ! मैंने निंदनीय, अयुक्त, प्रतिदेशना करने योग्य कार्य किया सो मैं उसकी प्रतिदेशना करता हूँ।"

४—जो वह भयावने शंकायुक्त आरण्यक आश्रम हैं वैसे आश्रमोंमें विहार करनेवाला, जो भिक्षु आरामके भीतर भी पहलेसे न निवेदित किये खाद्य भोज्यको निरोग रहते अपने हाथसे ले कर खाये या भोजन करे तो उस भिक्षुको प्रतिदेशना करनी चाहिये—"आवुस ! मैंने निंदनीय, अयुक्त, प्रतिदेशना करने योग्य कार्य किया, सो मैं उसकी प्रतिदेशना करता हूँ।"

आयुष्मानो ! यह चार *पाटिदेसनिय* दोष कहे गये। आयुष्मानोंसे पूछता हूँ—क्या आप लोग इनसे शुद्ध हैं ? दूसरी बार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध हैं ? तीसरी बार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध हैं ? आयुष्मान् लोग शुद्ध हैं, इसीलिये चुप हैं—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ।

पाटिदेसनिय समाप्त ॥ ६ ॥

---

[1] अत्यन्त श्रद्धालु किन्तु धनहीन कुल।

§७–सेखिय (१४६-२२०)

आयुष्मानो ! यह (पचहत्तर) *सेखिय*[१] बातें कही जाती हैं।

(१) चीवर पहिनना

१—*परिमंडल* (चारों ओरसे ढाँककर वस्त्र) पहिनूँगा—यह शिक्षा (ग्रहण) करनी चाहिये।

२—*परिमंडल* ओढ़ूँगा ०।

(२) गृहस्थोंके घरमें जाना, बैठना

३—(गृहस्थोंके) घरमें अच्छी तरह (शरीरको) आच्छादित कर जाऊँगा—०।

४—घरमें अच्छी तरह (शरीरको) आच्छादित कर बैठूँगा—०।

५—घरमें अच्छी तरह संयमके साथ जाऊँगा—०।

६—घरमें अच्छी तरह संयमके साथ बैठूँगा—०।

७—घरमें नीची आँख कर जाऊँगा—०।

८—घरमें नीची आँख कर बैठूँगा—०।

९—घरमें शरीरको बिना उतान किये जाऊँगा—०।

१०—घरमें शरीरको बिना उतान किये बैठूँगा—०।

(इति) परिमंडल वग्ग ॥ १॥

११—(गृहस्थोंके) घरमें कहकहा न लगाते जाऊँगा—०।

१२—(गृहस्थोंके) घरमें कहकहा न लगाते बैठूँगा—०।

१३—घरमें चुपचाप जाऊँगा—०।

१४—घरमें चुपचाप बैठूँगा—०।

१५—घरमें देहको न भाँजते हुए जाऊँगा—०।

१६—घरमें देहको न भाँजते हुए बैठूँगा—०।

१७—घरमें बाँहको न भाँजते हुए जाऊँगा—०।

१८—घरमें बाँहको न भाँजते हुए बैठूँगा—०।

१९—घरमें सिरको न हिलाते हुए जाऊँगा—०।

२०—घरमें सिरको न हिलाते हुए बैठूँगा—०।

(इति) उज्जग्घिक वग्ग ॥२॥

---

[१] "जिस शिक्षा (भिक्षु-नियम) को (लोग) सीखते हैं, वह सेखिय (शिक्षणीय) हैं (अट्ठकथा)।"

२१—घरमें कमरपर हाथ न रखकर जाऊँगा—०।
२२—घरमें कमरपर हाथ न रखकर बैठूँगा—०।
२३—घरमें न अवगुंठित हो (=सिर ढाँके) जाऊँगा—०।
२४—घरमें न अवगुंठित हो (=सिर ढाँके) बैठूँगा—०।
२५—घरमें न पंजोंके बल जाऊँगा—०।
२६—घरमें न पलथी मारकर बैठूँगा—०।

(३) भिक्षान्न ग्रहण और भोजन

२७—भिक्षान्नको सत्कारपूर्वक ग्रहण करूँगा—०।
२८—(भिक्षा) पात्रकी ओर ख्याल रखते भिक्षान्नको ग्रहण करूँगा—०।
२९—(अधिक नहीं) मात्राके अनुसार सूप(=तेमन)वाले भिक्षान्नको ग्रहण करूँगा—०।
३०—(पात्रसे उभरे नहीं) समतल भिक्षान्नको ग्रहण करूँगा—०।

(इति) खम्भक वग्ग ॥३॥

३१—सत्कारके साथ भिक्षान्नको खाऊँगा—०।
३२—(भिक्षा) पात्रकी ओर ख्याल रखते भिक्षान्नको खाऊँगा—०।
३३—एक ओरसे भिक्षान्नको खाऊँगा—०।
३४—मात्राके अनुसार सूपके साथ भिक्षान्नको खाऊँगा—०।
३५—पिंड (स्तूप)को मींज मींजकर नहीं भोजन करूँगा—०।
३६—अधिककी इच्छासे दाल या भाजी (व्यंजन)को भातसे नहीं ढाँकूँगा—०।
३७—नीरोग होते अपने लिये दाल या भातको माँगकर नहीं भोजन करूँगा—०।
३८—न अवज्ञाके ख्यालसे दूसरोंके पात्रको देखूँगा—०।
३९—न बहुत बड़ा ग्रास बनाऊँगा—० ।
४०—ग्रासको गोल बनाऊँगा—० ।

(इति) सक्कच्च-वग्ग ॥४॥

४१—ग्रासको बिना मुँह तक लाये मुखके द्वारको न खोलूँगा—० ।
४२—भोजन करते समय सारे हाथको मुँहमें न डालूँगा—० ।
४३—ग्रास पड़े हुए मुखसे बात नहीं करूँगा—० ।
४४—ग्रास उछाल उछालकर नहीं खाऊँगा—० ।
४५—ग्रासको काट काटकर नहीं खाऊँगा—० ।
४६—न गाल फुला फुलाकर खाऊँगा—० ।
४७—न हाथ झाड़ झाड़कर खाऊँगा—० ।
४८—न जूठ बिखेर बिखेरकर खाऊँगा—० ।
४९—न जीभ चटकार चटकारकर खाऊँगा—० ।
५०—न चपचप करके खाऊँगा—० ।

(इति) कवळ-वग्ग ॥५॥

५१—न सुड़सुड़कर खाऊँगा—० ।
५२—न हाथ चाट चाटकर खाऊँगा—० ।
५३—न पात्र चाट चाटकर खाऊँगा—० ।
५४—न ओठ चाट चाटकर खाऊँगा—० ।

५५—न जूठ लगे हाथसे पानीका बर्तन पकड़ूँगा—० ।
५६—न जूठ लगे पात्रके धोवनको घरमें छोड़ूँगा—० ।

(४) कैसेको उपदेश न करना—

५७—हाथमें छाता धारण किये नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगा—० ।
५८—हाथमें दंड लिये नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगा—० ।
५९—हाथमें शस्त्र लिये नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगा—० ।
६०—हाथमें आयुध लिये नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगा—० ।

(इति) सुरुसुरु-वग्ग ॥६॥

६१—खड़ाऊँ पर चढ़े नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगा—० ।
६२—जूता पहने नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगा—० ।
६३—सवारीमें बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगा—० ।
६४—शय्यामें लेटे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगा—० ।
६५—पालथी मारकर बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगा—० ।
६६—सिर लपेटे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगा—० ।
६७—ढँके शिरवाले नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगा—० ।
६८—न (स्वयं) भूमिपर बैठकर आसनपर बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म उपदेशूँगा—० ।
६९—न नीचे आसनपर बैठकर ऊँचे आसनपर बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म उपदेशूँगा—० ।
७०—खड़े हो, बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगा—० ।
७१—(स्वयं) पीछे पीछे चलते आगे आगे जाते नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगा—० ।
७२—(स्वयं) रास्तेसे हटकर चलते हुए, रास्तेसे चलते नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगा—० ।

(५) पिसाब-पाखाना

७३—नीरोग रहते खड़े खड़े पिसाव-पाखाना नहीं करूँगा—० ।
७४—नीरोग रहते हरियालीमें पिसाव-पाखाना नहीं करूँगा—० ।
७५—नीरोग रहते पानीमें पिसाव-पाखाना नहीं करूँगा—० ।

(इति) पादुका-वग्ग ॥७॥

आयुष्मानो ! (यह पचहत्तर) *सेखिय* बातें कह दी गईं । आयुष्मानोंसे पूछता हूँ—क्या (आप लोग) इनसे शुद्ध हैं ? दूसरी वार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध हैं ? तीसरी वार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध हैं ? आयुष्मान् लोग शुद्ध हैं, इसीलिये चुप हैं—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ ।

सेखिय समाप्त ॥७॥

---

§८—अधिकरण-समथ[1] (२२१-२७)

आयुष्मानो ! (समय समयपर) उत्पन्न हुए अधिकरणों (=झगड़ों)के शमनके लिये यह सात *अधिकरण-समथ* (=झगड़ामिटाव) कहे जाते हैं—

(१) झगड़ा मिटानेके तरीके

१—सन्मुख-विनय देना चाहिये।
२—स्मृति-विनय देना चाहिये।
३—अमूढ़-विनय देना चाहिये।
४—प्रतिज्ञात-करण-(=स्वीकार) कराना चाहिये।
५—यद्भूयसिक।
६—तत्पापीयसिक।
७—तिणवत्थारक।

आयुष्मानों ! यह सात अधिकरण समथ कहे गये। आयुष्मानोंसे पूछता हूँ—क्या आप लोग इनमें शुद्ध हैं ? दूसरी बार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध हैं ? तीसरी बार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध हैं ? आयुष्मान लोग शुद्ध हैं, इसीलिए चुप हैं—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ।

अधिकरणसमथ समाप्त ॥८॥

आयुष्मानो ! *निदान* कह दिया गया। (१—४) चार *पाराजिक* दोष कह दिये गये। (५—१७) तेरह *संघादिसेस* दोष कह दिये गये। (१८—१९) दो *अनियत* दोष कह दिये गये। (२०—४९) तीस *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* दोष कह दिये गये। (५०—१४१) बानवे *पाचित्तिय* दोष कह दिये गये। (१४२—१४५) चार *पाटिदेसनिय* दोष कह दिये गये। (१४६—२२०) (पचहत्तर) *सेखिय* बातें कह दी गईं। (२२१—२२७) सात *अधिकरणसमथ* कह दिये गये। इतना ही उन भगवान्‌के सुत्तों (=सूक्तों=कथनों) में आये, सुत्तोंद्वारा अनुमोदित (नियम हैं, जिनकी कि) प्रत्येक पन्द्रहवें दिन आवृत्ति की जाती है। उनको (हम) सबको एकमत हो परस्पर अनुमोदन करते=विवाद न करते, सीखना चाहिये। इति।

भिक्खु-पातिमोक्ख समाप्त

---

[1] अधिकरणसमथोंके अर्थ-विस्तारके बारेमें देखो चुल्लवग्ग शमथस्कन्धक ४।

२—भिक्खुनी-पातिमोक्ख

२—भिक्खुनी-पातिमोक्ख

निदान। १—पाराजिक। २—संघादिसेस। ३—निस्सग्गिय-पाचित्तिय। ४—पाचित्तिय। ५—पाटिदेसनिय। ६—सेखिय। ७—अधिकरण-समथ।

§निदान

(एक भिक्षुणी—) आर्ये! संघ मेरी (बात) सुने, यदि संघको पसंद हो (तो) मैं इस नामकी[1] आर्यासे विनय पूछूँ।[2]

(चुनी जाने वाली भिक्षुणी—) आर्ये! संघ मेरी (बात) सुने, यदि संघको पसंद हो (तो) मैं इस नामकी[3] आर्या द्वारा पूछे *विनय* (=भिक्षुणी-नियम)का उत्तर दूँ।—

सम्मज्जनी पदीपो च उदकं आसनेन च।
उपोसथस्स एतानि पुब्बकरणन्ति वुच्चति॥
(सम्मार्जनी प्रदीपश्च उदकं आसनेन च।
उपोसथस्य एतानि पूर्वकरणमित्युच्यते॥)

(संघसे) अवकाश (माँगकर कहती हूँ)—*सम्मज्जनी*=झाड़ू देना (उपोसथागारको साफ करना), *पदीपो च* = और दिया जलाना [(दिन होनेपर—) इस समय सूर्यके प्रकाशके कारण दीपकका काम नहीं है (कहना चाहिये)], *उदकं आसनेन च* = और आसन (बिछाने)के साथ पीने तथा धोनेके लायक जलको रखना, एतानि=संमार्जन करना आदि यह चार कार्य (=व्रत) संघके एकत्रित होनेसे पहिले किये जानेसे, *उपोसथस्स*=*उपोसथ*[4] के, *पुब्बकरणन्ति*= "पूर्व-करण", *वुच्चति*=कहे जाते हैं।

छन्द-पारिसुद्धि उतुक्खानं भिक्खुनी-गणना च ओवादो।
उपोसथस्स एतानि पुब्बकिच्चन्ति वुच्चति॥
(छन्द-पारिशुद्धिः ऋतु-ख्यानं भिक्षुणी-गणना चाऽववादः।
उपोसथस्यैतानि पूर्वकृत्यमित्युच्यते॥)

छन्दपारिसुद्धि=छन्द (=सम्मति=Vote)के योग्य (रोगी आदि होनेके कारण

---

[1] यहाँ जिस भिक्षुणीको उस दिन धर्मासनके लिये चुनना हो, उसका नाम लेना चाहिए।

[2] संघकी स्वीकृति जान वह भिक्षुणी संघको प्रणाम कर सबके आरम्भमें रक्खे धर्मासनपर बैठ आगेकी बातोंको कहती है।

[3] प्रस्तावक भिक्षुणीका यहाँ नाम लेना चाहिये।

[4] कृष्ण चतुर्दशी और अमावस्या।

उपोसथमें स्वयं उपस्थित न हो सकनेवाली) भिक्षुणियोंके छन्द और शुद्धता[1], *उतुक्खानं* = हेमन्त आदि तीन ऋतुओंमेंसे इतने बीत गये, इतने बाकी हैं—का कहना। यहाँ (बौद्ध-) धर्ममें हेमन्त, ग्रीष्म, वर्षाको लेकर तीन ऋतुयें होती हैं। [(जैसे—) यह हेमन्त ऋतु है, इस ऋतुमें (प्रत्येक पक्षमें एक एक करके) आठ उपोसथ (होते हैं), इस पक्षमें एक उपोसथ पूर्ण हो रहा है, एक उपोसथ (पहिले) चला गया, (अब) छ उपोसथ बाकी हैं]। *भिक्खुनी-गणना च*=और इस उपोसथमें एकत्रित भिक्षुणिओंकी गणना [इतनी] भिक्षुणियाँ हैं, *ओवादो*=भिक्षुणियोंको उपदेश देना *एतानि पुब्बकिच्चन्ति वुच्चति*=छन्द भेजना आदि यह पाँच काम *पातिमोक्ख* कहनेसे पहिले किये जानेसे, *उपोसथस्स*=उपोसथ कर्मके, *पुब्बकिच्चन्ति वुच्चति*="पूर्वकृत्य" कहे जाते हैं।

> **उपोसथो, यावतिका च भिक्खुनी, कम्मप्पत्ता सभागापत्तियो च।**
> **न विज्जन्ति वज्जनीया च पुग्गला तस्मिं न होन्ति, पत्तकल्लन्ति वुच्चति।**
> **(उपोसथे यावन्तश्च भिक्षुण्यः, कर्मप्राप्ताः सभागापत्तयश्च।**
> **न विद्यन्ते वर्जनीयाश्च पुद्गलाः तस्मिन् न भवंति, प्राप्तकल्यमित्युच्यते॥)**

उपोसथो=(कृष्ण-) चतुर्दशी, पूर्णमासी, (और विशेष कामके लिये संघका) एकत्रित होना—इन तीन उपोसथके दिनोंमें [आज पूर्णमासीका उपोसथ है]। *यावतिका च भिक्खुनियो*=जितनी भिक्षुणी, *कम्मप्पत्ता*=उस *उपोसथ*-कर्मको प्राप्त, के योग्य=के अनुरूप हैं, कमसे कम चार शुद्ध भिक्षुणियाँ जो कि(१) भिक्षुणी-संघ द्वारा न त्यागी;(२) हस्त-पाशको बिना छोड़े (=बैठकके घिरावेके बिना तो है) एक सीमाके भीतर स्थित; (३) *सभागापत्तियो च न विज्जन्ति*=(उनमें) दोपहर बाद भोजन करने आदिके अपराध (=आपत्तियाँ) नहीं होते; (४) *वज्जनीया च पुग्गला तस्मिं न होन्ति*=गृहस्थ नपुंसक आदि बैठकके घिरावे(=*हस्त-पाश*)से दूर रक्खे जानेवाले इक्कीस (प्रकारके) व्यक्ति उस (उपोसथ)में नहीं होते; *पत्तकल्लन्ति वुच्चति*—इन चार लक्षणोंसे युक्त संघका उपोसथ-कर्म *प्राप्तकल्य*=उचित समयसे युक्त कहा जाता है।

पूर्वकरण, (और) *पूर्वकृत्यों*को समाप्त कर, (अपने) दोषोंको (एक दूसरेको) बतलाकर एकत्रित हुए भिक्षुणी-संघकी अनुमतिसे *प्रातिमोक्ष*की आवृत्तिके लिये प्रार्थना करती हूँ।

आर्ये! संघ मेरी (बात) सुने—आज पूर्णमासी[2]का उपोसथ है। यदि संघ उचित समझे तो उपोसथ करे और प्रातिमोक्ष (=नियमों)का आवृत्ति करे।

संघको क्या है *पूर्व-कृत्य* ? आर्याओ! (अपनी) शुद्धता (=अ-दोषता)को कहो, हम प्रातिमोक्षकी आवृत्ति करने जा रहे हैं, सो हम सभी शान्त हो अच्छी तरह सुनें और मनमें करें। जिससे कोई दोष हुआ हो वह प्रकट करे। दोष न होनेपर (उसे) चुप रहना चाहिये। चुप रहनेपर मैं आर्याओंको शुद्ध (=दोष-रहित) समझूँगी। जैसे एक-एक आदमीसे

---

[1] अनुपस्थित व्यक्ति संघके सामने आनेवाले अभियोग या दूसरे काममें अपनी सम्मति, दूसरे भिक्षु द्वारा भेज सकता है, इसीको यहाँ छन्द कहा गया है। इसी प्रकार रोगी व्यक्ति अपनी अदोषता (=शुद्धता)को भी दूसरे द्वारा (Proxy) भेज सकता है, जिसे पारिशुद्धि कहा गया है।

[2] यहाँ जिस दिन का उपोसथ हो, उसका नाम लेना चाहिये।

पूछनेपर उत्तर देना होता है, वैसे ही इस प्रकारकी सभामें तीन बार तक पुकारा जाता है। किन्तु, जो भिक्षुणी तीन बार पुकारनेपर याद रहते हुए भी, विद्यमान दोषको प्रकट नहीं करती, वह जान बूझकर झूठ बोलनेकी दोषी होती है। आर्याओ! भगवान्‌ने जान-बूझ कर झूठ बोलनेको *अन्तरायिक* (=विघ्नकारक) कर्म कहा है; इसलिये याद रखते हुए दोष युक्त भिक्षुणीको शुद्ध होनेकी कामनासे (अपनेमें) विद्यमान दोषको प्रकट करना चाहिये; (दोषोंका) प्रकट करना उसके लिये अच्छा होता है।

आर्याओ! *निदान* कह दिया गया। अब मैं आर्याओंसे पूछती हूँ—क्या (आप सब) इन (निदानमें कही बातों)से शुद्ध हैं? दूसरी बार भी पूछती हूँ—क्या इनसे शुद्ध हैं? तीसरी बार भी पूछती हूँ, क्या इनसे शुद्ध हैं? आर्या परिशुद्ध ही हैं, इसीलिए चुप हैं—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ, इति।

निदान समाप्त

---

§१—पाराजिक (१-८)

(१) मैथुन

आर्याओ ! यह आठ *पाराजिक* धर्म कहे जाते हैं।

१—जो कोई भिक्षुणी कामासक्त हो अन्ततः पशुसे भी मैथुन-धर्म सेवन करे वह *पाराजिका* होती है, (भिक्षुणियोंके) साथ न रहने लायक होती है।

(२) चोरी

२—जो कोई भिक्षुणी चोरी समझी जाने वाली किसी वस्तुको ग्राम या अरण्यसे बिना दिये हुए ही ग्रहण करे, जिसे (मालिकके) बिना दिये हुए लेलेनेसे राजा उस व्यक्तिको चोर = स्तेन, मूर्ख, मूढ़ कहकर बाँधता, मारता या देश-निकाला देता है; तो वह भिक्षुणी पाराजिका होती है, (भिक्षुणियोंके) साथ न रहने लायक होतो है।

(३) मनुष्य-हत्या

३—जो भिक्षुणी जानकर मनुष्यको प्राणसे मारे या (आत्म-हत्याके लिये) शस्त्र खोज लावे, या मरनेकी तारीफ़ करे, मरनेके लिये प्रेरित करे—अरे ! स्त्री तुझे क्या (है) इस पापी दुर्जीवनसे ? (तेरे लिये) जीनेसे मरना अच्छा है। इस प्रकारके विचारसे, इस प्रकारके चित्त-संकल्पसे अनेक प्रकारसे जो मरनेकी तारीफ़ करे, या मरनेके लिये प्रेरित करे। यह भी *पाराजिका* होती है, (भिक्षुणियोंके) साथ न रहने लायक होती है।

(४) दिव्य शक्तिका दावा

४—जो भिक्षुणी न विद्यमान, दिव्य-शक्ति (= उत्तर-मनुष्य-धर्म) = अलम्-आर्य-ज्ञान-दर्शनको अपनेमें विद्यमान बतलाती है—"ऐसा जानती हूँ, ऐसा देखती हूँ।" तब दूसरे समय पूछे जाने या न पूछे जानेपर बदनीयतीसे, या आश्रम छोड़ जानेकी इच्छासे (कहे)—'आर्ये' ! न जानते हुए मैंने 'जानती हूँ' कहा, न देखते हुए मैंने 'देखती हूँ' कहा मैंने झूठ=तुच्छ कहा। वह *पाराजिका* होती है। यदि अधिमान(=अभिमान)से न कहा हो।

(५) कामासक्तिके कार्य

५—जो कोई भिक्षुणी कामुकी हो, कामुक पुरुषके जानुसे ऊपरके निचले शरीरको सहरावे, घर्षण करे, ग्रहण करे, छुवे, या दबानेके स्वादको ले तो वह *ऊर्ध्वजानु-मंडलिका* (भिक्षुणी) *पाराजिका* होती है।

६—जो कोई भिक्षुणी जानते हुए पाराजिक दोषवाली भिक्षुणीको न स्वयं टोके, न गणको ही सूचित करे, और जब (उक्त भिक्षुणी भिक्षुणी-वेषमें) स्थित या च्युत या निकाल दी जाये, या मतान्तरमें चली जाये तो ऐसा कहे—"आर्ये ! मैं पहले हीसे यह जानती थी—यह भगिनी ऐसी ऐसी है, किन्तु न मैंने स्वयं टोका, न (भिक्षुणी) गणको

सूचित किया। यह दोष छिपानेवाली (भिक्षुणी) भी *पाराजिका* होती है ०।

(६) संघसे निकालेका अनुगमन

७—जो भिक्षुणी *समग्र* संघ द्वारा अलग किये गये *धर्म—विनय*—और-बुद्धोपदेशमें आदर-रहित, प्रतिकार-रहित और अकेले भिक्षुका अनुगमन करे तो भिक्षुणियोंको उस भिक्षुणीसे यह कहना चाहिये—"आर्ये ! (= अइया !) यह भिक्षु सारे संघ द्वारा अलग किया गया और धर्म, विनय, तथा बुद्धोपदेशमें आदर-रहित, प्रतिकार-रहित और सहायता-रहित है। आर्ये ! मत (इस) भिक्षुका अनुगमन करो।" इस प्रकार उन भिक्षुणियों द्वारा कही जानेपर यदि वह भिक्षुणी वैसे ही जिद् पकड़े रहे तो भिक्षुणियोंको उस भिक्षुणीसे तीन बार तक उसके छोड़नेके लिये कहना चाहिये। तीन बार कही जानेपर यदि वह उसे छोड़ दे तो अच्छा, यदि न छोड़े तो वह *उत्क्षिप्तानुवर्तिका* (= अलग किये हुएका अनुगमन करनेवाली) *पाराजिका* होती है ०।

(७) कामासक्तिसे पुरुषका स्पर्श

८—जो कोई भिक्षुणी आसक्त हो, कामातुर पुरुषके हाथ पकड़ने या चद्दरके कोनेके पकड़नेका आस्वाद ले, या (उसके साथ) खड़ी रहे, या भाषण करे, या संकेत की ओर जाय या पुरुषका अनुगमन करे, या छिपे (स्थान)में प्रवेश करे, या शरीरको उसपर छोड़े, तो यह आठ बातोंवाली भिक्षुणी भी *पाराजिका* होती है।

आर्याओ ! यह आठ *पाराजिक* दोष कहे गये। इनमेंसे किसी एकके करनेसे भिक्षुणी भिक्षुणियोंके साथ वास नहीं करने पाती। जैसे पहिले वैसे ही पीछे *पाराजिका* होकर साथ रहने योग्य नहीं रहती। क्या (आप लोग) इनसे शुद्ध हैं ? दूसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं ? तीसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं ? आर्या लोग शुद्ध हैं, इसीलिये चुप हैं—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ।

पाराजिका समाप्त ॥ १ ॥

———

§२—संघादिसेस (९-२५)

आर्याओ ! यह सत्रह दोष *संघादिसेस* कहे जाते हैं—

(१) पुरुषोंके साथ विहरना

१—जो भिक्षुणी घुमन्त होकर गृहस्थ, गृहस्थके पुत्र, दास या मजदूरके साथ अन्ततः श्रमण परिव्राजकके साथ भी विहरे तो यह भिक्षुणी भी प्रथम (श्रेणीके) दोष की अपराधिनी है। और (उसके लिये) *संघादिसेस* है निकाल देना।

(२) चोरनी या बध्याको भिक्षुणी बनाना

२—जो भिक्षुणी राजा, संघ[1], गण[2], पूग[3], श्रेणी[4] को विना सूचित किये—जानकर प्रकट चोरनी या बध्याको—(दूसरे मतमें) साधुनी बनी हुईको छोड़—साधुनी बनावे, वह भिक्षुणी भी ०।

(३) अकेले घूमना

३—जो भिक्षुणी अकेली ग्रामान्तरको जावे, अकेली नदी पार जावे, अकेली रात को प्रवास करे, (या) गणसे अलग चली जावे, वह भिक्षुणी भी ०।

(४) संघसे निकालीको साथिन बनाना

४—जो भिक्षुणी सारे संघद्वारा धर्म, विनय और बुद्धोपदेशसे अलगकी गई भिक्षुणीको *कारक-संघ* (= संघकी कार्यकारिणी सभा)को विना पूछे, और गणकी रुचि को विना जाने, साथी बनाती है, वह भिक्षुणी भी ०।

(५) कामासक्तिके कार्य

५—जो भिक्षुणी आसक्त हो, आसक्त पुरुषके हाथसे खाद्य, भोज्य अपने हाथसे लेकर खाये, भोजन करे, वह भिक्षुणी भी ०।

६—जो भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीको ऐसा कहे—"आर्ये ! चाहे आसक्त हो या अनासक्त, यह पुरुष तेरा क्या करेगा क्योंकि तू तो अनासक्त है ? हाँ ! तो आर्ये ! जो कुछ खाद्य भोज्य यह पुरुष तुझे देता है उसे तू अपने हाथसे लेकर खा, भोजन कर; वह भिक्षुणी भी० ।

७—किसी भिक्षुणीका किसी स्त्रीकी बातको किसी पुरुषसे या किसी पुरुषकी बात को किसी स्त्रीसे कहना—तू जारी बन, या पत्नी बन, या अन्ततः कुछ ही क्षणोंके लिये (उसकी बन); वह भिक्षुणी भी० ।

---

[1] भिक्षुणी-संघ। [2] प्रजातंत्र। [3] = पुंज, सामूहिक शासन। [4] श्रेणीका शासन।

(६) पाराजिकका दोषारोपण

८—किसी भिक्षुणीका दुष्ट (चित्तसे), द्वेषसे, नाराज़गीसे दूसरी भिक्षुणीपर निर्मूल *पाराजिक* दोषका लगाना, जिसमें कि वह इस ब्रह्मचर्यसे च्युत हो जावे, (=भिक्षुणी न रह जावे) फिर पीछे पूछने या न पूछनेपर वह झगड़ा निर्मूल (मालूम) हो, और उस (दोष लगाने वाली) भिक्षुणीका दोष सिद्ध हो; तो वह भी० ।

९—किसी भिक्षुणीका दुष्ट (चित्तसे), द्वेषसे, नाराज़गीसे, अन्य प्रकारके झगड़े की कोई बात लेकर दूसरी भिक्षुणीको पाराजिक दोषका लगाना, जिसमें कि वह इस ब्रह्मचर्यसे च्युत हो जाय; और फिर पूछने या न पूछनेपर उस झगड़ेकी असलियत मालूम हो और उस (दोष लगानेवाली) भिक्षुणीका दोष सिद्ध हो; तो वह भी० ।

(७) धर्मका प्रत्याख्यान

१०—यदि कोई भिक्षुणी कुपित, असंतुष्ट हो यह कहे—"मैं बुद्धका प्रत्याख्यान करती हूँ, धर्मका प्रत्याख्यान करती हूँ, संघका प्रत्याख्यान करती हूँ, *शाक्यपुत्रीय* श्रमणियों (=साधुनियों) से मुझे क्या लेना है ? लज्जा, संकोच, शील, शिक्षाकी चाहवाली दूसरी भी श्रमणियाँ हैं । मैं उनके पास ब्रह्मचर्य-वास करूँगी ।" तो भिक्षुणियोंको उस भिक्षुणीसे ऐसा कहना चाहिये—"आर्ये ! मत कुपित, असंतुष्ट हो ऐसा कहो,—'मैं बुद्धका प्रत्याख्यान करती हूँ, धर्मका प्रत्याख्यान करती हूँ, संघका प्रत्याख्यान करती हूँ । शाक्यपुत्रीय श्रमणियों से मुझे क्या लेना है ? लज्जा, संकोच, शील, शिक्षाकी चाहवाली दूसरी भी श्रमणियाँ हैं; मैं उनके पास ब्रह्मचर्य-वास करूँगी'—आर्ये ! यह धर्म सुन्दर प्रकारसे कहा गया है । इसमें श्रद्धालु बन दुःखके अच्छी तरह नाशके लिये ब्रह्मचर्य-वास करो !" भिक्षुणियों द्वारा ऐसा कहनेपर यदि वह भिक्षुणी वैसेही ज़िद पकड़े रहे तो भिक्षुणियोंको तीन बार तक उससे उस ज़िद्को छोड़नेके लिये कहना चाहिये । तीन बार तक कही जानेपर यदि वह उस ज़िद्को छोड़ दे तो उसके लिये अच्छा है, यदि न छोड़े तो वह भी० ।

(८) भिक्षुणियोंका निन्दना

११—जो कोई भिक्षुणी किसी अभियोगमें हार जानेपर कुपित, असंतुष्ट हो ऐसा कहे—"रागके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ, द्वेषके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ, मोहके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ, भयके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ ।" तो उस भिक्षुणीको और भिक्षुणियाँ ऐसे कहें—"आर्ये ! किसी झगड़ेमें हार जानेसे कुपित और असंतुष्ट हो मत ऐसा कहो—'रागके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ, द्वेषके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ, मोहके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ, भयके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ ।' आर्या ही राग, द्वेष, मोह, भयके पीछे जा सकती हैं ।" इस प्रकार उन भिक्षुणियों द्वारा कही जाने पर यदि वह भिक्षुणी वैसेही ज़िद पकड़े रहे तो भिक्षुणियाँ तीन बार तक उससे वह ज़िद छोड़नेके लिये कहें । तीन बार तक कहे जानेपर यदि वह उस ज़िद्को छोड़ दे तो यह उसके लिये अच्छा है नहीं तो वह भिक्षुणी भी० ।

(९) बुरा संसर्ग

१२—भिक्षुणियाँ यदि दुराचारिणी, बदनाम, निंदित बन भिक्षुणी-संघके प्रति द्रोह करती और एक दूसरेके दोषोंको ढाँकती (बुरे) संसर्गमें रहती हों, तो (दूसरी) भिक्षुणियाँ उन भिक्षुणियोंको ऐसा कहें—"भगिनियो ! तुम सब दुराचारिणी, बदनाम, निंदित बन,

भिक्षुणी-संघके प्रति द्रोह करती हो और एक दूसरेके दोषोंको छिपाती (बुरे) संसर्गमें रहती हो। भगिनियोंका संघ तो एकान्त शील और विवेकका प्रशंसक है।" यदि उनके ऐसा कहनेपर वे भिक्षुणियाँ अपने दोषोंको छोड़ देनेके लिये न तैयार हों तो वे तीन वार तक उनसे उन्हें छोड़ देनेके लिये कहें। यदि तीन वार तक कहनेपर वे उन्हें छोड़ दें तो यह उनके लिये अच्छा है नहीं तो वे भिक्षुणियाँ भी०।

१३—जो कोई भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणियोंको ऐसा कहे—"आर्याओ! तुम सब (बुरे) संसर्गमें रहो; मत अलग रहो! संघमें ऐसे आचार ऐसी बदनामी, ऐसी अपकीर्ति-वाली, भिक्षुणी-संघसे द्रोह करनेवाली, एक दूसरेके दोषको छिपानेवाली, दूसरी भिक्षुणियाँ भी हैं। उनको संघ कुछ नहीं कहता, संघ दुर्बल और कमजोर होनेके कारण तुम्हाराहो कोपसे अपमान करता है, परिभव करता है; और यह कहता है—'भगिनियो! तुम सब दुराचारिणी, बदनाम, निंदित बन भिक्षुणी-संघके प्रति द्रोह करती हो, और अपने दोषोंको ढाँकनेवाली हो (बुरे) संसर्गमें रहती हो। भगिनियोंका संघ तो एकान्तशीलता और विवेकका प्रशंसक है?" तो भिक्षुणियोंको उस भिक्षुणीसे ऐसा कहना चाहिये—"आर्ये! मत ऐसा कहो—'आर्याओ! तुम सब० विवेकका प्रशंसक है।" इस प्रकार उन भिक्षुणियोंके कहे जाने पर०। यदि न माने तो वह भिक्षुणी भी०।

(१०) संघमें फूट डालना

१४—यदि कोई भिक्षुणी एकमत संघमें फूट डालनेका प्रयत्न करे, या फूट डालनेवाले झगड़ेको लेकर (उसपर) हठपूर्वक कायम रहे, तो उसे और भिक्षुणियाँ इस प्रकार कहें—'आर्ये! मत (आप) एकमत संघमें फूट डालनेका प्रयत्न करें, मत फूट डालनेवाले झगड़ेको लेकर (उसपर) हठपूर्वक कायम रहें। आर्ये! संघसे मेल करो। परस्पर हेलमेलवाला, विवाद न करनेवाला, एक उद्देश्यवाला, एकमत रखनेवाला संघ सुखपूर्वक रहता है।" उन भिक्षुणियों द्वारा ऐसा समझाये जानेपर भी यदि वह भिक्षुणी उसी प्रकार अपनी ज़िद्पर कायम रहे तो दूसरी भिक्षुणियाँ उसे ० उसके लिये अच्छा है। यदि न छोड़े, तो वह ०।

१५—उस (संघ-भेदक) भिक्षुणीकी अनुयायी, पक्षपाती, एक दो या तीन भिक्षुणियाँ हों और वे यह कहें—"आर्याओ! मत इस भिक्षुणीको कुछ कहो। यह भिक्षुणी धर्मवादिनी है। नियमानुकूल (विनय) वोलने वाली है। हमारी भी राय और रुचिको लेकर यह कह रही है। हमारे मनकी (वातको) जानकर कहती है। हमको भी यह पसंद है।" तब दूसरी भिक्षुणियोंको उन भिक्षुणियोंसे इस प्रकार कहना चाहिये—"मत आर्याओ! ऐसा कहो। यह भिक्षुणी धर्मवादिनी नहीं है और न यह नियमानुकूल वोलने वाली है। आर्याओंको भी संघमें फूट डालना न रुचना चाहिये। आर्याओ! संघसे मेल करो। परस्पर हेलमेलवाला, विवाद न करनेवाला एक उद्देश्य वाला, एकमत रखने वाला संघ सुख-पूर्वक रहता है।" यदि भिक्षुणियोंके ऐसा कहनेपर भी वे भिक्षुणियाँ अपनी ज़िद्को पकड़े रहें०। यदि न छोड़ें ०।

(११) वात न सुननेवाली वनना

१६—यदि कोई भिक्षुणी कटुभाषिणी है, विहित आचार नियमों (शिक्षा-पदों)के वारेमें उचित रीतिसे कहे जानेपर कहती है—"आर्यालोग अच्छा या वुरा मुझे कुछ मत कहें। मैं भी आर्याओंको अच्छा या वुरा कुछ न कहूँगी। आर्याओ! मुझसे वात करनेसे वाज़ आओ।" तो (अन्य) भिक्षुणियोंको उस भिक्षुणीसे यह कहना चाहिये—"मत

आर्या अपनेको अवचनीया (दूसरोंका उपदेश न सुनने वाली) बनावें। आर्या अपनेको वचनीया ही बनावें। आर्या भी भिक्षुणियोंको उचित बात कहें, भिक्षुणियाँ भी आर्याको उचित बात कहें। परस्पर कहने कहाने, परस्पर उत्साह दिलानेसे ही भगवान्‌की यह मंडली (एक दूसरेसे) संबद्ध है। भिक्षुणियोंके ऐसा कहनेपर भी ० यह उसके लिये अच्छा है। यदि न छोड़े तो ०।

(१२) कुलोंका बिगाड़ना

१७—कोई भिक्षुणी किसी गाँव या कस्बेमें कुलदूषिका और दुराचारिणी होकर रहती है। उसके दुराचार देखे भी जाते हैं, सुने भी जाते हैं। कुलोंको उसने दूषित किया है, यह देखा भी जाता है, सुना भी जाता है। तो दूसरी भिक्षुणियोंको उस भिक्षुणीसे यह कहना चाहिये—"आर्या कुलदूषिका और दुराचारिणी हैं। आर्याके दुराचार देखे भी जाते हैं, सुने भी जाते हैं। आर्याने कुलोंको दूषित किया है, यह देखा भी जाता है, सुना भी जाता है। इस निवास (स्थान)से आर्या चली जायँ, यहाँ (आपका) रहना ठीक नहीं है।" भिक्षुणियोंके ऐसा कहनेपर यदि वह भिक्षुणी ऐसा बोले—"भिक्षुणियाँ रागके पीछे चलनेवाली हैं; द्वेषके पीछे चलनेवाली हैं, मोहके पीछे चलनेवाली हैं, भयके पीछे चलने वाली हैं। उन्हीं अपराधोंके कारण किसी किसीको दूर करती हैं और किसी किसीको दूर नहीं करतीं।" तो भिक्षुणियोंको उस भिक्षुणीसे यह कहना चाहिये—"मत आर्या ऐसा कहें—भिक्षुणियाँ रागके पीछे चलनेवाली नहीं हैं, द्वेषके पीछे चलनेवाली नहीं हैं, मोहके पीछे चलनेवाली नहीं हैं, भयके पीछे चलनेवाली नहीं हैं। आर्या कुलदूषिका और दुराचारिणी हैं। आर्याके दुराचार देखे भी जाते हैं, सुने भी जाते हैं। आर्याने कुलोंको दूषित किया है, यह देखा भी जाता है, सुना भी जाता है। इस निवास (स्थान)से आर्या चली जायँ। यहाँ रहना ठीक नहीं है।" भिक्षुणियों द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर भी यदि ०। यदि न ०।

आर्याओ! यह सत्रह *संघादिसेस* कह दिये गये। नव प्रथम (बारहीमें) दोष (गिने जाने) वाले और आठ तीन बार तक (दोहरानेपर); इनमेंसे यदि किसी एक अपराधको भिक्षुणी करे तो वह भिक्षुणी, (भिक्षु-भिक्षुणी) दोनों संघोंमें पक्ष भर *मानत्व*[1] करे। *मानत्व* पूरा हो जानेपर जहाँ बीस भिक्षुणियोंवाला भिक्षुणी-संघ हो उसके पास जावे। यदि बीस भिक्षुणियोंमेंसे एक (भी) कम वाला भिक्षुणी-संघ हो और वह भिक्षुणीको (अपराध) मुक्त करे तो वह भिक्षुणी मुक्त नहीं होती और वह भिक्षुणियाँ निंदनीय हैं।—यह यहाँपर उचित (क्रिया) है।

आर्याओंसे पूछती हूँ, क्या (आप) इनसे शुद्ध हैं? दूसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं? तीसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं? आर्या लोग शुद्ध हैं, इसीलिये चुप हैं—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ।

संघादिसेस समाप्त ॥ २ ॥

---

[1] देखो चुल्लवग्ग पारिवासिक स्कंधक २§१, ३.

§३—निस्सग्गिय-पाचित्तिय (२५-५५)

आर्याओ ! यह तीस अपराध *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* कहे जाते हैं।

(१) पात्र

१—जो भिक्षुणी पात्रोंका संचय करे तो *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।

२—जो भिक्षुणी असमयके चीवरको समयका चीवर मान बँटवाये तो ०।

(२) चीवर

३—जो भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीके साथ चीवरको बदलकर पीछे यह कहे—"हन्त ! आर्ये ! इस अपने चीवरको ले जाओ। जो तुम्हारा है वह तुम्हारा हो, और जो मेरा है वह मेरा। उसे ले आओ, और अपना ले जाओ" (—यह कह) छीन ले या छिन-वाले तो ०।

(३) चीज़ोंका चेताना (=माँगना)

४—जो भिक्षुणी एक (चीज़)के लिये कह कर फिर दूसरीके लिये कहे तो ०।

५—जो भिक्षुणी एक (चीज़)को चेताकर (=माँगकर) फिर दूसरीको चेतावे तो ०।

६—जो भिक्षुणी दूसरे निमित्तवाले, दूसरे प्रयोजनवाले संघके सामानसे (=के बदले) दूसरे (सामान)को चेतावे तो ०

७—जो भिक्षुणी दूसरे निमित्तवाले, दूसरे प्रयोजनवाले संघके माँगे हुए सामानसे दूसरे (सामान)को चेतावे तो ०।

८—जो भिक्षुणी दूसरे निमित्तवाले, दूसरे प्रयोजनवाले महाजन (=जनसमूह) के सामानसे दूसरे (सामान)को चेतावे तो ०।

९—जो भिक्षुणी दूसरे निमित्तवाले, दूसरे प्रयोजनवाले महाजनके माँगे हुए सामानसे दूसरे (सामान)को चेतावे तो ०।

१०—जो भिक्षुणी दूसरे निमित्तवाले, दूसरे प्रयोजनवाले, व्यक्ति (विशेष)के माँगे हुए सामानसे दूसरे (सामान)को चेतावे तो ०।

(इति) पत्तवग्ग ॥१॥

(४) ओढ़नेको चेताना

११—जाड़ेके ओढ़नेको चेताते हुए अधिकसे अधिक चार *कंस* (=सोलह कार्षापण) मूल्यका चेताना चाहिये। यदि उससे अधिकका चेताये तो ०।

१२—गर्मीके ओढ़नेको चेताते हुए अधिकसे अधिक ढाई *कंस* (=दस कार्षापण) मूल्यका चेताना चाहिये। उससे अधिक चेताये तो ०।

(५) कठिन चीवर और चीवर

१३—चीवरके तैयार हो जानेपर, *कठिन* (चीवर)के मिल जानेपर अधिकसे अधिक दस दिन तक, अतिरिक्त (=पाँचसे अतिरिक्त) चीवरको रखना चाहिये । इस अवधिका अतिक्रमण करनेपर *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है ।

१४—चीवरके तैयार हो जानेपर *कठिन*के मिल जानेपर भिक्षुणियोंकी सम्मतिके विना यदि भिक्षुणी एक रात भी पाचों चीवरोंसे रहित रहे तो ० ।

१५—चीवरके तैयार हो जानेपर, *कठिन*के मिल जानेपर यदि भिक्षुणीको विना समयका चीवर (का कपड़ा) प्राप्त हो तो इच्छा होनेपर भिक्षुणी उसे ग्रहण कर सकती है । ग्रहण करके शीघ्र ही दस दिन तक (चीवर) बना लेना चाहिये । यदि उसको पूरा नहीं करे तो प्रत्याशा होने पर कमीको पूर्तिके लिये एक मास भर भिक्षुणी उसे रख छोड़ सकती है । प्रत्याशा होनेपर इससे अधिक यदि रख छोड़े तो ० ।

१६—जो कोई भिक्षुणी किसी *अज्ञातक* गृहस्थ या गृहस्थिनीसे, ख़ास अवस्थाके सिवाय, चीवर देनेके लिये कहे तो ० । ख़ास अवस्था यह है—जब कि भिक्षुणीका चीवर छिन गया हो या नष्ट हो गया हो ।

१७—उसी (भिक्षुणी)को यदि *अज्ञातक* गृहस्थ या गृहस्थिनियाँ यथेच्छ चीवर प्रदान करें तो उन चीवरोंमेंसे अपनी आवश्यकतासे एक चीवर कम लेना चाहिये । यदि अधिक ले तो ० ।

१८—उसी भिक्षुणीके लिये ही यदि *अज्ञातक* गृहस्थ या गृहस्थिनियोंने चीवर के लिये धन तैयार कर रखा हो—इस चीवरके धनसे चीवर तैयारकर मैं अमुक नामवाली भिक्षुणीको चीवर-दान करूँगा । वहाँ यदि वह भिक्षुणी प्रदान करनेसे पहिले ही जाकर अच्छेकी इच्छासे (यह कहकर) चीवरमें हेरफेर कराये—अच्छा हो आयुष्मान् मुझे इस चीवरके धनसे ऐसा ऐसा चीवर बनवाकर प्रदान करें, तो० ।

१९—उसी भिक्षुणीके लिये दो *अज्ञातक* गृहस्थ या गृहस्थिनियोंने एक एक चीवर के लिये धन तैयार कर रखा हो—हम चीवरोंके इन धनोंसे एक एक चीवर बनवाकर अमुक नामवाली भिक्षुणीको चीवर-दान करेंगे। वहाँ यदि वह भिक्षुणी प्रदान करनेसे पहिलेही अच्छे-की इच्छासे (यह कहकर) चीवरमें हेरफेर कराये—अच्छा हो आयुष्मानो ! मुझे इन प्रत्येक चीवरके धनसे दोनों मिलाकर ऐसा (एक) चीवर बनवाकर प्रदान करें; तो ० ।

२०—उसी भिक्षुणीके लिये राजा, राज-कर्मचारी, ब्राह्मण या गृहस्थ चीवरके लिये (यह कहकर) धनको दूत द्वारा भेजें—इस चीवरके धनसे चीवर तैयारकर अमुक नामकी भिक्षुणीको प्रदान करो । और वह दूत उस भिक्षुणीके पास जाकर यह कहे—भगिनी ! आर्याके लिये यह चीवरका धन आया है । इस चीवरके धनको आर्या स्वीकार करें । तो उस भिक्षुणीको उस दूतसे यह कहना चाहिये—आवुस ! हम चीवरके धनको नहीं लेतीं । समयानुसार विहित चीवरहीको हम लेती हैं । यदि वह दूत उस भिक्षुणीको ऐसा कहे—क्या आर्याका कोई काम-काज करनेवाला है ?—तो उस भिक्षुणीको आश्रम-सेवक या उपासक—किसी काम-काज करनेवालेको बतला देना चाहिये—आवुस ! यह भिक्षुणियोंका कामकाज करनेवाला है । यदि वह दूत उस कामकाज करने वालेको समझाकर उस भिक्षुणीके पास आकर यह कहे—भगिनी ! आर्याने जिस काम काज करनेवालेको बतलाया, उसे मैंने समझा दिया । आर्या समयपर जायें । वह आपको

चीवर प्रदान करेगा। चीवरकी आवश्यकता रखनेवाली भिक्षुणीको उस काम-काज करने वालेके पास जाकर दो तीन बार याद दिलानो चाहिये—आवुस! मुझे चीवरकी आवश्यकता है। दो तीन बार प्रेरणा करनेपर, याद दिलानेपर यदि चीवरको प्रदान करे तो ठीक, न प्रदान करे तो चार बार, पाँच बार, अधिकसे अधिक छ बार तक (उसके यहाँ जाकर) चुपचाप खड़ी रहना चाहिये। चार बार, पाँच बार, अधिकसे अधिक छ बार तक चुपचाप खड़ी रहनेपर यदि चीवर प्रदान करें तो ठीक, उससे अधिक कोशिश करने पर यदि उस चीवरको प्राप्त करे तो ०। यदि न प्रदान करे तो जहाँसे चीवरका धन आया है, वहाँ स्वयं जाकर या दूत भेज कर (कहना चाहिये)—आप आयुष्मानोंने जिस भिक्षुणीके लिये चीवरका धन भेजा था वह उस भिक्षुणीके कामका नहीं हुआ। आयुष्मानो! अपने (धन) को देखो, तुम्हारा (वह) धन नष्ट न हो जाय—यह वहाँ पर उचित कर्तव्य है।

(इति) चीवर वग्ग ॥२॥

(६) चाँदी-सोने रुपये-पैसेका व्यवहार

२१—जो कोई भिक्षुणी सोना या रजत (=चाँदी आदिके सिक्के)को ग्रहण करे या ग्रहण करवाये, रखे हुएका उपयोग करे, तो ०।

२२—जो कोई भिक्षुणी नाना प्रकारके रुपयों (=*रुपिय* = सिक्का)का व्यवहार करे तो ०।

(७) क्रय-विक्रय

२३—जो कोई भिक्षुणी नाना प्रकारके खरीदने बेचनेके कामको करे; तो ०।

(८) पात्र

२४—जो कोई भिक्षुणी पाँचसे कम (जगह) टाँके पात्रसे दूसरे नये पात्रको बदले तो ०। उस भिक्षुणीको वह पात्र भिक्षुणी-परिषद्को दे देना चाहिये और जो (पात्र) भिक्षुणी-परिषद्का अंतिम पात्र है उस भिक्षुणीको (यह कहकर) देना चाहिये—भिक्षुणी! यह तेरे लिये पात्र है। जब तक न टूटे तब तक (इसे) धारण करना।—यह यहाँ उचित (प्रतिकार) है।

(९) भैषज्य

२५—भिक्षुणीको घी, मक्खन, तेल, मधु, खाँड़ (आदि) रोगी भिक्षुणियोंके सेवन करने लायक पथ्य (= भैषज्य)को ग्रहण कर अधिकसे अधिक सप्ताह भर रखकर भोग कर लेना चाहिये। इसका अतिक्रमण करनेपर ०।

(१०) चीवर

२६—जो कोई भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीको स्वयं चीवर देकर फिर कुपित और नाराज़ हो, छीने या छिनवाये उसे ०।

२७—जो कोई भिक्षुणी स्वयं सूत माँगकर कोली (= जुलाहा)से चीवर बुनवाये उसको ०।

२८—उसी भिक्षुणीके लिये *अज्ञातक* गृहस्थ या गृहस्थिनी कोलीसे चीवर बुनवायें और वह भिक्षुणी प्रदान करनेसे पहिले ही कोलीके पास जाकर (यह कहकर) चीवरमें

हेरफेर करायें—आवुस ! यह चीवर मेरे लिये बुना जा रहा है। इसे लंबा चौड़ा बनाओ, घना, अच्छी तरह तना, खूब अच्छी तरह बुना, अच्छी तरह मला हुआ और अच्छी तरह छटाँ हुआ बनाओ, तो हम भी आयुष्मानोंको कुछ दे देंगी; और नहीं तो कुछ भिक्षा मेंसे ही; तो ०।

२९—कार्त्तिककी त्रैमासी पूर्णिमाके आनेसे दस दिन पहिले ही यदि भिक्षुणीको फाजिल (पाँच से अधिक) चीवर प्राप्त हो तो फाजिल समझते हुए भिक्षुणीको उसे प्राप्त करना चाहिये। ग्रहणकर चीवरकाल तक रखना चाहिये। उसके बाद यदि रखे तो ०।

(११) संघके लाभसें भाँजी मारना

३०—जो कोई भिक्षुणी, संघके लिये प्राप्त वस्तु (=लाभ)को अपने लिये परिवर्तन करा ले तो ०।

(इति) जातरूप वग्ग ॥३॥

आर्याओ ! तीस *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* दोष कह दिये गये। आर्याओंसे पूछती हूँ—क्या (आप लोग) इनसे शुद्ध हैं ? दूसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं ? तीसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं ? आर्या लोग शुद्ध हैं, इसीलिये चुप हैं—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ।

निस्सग्गिय-पाचित्तिय समाप्त ॥३॥

---

§४—पाचित्तिय (५६-२२१)

आर्याओ ! यह एकसौ छियासठ *पाचित्तिय* दोष कहे जाते हैं—

(१) लहसुनका खाना

१—जो भिक्षुणी लहसुन खाये, उसे *पाचित्तिय* है।

(२) कामासक्तिके कार्य

२—जो भिक्षुणी गुह्यस्थानके लोमको बनवाये, उसे ०।

३—*तलघातक*[1] में *पाचित्तिय* है।

४—*जतुमट्टक*[2] में पाचित्तिय है।

५—(स्त्री-इन्द्रिय)की जलसे शुद्धि करते वक्त, भिक्षुणीको अधिकसे अधिक दो अँगुलियोंके दो पोर तक लेना चाहिये; उसका अतिक्रमण करनेपर *पाचित्तिय* है।

(३) भिक्षुकी सेवा

६—जो भिक्षुणी, भोजन करते भिक्षुकी जलसे या पंखेसे सेवा करे, उसे *पाचित्तिय* है।

(४) कच्चा अनाज

७—जो भिक्षुणी कच्चे अनाजको माँगकर या मँगवाकर, भूनकर या भुनवाकर, कूटकर या कुटवाकर, पकाकर या पकवाकर खाये उसे ०।

(५) पेसाब-पाखाना-सम्बन्धी

८—जो भिक्षुणी, पेसाब या पाखानेको, कूड़े या जूठेको दीवारके पीछे या प्राकारके पीछे फेंके, उसे ०।

९—जो भिक्षुणी पेसाब या पाखानेको, कूड़े या जूठेको हरियालीपर फेंके, उसे ०।

(६) नाच गान

१०—जो भिक्षुणी नृत्य, गीत, वाद्यको देखने जाये, उसे ०।

(इति) लसुन-वग्ग ॥१॥

(७) पुरुषके साथ

११—जो भिक्षुणी, प्रदीपरहित रात्रिके अंधकारमें अकेले पुरुषके साथ अकेली खड़ी रहे, या बातचीत करे, उसे ०।

---

[1] कृत्रिम मैथुन। [2] लाखका बना मैथुन-साधन।

१२—जो भिक्षुणी, आड़के स्थानमें अकेले पुरुपके साथ अकेली खड़ी रहे, या बातचीत करे, उसे ०।

१३—जो भिक्षुणी चौड़ेमें अकेले पुरुषके साथ अकेली खड़ी रहे, या बातचीत करे, उसे ०।

१४—जो भिक्षुणी, सड़कपर, या व्यूह (= एक निकास) या चौरस्तेपर अकेले पुरुपके साथ अकेली खड़ी रहे या बातचीत करे, या कानमें बात करे; या दूसरी भिक्षुणीको (वैसा करनेके लिये) प्रेरित करे, उसे ०।

(८) गृहस्थोंके घरमें जाना, बैठना

१५—जो भिक्षुणी, भोजन (-काल) के पूर्व गृहस्थोंके घरोंमें जा आसनपर बैठे, (गृह-) स्वामियोंको बिना पूछे चली आये, उसे ०।

१६—जो भिक्षुणी, भोजन (-काल)के पश्चात् गृहस्थोंके घरोंमें जा, स्वामियोंको बिना पूछे आसनपर बैठे या लेटे, उसे ०।

१७—जो भिक्षुणी, मध्यान्हके बाद (= *विकालमें*) गृहस्थोंके घरोंमें जा, स्वामियों को बिना पूछे बिस्तरा बिछाकर या बिछवाकर बैठे या लेटे, उसे ०।

(९) भिक्षुणीको दिक् करना

१८—जो भिक्षुणी, (बातको) उलटा समझ उलटा पकड़कर दूसरी (भिक्षुणी) को दिक् करे, उसे ०।

(१०) सरापना

१९—जो भिक्षुणी, अपनेको या दूसरेको नरक या ब्रह्मचर्यको ले कर शाप दे, उसे ०।

(११) देह पीटकर रोना

२०—जो भिक्षुणी, अपने (शरीर)को पीट पीटकर रोये, उसे ०।

(इति) रत्तन्धकार-वग्ग ॥२॥

(१२) स्नान

२१—जो भिक्षुणी, नंगी होकर नहाये ०।

२२—बनवाते समय भिक्षुणीको प्रमाणके अनुसार नहानेकी साड़ी बनवानी चाहिये। प्रमाण यह है—बुद्धके बित्तेसे लम्बाई चार बित्ता, चौड़ाई दो बित्ता। इसका अतिक्रमण करे, तो उसे ०।

(१३) चीवर

२३—जो भिक्षुणी, (दूसरी) भिक्षुणीके चीवरको न सीने न सिलवाने देकर, पीछे कोई बाधा न होनेपर भी वह न सिये न सिलवानेके लिये प्रयत्न करे, तो चार पाँच दिन (की देर)को छोड़, उसे ०।

२४—जो भिक्षुणी, पाँचवें दिन अवश्य *संघाटी* धारण करने (के नियम)का अतिक्रमण करे, उसे ०।

२५—जो भिक्षुणी, बिना पूछे (दूसरेके) चीवरको धारण करे, उसे ०।

२६—जो भिक्षुणी, (भिक्षुणी-) गणके चीवर-लाभमें विघ्न डाले, उसे ०।

२७—जो भिक्षुणी, धर्मानुसार चीवरके बँटवारेमें बाधा डाले, उसे ०।

२८—जो भिक्षुणी, श्रमण (= भिक्षु)के चीवरको (किसी) गृही, परिव्राजक या परिव्राजिकाको दे, उसे ०।

२९—जो भिक्षुणी, चीवरकी कम आशासे चीवरकालकी अवधि[1] को बिता दे, उसे ०।

३०—जो भिक्षुणी (भिक्षुणी-संघ द्वारा) धर्मानुसार किये जाते *कठिन* (चीवर) के लेने (= उद्धार)में रुकावट डाले, उसे ०।

(इति) नग्ग वग्ग ।।३।।

(१४) साथ लेटना

३१—यदि दो भिक्षुणियाँ एक चारपाईपर लेटें तो उन्हें ०।

३२—यदि दो भिक्षुणियाँ एक बिछौने-ओढ़नेमें लेटें तो उन्हें ०।

(१५) हैरान करना

३३—जो भिक्षुणी जानबूझकर (दूसरी) भिक्षुणीको हैरान करे, उसे ०।

(१६) रोगी शिष्याकी सेवा न करना

३४—जो भिक्षुणी शिष्या (=सहजीविनी)को रोगी देख न सेवा करे न सेवा करानेके लिये उद्योग करे, उसे ०।

(१७) उपाश्रय दे निकालना

३५—जो भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीको आश्रय (= *उपाश्रय*) देकर पीछे कुपित और असंतुष्ट हो निकालदे या निकलवादे, उसे ०।

(१८) पुरुष संसर्ग

३६—जो भिक्षुणी गृहस्थ या गृहस्थके पुत्रसे संसर्ग करके रहे उस भिक्षुणीको (दूसरी) भिक्षुणियाँ इस प्रकार कहें—"आर्ये ! गृहस्थ या गृहस्थके पुत्रसे संसर्ग करके मत रह। भगिनियोंका संघ तो एकान्तशीलता और विवेकका प्रशंसक है।" इस प्रकार उन भिक्षुणियों द्वारा कहे जानेपर यदि वह ज़िद न छोड़े तो भिक्षुणियाँ उसे तीन बार तक समझावें। यदि तीन बार तक समझानेपर वह अपनी ज़िद छोड़ दे तो यह उसके लिये अच्छा है; यदि न छोड़े, तो उसे ०।

(१९) विचरना

३७—जो भिक्षुणी भयपूर्ण, अशान्तिपूर्ण (स्व-)देशमें साथियोंके विना अकेली विचरण करे, उसे ०।

३८—जो भिक्षुणी भयपूर्ण, अशान्तिपूर्ण बाह्यदेशमें साथियोंके बिना (अकेली) विचरण करे, उसे ०।

३९—जो भिक्षुणी वर्षा कालके भीतर विचरण करे, उसे ०।

४०—जो भिक्षुणी वर्षा-वास करके कमसेकम पाँच छ योजन भी विचरण करनेके लिये न चली जाय, उसे ०।

(इति) तुवट्ट-वग्ग ॥४॥

---

(२०) तमाशा देखना

४१—जो भिक्षुणी राज-प्रासाद, चित्र-शाला, आराम, उद्यान, या पुष्करिणीको देखने जाये, उसे ०।

(२१) कुर्सी पलंगका इस्तेमाल

४२—जो भिक्षुणी कुर्सी या पलंगका उपयोग करे, उसे ०।

(२२) सूत कातना

४३—जो भिक्षुणी सूत काते, उसे ०।

(२३) गृहस्थोंकेसे काम-काज करना

४४—जो भिक्षुणी गृहस्थकेसे काम-काजको करे, उसे ०।

(२४) झगड़ा न निवटाना

४५—जो भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीके यह कहनेपर—"आओ आर्ये ! इस झगड़ेको निवटा दो"; "अच्छा"—कह पीछे कोई हर्ज न होनेपर भी (उस झगड़ेको) न निवटावे, न निवटानेके लिये प्रयत्न करे, तो उसे ०।

(२५) भोजन देना

४६—जो भिक्षुणी गृहस्थ, परिव्राजक या परिव्राजिकाको अपने हाथसे खाद्य, भोज्य दे, उसे ०।

(२६) आश्रमके चीवरमें वेपर्वाही

४७—जो भिक्षुणी ऋतुकालके चीवरका उपयोगकर (उसे) धोकर न रखदे, उसे ०।

४८—जो भिक्षुणी ऋतुकालके चीवरका उपयोग करके विना धोये रख चारिका (= विचरण = रामत)के लिये चली जाय, उसे ०।

(२७) झूठी विद्याओंका पढना पढ़ाना

४९—जो कोई भिक्षुणी झूठी, विद्याओंको सीखे पढ़े, उसे ०।

५०—जो भिक्षुणी झूठी विद्याओंको पढ़ाये, उसे ०।

(इति) चित्तागार-वग्ग ॥५॥

(२८) भिक्षुवाले आराममें प्रवेश

५१—जो भिक्षुणी जानते हुए जिस आराममें भिक्षु हों उसमें विना पूछे प्रवेश करे, उसे० ।

(२९) निन्दना

५२—जो भिक्षुणी भिक्षुको दुर्वचन कहे या निंदा करे, उसे ०।

५३—जो भिक्षुणी क्रुद्ध हो (भिक्षुणी-) गणको निन्दा करे, उसे ०।

(३०) तृप्तिके बाद खाना

५४—जो भिक्षुणी निमंत्रित हो तृप्त होजानेपर खाद्य-भोज्यको (फिर) खाये, उसे ०।

(३१) गृहस्थोंसे डाह

५५—जो भिक्षुणी (गृहस्थ-)कुलसे मत्सर करे, उसे ०।

(३२) भिक्षुओंरहित स्थानमें वर्षावास

५६—जो भिक्षुणी भिक्षुओं-रहित आश्रम(वाले स्थान)में वर्षावास करे, उसे ०।

(३३) प्रवारणा

५७—जो भिक्षुणी वर्षा-वास करके (भिक्षु-भिक्षुणी) दोनों संघोंके पास दृष्ट, श्रुत, परिशंकित इन तीनों प्रकारसे (जाने गये अपराधोंको) न स्वीकार करे, उसे ०।

(३४) उपदेश-श्रवण और उपोसथ

५८—जो भिक्षुणी उपदेश और उपोसथके लिये न जाय, उसे ०।

५९—भिक्षुणीको प्रति पन्द्रहवें दिन भिक्षु-संघसे दो बातोंके पानेकी इच्छा रखनी चाहिये—(१) उपोसथमें पूछना, (२) उपदेश सुननेके लिये जाना। इनका अतिक्रमण करनेसे उसे ०।

(३५) पुरुषसे फोड़ा चिरवाना

६०—जो भिक्षुणी गुह्यस्थान में उत्पन्न फोड़े या व्रणको विना (भिक्षुणियोंके) संघ या गणको पूछे अकेले पुरुषसे अकेलीही चिरवाये या धुलवाये या लेप कराये बँधवाये या छुड़वाये; उसे ०।

(इति) आराम-वग्ग ॥६॥

(३६) भिक्षुणी बनाना

६१—जो भिक्षुणी गर्भिणीको भिक्षुणी बनावे, उसे ०।

६२—जो भिक्षुणी दूध पीते बच्चेवालीको भिक्षुणी बनावे, उसे ०।

६३—जो भिक्षुणी—जिसने दो वर्ष तक (हिंसा, चोरी, व्यभिचार, झूठ, मद्य-पान और मध्याह्नोपरान्त भोजन—इन छओंके परित्याग रूपी) छः धर्मोंको नहीं सीखा—ऐसी *शिक्षमाणा*[1] को भिक्षुणी बनाये, उसे ०।

६४—जो भिक्षुणी दो वर्षों तक छहों धर्मोंको सीखे हुए *शिक्षमाणाको* संघकी सम्मतिके विना भिक्षुणी बनावे, उसे ०।

६५—जो भिक्षुणी बारह वर्षसे कमकी व्याही स्त्रीको भिक्षुणी बनावे, उसे ०।

६६—जो भिक्षुणी पूरे बारह वर्षकी व्याही स्त्रीको दो वर्ष तक छओं धर्मोंकी शिक्षा विना दिये भिक्षुणी बनावे, उसे ०।

६७—जो भिक्षुणी पूरे बारह वर्षकी व्याही स्त्रीको दो वर्ष तक छओं धर्मोंकी शिक्षा देकर संघकी सम्मति विना भिक्षुणी बनावे, उसे ०।

६८—जो भिक्षुणी शिष्या (=सहजीविनी)को भिक्षुणी बनाकर दो वर्षों तक (शिक्षा, दीक्षा आदिमें) न सहायता करे न करवाये, उसे ०।

६९—जो भिक्षुणी *उपसंपन्न* (=भिक्षुणी) हो (अपनी) उपाध्यायाके साथ दो वर्ष तक न रहे, उसे ०।

---

[1] भिक्षुणी बननेकी उम्मीदवारीमें जो नियमोंको सीख रही है।

७०—जो भिक्षुणी शिष्याको भिक्षुणी बनाकर कमसे कम पाँच छ योजन भी न ले लिवा जाये, उसे ० ।

(इति) गाब्भिनी-वग्ग ॥७॥

७१—जो भिक्षुणी बीस वर्षसे कमकी कुमारीको भिक्षुणी बनावे, उसे ० ।

७२—जो भिक्षुणी पूरे बीस वर्षकी कुमारीको दो वर्ष तक छओं धर्मोंकी शिक्षा बिना दिये भिक्षुणी बनावे, उसे ० ।

७३—जो भिक्षुणी पूरे बीस वर्षकी कुमारीको दो वर्ष तक छओं धर्मोंकी शिक्षा देकर संघकी सम्मति बिना भिक्षुणी बनावे, उसे ० ।

७४—जो भिक्षुणी बारह वर्षसे कम उम्रवालीको भिक्षुणी बनावे, उसे ० ।

७५—जो भिक्षुणी पूरे बारह वर्षवालीको संघकी सम्मति बिना भिक्षुणी बनावे, उसे ० ।

७६—जो भिक्षुणी—"आर्ये ! मत (इसे) भिक्षुणी बना"—कहे जानेपर "अच्छा" कह, पीछे बातसे हट जाय, उसे० ।

७७—जो भिक्षुणी *शिक्षमाणा*को—"यदि तू आर्ये ! मुझे चीवर देगी तो मैं तुझे भिक्षुणी बनाऊँगी"—कह कर पीछे बिना किसी कारणके न भिक्षुणी बनावे, न उसके लिये प्रयत्न करे, उसे० ।

७८—जो भिक्षुणी *शिक्षमाणा*को—"यदि तू आर्ये ! दो वर्ष तक मेरे साथ साथ रहेगी तो मैं तुझे साधुनी बनाऊँगी"—कह कर पीछे बिना किसी कारणके न भिक्षुणी बनावे, न उसके लिये प्रयत्न करे, उसे० ।

७९—जो भिक्षुणी पुरुष या कुमारसे संसर्ग रखनेवाली चंडी दुःखदायिका, *शिक्षमाणा*को भिक्षुणी बनावे, उसे० ।

८०—जो भिक्षुणी माता, पिता या पतिकी आज्ञाके बिना *शिक्षमाणा*को भिक्षुणी बनावे, उसे० ।

८१—जो भिक्षुणी *परिवास*के सम्मति-दानसे, *शिक्षमाणा*को भिक्षुणी बनावे, उसे० ।

८२—जो भिक्षुणी प्रति वर्ष भिक्षुणी बनावे, उसे० ।

८३—जो भिक्षुणी एक वर्षमें दोको भिक्षुणी बनावे, उसे० ।

(इति) कुमारिभूत-वग्ग ॥८॥

(३७) छाता-जूता, सवारी

८४—जो भिक्षुणी नीरोग होते हुए छाते, जूतेको धारण करे, उसे० ।

८५—जो भिक्षुणी नीरोग होते हुए सवारीसे जाये, उसे० ।

(३८) आभूषण आदिका शृङ्गार, सँवार

८६—जो कोई भिक्षुणी *संघाणी*[1]को धारण करे, उसे० ।

८७—जो कोई भिक्षुणी स्त्रियोंके आभूषणको धारण करे, उसे० ।

८८—जो भिक्षुणी सुगंधित चूर्णसे नहाये, उसे० ।

---

[1] एक तरहकी माला ।

८९—जो भिक्षुणी वासे *पानी* (तिलकी खली)से नहाये, उसे० ।

९०—जो भिक्षुणी, भिक्षुणीसे (अपनी देह) मलवाये, मिँजवाये, उसे० ।

९१—जो भिक्षुणी *शिक्षमाणा*से (अपनी देह) मलवाये, मिँजवाये, उसे० ।

९२—जो भिक्षुणी श्रामणेरीसे (अपनी देह) मलवाये, मिँजवाये, उसे० ।

९३—जो भिक्षुणी गृहस्थिनीसे (अपनी देह) मलवाये, मिँजवाये, उसे० ।

(३९) भिक्षुके सामने आसनपर बैठना, प्रश्न पूछना

९४—जो भिक्षुणी भिक्षुके सामने विना पूछे आसनपर बैठे, उसे० ।

९५—जो भिक्षुणी अवकाश माँगे विना भिक्षुसे प्रश्न पूछे, उसे० ।

(४०) विना कंचुक गाँवमें जाना

९६—जो भिक्षुणी कंचुकके विना गाँवमें प्रवेश करे, उसे० ।

(इति) छत्त-वग्ग ॥९॥

(४१) भाषणकी अनियमता

९७—जानबूझकर झूठ बोलनेमें *पाचित्तिय* है ।[1]

९८—*ओमसवाद* (=वचन मारनेमें) *पाचित्तिय* है ।

९९—भिक्षुणियोंकी चुगली करनेमें *पाचित्तिय* है ।

१००—भिक्षुणीका, अ-भिक्षुणीको पदोंके क्रमसे *धर्म* (=बुद्धोपदेश) बँचवाना *पाचित्तिय* है ।

(४२) साथ लेटना

१०१—जो कोई भिक्षुणी अन्-उपसंपन्नाके साथ दो तीन रातसे अधिक एक साथ सोये उसे *पाचित्तिय* है ।

१०२—जो भिक्षुणी पुरुषके साथ शयन करे, उसे *पाचित्तिय* है ।

(४३) धर्मोपदेश

१०३—पण्डिता (=विज्ञा)को छोड़ जो कोई भिक्षुणी पुरुषको पाँच छः वचनोंसे अधिक धर्मका उपदेश दे उसे *पाचित्तिय* है ।

(४४) दिव्य-शक्ति प्रदर्शन

१०४—जो कोई भिक्षुणी अनुपसंपन्नाको यथार्थ दिव्य-शक्तिके बारेमें भी कहे उसे *पाचित्तिय* है ।

(४५) अपराध-प्रकाशन

१०५—जो कोई भिक्षुणी (किसी) भिक्षुणीके *दुट्ठुल*[2] अपराधको भिक्षुणियोंकी सम्मतिके विना अन्-उपसम्पन्ना (=अ-भिक्षुणी)से कहे, उसे *पाचित्तिय* है ।

---

[1] मिलाओ—भिक्खु-पातिमोक्ख §५. १-६४ (पृष्ठ २३-२८)

(४६) जमीन खोदना

१०६—जो कोई भिक्षुणी जमीन खोदे या खुदवाये उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) मुसावाद-वग्ग ॥१०॥

(४७) वृक्ष काटना

१०७—भूत-ग्राम (=तृण वृक्ष आदि)के गिरानेमें *पाचित्तिय* है।

(४८) संघके पूछनेपर चुप रहना

१०८—(संघके पूछनेपर) उत्तर न दे हैरान करनेमें *पाचित्तिय* है।

(४९) निंदना

१०९—निंदा और वदनामी करनेमें *पाचित्तिय* है।

(५०) संघकी चीज़में बेपर्वाही

११०—जो कोई भिक्षुणी संघके मंच, पीढ़ा, बिस्तरा और गद्देको खुली जगहमें बिछा या बिछवाकर वहाँसे जाते वक्त उन्हें न उठाती है, न उठवाती है, या बिना पूछेही चली जाती है, उसे *पाचित्तिय* है।

१११—जो कोई भिक्षु, संघके विहार (=आश्रम)में बिछौना बिछाकर या बिछवा-कर वहाँसे जाते वक्त उसे न उठाती है, न उठवाती है, या बिना पूछेही चली जाती है, उसे *पाचित्तिय* है।

११२—जो कोई भिक्षुणी जानकर संघके *विहार*में पहिलेसे आई भिक्षुणीका विना ख्याल किये, यही सोचकर कि दूसरा नहीं, (इस तरह) आसन लगाये जिससे कि (पहलेवाली भिक्षुणीको) दिक्कत हो, और वह चली जाये, उसे *पाचित्तिय* है।

११३—जो कोई भिक्षुणी कुपित और असंतुष्ट हो (दूसरी) भिक्षुणीको संघके विहारसे निकाले या निकलवाये, उसे *पाचित्तिय* है।

११४—जो कोई भिक्षुणी संघके विहारमें ऊपरके कोठेपर पैर धवधवाते हुए मंच (=चारपाई) या पीठपर एकदमसे बैठे या लेटे उसे *पाचित्तिय* है।

११५—भिक्षुणीको स्वामीवाला(=महल्लक)विहार बनवाते समय, दरवाज़े तक किवाड़ों के बंद करने और जंगलोंके घुमानेके या लीपनेके समय हरियालीसे अलग खड़ी होकर करना चाहिये। उससे आगे यदि हरियालीपर खड़ी हो करे तो *पाचित्तिय* है।

(५१) बिना छना पानी पीना आदि

११६—जो कोई भिक्षु जानकर प्राणी-सहित पानीसे तृण या मिट्टीको सींचे या सिंच-वाये, उसे पाचित्तिय है।

(इति) भूत-गामवग्ग ॥११॥

(५२) भोजन सम्बन्धी

११७—नीरोग भिक्षुणीको (एक) निवास-स्थानमें एक ही भोजन ग्रहण करना चाहिये। इससे अधिक ग्रहण करे तो *पाचित्तिय* है।

११८—सिवाय विशेष अवस्थाके गणके साथ भोजन करनेमें *पाचित्तिय* है। विशेष अवस्थाएँ ये हैं—रोगी होना, चीवर-दान, चीवर बनाना, यात्रा, नावपर चढ़ा होना, *गहासमय* (=बुद्ध आदिके दर्शनके लिये जाना) और श्रमणों (=सभी मतके साधुओं)के भोजनका समय।

११९—घरपर जानेपर यदि (गृहस्थ) भिक्षुणीको आग्रहपूर्वक पूआ (=पाहुर), मंथ (=पाथेय) यथेच्छ प्रदान करे तो इच्छा होनेपर पात्रके मेखला तक भर ग्रहण करे। उससे अधिक ग्रहण करे तो *पाचित्तिय* है। पात्रको मेखला तक भरकर ग्रहण कर वहाँसे निकल भिक्षुणियोंमें बाँटना चाहिये यह उस जगह उचित है।

१२०—जो कोई भिक्षुणी विकाल (=मध्याह्नके बाद)में खाद्य, भोज्य खाये तो *पाचित्तिय* है।

१२१—जो कोई भिक्षुणी रख-छोड़े खाद्य, भोज्यको खाये तो *पाचित्तिय* है।

१२२—जो कोई भिक्षुणी जल और दन्त धोवन को छोड़कर विना दिये मुखमें जाने लायक आहारको ग्रहण करे तो *पाचित्तिय* है।

१२३—जो कोई भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीको ऐसा कहे—"आओ आर्ये! गाँव या कस्बेमें भिक्षाटनके लिये चलें।" फिर उसे दिलवाकर वा न दिलवाकर प्रेरित करे—"आर्ये! जाओ, तुम्हारे साथ मुझे बात करना या बैठना अच्छा नहीं लगता, अकेले ही अच्छा लगता है।"—दूसरे नहीं, सिर्फ़ इतने ही कारणसे *पाचित्तिय* है।

१२४—जो कोई भिक्षुणी भोजवाले कुलमें प्रविष्ट हो बैठकी करती है तो उसे *पाचित्तिय* है।

१२५—जो कोई भिक्षुणी पुरुषके साथ एकान्त पर्देवाले आसनमें बैठती है तो *पाचित्तिय* है।

१२६—जो कोई भिक्षुणी पुरुषके साथ अकेले एकान्तमें बैठे उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) भोजन-वग्ग ॥१२॥

१२७—सिवाय विशेष अवस्थाके, निमंत्रित होनेपर जो भिक्षुणी भोजन रहनेपर भी विद्यमान भिक्षुणीको बिना पूछे भोजनके पहिले या पीछे गृहस्थोंके घरमें गमन करे, उसे *पाचित्तिय* है। विशेष अवस्था है—चीवर बनाना और चीवर-दान।

१२८—नीरोग भिक्षुणीको *पुनः प्रवारणा*[1] और *नित्य*[1]*-प्रवारणा*के सिवाय चातुर्मासके भोजन आदि पदार्थ (= प्रत्यय)के दानको सेवन करना चाहिये। उससे बढ़कर यदि सेवन करे तो *पाचित्तिय* है।

(५३) सेनाका तमाशा

१२९—जो कोई भिक्षुणी वैसे किसी कामके विना सेना प्रदर्शनको देखने जाये, उसे *पाचित्तिय* है।

१३०—यदि उस भिक्षुणीको सेनामें जानेका कोई काम हो तो उसे दो तीन रात सेनामें बसना चाहिये। उससे अधिक बसे तो *पाचित्तिय* है।

---

[1] रोगी होनेपर पथ्यादिका दान पुनः-प्रवारणा और नित्य-प्रवारणा है।

१३१—दो तीन रात सेनामें बसते हुए (भी) यदि भिक्षुणी रण-क्षेत्र (=उद्योधिका), परेड (=बलाग्र), सेना-व्यूह या अनीक (=हाथी घोड़ा, आदिकी सेनाओंका क्रमसे स्थापना)को देखने जाये तो उसे *पाचित्तिय* है।

(५४) मद्य-पान

१३२—सुरा और कच्ची शराब पीनेमें *पाचित्तिय* है।

(५५) हँसी खेल

१३३—उँगलीसे गुदगुदानेमें *पाचित्तिय* है।

१३४—पानीमें खेल करनेमें *पाचित्तिय* है।

१३५—(व्यक्ति या वस्तुके) तिरस्कार करनेमें *पाचित्तिय* है।

१३६—जो कोई भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीको डरवाये तो *पाचित्तिय* है।

(इति) चरित्त-वग्ग ॥१३॥

(५६) आग तापना

१३७—वैसी ज़रूरत होनेके बिना जो कोई नीरोग भिक्षुणी तापनेकी इच्छासे आग जलाये या जलवाये तो *पाचित्तिय* है।

(५७) स्नान

१३८—जो कोई भिक्षुणी सिवाय विशेष अवस्थाके आध माससे पहले नहाये, उसे *पाचित्तिय* होता है। विशेष अवस्था यह है—ग्रीष्मके पीछेके डेढ़ मास और वर्षाका प्रथम मास, यह ढाई मास और गर्मीका समय, जलन होनेका समय, रोगका समय, काम (=लीपने पोतने आदिका समय), रास्ता चलनेका समय तथा आँधी-पानी का समय।

(५८) चीवर-पात्र

१३९—नया चीवर पानेपर नीला, काला या कीचड़ इन तीन दुर्वर्ण करनेवाले (पदार्थों)मेंसे किसी एकसे बदरंग (=दुर्वर्ण) करना चाहिये। यदि भिक्षुणी तीन बदरंग करने वाले (पदार्थों)मेंसे किसी एकसे नये चीवरको बिना बदरंग किये, उपभोग करे तो *पाचित्तिय* है।

१४०—जो कोई भिक्षुणी (किसी) भिक्षु, भिक्षुणी, *शिक्षमाणा*,[1] श्रामणेर या श्रामणेरी को, स्वयं चीवर प्रदान कर बिना लौटाने (की सम्मति पाये) उपयोग करे, उसे *पाचित्तिय* है।

१४१—जो कोई भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीके पात्र, चीवर, आसन, सुई रखनेकी फोंफी (सूचीघर) या कमरबन्दको हटाकर, चाहे परिहासके लिये ही क्यों न रक्खे, *पाचित्तिय* है।

(५९) प्राणिहिंसा

१४२—जो कोई भिक्षुणी जान कर प्राणीके जीवको मारे तो *पाचित्तिय* है।

[1] जो भिक्षुणी होनेकी उम्मीदवारी कर रही हो।

१४३—जो कोई भिक्षुणी जान कर प्राणि-सहित जलको पीये, उसे *पाचित्तिय* है।

(६०) झगड़ा बढ़ाना

१४४—जो कोई भिक्षुणी जानते हुए धर्मानुसार फैसला हो गये मामलेको फिर चलाने के लिये प्रेरणा करे, उसे *पाचित्तिय* है।

(६१) यात्राके साथी

१४५—जो कोई भिक्षुणी जानते हुए सलाह करके चोरोंके काफ़िलेके साथ एक रास्तेसे, चाहे दूसरे गाँव ही तक जाये, उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) जोति वग्ग ॥१४॥

(६२) बुरी धारणा

१४६—जो कोई भिक्षुणी ऐसा कहे—मैं भगवान्‌के धर्मको ऐसा जानती हूँ, कि भगवान्‌ने जो (निर्वाण आदिके) विघ्नकारक कार्य कहे हैं, उनके सेवन करनेपर भी वह विघ्न नहीं कर सकते। तो दूसरी भिक्षुणियोंको उसे ऐसा कहना चाहिये—"आर्ये! मत ऐसा कहो। मत भगवान्‌पर झूठ लगाओ। भगवान्‌पर झूठ लगाना अच्छा नहीं है। भगवान ऐसा नहीं कह सकते। भगवान्‌ने विघ्नकारक कामोंको अनेक प्रकारसे विघ्न करनेवाले कहा है। सेवन करनेपर वह विघ्न करते हैं—कहा है।" इस प्रकार भिक्षुणियोंके कहनेपर वह भिक्षुणी यदि जिद् करे, तो भिक्षुणियोंको तीन वार तक उसे छोड़नेके लिये उस भिक्षुणीसे कहना चाहिये। यदि तीन वार तक कहे जानेपर उसे छोड़ दे, तो अच्छा। यदि न छोड़े तो पाचित्तिय है।

१४७—जो कोई भिक्षुणी जानते हुए उक्त (प्रकारकी बुरी) धारणावाली (तथा) धर्मानुसार (मत) न परिवर्तन करनेवाली हो उस विचारको न छोड़नेवाली, भिक्षुणीके साथ (जो भिक्षुणी) सहभोज, सह-वास या सह-शय्या करती है, उसे *पाचित्तिय* है।

१४८—(क) *श्रामणेरी*[1] भी यदि ऐसा कहे—मैं भगवान्‌के धर्मको ऐसे जानता हूँ कि भगवान्‌ने जो (निर्वाण आदिके) विघ्नकारक (=अन्तरायिक) काम कहे हैं, उनके सेवन करनेपर भी वह विघ्न नहीं कर सकते"; तो (दूसरी) भिक्षुणियोंको उसे ऐसा कहना चाहिये—"आर्ये! श्रामणेरी! मत ऐसा कहो! मत भगवान्‌पर झूठ लगाओ। भगवान्‌पर झूठ लगाना अच्छा नहीं है। भगवान् ऐसा नहीं कह सकते। भगवान्‌ने विघ्नकारक कामोंको अनेक प्रकारसे विघ्न करनेवाले कहा है। सेवन करनेपर वह विघ्न करते हैं—कहा है।" इस प्रकार भिक्षुणियों द्वारा कहे जानेपर यदि वह श्रामणेरी जिद् करे तो भिक्षुणियाँ श्रामणेरीको ऐसा कहें—"आर्ये! श्रामणेरी! आजसे तुम उन भगवान्‌को अपना शास्ता (=उपदेशक=गुरु) न कहना, और जो दूसरी श्रामणेरियाँ दो रात, तीन रात तक भिक्षुणियोंके साथ रह सकती हैं वह (साथ रहना) भी तुम्हारे लिये नहीं है। चलो, (यहाँसे) निकल जाओ!"

---

[1] भिक्षुणी बननेकी उम्मेदवार।

(ख) जो कोई भिक्षुणी जानते हुये, इस प्रकार निकाली हुई श्रामणेरीको, सेवामें रक्खे, सहभोजन करे, सह-शय्या करे, उसे *पाचित्तिय* है।

(६३) धार्मिक बातका अस्वीकारना

१४९—जो कोई भिक्षुणी, भिक्षुणियोंके धार्मिक बात कहनेपर इस प्रकार कहे—आर्ये ! मैं तब तक इन भिक्षुणी-नियमों (=*शिक्षा-पदों*)को नहीं सीखूँगी जब तक कि दूसरी चतुर *विनय-धर*[1] भिक्षुणीको न पूछलूँ; उसे *पाचित्तिय* है। भिक्षुणियो ! सीखनेवाली भिक्षुणियोंको जानना चाहिये, पूछना चाहिये, प्रश्न करना चाहिये—यह उचित है।

(६४) प्रातिमोक्ष

१५०—जो कोई भिक्षुणी *पातिमोक्ख* (=प्रातिमोक्ष)को आवृत्ति करते वक्त ऐसा कहे—इन छोटे छोटे शिक्षा-पदोंकी आवृत्तिसे क्या मतलब जो कि सन्देह, पीड़ा और क्षोभ पैदा करने वाले हैं—(इस प्रकार) शिक्षा-पदके विरुद्ध कथन करनेमें *पाचित्तिय* है।

१५१—जो कोई भिक्षुणी प्रत्येक आधे मास *पातिमोक्ख*की आवृत्ति करते समय ऐसा कहे—"यह तो मैं आर्ये ! अब जानती हूँ; कि सूत्रोंमें आये, सूत्रों द्वारा अनुमोदित इस धर्मको भी प्रति पन्द्रहवें दिन आवृत्ति की जाती है। यदि दूसरी भिक्षुणियाँ उस भिक्षुणीको पूर्वसे बैठी जानें; (और) दो तीन या अधिक बार *पातिमोक्ख*की आवृत्तिकी जानेपर भी (उसको वैसेही पायें); तो बेसमझीके कारण वह भिक्षुणी मुक्त नहीं हो सकती। जो कुछ अपराध उसने किया है धर्मानुसार उसका प्रतिकार कराना चाहिये और आगे उसपर मोहका आरोप करना चाहिये—आर्ये ! तुझे अलाभ है, तुझे बुरा लाभ हुआ है जो कि *पातिमोक्ख*की आवृत्ति करते वक्त तू अच्छी तरह दृढ़ कर मनमें धारण नहीं करती। उस मोहके करनेपर (=मूढ़ताके लिये) *पाचित्तिय* है।

(६५) मारना, धमकाना

१५२—जो कोई भिक्षुणी कुपित, असंतुष्ट हो (दूसरी) भिक्षुणीको पीटती है, *पाचित्तिय* है।

१५३—जो कोई भिक्षुणी कुपित, असंतुष्ट हो (दूसरी) भिक्षुणीको (मारनेका आकार दिखलाते हुए) धमकावे, उसे *पाचित्तिय* है।

(६६) संघादिसेसका दोषारोप

१५४—जो कोई भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीपर निर्मूल *संघादिसेस* (दोष)का लांछन लगाये, उसे पाचित्तिय है।

(६७) भिक्षुणीको दिक करना

१५५—जो कोई भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीको, दूसरे नहीं सिर्फ इसी मतलबसे कि इसको क्षण भर बेचैनी होगी; जान बूझकर संदेह उत्पन्न करे, उसे *पाचित्तिय* है।

१५६—जो कोई भिक्षुणी दूसरे नहीं सिर्फ इसी मतलबसे कि जो कुछ यह कहेंगी उसे

[1] विनयपिटक जिसे कंठस्थ है।

सुनूँगी; कलह करती, विवाद करती, झगड़ती भिक्षुणियोंके (झगड़ेको सुननेके लिये) कान लगाती है, उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) दिट्ठि-वग्ग ॥१५॥

(६८) सम्मति-दान

१५७—जो कोई भिक्षुणी धार्मिक कर्मोंके लिये अपनी सम्मति (=छन्द) देकर पीछे हट जाती है, उसे *पाचित्तिय* है।

१५८—जो कोई भिक्षुणी संघके फैसला करनेकी बातमें लगे रहते वक्त बिना (अपना) छन्द (= सम्मति = vote) दियेही आसनसे उठकर चली जाय, उसे *पाचित्तिय* है।

१५९—जो कोई भिक्षुणी सारे संघके साथ (एकमत हो) चीवर देकर पीछे पलट जाती है—मुँह देखी करके (यह) भिक्षु लोग संघके धनको बाँटते हैं—उसे *पाचित्तिय* है।

(६९) सांघिक लाभमें भाँजी मारना

१६०—जो कोई भिक्षुणी जानते हुए संघके लिये मिले हुए लाभको (एक) व्यक्ति (के लाभके रूपमें) परिणत करती है, उसे वह *पाचित्तिय* है।

(७०) बहुमूल्य वस्तुका हटाना

१६१ —(क) जो कोई भिक्षुणी रत्न या रत्नके समान (पदार्थ)को *आराम* और सराय (=आवसथ)से दूसरी जगह ले या लिवा जाये, उसे *पाचित्तिय* है।

(ख) रत्न या रत्नके समान (पदार्थ)को *आराम* या *आवसथ*में लेकर या लिवाकर भिक्षुणीको उसे एक (जगह) रख देना चाहिये, (यह सोचकर) कि जिसका होगा वह ले जायगा।—यह यहाँ उचित है।

(७१) सूचीघर

१६२—जो कोई भिक्षुणी हड्डी, दन्त या सींकके *सूचीघर*को बनवाये, उसके लिये (उस सूचीघरका) तोड़ देना *पाचित्तिय* (=प्रायश्चित्त) है।

(७२) चौकी, चारपाई

१६३—नई चारपाई या तख्त (=पीठ)को बनवाते वक्त भिक्षुणी उन्हें, निचले ओटको छोड़ बुद्धके अंगुलसे आठ अंगुलवाले पावोंका बनवाये। इसे अतिक्रमण करनेपर (पावोंको नाप कर) कटवा देना *पाचित्तिय* है।

१६४—जो कोई भिक्षुणी चारपाई या तख्तको रुई भरकर बनवाये, उसके लिये उधेड़ डालना *पाचित्तिय* है।

(७३) वस्त्र

१६५—खुजली ढाँकनेके वस्त्र (लंगोट)को बनवाते समय भिक्षुणी प्रमाणके अनुसार बनवाये। प्रमाण इस प्रकार है—बुद्धके बित्तेसे चार बित्ता लंबा दो बित्ता चौड़ा। इसका अतिक्रमण करनेपर काट डालना *पाचित्तिय* (=प्रायश्चित्त) है।

१६६—जो कोई भिक्षुणी बुद्धके चीवरके बराबर या उससे बड़ा चीवर बनवाये तो काट

डालना *पाचित्तिय* (=प्रायश्चित्त) है । बुद्धके चीवरका प्रमाण इस प्रकार है—सुगत (=बुद्ध)के वित्तेसे लंबाई नौ वित्ता और चौड़ाई छ वित्ता । ... ।

(इति) धम्मिक-वग्ग ॥१६॥

आर्याओ ! यह एकसै छाछठ *पाचित्तिय* दोष कहे गये । आर्याओंसे पूछती हूँ—क्या (आप लोग) इनसे शुद्ध हैं ? दूसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं ? तीसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं ? आर्या लोग शुद्ध हैं, इसीलिये चुप हैं—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ ।

पाचित्तिय समाप्त ॥४॥

---

§५–पाटिदेसनिय[1] (२२२-२९)

आर्याओ ! यह आठ *पाटिदेसनिय* दोष कहे जाते हैं—

(१) खानेकी चीज़को खास तौरसे माँगकर खाना

१—जो भिक्षुणी नीरोग होते हुए माँगकर घी खाये उसे *प्रतिदेशना* करनी चाहिये—"आर्ये ! मैंने निन्दनीय, अयुक्त, प्रतिदेशना करने योग्य कार्य किया। सो मैं उसकी प्रतिदेशना करती हूँ।"

२—जो कोई भिक्षुणी नीरोग होते हुए दहीको माँगकर खाये, उसे०।

३—जो कोई भिक्षुणी नीरोग होते हुए तेलको माँगकर खाये, उसे०।

४—जो कोई भिक्षुणी नीरोग होते हुए मधुको माँगकर खाये, उसे०।

५—जो कोई भिक्षुणी नीरोग होते हुए मक्खनको माँगकर खाये, उसे०।

६—जो कोई भिक्षुणी नीरोग होते हुए मछलीको माँगकर खाये, उसे०।

७—जो कोई भिक्षुणी नीरोग होते हुए मांसको माँगकर खाये, उसे०।

८—जो कोई भिक्षुणी नीरोग होते हुए दूधको माँगकर खाये, उसे०।

आर्याओ ! यह आठ *पाटिदेसनिय* दोष कहे गये। आर्याओंसे पूछती हूँ—क्या (आप लोग) इनसे शुद्ध हैं ? दूसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं ? तीसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं ? आर्या लोग शुद्ध हैं, इसीलिये चुप हैं—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ।

पाटिदेसनिय समाप्त ॥५॥

---

[1] तुलना करो भिक्खु-पातिमोक्ख, पाचित्तिय §५। ३९ (पृष्ट २६)। अपराध स्वीकार पूर्वक क्षमायाचना पाटिदेसनिय कहा जाता है।

§६—सेखिय[1]

आर्याओ ! यह (पचहत्तर) *सेखिय* (= सीखने योग्य) बातें कही जाती हैं—

(१) चीवर पहिनना

१—*परिमंडल* (चारों ओरसे ढाँककर) वस्त्र पहिनूँगी—यह शिक्षा (ग्रहण) करनी चाहिये ।

२—*परिमंडल* ओढ़ूँगी ।

(२) गृहस्थोंके घरमें जाना, बैठना

३—(गृहस्थोंके) घरमें अच्छी तरह (शरीरको) आच्छादित करके जाऊँगी—० ।

४—घरमें अच्छी तरह (शरीरको) आच्छादित करके बैठूँगी—० ।

५—घरमें अच्छी तरह संयमके साथ जाऊँगी—० ।

६—घरमें अच्छी तरह संयमके साथ बैठूँगी—० ।

७—घरमें नीची आँखकर जाऊँगी—० ।

८—घरमें नीची आँखकर बैठूँगी—० ।

९—घरमें शरीरको बिना उतान किये जाऊँगी—० ।

१०—घरमें शरीरको बिना उतान किये बैठूँगी—० ।

(इति) परिमंडल वग्ग ॥ १ ॥

११—(गृहस्थोंके) घरमें न कहकहा लगाते जाऊँगी—० ।

१२—(गृहस्थोंके) घरमें न कहकहा लगाते बैठूँगी—० ।

१३—घरमें चुपचाप जाऊँगी—० ।

१४—घरमें चुपचाप बैठूँगी—० ।

१५—घरमें देहको न भाँजते हुए जाऊँगी—० ।

१६—घरमें देहको न भाँजते हुए बैठूँगी—० ।

१७—घरमें बाँहको न भाँजते हुए जाऊँगी—० ।

१८—घरमें बाँहको न भाँजते हुए बैठूँगी—० ।

१९—घरमें सिरको न हिलाते हुए जाऊँगी—० ।

२०—घरमें सिरको न हिलाते हुए बैठूँगी—० ।

(इति) उज्जग्घिक वग्ग ॥२॥

[1] मिलाओ—भिक्खु-पातिमोक्ख §७ (पृष्ठ ३३-३५)

२१—घरमें न कमरपर हाथ रखकर जाऊँगी—०।
२२—घरमें न कमरपर हाथ रखकर बैठूँगी—०।
२३—घरमें न अवगुंठित हो (सिर ढाँके) जाऊँगी—०।
२४—घरमें न अवगुंठित हो (सिर ढाँके) बैठूँगी—०।
२५—घरमें न पंजोंके बल जाऊँगी—०।
२६—घरमें न पालथी मारकर बैठूँगी—०।

(३) भिक्षान्न ग्रहण और भोजन

२७—भिक्षान्नको सत्कार पूर्वक ग्रहण करूँगी—०।
२८—(भिक्षा) पात्रकी ओर ख्याल रखते भिक्षान्नको ग्रहण करूँगी—०।
२९—(अधिक नहीं) मात्राके अनुसार सूप (= तेमन)वाले भिक्षान्नको ग्रहण करूँगी—०।
३०—(पात्रसे उभरे नहीं) समतल भिक्षान्नको ग्रहण करूँगी—०।

(इति) खम्भक वग्ग ॥३॥

३१—सत्कारके साथ भिक्षान्नको खाऊँगी—०।
३२—(भिक्षा) पात्रकी ओर ख्याल रखते भिक्षान्नको खाऊँगी—०।
३३—एक ओरसे भिक्षान्नको खाऊँगी—०।
३४—मात्राके अनुसार सूपके साथ भिक्षान्नको खाऊँगी—०।
३५—पिंड (स्तूप)को मींज मींजकर नहीं भोजन करूँगी—०।
३६—अधिक दाल या भाजीकी इच्छासे (व्यंजन)को भातसे नहीं ढाँकूगी—०।
३७—नीरोग होते अपने लिये दाल या भातको माँगकर नहीं भोजन करूँगी—०।
३८—न अवज्ञाके ख्यालसे दूसरोंके पात्रको देखूँगी—०।
३९—न बहुत बड़ा ग्रास बनाऊँगी—०।
४०—ग्रासको गोल बनाऊँगी—०।

(इति) सक्कच्च-वग्ग ॥४॥

४१—ग्रासको बिना मुँह तक लाये मुखके द्वारको न खोलूँगी—०।
४२—भोजन करते समय सारे हाथको मुँहमें न डालूँगी—०।
४३—ग्रास पड़े हुए मुखसे बात नहीं करूँगी—०।
४४—ग्रास उछाल उछालकर नहीं खाऊँगी—०।
४५—ग्रासको काट काटकर नहीं खाऊँगी—०।
४६—न गाल फुला फुलाकर खाऊँगी—०।
४७—न हाथ झाड़ झाड़कर खाऊँगी—०।
४८—न जूठ बिखेर बिखेरकर खाऊँगी—०।
४९—न जीभ चटकार चटकार कर खाऊँगी—०।
५०—न चपचप करके खाऊँगी—०।

(इति) कबळ-वग्ग ॥५॥

५१—न सुड़सुड़कर खाऊँगी—०।
५२—न हाथ चाट चाटकर खाऊँगी—०।

५३—न पात्र चाट चाटकर खाऊँगी—०।
५४—न ओठ चाट चाटकर खाऊँगी—०।
५५—न जूठ लगे हाथसे पानीका बर्तन पकड़ूँगी—०।
५६—न जूठ लगे पात्रके धोवनको घरमें छोड़ूँगी—०।

(४) कैसेको उपदेश न करना

५७—हाथमें छाता धारण किये नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—०।
५८—हाथमें दंड लिये नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—०।
५९—हाथमें शस्त्र लिये नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—०।
६०—हाथमें आयुध लिये नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—०।

(इति) सुरुसुरु-वग्ग ॥६॥

६१—खड़ाऊँपर चढ़े नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—०।
६२—जूता पहने निरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—०।
६३—सवारीमें बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—०।
६४—शय्यामें लेटे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—०।
६५—पालथी मारकर बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—०।
६६—सिर लपेटे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—०।
६७—ढँके शिरवाले नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—०।
६८—न (स्वयं) भूमिपर बैठकर; आसनपर बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म उपदेशूँगी—०।
६९—न नीचे आसनपर बैठकर ऊँचे आसनपर बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म उपदेशूँगी—०।
७०—खड़े हो, बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—०।
७१—(अपने) पीछे पीछे चलते आगे आगे जाते नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—०।
७२—(अपने) रास्तेसे हटकर चलते हुए, रास्ते से चलते नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—०।

(५) पिसाब-पाखाना

७३—नीरोग रहते खड़े खड़े पिसाब-पाखाना नहीं करूँगी—०।
७४—नीरोग रहते हरियालीमें पिसाब-पाखाना नहीं करूँगी—०।
७५—नीरोग रहते पानीमें पिसाब-पाखाना नहीं करूँगी—०।

(इति) पादुका-वग्ग ॥७॥

आर्याओ! यह (पचहत्तर) सेखिय बातें कह दी गईं। आर्याओंसे मैं पूछती हूँ—क्या (आप लोग) इनसे शुद्ध हैं? दूसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं? तीसरी बार फिर पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं? आर्या लोग इनसे शुद्ध हैं, इसीलिये चुप हैं—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ।

सेखिय समाप्त ॥६॥

---

§७—अधिकरण-समथ (३०५-११)

आर्याओ ! (समय समयपर) उत्पन्न हुए अधिकरणों (= झगड़ों)के शमनके लिये यह सात *अधिकरण-समथ* कहे जाते हैं—

(१) झगड़ा मिटानेके तरीके

१—सन्मुख-विनय देना चाहिये ।
२—स्मृति-विनय देना चाहिये ।
३—अमूढ़-विनय देना चाहिये ।
४—प्रतिज्ञात-करण (=स्वीकार) कराना चाहिये ।
५—यद्भूयसिक ।
६—तत्पापीयसिक ।
७—तिणवत्थारक ।

आर्याओ ! यह सात *अधिकरण समथ* कहे गये । आर्याओंसे पूछती हूँ—क्या आप लोग इनसे शुद्ध हैं ? दूसरी बार पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं ? तीसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं ? आर्या लोग इनसे शुद्ध हैं, इसीलिये चुप हैं—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ ।

अधिकरण समथ समाप्त ॥७॥

आर्याओ ! *निदान* कह दिया गया । (१-८) आठ *पाराजिक* दोष कह दिये गये । (९-२५) सत्तरह *संघादिसेस* दोष कह दिये गये । (२६-५५) तीस *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* दोष कह दिये गये । (५६-२२१) एक सौ छाछठ *पाचित्तिय* दोष कह दिये गये । (२२२-२२९) आठ *पाटिदेसनिय* दोष कह दिये गये । (२३०-३०४) पचहत्तर *सेखिय* बातें कह दी गईं । (३०५-३११) सात *अधिकरण-समथ* कह दिये गये । इतनाही उन भगवान्‌के सुत्तों (= सूक्तों=कथनों)में आये, सुत्तों द्वारा अनुमोदित (नियम हैं जिनकी कि) प्रत्येक पन्द्रहवें दिन आवृत्ति की जाती है । (हम) सबको एकमत हो परस्पर अनुमोदन करते, विवाद न करते उन्हें सीखना चाहिये ।

इति

भिक्खुनी-पातिमोक्ख समाप्त

पातिमोक्ख समाप्त

ख—खन्धक

३—महावग्ग

३—महावग्ग

१—महास्कन्धक[1]

१—बुद्धत्व लाभ और बुद्धकी प्रथम यात्रा। २—शिष्य, उपाध्याय आदिके कर्तव्य। ३—उपसंपदा और प्रव्रज्या। ४—उपसंपदाकी विधि।

§१—बुद्धत्व लाभ और बुद्धकी प्रथम यात्रा

१—उरुवेला

(१) बोधि-कथा

उस समय बुद्ध भगवान् उ रु वे ला में[2] ने रं ज रा नदीके तीर बोधि-वृक्षके नीचे, प्रथम बुद्धपद (=अभिसंबोधि)को प्राप्त हुए थे। भगवान् बोधिवृक्षके नीचे सप्ताह भर एक आसनसे मोक्षका आनंद लेते हुए बैठे रहे। उन्होंने रातके प्रथम याममें प्रतीत्य-समुत्पादका अनुलोम (=आदिसे अन्तकी ओर) और प्रतिलोम (अन्तसे आदिकी ओर) मनन किया।—"अविद्याके कारण संस्कार होता है, संस्कारके कारण वि ज्ञा न होता है, विज्ञानके कारण ना म - रू प, नाम-रूपके कारण छ आ य त न, छ आयतनोंके कारण स्प र्श, स्पर्शके कारण वे द ना, वेदनाके कारण तृष्णा, तृष्णाके कारण उपादान, उपादानके कारण भ व, भवके कारण जा ति, जाति (=जन्म)के कारण जरा (=बुढ़ापा), मरण, शोक, रोना पीटना, दुःख, चित्त-विकार और चित्त-खेद उत्पन्न होते हैं। इस तरह इस (संसार)की—जो केवल दुःखोंका पुंज है—उत्पत्ति होती है। अविद्याके बिल्कुल विरागसे, (अविद्याका) नाश होनेसे, संस्कारका विनाश होता है। संस्कार-नाशसे विज्ञानका नाश होता है। विज्ञान-नाशसे नाम-रूपका नाश होता है। नाम-रूपके नाशसे छ आयतनोंका नाश होता है। छ आयतनोंके नाशसे स्पर्श का नाश होता है। स्पर्श-नाशसे वेदना का नाश होता है। वेदना-नाशसे तृष्णा का नाश होता है। तृष्णा-नाशसे उपादान का नाश होता है। उपादान-नाशसे भव का नाश होता है। भव-नाशसे जाति का नाश होता है। जाति-नाशसे जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, चित्त-विकार और चित्त-खेद नाश होते हैं। इस प्रकार इस केवल दुःख-पुञ्जका नाश होता है। भगवान्‌ने इस अर्थको जानकर, उसी समय यह उ दा न कहा—

[1] भोट-भाषामें अनुवादित मूल सर्वास्तिवादके विनय-वस्तुमें इसे ही प्रव्रज्या-वस्तु कहा गया है।

[2] बोधगया, जि० गया (बिहार)।

"जब धर्म होते जग प्रकट, सोत्साह ध्यानी विप्र (=ब्राह्मण)को।
तब शांत हों कांक्षा सभी, देखे स-हेतू धर्मको।।"

फिर भगवान्ने रातके मध्यम-याममें प्र ती त्य - स मु त्पा द को अनुलोम-प्रतिलोमसे मनन किया।—"अविद्याके कारण संस्कार होता है० दुःख पुंजका नाश होता है"। भगवान्ने इस अर्थको जानकर उसी समय यह उदान कहा—

"जब धर्म होते जग प्रकट, सोत्साह ध्यानी विप्रको।
तब शांत हों कांक्षा सभीही जान कर क्षय-कार्यको।।"

फिर भगवान्ने रातके अन्तिम-याममें प्रतीत्य-समुत्पादको अनुलोम-प्रतिलोम करके मनन किया।—"अविद्या० केवल दुःख-पुंजका नाश होता है"। भगवान्ने इस अर्थको जानकर उसी समय यह उ दा न कहा—

"जब धर्म होते जग प्रकट, सोत्साह ध्यानी विप्रको।
ठहरे कँपाता मार-सेना, रवि प्रकाशै गगन ज्यों।।"

बोधिकथा समाप्त।

(२) अजपाल कथा

सप्ताह बीतनेपर भगवान् उस समाधिसे उठकर, बो धि वृ क्ष के नीचेसे वहाँ गये, जहाँ अ ज पा ल नामक बर्गदका वृक्ष था, वहाँ पहुँचकर अजपाल बर्गदके वृक्षके नीचे सप्ताह भर मोक्षका आनंद लेते हुए, एक आसनसे बैठे रहे। उस समय कोई अभिमानी ब्राह्मण, जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया। पास आकर भगवान्के साथ....(कुशलक्षेम पूछ)....एक ओर खळा होगया। एक ओर खळे हुए उस ब्राह्मणने भगवान्से यों कहा—"हे गौतम! ब्राह्मण कैसे होता है? ब्राह्मण बनानेवाले कौनसे धर्म हैं"? भगवान्ने इस अर्थको जानकर, उसी समय यह उ दा न कहा—

"जो विप्र बाहित-पाप मल-अभिमान-बिनु संयत रहे।
वेदांत-पारग; ब्रह्मचारी ब्रह्मवादी धर्मसे।
सम नहिं कोई जिससा जगत् (में)।"

(३) मुचलिन्द कथा

फिर सप्ताह बीतनेपर भगवान् उस समाधिसे उठ, अ ज पा ल बर्गदके नीचेसे वहाँ गये, जहाँ मु च लिं द (वृक्ष) था। वहाँ पहुँचकर मु च लिं दके नीचे सप्ताह भर मोक्षका आनन्द लेते हुए एक आसनसे बैठे रहे। उस समय सप्ताह भर अ-समय महामेघ, (और) ठंडी हवा-वाली बदली पळी। तब मु च लि न्द नाग-राज अपने घरसे निकलकर भगवान्के शरीरको सात बार अपने देहसे लपेटकर, शिरपर बळा फण तानकर खळा हो गया जिसमें कि भगवान्को शीत, उष्ण, डँस, मच्छर, वात, धूप तथा रेंगनेवाले जन्तु न छूवें। सप्ताह बाद मु च लि न्द नागराज आकाशको मेघ-रहित देख, भगवान्के शरीरसे (अपने) देहको हटाकर (और उसे) छिपाकर, बालकका रूप धारणकर भगवान्के सामने खळा हुआ। भगवान्ने इसी अर्थको जानकर उसी समय यह उ दा न कहा—

"सन्तुष्ट देखनहार श्रुतधर्मा, सुखी एकान्तमें।
निर्द्वन्द्व सुख है लोकमें, संयम जो प्राणी मात्रमें।।
सब कामनायें छोळना, वैराग्य है सुख लोक में।
है परम सुख निश्चय वही, जो साधना अभिमानका।।

(४) राजायतन कथा

सप्ताह बीतनेपर भगवान् फिर उस समाधिसे उठ, मु च लिं द के नीचेसे वहाँ गये, जहाँ रा जा-य त न (वृक्ष) था। वहाँ पहुँचकर रा जा य त न के नीचे सप्ताह भर मोक्षका आनन्द लेते हुए एक आसनसे बैठे रहे। उस समय त प स्सु और भ ल्लि क, (दो) वनजारे उ त्क ल दे श से उस स्थानपर पहुँचे। उनकी जात-बिरादरीके देवताने त प स्सु, भ ल्लि क वनजारोंसे कहा—"मार्ष (मित्र)! बुद्धपदको प्राप्त हो यह भगवान् रा जा य त न के नीचे विहार कर रहे हैं। जाओ उन भगवान्‌को मट्ठे (=मन्थ) और लड्डू (=मधु-पिंड)से सम्मानित करो, यह (दान) तुम्हारे लिये चिरकाल तक हित और सुखका देनेवाला होगा। तब तपस्सु और भल्लिक वनजारे मट्ठा और लड्डू ले जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। पास जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक तरफ खड़े हो गये। एक तरफ खड़े हुए तपस्सु और भल्लिक वनजारोंने यह कहा—

"भन्ते! भगवान्! हमारे मट्ठे और लड्डुओंको स्वीकार कीजिये, जिससे कि चिरकाल तक हमारा हित और सुख हो।"

उस समय भगवान्‌ने सोचा—"तथागत (भिक्षाको) हाथमें नहीं ग्रहण किया करते; मैं मट्ठा और लड्डू किस (पात्र) में ग्रहण करूँ।" तब चारों म हा रा जा भगवान्‌के मनकी बात जान, चारों दिशाओंसे चार पत्थरके (भिक्षा-)पात्र भगवान्‌के पास ले गये—"भन्ते! भगवान्! इसमें मट्ठा और लड्डू ग्रहण कीजिये।" भगवान्‌ने उस अभिनव शिलामय पात्रमें मट्ठा और लड्डू ग्रहणकर भोजन किया। उस समय तपस्सु, भल्लिक वनजारोंने भगवान्‌से कहा—'भन्ते! हम दोनों भगवान् तथा धर्म-की शरण जाते हैं। आजसे भगवान् हम दोनोंको अंजलिबद्ध शरणागत उपासक जानें।"

संसारमें वही दोनों (बुद्ध और धर्म) दो वचनों-से प्रथम उपासक हुए।[1]

(५) ब्रह्मयाचन कथा

सप्ताह बीतनेपर भगवान् फिर उस समाधिसे उठ, रा जा य त न के नीचेसे जहाँ अ ज पा ल बर्गद था, वहाँ गये। वहाँ अजपाल बर्गदके नीचे भगवान् विहार करने लगे। तब एकान्तमें ध्यानावस्थित भगवान्‌के चित्तमें वितर्क पैदा हुआ—"मैंने गंभीर, दुर्दर्शन, दुर्-ज्ञेय, शांत, उत्तम, तर्कसे अप्राप्य, निपुण, पण्डितों द्वारा जानने योग्य, इस धर्मको पा लिया। यह जनता काम-तृष्णा (=आलयमें) रमण करने

---

[1]इस प्रकार (वैशाख पूर्णिमाके दूसरे दिन) प्रतिपद्‌की रातको यह मनमें कर (१) बोधि वृक्षके नीचे सप्ताह भर एक आसनसे बैठे।....तब भगवान्‌ने आठवें दिन समाधिसे उठ....(२) (वज्र-)आसनसे थोड़ा पूर्वलिये उत्तर दिशामें खड़े हो....(वज्र-)आसन और बोधि वृक्षको, बिना पलक गिराये (=अनि-मेष) नेत्रोंसे देखते सप्ताह बिताया। वह स्थान अनिमेष चैत्य नामवाला हुआ। फिर (३) (वज्र-)-आसन और खड़े होने (अनिमेष चैत्य)के स्थानके बीच, पूर्वसे पश्चिम लम्बे रत्न-चंक्रम (=रत्नमय टहलनेके स्थान)पर टहलते सप्ताह बिताया, वह रत्न-चंक्रम चैत्य नामवाला हुआ। उसके पश्चिम-दिशामें देवताओंने रत्नघर बनाया। वहाँ आसन मार बैठ अभिधर्म-पिटक....पर विचार करते सप्ताह बिताया। वह स्थान रत्नघर-चैत्य नामवाला हुआ। इस प्रकार बोधिके पास चार सप्ताह बिता, पाँचवें सप्ताह बोधिवृक्षसे जहाँ (५) अजपाल न्यग्रोध था, (भगवान्) वहाँ गये। उस न्यग्रोध (बर्गद)के नीचे बकरी चरानेवाले (=अजपाल) जाकर बैठते थे, इसलिये उसका अजपाल न्यग्रोध नाम हुआ।... बोधिके पूर्वदिशामें यह वृक्ष था।....(६) मुचलिन्द वृक्षके पास वाली पुष्करिणीमें उत्पन्न यह दिव्य मुचलिन्द नागराज था।... महाबोधिके पूर्वकोणमें स्थित (उस) मुचलिन्द वृक्षसे.....(७) दक्षिण दिशामें स्थित राजायतन वृक्षके पास गए। (—अट्ठकथा)

वाली काम-रत काममें प्रसन्न है। काममें रमण करनेवाली इस जनताके लिये, यह जो का र्य का र ण रूपी प्र ती त्य - स मु त्पा द है, वह दुर्दर्शनीय है; और यह भी दुर्दर्शनीय है, जो कि यह सभी संस्कारोंका शमन, सभी मन्त्रोंका परित्याग, तृष्णाका क्षय, विराग, निरोध (=दुख-निरोध), और निर्वाण है। मैं यदि धर्मोपदेश भी करूँ और दूसरे उसको न समझ पावें, तो मेरे लिये यह तरद्दुद, और पीड़ा (मात्र) होगी। उसी समय भगवान्‌को पहिले कभी न सुनी, यह अद्‌भुत गाथायें सूझ पड़ीं—

"यह धर्म पाया कष्टसे, इसका न युक्त प्रकाशना।
नहिं राग-द्वेष-प्रलिप्तको है सुकर इसका जानना।
गंभीर उल्टी-धारयुत दुर्दृश्य सूक्ष्म प्रवीणका।
तम-पुंज-छादित रागरतद्वारा न संभव देखना॥"

भगवान्‌के ऐसा समझनेके कारण, (उनका) चित्त धर्मप्रचारकी ओर न झुककर अल्प-उत्सुकताकी ओर झुक गया। तब स हा प ति ब्र ह्मा ने भगवान्‌के चित्तकी बातको जानकर ख्याल किया—"लोक नाश हो जायगा रे! जब तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्धका चित्त धर्म-प्रचारकी ओर न झुक, अल्प-उत्सुकता (=उदासीनता)की ओर झुक जाये।"

(ऐसा ख्यालकर) सहापति ब्रह्मा, जैसे बलवान् पुरुष (विना परिश्रम) फैली बाँहको समेट ले, समेटी बाँहको फैलादे, ऐसे ही ब्रह्मलोकसे अन्तर्धान हो, भगवान्‌के सामने प्रकट हुए। फिर सहापति ब्रह्माने उपरना (=चद्दर) एक कंधेपर करके, दाहिने जानुको पृथिवीपर रख, जिधर भगवान् थे उधर हाथ जोड़, भगवान्‌से कहा—"भन्ते! भगवान् धर्मोपदेश करें, सुगत! धर्मोपदेश करें। अल्प-मलवाले प्राणी भी हैं, धर्मके न सुननेसे वह नष्ट हो जायेंगे। (उपदेश करें) धर्मको सुननेवाले (भी होवेंगे)" सहापति ब्रह्माने यह कहा, और यह कहकर यह भी कहा—

"मगधमें मलिन चित्तवालोंसे चिन्तित, पहिले अशुद्ध धर्म पैदा हुआ।
(अब दुनिया) अमृतके द्वारको खोलनेवाले विमल (पुरुष)से जाने गये इस धर्मको सुने।
"पथरीले पर्वतके शिखरपर खड़ा (पुरुष) जैसे चारों ओर जनताको देखे। उसी तरह हे सुमेध! हे सर्वत्र नेत्रवाले! धर्मरूपी महलपर चढ़ सब जनताको देखो॥

"हे शोक-रहित! शोक-निमग्न जन्मजरासे पीळित जनताकी ओर देखो। उठो वीर! हे संग्रामजित्! हे सार्थवाह! उऋण-ऋण! जगमें विचरो, धर्मप्रचार करो, भगवान्! जाननेवाले भी मिलेंगे।"

तब भगवान्‌ने ब्रह्माके अभिप्रायको जानकर, और प्राणियोंपर दया करके, बुद्ध-नेत्रसे लोकका अवलोकन किया। बुद्ध-चक्षुसे लोकको देखते हुए भगवान्‌ने जीवोंको देखा, उनमें कितने ही अल्प-मल, तीक्ष्ण-बुद्धि, सुन्दर-स्वभाव, समझानेमें सुगम प्राणियोंको भी देखा। उनमें कोई कोई परलोक और दोषसे भय करते, विहर रहे थे। जैसे उत्पलिनी, पद्मिनी (=पद्मसमुदाय) या पुंडरीकिनीमें से कितने ही उत्पल, पद्म या पुंडरीक उदकमें पैदा हुए उदकमें बँधे उदकसे बाहर न निकल (उदकके) भीतर ही डूबकर पोषित होते हैं। कोई कोई उत्पल (नीलकमल), पद्म (रक्तकमल), या पुंडरीक (श्वेतकमल) उदकमें उत्पन्न, उदकमें बँधे (भी) उदकके बराबर ही खड़े होते हैं। कोई कोई उत्पल, पद्म या पुंडरीक उदकमें उत्पन्न, उदकसे बँधे (भी), उदकसे बहुत ऊपर निकलकर, उदकसे अलिप्त (हो) खड़े होते हैं। इसी तरह भगवान्‌ने बुद्ध-चक्षुसे लोकको देखा—अल्पमल, तीक्ष्णबुद्धि, सुस्वभाव, सुबोध्य प्राणियोंको देखा जो परलोक तथा बुराईसे भय खाते विहर रहे थे। देखकर स हा प ति ब्रह्मासे गाथाद्वारा कहा—

'उनके लिये अमृतका द्वार बंद होगया, जो कानवाले होनेपर भी, श्रद्धाको छोड़ देते हैं।
'हे ब्रह्मा! (वृथा) पीड़ाका ख्यालकर मैं मनुष्योंको निपुण, उत्तम, धर्मको नहीं कहता था।'

(६) धर्म चक्र प्रवर्तन

तब ब्रह्मा सहापति—'भगवान्‌ने धर्मोपदेशके लिये मेरी बात मानली' यह जान, भगवान्‌को, अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर वहीं अन्तर्धान होगये।

उस समय भगवान्‌के (मनमें) हुआ—"मैं पहिले किसे इस धर्मकी देशना (=उपदेश) करूँ इस धर्मको शीघ्र कौन जानेगा?" फिर भगवान्‌के (मनमें) हुआ—"यह आ ला र-का ला म पण्डित, चतुर मेधावी चिरकालसे निर्मल-चित्त है, मैं पहिले क्यों न आलार-कालामको ही धर्मोपदेश दूँ? वह इस धर्मको शीघ्र ही जान लेगा।" तब (गुप्त) देवताने भगवान्‌से कहा—"भन्ते! आलार-कालामको मरे एक सप्ताह हो गया।" भगवान्‌को भी ज्ञान-दर्शन हुआ—"आलार-कालामको मरे एक सप्ताह हो गया।" तब भगवान्‌के (मनमें) हुआ—"आलार-कालाम महा-आजानीय था, यदि वह इस धर्मको सुनता, शीघ्र ही जान लेता।" फिर भगवान्‌के (मनमें) हुआ—"यह उ द्द क-रा म पु त्त पण्डित, चतुर, मेधावी, चिरकालसे निर्मल चित्त है, क्यों न मैं पहिले उद्दक-रामपुत्तको ही धर्मोपदेश करूँ? वह इस धर्मको शीघ्र ही जान लेगा।" तब (गुप्त=अन्तर्धान) देवताने आकर कहा—"भन्ते! रात ही उद्दक-रामपुत्त मर गया।" भगवान्‌को भी ज्ञान-दर्शन हुआ।....। फिर भगवान्‌के (मनमें) हुआ—"प ञ्च-व र्गी य भिक्षु मेरे बहुत काम करनेवाले थे, उन्होंने साधनामें लगे मेरी सेवा की थी। क्यों न मैं पहिले पञ्चवर्गीय भिक्षुओंको ही धर्मोपदेश दूँ।" भगवान्‌ने सोचा—"इस समय पञ्चवर्गीय भिक्षु कहाँ विहर रहे हैं?" भगवान्‌ने अ-मानुष विशुद्ध दिव्य नेत्रोंसे देखा—"पञ्चवर्गीय भिक्षु वा रा ण सी के[1] ऋ षि-प त न मृगदावमें विहारकर रहे हैं।"

तब भगवान् उ रु वे ला में इच्छानुसार विहारकर, जिधर वाराणसी है, उधर चारिका (=रामत)के लिये निकल पड़े। उ प क आ जी व क[2]ने भगवान् को बो धि (=बोध गया) और गयाके बीचमें जाते देखा। देखकर भगवान्‌से बोला—"आयुष्मान् (आवुस)! तेरी इन्द्रियाँ प्रसन्न हैं, तेरी कांति परिशुद्ध तथा उज्वल है। किसको (गुरु) मानकर, हे आवुस! तू प्रव्रजित हुआ है? तेरा गुरु कौन है? तू किसके धर्मको मानता है?"

यह कहनेपर भगवान्‌ने उपक आजीवकसे गाथामें कहा—

"मैं सबको पराजित करनेवाला, सबको जाननेवाला हूँ;
सभी धर्मोमें निर्लेप हूँ।
सर्व-त्यागी (हूँ), तृष्णाके क्षयसे मुक्त हूँ; मैं अपनेही जानकर उपदेश करूँगा।
मेरा आचार्य नहीं है मेरे सदृश (कोई) विद्यमान नहीं।
देवताओं सहित (सारे) लोकमें मेरे समान पुरुष नहीं।
मैं संसारमें अर्हत् हूँ, अपूर्व उपदेशक हूँ।
मैं एक सम्यक् संबुद्ध, शान्ति तथा निर्वाणको प्राप्त हूँ।
धर्मका चक्का घुमानेके लिये का शि यों के नगरको जा रहा हूँ।
(वहाँ) अन्धे हुए लोकमें अमृत-दुन्दुभी बजाऊँगा॥"

"आयुष्मान्! तू जैसा दावा करता है उससे तो अनन्त जि न हो सकता है।"
"मेरे ऐसे ही आदमी जिन होते हैं, जिनके कि चित्तमल (=आस्रव) नष्ट हो गये हैं।
मैंने दुराइयोंको जीत लिया है, इसलिये हे उपक! मैं जिन हूँ।"
ऐसा कहनेपर उपक आजीवक—"होवोगे आवुस!" कह, सिर हिला, बेरास्ते चला गया।

---

[1] वर्तमान सारनाथ, बनारस। [2] उस समयके नंगे साधुओंका एक सम्प्रदाय था। मक्खली-गोसाल इनका एक प्रधान आचार्य था।

२—वाराणसी

तब भगवान् क्रमशः यात्रा करते हुए, जहाँ वा रा ण सीमें ऋ षि - प त न मृगदाव था, जहाँ पञ्चवर्गीय भिक्षु थे, वहाँ पहुँचे। पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने भगवान्‌को, दूरसे आते हुए देखा। देखते ही आपसमें पक्का किया—

"आवुसो! साधना-भ्रष्ट जोळू वटोरू श्रमण गौतम आ रहा है। इसे अभिवादन नहीं करना चाहिये और न प्रत्युत्थान (=सत्कारार्थ खळा होना) करना चाहिये। न इसका पात्र-चीवर (आगे बढ़कर) लेना चाहिये। केवल आसन रख देना चाहिये, यदि इच्छा होगी तो बैठेगा।"

जैसे जैसे भगवान् पञ्चवर्गीय भिक्षुओंके समीप आते गये, वैसेही वैसे वह....अपनी प्रतिज्ञापर स्थिर न रह सके। (अन्तमें) भगवान्‌के पास जानेपर एकनें भगवान्‌का पात्र-चीवर लिया, एकने आसन बिछाया; एकने पादोदक (=पैर धोनेका जल), पादपीठ (=पैरका पीढ़ा) और पादकठलिका (=पैर रगळनेकी लकळी) ला पास रक्खी। भगवान् बिछाये आसनपर बैठे। बैठकर भगवान्‌ने पैर धोये। (उस समय) वह (लोग) भगवान्‌के लिये 'आवुस' शब्दका प्रयोग करते थे। ऐसा करनेपर भगवान्‌ने कहा—"भिक्षुओ! तथागतको नाम लेकर या 'आवुस' कहकर मत पुकारो। भिक्षुओ! तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध हैं। इधर कान दो, मैंने जिस अमृतको पाया है, उसका तुम्हें उपदेश करता हूँ। उपदेशानुसार आचरण करनेपर, जिसके लिये कुलपुत्र घरसे बेघर हो सन्यासी होते हैं, उस अनुपम ब्रह्मचर्यफलको, इसी जन्ममें शीघ्र ही स्वयं जानकर=साक्षात्कारकर=लाभकर विचरोगे।"

"ऐसा कहनेपर पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने भगवान्‌से कहा—'आवुस! गौतम! उस साधना-में, उस धारणामें और उस दुष्कर तपस्यामें भी तुम आर्योंके ज्ञानदर्शनकी पराकाष्ठाकी विशेषता, उत्तरमनुष्य-धर्म (=दिव्य शक्ति)को नहीं पा सके; फिर अब साधनाभ्रष्ट, जोळू-बटोरू हो तुम आर्य-ज्ञान-दर्शनकी पराकाष्ठा, उत्तर-मनुष्य-धर्मको क्या पाओगे।"

यह कहनेपर भगवान्‌ने पञ्चवर्गीय भिक्षुओंसे कहा—"भिक्षुओ! तथागत जोळू-बटोरू नहीं हैं, और न साधनासे भ्रष्ट हैं, । भिक्षुओ! तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्ध हैं०।० लाभकर विहार करोगे।

दूसरी बार भी प ञ्च व र्गी य भिक्षुओंने भगवान्‌से कहा—"आवुस! गौतम०" दूसरी बार भी भगवान्‌ने फिर (वही) कहा०। तीसरी बार भी पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने भगवान्‌से (वही) कहा०। ऐसा कहनेपर भगवान्‌ने पञ्चवर्गीय भिक्षुओंसे कहा—"भिक्षुओ! इससे पहिले भी क्या मैंने कभी इस प्रकार बात की है?"

"भन्ते! नहीं"

"भिक्षुओ! तथागत अर्हत्० विहार करोगे।"

तब भगवान् पञ्चवर्गीय भिक्षुओंको समझानेमें समर्थ हुए; और पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने भग-वान्‌के (उपदेश) सुननेकी इच्छासे कान दिया, चित्त उधर किया।.....

[१] "भिक्षुओ! साधुको यह दो अतियां सेवन नहीं करनी चाहियें। कौनसी दो? (१) जो यह हीन, ग्राम्य, अनाळी मनुष्योंके (योग्य), अनार्य(-सेवित), अनर्थोंसे युक्त, कामवासनाओंमें लिप्त होना है; और (२) जो दुःख (-मय), अनार्य(-सेवित) अनर्थोंसे युक्त आत्म-पीळामें लगना है। भिक्षुओ! इन दोनों ही अतियोंमें न जाकर, तथागतने मध्यम-मार्ग खोज निकाला है, (जोकि)

---

[१] देखो, संयुत्त नि० ५५ : २ : १

आँख-देनेवाला, ज्ञान-करानेवाला शांतिके लिये, अभिज्ञाके लिये, परिपूर्ण-ज्ञानके लिये और निर्वाणके लिये है। वह कौनसा मध्यम-मार्ग (=मध्यम-प्रतिपद्) तथागतने खोज निकाला है; (जोकि) ०? वह यही [1]आर्य-अष्टांगिक मार्ग है; जैसे कि—ठीक-दृष्टि, ठीक-संकल्प, ठीक-वचन, ठीक-कर्म, ठीक-जीविका, ठीक-प्रयत्न, ठीक-स्मृति, ठीक-समाधि। यह है भिक्षुओ ! मध्यम-मार्ग (जिसको)०।

यह भिक्षुओ ! दुःख आर्य (=उत्तम) सत्य (=सच्चाई) है।—जन्म भी दुःख है, जरा भी दुःख है, व्याधि भी दुःख है, मरण भी दुःख है, अप्रियोंका संयोग दुःख है, प्रियोंका वियोग भी दुःख है, इच्छा करनेपर किसी (चीज़)का नहीं मिलना भी दुःख है। संक्षेपमें सारे भौतिक अभौतिक पदार्थ (=पाँच[1] उपादानस्कन्ध) ही दुःख हैं। भिक्षुओ ! दुःख-समुदय (=दुःख-कारण) आर्य सत्य है। यह जो तृष्णा है—फिर जन्मनेकी, खुश होनेकी, राग-सहित जहाँ तहाँ प्रसन्न होनेकी—। जैसे कि—काम-तृष्णा, भव (=जन्म) तृष्णा, विभव-तृष्णा। भिक्षुओ ! यह है दुःख-निरोध आर्य-सत्य; जोकि उसी तृष्णाका सर्वथा विरक्त हो, निरोध = त्याग = प्रतिनिस्सर्ग = मुक्ति = निलीन होना। भिक्षुओ ! यह है दुःख-निरोधकी ओर जानेवाला मार्ग (दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद्) आर्य सत्य। यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है।.............

"यह दुःख आर्य-सत्य है' भिक्षुओ ! यह मुझे न-सुने धर्मोंमें, आँख उत्पन्न हुई = ज्ञान उत्पन्न हुआ = प्रज्ञा उत्पन्न हुई = विद्या उत्पन्न हुई = आलोक उत्पन्न हुआ। 'यह दुःख आर्य-सत्य परिज्ञेय है' भिक्षुओ ! यह मुझे पहिले न-सुने धर्मोंमें०। (सो यह दुःख-सत्य) परि-ज्ञात है।' भिक्षुओ ! यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोंमें०।

"यह दुःख-समुदय आर्य-सत्य है' भिक्षुओ, यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोंमें आँख उत्पन्न हुई, ज्ञान हुआ = प्रज्ञा उत्पन्न हुई = विद्या उत्पन्न हुई = आलोक उत्पन्न हुआ। 'यह दुःख-समुदय आर्य-सत्य त्याज्य है", भिक्षुओ ! यह मुझे०।' ०प्रहीण (छूट गया)' यह भिक्षुओ मुझे०।

"यह दुःख-निरोध आर्य-सत्य है' भिक्षुओ ! यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोंमें आँख उत्पन्न हुई० "सो यह दुःख-निरोध आर्य-सत्य साक्षात् (=प्रत्यक्ष) करना चाहिये" भिक्षुओ ! यह मुझे०। 'यह दुःख-निरोध-सत्य साक्षात् किया' भिक्षुओ ! यह मुझे०।

"यह दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् आर्य-सत्य है' भिक्षुओ ! यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोंमें, आँख उत्पन्न हुई०। यह दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् आर्यसत्य भावना करनी चाहिये, भिक्षुओ ! यह मुझे०। "यह दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् भावना की" भिक्षुओ ! यह मुझे०।

"भिक्षुओ ! जबतक कि इन चार आर्यसत्योंका (उपरोक्त) प्रकारसे तेहरा (हो) बारह आकारका—यथार्थ शुद्ध ज्ञान-दर्शन न हुआ; तबतक भिक्षुओ ! मैंने यह दावा नहीं किया—देवों सहित मार-सहित ब्रह्मा-सहित (सभी) लोकमें, देव-मनुष्य-सहित, साधु-ब्राह्मण-सहित (सभी) प्राणियोंमें, अनुपम परम ज्ञानको मैंने जान लिया' भिक्षुओ ! (जब) इन चार आर्य-सत्योंका (उपरोक्त) प्रकारसे तेहरा (हो) बारह आकारका यथार्थ शुद्ध ज्ञान-दर्शन हो गया, तब मैंने भिक्षुओ ! यह दावा किया—'देवों सहित० मैंने जान लिया। मैंने ज्ञानको देखा। मेरी मुक्ति अचल है। यह अंतिम जन्म है। फिर अब आवागमन नहीं।"

भगवान्‌ने यह कहा। संतुष्ट हो पंचवर्गीय भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया। इस व्याख्यानके कहे जानेके समय, आयुष्मान् कौण्डिन्यको—"जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है, वह

[1] विस्तारके लिये दीघनिकायके "सतिपट्ठानसुत्त" को देखो।

सब नाशमान् है, यह विरज=विमल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ। इस उपदेशके कहे जानेके समय आयुष्मान् कौ ण्डि न्य को—"जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है वह सब नाशमान् है"—यह विरज=निर्मल धर्मका नेत्र उत्पन्न हुआ।

(इस प्रकार) भगवान्के धर्मके चक्केके घुमाने (=धर्म-चक्रके प्रवर्त्तन करने)पर भूमिके देवताओंने शब्द किया—"भगवान्ने यह वा रा ण सी के ऋ षि प त न मृ ग दा व में उस अनुपम धर्मके चक्केको घुमाया जोकि किसीभी साधु, ब्राह्मण, देवता, मा र, ब्रह्मा या संसारके किसी व्यक्तिसे रोका नहीं जा सकता।" भूमिके देवताओंके शब्दको सुनकर च तु र्म हा रा जि क देवताओंने शब्द सुनाया—०। च तु र्म हा रा जि क देवताओंके शब्दको सुनकर त्र य स्त्रिं श देवताओंने०। ० या म देवताओंने०। ० तु षि त देवताओंने०। ० नि र्मा ण र ति देवताओंने०। ० व श व र्त्ती देवताओंने०।० ब्र ह्म का यि क देवताओंने०। इस प्रकार उसी क्षणमें, उसी मुहूर्त्तमें यह शब्द ब्रह्मलोक तक पहुँच गया और यह दस हजारों वाला ब्रह्मांड कंपित, सम्प्रकंपित=संवेपित हुआ। देवताओंके तेजसे भी बढ़कर बहुत भारी, विशाल प्रकाश लोकमें उत्पन्न हुआ।

तब भगवान्ने उदान कहा—"ओहो! कौंडिन्यने जान लिया (=आज्ञात)। ओहो! कौंडिन्यने जान लिया।" इसीलिये आयुष्मान् कौंडिन्यका आ ज्ञा त कौं डि न्य नाम पळा।

(७) पंच वर्गीयोंकी प्रव्रज्या

तब धर्मको साक्षात्कारकर प्राप्तकर=विदितकर, अवगाहनकर संशय-रहित, विवाद-रहित, बुद्धके धर्ममें विशारद (और) स्वतंत्र हो आयुष्मान् आज्ञात कौंडिन्यने भगवान्से यह कहा—"भन्ते! भगवान्के पास मुझे प्र व्र ज्या[1] मिले, उ प स म्प दा[2] मिले।"

भगवान्ने कहा—"भिक्षु! आओ, (यह) धर्म सुंदर प्रकारसे व्याख्यात है, अच्छी तरह दुःखके नाशके लिये ब्रह्मचर्य (का पालन) करो।"

यही उन आयुष्मान्की उ प स म्प दा हुई।

भगवान्ने उसके पीछे भिक्षुओंको फिर धर्म-संबंधी कथाओंका उपदेश किया। भगवान्के धार्मिक उपदेश करते=अनुशासन करते आयुष्मान् व प्प और आयुष्मान् भ द्दि य को भी—'जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है, वह सब नाशमान् है'—यह विरज=विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ। तब धर्मको साक्षात्कार कर० उन्होंने भगवान्से कहा—"भन्ते! भगवान्के पास हमें प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले।"

भगवान्ने कहा—"भिक्षुओ! आओ धर्म सु-व्याख्यात है, अच्छी तरह दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्य (पालन) करो।"

यही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई।

उसके पीछे भगवान् (भिक्षुओं द्वारा) लाये भोजनको ग्रहण करते, भिक्षुओंको धार्मिक कथाओं द्वारा उपदेश करते=अनुशासन करते (रहे)। तीन भिक्षु जो भिक्षा माँगकर लाते थे, उसीसे छओ जने निर्वाह करते थे। भगवान्के धार्मिक कथाका उपदेश करते=अनुशासन करते, आयुष्मान् म हा ना म और आयुष्मान् अ श्व जि त् को भी 'जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है, वह सब नाशमान् है'—०। वही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई।

तब भगवान्ने पंचवर्गीय भिक्षुओंको सम्बोधित किया—

---

[1] श्रामणेर होनेका संन्यास। [2] भिक्षु होनेका संन्यास।

"भिक्षुओ ! रूप (=भौतिक पदार्थ) अन्-आत्मा है। यदि रूप (पुरुष)का आत्मा होता तो यह रूप पीळादायक न बनता; और रूपमें—'मेरा रूप ऐसा होता' मेरा रूप ऐसा न होता, यह पाया जाता। चूंकि भिक्षुओ ! रूप अनात्मा है इसलिये रूप पीळादायक होता है; और रूपमें—मेरा रूप ऐसा होता, मेरा रूप ऐसा न होता—यह नहीं पाया जाता।

"भिक्षुओ ! वेदना अनात्मा है०।० संज्ञा०।०संस्कार०। "भिक्षुओ ! विज्ञान अनात्मा है। यदि भिक्षुओ ! विज्ञान (=अभौतिक पदार्थ) आत्मा होता तो विज्ञान पीळादायक न बनता; और विज्ञानमें—मेरा विज्ञान ऐसा होता, मेरा विज्ञान ऐसा न होता—यह नहीं पाया जाता।

"तो क्या मानते हो भिक्षुओ ! रूप नित्य है या अनित्य" ?

"अनित्य, भन्ते !"

"जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?"

"दुःख, भन्ते !"

"जो अनित्य दुःख, और विकारको प्रप्त होनेवाला है; क्या उसके लिये यह समझना उचित है—यह (=अनित्य पदार्थ) मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ?"

'नहीं, भन्ते !"

"तो क्या मानते हो भिक्षुओ ! वेदना नित्य है या अनित्य ? ०।० संज्ञा ०।० संस्कार ०।० विज्ञान ० ।"

"तो भिक्षुओ ! जो कुछ भी भूत, भविष्य, वर्तमान संबंधी, भीतरी या बाहरी, स्थूल या सूक्ष्म, अच्छा या बुरा, दूर या नजदीकका रूप है, सभी रूप न मेरा है, न मैं हूँ, न वह मेरा आत्मा है—ऐसा समझना चाहिये। इस प्रकार ठीक तौरसे समझकर देखना चाहिये ०।० वेदना ०।० संज्ञा ०।० संस्कार ०।० विज्ञान ० ।

"भिक्षुओ ! ऐसा देखते हुए, विद्वान्, आर्य-शिष्य रूपसे उदास होता है, वेदनासे उदास होता है, संज्ञासे उदास होता है, संस्कारसे उदास होता है, विज्ञानसे उदास होता है। उदास होनेपर (उनसे) विरागको प्राप्त होता है। विरागके कारण मुक्त होता है। मुक्त होनेपर 'मुक्त हूँ' ऐसा ज्ञान होता है। और वह जानता है=आवागमन नष्ट हो गया, ब्रह्मचर्यवास पूरा हो गया, करना था सो कर लिया, अब यहाँ कुछ करनेको (बाकी) नहीं है[1] ।"

भगवान्ने यह कहा। संतुष्ट हो पंचवर्गीय भिक्षुओंने भगवान्के भाषणका अभिनंदन किया।

इस उपदेशके कहते समय पंचवर्गीय भिक्षुओंका चित्त आस्रवों (=मलों)से विरत हो मुक्त हो गया ।

उस समय तक लोकमें छ अर्हत् थे।

प्रथम भाणवार ॥ १ ॥

[1] चराचर जगत्का उपादान कारण, रूप आदि पाँच स्कन्धों (=समूहों)में बँटा है। सारे भौतिक पदार्थ रूप स्कन्धमें है। साधारणतः रूप वह है जिसमें भारीपन और स्थान घेरनेकी योग्यता हो। जिसमें न भारीपन है, और न जो जगहको घेरता है वह विज्ञान स्कन्ध है ! रूपके संबंधमें विज्ञानकी तीन अवस्थाएं हैं—वेदना (=अनुभव करना), संज्ञा (=जानकारी प्राप्त करना), और संस्कार (=चित्तमें उनकी जानकारी और अनुभवका असर रह जाना) है।

(८) यशकी प्रव्रज्या

उस समय य श नामक कुलपुत्र, वा रा ण सी के श्रेष्ठीका [1] सुकुमार लड़का था। उसके तीन प्रासाद थे—एक हेमन्तका, एक ग्रीष्मका, एक वर्षाका। वह वर्षाके चारों महीने वर्षा-कालिक प्रासादमें, अ-पुरुषों (=स्त्रियों)के वाद्योंसे सेवित हो, प्रासादसे नीचे न उतरता था। (एक दिन)....यश कुल-पुत्रकी....निद्रा खुली। सारी रात वहाँ तेलका दीप जलता था। तब यश कुलपुत्रने....अपने परिजनको देखा—किसीकी बगलमें वीणा है, किसीके गलेमें मृदंग है....। किसीको फैले-केश, किसीको लार-गिराते, किसीको बर्राते, साक्षात् श्मशानसा देखकर, (उसे) घृणा उत्पन्न हुई, चित्तमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। यश कुल-पुत्रने उदान कहा—"हा! संतप्त!! हा! पीळित!!"

यश कुलपुत्र सुनहला जूता पहिन, घरके फाटककी ओर गया....। फिर....नगर द्वारकी ओर....। तब यश कुल-पुत्र वहाँ गया, जहाँ ऋ षि प त न मृ ग दा व था। उस समय भगवान् रातके भिनसार-को उठकर, खुले (स्थान)में टहल रहे थे। भगवान्ने दूरसे यश कुल-पुत्रको आते देखा। देखकर टह-लनेकी जगहसे उतरकर, बिछे आसनपर बैठ गये। तब यश कुलपुत्रने भगवान्के समीप (पहुँच), उदान कहा—"हा! सन्तप्त!! हा! पीळित!!"।

भगवान्ने यश कुलपुत्रसे कहा—"यश! यह है अ-संतप्त। यश! यह है अ-पीळित। यश! आ बैठ, तुझे धर्म बताता हूँ।"

तब यशकुल-पुत्र "यह अ-सन्तप्त है, यह अ-पीळित है"—(सुन) आह्लादित, प्रसन्न हो सुनहले जूतेको उतार, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। पास जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे यश कुलपुत्रको, भगवान्ने **आनुपूर्वी कथा**, जैसे—दान-कथा, शीलकथा, स्वर्ग-कथा, कामवासनाओंका दुष्परिणाम अपकार दोष, निष्कामताका माहात्म्य प्रकाशित किया। जब भग-वान्ने यशको भव्य-चित्त, मृदुचित्त, अनाच्छादित-चित्त; आह्लादित-चित्त और प्रसन्नचित्त देखा, तब जो बुद्धोंकी उठानेवाली देशना (=उपदेश) है—दुःख, समुदय (=दुःखका कारण), निरोध (=दुःखका नाश), और मार्ग (=दुःख-नाशका उपाय)—उसे प्रकाशित किया। जैसे कालिमा-रहित शुद्ध-वस्त्र अच्छी तरह रंग पकळता है, वैसेही यश कुल-पुत्रको उसी आसनपर "जो कुछ उत्पन्न होनेवाला धर्म है, वह नाशमान् है"—यह वि-रज=निर्मल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ।

(९) श्रेष्ठी गृहपतिकी दीक्षा

यश कुल-पुत्रकी माता प्रासादपर चढ़, यशकुल-पुत्रको न देख, जहाँ श्रेष्ठी गृह-पति था वहाँ गई, (और)....बोली—"गृहपति! तुम्हारा पुत्र यश दिखाई नहीं देता है"?

तब श्रेष्ठी गृह-पति चारों ओर सवार छोळ, स्वयं जिधर ऋषि-पतन मृग-दाव था, उधर गया। श्रेष्ठी गृहपति सुनहले जूतोंका चिन्ह देख, उसीके पीछे पीछे चला। भगवान्ने श्रेष्ठी गृहपतिको दूरसे आते देखा। तब भगवान्को (ऐसा विचार) हुआ—"क्यों न मैं ऐसा योगबल करूँ, जिससे श्रेष्ठी गृह-पति यहाँ बैठे यश कुल-पुत्रको न देख सके।" तब भगवान्ने वैसाही योग-बल किया। श्रेष्ठी गृहपतिने जहाँ भगवान् थे, वहाँ....जाकर भगवान्से कहा—"भन्ते! क्या भगवान्ने यश कुल-पुत्रको देखा है?"

"गृहपति! बैठ। यहीं बैठा तू यहाँ बैठे यश कुलपुत्रको देखेगा।"

श्रेष्ठी गृहपति—"यहीं बैठा मैं यहाँ बैठे यश कुल-पुत्रको देखूँगा" (सुन) आह्लादित=

---

[1] श्रेष्ठी नगरका एक अवैतनिक पदाधिकारी होता था, जो कि धनिक व्यापारियोंमेंसे

प्रसन्न हो, भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया।....भगवान्‌ने आनुपूर्वी[1] कथा, जैसे—'दान-कथा०' प्रकाशित की। श्रेष्ठी गृहपतिको उसी आसनपर० धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ।

भगवान्‌के धर्ममें स्वतन्त्र हो, वह भगवान्‌से बोला—"आश्चर्य! भन्ते!! आश्चर्य! भन्ते!! जैसे औंधेको सीधा कर दे, ढँकेको उघाळ दे, भूलेको रास्ता बतला दे, अंधकारमें तेलका प्रदीप रख दे, जिसमें कि आँखवाले रूप देखें; ऐसेही भगवान्‌ने अनेक पर्यायसे धर्मको प्रकाशित किया। यह मैं भगवान्‌की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। आजसे मुझे भगवान् अंजलिबद्ध शरणागत उपासक ग्रहण करें।"

वह (गृहपति) ही संसारमें [2]तीन-वचनोंवाला प्रथम उपासक हुआ।

जिस समय (उसके) पिताको धर्मोपदेश किया जा रहा था, उस समय (अपने) देखे और जानेके अनुसार गंभीर चिन्तन करते, यश कुल-पुत्रका चित्त अलिप्त हो, आस्रवों (=दोषों = मलों)से मुक्त होगया। तब भगवान्‌के (मनमें) हुआ—"पिताको धर्म-उपदेश किये जाते समय (अपने) देखे और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण करते, यश कुल-पुत्रका चित्त अलिप्त हो, आस्रवोंसे मुक्त हो गया। (अब) यश कुल-पुत्र पहिली-गृहस्थ अवस्थाकी भाँति हीन(-स्थिति)में रह, गृहस्थ सुख भोगनेके योग्य नहीं है, क्यों न मैं योग-बलके प्रभावको हटा लूँ।" तब भगवान्‌ने ऋद्धिके प्रभावको हटा लिया। श्रेष्ठी गृहपतिने यश कुल-पुत्रको बैठे देखा। देखकर यश कुलपुत्रसे बोला—

"तात! यश! तेरी माँ रोतीपीटती और शोकमें पळी है, माताको जीवन दान दे।"

यश कुलपुत्रने भगवान्‌की ओर आँख फेरी। भगवान्‌ने श्रेष्ठी गृहपतिसे कहा—

"सो गृहपति! क्या समझता है, जैसे तुमने अपूर्ण ज्ञानसे, अपूर्ण साक्षात्कारसे धर्मको देखा, वैसेही यशने भी (देखा)? देखे और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण करके, उसका चित्त अलिप्त हो, आस्रवोंसे मुक्त हो गया है। अब क्या वह पहिली गृहस्थ-अवस्थाकी भाँति हीन(-स्थिति)में रहकर, गृहस्थ सुख भोगनेके योग्य है?"

"नहीं, भन्ते!"

"गृहपति! (पहिले) अपूर्ण ज्ञानसे, और अपूर्ण दर्शनसे यशने भी धर्मको देखा, जैसे तूने। फिर देखे और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण करके, (उसका) चित्त अलिप्त हो आस्रवोंसे मुक्त हो गया। गृहपति! अब यश कुल-पुत्र पहिलेकी गृहस्थ-अवस्थाकी भाँति हीन(-स्थिति)में रह गृहस्थ-सुख भोगने योग्य नहीं है।"

"लाभ है भन्ते! यश कुल-पुत्रको; सुलाभ किया भन्ते! यश कुल-पुत्रने; जो कि यश कुलपुत्रका चित्त अलिप्त हो आस्रवोंसे मुक्त हो गया। भन्ते! भगवान् यशको अनुगामी भिक्षु बना, मेरा आजका भोजन स्वीकार कीजिये।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकृति प्रकट की।

श्रेष्ठी गृहपति भगवान्‌की स्वीकृति जान, आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर, चला गया। फिर यश कुल-पुत्रने श्रेष्ठी गृहपतिके चले जानेके थोळीही देर बाद भगवान्‌से कहा—"भन्ते! भगवान् मुझे प्रव्रज्या दें, उपसंपदा दें।"

भगवान्‌ने कहा—"भिक्षु! आओ धर्म सु-व्याख्यात है अच्छी तरह दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करो।" यही उस आयुष्मान्‌की उपसम्पदा हुई। उस समय लोकमें सात अर्हत् थे।

यश-प्रव्रज्या समाप्त।

[1] देखो पृष्ठ ८४। [2] बुद्ध, धर्म और संघ तीनोंकी शरणागत होनेका वचन।

(८) यशकी प्रव्रज्या

उस समय य श नामक कुलपुत्र, वा रा ण सी के श्रेष्ठीका [१] सुकुमार लड़का था। उसके तीन प्रासाद थे—एक हेमन्तका, एक ग्रीष्मका, एक वर्षाका। वह वर्षाके चारों महीने वर्षा-कालिक प्रासादमें, अ-पुरुषों (=स्त्रियों)के वाद्योंसे सेवित हो, प्रासादसे नीचे न उतरता था। (एक दिन)....यश कुल-पुत्रकी....निद्रा खुली। सारी रात वहाँ तेलका दीप जलता था। तब यश कुलपुत्रने....अपने परिजनको देखा—किसीकी बगलमें वीणा है, किसीके गलेमें मृदंग है....। किसीको फैले-केश, किसीको लार-गिराते, किसीको बर्राते, साक्षात् श्मशानसा देखकर, (उसे) घृणा उत्पन्न हुई, चित्तमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। यश कुल-पुत्रने उदान कहा—"हा! संतप्त!! हा! पीळित!!"

यश कुलपुत्र सुनहला जूता पहिन, घरके फाटककी ओर गया....। फिर....नगर द्वारकी ओर....। तब यश कुल-पुत्र वहाँ गया, जहाँ ऋ षि प त न मृ ग दा व था। उस समय भगवान् रातके भिन्सार-को उठकर, खुले (स्थान)में टहल रहे थे। भगवान्ने दूरसे यश कुल-पुत्रको आते देखा। देखकर टह-लनेकी जगहसे उतरकर, बिछे आसनपर बैठ गये। तब यश कुलपुत्रने भगवान्के समीप (पहुँच), उदान कहा—"हा! सन्तप्त!! हा! पीळित!!"।

भगवान्ने यश कुलपुत्रसे कहा—"यश! यह है अ-संतप्त। यश! यह है अ-पीळित। यश! आ बैठ, तुझे धर्म बताता हूँ।"

तब यशकुल-पुत्र "यह अ-सन्तप्त है, यह अ-पीळित है"—(सुन) आह्लादित, प्रसन्न हो सुनहले जूतेको उतार, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। पास जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे यश कुलपुत्रको, भगवान्ने **आनुपूर्वी कथा,** जैसे—दान-कथा, शीलकथा, स्वर्ग-कथा, कामवासनाओंका दुष्परिणाम अपकार दोष, निष्कामताका माहात्म्य प्रकाशित किया। जब भग-वान्ने यशको भव्य-चित्त, मृदुचित्त, अनाच्छादित-चित्त; आह्लादित-चित्त और प्रसन्नचित्त देखा, तब जो बुद्धोंकी उठानेवाली देशना (=उपदेश) है—दुःख, समुदय (=दुःखका कारण), निरोध (=दुःखका नाश), और मार्ग (=दुःख-नाशका उपाय)—उसे प्रकाशित किया। जैसे कालिमा-रहित शुद्ध-वस्त्र अच्छी तरह रंग पकळता है, वैसेही यश कुल-पुत्रको उसी आसनपर "जो कुछ उत्पन्न होनेवाला धर्म है, वह नाशमान् है"—यह वि-रज=निर्मल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ।

(९) श्रेष्ठी गृहपतिकी दीक्षा

यश कुल-पुत्रकी माता प्रासादपर चढ़, यशकुल-पुत्रको न देख, जहाँ श्रेष्ठी गृह-पति था वहाँ गई, (और)....बोली—"गृहपति! तुम्हारा पुत्र यश दिखाई नहीं देता है"?

तब श्रेष्ठी गृह-पति चारों ओर सवार छोळ, स्वयं जिधर ऋषि-पतन मृग-दाव था, उधर गया। श्रेष्ठी गृहपति सुनहले जूतोंका चिन्ह देख, उसीके पीछे पीछे चला। भगवान्ने श्रेष्ठी गृहपतिको दूरसे आते देखा। तब भगवान्को (ऐसा विचार) हुआ—"क्यों न मैं ऐसा योगबल करूँ, जिससे श्रेष्ठी गृह-पति यहाँ बैठे यश कुल-पुत्रको न देख सके।" तब भगवान्ने वैसाही योग-बल किया। श्रेष्ठी गृहपतिने जहाँ भगवान् थे, वहाँ....जाकर भगवान्से कहा—"भन्ते! क्या भगवान्ने यश कुल-पुत्रको देखा है?"

"गृहपति! बैठ। यहीं बैठा तू यहाँ बैठे यश कुलपुत्रको देखेगा।"

श्रेष्ठी गृहपति—"यहीं बैठा मैं यहाँ बैठे यश कुल-पुत्रको देखूँगा" (सुन) आह्लादित=

---

[१] श्रेष्ठी नगरका एक अवैतनिक पदाधिकारी होता था, जो कि धनिक व्यापारियोंमेंसे बनाया जाता था।

प्रसन्न हो, भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर वैठ गया।....भगवान्‌ने आनुपूर्वी[1] कथा, जैसे—'दान-कथा०' प्रकाशित की। श्रेष्ठी गृहपतिको उसी आसनपर० धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ।

भगवान्‌के धर्ममें स्वतन्त्र हो, वह भगवान्‌से बोला—"आश्चर्य! भन्ते!! आश्चर्य! भन्ते!! जैसे औंधेको सीधा कर दे, ढँकेको उघाळ दे, भूलेको रास्ता वतला दे, अंधकारमें तेलका प्रदीप रख दे, जिसमें कि आँखवाले रूप देखें; ऐसेही भगवान्‌ने अनेक पर्यायसे धर्मको प्रकाशित किया। यह मैं भगवान्‌की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। आजसे मुझे भगवान् अंजलिवद्ध शरणागत उपासक ग्रहण करें।"

वह (गृहपति) ही संसारमें [2]तीन-वचनोंवाला प्रथम उपासक हुआ।

जिस समय (उसके) पिताको धर्मोपदेश किया जा रहा था, उस समय (अपने) देखे और जानेके अनुसार गंभीर चिन्तन करते, यश कुल-पुत्रका चित्त अलिप्त हो, आस्रवों (=दोषों=मलों)से मुक्त होगया। तव भगवान्‌के (मनमें) हुआ—"पिताको धर्म-उपदेश किये जाते समय (अपने) देखे और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण करते, यश कुल-पुत्रका चित्त अलिप्त हो, आस्रवोंसे मुक्त हो गया। (अव) यश कुल-पुत्र पहिली-गृहस्थ अवस्थाकी भाँति हीन(-स्थिति)में रह, गृहस्थ सुख भोगनेके योग्य नहीं है, क्यों न मैं योग-वलके प्रभावको हटा लूँ।" तव भगवान्‌ने ऋद्धिके प्रभावको हटा लिया। श्रेष्ठी गृहपतिने यश कुल-पुत्रको वैठे देखा। देखकर यश कुलपुत्रसे बोला—

"तात! यश! तेरी माँ रोतीपीटती और शोकमें पळी है, माताको जीवन दान दे।"

यश कुलपुत्रने भगवान्‌की ओर आँख फेरी। भगवान्‌ने श्रेष्ठी गृहपतिसे कहा—

"सो गृहपति! क्या समझता है, जैसे तुमने अपूर्ण ज्ञानसे, अपूर्ण साक्षात्कारसे धर्मको देखा, वैसेही यशने भी (देखा)? देखे और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण करके, उसका चित्त अलिप्त हो, आस्रवोंसे मुक्त हो गया है। अव क्या वह पहिली गृहस्थ-अवस्थाकी भाँति हीन(-स्थिति)में रहकर, गृहस्थ सुख भोगनेके योग्य है?"

"नहीं, भन्ते!"

"गृहपति! (पहिले) अपूर्ण ज्ञानसे, और अपूर्ण दर्शनसे यशने भी धर्मको देखा, जैसे तूने। फिर देखे और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण करके, (उसका) चित्त अलिप्त हो आस्रवोंसे मुक्त हो गया। गृहपति! अव यश कुल-पुत्र पहिलेकी गृहस्थ-अवस्थाकी भाँति हीन(-स्थिति)में रह गृहस्थ-सुख भोगने योग्य नहीं है।"

"लाभ है भन्ते! यश कुल-पुत्रको; सुलाभ किया भन्ते! यश कुल-पुत्रने; जो कि यश कुलपुत्रका चित्त अलिप्त हो आस्रवोंसे मुक्त हो गया। भन्ते! भगवान् यशको अनुगामी भिक्षु वना, मेरा आजका भोजन स्वीकार कीजिये।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकृति प्रकट की।

श्रेष्ठी गृहपति भगवान्‌की स्वीकृति जान, आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणा-कर, चला गया। फिर यश कुल-पुत्रने श्रेष्ठी गृहपतिके चले जानेके थोळीही देर वाद भगवान्‌से कहा—"भन्ते! भगवान् मुझे प्रव्रज्या दें, उपसंपदा दें।"

भगवान्‌ने कहा—"भिक्षु! आओ धर्म सु-व्याख्यात है अच्छी तरह दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करो।" यही इस आयुष्मान्‌की उपसम्पदा हुई। उस समय लोकमें सात अर्हत् थे।

यश-प्रव्रज्या समाप्त।

---

[1]देखो पृष्ठ ८४। [2]बुद्ध, धर्म और संघ तीनोंकी शरणागत होनेका वचन।

भगवान् पूर्वाह्ण समय वस्त्र पहिन (भिक्षा-)पात्र और चीवर ले, आयुष्मान् यशको अनु-गामी भिक्षु बना, जहाँ श्रेष्ठी गृहपतिका घर था, वहाँ गये। वहाँ ,बिछे आसनपर बैठे। तब आयुष्मान् यशकी माता और पुरानी पत्नी भगवान्‌के पास आई। आकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गई। उनसे भगवान्‌ने आनुपूर्वी कथा० कही। जब भगवान्‌ने उन्हें भव्यचित्त०, देखा; तब जो बुद्धों-की उठाने वाली देशना है—दुःख, समुदाय, निरोध और मार्ग—उसे प्रकाशित किया। जैसे कालिमा-रहित शुद्ध-वस्त्र अच्छी तरह रंग पकळता है, वैसेही उन (दोनों) को, उसी आसनपर—"जो कुछ समु-दय-धर्म है, वह निरोध-धर्म है"—यह विरज—निर्मल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ। धर्मको साक्षात्कार कर०, सन्देह-रहित, कथोपकथन-रहित, भगवान्‌के धर्ममें विशारद और, स्वतन्त्र हो, उन्होंने भगवान्‌से कहा—"आश्चर्य ! भन्ते ! ! आश्चर्य भन्ते ! ! ० आजसे हमें भगवान् अञ्जलिबद्ध शरणागत उपासिकायें जानें। लोकमें वही तीन वचनों वाली प्रथम उपासिकायें हुई।

आयुष्मान् यशके माता पिता और पुरानी पत्नीने, भगवान् और आयुष्मान् यशको उत्तम खाद्य भोजनसे संतृप्त किया=संप्रवारित किया। जब भोजनकर, भगवान्‌ने पात्रसे हाथ खींच लिया, तब वह भगवान्‌की एक ओर बैठ गये। तब भगवान् आयुष्मान् यशकी माता, पिता और पुरानी पत्नीको धार्मिक-कथा द्वारा संदर्शन=समाज्ञापन=समुत्तेजन=संप्रहर्षण कर आसनसे उठकर चल दिये।

(१०) यशके गृहस्थ मित्रोंकी प्रव्रज्या

आयुष्मान् यशके चार गृही मित्र, वाराणसीके श्रेष्ठी-अनुश्रेष्ठियोंके कुलके लळकों—वि म ल, सु बा हु, पू र्ण जि त् और ग वां प ति ने सुना, कि यश कुल-पुत्र शिर-दाढी मुळा, कापायवस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो प्रव्रजित हो गया। सुनकर उनके (चित्तमें) हुआ—"वह [1]धर्मविनय छोटा न होगा, वह संन्यास (=प्रव्रज्या) छोटा न होगा, जिसमें यश कुलपुत्र शिर-दाढ़ी मुळा, कापाय-वस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो, प्रव्रजित हो गया।"

वह वहाँसे आयुष्मान् यशके पास आये। आकर आयुष्मान् यशको अभिवादनकर एक ओर खळे हो गये। तब आयुष्मान् यश उन चारों गृही मित्रों सहित जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भग-वान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् यशने भगवान्‌से कहा—"भन्ते ! यह मेरे चार गृही मित्र वा रा ण सी के श्रे ष्ठी-अनुश्रेष्ठियोंके कुलके लळके—वि म ल, सु बा हु, पू र्ण जि त् और ग वा म्प ति—हैं। इन्हें भगवान् उपदेश करें=अनुशासन करें।"

उनसे भगवान्‌ने ० [2]आनुपूर्वी कथा कही ०। वह भगवान्‌के धर्ममें विशारद=स्वतन्त्र हो, भगवान्‌से बोले—"भन्ते ! भगवान् हमें प्रव्रज्या दें, उपसम्पदा दें।"

भगवान्‌ने कहा—"भिक्षुओ ! आओ धर्म सु-व्याख्यात है। अच्छी तरह दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करो।" यही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई। तब भगवान्‌ने उन भिक्षुओंको धार्मिक कथाओं द्वारा उपदेश दिया—अनुशासना की।.. (जिससे) अलिप्त हो उनके चित्त आस्रवोंसे मुक्त हो गये। उस समय लोकमें ग्यारह अर्हत् थे।

आयुष्मान् यशके ग्रामवासी (=जानपद=दीहाती) पुराने खान्दानोंके पुत्र, पचास गृही-मित्रोंने सुना, कि यश कुलपुत्र..साधु हो गया। सुनकर उनके चित्तमें हुआ—"वह धर्मविनय छोटा न होगा..। जिसमें यश कुल-पुत्र..प्रव्रजित हो गया।" वह आयुष्मान् यशके पास आये।.. आयुष्मान् यश उन पचास गृहीमित्रों सहित..भगवान्‌के पास...गये।...भगवान्‌ने...निष्कामताका माहात्म्य वर्णन किया...। वह...विशारद हो भगवान्‌से बोले—"हमें उपसम्पदा मिले"...।...उन

---

[1] धार्मिक सम्प्रदाय। [2] देखो पृष्ठ ८४

आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई। तब भगवान्ने...उपदेश दिया।...(जिससे) अलिप्त हो उनके चित्त आस्रवोंसे मुक्त हो गये। उस समय लोकमें एकसठ अर्हत् थे।

भगवान्ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—

"भिक्षुओ! जितने (भी) दिव्य और मानुष बन्धन हैं, मैं (उन सबों)से मुक्त हूँ, तुम भी दिव्य और मानुष बंधनोंसे मुक्त हो। भिक्षुओ! बहुत जनोंके हितके लिये, बहुत जनोंके सुखके लिये, लोकपर दया करनेके लिये, देवताओं और मनुष्योंके प्रयोजनके लिये, हितके लिये, सुखके लिये विचरण करो। एकसाथ दो मत जाओ। हे भिक्षुओ! आदिमें कल्याण-(कारक) मध्यमें कल्याण (-कारक) अन्तमें कल्याण(-कारक) (इस) धर्मका उपदेश करो। अर्थ सहित=व्यंजन-सहित, केवल (=अमिश्र)=परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्यका प्रकाश करो। अल्प दोषवाले प्राणी (भी) हैं, धर्मके न श्रवण करनेसे उनकी हानि होगी। (सुननेसे वह) धर्मके जाननेवाले बनेंगे। भिक्षुओ! मैं भी जहाँ उ रु वे ला है, जहाँ से ना नी ग्राम है, वहाँ धर्म-देशनाके लिये जाऊँगा"

(११) मार कथा

तब पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्से गाथाओंमें बोला—

"जितने दिव्य और मानुष बन्धन हैं, उनसे तुम बँधे हो।
हे श्रमण! मेरे इन महाबन्धनोंसे बँधे तुम नहीं छूट सकते॥"

(भगवान्ने कहा)—

"जितने दिव्य मानुष बन्धन हैं उनसे मैं मुक्त हूँ।
हे अन्तक! महाबन्धनोंसे मैं मुक्त हूँ, तू ही बरबाद है॥"

(मारने कहा)—,

"(राग रूपी) आकाशचारी मनका जो बन्धन है।
हे श्रमण! मैं तुम्हें उससे बाँधूँगा, मुझसे तुम छूट नहीं सकते॥"

(भगवान्ने कहा)—

"(जो) मनोरम रूप, शब्द, रस, गन्ध और स्पर्श (हैं)।
उनसे मेरा राग दूर हो गया, इसलिये अन्तक! तुम बरबाद हुए॥"

तब पापी मारने कहा—मुझे भगवान् जानते हैं, मुझे सुगत पहचानते हैं—(कह) दुखी=दुर्मना हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

मार-कथा समाप्त ॥११॥

(१२) उपसम्पदा-कथा

उस समय भिक्षु नाना दिशाओंसे नाना देशोंसे प्रव्रज्याकी इच्छावाले, उपसम्पदाकी अपेक्षावाले (आदमियोंको) लाते थे, कि भगवान् उन्हें प्रव्रजित करें, उपसम्पन्न करें। इससे भिक्षु भी परेशान होते थे, प्रव्रज्या-उपसम्पदा चाहनेवाले भी। एकान्तस्थित ध्यानावस्थित भगवान्के चित्तमें (विचार) हुआ—"क्यों न भिक्षुओंको ही अनुमति दे दूँ, कि भिक्षुओ! तुम्हीं उन उन दिशाओंमें, उन उन देशोंमें (जाकर) प्रव्रज्या दो, उपसम्पदा करो।"

तब भगवान्ने सन्ध्या समय भिक्षु-संघको एकत्रितकर धर्मकथा कह, सम्बोधित किया—"भिक्षुओ! एकान्तमें स्थित, ध्यानावस्थित०।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ तुम्हें ही उन उन दिशाओंमें, उन उन देशोंमें प्रव्रज्या देनेकी, उपसम्पदा देनेकी। I

"और उपसम्पदा देनेका प्रकार यह है—पहिले शिर दाढ़ी मुंळवा, काषाय-वस्त्र पहना, उप-रना एक कन्धेपर करा, भिक्षुओंकी पाद-वंदना करा, उकळूँ बैठा, हाथ जोळवाकर "ऐसे बोलो" कहना चाहिये—"बुद्धकी शरण जाता हूँ, धर्मकी शरण जाता हूँ, संघकी शरण जाता हूँ। दूसरी बार भी बुद्ध० धर्म० संघकी शरण जाता हूँ। तीसरी बार भी बुद्ध०, धर्म० संघकी शरण जाता हूँ। इन तीन शरणा-गमनोंसे प्रब्रज्या और उपसम्पदा (देनेकी) अनुमति देता हूँ।"

तब भगवान्ने वर्षावास कर भिक्षुओंको सम्बोधित किया—भिक्षुओ! मैंने मूलसे मनमें (विचार) करके, मूलसे ठीक प्र धा न (=मोक्षकी साधना) करके अनुपम मुक्तिको पाया, अनुपम मुक्तिका साक्षात्कार किया। तुमने भी भिक्षुओ! मूलसे मनमें (विचार) करके, मूलसे ठीक प्र धा न करके अनुपम मुक्तिको पाया, अनुपम मुक्तिका साक्षात्कार किया।"

तब पापी मार, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्से गाथाओंमें बोला—

"जो दिव्य और मानुष मारके बंधन हैं उनसे (तुम) बँधे हो।

श्रमण मारके बन्धनसे बँधे हो, मुझसे मुक्त नहीं हो सकते॥"

(भगवान्ने कहा)—

"जो दिव्य और मानुष मारके बंधन हैं उनसे मैं मुक्त हूँ।

मैं मारके बन्धनसे मुक्त हूँ, अन्तक! तुम बरबाद हो॥"

तब पापी मार—"मुझे भगवान् जानते हैं, मुझे सुगत पहचानते हैं"—(कह) दुःखी=दुर्मना हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

(१३) भद्रवर्गीय कथा

भगवान् वाराणसीमें इच्छानुसार विहारकर, (साठ भिक्षुओंको भिन्न भिन्न दिशाओंमें भेज), जिधर उ रु वे ला है, उधर चारिका (=विचरण)के लिये चल दिये। भगवान् मार्गसे हटकर एक वन खण्डमें पहुँच, वन-खण्डके भीतर एक वृक्षके नीचे जा बैठे। उस समय भ द्र व र्गी य (नामक) तीस मित्र, अपनी स्त्रियों सहित उसी वन-खण्डमें विनोद करते थे। (उनमें) एककी पत्नी न थी। उसके लिये वेश्या लाई गई थी। वह वेश्या उनके नशामें हो घूमते वक्त, आभूषण आदि लेकर भाग गई। तब (सब) मित्रोंने (अपने) मित्रकी मददमें उस स्त्रीको खोजते, उस वन-खण्डको हींळते, वृक्षके नीचे बैठे भगवान्को देखा। (फिर) जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्से बोले—"भन्ते! भग-वान्ने (किसी) स्त्रीको तो नहीं देखा?"

"कुमारो! तुम्हें स्त्रीसे क्या है?"

"भन्ते! हम भद्रवर्गीय तीस मित्र (अपनी अपनी) पत्नियों सहित इस वन-खण्डमें सैर विनोद कर रहे थे। एककी पत्नी न थी, उसके लिये वेश्या लाई गई थी। भन्ते! वह वेश्या हमलोगोंके नशामें हो घूमते वक्त आभूषण आदि लेकर भाग गई। सो भन्ते! हमलोग मित्रकी मददमें उस स्त्रीको खोजते हुए, इस वन-खण्डको हींळ रहे हैं।"

"तो कुमारो! क्या समझते हो, तुम्हारे लिये कौन उत्तम होगा; यदि तुम स्त्रीको ढूँढो, या तुम अपने (=आत्मा)को ढूँढो।"

"भन्ते! हमारे लिये यही उत्तम है, यदि हम अपने को ढूँढें।"

"तो कुमारो! बैठो, मैं तुम्हें धर्म-उपदेश करता हूँ।"

"अच्छा, भन्ते!" कह, वह भ द्र व र्गी य मित्र भगवान्को वन्दना कर, एक ओर बैठगये।

उनसे भगवान्‌ने आनुपूर्वी कथा०[1] कही।...भगवान्‌के धर्ममें विशारद हो...भगवान्‌से बोले—...भगवान्‌के हाथसे हमें प्रव्रज्या मिले...। वही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई।

द्वितीय भाणवार (समाप्त) ॥ २ ॥

३—उरुवेला

(१४) उरुवेलामें चमत्कार प्रदर्शन

वहाँसे भगवान् क्रमशः विचरते हुए...उ रु वे ला पहुँचे। उस समय उ रु वे ला में तीन जटिल (=जटाधारी)—उ रु वे ल-का श्य प, न दी-का श्य प और ग या-का श्य प—वास करते थे। उनमें उ रु वे ल-का श्य प जटिल पाँच सौ जटिलोंका नायक=विनायक=अग्र=प्रमुख=प्रामुख्य था। न दी-का श्य प जटिल तीन सौ जटिलोंका नायक०। ग या-का श्य प जटिल दो सौ जटिलोंका नायक०। तब भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यप जटिलके आश्रमपर पहुँच, उरुवेल-काश्यप जटिलसे कहा—"हे काश्यप! यदि तुझे भारी न हो, तो मैं एकरात (तेरी) अग्निशालामें वास करूँ।"

"महाश्रमण! मुझे भारी नहीं है (लेकिन), यहाँ एक बळाही चंड, दिव्य-शक्तिधारी, आशी-विष=घोर-विष नागराज है। वह (कहीं) तुम्हें हानि न पहुँचावे।"

दूसरी वार भी भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यप जटिलसे कहा—"...।"

तीसरी वार भी भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यप जटिलसे कहा—"...।"

"काश्यप! नाग मुझे हानि न पहुँचावेगा, तू मुझे अग्निशालाकी स्वीकृति दे दे।"

"महाश्रमण! सुखसे विहार करो।"

१—प्र थ म प्रा ति हा र्य—तब भगवान् अग्निशालामें प्रविष्ट हो तृण बिछा, आसन बाँध, शरीरको सीधा रख, स्मृतिको थिर कर बैठ गये। भगवान्‌को भीतर आया देख, नाग क्रुद्ध हो धुआँ देने लगा। भगवान्‌के (मनमें) हुआ—"क्यों न मैं इस नागके छाल, चर्म, मांस, नस, हड्डी, मज्जाको विना हानि पहुँचाये, (अपने) तेजसे (इसके) तेजको खींच लूँ।" फिर भगवान् भी वैसेंही योगबलसे धुँआँ देने लगे। तब वह नाग कोपको सहन न कर प्रज्वलित हो उठा। भगवान् भी तेज-महाभूत(=तेजो धातु) में समाधिस्थ हो प्रज्वलित हो उठे। उन दोनोंके ज्योतिरूप होनेसे, वह अग्निशाला जलती हुई=प्रज्व-लित-सी जान पळने लगी। तब वह जटिल अग्निशालाको चारों ओरसे घेरे, यों कहने लगे—"हाय! परम-सुन्दर महाश्रमण नागद्वारा मारा जा रहा है।" भगवान्‌ने उस रातके बीत जानेपर, उस नागके छाल, चर्म, मांस, नस, हड्डी, मज्जाको विना हानि पहुँचाये, (अपने) तेजसे (उसका) तेज खींचकर, पात्रमें रख (उसे) उ रु वे ल का श्य प जटिलको दिखाया—"हे काश्यप! यह तेरा नाग है, (अपने) तेजसे (मैंने) इसका तेज खींच लिया है।"

तब उरुवेल-काश्यप जटिलके (मनमें) हुआ—महादिव्यशक्तिवाला=महा-आनुभाव-वाला महाश्रमण है; जिसने कि दिव्यशक्ति-सम्पन्न आशी-विष=घोर-विष चण्ड नागराजके तेजको (अपने) तेजसे खींच लिया। किन्तु मेरे जैसा अर्हत नहीं...। तब भगवान्‌के इस चमत्कार (=ऋद्धि-प्रातिहार्य) से उ रु वे ल का श्य प ज टि ल ने प्रसन्न हो भगवान्‌से यह कहा—"महाश्रमण! यहीं विहार करो, मैं नित्य भोजनसे तुम्हारी (सेवा करूँगा)।"

२—द्वि ती य प्रा ति हा र्य—तब भगवान् जटाधारी उरुवेल-काश्यपके आश्रमके पास एक वन-खण्डमें[2] विहार करते थे। एक प्रकाशमान रात्रिको अतिप्रकाशमय चारों म हा रा ज (देवता),

---

[1] देखो पृष्ठ ८४।　　[2] कप्पासिय वन-संड।

उस वन-खण्डको पूर्णतया प्रकाशित करते, जहाँ भगवान् थे, वहाँ आये। आकर भगवान्को अभिवादन कर महान् अग्नि-समूहकी भाँति चारों दिशाओंमें खळे हो गये। तब जटिल उरुवेल काश्यप उस रातके बीत जानेपर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्से यह बोला—

"महाश्रमण! (भोजनका) काल है। भात तैयार है। महाश्रमण! इस प्रकाशमान् रात्रि को बळे ही प्रकाशमान् वह कौन थे, जोकि इस वन-खण्डको पूर्णतया प्रकाशित कर, जहाँ तुम थे, वहाँ आये। आकर तुम्हें अभिवादन कर महान् अग्नि-समूहकी भाँति चारों दिशाओंमें खळे हो गये?"

"काश्यप! यह चारों म हा रा जा थे, जो मेरे पास धर्म सुननेके लिये आये थे।"

तब जटिल उरुवेल काश्यपके (मनमें) हुआ—"महाश्रमण बड़ी दिव्यशक्तिवाला= महानुभाव है, जिसके पास कि चारों महाराजा धर्म सुननेके लिये आते हैं। तो भी यह वैसा अर्हत् नहीं है, जैसा कि मैं।"

तब भगवान् जटिल उरुवेल काश्यपके भातको खाकर उसी वन-खंडमें विहार करने लगे।

३—तृ ती य प्रा ति हा र्य—तब एक प्रकाशमान् रात्रिको पहलोंके प्रकाशसे (भी) अधिक प्रकाशमान्, अधिक उत्तम, अति दीप्तिमान् देवोंका इन्द्र श क्र उस वन-खंडको पूर्णतया प्रकाशित करता जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर महान् अग्नि-समूहकी भाँति एक ओर खड़ा हो गया। तब जटिल उरुवेल काश्यप उस रात के वीत जानेपर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्से यह बोला—"महाश्रमण! (भोजनका) काल है। भात तैयार है। महाश्रमण! इस प्रकाशमान् रात्रिको पहलोंके प्रकाशसे अधिक प्रकाशमान्, अधिक उत्तम, अति प्रकाशमान् कौन इस वन-खंडको पूर्णतया प्रकाशित करते आकर तुम्हें अभिवादन कर महान् अग्नि-समूहकी भाँति एक ओर खड़ा हुआ था?"

"काश्यप! वह देवोंका इन्द्र शक्र था जो मेरे पास धर्म सुननेके लिये आया था।"

तब जटिल उरुवेल काश्यपके (मनमें) हुआ—"महाश्रमण बळी दिव्यशक्तिवाला—महानुभाव है जिसके पास कि देवोंका इन्द्र शक्र धर्म सुननेके लिये आता है; तो भी यह वैसा अर्हत् नहीं हैं, जैसा कि मैं।"

तब भगवान् जटिल उरुवेल काश्यपके भातको खाकर उसी वन-खंडमें विहार करने लगे।

४—च तु र्थ प्रा ति हा र्य—तब एक प्रकाशमान् रात्रिको अति प्रकाशमय स हा (लोक-समूह)का पति ब्रह्मा उस वन-खंडको पूर्णतया प्रकाशित करता, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खळा हुआ।

तब जटिल उरुवेल काश्यप उस रातके वीत जानेपर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्से यह बोला—

"महाश्रमण! (भोजनका) काल है। भात तैयार है। महाश्रमण! इस प्रकाशमान् रात्रिको बळाही प्रकाशमान् वह कौन था जोकि इस वन-खंडको पूर्णतया प्रकाशितकर, जहाँ तुम थे, वहाँ आकर तुम्हें अभिवादनकर महान् अग्नि-समूहकी भाँति एक ओर खळा हुआ?"

"काश्यप! वह सहाका पति ब्रह्मा था जो मेरे पास धर्म सुननेके लिये आया था।"

तब जटिल उरुवेल काश्यपके (मनमें) हुआ—"महाश्रमण बळी दिव्यशक्तिवाला—महानुभाव है, जिसके पास कि सहापति ब्रह्मा धर्म सुननेके लिये आता है। तौभी यह वैसा अर्हत् नहीं है जैसा कि मैं।"

तब भगवान् जटिल उरुवेल काश्यपके भातको खाकर उसी वन-खंडमें विहार करने लगे।

भगवान् उ रु वे ल का श्य प जटिलके आश्रमके समीपवर्ती एक वन-खंडमें...उरुवेल काश्यपका दिया भोजन ग्रहण करते हुए, विहार करने लगे।

५—पं च म प्रा ति हा र्य—उस समय उरुवेल-काश्यप जटिलको एक महायज्ञ आ उपस्थित हुआ; जिसमें सारेके सारे अं ग-म ग ध-निवासी वहुतसा खाद्य भोज्य लेकर आनेवाले थे। तव उरु-वेल काश्यपके चित्तमें (विचार) हुआ—"इस समय मेरा महायज्ञ आ उपस्थित हुआ है, सारे अंग-मगधवाले वहुतसा खाद्य भोज्य लेकर आयेंगे। यदि महाश्रमणने जन-समुदायमें चमत्कार दिखलाया, तो महाश्रमणका लाभ और सत्कार बढ़ेगा मेरा लाभ सत्कार घटेगा। अच्छा होता यदि महाश्रमण कल(से) न आता।"

भगवान्ने उरुवेल-काश्यप जटिलके चित्तका वितर्क (अपने) चित्तसे जान, [1]उत्तर कुरु जा, वहाँसे भिक्षान्न ले अ न व त प्त [2]सरोवरपर भोजनकर, वहीं दिनको विहार किया। उरुवेल-काश्यप जटिल उस रातके बीत जानेपर, भगवान्के...पास जा...बोला—"महाश्रमण! (भोजनका) समय है, भात तैयार हो गया। महाश्रमण! कल क्यों नहीं आये? हम लोग आपको याद करते थे—क्यों नहीं आये? आपके खाद्य-भोज्यका भाग रक्खा है।"

"काश्यप! क्यों? क्या तेरे मनमें (कल) यह न हुआ था, कि इस समय मेरा महायज्ञ आ उपस्थित हुआ है० महाश्रमणका लाभसत्कार वढेगा०? इसीलिये काश्यप! तेरे चित्तके वितर्कको (अपने) चित्तसे जान, मैंने उत्तरकुरु जा, अनवतप्त सरोवरपर० वहीं दिनको विहार किया।"

तव उरुवेल-काश्यप जटिलको हुआ—"महाश्रमण महानुभाव दिव्य-शक्तिधारी है, जोकि (अपने) चित्तसे (दूसरेका) चित्त जान लेता है। तो भी यह (वैसा) अर्हत् नहीं है, जैसा कि मैं।"

तव भगवान्ने उरुवेल-काश्यपका भोजन ग्रहणकर उसी वन-खंडमें (जा) विहार किया।...

६—ष ष्ठ प्रा ति हा र्य—एक समय भगवान्को पांसुकूल[3] (=पुराने चीथड़े) प्राप्त हुए। भगवान्के दिल में हुआ,—"मैं पांसु-कूलोंको कहाँ धोऊँ।" तव देवोंके इन्द्र श क्र ने, भगवान्के चित्तकी वात जान..हाथसे पुष्करिणी खोदकर, भगवान्से कहा—"भन्ते! भगवान्! (यहाँ) पांसुकूल धोवें।"

तव भगवान्को हुआ—"मैं पाँसुकूलोंको कहाँ उपछूँ।"

...इन्द्रने...(वहाँ) वळी भारी शिला डाल दी...।

तव भगवान्को हुआ—"मैं किसका आलम्ब ले (नीचे) उतरूँ?"...इन्द्रने...शाखा लटका दी...।

...मैं पांसुकूलोंको कहाँ फैलाऊँ?...इन्द्रने...एक वळी भारी शिला डालदी...।

उस रातके वीत जानेपर, उरुवेल-काश्यप जटिलने, जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँच, भगवान्से कहा—"महाश्रमण! (भोजनका) समय है, भात तैयार हो गया है। महाश्रमण! यह क्या? यह पुष्करिणी पहिले यहाँ न थी!...। पहिले यह शिला (भी) यहाँ न थी; यहाँपर शिला किसने डाली? इस ककुध (वृक्ष)की शाखा (भी) पहिले लटकी न थी, सो यह लटकी है।"

"मुझे काश्यप! पांसुकूल प्राप्त हुआ०...।" उरुवेल-काश्यप जटिलके (मनमें) हुआ—"महाश्रमण

[1] मेरुपर्वतकी उत्तर दिशामें अवस्थित द्वीप। [2] मानसरोवर झील।
[3] रास्ता या कूळोंपर फेंके चीथळे।

दिव्य-शक्ति-धारी है! महा-आनुभाव-वाला है...। तो भी यह वैसा अर्हत् नहीं है, जैसा कि मैं।"

भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यपका भोजन ग्रहणकर, उसी वन-खंडमें विहार किया।

७—स प्त म प्रा ति हा र्य—तब जटिल उ रु वे ल-का श्य प उस रातके बीत जानेपर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌से कालकी सूचना दी—"महाश्रमण (भोजनका) काल है। भात तैयार है।"

"काश्यप! चल मैं आता हूँ"—कह जटिल उरुवेल-काश्यपको भेजकर, जिस जम्बू (=जामुन) के कारण यह ज म्बू-द्वी प कहा जाता है, उससे फल लेकर (काश्यपसे) पहले ही आकर अग्निशालामें बैठे। जटिल उरुवेल-काश्यपने भगवान्‌को अग्निशालामें बैठे देखकर कहा—

"महाश्रमण किस रास्तेसे तुम आये। मैं तुमसे पहिले ही चला था लेकिन तुम मुझसे पहिले ही आकर अग्निशालामें बैठे हो?"

"काश्यप! मैं तुझे भेजकर जिस जम्बू (=जामुन)के कारण यह जम्बू-द्वीप कहा जाता हैं; उससे फल ले पहिले ही आकर मैं अग्निशालामें बैठ गया। काश्यप यह वही (सुन्दर) वर्ण, रस, गन्ध युक्त जम्बू फल है। यदि चाहता है तो खा।"

"नहीं महाश्रमण! तुम्हीं इसे लाये, तुम्हीं इसे खाओ।"

तब जटिल उरुवेल काश्यपके मनमें हुआ—"महाश्रमण बळी दिव्य-शक्ति-वाला—महानुभाव है, जोकि मुझे पहिले ही भेजकर जिस जम्बू (=जामुन)के कारण यह जम्बू-द्वीप कहा जाता है, उससे फल लेकर मुझसे पहिले ही (आकर) अग्निशालामें बैठा। तो भी यह वैसा अर्हत् नहीं है जैसा कि मैं।"

तब भगवान् जटिल उरुवेल काश्यपके भातको खाकर उसी वन-खंडमें विहार करने लगे।

८-१०—अ ष्ट म्, न व म, द श म प्रा ति हा र्य—तब जटिल उरुवेल काश्यप उस रातके बीतनेपर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को कालकी सूचना दी—

"महाश्रमण! (भोजनका) काल है। भात तैयार है।"

"काश्यप चल! मैं आता हूँ।"—(कहकर) जटिल उरुवेल-काश्यपको जिस जम्बूके कारण यह ज म्बू-द्वी प कहा जाता है उसके समीपके आम०। ० आँवला०। ० हर्रे ०।

११—ए का द श म प्रा ति हा र्य—तब जटिल उरुवेल काश्यप उस रातके बीतने पर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को कालकी सूचना दी—

"महाश्रमण! (भोजनका) काल है। भात तैयार है।"

"काश्यप! चल मैं आता हूँ।"—(कहकर) त्र य स्त्रिं श (देव-लोक)में जाकर पारिजात पुष्पको ले (काश्यपसे) पहिले ही आकर अग्निशालामें बैठे। जटिल उरुवेल काश्यपने भगवान्‌को अग्निशालामें (पहलेही) बैठे देखकर यह कहा—

"महाश्रमण! किस रास्तेसे तुम आये, मैं तुमसे पहिले ही चला था, लेकिन तुम मुझसे पहिलेही आकर अग्निशालामें बैठे हो?"

"काश्यप! मैं तुझे भेजकर त्र य स्त्रिं श (देव-लोक)में जाकर पारिजात पुष्पको ले पहले ही आकर अग्निशालामें बैठा हूँ। काश्यप! यही वह (सुन्दर) वर्ण और गन्ध युक्त पारिजातका पुष्प है।"

तब जटिल उरुवेल काश्यपके (मनमें) यह हुआ—"महाश्रमण दिव्य शक्तिवाला= महानुभाव है जो कि मुझे पहलेही भेजकर त्रयस्त्रिंश (देव लोक) जा पारिजातके फूलको ले पहिले ही आकर अग्निशालामें बैठा है; तो भी यह वैसा अर्हत नहीं है जैसा कि मैं।

१२—द्वादशम प्रातिहार्य—उस समय जटिल (=जटाधारी वाणप्रस्थ साधु) अग्निहोत्र के लिये लकळी (फाळते वक्त) फाळ न सकते थे। तब उन जटिलोंके (मनमें) यह हुआ—"निस्संशय यह महाश्रमणका दिव्य-बल है, जोकि हम काठ नहीं फाळ सकते हैं।"

तब भगवान् जटिल उरुवेल काश्यपसे यह बोले—

"काश्यप! फाळी जायँ लकळियाँ?"

"महाश्रमण! फाळी जायँ लकळियाँ।"

और एक ही बार पाँच सौ लकळियाँ फाळदी गई।

तब जटिल उरुवेल काश्यपके मनमें यह हुआ—"महाश्रमण दिव्यशक्तिवाला=महानुभाव है जोकि लकळियाँ फाळी नहीं जा सकती थीं। तो भी यह वैसा अर्हत् नहीं है जैसा कि मैं।"

१३—त्रयोदशम प्रातिहार्य—उस समय जटिल अग्नि-परिचर्याके लिये (जलाते वक्त) आगको न जला सकते थे। तब उन जटिलोंके (मनमें) यह हुआ—

"निस्संशय यह महाश्रमणका दिव्य-बल है जो हम आग नहीं जला सकते हैं।"

तब भगवान्‌ने जटिल उरुवेल काश्यपसे यह कहा—

"काश्यप! जल जावे अग्नि?"

"महाश्रमण! जल जावे अग्नि।"

और एक ही बार पाँच सौ अग्नि जल उठी०।

१४—चतुर्दशम प्रातिहार्य—उस समय जटिल परिचर्या करके आगको बुझा नहीं सकते थे०। उस समय वह जटिल हेमन्तकी हिम-पात वाली चार माघके अन्त और चार फाल्गुनके आरम्भकी रातोंमें नेरंजरा नदीमें डूबते उतराते थे, उन्मज्जन, निमज्जन करते थे। तब भगवान्‌ने पाँच सौ अँगीठियाँ (योगबलसे) तैयार कीं, जहाँ निकलकर वे जटिल तापें। तब उन जटिलोंके मनमें यह हुआ—"निस्संशय०।"

१५—पंचदशम प्रातिहार्य—एक समय बळा भारी अकालमेघ बरसा। जलकी बळी बाढ़ आगई। जिस प्रदेशमें भगवान् विहार करते थे, वह पानीसे डूब गया। तब भगवान्‌को हुआ—"क्यों न मैं चारों ओरसे पानी हटाकर, बीचमें धूलियुक्त भूमिपर चंक्रमण करूँ (टहलूँ)?" भगवान् ...पानी हटाकर ...धूलि-युक्त भूमिपर टहलने लगे। उरुवेल-काश्यप जटिल—"अरे! महाश्रमण जलमें डूब न गया होगा!!" (यह सोच) नाव ले, बहुतसे जटिलोंके साथ जिस प्रदेशमें भगवान् विहार करते थे, वहाँ गया। (उसने)...भगवान्‌को...धूलि-युक्त भूमिपर टहलते देखा। देखकर भगवान्‌से बोला—"महाश्रमण! यह तुम हो?"

"यह मैं हूँ" कह भगवान् आकाशमें उळ, नावमें आकर खळे हो गये।

तब उरुवेल-काश्यप जटिलको हुआ—"महाश्रमण दिव्य-शक्ति-धारी है, हो! किन्तु यह वैसा अर्हत् नहीं है, जैसा कि मैं।"

तब भगवान्‌को (विचार) हुआ—"चिरकाल तक इस मूर्ख (=मोघपुरुष)को यह (विचार) होता रहेगा—कि महाश्रमण दिव्य-शक्तिधारी है; किन्तु यह वैसा अर्हत् नहीं है, जैसा कि मैं। क्यों न मैं इस जटिलको फटकारूँ?"

तब भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यप जटिलसे कहा—"काश्यप! न तो तू अर्हत् है, न अर्हत्‌के मार्गपर आरूढ़। वह सूझ भी तुझे नहीं है, जिससे अर्हत् होवे, या अर्हत्‌के मार्गपर आरूढ़ होवे।"

(१५) काश्यप-बंधुओंकी प्रव्रज्या

(तब) उरुवेल-काश्यप जटिल भगवान्‌के पैरोंपर शिर रख, भगवान्‌से बोला—"भन्ते!

भगवान्‌के पाससे मुझे प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले।"

"काश्यप ! तू पाँच सौ जटिलोंका नायक....है। उनको भी देख....।"

तब उरुवेल काश्यप जटिलने....जाकर; उन जटिलोंसे कहा—"मैं महाश्रमणके पास ब्रह्मचर्य-ग्रहण करना चाहता हूँ; तुमलोगोंकी जो इच्छा हो सो करो।"

"पहलेहीसे ! हम महाश्रमणमें अनुरक्त हैं, यदि आप महाश्रमणके शिष्य होंगे, (तो) हम सभी महाश्रमणके शिष्य बनेंगे"।

वह सभी जटिल केश-सामग्री, जटा-सामग्री, [1]खारी और घीकी सामग्री, अग्निहोत्र-सामग्री (आदि अपने सामानको) जलमें प्रवाहितकर, भगवान्‌के पास गये। जाकर भगवान्‌के चरणोंपर शिर झुका बोले—"भन्ते ! हम भगवान्‌के पास प्रव्रज्या पावें, उपसम्पदा पावें।"

"भिक्षुओ ! आओ धर्म सु-व्याख्यात है, भली प्रकार दुःखके अन्त करनेके लिये ब्रह्मचर्य पालन करो।"

यही उन आयुष्मानोंकी उपसंपदा हुई।

न दी का श्य प जटिलने केश-सामग्री, जटा-सामग्री, खारी और घीकी सामग्री, अग्निहोत्र-सामग्री नदीमें बहती हुई देखी। देखकर उसको हुआ—"अरे ! मेरे भाईको कुछ अनिष्ट तो नहीं हुआ है," (और) जटिलोंको—"जाओ, मेरे भाईको देखो तो" (कह,) स्वयं भी तीन सौ जटिलोंको साथ ले, जहाँ आयुष्मान् उरुवेल-काश्यप थे, वहाँ गया; और जाकर बोला—"काश्यप ! क्या यह अच्छा है?"

"हाँ, आवुस ! यह अच्छा है।"

तब वह जटिल भी केश-सामग्री....जलमें प्रवाहितकर, जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर.... बोले—"भन्ते !....उपसम्पदा पावें।".....वही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई।

ग या का श्य प जटिलने केश-सामग्री नदीमें बहती देखी।...."काश्यप ! क्या यह अच्छा है?"

"हाँ ! आवुस ! यह अच्छा है।"

यही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई।

४—*गया*

तब भगवान् उ रु वे ला में इच्छानुसार विहारकर, सभी एकसहस्र पुराने जटिल भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ ग या सी स गये।

(१६) गयासीस पर आदीप्त पर्यायका उपदेश

वहाँ भगवान् एक हजार भिक्षुओंके साथ ग या [2]ग या - सी स प र विहार करते थे। वहाँ भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमन्त्रित किया—"भिक्षुओ ! सभी जल (=नष्ट हो) रहा है। क्या जल रहा है? चक्षु जल रही है, रूप जल रहा है, चक्षुका विज्ञान[3] जल रहा है, चक्षुका सं स्प र्श जल रहा है, और चक्षुके संस्पर्शके कारण जो वेदनायें—सुख, दुःख, न-सुख-न-दुःख—उत्पन्न होती हैं, वह भी जल रही हैं?—राग-अग्निसे, द्वेष-अग्निसे, मोह-अग्निसे जल रहा है। जन्म, जरासे, और मरणके योगसे, रोने-पीटनेसे, दुःखसे, दुर्मनस्कतासे, परेशानीसे जल रही हैं—यह मैं कहता हूँ।

"श्रोत्र०। ०शब्द०। ०श्रोत्र-विज्ञान०। ०श्रोत्रका-संस्पर्श०। ०श्रोत्रके संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदनायें०। घ्राण (=नासिका-इन्द्रिय)....गंध....घ्राण-विज्ञान जल रहे हैं। घ्राणका संस्पर्श

---

[1] खरिया, झोली।

[2] गयासीस=गयाका ब्रह्मयोनि पर्वत है।

[3] इन्द्रिय और विषयके सम्बन्धसे जो ज्ञान होता है।

जल रहा है....यह मैं कहता हूँ। जिह्वा०। ०रस०। ०जिह्वा-विज्ञान०। ०जिह्वा-संस्पर्श ०।०जिह्वा-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदनायें०....०जल रही हैं।....यह मैं कहता हूँ। काया०-०स्पर्श०....काय-विज्ञान०....०काय-संस्पर्श....काय-संस्पर्शसे (उत्पन्न) वेदनायें०....०जल रही हैं। ०....मन०....०धर्म० ....०मनो-विज्ञान०....०....०मन-संस्पर्श....मन-संस्पर्शसे (उत्पन्न) वेदनायें जल रही हैं। किससे जल रही हैं। राग-अग्निसे द्वेष-अग्निसे मोह-अग्निसे जल रही हैं। जन्म, जरा और मरणके योगसे जल रही हैं। रोने-पीटनेसे दुःखसे दुर्मनस्कतासे जल रही हैं"——यह मैं कहता हूँ।

"भिक्षुओ! ऐसा देख, (धर्मको) सुननेवाले आर्य[1]शिष्य चक्षुसे निर्वेद[2]-प्राप्त होता है, रूपसे निर्वेद-प्राप्त होता है, चक्षु-विज्ञानसे निर्वेद-प्राप्त होता है, चक्षु-संस्पर्शसे[3] निर्वेद-प्राप्त होता है; चक्षु-संस्पर्शके कारण जो यह उत्पन्न होती है वेदना——सुख, दुःख, न सुख-न दुःख——उससे भी निर्वेद-प्राप्त होता है।

"श्रोत्र०। शब्द०। श्रोत्र-विज्ञान०। श्रोत्र-संस्पर्श०। श्रोत्र-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना०। घ्राण०। गंध०। घ्राण-विज्ञान०। घ्राण-संस्पर्श० घ्राण-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना०। जिह्वा०। रस०। जिह्वा-विज्ञान०। जिह्वा-संस्पर्श०। जिह्वा-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना०। काय०। स्पर्श[3] ०। काय-विज्ञान०। काय-संस्पर्श०। काय-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना०।

"मनसे निर्वेद-प्राप्त होता है। धर्मसे निर्वेद-प्राप्त होता है। मनो-विज्ञानसे निर्वेद-प्राप्त होता है। मन-संस्पर्शसे निर्वेद-प्राप्त होता है। मन-संस्पर्शके कारण जो यह वेदना——सुख, दुःख, न सुख-न दुःख—उत्पन्न होती है उससे भी निर्वेद-प्राप्त होता है।

उदास हो विरक्त होताहे। विरक्त होनेसे मुक्त होता है। मुक्त होनेपर मैं मुक्त हूँ" यह ज्ञान होता है। वह जानता है—"आवागमन खतम हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, करना था सो करचुका, और यहाँ कुछ (करनेको बाकी) नहीं है।" इस व्याख्यानके कहे जाते वक्त उन हजार भिक्षुओंके चित्त निर्लिप्त हो आवागमन देनेवाले चित्त-मलोंसे छूट गये।......

उरुवेल प्रातिहार्य (नामक) तृतीय भाणवार समाप्त ॥३॥

५—*राजगृह*

(१७) राजगृहमें बिंबिसारकी दीक्षा

भगवान् ग या सी स में इच्छानुसार विहारकर, (रा जा विं बि सा र से की हुई प्रतिज्ञा का स्मरणकर) सभी एक हजार पुराने जटिल भिक्षुओंके महान् भिक्षु-संघके साथ, चारिकाके लिये चल दिये। भगवान् क्रमशः चारिका करते, रा ज गृ ह पहुँचे। वहाँ भगवान् राजगृहमें लट्ठि[4] (यट्ठि) वनके सु प्र ति ष्ठि त चौरे (=चैत्य)में ठहरे।

मगध-राज श्रेणिक बिं बि सा र ने (अपने मालीके मुँहसे) सुना, कि शाक्यकुलसे साधु बने शाक्यपुत्र श्रमण गौ त म राजगृहमें पहुँच गये हैं। राजगृहमें लट्ठि (=यट्ठि) व न के सुप्रतिष्ठित चैत्यमें विहार कर रहे हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगल-यश फैला हुआ है—"वह भगवान् अर्हत् हैं, सम्यक्-संबुद्ध हैं, विद्या और आचरणसे युक्त हैं, सुगत हैं, लोकोंके जानने वाले हैं, उनसे उत्तम कोई नहीं है ऐसे (वह) पुरुषोंके चाबुक-सवार हैं, देवताओं और मनुष्योंके उपदेशक हैं—(ऐसे वह) बुद्ध भगवान् हैं।" वह ब्रह्मलोक, मारलोक, देवलोक, सहित इस लोकको, देव-मनुष्य-सहित

---

[1] स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अना-गामी, अर्हत्। [2] वैराग्यकी पूर्वावस्था।
[3] शीत, उष्णआदि। [4] राजगिरके पासका जठियाँव।

साधु-ब्राह्मण-युक्त (सभी) प्रजाको, स्वयं समझ=साक्षात्कारकर जानते हैं। वह आदिमें कल्याण-(-कारक), मध्यमें कल्याण(-कारक), अन्तमें कल्याण(-कारक) धर्मका, अर्थ-सहित=व्यञ्जन-सहित उपदेश करते हैं। वह केवल पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्यका प्रकाश करते हैं। इस प्रकारके अर्हत् लोगोंका दर्शन करना उत्तम है।"

मगध-राज श्रेणिक बि बि सा र बारह लाख म ग ध-निवासी ब्राह्मणों और गृहस्थोंके साथ जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। वह बारह लाख मगध-निवासी ब्राह्मण गृहस्थ भी—कोई भगवान्‌को अभिवादनकर, कोई भगवान्‌से कुशल प्रश्न पूछकर, कोई भगवान्‌की ओर हाथ जोळकर, कोई भगवान्‌को नाम-गोत्र सुनाकर, कोई कोई चुप-चापही एक ओर बैठ गये। तब उन बारह लाख मगधके ब्राह्मणों, गृहस्थोंके (चित्तमें) होने लगा—

"क्योंजी! महाश्रमण (गौतम) उ रु वे ल-का श्य प का शिष्य है, अथवा उरुवेल-काश्यप महाश्रमणका शिष्य है?"

तब भगवान्‌ने उस बारह लाख मगध-वासी ब्राह्मणों और गृहस्थोंके चित्तके वितर्कको जान, आयुष्मान् उरुवेल-काश्यपसे गाथामें कहा—

"हे उरुबेल-वासी! हे तपः कृशोंके उपदेशक! क्या देखकर (तूने) आग छोळी?

काश्यप! तुमसे यह बात पूछता हूँ, तुम्हारा अग्निहोत्र कैसे छूटा?"

(काश्यपने कहा)—"रूप, शब्द और रसरूपी कामभोगोंमें, स्त्रियोंके रूप शब्द, और रसमें हवन करते हैं, काम-भोगोंके रूप शब्द और रसमें [1]कामेष्ठि-यज्ञ करते हैं। यह रागादि उपधियाँ मल हैं, (मैंने) यह जान लिया, इसलिये मैं यज्ञ और होमसे विरक्त हुआ।"

भगवान्‌ने (कहा)—"हे काश्यप! रूप शब्द और रसमें तेरा मन नहीं रमा। तो देव-मनुष्य-लोकमें कहाँ तेरा मन रमा, काश्यप! इसे मुझे कह।"

"काम-मदमें अविद्यमान, निर्लेप, शांत रागादि-रहित (निर्वाण-) पदको देखकर। निर्विकार, दूसरेकी सहायतासे न पार होने वाले (निर्वाण-)पदको देखकर (मैं) इष्ट और यज्ञ और होमसे विरक्त हुआ।"

तब आयुष्मान् उरुवेल-काश्यप आसनसे उठ, उपरने (=उत्तरासंग) को एक कंधेपर कर, भगवान्‌के पैरोंपर शिर रख भगवान्‌से बोले—"भन्ते! भगवान् मेरे गुरु हैं, मैं शिष्य हूँ। भन्ते! भगवान् मेरे गुरु हैं, मैं शिष्य हूँ।" तब उन बारह लाख मगध-वासी ब्राह्मणों और गृहस्थोंके (मनमें) हुआ—"उरुवेल-काश्यप महा-श्रमणका शिष्य है।"

तब भगवान्‌ने उन बारह लाख मगध-वासी ब्राह्मणों और गृहस्थोंके चित्तकी बात जान आनुपूर्वी कथा० कही०। तब बिंबिसार आदि ग्यारह लाख मगध-वासी ब्राह्मणों और गृहस्थोंको उसी आसनपर "जो कुछ पैदा होनेवाला है, वह नाशमान है" यह विरज=निर्मल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ; और एक लाख उपासक बने।

तब धर्मको जानकर, प्राप्तकर, विदितकर, अवगाहनकर सन्देह-रहित, विवाद-रहित बन भगवान्‌के धर्ममें विशारद और स्वतंत्र हो, बिम्बिसारने भगवान्‌से कहा—"भन्ते! पहिले कुमार-अवस्थामें मेरी पाँच अभिलाषायें थीं, वह अब पूरी हो गईं। भन्ते! पहिले कुमार अवस्थामें (चित्तमें) यह होता था—"(क्या ही अच्छा होता) यदि मुझे (राज्यका) अभिषेक मिलता।" यह मेरी....पहिली अभिलाषा थी, जो अब पूरी हो गई है। "मेरे राज्यमें अर्हत् यथार्थ बुद्ध आते" यह मेरी....दूसरी अभिलाषा

---

[1] किसी कामनासे किया जानेवाला यज्ञ।

थी, वह भी अब पूरी होगई । "उन भगवान्‌की मैं सेवा करता"; यह मेरी तीसरी अभिलाषा थी, वह भी अब पूरी हो गई। "वह भगवान् मुझे धर्म-उपदेश करते" यह मेरी चौथी अभिलाषा थी, वह भी अब पूरी हो गई । "उन भगवान्‌को मैं जानता" यह पाँचवीं अभिलाषा थी, वह भी अब पूरी होगई। आश्चर्य है ! भन्ते ! ! आश्चर्य है ! भन्ते ! ! जैसे औंधेको सीधा कर दे, ढँकेको उघाळ दे, भूलेको रास्ता बतला दे, अंधकारमें तेलकी रोशनी रख दे, जिसमें आँखवाले रूप देखें; ऐसेही भगवान्‌ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया। इसलिये में भगवान्‌की शरण लेता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। आजसे भगवान् मुझे हाथ-जोळ शरणमें आया उपासक जानें। भिक्षु-संघ-सहित कलके लिये मेरा निमन्त्रण स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौन रह उसे स्वीकार किया। तब मगध-राज श्रेणिक बिम्बिसार भगवान्‌की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया। मगध-राज श्रेणिक बिम्बिसारने उस रातके बीतनेपर, उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा, भगवान्‌को कालकी सूचना दी—भन्ते ! काल होगया, भोजन तैयार है। तब भगवान् पूर्वाह्ण समय सु-आच्छादित (हो), (भिक्षा-) पात्र और चीवर ले, सभी एक सहस्र पुराने जटिल-भिक्षुओंवाले महान् भिक्षुसंघके साथ राजगृहमें प्रविष्ट हुए ।

उस समय देवोंका इन्द्र शक्र ब्राह्मण-कुमारका रूप धारणकर बु द्ध स हि त भिक्षु-संघके आगे आगे यह गाथाएँ गाता हुआ चलता था—

"(भगवान् राजगृहमें प्रवेश कर रहे हैं)
पुराण जटिलोंके साथ (वह) संयमी;
मुक्तोंके साथ वह मुक्त, कुंदन जैसे वर्णवाले, भगवान् राजगृहमें ॥
पुराने शान्त जटिलोंके साथ (वह) शान्त, मुक्तोंके साथ (वह) मुक्त । कुंदन जैसे० ॥
पुराने मुक्त जटिलोंके साथ (वह) मुक्त, विप्रमुक्तोंके साथ (वह) विप्रमुक्त । कुंदन जैसे०॥
पुराने पार उतरे जटिलोंके साथ (वह भव) पार उतरे विप्रमुक्तोंके साथ (वह) विप्रमुक्त । कुंदन जैसे०॥

दश (आर्य-) निवास, दश-बल, दश-धर्म (=कर्मपथ-) सहित, दशों (अशैक्ष्य अंगो)से युक्त ।
दश सौ (पुरुषोंसे) युक्त (वह) भगवान् राजगृहमें प्रवेश करते हैं।

लोग देवोंके इन्द्र श क्र को देखकर ऐसा कहते थे—

"अहो ! यह ब्राह्मण-कुमार सुंदर है । अहो ! यह कुमार दर्शनीय है । अहो ! यह कुमार चित्तको भला लगनेवाला है। किसका यह माणवक है ?"

ऐसा कहनेपर देवोंका इन्द्र शक्र उन मनुष्योंसे गाथामें बोला—

"जो धीर, सबसे बुद्धिमान्, दान्त, शुद्ध (और) अनुपम पुरुष हैं।
लोकमें अर्हत्, सुगत हैं, उनका मैं परिचारक हूँ।।"

तब भगवान्, जहाँ मगध-राज श्रेणिक बिम्बिसारका घर था, वहाँ गये। जाकर भिक्षु-संघ-सहित बिछे आसनपर बैठे। तब मगधराजने....बुद्धसहित भिक्षु-संघको अपने हाथसे उत्तम भोजन कराया, संतृप्त कराया, पूर्ण कराया; और भगवान्‌के पात्रसे हाथ खींच लेनेपर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मगध-राज....के (चित्तमें) हुआ—"भगवान् कौनसी जगह विहार करें ? जो कि गाँवसे न बहुत दूर हो, न बहुत समीप हो, इच्छुकोंके आने जाने लायक हो; (जहाँ) दिनमें बहुत भीळ न हो (और) रातमें लोगोंका हल्ला गुल्ला न हो; मनुष्यके लिये एकान्त स्थान हो, एकान्तवासके योग्य हो ?" तब मगध-राज....को हुआ—"यह हमारा वे ळु (वे णु) व न उद्यान गाँवसे न बहुत दूर है, न बहुत समीप०,

एकान्तवासके योग्य है। क्यों न मैं वेणुवन-उद्यान बुद्ध सहित भिक्षु-संघको प्रदान करूँ।"

तब मगध-राज....ने भगवान्‌से निवेदन किया—"भन्ते! मैं वे णु व न उ द्या न बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको देता हूँ।"

भगवान् आराम स्वीकार किये; और फिर मगध-राजको धर्म-संबंधी कथाओं द्वारा,.... समुत्तेजितकर....आसनसे उटकर चलेगये।

भगवान्‌ने इसीके सम्बन्धमें धर्म-संबंधी कथा कह, भिक्षुओंको सम्बोधित किया—"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ आरामके ग्रहण करनेकी।" 2

(१८) सारिपुत्र और मोद्गल्यायनको प्रव्रज्या

उस समय सं ज य (नामक) परिव्राजक रा ज गृ ह में ढाई सौ परिव्राजकोंकी बळी जमातके साथ निवास करता था। सा रि पु त्र, और मौ द्ग ल्या य न, संजय परिव्राजकके चेले थे। उन्होंने (आपसमें) प्रतिज्ञाकी थी—जो पहिले अमृतको प्राप्त करे, वह दूसरेसे कहे। उस समय आयुष्मान् अ श्व जि त् पूर्वाह्‌ण समय सु-आच्छादित हो, पात्र और चीवर ले, अति सुन्दर= प्रतिक्रांत आलोकन=विलोकनके साथ, संकोचन और प्रसारणके साथ, नीची नजर रखते, संयमी ढंगसे, राजगृहमें भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुए। सारिपुत्र परिव्राजकने आयुष्मान् अश्वजित्‌को अतिसुन्दर....आ-लोकन=विलोकनके साथ....नीची नजर रखते संयमी ढंगसे राजगृहमें भिक्षाके लिये घूमते देखा। देख-कर उनको हुआ—"लोकमें अर्हत् या अर्हत्‌के मार्गपर जो आरूढ़ हैं, यह भिक्षु उनमेंसे एक है। क्यों न मैं इस भिक्षुके पास जा पूछूँ—आवुस! तुम किसको (गुरु) करके साधु हुए हो; कौन तुम्हारा गुरु है?; तुम किसके धर्मको मानते हो?" फिर सारिपुत्र परिव्राजक (के चित्तमें) हुआ— यह समय इस भिक्षुसे (प्रश्न) पूछनेका नहीं है, यह घर घर भिक्षाके लिये घूम रहा है। क्यों न मैं इस भिक्षुके पीछे होलूँ।"

आयुष्मान् अश्वजित् राज-गृहमें भिक्षाके लिये घूमकर, भिक्षाको ले, चल दिये। तब सारिपुत्र परिव्राजक जहाँ आयुष्मान् अश्वजित् थे, वहाँ गया; जाकर आयुष्मान् अश्वजित्‌के साथ यथायोग्य कुशल प्रश्न पूछ एक ओर खळा होगया। खळे होकर सारिपुत्र परिव्राजकने आयुष्मान् अश्वजित्‌से कहा—

"आवुस! तेरी इन्द्रियाँ प्रसन्न हैं, तेरी कान्ति शुद्ध तथा उज्वल हैं। आवुस! तुम किस-को (गुरु) करके साधु हुए हो, तुम्हारा गुरु कौन है? तुम किसका धर्म मानते हो?"

"आवुस! शा क्य-कुलसे प्रव्रजित शा क्य-पु त्र (जो) महाश्रमण हैं, उन्हीं भगवान्‌को (गुरु) करके मैं साधु हुआ। वही भगवान् मेरे गुरु हैं। उन्हीं भगवान्‌का धर्म मैं मानता हूँ।"

"आयुष्मान्‌के गुरुका क्या मत है किस (सिद्धांत)को वह मानते हैं?"

"आवुस! मैं नया हूँ, इस धर्ममें अभी नया ही साधु हुआ हूँ; विस्तारसे मैं तुम्हें नहीं बतला सकता, इसलिए संक्षेपमें तुमसे धर्म कहता हूँ।"

"तब सा रि पु त्र परिव्राजकने आयुष्मान् अ श्व जि त् से कहा—"अच्छा आवुस!

थोड़ा बहुत जो हो कहो, सारहीको मुझे बतलाओ।

सारही से मुझे प्रयोजन है, क्या करोगे बहुतसा विस्तार कहकर।"

तब आयुष्मान् अश्वजित्‌ने सारिपुत्र परिव्राजकसे यह ध र्म-प र्या य (=उपदेश) कहा—

"हेतु (=कारण)से उत्पन्न होनेवाली जितनी वस्तुयें हैं, उनका हेतु है, (यह) तथागत बतलाते हैं।

उनका जो निरोध है (उसको भी बतलाते हैं), यही महाश्रमणका वाद है।"

तब सारिपुत्र परिव्राजकको इस धर्म-पर्यायके सुननेसे—"जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है, वह सब

नाशमान् है;" यह विरज=विमल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ। यही धर्म है, जिससे कि शोक-रहित पद, प्राप्त किया जा सकता है ; और जिसे कि कल्पोंसे लाखों विना देखे छोळ गये थे।

तव सारिपुत्र परिव्राजक जहाँ मौद्गल्यायन परिव्राजक था, वहाँ गया। मौद्गल्यायन परिव्राजकने दूरसे ही सारिपुत्र परिव्राजकको आते देखा। देखकर सारिपुत्र परिव्राजकसे कहा—आवुस! तेरी इन्द्रियाँ प्रसन्न हैं, तेरी कान्ति शुद्ध तथा उज्वल हैं। तूने आवुस! अमृत तो नहीं पा लिया?"

"हाँ आवुस! अमृत पा लिया।"

"आवुस! कैसे तूने अमृत पाया?"

"आवुस! मैंने आज राजगृहमें अश्वजित् भिक्षुको अति सुन्दर....आलोकन=विलोकनसे ....भिक्षाके लिये घूमते देखकर....(सोचा) 'लोकमें जो अर्हत् हैं....यह भिक्षु उनमेंसे एक हैं।'....मैंने.... अश्वजित्....से पूछा....तुम्हारा गुरु कौन है....। अश्वजित्ने यह धर्मपर्याय कहा—हेतुसे उत्पन्न०।

तव मौद्गल्यायन परिव्राजकको इस धर्म-पर्यायके सुननेसे—"जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है, वह सव नाशमान् है"—यह विमल=विरज धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ।......

मौद्गल्यायन परिव्राजकने सारिपुत्र परिव्राजकसे कहा—"चलो चलें आवुस!! भगवान्के पास, वह हमारे गुरु हैं। और यह (जो) ढाई सौ परिव्राजक हमारे आश्रयसे=हमें देखकर यहाँ विहार करते हैं; उन्हें भी वूझलें (और कहदें)—जैसी तुम लोगोंकी राय हो वैसा करो—।"

तव सारिपुत्र, मौद्गल्यायन जहाँ वह परिव्राजक थे, वहाँ गये; जाकर उन परिव्राजकोंसे वोले—"आवुसो! हम भगवान्के पास जाते हैं, वह हमारे गुरु हैं।"

"हम आयुष्मानोंके आश्रयसे—आयुष्मानोंको देखकर, यहाँ विहार करते हैं। यदि आयुष्मान् महाश्रमणके शिष्य होंगे, तो हम सवभी महाश्रमणके शिष्य होंगे।"

तव सारिपुत्र और मौद्गल्यायन संजय परिव्राजकके पास गये। जाकर संजय परिव्राजकसे वोले—

"आवुस! हम भगवान्के पास जाते हैं, वह हमारे गुरु हैं।"

"नहीं, आवुसो! मत जाओ। हम तीनों (मिलकर) (इस जमातकी महन्थाई करेंगे।"

"दूसरी वार भी सारिपुत्र और मौद्गल्यायनने संजय परिव्राजकसे कहा—"....हम भगवान्के पास जाते हैं....।"

"....मत जाओ! हम तीनों (मिलकर) इस जमातकी महन्थाई करेंगे।"

तीसरी वार भी....।

तव सारिपुत्र और मौद्गल्यायन उन ढाई सौ परिव्राजकोंको ले, वेणुवन चले गये। संजय परिव्राजकको वहीं मुँहसे गर्म खून निकल आया।

भगवान्ने दूरसे ही सारिपुत्र और मौद्गल्यायनको आते हुए देख भिक्षुओंको सम्वोधित किया—

"भिक्षुओ! यह दो मित्र कोलित (=मौद्गल्यायन) और उपतिष्य (=सारिपुत्र) आ रहे हैं। यह मेरे प्रधान शिष्य-युगल होंगे, भद्र-युगल होंगे।"

गम्भीर ज्ञान अनुपम, भवनाशक, मुक्त, (और) दुर्लभ (निर्वाण)के विषयमें वेणुवनमें वुद्धने हमारे लिये भविष्यद्वाणी की ॥—

कोलित और उपतिष्य यह दो मित्र आ रहे हैं।

यह मेरे दो मुख्य शिष्य उत्तम जोळी होंगे॥"

तव सारिपुत्र और मौद्गल्यायन जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्के चरणोंमें शिर झुकाकर वोले—

"भन्ते ! हमें भगवान् प्रव्रज्या दें, उपसम्पदा दें।"

भगवान्ने कहा—"भिक्षुओ आओ (यह) धर्म सु-व्याख्यात है। अच्छी प्रकार दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्य-पालन करो।"

यही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई।

उस समय म ग ध के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कुल-पुत्र भगवान्के शिष्य होते थे। लोग (देखकर) हैरान होते, निन्दा करते और दुःखी होते थे—"अपुत्र बनानेको श्रमण गौतम (उतरा) है, विधवा बनानेको श्रमण गौ त म (उतरा) है, कुल-नाशके लिये श्रमण गौतम (उतरा) है। अभी उसने एक सहस्र जटिलोंको साधु बनाया। इन ढाई सौ सं ज य के परिव्राजकोंको भी साधु बनाया। अब म ग ध के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कुल-पुत्र भी श्रमण गौतमके पास साधु बन रहे हैं।" वह भिक्षुओंको देख इस गाथाको कह, ताना देते थे—

"महाश्रमण म ग धों के [1]गि रि व्र ज में आया है।
संजयके सभी चेलोंको तो ले लिया, अब किसको लेनेवाला है?"

भिक्षुओंने इस बातको भगवान्से कहा। भगवान्ने कहा—

"भिक्षुओ ! यह शब्द देर तक न रहेगा। एक सप्ताह बीतते लोप हो जायगा। जो तुम्हें उस गाथासे ताना देते हैं...। उन्हें तुम इस गाथासे उत्तर दो—

"महावीर तथागत सच्चे धर्म (के रास्ते)से ले जाते हैं।
धर्मसे ले जाये जातोंके लिये बुद्धिमानोंको हसद क्यों?"

...लोगोंने कहा—"शा क्य पु त्री य (=शाक्य-पुत्र बुद्धके अनुयायी) श्रमण, धर्म (के रास्ते)से ले जाते हैं, अधर्मसे नहीं।"

सप्ताह भर ही वह शब्द रहा। सप्ताह बीतते-बीतते लोप होगया।

चतुर्थ भाणवार समाप्त ॥४॥

§२—शिष्य, उपाध्याय आदिके कर्त्तव्य

(१) शिष्यका कर्त्तव्य

उस समय भिक्षु उ पा ध्या य के बिना रहते थे, (इसलिये वह) उपदेश=अनुशासन न किये जानेसे, बिना ठीकसे पहने, बिना ठीकसे ढाँके, बेसहूरीसे भिक्षाके लिये जाते थे। खाते हुए मनुष्योंके भोजनके ऊपर, खाद्यके ऊपर...पेयके ऊपर जूठे पात्रको बढ़ा देते थे। स्वयं दाल भी भात भी माँगकर खाते थे। भोजनपर बैठे हल्ला मचाते रहते थे। लोग हैरान होते, धिक्कारते और दुःखी होते थे। क्यों शा क्य पु त्री य श्रमण बिना ठीकसे पहिने० भोजनपर बैठे भी हल्ला मचाते रहते हैं, जैसे कि ब्राह्मण ब्राह्मण-भोजमें। भिक्षुओंने लोगोंका हैरान होना० सुना। जो भिक्षु निर्लोभी सन्तुष्ट, लज्जी,[2] संकोचशील, शिक्षार्थी थे, वह हैरान हुए, धिक्कारने लगे, दुखी हुए०।...। तब उन भिक्षुओंने भगवान्से इस बातको कहा।...। भगवान्ने धिक्कारा—'भिक्षुओ ! उन नालायकोंका (यह करना) अनुचित है..अयोग्य है...असाधुका आचार है, अभव्य है, अकरणीय है। भिक्षुओ ! कैसे वह

---

[1] राजगृह। [2] जानकर अपराध नहीं करता, अपराध हो जानेपर छिपाता नहीं। न जानेके रास्ते नहीं जाता, ऐसा व्यक्ति लज्जी कहा जाता है।" (—अट्ठकथा)

नालायक विना ठीकसे पहिने० भिक्षाके लिये घूमते हैं०। भिक्षुओ! (उनका) यह (आचरण) अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये नहीं है, और न प्रसन्नों (=श्रद्धालुओं)को अधिक प्रसन्न करनेके लिये; वल्कि अप्रसन्नोंको (और भी) अप्रसन्न करनेके लिये, तथा प्रसन्नोंमेंसे भी किसी किसीके उलट देनेके लिये है।" तव भगवान्‌ने उन भिक्षुओंको अनेक प्रकारसे धिक्कारकर. . .भिक्षुओंको संवोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उपाध्याय (करने)की । उपाध्यायको शिष्य (=सद्धिविहारी) में पुत्र-वुद्धि रखनी चाहिये, और शिष्यको उपाध्यायमें पिता-वुद्धि. . .।

इस प्रकार उपाध्याय ग्रहण करना चाहिये—उपरना (उत्तरा-संग)को एक कंधेपर करवा, पाद-वंदन करवा, उकळूं वैठवा, हाथ जोळवा ऐसा कहलवाना चाहिये—'भन्ते! मेरे उपाध्याय वनिये, भन्ते! मेरे उपाध्याय वनिये, भन्ते! मेरे उपाध्याय वनिये।'. . .

"भिक्षुओ! शिष्यको उपाध्यायके साथ अच्छा वर्ताव करना चाहिये। अच्छा वर्ताव यह है— समयसे उठकर, जूता छोळ, उत्तरासंगको एक कंधेपर रख, दातुवन देनी चाहिये, मुख (धोनेको) जल देना चाहिये। आसन विछाना चाहिये । यदि खिचळी (कलेऊके लिये) है, तो पात्र धोकर (उसे) देना चाहिये।. . .। पानी देकर पात्र लेकर. . .विना घसे धोकर रख देना चाहिये। उपाध्यायके उठ जानेपर, आसन उठाकर रख देना चाहिये । यदि वह स्थान मैला हो, तो झाळू देना चाहिये । यदि उपाध्याय गाँवमें जाना चाहते हैं, तो वस्त्र थमाना चाहिये,. . . , कमर-वन्द देना चाहिये, चौपेतकर संघाटी[1] देनी चाहिये, धोकर पानी भर पात्रदेना चाहिये। यदि उपाध्याय अनुगामी-भिक्षु चाहते हैं, तो तीन स्थानोंको ढाँकते हुए घेरादार (चीवर) पहन, कमर-वन्द वाँध चौपेती संघाटी पहिन, मुद्धी वाँध, धोकर पात्रले उपाध्यायका अनुचर (=पीछे चलनेवाला) भिक्षु वनना चाहिये । (साथमें) न वहुत दूर होकर चलना चाहिये, न वहुत समीप होकर चलना चाहिये। पात्रमें मिली (भिक्षा)को ग्रहण करना चाहिये। उपाध्यायके वात करते समय, वीच वीचमें वात न करना चाहिये। उपाध्याय (यदि) सदोष (वात)वोल रहे हों, तो मना करना चाहिये। लौटते समय पहिलेही आकर आसन विछा देना चाहिये, पादोदक (=पैर धोनेका जल), पाद-पीठ, पा द क ठ ली (=पैर घिसनेका साधन) रख देना चाहिये। आगे वढकर पात्र-चीवर (हाथसे) लेना चाहिये । दूसरा वस्त्र देना चाहिये। पहिला वस्त्र ले लेना चाहिये। यदि चीवरमें पसीना लगा हो, थोळी देर धूपमें सुखा देना चाहिये। धूपमें चीवरको डाहना न चाहिये। (फिर) चीवर वटोर लेना चाहिये।. . .यदि भिक्षान्न है, और उपाध्याय भोजन करना चाहते हैं, तो पानी देकर भिक्षा देनी चाहिये । उपाध्यायको पानीके लिये पूछना चाहिये। भोजन कर लेनेपर पानी देकर, पात्र ले, झुकाकर विना घिसे अच्छी तरह धो-पोंछकर मुहूर्तभर धूपमें सुखा देना चाहिये। धूपमें पात्र डाहना न चाहिये।. . .यदि उपाध्याय स्नान करना चाहें, स्नान कराना चाहिये।. . . यदि जं ता घ र (=स्नानागार)में जाना चाहें, (स्नान-) चूर्ण ले जाना चाहिये, मिट्टी भिगोनी चाहिये । जंताघरके पीढ़ेको लेकर उपाध्यायके पीछे पीछे जाकर, जन्ताघरके पीढ़ेको दे, चीवर ले एक ओर रख देना चाहिये। (स्नान-)चूर्ण देना चाहिये। मिट्टी देनी चाहिये।. . .उपाध्यायका (शरीर) मलना चाहिये । (उपाध्यायके) नहा लेनेसे पूर्वही अपने देहको पोंछ (सुखा), कपळा पहन, उपाध्यायके शरीरसे पानी पोंछना चाहिये। वस्त्र देना चाहिये। संघाटी देनी चाहिये। जंताघरका पीढ़ा ले पहिलेही आकर, आसन विछाना चाहिये०।. . .

जिस विहारमें उपाध्याय विहार करते हैं, यदि वह विहार मैला हो, तो समर्थ होनेपर उसे साफ करना चाहिये। विहार साफ करनेमें पहिले पात्र चीवर निकालकर, एक ओर रखना चाहिये।

[1] दोहरा चीवर।

गद्दा-चद्दर निकालकर एक ओर रखना चाहिये। तकिया...रखनी चाहिये। चारपाई खळीकर... केवाळमें बिना टकराये लेकर, एक ओर रख देना चाहिये। पीढ़ेको खळाकर...केवाळमें बिना टकराये०। चारपाईके (पावेके) ओट०। पौदानको एक ओर०। सिरहानेका पटरा एक ओर०। फर्शको बिछावट के अनुसार हिफाजतसे ले जाकर०। यदि विहारमें जाला हो, तो उल्लोक पहिले बहारना चाहिये। अँधेरे कोने साफ करने चाहिये। यदि भीत (=दीवार) गेरूसे गच की हुई हो, तो लत्ता भिगोकर रगळकर साफ करनी चाहिये। यदि काली हो गई, मलिन भूमि हो, (तो भी) लत्ता भिगोकर रगळकर साफ करनी चाहिये।...। जिसमें धूलसे खराब न हो जाय। कूळेको ले जाकर एक तरफ फेंकना चाहिये। फर्शको धूपमें सुखा, साफकर फटकारकर, ले आकर पहिलेकी भाँति बिछा देना चाहिये। चारपाईके ओटको धूपमें सुखा साफकर ले आकर, उनके स्थानपर रख देना चाहिये। चारपाईको धूपमें सुखा, साफ-कर, फटकारकर नवाकर केवाळको बिना टकराये...ले आकर०। पीढ़ा०। तकिया०। गद्दा चद्दर धूपमें सुखा साफकर फटकारकर ले आकर बिछा देना चाहिये। पीकदान सुखा साफकर लेकर यथा-स्थान रख देना चाहिये।...।

यदि धूलि लिये पुरवा हवा चल रही हो, पूर्वकी खिळकियाँ बन्द कर देनी चाहिये।...। यदि जाळेके दिन हों, दिनको जंगला खुला रखकर, रातको बन्द कर देना चाहिये। यदि गर्मीका दिन हो तो दिनको जंगला बन्दकर रातको खोल देना चाहिये। यदि आंगन (=परिवेण) मैला हो, आंगन झाळना चाहिये। यदि कोठरी मैली हो०। यदि बैठक मैली हो०। यदि अग्निशाला (=पानी गर्म करनेका घर) मैली०। यदि पाखाना मैला हो०। यदि पानी न हो, पानी भरकर रखना चाहिये। यदि पीनेका जल न हो०। यदि पाखानेकी मटकीमें जल न हो०।

यदि उपाध्यायको उदासी हो, तो शिष्यको (उसे) हटाना हटवाना चाहिये, या धार्मिक कथा उनसे करनी चाहिये। यदि उपाध्यायको शंका (=कौकृत्य) उत्पन्न हुई हो, तो शिष्यको हटाना हटवाना चाहिये, या धार्मिक कथा उनसे करनी चाहिये। यदि उपाध्यायको (उल्टी) धारणा उत्पन्न हुई हो, तो शिष्यको छुळाना छुळवाना चाहिये, या धार्मिक कथा उनसे करनी चाहिये। यदि उपाध्यायने प रि वा स[1] देने योग्य बळा अपराध किया हो, तो शिष्यको कोशिश करनी चाहिये, जिसमें कि संघ उपाध्यायको परिवास दे। यदि उपाध्याय (दोषके कारण) मू ला य-प्र ति क र्ष ण[1] के योग्य हों, तो शिष्यको कोशिश करनी चाहिये, जिसमें कि संघ उपाध्यायका मूलाय-प्रतिकर्षण करे। यदि उपाध्याय मा न त्व [1]के योग्य हों, ०। यदि उपाध्याय अ ह्वा न [1]के योग्य हों, ०। यदि (भिक्षु-) संघ, उपाध्यायको त र्ज नी य[1] (=तज्जनीय), नि य स्स[1], प्र व्रा ज नी य,[1] प ति सा र णी य[1], या उ त्क्षे प णी य[1] कर्म (=दंड) करना चाहे तो शिष्यको उत्सुकता करनी चाहिये, जिसमें कि संघ उपाध्यायको दंड न करे या हल्का दंड करे। यदि संघने त ज्ज नी य, नि य स्स, प ब्बा ज नी य, प ति सा र णी य या उत्क्षेपणीय दंड कर दिया हो तो शिष्यको उत्सुकता करनी चाहिये कि उपाध्याय ठीकसे रहें, लोम गिरा दें, निस्तारके अनुकूल वर्ताव करें; जिसमें कि संघ उस दंडको मंसूख कर दे।

यदि उपाध्यायका चीवर धोने लायक हो तो शिष्यको धोना चाहिये, या उत्सुकता करनी चाहिये जिसमें कि उपाध्यायका चीवर धोया जावे। यदि उपाध्यायको चीवर बनानेकी जरूरत हो,० यदि उपाध्यायको रंग पकानेकी जरूरत हो,० यदि उपाध्यायका चीवर रँगने लायक हो,०। चीवरको रँगते वक्त अच्छी तरह उलट पलटकर रँगना चाहिये। कहीं खाली न छोळना चाहिये। उपाध्यायको बिना पूछे न किसीको पात्र देना चाहिये न किसीसे पात्र ग्रहण करना चाहिये; न किसीको चीवर देना

---

[1] देखो चूल्लवग्गके २ (पारिवासिक) स्कंधक और ३ (समुच्चय) स्कंधक।

चाहिये न किसीसे चीवर लेना चाहिये. न किसीको परिष्कार (=उपयोगी सामान) देना चाहिये. न किसीसे परिष्कार लेना चाहिये; न किसीका वाल काटना चाहिये. न किसीसे बाल कटवाना चाहिये; न किसीकी (देह) घँसनी चाहिये, न किसीसे घँसानी चाहिये; न किसीकी सेवा करनी चाहिये, न किसीसे सेवा करानी चाहिये; न किसीका पीछे चलनेवाला भिक्षु वनना चाहिये, न किसीको पीछे चलनेवाला भिक्षु वनाना चाहिये; न किसीका भिक्षान्न ले आना चाहिये, न किसीसे भिक्षान्न लिवाना चाहिये। उपाध्यायको विना पूछे न गाँवमें जाना चाहिये, न (साधनाके लिये) श्मशानमें जाना चाहिये, न (किसी) दिशाकी ओर चल देना चाहिये। यदि उपाध्याय रोगी हों तो (रोगसे) उठनेकी प्रतीक्षा करते, जीवनभर सेवा करनी चाहिये।

शिष्यका व्रत समाप्त।

(२) उपाध्यायके कर्त्तव्य

उपाध्यायको शिष्यसे अच्छा वर्ताव करना चाहिये। वह वर्ताव यह है—उपाध्यायको शिष्य पर...अनुग्रह करना चाहिये,...(शिष्यके लिये) उपदेश देना चाहिये...।...पात्र देना चाहिये...। यदि उपाध्यायको चीवर है, शिष्यको...नहीं।...चीवर देना चाहिये; या शिष्यको चीवर दिलानेके लिये उत्सुक होना चाहिये—परिष्कार[1] देना चाहिये।..। यदि शिष्य[1] रोगी हो, तो समयसे उठकर दातुवन..., मुखोदक देना चाहिये। आसन विछाना चाहिये। यदि खिचळी हो, तो पात्र धोकर देना चाहिये। पानी देकर, पात्र ले विना घिसे धोकर रख देना चाहिये। शिष्यके उठ जानेपर, आसन उठा लेना चाहिये। यदि वह स्थान मैला है, तो झाळू देना चाहिये। यदि शिष्य गाँव में जाना चाहता है, तो वस्त्र थमाना चाहिये०।०यदि पाखानेकी मटकीमें जल न हो०। सेवा करनी चाहिये।

उस समय शिष्य उपाध्यायके चले जानेपर, विचार-परिवर्तन कर लेनेपर (या) मर जाने पर...विना आचार्यके हो, उपदेश=अनुशासन न किये जानेसे, विना ठीकसे (चीवर) पहने विना ठीकसे ढँके वेसहूरीसे भिक्षाके लिये जाते थे०। भगवान्ने...भिक्षुओंको संवोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, आचार्य (करने)की।"4

(३) हटाने और न हटाने योग्य शिष्य

१—(क) उस समय शिष्य उपाध्यायोंके साथ अच्छी तरह न वर्तते थे इससे जो निर्लोभी, संतुष्ट, लज्जाशील, संकोची, शिक्षा चाहनेवाले भिक्षु थे वह हैरान होते, धिक्कारते और दुःखी होते थे—"क्यों शिष्य उपाध्यायोंके साथ ठीकसे नहीं वर्तते!"

तव उन भिक्षुओंने भगवान्से इस वातको कहा।

"भिक्षुओ! सचमुच शिष्य उपाध्यायोंके साथ ठीकसे नहीं वर्तते?"

"सचमुच, भगवान्!"

भगवान्ने धिक्कारा "भिक्षुओ! उन नालायकोंका (यह करना) अनुचित है, अ-योग्य है, साधुओंके आचारके विरुद्ध है, अ-भव्य है, अ-करणीय है। भिक्षुओ! कैसे वह नालायक उपाध्यायके साथ अच्छी तरह नहीं वर्तते? भिक्षुओ! (उनका) यह (आचरण) अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये नहीं है और न प्रसन्नोंको अधिक प्रसन्न करनेके लिये; वल्कि अप्रसन्नोंको (और भी) अप्रसन्न करनेके

---

[1]रोगी होनेपर उपाध्यायको शिष्यकी वह सभी सेवायें करनी होंगी, जो शिष्यके कर्त्तव्यमें (पृष्ठ १०१-२) आ चुकी हैं।

लिये तथा प्रसन्नोंमेंसे भी किसी किसीको उलटा देनेके लिये है।"

तब भगवान्ने उन भिक्षुओंको अनेक प्रकारसे धिक्कारकर. . .संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! शिष्योंको उपाध्यायके साथ बेठीक बर्ताव नहीं करना चाहिये। जो बेठीक बर्ताव करे उसे दु क्क ट (=दु ष्कृ त)का दोप हो।"5

(ख) (तव भी) ठीकसे नहीं बर्तते थे। (भिक्षुओंने) भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने कहा)—

"भिक्षुओ ! बेठीक बर्ताव करनेवाले (शिष्यको) हटा देनेकी अनुमति देता हूँ।"6

"और इस प्रकार भिक्षुओ ! हटाना चाहिये।—'तुझे हटाता हूँ'; 'मत फिर तू यहाँ आना'; या 'ले जा अपना पात्र-चीवर'; या 'मत तू मेरी सुश्रूषा करना'—इस प्रकार शरीरसे या वचनसे सूचित करनेपर वह शिष्य हटा समझा जाता है। (यदि) न कायासे, न वचनसे, न काय-वचनसे सूचित करे तो शिष्य हटाया नहीं समझा जाता।"

२—उस समय शिष्य हटाये जानेपर क्षमा-याचना नहीं करते थे । भगवान्से इस बातको (भिक्षुओंने) कहा। (भगवान्ने कहा)—

"भिक्षुओ ! क्षमा करानेकी अनुमति देता हूँ।"7

(तो भी) नहीं क्षमा कराते थे। भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने कहा)—

"भिक्षुओ ! हटाये हुए (शिष्यको) न क्षमा कराना योग्य नहीं; जो न क्षमा कराये उसे दु क्क ट का दोष हो।"8

३—(क) उस समय क्षमा करानेपर भी उ पा ध्या य क्षमा नहीं करते थे। भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने कहा)—

"भिक्षुओ ! क्षमा करनेकी अनुमति देता हूँ।"9

(ख) तो भी नहीं क्षमा करते थे; (जिससे) शिष्य चले जाते थे, या गृहस्थ हो जाते थे, या अन्य मतवालोंके पास चले जाते थे। भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने कहा)—

"भिक्षुओ ! क्षमा माँगनेपर न क्षमा करना उचित नहीं। जो न क्षमा करे उसको दु क्क ट का दोष हो।"10

४—उस समय उपाध्याय ठीकसे बर्ताव करनेवाले (शिष्य)को हटाते थे और बेठीकसे बर्ताव करनेवालेको नहीं हटाते थे। भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने कहा)—

(क) "भिक्षुओ ! ठीकसे बर्ताव करनेवालेको नहीं हटाना चाहिये। जो हटावे उसको दुक्कटका दोप हो। और भिक्षुओ ! बेठीकसे बर्ताव करनेवालेको न हटाना योग्य नहीं; जो न हटावे उसे दु क्क ट का दोप हो।"11

(ख) "भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त शिष्यको हटाना चाहिये—(१) उपाध्यायमें अधिक प्रेम नहीं रखता; (२) उपाध्यायमें अधिक श्रद्धा नहीं रखता; (३) अधिक लज्जाशील (=लज्जी) नहीं होता; (४) अधिक गौरव नहीं करता और (५) अधिक (ध्यान आदिकी) भावना नहीं करता। भिक्षुओ ! इन पाँच बातोंसे युक्त शिष्यको हटाना चाहिये।"12

(ग) "भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त शिष्यको नहीं हटाना चाहिये—(१) उपाध्यायमें अधिक प्रेम रखता है; (२) उपाध्यायमें अधिक श्रद्धा रखता है; (३) अधिक लज्जाशील होता है; (४) अधिक गौरव करता है; और (५) अधिक (ध्यान आदिकी) भावना करता है। भिक्षुओ ! इन पाँच बातोंसे युक्त शिष्यको नहीं हटाना चाहिये।"13

(घ) "भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त शिष्य हटाने योग्य है—(१) उपाध्यायमें अधिक प्रेम

नहीं रखता; ० (५) अधिक भावना नहीं करता०। 14

(ङ) "भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त शिष्य हटाने योग्य नहीं है—(१) उपाध्यायमें अधिक प्रेम रखता है; ० (५) अधिक भावना करता है०। 15

(च) "भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त शिष्यको न हटानेपर उपाध्याय दोषी होता है; और हटानेपर निर्दोष होता है—(१) उपाध्यायमें अधिक प्रेम नहीं रखता; ० (५) अधिक भावना नहीं करता है० ।16

(छ) "भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त शिष्यको हटानेपर उपाध्याय दोषी होता है और न हटानेपर निर्दोष होता है—(१) उपाध्यायमें अधिक प्रेम रखता है; ० (५) अधिक भावना करता है०।"17

(४) तीन शरणोंसे प्रव्रज्या

उस समय. . .ब्राह्मण रा ध ने भिक्षुओंके पास साधु बनना चाहा। भिक्षुओंने (उसे) साधु न बनाना चाहा। वह. . .प्रव्रज्या न पानेसे दुर्बल, रूखा, दुर्वर्ण, पीला हाळ-हाळ-निकला होगया। . . । भगवान्ने उस ब्राह्मणको देख. . .भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ! इस ब्राह्मणका उपकार किसी को याद है?"

ऐसे कहनेपर आयुष्मान् सा रि पु त्र ने भगवान्से कहा—"भन्ते! मैं इस ब्राह्मणका उपकार स्मरण करता हूँ।"

"सारिपुत्र! इस ब्राह्मणका क्या उपकार तू स्मरण करता है?"

"भन्ते! मुझे रा ज गृ ह में भिक्षाके लिये घूमते समय, इस ब्राह्मणने कलछीभर भात दिलवाया था। भन्ते मैं इस ब्राह्मणका यह उपकार स्मरण करता हूँ।"

"साधु! साधु! सारिपुत्र! सत्पुरुष कृतज्ञ=कृतवेदी (होते हैं)। तो सारिपुत्र! तू (ही) इस ब्राह्मणको प्रव्रजित कर, उपसम्पादित कर।"

"भन्ते! कैसे इस ब्राह्मणको प्रव्रजित करूँ, (कैसे) उपसम्पादित करूँ?"

तब भगवान्ने इसी सम्बन्धमें=इसी प्रकरणमें धर्मसम्बन्धी कथा कह भिक्षुओंको सम्बोधित किया—

"भिक्षुओ! मैंने जो तीन शरण-गमनसे उपसम्पदाकी अनुमति दी थी, आजसे उसे मन्सूख करता हूँ। (आजसे ती न अ नु श्रा व णों और) चौथी ज्ञ प्ति वाले क र्म के साथ उपसम्पदाकी अनुमति देता हूँ।18

इस तरह. . .उपसम्पदा करनी चाहिये—योग्य समर्थ भिक्षु संघको ज्ञापित करे—

क. ज्ञ प्ति—"भन्ते! संघ मुझे सुने; [१]अमुक नामक, अमुक नामके आयुष्मान्का उम्मेदवार (=उपसंपदापेक्षी) है। यदि संघ उचित समझे, तो संघ अमुक नामकको, अमुक नामकके उपाध्यायत्वमें उपसम्पन्न करे।—यह ज्ञप्ति है।

ख. **अ नु श्रा व ण** (१) "भन्ते! संघ मुझे सुने; अमुक नामक, अमुक नामके आयुष्मान्का उपसम्पदापेक्षी है। संघ अमुक नामकको अमुक नामकके उपाध्यायत्वमें उपसम्पन्न करता है। जिस आयुष्मान्को अमुक नामककी उपसंपदा अमुक नामकके उपाध्यायत्वमें स्वीकार है, वह चुप रहे, जिसको स्वीकार न हो, वह बोले।

---

[१] यहाँ नाम लेना चाहिये।

(२) दूसरी बार भी इसी बातको बोलता हूँ—"भन्ते ! संघ सुने, यह अमुक नामक, अमुक नामक आयुष्मान्‌का उपसम्पदापेक्षी[1] है०। जिसको स्वीकार न हो, वह बोले।

(३) तीसरी बार भी इसी बातको बोलता हूँ—"भन्ते ! संघ सुने०।"

ग. धा र णा—"संघको स्वीकार है, इसलिये चुप है—ऐसा समझता हूँ।"

(५) उपसम्पदा कर्म

१—उस समय कोई भिक्षु उपसम्पन्न होनेके बाद ही उलटा आचरण करता था। भिक्षुओंने उससे यह कहा—"आवुस ! मत ऐसा कर, यह युक्त नहीं है।" उसने उत्तर दिया—"मैंने आयुष्मानों से या च ना (=प्रार्थना) नहीं की कि मुझे उपसम्पन्न (=भिक्षु) बनाओ। क्यों मुझे बिना याचना किये तुमने उपसम्पन्न बनाया ?"

भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

"भिक्षुओ ! बिना याचना किये उपसम्पन्न नहीं बनाना चाहिये। जो उपसम्पन्न करे उसे दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ ! याचना करनेपर उपसम्पन्न करनेकी अनुमति देता हूँ। 19

२—उ प स म्प दा या च ना—"और भिक्षुओ ! इस प्रकार या च ना करनी चाहिये—वह उ प स म्प दा पे क्षी (=भिक्षु होनेकी इच्छावाला) संघके पास जाकर (दाहिने कंधेको खोल) एक कंधेपर उ त्त रा सं घ (=उपरना)को करके भिक्षुओंके चरणोंमें वंदनाकर, उकळूँ बैठ, हाथ जोळकर ऐसा कहे—'भन्ते ! संघसे उ प स म्प दा (पाने)की याचना करता हूँ; भन्ते ! संघ दया करके मेरा उद्धार करे।' दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी 'भन्ते ! संघसे उ प स म्प दा (पाने)की याचना करता हूँ; भन्ते ! संघ दया करके मेरा उद्धार करे।'

१"(तब भिक्षुओ !) योग्य, समर्थ भिक्षु संघको ज्ञापित करे—

क. ज्ञ प्ति—'(१) भन्ते ! संघ मेरी सुने—अमुक[2] नामवाले (भिक्षुको) उपाध्याय बना, अमुक नामवाले आयुष्मान्‌का (शिष्य), अमुक नामवाला यह (पुरुष) उ प स म्प दा चाहता है। यदि संघ उचित समझे तो संघ अमुक नामकको, अमुक नामके उपाध्यायके उपाध्यायत्त्वमें उपसम्पदा करे।—यह ज्ञ प्ति (=सूचना है।)

ख. अ नु श्रा व ण—'(१) भन्ते ! संघ मेरी सुने—अमुक नामवाला, यह अमुक नामवाले आयुष्मान्‌का उपसम्पदा चाहनेवाला (शिष्य) है। संघ अमुक नामवालेको अमुक नामवाले (भिक्षु) के उपाध्यायत्त्वमें उपसम्पन्न करता है। जिस आयुष्मान्‌को अमुक नामवालेकी उपसम्पदा, अमुक नामवाले (भिक्षु) के उपाध्यायत्त्वमें स्वीकार है, वह चुप रहे, जिसको स्वीकार न हो, वह बोले।

'(२) "दूसरी बार भी इसी बातको बोलता हूँ—पूज्य संघ मेरी सुने०।

'(३) तीसरी बार भी इसी बातको बोलता हूँ—पूज्य संघ मेरी सुने०।

ग. धा र णा—"संघको स्वीकार है, इसीलिये चुप है—ऐसा समझता हूँ।"

(६) भिक्षु-पनके चार निश्रय

उस समय रा ज गृ ह में उत्तम भोजोंका सिलसिला चल रहा था। तब एक ब्राह्मणके मनमें ऐसा हुआ—'यह शा क्य - पु त्री य (=बौद्ध) श्र म ण (=साधु), शील और आचारमें आरामसे

---

[1] भिक्षु-पन चाहनेवाला

[2] अमुकके स्थानपर उपसम्दापेक्षीका नाम लिया जाता है, कहीं-कहीं एक काल्पनिक नाम "नाग" भी लिया जाता है।

रहने वाले हैं; सुंदर भोजन करके शान्त शय्याओंमें सोते हैं; क्यों न मैं भी शाक्य-पुत्रीय साधुओंमें साधु बनूँ।' तब उस ब्राह्मणने भिक्षुओंके पास जाकर प्रव्रज्याके लिये प्रार्थना की। भिक्षुओंने उसे प्र व्र ज्या और उ प सं प दा दी। उसके प्रव्रजित होनेपर (वह) भोजोंका सिलसिला टूट गया। भिक्षुओंने (उससे) यह कहा—

"आ आवुस! भिक्षाचारके लिये चलें।"

उसने उत्तर दिया—"आवुसो! मैं भिक्षाचार करनेके लिये प्रव्रजित नहीं हुआ हूँ। यदि मुझे दोगे तो खाऊँगा, यदि न दोगे तो लौट जाऊँगा।"

"क्या आवुस! तू उदरके लिये प्रव्रजित हुआ?"

"हाँ आवुस!"

(तब) जो भिक्षु निर्लोभी, संतुष्ट, लज्जाशील, संकोचशील और शिक्षा चाहनेवाले थे, वह हैरान हो धिक्कारते और दुखी होते थे—'कैसे यह भिक्षु इस प्रकारके सुंदर रूपसे व्याख्यात धर्ममें पेटके लिये प्रव्रज्या देते हैं!' (और) यह बात भगवान्‌से कही। (भगवान्‌ने कहा)—

"सचमुच भिक्षु! तू पेटके लिये प्रव्रजित हुआ?"

"सचमुच भगवान्!"

बुद्ध भगवान्‌ने निंदा की—"नालायक कैसे तू पेटके लिए ऐसे सुंदर रूपसे व्याख्यात धर्ममें प्रव्रजित होगा? नालायक! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है०।"

निंदा करके धार्मिक कथा कहकर भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ। उपसंपदा करते वक्त चार नि श्र यों (=जीविकाके जरियों)-को बतलानेकी—'(१) यह प्रव्रज्या, भिक्षा माँगे भोजनके निश्रयसे है; इसके (पालनमें) जिंदगी भर तुझे उद्योग करना चाहिये। हाँ (यह) अधिक लाभ (भी तेरे लिये विहित हैं)—संघ-भोज, (तेरे) उद्देश्यसे बना भोजन, निमंत्रण, श ला का भो ज न[1], पाक्षिक (भोज), उपोसथके दिनका (भोज), प्रतिपद्‌का (भोज)।

'(२) पळे चीथळोंके बनाये चीवरके निश्रयसे यह प्रव्रज्या है; इसके (पालनमें) जिन्दगी भर उद्योग करना चाहिये। हाँ (यह) अधिक लाभ (भी तेरे लिये विहित हैं)—क्षौ म[2] (वस्त्र), कपा-सका (वस्त्र), कौ शे य (-रेशमी वस्त्र), कम्बल (-ऊनी वस्त्र), सन (का वस्त्र), भाँगकी (छाल-का वस्त्र)।

'(३) वृक्षके नीचे निवास करनेके निश्रयसे यह प्रव्रज्या है; इसके (पालनमें) जिन्दगी भर उद्योग करना चाहिये। हाँ (यह) अधिक लाभ (भी तेरे लिये विहित हैं)—विहार, अ ड्‌ ढ यो ग (=अटारी) ०, प्रासाद, हर्म्य, गुहा।

'(४) गोमूत्रकी औषधीके निश्रयसे यह प्रव्रज्या है। इसके (पालनमें) जिन्दगी भर उद्योग करना चाहिये। हाँ (यह) अधिक लाभ (भी तेरे लिये विहित हैं)—घी, मक्खन, तेल, मधु, खाँळ। 20

उपाध्याय-व्रत पाँचवा भाणवार समाप्त ॥५॥

---

[1] कुछ परिमित व्यक्तियोंके लिये भोज देते वक्त गिनकर उतनेकी सूचना संघमें भेज दी जाती थी और संघ शलाका बाँटकर उन व्यक्तियोंका निश्चय करता था।

[2] अलसीकी छालका बना हुआ कपळा।

(७) उपसम्पादकके वर्ष आदिका नियम

उ प से न की क था––उस समय एक ब्राह्मण-कुमार (=माणवक)ने भिक्षुओंके पास आकर प्रव्रज्या पानेकी प्रार्थना की। भिक्षुओंने उसे तुरंत ही (चारों) नि श्र य बतलाये। उसने यह कहा––

"भन्ते! यदि प्रव्रजित होनेके बाद (इन) निश्रयोंको बतलाये होते तो मैं (इन्हें) पसंद करता; अब मैं नहीं प्रव्रजित होऊँगा। यह निश्रय मुझे नापसन्द है, प्रतिकूल है।"

भिक्षुओंने यह बात भगवान्‌से कही। (भगवान्‌ने कहा)––

"भिक्षुओ! तुरंत ही निश्रय नहीं बतला देना चाहिये। जो बतलाये उसे दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उपसंपदा हो जानेके बाद निश्रयोंको बतलाने की। 21

उस समय भिक्षु दो पुरुष(=कोरम्), तीन पुरुष वाले (भिक्षु-)गण से भी उपसंपदा देते थे। भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने कहा)––"भिक्षुओ! दससे कम वर्ग (=कोरम्)वाले गणसे उपसंपदा न करानी चाहिये। जो कराये उसको दु क्क ट का दोष हो। अनुमति देता हूँ, दस या दससे अधिक पुरुषवाले गण द्वारा उपसंपदा कराने की।"22

उस समय एक वर्ष दो वर्षके (भिक्षु बने) भिक्षु भी शिष्योंकी उपसंपदा करते थे। आयुष्मान् उ प से न वं ग न्त पु त्त ने भी (भिक्षु बननेके) एक वर्ष बाद ही शिष्यको उपसंपादित किया। (दूसरे) वर्षावासको समाप्त करलेनेपर वह दो वर्षके (भिक्षु) हो एक वर्षके (भिक्षु बने अपने) शिष्यको लेकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे। आगन्तुक भिक्षुओंके साथ कुशल-प्रश्न करना बुद्ध भगवानोंका स्वभाव है। तब भगवान्‌ने आयुष्मान् उ प से न वं ग न्त पु त्त से यह कहा––

"भिक्षु! ठीक तो रहा, अच्छा तो रहा, रास्तेमें तकलीफ तो नहीं पाये?"

"ठीक रहा भगवान्! अच्छा रहा भगवान्! क्लेशके बिना हम रास्ते आये।"

जानते हुए भी तथागत (किसी बातको) पूछते हैं। जानते हुए भी नहीं पूछते। (पूछनेका) काल जानकर पूछते हैं, (न पूछनेका) काल जानकर नहीं पूछते। तथागत सार्थक (बात)को पूछते हैं; निरर्थकको नहीं पूछते। निरर्थक होनेपर तथागतोंकी मर्यादा-भंग (=सेतु-घात) होती है। बुद्ध भगवान् दो प्रकारसे भिक्षुओंको पूछते हैं––(१) शिष्योंको धर्मोपदेश करनेके लिये और (२) (शिष्योंके लिये) भिक्षु-नियम (=शिक्षा-पद) बनानेके लिये।

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् उ प से न वं ग न्त पु त्र से यह कहा––

"भिक्षु! तू कितने वर्षका (भिक्षु) है?"

"मैं दो वर्षका हूँ, भगवान्!"

"और यह भिक्षु कितने वर्षका (भिक्षु) है?"

"एक वर्षका है, भगवान्!"

"यह भिक्षु कौन है?"

"यह मेरा शिष्य है, भगवान्!"

बुद्ध भगवान्‌ने––"नालायक! यह अनुचित है, अयोग्य है, साधुओंके आचारके विरुद्ध है, अभव्य है, अकरणीय है। कैसे तू नालायक! (स्वयं) दूसरों द्वारा उपदेश और अनुशासन किये जाने योग्य होते दूसरेका उपदेश और अनुशासन करने वाला बनेगा? नालायक! तू बळी जल्दी जमातकी गठरी वाला और बटोरू बन गया। नालायक! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है०।" निंदा करके धार्मिक कथा कहकर भिक्षुओंको संबोधित किया––

"भिक्षुओ! दस वर्षसे कमवाले (भिक्षु)को उपसंपदा न करानी चाहिये। जो उपसंपदा कराये

उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, दस या दससे अधिक वर्षवाले (भिक्षु) द्वारा उपसंपदा करनेकी।"23

उस समय भिक्षु अचतुर और अजान होते हुए भी 'हम दस वर्षके हैं' ऐसा सोच (दूसरेकी) उपसंपदा कराते थे, और शिष्य पंडित (=होशियार) देखे जाते थे तथा उपाध्याय अबूझ; उपाध्याय विद्या-रहित (=अल्प-श्रुत) देखे जाते थे और शिष्य विद्वान् (=बहुश्रुत); उपाध्याय प्रज्ञारहित देखे जाते थे और शिष्य प्रज्ञावान् । (तब) एक पहले अन्य साधु-संप्रदायमें रहा (शिष्य) उपाध्यायके धर्म-संबंधी बात कहनेपर उपाध्यायके साथ विवाद करके उसी संप्रदाय (=तीर्थायतन)में चला गया। तब जो वह भिक्षु निर्लोभी, संतुष्ट ० दुखी होते थे—कैसे अचतुर और अजान होते हुए भी 'हम दस वर्षके हैं' ऐसा सोच (दूसरेकी) उपसंपदा कराते हैं; ० उसी संप्रदायमें चले जाते हैं !!" तब उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने कहा)—

"सचमुच भिक्षुओ ! अचतुर और अजान होते हुए भी, 'हम दस वर्षके हैं' ऐसा सोच, (दूसरे-की) उपसंपदा कराते हैं; ० उसी संप्रदायमें चले जाते हैं ?"

"सचमुच भगवान् !"

बुद्ध भगवान्‌ने निंदा—

"भिक्षुओ ! कैसे वह नालायक अचतुर और अजान होते हुए भी 'हम दस वर्षके हैं' ऐसा सोच (दूसरेकी) उपसंपदा कराते हैं; ० उसी संप्रदायमें चले जाते हैं ? भिक्षुओ ! न यह अप्रसन्नों ०।"

निंदा करके भगवान्‌ने धर्म-संबंधी कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अचतुर, अजान (पुरुष दूसरेकी) उपसंपदा न करे। जो उपसंपदा करे उसे दुक्कट-का दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, चतुर और जानकार दस या दससे अधिक वर्षवाले भिक्षुको उपसंपदा करने की।"24

(८) अन्तेवासीका कर्तव्य

उस समय शिष्य उपाध्यायके (भिक्षु-आश्रमसे) चले जानेपर, विचार-परिवर्तन करलेनेपर या मर जानेपर, या दूसरे पक्षमें चले जानेपर भी विना आचार्यके ही उपदेश=अनुशासन न किये जानेसे विना ठीकसे (चीवर) पहने, विना ठीकसे ढँके वेशहूरीके साथ भिक्षाके लिये चले जाते थे, खाते हुए मनुष्योंके भोजनके ऊपर, खाद्यके ऊपर....पेयके ऊपर, जूठे पात्रको बढ़ा देते थे। स्वयं दाल भी भात भी माँगते थे, खाते थे। भोजनपर बैठे हल्ला मचाते रहते थे। लोग हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—क्यों शाक्यपुत्रीय श्रमण विना ठीकसे पहने ० हल्ला मचाते रहते हैं, जैसे कि ब्राह्मण, ब्राह्मण-भोजनमें ? भिक्षुओंने लोगोंका हैरान होना, धिक्कारना और दुखी होना सुना। तब जो भिक्षु निर्लोभी, संतुष्ट, लज्जाशील, संकोचशील, सीखकी चाह वाले थे, वह हैरान हुए, धिक्कारने लगे, दुखी हुए ०।........ तब उन भिक्षुओंने भगवान्‌से इस बातको कहा।....। भगवान्‌ने धिक्कारा......

"भिक्षुओ ! उन नालायकोंका यह करना अनुचित है ० अकरणीय है ० भिक्षुओ ! कैसे वह नालायक विना ठीकसे पहने ० हल्ला मचाते रहते हैं, जैसे कि ब्राह्मण, ब्राह्मण-भोजनमें ? भिक्षुओ ! (उनका) यह (आचरण) अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये नहीं है ०।"

तब भगवान्‌ने उन भिक्षुओंको अनेक प्रकारसे धिक्कारकर....संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! मैं आचार्य (करने)की अनुमति देता हूँ। 25

आचार्यको शिष्यमें पुत्र-बुद्धि रखनी चाहिये, और शिष्यको आचार्यमें पिता-बुद्धि।

आचार्य ग्रहण करनेका यह प्रकार है—उपरनेको एक कंधेपर करवा चरणकी वंदना

करवा, उकळूँ बैठवा, हाथ जोळवा, ऐसा कहना चाहिये—'भन्ते ! मेरे आचार्य वनिये। आयुष्मान्‌के आश्रयसे मैं रहूँगा, भन्ते ! मेरे आचार्य वनिये, ० भन्ते ! मेरे आचार्य वनिये ०।' यदि (आचार्य) वचनसे 'ठीक है,' 'अच्छा है', 'युक्त है', 'उचित है', या 'सुन्दर रीतिसे करो', कहे; या कायासे सूचित करे, या काय-वचनसे सूचित करे तो वह आचार्यके तौरपर ग्रहण किया गया। यदि न कायासे सूचित करता है, न वचनसे सूचित करता है, न काय-वचनसे सूचित करता है, तो उसका आचार्यके तौरपर ग्रहण नहीं होगा।

"भिक्षुओ ! शिष्यको आचार्यके साथ अच्छा वर्ताव करना चाहिये ०[1]।

(९) आचार्यका कर्तव्य

आचार्यको शिष्यके साथ अच्छा वर्ताव करना चाहिये ०[1]।

छठाँ भाणवार (समाप्त) ॥ ६ ॥

(१०) निश्रय टूटनेके कारण

उस समय शिष्य आचार्यके साथ अच्छी तरह न वर्तते थे इससे जो अल्पेच्छ, संतुष्ट, लज्जाशील, संकोची, शिक्षा चाहने वाले ०।[1] पाँच वातोंसे युक्त शिष्यको हटानेपर उपाध्याय दोषी होता है, और न हटानेपर निर्दोष होता है ०।

उस समय भिक्षु अचतुर., और अजान होते हुए भी 'हम दस वर्षके हैं' ऐसा सोच (दूसरेकी) उपसंपदा करते थे और शिष्य पंडित देखे जाते थे और आचार्य अबूझ ०।[1]

उस समय शिष्य आचार्य और उपाध्यायके चले जानेपर, विचार-परिवर्तन करलेनेपर या मर जानेपर या दूसरे पक्षमें चले जानेपर भी नि श्र य (=शिष्यता)के खतम होनेकी वातको नहीं जानते थे। (भिक्षुओंने) यह वात भगवान्‌से कही। भगवान्‌ने कहा।—

१—"भिक्षुओ ! यह पाँच वातें हैं जिनसे उपाध्यायसे नि श्र य टूट जाता है—(१) उपाध्याय (भिक्षु आश्रमसे) चला गया हो; (२) विचार-परिवर्तन करलिये हो; (३) मर गया हो (४) दूसरे पक्षमें चला गया हो; (५) स्वीकृति दे गया हो। भिक्षुओ ! यह पाँच वातें हैं जिनसे उपाध्यायसे निश्रय टूट जाता है। 26.

२—"भिक्षुओ ! यह छ वातें हैं जिनसे आचार्यसे निश्रय टूट जाता है—(१) आचार्य आश्रमसे चला गया हो; (२) विचार-परिवर्तन करलिये हो; (३) मर गया हो; (४)) दूसरे पक्षमें चला गया हो; (५) स्वीकृति दे गया हो; (६) उपाध्यायने समाधान कर दिया हो। भिक्षुओ ! यह छ ०। 27

§३–उपसम्पदा और प्रव्रज्या

(१) उपसम्पदा देने और न देने योग्य गुरु

१—"भिक्षुओ ! इन पाँच वातोंसे युक्त भिक्षुको (दूसरेकी) न उपसंपदा करानी चाहिये, न निश्रय देना चाहिये, न श्रामणेर वनाकर रखना चाहिये—(१) न (वह) संपूर्ण शील (=सदाचार)—पुंजसे युक्त होता है; (२) न संपूर्ण समाधि-पुंजसे युक्त होता है; (३) न संपूर्ण प्रज्ञा-पुंजसे संयुक्त होता है; (४) न संपूर्ण विमुक्ति (=राग द्वेषादिका परित्याग)-पुंजसे युक्त होता है; (५) न संपूर्ण विमुक्तियोंके ज्ञानके साक्षात्कारके पुंजसे संयुक्त होता है। भिक्षुओ ! इन पाँच वातोंसे ०।28

---

[1] देखो पृष्ठ १०३–४।

२—"भिक्षुओ ! इन पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको (दूसरेकी) उपसंपदा करनी चाहिये, निश्रय देना चाहिये, श्रामणेर बनाकर रखना चाहिये—(१) (वह) संपूर्ण शील (=सदाचार)-पुंजसे युक्त होता है ०; (५) संपूर्ण विमुक्तियोंके ज्ञानके साक्षात्कार-पुंजसे संयुक्त होता है। भिक्षुओ ! इन पाँच बातोंसे ०। 29

३—"और भी भिक्षुओ ! इन पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको (दूसरेकी) न उपसंपदा करनी चाहिये, न निश्रय देना चाहिये, न श्रामणेर बनाकर रखना चाहिये—(१) न (वह) स्वयं संपूर्ण शीलपुंजसे युक्त होता है, न दूसरेको संपूर्ण शील-पुंजकी ओर प्रेरित करनेवाला होता है; (२) न स्वयं संपूर्ण समाधि-पुंजसे संयुक्त होता है, और न दूसरेको संपूर्ण समाधि-पुंजकी ओर प्रेरित करता है, (३) न स्वयं संपूर्ण प्रज्ञापुंजसे संयुक्त होता है, न दूसरेको संपूर्ण प्रज्ञा-पुंजकी ओर प्रेरित करता है, (४) न स्वयं संपूर्ण विमुक्ति-पुंजसे युक्त होता है, और न दूसरेको संपूर्ण विमुक्ति-पुंजकी ओर प्रेरित करता है, (५) न स्वयं संपूर्ण विमुक्तियोंके ज्ञानके साक्षात्कारके पुंजसे युक्त होता है, न दूसरेको संपूर्ण विमुक्तियोंके ज्ञानके साक्षात्कारके पुंजकी ओर प्रेरित करता है। 30

४—"भिक्षुओ ! इन पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको (दूसरेकी) उपसंपदा करनी चाहिये, निश्रय देना चाहिये, श्रामणेर बनाकर रखना चाहिये—(१) (वह) संपूर्ण शील-पुंजसे युक्त होता है ० ; (५) संपूर्ण विमुक्तियोंके ज्ञानके साक्षात्कारके पुंजसे संयुक्त होता है। भिक्षुओ ! इन पाँच बातोंसे ०। 31

५—"और भी भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको न उपसंपदा करनी चाहिये ०—(१) अश्रद्धालु होता है; (२) लज्जा-रहित होता है, (३) संकोच-रहित होता है; (४) आलसी होता है; (५) भूल जानेवाला होता है। भिक्षुओ ! इन पाँच बातोंसे युक्त। 32

६—"भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको उपसंपदा करनी चाहिये ०—(१) श्रद्धालु होता है; (२) लज्जालु होता है; (३) संकोचशील होता है; (४) उद्योगी होता है; (५) याद रखने वाला होता है। भिक्षुओ ! इन पाँच बातोंसे युक्त ०। 33

७—"और भी भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको न उपसंपदा करनी चाहिये ०—(१) शीलसे हीन होता है; (२) आचारसे हीन होता है; (३) बुरी धारणावाला होता है; (४) विद्या-हीन होता है; (५) प्रज्ञाहीन होता है। भिक्षुओ ! इन पाँच बातोंसे युक्त ०। 34

८—"भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुकी उपसंपदा करनी चाहिये ०—(१) शीलसे हीन नहीं होता; (२) आचारसे हीन नहीं होता; (३) बुरी धारणावाला नहीं होता; (४) विद्यावान् होता है; (५) प्रज्ञावान् होता है। भिक्षुओ ! इन पाँच बातोंसे युक्त ०। 35

९—"और भी भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको न उपसंपदा करनी चाहिये ०—(१) बीमार शिष्य या अन्तेवासीकी सेवा करने या करानेमें समर्थ नहीं होता; (२) (मनके) उचाटको हटाने या हटवानेमें समर्थ (नहीं) होता; (३) (मनके) उत्पन्न खटकेको दूर करने करानेमें (नहीं) समर्थ होता; (४) दोष (=अपराध)को नहीं जानता; (५) दोषसे शुद्ध होनेको नहीं जानता। भिक्षुओ ! इन पाँच बातोंसे युक्त ०। 36

१०—"भिक्षुओ ! इन पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको उपसंपदा करनी चाहिये ०—(१) बीमार शिष्य या अन्तेवासीकी सेवा करने या करानेमें समर्थ होता है ० (५) दोषसे शुद्ध होना जानता है। भिक्षुओ ! इन पाँच बातोंसे युक्त ०। 37

११—"और भी भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको न उपसंपदा करनी चाहिये ०—नहीं समर्थ होता (१) शिष्य या अन्तेवासीको आचार विषयक सीख सिखलानेमें; (२) शुद्ध ब्रह्मचर्यकी शिक्षामें ले जानेमें; (३) धर्मकी ओर (=अभिधम्मे) ले जानेमें; (४) विनयकी ओर (=

अ भि वि न य में) ले जानेमें; (५) उत्पन्न धारणाओंके विषयमें धर्मानुसार विवेचन करनेमें। भिक्षुओ! इन पाँच वातोंसे युक्त ०। 38

१२—"भिक्षुओ! पाँच वातोंसे युक्त भिक्षुको उपसंपदा करनी चाहिये ०—समर्थ होता है (१) शिष्य या अन्तेवासीको आचार विषयक सीख सिखलानेमें ० (५) उत्पन्न धारणाओंके विषयमें धर्मानुसार विवेचन करनेमें। भिक्षुओ! इन पाँच वातोंसे युक्त ०। 39

१३—"और भी भिक्षुओ! पाँच वातोंसे युक्त भिक्षुको न उपसंपदा करनी चाहिये ०—(१) न दोषको जानता है; (२) न निर्दोषताको जानता है; (३) न छोटे दोषको जानता है; (४) न बळे दोष (=आपत्ति)को जानता है; (५) और (भिक्षु-भिक्षुणी) दोनोंके प्रा ति मो क्षों को विस्तारके साथ नहीं हृद्गत किये रहता, सू क्त (=बुद्धोपदेश) और प्र मा ण से (प्रातिमोक्षको) न सुविभाजित किये रहता, न सुप्रवर्तित, न सुनिर्णीत किये रहता है। भिक्षुओ! इन पाँच वातोंसे युक्त ०। 40

१४—"भिक्षुओ! पाँच वातोंसे युक्त भिक्षुको उपसंपदा करनी चाहिये ०—(१) दोषको जानता है; ० (५) प्रा ति मो क्षों को विस्तारके साथ हृद्गत किये रहता है ०। भिक्षुओ! इन पाँच वातोंसे युक्त ०।

१५—"और भी भिक्षुओ! पाँच वातोंसे युक्त भिक्षुको न उपसंपदा करनी चाहिये ०—(१) न दोषको जानता है; (२) न निर्दोषताको जानता है; (३) न छोटे दोषको जानता है; (४) न बळे दोषको जानता है; (५) दस वर्षसे कमका (भिक्षु) होता है। भिक्षुओ! इन पाँच वातोंसे युक्त ०। 41

१६—"भिक्षुओ! पाँच वातोंसे युक्त भिक्षुको उपसंपदा करनी चाहिये ०—(१) दोषको जानता है ० (५) दस वर्षसे अधिकका भिक्षु होता है। भिक्षुओ! इन पाँच वातोंसे युक्त ०।" 42

पंचकोंसे उपसंपदा करणीय समाप्त।

१—"भिक्षुओ! इन छ वातोंसे युक्त भिक्षुको न उपसंपदा करनी चाहिये ०—(१) न संपूर्ण शील-पुंजसे युक्त होता है; (२) न संपूर्ण समाधि-पुंजसे ०; (३) न संपूर्ण प्रज्ञा-पुंजसे ०; (४) न संपूर्ण विमुक्ति-पुंजसे ० (५) न संपूर्ण विमुक्तियोंके ज्ञानके साक्षात्कारके पुंजसे ०; (६) न दस वर्षसे अधिकका भिक्षु होता है। भिक्षुओ! इन पाँच वातोंसे संयुक्त ०। 43

२—"भिक्षुओ! इन छ वातोंसे युक्त भिक्षुको उपसंपदा करनी चाहिये ०—(१) संपूर्ण शील-पुंजसे होता है ० (६) दस वर्षसे अधिकका (भिक्षु) होता है। भिक्षुओ! इन छ वातों से युक्त ०। 44

३—०[1]। 45–58

छक्कोंसे उपसंपदा करणीय समाप्त।

(२) अन्य संप्रदायी व्यक्तियोंके साथ

(क) लौटे व्यक्ति की उपसम्पदा

उस समय जो वह एक (पुरुष)[2] दूसरे साधु-संप्रदाय (=अन्यतीर्थ)में (शिष्य) रहा, उपाध्यायके धर्म-संबंधी वात करनेपर उपाध्यायके साथ विवाद करके उसी संप्रदायमें चला गया, उसने फिर आकर, भिक्षुओंके पास उपसंपदा पानेकी प्रार्थना की। भिक्षुओंने भगवान्‌से इस बातको कहा। (भगवान्‌ने कहा)—

---

[1] तीनसे सोलहवें तकके नियम पिछले पंचकके प्रकरणके तीसरेसे सोलहवेंकी तरह पाँच पाँच वातें, और छठवीं वातें, दस वर्षसे कम या अधिकका भिक्षु होना समझो।

[2] देखो पृष्ठ १०९

"भिक्षुओ ! जो वह पहले दूसरे साधु-संप्रदायमें रहा (शिष्य) उपाध्यायके धर्म-संबंधी बात कहनेपर उपाध्यायके साथ विवाद करके उसी संप्रदायमें चला गया फिर आनेपर उसकी उपसंपदा न करनी चाहिये, और भिक्षुओ ! जो कोई ऐसा पहले दूसरे साधु-संप्रदायमें रहा (पुरुष) इस धर्ममें प्रव्रज्या या उपसंपदा पानेकी प्रार्थना करता है, उसे चार महीनेका प रि वा स देना चाहिये। 59

"भिक्षुओ ! (परिवास) इस प्रकार देना चाहिये—पहिले दाढी, मूँछ मुळवाकर, काषाय वस्त्र पहना एक कंधेपर उत्तरासंघको करवा भिक्षुओंके चरणोंकी वंदना करवा, उकळूँ वैठवा, हाथ जोळवा 'ऐसा कहो' कहना चाहिये—बुद्धकी शरण जाता हूँ, धर्मकी शरण जाता हूँ, संघकी शरण जाता हूँ '। दूसरी बार भी ०। तीसरी बार भी—'बुद्धकी शरण जाताहूँ, धर्मकी शरण जाता हूँ, संघकी शरण जाता हूँ ।'

"भिक्षुओ ! उस पहले दूसरे संप्रदायमें रहे (पुरुष)को संघके पास जाकर एक कंधेपर उपरना रख भिक्षुओंके चरणोंकी वंदनाकर उकळूँ बैठ, हाथ जोळ ऐसे याचना करानी चाहिये—

या च ना—'भन्ते ! मैं (इस नामवाला) पहले दूसरे साधु-संप्रदायमें रहा (अब) इस धर्ममें उपसंपदा पाना चाहता हूँ; सो मैं भन्ते ! संघके पास चार महीनोंका प रि वा स चाहता हूँ। दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी—'भन्ते ! मैं (इस नामवाला) पहले अन्य साधु-संप्रदायमें रहा (अब) इस धर्ममें उपसंपदा पाना चाहता हूँ; सो मैं भन्ते ! संघके पास चार महीनोंका परिवास चाहता हूँ।'

"(तब) योग्य, समर्थ भिक्षु संघको ज्ञापित करे—

(क) ज्ञ प्ति—'भन्ते ! संघ मेरी सुने ! यह अमुक नामवाला, पहले अन्य साधु-संप्रदाय में रहा (अब) इस धर्ममें उपसंपदा पाना चाहता है; और संघसे चार मासका परिवास चाहता है०।

ख. अ नु श्रा व ण—(१) ० संघ इस नामवाले पहिले दूसरे साधु-संप्रदायमें रहे (इस पुरुष) को चार मासका परिवास देता है। जिस आयुष्मान्‌को इस नामवाले पहले अन्य साधु-संप्रदायमें रहे, (इस पुरुष)को चार मासका परिवास दिया जाना स्वीकार है वह चुप रहे जिसको स्वीकार न हो वह बोले। (२) (दूसरी बार भी०)। (३) (तीसरी बार भी०)।

ग. धा र णा—"संघने इस नामवाले पहिले अन्य साधु-संप्रदायमें रहे (इस पुरुष)को चार मासका परिवास दे दिया, संघको स्वीकार है, इसलिये चुप है—ऐसा समझता हूँ।'

(ख) ठीक न होने लायक

"भिक्षुओ ! इस प्रकारसे पहिले अन्य साधु-संप्रदायमें रहा (पुरुष) साध्य होता है, और इस प्रकार असाध्य।"

क. कैसे भिक्षुओ ! पहिले-दूसरे-साधुसंप्रदायमें रहा (पुरुष) अनाराधक होता है?—

(१) "भिक्षुओ ! जो पहिले-दूसरे-साधु-संप्रदायमें रहा (पुरुष) अतिकालमें गाँवमें जाता है, और बहुत दिन विताकर निकलता है। इस प्रकार भी भिक्षुओ ! पहिले-दूसरे-साधु-संप्रदायमें रहा (=अन्य-तीर्थिक-पूर्व) अनाराधक होता है।

(२) "और फिर भिक्षुओ ! वेश्याकी-आँख-पळेवाला होता है, विधवाकी-आँखपळेवाला होता है, बळी-उम्रकी-कुमारिकाकी आँख-पळेवाला होता है, नपुंसककी-आँख-पळेवाला होता है, भिक्षुणीकी-आँख-पळेवाला होता है। इस प्रकार भी भिक्षुओ ! अ न्य ती र्थि क पूर्व, अनाराधक(=असाध्य)।

(३) "और फिर भिक्षुओ ! अ न्य ती र्थि क पू र्व, गुरु-भाइयोंके छोटे-बळे जो काम हैं, उनके करनेमें दक्ष, आलस्यरहित नहीं होता। उनके विषयमें उपाय और सोच नहीं करता, न करनेमें समर्थ, न ठीकसे विधान करनेमें समर्थ होता है। ऐसे भी भिक्षुओ०।

(४) "और फिर भिक्षुओ! अ न्य ती र्थि क पू र्व, शील, चित्त और प्रज्ञाके संबंधमें पाठ करने तथा पूछनेमें तीव्र इच्छावाला नहीं होता। ऐसे भी भिक्षुओ! ०।

(५) "और फिर भिक्षुओ! अन्य-तीर्थिक-पूर्व जिस संप्रदायमे (पहिले) संलग्न होता है उसके शास्ता (=उपदेष्टा), उसके वा द, उसकी स्वीकृति, उसकी रुचि, उसके दानके संबंधमें अप्रशंसा करनेपर कुपित होता है, असंतुष्ट होता है, नाराज होता है; और बु द्ध या ध र्म या सं घ की अप्रशंसा करते वक्त संतुष्ट होता है, प्रसन्न होता है, हृष्ट होता है। अथवा जिस संप्रदायसे (पहिले) संलग्न था उसके शास्ता उसके वाद, उसकी स्वीकृति, उसकी रुचि, उसके दानके संबंधमें अप्रशंसा करनेपर संतुष्ट होता है, प्रसन्न होता है, हृष्ट होता है।

भिक्षुओ! अ न्य ती र्थि क पू र्व के असाध्य होनेमें यह संघसे संबद्ध (बात) है। इस प्रकार भिक्षुओ! अ न्य ती र्थि क पू र्व अनाराधक होता है। "भिक्षुओ! इस प्रकारके अनाराधक (=असाध्य) अ न्य ती र्थि क पू र्व के आनेपर उपसंपदा न करनी चाहिये। 60

(ग) ठीक होने लायक

"कैसे भिक्षुओ! अ न्य ती र्थि क पू र्व आराधक (=साध्य) होता है?—

(१) "भिक्षुओ! जो अ न्य ती र्थि क पू र्व अतिकालमें ग्राममें प्रवेश नहीं करता, न बहुत दिन बिताकर निकलता है, (वह पहिले-दूसरे-साधु-संप्रदायमें रहा) आ रा ध क होता है।

(२) "और फिर भिक्षुओ! वेश्याकी-आँख-न-पळेवाला, विधवाकी-आँख-न-पळेवाला, बळी-उम्रकी-कुमारिकाकी-आँख-न-पळेवाला, नपुंसककी-आँख-न-पळेवाला, भिक्षुणीकी-आँख-न-पळे वाला अ न्य ती र्थि क पू र्व आराधक होता है।

(३) "और फिर भिक्षुओ! (जो) अ न्य ती र्थि क पू र्व, गुरु-भाइयोंके छोटे-बळे जो काम हैं, उनके करनेमें दक्ष, आलस-रहित होता है, उनके विषयमें उपाय और सोच करता है, करनेमें तथा ठीकसे विधान करनेमें समर्थ होता है, (वह) आ रा ध क होता है।

(४) "और फिर भिक्षुओ! (जो) अ न्य ती र्थि क पू र्व शील, चित्त और प्रज्ञाके संबंधमें पाठ करने तथा पूछनेमें तीव्र इच्छावाला होता है, (वह) आ रा ध क होता है।

(५) "और फिर भिक्षुओ! (जो) अ न्य ती र्थि क पू र्व जिस संप्रदायसे (पहिले) संलग्न था, उसके शास्ता, उसके वाद, उसकी स्वीकृति, उसकी रुचि उसके दानके संबंधमें अप्रशंसा करनेपर संतुष्ट होता है, प्रसन्न होता है, हृष्ट होता है, और बु द्ध या ध र्म या सं घ की अप्रशंसा करते वक्त कुपित होता है, असंतुष्ट होता है, नाराज होता है। अथवा जिस संप्रदायसे (पहिले) संलग्न था उसके शास्ता०की प्रशंसा करने पर कुपित० होता है, और बु द्ध, ध र्म, या सं घ की प्रशंसा करनेपर संतुष्ट० होता है, भिक्षुओ! (उस) अ न्य ती र्थि क पू र्व के साध्य होनेमें यह संघसे संबद्ध (बात) है। इस प्रकार भिक्षुओ! (वह) अ न्य ती र्थि क पू र्व आराधक होता है। "भिक्षुओ! इस प्रकारके आराधक अ न्य ती र्थि क पू र्व के आनेपर उसे उपसंपदा देनी चाहिये। 61

(३) वाणप्रस्थियोंके लिये विशेष ख्याल

"यदि भिक्षुओ! अन्यतीर्थिकपूर्व नंगा आवे, तो उपाध्यायका चीवर उसे ओढ़ाना चाहिये। यदि बिना कटे केशोंवाला आए, तो मुंडन-कर्मके लिये संघसे पूछना चाहिये। भिक्षुओ! जो वह अग्नि-होत्री, जटाधारी (=जटिलक=वाणप्रस्थी) हों, तो आतेही उनकी उपसंपदा करनी चाहिये; उन्हें परिवास न देना चाहिये। सो क्यों? भिक्षुओ! वह कर्मवादी (=कर्मके फलको माननेवाले), और क्रिया-वादी होते हैं। 62

"भिक्षुओ! यदि शा क्य-जा ति का अ न्य ती र्थि क पू र्व आवे तो आते ही उसकी उपसंपदा

करनी चाहिये, उसे परिवास न देना चाहिये। भिक्षुओ ! यह मैं (अपने) जातिवालोंको परंपरा तकके लिये उपहार देता हूँ।" 63

सप्तम भाणवार समाप्त ॥७॥

(४) प्रव्रज्याके लिये अयोग्य व्यक्ति

१—उस समय म ग ध में, कुष्ठ, फोळा, चर्म-रोग, सूजन और मृगी—यह पाँच बीमारियाँ उत्पन्न हुई थीं। पाँचों बीमारियोंसे पीळित हो लोग जी व क कौ मा र भृ त्य के पास आकर ऐसा कहते थे—"अच्छा हो आचार्य ! हमारी चिकित्सा करो।"

"आर्यो ! मुझे बहुत काम हैं; बहुत करणीय है। मगधराज सेनिय बि म्बि सा र की सेवामें जाना पळता है। रनिवास और बु द्ध प्र मु ख[1] भिक्षु-संघकी भी (सेवा करनी होती है)। मैं (आप लोगोंकी) चिकित्सा करनेमें असमर्थ हूँ।"

तब उन मनुष्योंके मनमें यह हुआ—यह शा क्य पु त्री य श्र म ण (=बौद्ध भिक्षु) आराम-पसन्द (=सुखशील) और सु ख स मा चा र (=आरामवाले काम करनेवाले) हैं। ये अच्छा भोजन करके (अच्छे) निवासों और शय्याओंमें सोते हैं। क्यों न हम भी शाक्यपुत्रीय श्रमणोंमें (जाकर) भिक्षु बन जायँ। तब भिक्षु भी सेवा करेंगे और जी व क कौ मा र भृ त्य भी चिकित्सा करेगा।

तब उन मनुष्योंने भिक्षुओंके पास जाकर प्रव्रज्या (=संन्यास) माँगी। भिक्षुओंने उन्हें प्रव्रज्या दी, उपसंपदा दी। तब भिक्षु भी उनकी सेवा करते थे और जी व क कौ मा र भृ त्य भी उनकी चिकित्सा करता था।

उस समय बहुतसे रोगी भिक्षुओंकी सेवा करते हुए बहुत याचना, माँगना किया करते थे—'रोगीके लिये पथ्य दीजिये, रोगीके सेवक के लिये भोजन दीजिये, रोगीके लिये ओषध दीजिये।' जी व क कौ मा र भृ त्य भी बहुतसे रोगी भिक्षुओंकी चिकित्सामें लगे रहनेसे किसी राज-कार्यको छोळ बैठा। कोई पुरुष पाँच रोगोंसे पीळित हो जीवक कौमारभृत्यके पास आकर ऐसा बोला—"अच्छा हो आचार्य ! मेरी चिकित्सा करें।

"आर्य ! मेरे बहुतसे काम हैं, बहुत करणीय हैं। मगधराज सेनिय बि म्बि सा र की सेवामें जाना पळता है। रनिवास और बु द्ध प्र मु ख[1] भिक्षु-संघकी भी (सेवा करनी होती है)। मैं (आपकी) सेवा करनेमें असमर्थ हूँ।"

"आचार्य ! मेरा सारा धन तुम्हारा होगा और मैं तुम्हारा दास हूँगा। अच्छा हो आचार्य मेरी चिकित्सा करें।"

"आर्य मेरे बहुतसे काम हैं०।"

तब उस मनुष्यके (मनमें) ऐसा हुआ—यह शा क्य पु त्री य श्र म ण आराम-पसन्द (=सुख-शील) और सु ख-स मा चा र (=आरामवाले काम करनेवाले) हैं। ये अच्छा भोजन करके (अच्छे) निवासों और शय्याओंमें सोते हैं। क्यों न मैं भी शाक्यपुत्रीय श्रमणोंमें (जाकर) भिक्षु बन जाऊँ। तब भिक्षु भी सेवा करेंगे और जीवक कौमारभृत्य भी चिकित्सा करेगा और नीरोग होनेपर मैं भिक्षु-आश्रम छोळ चला जाऊँगा।"

तब उस मनुष्यने भिक्षुओंके पास जाकर प्रव्रज्या (=संन्यास) माँगी। भिक्षुओंने उसे प्रव्रज्या दी, उपसम्पदा दी। तब भिक्षु भी उसकी सेवा करते थे और जीवक कौमारभृत्य भी उसकी चिकित्सा करते थे।

[1] जिसमें बुद्ध प्रमुख हैं।

नीरोग होनेपर वह भिक्षुपन छोळ चला गया। जी व क कौमारभृत्यने भिक्षु-आश्रम छोळकर चले गये उस आदमीको देखा। देखकर उस पुरुषसे पूछा—"क्यों आर्य! तुम तो भिक्षु बने थे?"

"हाँ आचार्य!"

"तो आर्य! तुमने क्यों ऐसा किया?"

तब उस पुरुषने जीवक कौमारभृत्यसे सब बात बतला दी। (उसे सुनकर) जीवक कौमारभृत्य हैरान होता, धिक्कारता और दुखी होता था—कैसे भदन्त (लोग) पाँच रोगोंसे पीळित (पुरुष को) प्रव्रज्या देते हैं! तब जीवक कौमारभृत्य भगवान्‌के पास गया। जाकर भगवान्‌की वन्दनाकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे जीवक कौमारभृत्यने भगवान्‌से यह कहा—"अच्छा हो भन्ते! आर्य (=भिक्षु) लोग पाँच रोगोंसे पीळितको प्रव्रज्या न दें।"

तब भगवान्‌ने जी व क कौमारभृत्यको धार्मिक कथा कह...समुत्तेजित संप्रहर्षित किया। तब जीवक कौमारभृत्य भगवान्‌की धार्मिक कथा द्वारा...समुत्तेजित...हो आसनसे उठकर भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया। तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कहकर भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! (कुष्ठ आदि) पाँच रोगोंसे पीळितको नहीं प्रव्रज्या देनी चाहिये। जो प्रव्रज्या दे उसे दु क्क ट का दोष हो।"64

२—उस समय मगधराज सेनिय वि म्बि सा र के सीमान्तमें विद्रोह हो गया था। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसारने (अपने) सेना-नायक महामात्योंको आज्ञा दी—"जाओ रे! सीमान्तको ठीक करो।"

"अच्छा देव!"—(कह) सेना-नायक महामात्योंने मगधराज सेनिय बिम्बिसारको उत्तर दिया।

तब अच्छे अच्छे योधाओंके (मनमें) ऐसा हुआ—'हम युद्धको पसन्द करके, जाकर पाप करेंगे और बहुत अ-पुण्य पैदा करेंगे। क्या उपाय है जिससे कि हम पापसे बचें; अ-पुण्यको न पैदा करें?' तब उन योधाओंके (मनमें) ऐसा हुआ—'यह शा क्य पु त्री य श्र म ण धर्मचारी उत्तमाचारी, ब्रह्मचारी, सत्यवादी, शीलवान् धर्मात्मा हैं। यदि हम शा क्य पु त्री य श्र म णों के पास (जाकर) प्रव्रजित हो जायें तो हम पापसे बच जायँगे, अ-पुण्यको पैदा न करेंगे।'

तब उन योधाओंने भिक्षुओंके पास जाकर प्रव्रज्या माँगी, और भिक्षुओंने उन्हें प्रव्रज्या और उपसंपदा दी। सेना-नायक महामात्योंने उन राजसैनिकोंसे पूछा—

"क्यों रे! इस इस नामवाले योधा नहीं दिखाई देते?"

"स्वामी! इस इस नामवाले योधा भिक्षुओंके पास प्रव्रजित हो गये।"

तब वह सेना-नायक महामात्य हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—'कैसे शा क्य पु त्री य श्र म ण राजसैनिकोंको प्रव्रज्या देते हैं!' तब सेना-नायक महामात्योंने यह बात मगधराज सेनिय बिम्बिसारसे कही। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसारने व्या व हा रि क म हा मा त्यों (=न्यायाधीशों)से पूछा—

"क्यों जी! जो राज-सैनिकको प्रव्रज्या दे उसको क्या होना चाहिये?"

"देव! उस (=उपाध्याय) का सिर काटना चाहिये, अ नु शा स क (=उपदेश करने वाले)की जीभ निकालनी चाहिये, और (=संन्यास देनेवाले) ग ण की पसली तोळ देनी चाहिये।"

तब मगधराज सेनिय वि म्बि सा र, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मगधराज सेनिय बिम्बिसारने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! (बुद्ध धर्मके प्रति) श्रद्धा-भक्ति न रखनेवाले राजा भी हैं। वह थोळी बातके लिये

भी भिक्षुओंको पीळा दे सकते हैं। अच्छा हो भन्ते ! आर्य (=भिक्षु) लोग राजसैनिकको प्रव्रज्या न दें।"

तब भगवान्‌ने मगधराज सेनिय बिम्बिसारको धार्मिक कथा कह ...संप्रहर्षित किया। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसार भगवान्‌की धार्मिक कथासे...संप्रहर्षित हो, आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादन कर, प्रदक्षिणाकर चला गया। तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें, इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! राजसैनिकोंको नहीं प्रव्रज्या देनी चाहिये। जो दे उसे दु क्क ट का दोष हो।" 65

३—उस समय अं गु लि मा ल डाकू (आकर) भिक्षु बना था। लोग (उसे) देखकर उद्विग्न होते, त्रास खाते और भागते, दूसरी ओर चले जाते, दूसरी ओर मुँह कर लेते और दरवाजा बन्द कर लेते थे। लोग हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—कैसे शाक्य-पुत्रीय श्रमण ध्व ज ब न्ध (=ध्वजा उळाकर डाका डालनेवाले) डाकूको प्रव्रज्या देंगे !"

भिक्षुओंने उन मनुष्योंके हैरान होने, धिक्कारने और दुखी होनेको सुना। तब उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

"भिक्षुओ ! ध्वजबन्ध डाकूको नहीं प्रव्रज्या देनी चाहिये। जो दे उसे दु क्क ट का दोष हो।" 66

४—उस समय मगधराज सेनिय बि म्बि सा र ने आज्ञा कर दी थी—'जो शाक्यपुत्रीय श्रमणोंके पास जाकर प्रव्रजित होंगे उनको (दंड आदि) कुछ नहीं किया जा सकता। (भगवान्‌का) धर्म सुन्दर प्रकारसे कहा गया है, (लोग) दुःखके अच्छी प्रकार अन्त करनेके लिये (जाकर) ब्रह्मचर्य पालन करें।'

उस समय कोई पुरुष चोरी करके जेल (=कारा)में पळा था। वह जेलको तोळ भाग, कर भिक्षुओंके पास प्रव्रजित हो गया। लोग (उसे) देखकर ऐसा कहते थे—'यह वह जेल तोळनेवाला चोर है। अहो ! इसे ले चलें।' कोई कोई ऐसा कहते थे—'आर्यो ! मत ऐसा कहो। मगधराज सेनिय बिम्बिसारने आज्ञा दे दी है—'जो शाक्यपुत्रीय श्रमणोंके पास जाकर प्रव्रजित होंगे उनको (दंड आदि) कुछ नहीं किया जा सकता। (भगवान्‌का) धर्म सुन्दर प्रकारसे कहा गया है, (लोग) दुःखके अच्छीप्रकार अन्त करनेके लिए (जाकर) ब्रह्मचर्य पालन करें।' (इससे) लोग हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—'यह शाक्यपुत्रीय श्रमण अभय चाहनेवाले हैं। इनका कुछ नहीं किया जा सकता। कैसे यह शाक्यपुत्रीय श्रमण जेल तोळनेवाले चोरको प्रव्रज्या देंगे !'

भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

"भिक्षुओ ! जेल तोळनेवाले चोरको नहीं प्रव्रज्या देनी चाहिये। जो दे उसे दु क्क ट का दोष हो।" 67

५—उस समय कोई पुरुष चोरी करके भागकर भिक्षु बन गया था। वह राजाके अन्तःपुर (=कचहरी)में लि खि त था—'(यह) जहाँ देखा जाय, वहीं मारा जाय।' लोग उसे देखकर ऐसा कहते थे—'यह वही लि खि त क चोर है। अहो इसे मार दें।' कोई कोई ऐसा कहते थे 'आर्यो ! मत ऐसा कहो। मगधराज सेनिय बिम्बिसारने आज्ञा दे दी है—जो शाक्यपुत्रीय श्रमणोंके पास०।' (भगवान्‌ने यह कहा)—

"भिक्षुओ ! लि खि त क चोरको नहीं प्रव्रज्या देनी चाहिये०।" 68

६—उस समय कोळा मारनेका दंड पाया हुआ एक पुरुष भिक्षुओंके पास प्रव्रजित हुआ था। लोग हैरान होते०। (भगवान्‌ने कहा)—

"भिक्षुओ ! कोळा मारनेका दंड पाये हुएको नहीं प्रव्रजित करना चाहिये०।" 69

७—उस समय एक पुरुष (राज-)दंडसे लक्षणाहत (=आगमें लाल किये लोहे आदिसे दागा)

हो भिक्षुओंमें आकर प्रव्रजित हुआ था।०। (भगवान्ने कहा)—

"भिक्षुओ! (राज-)दंडसे लक्षणाहतको नहीं प्रव्रज्या देनी चाहिये०।" 70

८—उस समय एक ऋणी पुरुष भागकर भिक्षुओंके पास प्रव्रजित हुआ था। धनियों (=ऋण देनेवालों)ने देखकर यह कहा—'यह हमारा ऋणी है। अहो! इसको ले चलें।' दूसरोंने ऐसा कहा—'मत आर्यो! ऐसा कहो। मगधराज सेनिय बिम्बिसारने आज्ञा दे रखी है०।' (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! ऋणीको नहीं प्रव्रज्या देनी चाहिये०।" 71

९—उस समय एक दास (=गुलाम) भागकर भिक्षुओंमें प्रव्रजित हुआ था। मालिकोंने देखकर ऐसा कहा—'यह वह हमारा दास है। अहो! इसे ले चलें०। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! दासको नहीं प्रव्रज्या देनी चाहिये०।" 72

(५) मुंडनके लिये संघकी सम्मति

उस समय एक स्वर्णकार (=कम्मार)का पुत्र माता-पिताके साथ झगळाकर आराममें जा भिक्षुओंके साथ प्रव्रजित हो गया। तब उस स्वर्णकार-पुत्रके माता-पिताने उसे खोजते हुए आराममें जा भिक्षुओंसे पूछा—'क्या भन्ते! इस प्रकारके लळकेको देखा है?' न जाननेके कारण भिक्षुओंने कहा—'हम नहीं जानते।' न देखनेके कारण कहा—'हमने नहीं देखा।' तब उस स्वर्णकार-पुत्रके माता-पिता खोज करके उसे भिक्षुओंमें प्रव्रजित हुआ देख हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—'यह शाक्यपुत्रीय श्रमण निर्लज्ज, दुःशील, झूठ बोलनेवाले हैं जिन्होंने जानते हुए कहा, हम नहीं जानते; देखते हुए कहा, हमने नहीं देखा। यह लळका तो यहाँ भिक्षुओंके पास प्रव्रजित हुआ है।' भिक्षुओंने उस स्वर्णकार-पुत्रके माता-पिताके हैरान होने, धिक्कारने और दुखी होनेको सुना। तब उन्होंने यह बात भगवान्से कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! मुंडन-कर्म करनेके लिये संघकी अनुमति लेनेकी आज्ञा देता हूँ।" 73

(६) बीस वर्षसे कमकी उपसम्पदा नहीं

उस समय रा ज गृ ह में स प्त द श व र्गी य (=जिस समुदायमें सत्रह आदमी हों) लड़के एक दूसरेके मित्र थे। उ पा लि लळका उनका मुखिया था। तब उपालिके माता-पिताके (मनमें) ऐसा हुआ—'किस उपायसे हमारे मरनेके बाद उ पा लि सुखसे रह सकेगा, दुख नहीं पायेगा?' तब उ पा लि के माता-पिताके (मनमें) ऐसा हुआ—'यदि उ पा लि लेखा सीखे तो वह हमारे मरनेके बाद सुखसे रह सकेगा, दुख नहीं पायेगा।' तब उपालि के माता-पिताके (मनमें) ऐसा हुआ—'यदि उपालि लेखा सीखेगा तो उसकी अँगुलियाँ दुखेंगी। हाँ यदि उपालि ग ण ना (=हिसाब) सीखे तो हमारे मरनेके बाद०।' तब उ पा लि के माता-पिताके (मनमें) ऐसा हुआ—'यदि उपालि ग ण ना सीखेगा तो उसकी जाँघ दुखेगी। हाँ यदि उपालि रू प (=सराफी) सीखे तो हमारे मरनेके बाद०।' तब उपालि के माता-पिताके (मनमें) ऐसा हुआ—'यदि उपालि रू प को सीखेगा तो उसकी आँखें दुखेंगी। हाँ यह शाक्यपुत्रीय श्रमण सुखशील और सुख-समाचार हैं। ये अच्छा भोजन करके (अच्छे) निवासों और शय्याओंमें सोते हैं। क्यों न उपालि भी शाक्यपुत्रीय श्रमणोंमें जाकर भिक्षु बन जाय। इस प्रकार उपालि हमारे मरनेके बाद०।'

उपालि लळकेने (अपने) माता-पिताके इस कथा-संलापको सुना। तब उपालि लळका जहाँ उसके (साथी) लळके थे वहाँ गया। जाकर उन लळकोंसे बोला—'आओ आर्यो! हम सब शाक्य-पुत्रीय श्रमणोंके पास जाकर प्रव्रजित हों।' तब उन लळकोंने अपने अपने माँ-बापके पास जाकर यह कहा—'हमें घरसे-बेघर हो प्रव्रज्या लेनेकी आज्ञा दें।' तब उन लळकोंके माता-पिताने एक सी रुचि रखनेवाले लळकोंके अभिप्रायको सुंदर जान अनुमति दे दी। उन्होंने भिक्षुओंके पास आकर प्रव्रज्या

माँगी। भिक्षुओंने उन्हें प्रव्रज्या और उपसंपदा दी। तब रातके भिनसारको उठकर वह (यह कह) रोते थे—'खिचळी दो! भात दो! खाना दो!'

भिक्षु ऐसा कहते थे—'ठहरो आवुसो! जब तक कि बिहान हो जाता है; यदि य वा गू (=पतली खिचळी) होगा तो पीना, यदि भात होगा तो खाना, यदि खाना होगा तो भोजन करना। यदि खिचळी, भात या खाना न होगा तो भिक्षा करके खाना।'

भिक्षुओंके ऐसा कहनेपर भी वह रोते ही रहते थे—खिचळी दो! ०।' और बिस्तरेपर लोटते-पोटते रहते थे। भगवान्‌ने रातके अन्तिम पहरमें उठकर बच्चोंके शब्दको सुनकर आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

"आनन्द! कैसा यह बच्चोंका शब्द है?"

आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से सब बात बतलाई। (भगवान्‌ने उन भिक्षुओंसे पूछा)—

"भिक्षुओ! सचमुच जानबूझकर भिक्षु बीस वर्षसे कमके व्यक्तिको उपसंपदा देते हैं?"

"सचमुच भगवान्!"

बुद्ध भगवान्‌ने—"कैसे भिक्षुओ! यह मोघ-पुरुष (=निकम्मे आदमी) जानते हुए बीस वर्षसे कमके व्यक्तिको उपसंपदा देते हैं? भिक्षुओ! बीस वर्षसे कमका पुरुष सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, मच्छर-मक्खी, धूप-हवा, सरीसृप (=साँप, बिच्छू आदि रेंगनेवाले जीव)की पीळाके सहनेमें असमर्थ होता है। कठोर, दुरागतके वचनों (के सहनेमें), और दुखमय, तीव्र, खरी, कटु, प्रतिकूल, अप्रिय प्राण हरनेवाली उत्पन्न हुई शारीरिक पीळाओंको न स्वीकार करनेवाला होता है, भिक्षुओ! बीस वर्ष वाला पुरुष सर्दी-गर्मी ० के सहनेमें समर्थ होता है। ० स्वीकार करनेवाला होता है। भिक्षुओ! यह न अप्रसन्नोंके प्रसन्न करनेके लिये है०।[1] निन्दा करके भगवान्‌ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! जानते हुए बीस वर्षसे कमके व्यक्तिको नहीं उ प सं प दा देनी चाहिये। जो उपसंपदा दे उसे धर्मानुसार (प्रतिकार) करना चाहिये।" 74

(७) पंद्रह वर्षसे कमका श्रामणेर नहीं

१—उस समय एक खान्दान महामारीके रोगसे मर गया। उसमें पिता-पुत्र (दोही) बच रहे। वह भिक्षुओंके पास जा प्रव्रजित हो एक साथही भिक्षाके लिये जाते थे। जब पिताको कोई भिक्षा देता था तो वह बच्चा दौळकर यह कहता था—'तात! मुझे भी दो, तात! मुझे भी दो।' लोग हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—'शाक्यपुत्रीय श्रमण अ-ब्रह्मचारी होते हैं। यह बच्चा भिक्षुणीसे उत्पन्न हुआ है।' भिक्षुओंने उन मनुष्योंके हैरान होने०। (भगवान्‌ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! पन्द्रह वर्षसे कमके बच्चेको नहीं श्रामणेर बनाना (=प्रव्रज्या देना) चाहिये। जो श्रामणेर बनाये उसे दु क्क ट का दोष हो।" 75

२—उस समय आयुष्मान् आ न न्द का एक श्रद्धालु=प्रसन्न, सेवक-कुल महामारीसे मर गया। सिर्फ दो बच्चे बच रहे। वह (अपने घरकी) परिपाटीके अनुसार भिक्षुओंको देखकर दौळकर पास आते थे। भिक्षु उन्हें फटकार देते थे। उन भिक्षुओंके फटकारनेसे वह रोने लगते थे। तब आयुष्मान् आनन्दके मनमें ऐसा हुआ—'भगवान्‌की आज्ञा है कि पन्द्रह वर्षसे कमके बच्चेको श्रामणेर नहीं बनाना चाहिये, और यह बच्चे पन्द्रह वर्षसे कमके ही हैं। किस उपायसे यह बच्चे विनष्ट होनेसे बचाये जा सकते हैं।' तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने कहा)—

[1] देखो पृष्ठ १०३ [(३) १ क]।

"आनन्द! क्या वह बच्चे कौवा उळाने लायक हैं?"

"हाँ हैं, भगवान्!"

तव भगवान्ने इसी संबंधमें, इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! कौवा उळानेमें समर्थ पन्द्रह वर्षसे कम उम्रके बच्चेको श्रामणेर बनानेकी अनुमति देता हूँ।" 76

(८) श्रामणेर शिष्योंकी संख्या

३—उस समय आयुष्मान् उ प नं द शाक्यपुत्रके पास कं ट क और म ह क दो श्रामणेर थे। वह एक दूसरेको दुर्वचन कहते थे। भिक्षु (यह देख) हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—'कैसे श्रामणेर इस प्रकारका अत्याचार करेंगे!' उन्होंने भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! एक (भिक्षु)के दो श्रामणेर नहीं रखना चाहिये। जो रखे उसे दु क्क ट का दोष हो।" 77

(९) निश्रयकी अवधि

उस समय भगवान्ने रा ज गृ ह में ही वर्षा, हेमन्त और ग्रीष्मको विताया। लोग हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—'शा क्य पु त्री य श्रमणोंके लिये दिशाएँ अन्धकारमय हैं, शून्य हैं। इन्हें दिशाएँ जान नहीं पळतीं।' भिक्षुओंने उन मनुष्योंके हैरान होने, धिक्कारने और दुखी होनेको सुना। तव उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही। तव भगवान्ने आयुष्मान् आनंदको संबोधित किया—"जा आनन्द! जलछक्का (=अवापुरण) ले एक ओरसे भिक्षुओंको कह—'आवुसो! भगवान् द क्षि णा- गि रि में चारिका करनेके लिये जाना चाहते हैं। जिस आयुष्मान्की इच्छा हो आये।'

"अच्छा भन्ते!" (कह) भगवान्को उत्तर दे आयुष्मान् आनन्दने जल छक्का ले एक ओरसे भिक्षुओंको कहा—'आवुसो! भगवान् दक्षिणागिरिमें चारिका करनेके लिये जाना चाहते हैं। जिस आयुष्मान्की इच्छा हो आये।' भिक्षुओंने यह कहा—'आवुस आनंद! भगवान्ने आज्ञा दी है, दस वर्ष तक नि श्र य लेकर वसनेकी, दस वर्ष (के भिक्षु)को निश्रय देनेकी। उसके लिये हमें जाना होगा और निश्रय ग्रहण करना होगा। थोळे दिनका निवास होगा और फिर लौटकर आना होगा, और फिर दो-बारा निश्रय ग्रहण करना होगा। इसलिये यदि हमारे आचार्य और उपाध्याय चलेंगे तो हम भी चलेंगे। न चलेंगे तो हम भी नहीं चलेंगे। (अन्यथा) आवुस आनन्द! हमारे चित्तका ओछापन समझा जायगा।' तव भगवान् छोटेसे भिक्षु-संघके साथ द क्षि णा गि रि में विचरनेके लिये चले गये। तव भगवान् दक्षिणा-गिरिमें इच्छानुसार विहारकर राजगृहमें लौट आये। तव भगवान्ने आयुष्मान् आनंदसे पूछा—

"क्या था आनंद! जो तथागत छोटेसे भिक्षु-संघके साथ दक्षिणागिरिमें विचरनेके लिये गये?"

तव आयुष्मान् आनंदने भगवान्को वह सब बात वतलाई। भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रक-रणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चतुर और समर्थ भिक्षुको पाँच वर्ष तक निश्रय लेकर वसने की; और अ-चतुरको जीवन भर तक (निश्रय लेकर वसने की)। 78

(१०) किसके लिये निश्रय आवश्यक है और किसके लिये नहीं है

क—भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको नि श्र य के बिना वास नहीं करना चाहिये— (१) न वह संपूर्णशील-पुंजसे युक्त होता है, ०[1] (५) न संपूर्ण विमुक्तियोंके ज्ञानके साक्षात्कार-पुंजसे संयुक्त होता है। भिक्षु इन पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको निश्रयके बिना वास नहीं करना चाहिये। 79

ख—भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको निश्रयके बिना वास करना चाहिये—(१) वह संपूर्णशील-पुंजसे युक्त होता है, ०[1] (५) संपूर्ण विमुक्तियोंके ज्ञानके साक्षात्कार पुंजसे संयुक्त होता है। भिक्षु इन पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको निश्रयके बिना वास करना चाहिये। 80

ग—और भी भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको निश्रयके बिना वास नहीं करना चाहिये— (१) अ-श्रद्धालु होता है; (२) लज्जा रहित होता है; (३) संकोच-रहित होता है; (४) आलसी होता है; (५) भूल जाने वाला होता है। ०। 81

घ—भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको निश्रयके बिना वास करना चाहिये— (१) श्रद्धालु होता है ०। (५) याद रखने वाला होता है। ०। 82

ङ—और भी भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको निश्रयके बिना नहीं रहना चाहिये— (१) शीलके विषयमें शील-हीन होता है; (२) आचारके विषयमें आचार-हीन होता है; (३) धारणाके विषयमें बुरी धारणावाला होता है; (४) विद्याहीन होता है; (५) प्रज्ञाहीन होता है। ०। 83

च—भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको निश्रयके बिना रहना चाहिये—(१) शीलहीन नहीं होना; (२) आचारहीन नहीं होता; (३) धारणाके विषयमें बुरी धारणावाला नहीं होता; (४) विद्यावान् होता है; (५) प्रज्ञावान् होता है। ०। 84

छ—और भी भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको निश्रयके बिना नहीं रहना चाहिये— (१) दोषको नहीं जानता; (२) न निर्दोषताको जानता है; (३) न छोटे दोषको जानता है; (४) न बळे दोषको जानता है; और (४) भिक्षु-भिक्षुणी दोनोंके प्रातिमोक्षोंको विस्तारके साथ नहीं हृद्गत किये रहता। सूक्त (=बुद्धोपदेश)से और प्रमाणमे प्रातिमोक्षको न सुविभाजित किये रहता, न सुप्रवर्तित, न सु-निर्णीत किये रहता है। ०। 85

ज—भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको नि श्र य के बिना रहना चाहिये—(१) दोषको जानता है; ० (५) प्रातिमोक्षोंको विस्तारके साथ हृद्गत किये रहता है। ०। 86

झ—और भी भिक्षुओ। पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको नि श्र य के बिना नहीं रहना चाहिये— (१) न दोषको जानता है; (२) न निर्दोषताको जानता है; (३) न छोटे दोषको जानता है; (४) न बळे दोषको जानता है; (५) और पाँच वर्षसे कमका भिक्षु होता है। ०। 87

ञ—भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको निश्रयके बिना रहना चाहिये—(१) दोषको जानता है; (२) निर्दोषताको जानता है; (३) छोटे दोषको जानता है; (४) बळे दोषको जानता है; (५) पाँच वर्षसे अधिकका भिक्षु होता है। ०। 88

ट—भिक्षुओ ! इन छ बातोंसे युक्त भिक्षुको निश्रयके बिना नहीं रहना चाहिये—(१) न संपूर्ण शील-पुंजसे युक्त होता है; ०[2] (६) न पाँच वर्षसे अधिकका भिक्षु होता है। ०। 89

ठ—० निश्रयके बिना रहना चाहिये—(१) संपूर्ण शील-पुंजसे युक्त होता है; ० (६) पाँच

[1] देखो पृष्ठ ११२-१३

[2] ट से द तक पिछले पंचकके प्रकरणके ग से ञ तक की तरह पाँच पाँच बातें और छठी बात पाँच वर्षसे कम या अधिक का भिक्षु होना समझो।

वर्षसे अधिकका भिक्षु होता है। ०।90

ड—० निश्रयके विना नहीं रहना चाहिये—(१) अ-श्रद्धालु होता है; (२) लज्जा-रहित होता है; (३) संकोच-रहित होता है; (४) आलसी होता है; (५) भूल जानेवाला होता है; (६) पाँच वर्षसे कमका भिक्षु होता है। ०।91

ढ—० निश्रयके विना रहना चाहिये—(१) श्रद्धालु होता है; (२) लज्जालु होता है; (३) संकोच-शील होता है; (४) उद्योगी होता है; (५) याद रखने वाला होता है; (६) पाँच वर्षसे अधिक-का भिक्षु होता है। ०।92

ण—० निश्रयके विना नहीं रहना चाहिये—(१) शीलहीन होता है; (२) आचारहीन होता है; (३) धारणाके विषयमें बुरी धारणावाला होता है; (४) विद्याहीन होता है; (५) प्रज्ञाहीन होता है; (६) पाँच वर्षसे कमका भिक्षु होता है। ०।93

त—० निश्रयके विना रहना चाहिये—(१) शीलहीन नहीं ०; (६) पाँच वर्षसे अधिक का भिक्षु होता है। ०। 94

थ—० निश्रयके विना नहीं रहना चाहिये—(१) न दोषको जानता है; (२) न निर्दोषता-को जानता है; (३) न छोटे दोषको जानता है; (४) न बळे दोषको जानता है; (५) (भिक्षु-भिक्षुणी) दोनोंके प्रातिमोक्षोंको विस्तारके साथ नहीं हृद्गत किये रहता, सू क्त (=बुद्धोपदेश) और प्र मा ण से प्रातिमोक्षको न सु-विभाजित किये रहता, न सु-प्रवर्तित, न सु-निर्णीत किये रहता; (६) पाँचवर्षसे कमका भिक्षु होता है। ०।95

द—० निश्रयके विना रहना चाहिये—(१) दोषको जानता है; ० (६) पाँच वर्षसे अधिक-का भिक्षु होता है। ०।96

अष्टम भाणवार समाप्त ॥८॥

६—कपिलवस्तु

(११) प्रव्रज्याके लिये माता-पिताकी आज्ञा

(क) रा हु ल की प्र व्र ज्या—तब भगवान् राजगृहमें इच्छानुसार विहार करके कपिलवस्तु-की ओर विचरण करनेके लिये चल दिये। क्रमशः विचरण करते जहाँ कपिलवस्तु है वहाँ पहुँचे। और भगवान् वहाँ शा क्य (-देश)में क पि ल व स्तु के न्य ग्रो धा रा म में विहार करते थे।

भगवान् पूर्वाह्ण समय पहनकर पात्र-चीवर ले जहाँ शु द्धो द न शाक्यका घर था, वहाँ गये। जाकर विछाये आसनपर बैठे। तब रा हु ल-माता-देवीने रा हु ल-कुमारको यों कहा—"राहुल! यह तेरे पिता हैं, जा दायज (=वरासत) माँग।"

तब राहुल-कुमार जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्के सामने खळा हो कहने लगा—"श्रमण! तेरी छाया सुखमय है।" तब भगवान् आसनसे उठकर चल दिये। राहुलकुमार भी भगवान्के पीछे पीछे लगा—

"श्रमण! मुझे दायज दे, श्रमण! मुझे दायज दे।"

तब भगवान्ने आयुष्मान् सारिपुत्रसे कहा

"तो सा रि पु त्र! राहुल-कुमारको प्रव्रजित करो।"

'भन्ते! किस प्रकार राहुल-कुमारको प्रव्रजित करूँ?"

इसी मौकेपर इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कहकर, भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

(ख) श्रा म णे र ब ना ने की वि धि—"भिक्षुओ! तीन शरण-गमनसे श्रामणेर-प्रव्रज्या-

की अनुज्ञा देता हूँ। इस प्रकार प्रव्रजित करना चाहिये। पहिले शिर-दाढी मुँळवा कापाय-वस्त्र पहिना, एक कंधेपर उपरना करवा, भिक्षुओंकी पाद-वन्दना करवा, उकळूँ बेठवा, हाथ जोळवा ऐसा कहो बोलना चाहिये—"बुद्धकी शरण जाता हूँ, धर्मकी शरण जाता हूँ, संघकी शरण जाता हूँ। दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी बुद्धकी शरण०।" 97

तब आयुष्मान् सारिपुत्रने राहुल-कुमारको प्रव्रजित किया। तब शु द्धो द न शाक्य जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया; और भगवान्‌को अभिवादन कर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए शुद्धोदन शाक्यने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते! भगवान्‌से मैं एक वर चाहता हूँ।"

"गौतम! तथागत वरसे दूरहो चुके हैं।"

"भन्ते! जो उचित है, दोष-रहित है।"

"बोलो गौतम!"

"भगवान्‌के प्रव्रजित होनेपर मुझे बहुत दुःख हुआ था, वैसेही न न्द (के प्रव्रजित) होनेपर भी। रा हु ल के (प्रव्रजित) होनेपर अत्यधिक। भन्ते! पुत्र-प्रेम मेरी छाल छेद रहा है। छाल छेदकर०। चमड़ेको छेदकर मांसको छेद रहा है। मांसको छेदकर नसको छेद रहा है। नसको छेदकर हड्डीको छेद रहा है। हड्डीको छेदकर घायल कर दिया है। अच्छा हो, भन्ते! आर्य (=भिक्षुलोग) माता पिताकी अनुमतिके विना (किसीको) प्रव्रजित न करें।"

(ग) मा ता - पि ता की आ ज्ञा से प्र व्र ज्या—भगवान्‌ने शुद्धोदन शाक्यसे धार्मिक कथा कही....। तब शुद्धोदन शाक्य....आसनसे उठ अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया। भगवान्‌ने इसी मौकेपर, इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह, भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ! माता पिताकी अनुमतिके विना, पुत्रको प्रव्रजित न करना चाहिये। जो प्रव्रजित करे, उसे दुक्कटका दोष है।" 98

(१२) श्रामणेरोंके विषयमें नियम

(क) श्रा म णे रों की सं ख्या—तब भगवान् क पि ल व स्तु में इच्छानुसार विहारकर श्रावस्तीमें विचरणके लिये चल दिये। क्रमशः विचरण करते जहाँ श्रावस्ती है वहाँ पहुँचे और भगवान् वहाँ श्रावस्तीमें अ ना थ पिं डि क के आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् सारिपुत्रके सेवक एक खान्दानने आयुष्मान् सा रि पु त्र के पास (अपने) बच्चेको (यह कहकर) भेजा—'इस बच्चेको स्थविर प्रव्रज्या दें।' तब आयुष्मान् सारिपुत्रके (मनमें) ऐसा हुआ—भगवान्‌ने आज्ञा दी है कि एक (भिक्षु)को दो श्रामणेर न रखने चाहिये और मेरे पास यह राहुल श्रामणेर है ही। मुझे क्या करना चाहिये?'

उन्होंने भगवान्‌से बात कही। (भगवान्‌ने कहा)—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, चतुर और समर्थ एक भिक्षुको भी दो श्रामणेर रखनेकी, या जितनोंको वह उपदेश और अनुशासन कर सके उतनोंके रखनेकी।" 99

(ख) श्रा म णे रों के शि क्षा प द—तब श्रामणेरोंके (मनमें) यह हुआ—'हम लोगोंके कितने शि क्षा - प द (=आचार-नियम) हैं, हमें क्या क्या सीखना चाहिये।' (भिक्षुओंने) भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने कहा)—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, श्रामणेरोंको दस शि क्षा - प दों की, जिन्हें श्रामणेर सीखें—(१) प्राण-हिंसासे वाज आना; (२) चोरी करनेसे वाज आना; (३) अ-ब्रह्मचर्यसे वाज आना; (४) झूट बोलनेसे वाज आना; (५) मद्य, कच्ची शराब (आदि) बुद्धि-भ्रष्ट करने वाली (चीजों)से वाज आना; (६) दो पहर बाद भोजन करनेसे वाज आना; (७) नाच, गीत, बाजा, और चित्तको चंचल

करनेवाले तमाशोंसे वाज आना; (८) माला, गंध और उवटनेके धारण, मंडन, विभूषणकी बातसे बाज आना। (९) ऊँची शय्या और महार्घ शय्यासे बाज़ आना; (१०) सोना-चाँदीको ग्रहण करनेसे बाज आना। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, श्रामणेरोंको (इन) दस शि क्षा - प दों की जिन्हें श्रामणेर सीखें।"100

(१३) दंडनीय श्रामणेरोंका दंड

(क) दं ड नी य—उस समय श्रामणेर भिक्षुओंके साथ गौरव और प्रतिष्ठा न रखते हुए उल्टी वृत्तिके हो रहे थे। भिक्षु हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—'कैसे श्रामणेर भिक्षुओंके साथ गौरव और प्रतिष्ठा न रखते हुए उल्टी वृत्तिके हो रहे हैं?' उन्होंने यह बात भगवान्से कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पाँच बातोंसे युक्त श्रामणेरको दंड करनेकी—(१) भिक्षुओंके अ-लाभकी कोशिश करता है; (२) भिक्षुओंके अनर्थकी कोशिश करता है; (३) भिक्षुओंके वास न पानेकी कोशिश करता है; (४) भिक्षुओंकी निन्दा, शिकायत करता है; (५) भिक्षुओंमें परस्पर बिगाळ कराता है। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, (इन) पाँच बातोंसे युक्त श्रामणेरको दंड करनेकी।"101

(ख) दं ड—तब भिक्षुओंके (मनमें) ऐसा हुआ—'क्या दंड करना चाहिये?'

उन्होंने भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, आवरण (=घरके भीतर आनेसे रोकना) करनेको।" 102

(ग) दं ड में नि य म—(a) उस समय भिक्षु श्रामणेरोंके लिये सारे संघारामका आ व र ण करते थे जिससे श्रामणेर आरामके भीतर प्रवेश न पानेसे चले जाते, गृहस्थाश्रममें लौट जाते या तीर्थिकोंके मतमें चले जाते थे। उन्होंने भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! सारे संघारामका आवरण नहीं करना चाहिये। जो करे उसे दु क्क ट का दोष होता है। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, जहाँ वह बसता हो या घूमता हो वहाँ आ व र ण करनेकी।" 103

(b) उस समय भिक्षु श्रामणेरोंके मुखके आहारका आ व र ण (=रोक) करते थे। लोग खिचळी, पान, और संघ-भोजन तैयार करते वक्त श्रामणेरोंसे यह कहते थे—'आओ भन्ते! खिचळी पिओ, आओ भन्ते! भात खाओ।' श्रामणेर ऐसा उत्तर देते थे—'आवुसो! वैसा नहीं कर सकते। भिक्षुओंने हमारा आवरण किया है।' लोग हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—'कैसे भदन्त लोग श्रामणेरोंके मुखके आहारका आवरण करेंगे!' लोगोंने भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! मुखके आहारका आवरण नहीं करना चाहिये। जो करे उसको दुक्कटका दोष होता है।" 104

दंड करनेका वर्णन समाप्त।

(c) उस समय ष ड् व र्गी य[1] (=छ पुरुषोंवाला समुदाय) भिक्षु उपाध्यायोंसे विना पूछे ही श्रामणेरोंका आवरण करते थे। उपाध्याय खोजते थे—हमारे श्रामणेर क्यों नहीं दिखलाई पळ रहे हैं! (दूसरे) भिक्षुओंने यह कहा—'आवुसो! ष ड् व र्गी य भिक्षुओंने आवरण कर दिया है।' उन श्रामणेरोंके (उपाध्याय) हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—'कैसे षड्वर्गीय भिक्षु विना हमसे पूछे ही हमारे श्रामणेरोंका आवरण करेंगे!' (उन्होंने) भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! उपाध्यायोंसे विना पूछे आ व र ण नहीं करना चाहिये। जो करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 105

[1]षड्वर्गीयोंके बारेमें देखो पा ति मो क्ख पृष्ठ १४ टि०।

(d) उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु स्थविर भिक्षुओंके श्रामणेरोंको फुसला ले जाते थे। स्थविर लोग अपने ही दतौन और मुख धोनेके जलको लेते तकलीफ पाते थे। (लोगोंने) भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

"भिक्षुओ ! दूसरेकी परिषद् (=अनुचरगण)को नहीं फुसलाना चाहिये। जो फुसलाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 106

उस समय आयुष्मान् उ प नं द शाक्य-पुत्रके श्रामणेर कं ट क ने कं ट की नामक भिक्षुणीको दू षि त किया। भिक्षु हैरान होते, धिक्कारते, दुखी होते थे—'कैसे श्रामणेर इस प्रकारके अनाचारको करेंगे !' भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

घ. नि का ल ने का दं ड—"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, दस बातोंसे युक्त श्रामणेरको निकाल देनेकी—(१) प्राणि-हिंसका दोषी होता है; (२) चोर होता है; (३) अ-ब्रह्मचारी होता है; (४) झूठ बोलने वाला होता है; (५) शराब पीनेवाला होता है; (६) बुद्धकी निंदा करता है; (७) धर्मकी निंदा करता है; ; (८) संघकी निंदा करता है; (९) झूठी धारणावाला होता है; (१०) भिक्षुणी-दूषक होता है। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, (इन) दस बातोंसे युक्त श्रामणेरको निकाल देनेकी।" 107

(१४) उपसंपदाके लिये अयोग्य व्यक्ति

१—उस समय एक पं ड क (=हिंजळा) भिक्षुओंके पास आकर प्रव्रजित हुआ था। वह जवान-जवान भिक्षुओंके पास आकर ऐसा कहता था—'आओ आयुष्मानो ! मुझे दू षि त करो।' भिक्षु फटकारते थे—'भाग जा पं ड क, हट जा पंडक, तुझसे क्या मतलब है ?' भिक्षुओंके फटकारनेपर वह बड़े बड़े स्थूल शरीर वाले श्रामणेरोंके पास जाकर ऐसा कहता था—'आओ आयुष्मानो ! मुझे दू षि त करो।' श्रामणेर फटकारते थे—'भाग जा पंडक, हट जा पंडक, तुझसे क्या मतलब है ?' श्रामणेरोंके फटकारनेपर हाथीवानों और साईसोंके पास जाकर ऐसा कहता था—'आओ आवुसो ! मुझे दू षि त करो।' हाथीवानों और साईसोंने दूषित किया और वह हैरान होते, धिक्कारते. . .थे—'यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण पंडक है। जो इनमें पंडक नहीं हैं वह पंडकोंको दूषित करते हैं। इस प्रकार यह सभी अब्रह्म-चारी हैं।' उन हाथीवानों और साईसोंके हैरान होने, धिक्कारने. . .को भिक्षुओंने सुना। (उन्होंने) भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

"भिक्षुओ ! उपसंपदा न पाये पंडकको उपसंपदा नहीं देनी चाहिये; और उपसंपदा पायेको निकाल देना चाहिये।" 108

२—उस समय कुलीनतासे च्युत एक पुराने खान्दानका सुकुमार लळका था। तब उस कुलीनतासे च्युत पुराने खानदानके सुकुमार लळके के (मनमें) यह हुआ—मैं सुकुमार हूँ (इसलिये) अप्राप्त भोगको न प्राप्त करनेमें समर्थ हूँ, न प्राप्त भोगके प्रतिकार करनेमें (समर्थ हूँ)। किस उपायसे मैं सुखसे जी सकता हूँ, कष्टको न प्राप्त हो सकता हूँ ?' तब उस कुलीनतासे च्युत पुराने खानदानके सुकुमार पुत्रके (मनमें) यह हुआ—'यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण सु ख शी ल और सु ख-आ चा र हैं। ये अच्छा भोजन करके (अच्छे) निवासों और शय्याओंमें सोते हैं। क्यों न मैं स्वयं पा त्र-ची व र संपादितकर दाढ़ी-मूँछ मुँळा, काषाय वस्त्र पहन आराममें जाकर भिक्षुओंके साथ वास करूँ ?' तब उस कुलीनतासे च्युत पुराने खान्दानके लळकेने स्वयं पा त्र-ची व र संपादितकर केश दाढ़ी मुळा, काषाय वस्त्र पहन आ रा म (=भिक्षु-निवास)में जा भिक्षुओंका अभिवादन किया। भिक्षुओंने पूछा—

"आवुस ! कितने वर्षके (भिक्षु) हो ?"

"आवुसो ! कितने वर्षके होनेका क्या मतलब ?"

"आवुस ! कौन तेरा उपाध्याय है ?"

"आवुसो ! उपाध्याय क्या चीज़ है ?"

तब भिक्षुओंने आयुष्मान् उपालिसे यह कहा—

"आवुस उ पा लि इस प्रव्रजित (=साधु)की पूछताछ करो।"

तब आयुष्मान् उ पा लि द्वारा पूछताछ करनेपर उस कुलीनतासे च्युत पुराने खान्दानके लळकेने सब बात कह दी। आयुष्मान् उपालिने वह बात भिक्षुओंसे कह दी। भिक्षुओंने वह बात भगवान्से कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ ! चोरीसे वस्त्र पहने उपसंपदा-रहित (पुरुष)को नहीं उपसंपदा देनी चाहिये। उपसंपदा प्राप्त कर लिये हो तो उसे निकाल देना चाहिये। भिक्षुओ ! तीर्थिकों (=अन्य पन्थके अनुयायियों)के पास चले गये उपसंपदा-रहित (पुरुष)को उपसंपदा न देनी चाहिये। यदि उपसंपदा पा गया हो तो उसे निकाल देना चाहिये।" 109

३—उस समय एक नाग (अपनी) नाग-योनिसे घृणा करता, दिक होता, जुगुप्सा करता था। तब उस नागके (मनमें) ऐसा हुआ—'किस उपायसे मैं नाग-योनिसे मुक्त होऊँ और जल्दी मनुष्यत्वको पाऊँ ?' तब उस नागके (मनमें) ऐसा हुआ—'यह शाक्यपुत्रीय श्रमण धर्मचारी,...ब्रह्मचारी, सत्यवादी, शीलवान् और पुण्यात्मा हैं। यदि मैं शाक्यपुत्रीय श्रमणोंके पास प्रव्रज्या पा सकूँ, तो इस प्रकार नागयोनिसे मुक्त हो सकता हूँ, और शीघ्र ही मनुष्यत्वको प्राप्त हो सकता हूँ।' तब उस नाग ने तरुण ब्राह्मण (=माणवक)का रूप धारणकर भिक्षुओंके पास जा प्रव्रज्या माँगी। भिक्षुओंने उसे प्रव्रज्या और उपसंपदा प्रदानकी। उस समय वह नाग एक भिक्षुके साथ सीमान्तके विहारमें निवास करता था। एक दिन वह भिक्षु रातके भिनसारको उठकर टहलने लगा। तब वह नाग उस भिक्षुके बाहर निकलनेपर बेफिक्र हो सोने लगा और सारा विहार सांपसे भर गया, तथा खिळकियोंसे फण निकल रहे थे। तब उस भिक्षुने विहारमें प्रवेश करनेके लिये किवाळको खोलते वक्त देखा कि सारा विहार साँपसे भर गया है और खिळकियोंसे फण निकल रहे हैं। देखकर भयभीत हो चिल्ला उठा। (दूसरे) भिक्षु दौळ आ उस भिक्षुसे बोले—आवुस ! किसलिये तू चिल्ला उठा ?'

"आवुसो ! यह सारा विहार साँपसे भरा है, और खिळकियोंसे फण निकल रहे हैं।"

तब वह नाग उस शब्दके कारण सिमिटकर अपने आसनपर बैठ गया। भिक्षुओंने उससे यह कहा—

"आवुस ! तू कौन है ?"

"भन्ते ! मैं नाग हूँ।"

"आवुस ! तूने क्यों ऐसा किया ?"

तब उस नागने भिक्षुओंसे वह सब बात कह दी। भिक्षुओंने उस बातको भगवान्से कहा। तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें भिक्षु-संघको जमाकर उस नागसे यह कहा—

"तुम इस ध र्म वि न य के योग्य नहीं क्योंकि तुम नागहो। जाओ नाग ! वहीं अपने (लोकमें)। चतुर्दशी पूर्णमासी, और अष्टमी, और पक्षके उपोसथको उपवास करो। इस प्रकार तुम नागयोनिसे मुक्त हो जाओगे और जल्दी मनुष्यत्वको प्राप्त करोगे।"

तब वह नाग—'मैं इस धर्मके योग्य नहीं हूँ—' (सोच) दुःखी (=दुर्मना) आँसू बहाते हुए चीत्कार कर चला गया। तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! नागके स्वभावको प्रगट करनेके दो समय हैं—(१) जब अपने स्वजातीय स्त्रीसे मैथुन करता है; (२) और जब निधड़क हो निद्रा लेता है। भिक्षुओ ! यह दो नागके स्वभावको प्रगट करनेके समय हैं। भिक्षुओ ! तिर्यक् योनिवाले प्राणीको बिना उपसंपदाके होनेपर उपसंपदा न देनी

चाहिये और उपसंपदा पाया हुआ होनेपर उसे निकाल देना चाहिये।" 110

४—उस समय एक ब्राह्मण-पुत्र (=माणवकने) माताको जानसे मार डाला। उस समय वह उस बुरे कर्मसे पश्चात्ताप करता, हैरान होता और जुगुप्सा करता था। तब उस ब्राह्मण-पुत्रके (मनमें) ऐसा हुआ—'किस उपायसे मैं इस बुरें कर्मसे निकल सकता हूँ?' तब उस माणवकके मनमें ऐसा हुआ—'यह शाक्यपुत्रीय श्रमण धर्मचारी, समचारी ब्रह्मचारी, सत्यवादी, शीलवान्, उत्तम-धर्मवाले हैं। यदि मैं शाक्यपुत्रीय श्रमणोंके पास प्रव्रज्या पाऊँ तो इस प्रकार मैं इस बुरे कामसे मुक्त हो जाऊँ। तब उस माणवकने भिक्षुओंके पास जा प्रव्रज्या माँगी। भिक्षुओंने आयुष्मान् उपालिसे यह बात कही—'आवुस उपालि! पहले भी एक नाग ब्राह्मण-पुत्रका रूप धारणकर भिक्षुओंमें प्रव्रजित हुआ था। अच्छा हो आवुस उपालि! इस माणवककी पूछ-ताछ करो।' तब उस माणवकने आयुष्मान् उपालिके पूछताछ करनेपर यह सब बात कह दी। आयुष्मान् उपालिने भिक्षुओंसे वह बात कही। भिक्षुओंने भगवान्से वह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! उपसंपदा-रहित माताके हत्यारेको नहीं उपसंपदा-देनी चाहिये, और उपसंपदा पाये हुए हो तो उसे निकाल देना चाहिये।" 111

५—उस समय एक माणवकने पिताको मार डाला था। उस समय वह उस बुरे कर्मसे पश्चात्ताप करता, हैरान होता और जुगुप्सा करता था। तब उस ब्राह्मण-पुत्रके (मनमें) ऐसा हुआ—'किस उपायसे मैं इस बुरे कर्मसे निकल सकता हूँ?' तब उस माणवकके (मनमें) ऐसा हुआ—'यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण धर्मचारी, समचारी, ब्रह्मचारी, सत्यवादी, शीलवान्, उत्तमधर्मवाले हैं। यदि मैं शाक्य-पुत्रीय श्रमणोंके पास प्रव्रज्या पाऊँ तो इस प्रकार में इस बुरे कामसे मुक्ति पाऊँ।' तब उस माणवकने भिक्षुओंके पास जा प्रव्रज्या माँगी।

भिक्षुओंने आयुष्मान उ पा लि से यह बात कही—'आवुस उपालि! पहले भी एक नाग ब्राह्मण-पुत्रका रूप धारणकर भिक्षुओंमें प्रव्रजित हुआ था। अच्छा हो आवुस उपालि! इस माणवककी पूछताछ करो।' तब उस माणवकने आयुष्मान् उपालिके पूछताछ करनेपर वह सब बात कह दी। आयुष्मान् उपालिने भिक्षुओंसे वह बात कही। भिक्षुओंने भगवान्से वह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! उपसंपदा-रहित पिताके हत्यारेको नहीं उपसंपदा देनी चाहिये, और उपसंपदा पाये हुए हो तो उसे निकाल देना चाहिये।" 112

६—उस समय सा के त (=अयोध्या)से श्रावस्ती जानेवाले मार्गपर बहुतसे भिक्षु जा रहे थे। मार्गके बीचमें चोरोंने निकलकर किन्हीं किन्हीं भिक्षुओंको लूटा और किन्हीं किन्हींको मार डाला। श्रावस्तीसे निकलकर राजसैनिकोंने भी किन्हीं किन्हीं चोरोंको पकळ लिया और कोई कोई चोर भाग गये। वह भागे हुए चोर भिक्षुओंके पास जाकर प्रव्रजित हो गये। जो पकळे गये थे वे वधके लिये ले जाये जाने लगे। उन प्रव्रजित (चोरों)ने उन चोरोंको वधके लिये ले जाते देखा। देखकर उन्होंने यह कहा—'अच्छा हुआ जो हम भाग गये। यदि पकळे जाते तो हम भी इसी प्रकार मारे जाते।' उन भिक्षुओंने यह पूछा—'क्यों आवुसो! तुम क्या कहते हो?'

तब उन प्रव्रजितोंने भिक्षुओंसे वह सब बात कह दी। भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! यह भिक्षु (लोग) अर्हत् हैं। भिक्षुओ! अर्हत्-घातकको यदि उपसंपदा न मिली हो तो उपसंपदा न देनी चाहिये, और उपसंपदा मिली हो तो उसे निकाल देना चाहिये।" 113

७—उस समय सा के त से श्रा व स्ती जानेवाले मार्गपर बहुतसी भिक्षुणियाँ जा रही थीं।

मार्गके बीचमें चोरोंने निकलकर किन्हीं किन्हीं भिक्षुणियोंको लूटा और किन्हीं किन्हींको मार डाला। श्रावस्तीसे निकलकर राजसैनिकोंने भी किन्हीं किन्हीं चोरोंको पकळ लिया और कोई कोई चोर भाग गये। वह भागे हुए चोर भिक्षुओंके पास जाकर प्रव्रजित हो गये। जो पकळे गये थे वधके लिये ले जाये जाने लगे। उन प्रव्रजित (चोरोंने) उन चोरोंको वधके लिये ले जाते देखा। देखकर उन्होंने कहा—'अच्छा हुआ जो हम भाग गये। यदि पकळे जाते तो हम भी इसी प्रकार मारे जाते।' उन भिक्षुओंने पूछा—'क्यों आवुसो ! तुम क्या कहते हो?'

तब उन प्रव्रजितोंने भिक्षुओंसे वह सब बात कह दी। भिक्षुओंने भगवान्‌से वह सब बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! यह भिक्षुणियाँ अर्हत् हैं। भिक्षुओ! अर्हत्‌घातकको उपसंपदा न पाये होनेपर उपसंपदा न देनी चाहिये, और उपसंपदा पाये हो तो उसे निकाल देना चाहिये।" 114

८—उस समय एक (स्त्री-पुरुष) दोनों लिंगवाला व्यक्ति भिक्षुओंके पास प्रव्रजित हुआ था। वह (व्यभिचार) करता कराता था। भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! उपसंपदा-रहित (स्त्री-पुरुष) दोनों लिंगवाले व्यक्तिको उपसंपदा न देनी चाहिये। उपसंपदा पा गया हो तो उसे निकाल देना चाहिये।" 115

९—उस समय भिक्षु उपाध्यायके बिना उपसंपदा देते थे। भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! उपाध्यायके बिना उपसंपदा न देनी चाहिये। जो उपसंपदा दे उसे दुक्कटका दोष हो।" 116

१०—उस समय भिक्षु संघको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे। भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! संघको उपाध्याय बना उपसंपदा नहीं देनी चाहिये। जो उपसंपदा दे उसे दुक्कट का दोष हो।" 117

११—उस समय भिक्षु गणको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे।०—

"भिक्षुओ! गणको उपाध्याय बना नहीं उपसंपदा देनी चाहिये। जो उपसंपदा दे उसे दुक्कट का दोष हो।" 118

१२—उस समय भिक्षु पंडकको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे।०—

१३—० चोरीके वस्त्र पहनेको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे ०। 119

१४—० तीर्थिकोंके पास चले गयेको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे०। 120

१५—० तिर्यग्-योनिवालेको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे०। 121

१६—० मातृ-घातकको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे०। 122

१७—० पितृ-घातकको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे०। 123

१८—० अर्हत्-घातकको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे०। 124

१९—० भिक्षुणी-दूषकको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे०। 125

२०—० संघमें फूट डालनेवालेको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे०।

२१—० (बुद्धके शरीरसे) लोहू निकालनेवालेको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे०। 126

२२—० (स्त्री-पुरुष) दोनों लिंगवालेको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे। भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने कहा)—

"भिक्षुओ! (स्त्री-पुरुष) दोनों लिंगवालेको उपाध्याय बनाकर उपसंपदा न देनी चाहिये। जो उपसंपदा दे उसे दुक्कट का दोष हो।" 127

२३—उस समय भिक्षु पात्र-रहित (व्यक्ति)को उपसंपदा देते थे। वह पात्रके विना हाथोंमें ही भिक्षा माँगते थे। लोग हैरान होते, धिक्कारते थे—'कैसे यह पात्रके विना हाथोंमें ही भीख माँगते हैं जैसे कि तीर्थिक।' भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने कहा)—

"भिक्षुओ! पात्र-रहितको उपसंपदा न देनी चाहिये। जो उपसंपदा दे उसे दुक्कटका दोष हो।" 128

२४—उस समय भिक्षु चीवर-रहित (व्यक्ति)को उपसंपदा देते थे और वह नंगेही भिक्षाटन करते थे। लोग हैरान होते..थे—'कैसे ये नंगेही भिक्षाटन करते हैं जैसे कि तीर्थिक! भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! चीवर-रहित (व्यक्ति)को उपसंपदा न देनी चाहिये। जो उपसंपदा दे उसे दुक्कट का दोष हो।" 129

२५—उस समय भिक्षु पात्र-चीवर-रहित (व्यक्ति)को उपसंपदा देते थे। वह नंगे हो हाथोंमें ही भिक्षा माँगते थे०—

"भिक्षुओ! पात्र-चीवर-रहितको उपसंपदा न देनी चाहिये, ०।" 130

२६—उस समय भिक्षु मँगनीके पात्रके साथ उपसंपदा देते थे। उपसंपदा हो जानेपर पात्र ले लिया जाता था और वह हाथोंमें भिक्षा माँगते थे। ०—

"भिक्षुओ! मँगनीके पात्रके साथ उपसंपदा न देनी चाहिये। जो दे उसे दुक्कटका दोष हो।" 131

२७—उस समय भिक्षु मँगनीके चीवरके साथ उपसंपदा देते थे। उपसंपदा हो जानेपर चीवर ले लिया जाता था, और वह नंगेही भिक्षाटन करते थे। ०—

"भिक्षुओ! मँगनीके चीवरके साथ उपसंपदा न देनी चाहिये। जो उपसंपदा दे उसे दुक्कटका दोष हो।" 132

२८—उस समय भिक्षु मँगनीके पात्र-चीवरके साथ उपसंपदा देते थे। उपसंपदा हो जानेपर पात्र-चीवर ले लिया जाता था और वह नंगे हो हाथोंमें भिक्षा माँगते थे। लोग हैरान होते, दुखी होते, धिक्कारते थे—'(कैसे यह नंगे हो हाथोंमें भिक्षा माँगते हैं) जैसे कि तीर्थिक।' भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! मँगनीके पात्र-चीवरके साथ उपसंपदा न देनी चाहिये। जो दे उसे दुक्कटका दोष हो।" 133

(१५) प्रव्रज्याके लिये अयोग्य व्यक्ति

१—उस समय भिक्षु कटे हाथवालेको प्रव्रज्या देते (=श्रामणेर बनाते) थे। मनुष्य देख कर हैरान होते..थे। भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! कटे हाथवालेको प्रव्रज्या न देनी चाहिये। जो प्रव्रज्या दे उसे दुक्कटका दोष हो।" 134

२—०—कटे पैरवालेको०। 135

३—०—कटे हाथ-पैरवालेको०। 136

४—०—कटे कानवालेको०। 137

५—०—कटी नाकवालेको०। 138

६—०—कटे नाक-कानवालेको०। 139

७—०—कटी अँगुलियोंवालेको०। 140

८—०—नोक कटी (अँगुलियों)वालेको०। 141
९—०—पोर कटी (अंगुलियों)वालेको०। 142
१०—०—(सभी अंगुलियोंके कट जानेसे) फण जैसे हाथवालेको०। 143
११—०—कुबड़ेको०। 144
१२—०—बौनेको०। 145
१३—०—घेघेवालेको०। 146
१४—०—ल क्ष णा ह त (=जलते लोहेसे दागे हुए)को०। 147
१५—०—कोळे मारे गयेको०। 148
१६—लि खि त क को०। 149
१७—सी प दि (=एक रोग)को ०। 150
१८—बुरे रोगवालेको०। 151
१९—परिषद्-दूषकको०। 152
२०—कानेको०। 153
२१—लूलेको०। 154
२२—लँगड़ेको०। 155
२३—पक्षाघातवालेको०। 156
२४—ईर्यापथ (=अच्छी रहन सहन)रहितको०। 157
२५—बुढ़ापासे दुर्बलको०। 158
२६—अंधेको०। 159
२७—गूँगेको०। 160
२८—बहिरेको०। 161
२९—अंधे और गूंगेको०। 162
३०—अंधे और बहरेको०। 163
३१—गूंगे और बहिरेको०। 164
३२—अंधे, गूँगे, बहरेको प्रव्रज्या देते थे, ० भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! अंधे, गूँगे, बहरेको नहीं प्रव्रज्या देनी चाहिये। जो प्रव्रज्या दे उसे दुक्कटका दोष हो।" 165

प्रव्रज्या-न-देने-योग्य (प्रकरण) समाप्त ॥

नवम भाणवार समाप्त ॥९॥

§४–उपसम्पदाकी विधि

(१) निश्रयके नियम

१—उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु लज्जाहीनों[1]को नि श्र य देते थे। भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! लज्जाहीनोंको निश्रय नहीं देना चाहिये; जो दे उसे दुक्कटका दोष हो।" 166

---

[1]देखो पृष्ठ १०१ टि०।

२—उस समय भिक्षु लज्जाहीनोंका निश्चय लेकर वास करते थे, और वह भी जल्दी ही लज्जाहीन बुरे भिक्षु हो जाते थे। भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! लज्जाहीनोंका निश्चय लेकर वास नहीं करना चाहिये। जो वास करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 167

३—तब भिक्षुओंके (मनमें) ऐसा हुआ—'भगवान्ने आज्ञा दी है कि लज्जाहीनोंको न निश्चय देना चाहिये न लज्जाहीनोंका निश्चय ले वास करना चाहिये; लेकिन लज्जाशील (=लज्जी), लज्जाहीन (=अलज्जी)को कैसे हम जानेंगे?' भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चार पाँच दिन तक प्रतीक्षा करनेकी जितनेमें कि भिक्षुके स्वभावको जान जाय।" 168

४—उस समय एक भिक्षु को स ल देशमें रास्तेमें जा रहा था। उस समय उस भिक्षुके (मनमें) ऐसा हुआ—'भगवान्ने आज्ञा दी है कि निश्रयके बिना नहीं रहना चाहिये और मैं निश्रय लेने योग्य होते हुए रास्तेमें हूँ। कैसे मुझे करना चाहिये?' भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, रास्तेमें जाते हुए भिक्षुको, निश्रय न पानेपर बिना निश्रयहीके रहनेकी।" 169

५—उस समय दो भिक्षु को स ल देशमें रास्तेमें जा रहे थे। वह एक वास-स्थानमें गये। वहाँ एक भिक्षु बीमार पळ गया। तब उस बीमार भिक्षुके (मनमें) ऐसा हुआ—'भगवान्ने आज्ञा दी है कि निश्रयके बिना नहीं रहना चाहिये; मैं निश्रय लेने योग्य होते हुए रोगी हूँ। कैसे मुझे करना चाहिये?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, रोगी भिक्षुको निश्रय न पानेपर बिना निश्रयहीके रहनेकी।" 170

६—तब उस बीमारके परिचारक भिक्षुके (मनमें) ऐसा हुआ—'भगवान्ने आज्ञा दी है कि निश्रयके बिना नहीं रहना चाहिये और मैं निश्रय लेने योग्य हूँ और यह भिक्षु रोगी है, मुझे कैसा करना चाहिये?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ बीमारके परिचारक भिक्षुको इच्छा रखते भी निश्रय न पाने पर बिना निश्रयके रहनेकी।" 171

७—उस समय एक भिक्षु जंगलमें रहता था। उस निवास-स्थानपर उसे अच्छा था। तब उस भिक्षुके (मनमें) ऐसा हुआ—'भगवान्ने आज्ञा दी है कि निश्रयके बिना नहीं रहना चाहिये, और मैं निश्रय लेने योग्य होते हुये जंगलमें हूँ; तथा मुझे इस वास-स्थानपर अच्छा है। मुझे कैसा करना चाहिये?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ जंगलमें रहनेवाले भिक्षुको निवास अनुकूल मालूम होनेपर, निश्रयके न मिलनेपर बिना निश्रयके ही रहनेकी; (यह सोचकर) जब अनुकूल निश्रयदायक आयेगा तो उसका निश्रय लेकर वास करूँगा।" 172

(२) वळोंको गोत्रके नामसे पुकारना

उस समय आयुष्मान् म हा का श्य प के पास एक उपसंपदा चाहनेवाला था। तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् आनन्दके पास (यह कहकर) दूत भेजा—'आनन्द! आओ और इस पुरुषके लिये अ नु श्रा व ण[1] करो।'

[1] उपसंपदा देने (भिक्षु बनाने)के समय उपसंपदा देनेकी स्वीकृति तथा उपाध्याय और आचार्यके नाम संघके सामने ऊँचे स्वरसे लिये जाते थे। इसीको अनुश्रावण कहते हैं।

आयुष्मान् आनंदने ऐसा कहा—'स्थविर (महाकाश्यप)का नाम भी लेनेमें मैं असमर्थ हूँ। स्थविर मेरे गुरु हैं।'

—भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, गोत्र (के नाम)से पुकारनेकी।" 173

(३) अनुश्रावणके नियम

१—उस समय आयुष्मान् महाकाश्यपके पास दो उपसंपदा चाहनेवाले थे। 'मैं पहले उपसंपदा लूँगा, मैं पहले उपसंपदा लूँगा' कहकर वे विवाद करते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ एक साथ दोके अ नु श्रा व ण की।" 174

२—उस समय बहुतसे स्थविरोंके पास उपसंपदा चाहनेवाले थे। 'मैं पहले उपसंपदा लूँगा, मैं पहले उपसंपदा लूँगा' कहकर वे विवाद करते थे। तब स्थविरोंने कहा—'आवुसो! (आओ) हम सब एकही अ नु श्रा व ण करें।' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ दो तीनके लिये एक अनुश्रावण करनेकी। लेकिन यदि उनका उपाध्याय एक हो, अनेक न हों।" 175

(४) गर्भसे बीस वर्षकी उपसम्पदा

उस समय आयुष्मान् कु मा र का श्य प ने गर्भ से बीस वर्ष गिनकर उपसंपदा पाई थी तब आयुष्मान् कु मा र का श्य प के (मनमें) ऐसा हुआ—'भगवान्ने विधान किया है कि बीस वर्षसे कमके व्यक्तिको उपसंपदा न देनी चाहिये और मैंने गर्भमें (आने)से लेकर बीस वर्ष जोळ उपसंपदा पाई। क्या मेरी उपसंपदा ठीक है?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! जब माताकी कोखमें पहले पहल चि त्त उत्पन्न होता है, पहले पहल वि ज्ञा न प्रादुर्भूत होता है तबसे लेकर जन्म माननेकी है। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ गर्भसे बीस (वर्षवाले)को उपसंपदा देनेकी।" 176

(५) उपसम्पदाके बाधक शारीरिक दोष

उस समय कोढी भी, फोळेवाले भी (बुरे) चर्म-रोगवाले भी, शोथवाले भी, मृगीवाले भी उपसंपदा पाये देखे जाते थे। भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उपसंपदा करते वक्त तेरह प्रकारके (उपसंपदामें) अ न्त रा यि क (=बाधक) बातोंके पूछनेकी। और भिक्षुओ! इस प्रकार पूछना चाहिये—'क्या तुझे ऐसी बीमारी (जैसेकि) (१) कोढ़, (२) गंड (=एक प्रकारका बुरा फोळा), (३) किलास (=एक प्रकारका बुरा चर्म-रोग), (४) शोथ, (५) मृगी, (६) तू मनुष्य है, (७) तू पुरुष है? (८) तू स्वतंत्र (अदास) है? (९) तू उऋण है? (१०) तू राज-सैनिक तो नहीं है? (११) तुझे माता पिताने (भिक्षु बननेकी) अनुमति दी है? (१२) तू पूरे बीस वर्षका है? (१३) तेरे पास पात्र-चीवर (संख्यामें) पूर्ण हैं? तेरा क्या नाम है? तेरे उपाध्यायका क्या नाम है?" 177

(६) उपसम्पदा कर्म

(क) १—अ नु शा स न—उस समय अनुशासन न किये ही उपसंपदा-चाहनेवालेसे भिक्षु लोग (तेरह) विघ्नकारक बातोंको पूछते थे। उपसंपदा चाहनेवाले चुप हो जाते थे, मूक हो जाते थे, उत्तर नहीं दे सकते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पहले अनुशासन दे (=सिखा) करके, पीछे अन्तरायिक बाधक बातोंके पूछनेकी।" 178

२—(भिक्षु लोग) वहीं संघके बीचमें अ नु शा स न करते थे। उपसंपदा चाहनेवाले (फिर) उसी तरह चुप रह जाते थे, मूक हो जाते थे, उत्तर न दे सकते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, एक ओर ले जाकर विघ्नकारक बातोंके अ नु शा स न करनेकी; और संघके बीचमें पूछनेकी। भिक्षुओ! इस प्रकार अनुशासन करना चाहिये—पहले उपाध्याय ग्रहण कराना चाहिये। उपाध्याय ग्रहण करा पात्र-चीवरको बतलाना चाहिये—यह तेरा पात्र है, यह सं घा टी, यह उ त्त रा सं घ, यह अ न्त र वा स क। जा उस स्थानमें खड़ा हो।" 179

३—(उस समय) मूर्ख, अजान, अनुशासन करते थे। ठीकसे अनुशासन न होनेके कारण उपसंपदा चाहनेवाले चुप रह जाते, मूक हो जाते, उत्तर न दे सकते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! मूर्ख, अजान अनुशासन न करें। जो अनुशासन करें तो. दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चतुर समर्थ भिक्षुको अनुशासन करनेकी।" 180

(ख) अ नु शा स क का चु ना व—उस समय सम्मतिके बिना ही अनुशासन करते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—भिक्षुओ! सम्मतिके बिना अनुशासन नहीं करना चाहिये। जो अनुशासन करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सम्मति प्राप्तको अनुशासन करनेकी। 181

"और भिक्षुओ! इस प्रकार सम्मंत्रण करना चाहिये—अपने ही अपने लिये सम्मंत्रण करना चाहिये या दूसरे को दूसरेके लिये सम्मंत्रण करना चाहिये। कैसे अपने ही अपने लिये सम्मंत्रण करना चाहिये?—चतुर, समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

भन्ते! संघ मेरी (बात) सुने, यह अमुक नामवाला अमुक नामवाले आयुष्मान्‌का उपसंपदा चाहनेवाला (शिष्य) है। यदि संघ उचित समझे तो मैं अमुक नामवाले (इस पुरुष)को अनुशासन करूँ।—इस प्रकार अपनेही अपने लिये सम्मंत्रण करना चाहिये।

"कैसे दूसरेके लिये सम्मंत्रण करना चाहिये?—चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क. ज्ञ प्ति—भन्ते! संघ मेरी (बात) सुने। यह इस नामवाला इस नामवाले आयुष्मान्‌का उपसंपदा चाहनेवाला (शिष्य) है। यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाला (भिक्षु) इस नामवाले (उपसंपदा चाहनेवाले)को अनुशासन करे।—इस प्रकार दूसरेको दूसरेके लिये सम्मंत्रणा करनी चाहिये।

तब उस सम्मति प्राप्त भिक्षुको उपसंपदा चाहनेवालेके पास जाकर ऐसा कहना चाहिये—

ख. अ नु शा स न—"अमुक नामवाले! सुनते हो? यह तुम्हारा सत्यका काल (=भूतका काल) है। जो जानता है संघके बीच पूछनेपर है होनेपर "है" कहना चाहिये; 'नहीं' होनेपर नहीं कहना चाहिये। चुप मत हो जाना, मूक मत हो जाना, (संघमें) इस प्रकार तुझसे पूछेंगे—क्या तुझे ऐसी बीमारी है (जैसे कि) कोढ़, गंड, किलास, शोथ, मृगी? क्या तू मनुष्य है; पुरुष है; स्वतंत्र है; उऋण है; राजसैनिक तो नहीं है; तुझे माता-पिताने (भिक्षु बनानेकी) अनुमति दी है; तू पूरे बीस वर्षका है; तेरे पास पात्र-चीवर (पूर्ण संख्यामें) हैं? तेरा क्या नाम है? तेरे उपाध्यायका क्या नाम है?"

(उस समय अनुशासक और उपसंपदा चाहनेवाले दोनों) एक साथ (संघमें) आते थे। (भगवान्‌ने यह बात कही)—

"भिक्षुओ! एक साथ नहीं आना चाहिये।" 182

ग. <u>उपसंपदामें ज्ञप्ति, अनुश्रावण और धारणा</u>—अनुशासक पहले आकर संघको सूचित करे—

भन्ते! संघ मेरी (बात) सुने! यह इस नामका इस नामवाले आयुष्मान्‌का उपसंपदा चाहनेवाला शिष्य है। मैंने उसको अनुशासन किया है। यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाला (उपसंपदा चाहनेवाला) आवे। 'आओ!' कहना चाहिये। (फिर) एक कंधेपर उ त्त रा सं घ को करवाकर भिक्षुओंके चरणोंमें वंदना करवा, उकडूँ बैठवा, हाथ जुड़वा, उपसंपदाके लिये याचना करवानी चाहिये।

आयुष्मान् आनंदने ऐसा कहा—'स्थविर (महाकाश्यप)का नाम भी लेनेमें मैं असमर्थ हूँ। स्थविर मेरे गुरु हैं।'

—भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, गोत्र (के नाम)से पुकारनेकी।" 173

(३) अनुश्रावणके नियम

१—उस समय आयुष्मान् महाकाश्यपके पास दो उपसंपदा चाहनेवाले थे। 'मैं पहले उपसंपदा लूँगा, मैं पहले उपसंपदा लूँगा' कहकर वे विवाद करते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ एक साथ दोके अ नु श्रा व ण की।" 174

२—उस समय बहुतसे स्थविरोंके पास उपसंपदा चाहनेवाले थे। 'मैं पहले उपसंपदा लूँगा, मैं पहले उपसंपदा लूँगा' कहकर वे विवाद करते थे। तब स्थविरोंने कहा—'आवुसो! (आओ) हम सब एकही अ नु श्रा व ण करें।' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ दो तीनके लिये एक अनुश्रावण करनेकी। लेकिन यदि उनका उपाध्याय एक हो, अनेक न हों।" 175

(४) गर्भसे बीस वर्षकी उपसम्पदा

उस समय आयुष्मान् कु मा र का श्य प ने गर्भ से बीस वर्ष गिनकर उपसंपदा पाई थी तब आयुष्मान् कु मा र का श्य प के (मनमें) ऐसा हुआ—'भगवान्ने विधान किया है कि बीस वर्षसे कमके व्यक्तिको उपसंपदा न देनी चाहिये और मैंने गर्भमें (आने)से लेकर बीस वर्ष जोळ उपसंपदा पाई। क्या मेरी उपसंपदा ठीक है?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! जब माताकी कोखमें पहले पहल चि त्त उत्पन्न होता है, पहले पहल वि ज्ञा न प्रादुर्भूत होता है तबसे लेकर जन्म माननेकी है। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ गर्भसे बीस (वर्षवाले)को उपसंपदा देनेकी।" 176

(५) उपसम्पदाके बाधक शारीरिक दोष

उस समय कोढी भी, फोळेवाले भी (बुरे) चर्म-रोगवाले भी, शोथवाले भी, मृगीवाले भी उपसंपदा पाये देखे जाते थे। भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उपसंपदा करते वक्त तेरह प्रकारके (उपसंपदामें) अ न्त रा यि क (=बाधक) बातोंके पूछनेकी। और भिक्षुओ! इस प्रकार पूछना चाहिये—'क्या तुझे ऐसी बीमारी (जैसेकि) (१) कोढ़, (२) गंड (=एक प्रकारका बुरा फोळा), (३) किलास (=एक प्रकारका बुरा चर्म-रोग), (४) शोथ, (५) मृगी, (६) तू मनुष्य है, (९) तू पुरुष है? (८) तू स्वतंत्र (अदास) है? (९) तू उऋण है? (१०) तू राज-सैनिक तो नहीं है? (११) तुझे माता पिताने (भिक्षु बननेकी) अनुमति दी है? (१२) तू पूरे बीस वर्षका है? (१३) तेरे पास पात्र-चीवर (संख्यामें) पूर्ण हैं? तेरा क्या नाम है? तेरे उपाध्यायका क्या नाम है?" 177

(६) उपसम्पदा कर्म

(क) १—अ नु शा स न—उस समय अनुशासन न किये ही उपसंपदा-चाहनेवालेसे भिक्षु लोग (तेरह) विघ्नकारक बातोंको पूछते थे। उपसंपदा चाहनेवाले चुप हो जाते थे, मूक हो जाते थे, उत्तर नहीं दे सकते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पहले अनुशासन दे (=सिखा) करके, पीछे अन्तरायिक बाधक बातोंके पूछनेकी।" 178

२—(भिक्षु लोग) वहीं संघके बीचमें अ नु शा स न करते थे। उपसंपदा चाहनेवाले (फिर) उसी तरह चुप रह जाते थे, मूक हो जाते थे, उत्तर न दे सकते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, एक ओर ले जाकर विघ्नकारक बातोंके अ नु शा स न करनेकी; और संघके बीचमें पूछनेकी। भिक्षुओ ! इस प्रकार अनुशासन करना चाहिये—पहले उपाध्याय ग्रहण कराना चाहिये। उपाध्याय ग्रहण करा पात्र-चीवरको बतलाना चाहिये—यह तेरा पात्र है, यह सं घा टी, यह उ त्त रा सं घ, यह अ न्त र वा स क। जा उस स्थानमें खड़ा हो।" 179

३—(उस समय) मूर्ख, अजान, अनुशासन करते थे। ठीकसे अनुशासन न होनेके कारण उपसंपदा चाहनेवाले चुप रह जाते, मूक हो जाते, उत्तर न दे सकते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! मूर्ख, अजान अनुशासन न करें। जो अनुशासन करें तो. दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ चतुर समर्थ भिक्षुको अनुशासन करनेकी।" 180

(ख) अ नु शा स क का चु ना व—उस समय सम्मतिके बिना ही अनुशासन करते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—भिक्षुओ ! सम्मतिके बिना अनुशासन नहीं करना चाहिये। जो अनुशासन करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ सम्मति प्राप्तको अनुशासन करनेकी। 181

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार सम्मंत्रण करना चाहिये—अपने ही अपने लिये सम्मंत्रण करना चाहिये या दूसरे को दूसरेके लिये सम्मंत्रण करना चाहिये। कैसे अपने ही अपने लिये सम्मंत्रण करना चाहिये ?—चतुर, समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

भन्ते ! संघ मेरी (बात) सुने, यह अमुक नामवाला अमुक नामवाले आयुष्मान्‌का उपसंपदा चाहनेवाला (शिष्य) है। यदि संघ उचित समझे तो मैं अमुक नामवाले (इस पुरुष)को अनुशासन करूँ।—इस प्रकार अपनेही अपने लिये सम्मंत्रण करना चाहिये।

"कैसे दूसरेके लिये सम्मंत्रण करना चाहिये ?—चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क. ज्ञ प्ति—भन्ते ! संघ मेरी (बात) सुने। यह इस नामवाला इस नामवाले आयुष्मान्‌का उपसंपदा चाहनेवाला (शिष्य) है। यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाला (भिक्षु) इस नामवाले (उपसंपदा चाहनेवाले)को अनुशासन करे।—इस प्रकार दूसरेको दूसरेके लिये सम्मंत्रणा करनी चाहिये।

तब उस सम्मति प्राप्त भिक्षुको उपसंपदा चाहनेवालेके पास जाकर ऐसा कहना चाहिये—

ख. अ नु शा स न—"अमुक नामवाले ! सुनते हो ? यह तुम्हारा सत्यका काल (=भूतका काल) है। जो जानता है संघके बीच पूछनेपर है होनेपर "है" कहना चाहिये; 'नहीं' होनेपर नहीं कहना चाहिये। चुप मत हो जाना, मूक मत हो जाना, (संघमें) इस प्रकार तुझसे पूछेंगे—क्या तुझे ऐसी बीमारी है (जैसे कि) कोढ़, गंड, किलास, शोथ, मृगी ? क्या तू मनुष्य है; पुरुष है; स्वतंत्र है; उऋण है; राजसैनिक तो नहीं है; तुझे माता-पिताने (भिक्षु बनानेकी) अनुमति दी है; तू पूरे बीस वर्षका है; तेरे पास पात्र-चीवर (पूर्ण संख्यामें) हैं ? तेरा क्या नाम है ? तेरे उपाध्यायका क्या नाम है ?"

(उस समय अनुशासक और उपसंपदा चाहनेवाले दोनों) एक साथ (संघमें) आते थे। (भगवान्‌से यह बात कही)—

"भिक्षुओ ! एक साथ नहीं आना चाहिये।" 182

ग. उपसंपदामें ज्ञप्ति, अनुश्रावण और धारणा—अनुशासक पहले आकर संघको सूचित करे—

भन्ते ! संघ मेरी (बात) सुने ! यह इस नामका इस नामवाले आयुष्मान्‌का उपसंपदा चाहनेवाला शिष्य है। मैंने उसको अनुशासन किया है। यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाला (उपसंपदा चाहनेवाला) आवे। 'आओ !' कहना चाहिये। (फिर) एक कंधेपर उ त्त रा सं घ को करवाकर भिक्षुओंके चरणोंमें वंदना करवा, उकडूँ बैठवा, हाथ जुड़वा, उपसंपदाके लिये याचना करवानी चाहिये।

(१) 'भन्ते! संघसे उपसंपदा माँगता हूँ। पूज्य संघ अनुकंपा करके मेरा उद्धार करे।

(२) दूसरी बार भी ०।

(३) तीसरी बार भी याचना करवानी चाहिये—पूज्यसंघसे उपसंपदा माँगता हूँ। पूज्यसंघ अनुकंपा करके मेरा उद्धार करे।'

(फिर) चतुर समर्थ भिक्षु संघको ज्ञापित करे—

'भन्ते! संघ मेरी सुने—यह इस नामवाला इस नामवाले आयुष्मान्का उपसंपदा चाहनेवाला शिष्य है। यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाले (उम्मेदवार)से विघ्नकारक बातोंको पूछूँ'

'सुनता है इस नामवाले! यह तेरा सत्यका (भूतका) काल है। जो है उसे पूछता हूँ। होने पर "है" कहना, नहीं होनेपर "नहीं है" कहना। क्या तुझे ऐसी बीमारी है (जैसे कि) कोढ ० तेरे पात्र-चीवर (पूर्ण संख्यामें) हैं? तेरा क्या नाम है? तेरे उपाध्यायका क्या नाम है?

(फिर) चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क. ज्ञ प्ति—"भन्ते! संघ मेरी (बात) सुने। यह इस नामवाला, इस नामवाले आयुष्मान्का उपसंपदा चाहनेवाला (शिष्य), (तेरह) विघ्नकारक बातोंसे शुद्ध है। (इसके) पात्र-चीवर परि-पूर्ण हैं। (यह) इस नामवाला (उम्मीदवार) इस नामवाले (भिक्षुको) उपाध्याय बना संघसे उपसंपदा चाहता है। यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाले (उम्मीदवार)को इस नामवाले (आयुष्मान्)के उपाध्यायत्वमें उपसंपदा दे—यह सूचना है।

ख. (अ नु श्रा व ण)—"(१) भन्ते! संघ मेरी सुने। यह इस नामवाला इस नामवाले आयु-ष्मान्का उपसंपदा चाहनेवाला शिष्य अन्तरायिक बातोंसे परिशुद्ध है, (इसके) पात्र-चीवर परिपूर्ण हैं। (यह) इस नामवाला उम्मीदवार इस नामवाले (आयुष्मान्)के उपाध्यायत्वमें उपसंपदा चाहता है। संघ इस नामवाले (उम्मीदवार)को इस नामवाले (आयुष्मान्)के उपाध्यायत्वमें उपसंपदा देता है। जिस आयुष्मान्को इस नामवाले (उम्मीदवार)की इस नामवाले (आयुष्मान्)के उपाध्यायत्वमें उपसंपदा पसंद है वह चुप रहे। जिसको पसंद नहीं है वह बोले। (२) दूसरी बार भी इसी बातको कहता हूँ—पूज्य संघ मेरी सुने ०। (३) तीसरी बार भी इसी बातको कहता हूँ—पूज्यसंघ मेरी सुने ० जिसको पसंद नहीं है वह बोले।

ग. धा र णा—"इस नामवाले (उम्मीदवार)को इस नामवाले (आयुष्मान्)के उपाध्यायत्वमें उपसंपदा संघने दी। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ।"

उपसंपदा कर्म समाप्त

(७) पंद्रह वर्षसे कमका श्रामणेर

उसी समय (समय जाननेके लिये) छाया नापनी चाहिये, ऋतुका प्रमाण बतलाना चाहिये, दिनका भाग बतलाना चाहिये, सं गी ति [1] बतलानी चाहिये। चारों नि श्र य [2] बतलाने चाहियें—(१) यह प्रव्रज्या भिक्षा माँगे भोजनके निश्रयसे है। इसके (पालनमें) जिन्दगी भर तुझे उद्योग करना चाहिये। हाँ (यह) अतिरेक लाभ (भी तेरे लिये विहित हैं)—संघ-भोज, तेरे उद्देश्यसे बना भोजन निमंत्रण, श ला का भो ज न, पाक्षिक (भोज) उपोसथके दिनका (भोज), प्रतिपद्का (भोज)। (२) पळे चीथळोंके बनाये चीवरके निश्रयसे यह प्रव्रज्या है; इसके (पालनमें) जिन्दगी भर उद्योग करना

---

[1] छाया ऋतु और दिनका भाग—इन तीनोंके इकट्ठा करनेको सं गी ति कहते हैं।

[2] देखो पृष्ठ १२१–२२ भी।

चाहिये। हाँ (यह) अतिरेक लाभ (भी तेरे लिये विहित हैं)-- क्षौम (अलसीकी छालका वस्त्र), कपासका (वस्त्र), कौशेय (=रेशमी वस्त्र), कम्बल (=ऊनी वस्त्र), सनका (वस्त्र), भाँगकी (छालका वस्त्र)। (३) वृक्षके नीचे निवासके निश्रयसे यह प्रव्रज्या है। इसके (पालनमें) जिन्दगी भर उद्योग करना चाहिये। हाँ (यह) अतिरेक लाभ (भी तेरे लिये विहित हैं)---विहार, आढ्ययोग, प्रासाद, हर्म्य, गुहा। (४) गोमूत्रकी ओषधिके निश्रयसे यह प्रव्रज्या है। इसके (पालनमें) जिन्दगी भर उद्योग करना चाहिये। हाँ (यह) अतिरेक लाभ (भी तेरे लिये विहित हैं)---घी, मक्खन, तेल, मधु, खांळ।" 183

चार निश्रय समाप्त

(८) श्रामणेर शिष्योंकी संख्या

उस समय (कुछ) भिक्षु एक भिक्षुको उपसंपदा दे, अकेले ही छोळ चले गये। पीछे अकेले ही चलते वक्त रास्तेमें उसे अपनी पहलेकी स्त्री मिली। उसने पूछा---

"क्या इस वक्त प्रव्रजित हो गये हो?"

"हाँ प्रव्रजित हो गया हूँ।"

"प्रव्रजितोंके लिये स्त्री-समागम बहुत दुर्लभ है। आओ! मैथुन-सेवन करो।"

वह उसके साथ मैथुन कर, देरसे गया। भिक्षुओंने पूछा---

"आवुस! क्यों तूने इतनी देर लगाई?"

तब उसने भिक्षुओंसे वह सब बात कह दी। भिक्षुओंने भगवान्से वह सब बात कही। (भगवान्ने यह कहा)---

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, उपसंपदा करके एक दूसरे (भिक्षुको साथी) देनेकी और चार अकरणीयोंके बतलानेकी---

"(१) उपसम्पन्न भिक्षुको अन्ततः पशुसे भी मैथुन नहीं करना चाहिये। जो भिक्षु मैथुन करे वह अश्रमण होता है, अशाक्य-पुत्रीय होता है। जैसे शिर-कटा-पुरुष उस शरीरसे जीनेमें असमर्थ होता है ऐसे ही भिक्षु मैथुन करके अश्रमण होता है, अशाक्यपुत्रीय होता है। यह तेरे लिये जीवन भर अकरणीय है।

"(२) उपसम्पदा प्राप्त भिक्षुको चोरी समझे जाने वाली (किसी वस्तुको) चाहे वह तृणकी शलाका ही क्यों न हो न लेना चाहिये। जो भिक्षु पा द [१] या पा द के मूल्य या पादसे अधिककी चोरी समझी जानेवाली (चीज)को ग्रहण करे वह अश्रमण, अशाक्य-पुत्रीय होता है। जैसे डेंपसे छूटा पीला पत्ता फिर हरा होनेके अयोग्य है, ऐसेही भिक्षु पा द या पा द के मूल्यके या पादसे अधिककी चोरी समझी जानेवाली (चीज)को ग्रहण करे वह अश्रमण, अशाक्यपुत्रीय होता है। यह तेरे लिये जीवन भर अकरणीय है।

"(३) उपसम्पदा प्राप्त भिक्षुको जान बूझकर प्राण न मारना चाहिये चाहे वह चींटा मांटा ही क्यों न हो। जो भिक्षु जान बूझकर मनुष्यके प्राणको मारता है या अन्ततः गर्भपात भी कराता है वह अश्रमण, अशाक्यपुत्रीय होता है। जैसे कोई मोटी शिला दो टूक हो जानेपर फिर जोळने लायक नहीं रहती ऐसेही भिक्षु जान बूझकर मनुष्यको प्राणसे मारनेसे अश्रमण अशाक्यपुत्रीय होता है। यह तेरे लिये जीवन भर अकरणीय है।

"(४) उपसम्पदा प्राप्त भिक्षुको (अपने) दिव्य शक्ति (=उत्तरमनुष्यधर्म)को न कहना चाहिये। अन्ततः शून्यागारमें मैं रमण करता हूँ, इतना भर भी (नहीं कहना चाहिये)। जो बुरी नीयत-

[१] पाँच मासक (=माशा)=१ पाद; ४ पाद=१ कार्षापण; (देखो पृष्ठ ८१ भी)।

वाला लोभके वशमें पळा भिक्षु अविद्यमान, असत्य—दिव्य-शक्ति, ध्यान, विमोक्ष, समाधि, समापत्ति, मार्ग या फल—को (अपनेमें) बतलाता है वह अश्रमण अशाक्यपुत्रीय होता है। जैसे शिर कटा ताळ फिर बढ़नेके योग्य नहीं होता, ऐसे ही बुरी नीयतवाला लोभके वशमें पळा भिक्षु अविद्यमान, असत्य—दिव्य-शक्ति (अपनेमें) बतलाकर अश्रमण अशाक्यपुत्रीय होता है। यह तेरे लिये जीवन भर अकरणीय है।" 184

चार अकरणीय समाप्त

(९) निश्चयकी अवधि

उस समय एक भिक्षु (दोपको करके) दोपको न देखनेसे उ त्क्षि प्त होनेपर धर्म छोळकर चला गया। उसने फिर आकर भिक्षुओंसे उपसंपदा माँगी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! यदि कोई भिक्षु दोप (=आपत्ति)के न देखनेसे उत्क्षिप्त हो निकल जाता है और वह फिर आकर उपसंपदा माँगता है तो उससे ऐसा पूछना चाहिये—'क्या तुम उस दोपको देखते हो ?'—यदि वह कहे—'मैं देखता हूँ' तो उसे प्रव्रज्या देनी चाहिये। यदि कहे 'नहीं देखता हूँ' तो प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये। प्रव्रज्या देकर पूछना चाहिये—'क्या तुम उस आपत्तिको देखते हो ?' यदि कहे 'मैं देखता हूँ' तो उपसंपदा देनी चाहिये। यदि कहे 'नहीं देखता हूँ' तो उपसंपदा नहीं देनी चाहिये।' उपसंपदा देकर पूछना चाहिये—'क्या तुम उस आपत्तिको देखते हो ?' यदि कहे 'मैं देखता हूँ' तो उसका ओ सा र ण[1] करना चाहिये; यदि कहे 'नहीं देखता हूँ' तो उसका ओ सा र ण नहीं करना चाहिये। ओ सा र ण करके पूछना चाहिये—'क्या तुम उस आपत्तिको देखते हो ?' यदि कहे कि 'देखता हूँ'—तो अच्छा है। यदि कहे 'नहीं देखता' तो एकमत होनेपर फिर उ त्क्षि प्त करना चाहिये। यदि एकमत न मिलता हो तो साथके भोजन और निवासमें दोष नहीं। यदि भिक्षुओ ! आपत्तिके न प्रतिकारसे भिक्षु उत्क्षिप्त होनेपर चला जाये और वह फिर आकर भिक्षुओंसे उपसंपदा माँगे तो उससे ऐसा पूछना चाहिये—'क्या उस दोषका तुम प्रतिकार करोगे ?' यदि कहे 'प्रतिकार करूँगा' तो प्रव्रज्या देनी चाहिये, यदि कहे 'प्रतिकार नहीं करूँगा' तो प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये। प्रव्रज्या देकर पूछना चाहिये 'क्या तुम उस दोपका प्रतिकार करोगे ?' यदि कहे 'प्रतिकार करूँगा' तो उपसंपदा देनी चाहिये; यदि कहे 'प्रतिकार नहीं करूँगा' तो उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। उपसंपदा देकर पूछना चाहिये 'क्या तुम उस आपत्तिका प्रतिकार करोगे?' यदि कहे 'प्रतिकार करूँगा' तो ओ सा र ण करना चाहिये। यदि कहे 'प्रतिकार नहीं करूँगा' तो ओ सा र ण नहीं करना चाहिये। ओ सा र ण करके पूछना चाहिये 'क्या उस दोपका प्रतिकार करते हो ?' यदि वह प्रतिकार करे तो ठीक; यदि प्रतिकार न करे तो एकमत होनेपर फिर उत्क्षिप्त करना चाहिये। यदि एकमत न प्राप्त हो तो साथके भोजन और निवासमें दोप नहीं। 185

"यदि भिक्षुओ ! कोई भिक्षु बुरी दृष्टिके न त्यागनेसे उत्क्षिप्त होकर चला गया हो और वह फिर आकर भिक्षुओंसे उपसंपदा माँगे तो उससे पूछना चाहिये—'क्या तुम उस बुरी धारणाको छोळोगे ?' यदि कहे कि—छोळूँगा—तो प्रव्रज्या देनी चाहिये; यदि कहेकि—नहीं छोळूँगा—तो प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये। प्रव्रज्या देकर पूछना चाहिये—क्या तुम उस बुरी धारणाको छोळोगे ?—यदि कहे कि—छोळूँगा—तो उपसम्पदा देनी चाहिये; यदि कहेकि—नहीं छोळूँगा—तो उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। उपसंपदा देकर पूछना चाहिये—क्या तुम उस बुरी धारणाको छोळोगे—यदि कहे—छोळूँगा—तो

---

[1]अपराध होनेपर संघकी ओरसे उ त्क्षि प्त करनेका दंड होता है। उस दंडको हटा लेना ओ सा र ण कहा जाता है।

ओ सा र ण करना चाहिये; यदि कहे—नहीं छोळूंगा—तो ओसारण नहीं करना चाहिये। ओसारण करके कहना चाहिये—उस बुरी धारणाको छोळो!—यदि छोळता है तो अच्छा है। यदि नहीं छोळता तो एकमत मिलनेपर फिर उत्क्षिप्त करना चाहिये। एकमत न मिलनेपर साथ भोजन और निवासमें दोष नहीं। 186

प्रथम महाक्खन्धक (समाप्त) ॥१॥

२—उपोसथ-स्कन्धक

१—उपोसथका विधान और प्रातिमोक्षकी आवृत्ति। २—उपोसथ-केन्द्रकी सीमा और उपोसथोंकी संख्या। ३—प्रातिमोक्षकी आवृत्ति और उसके पूर्वके कृत्य। ४—असाधारण अवस्थामें उपोसथ। ५—कुछ भिक्षुओंकी अनुपस्थितिमें किये गये नियम-विरुद्ध उपोसथ। ६—उपोसथमें काल, स्थान और व्यक्ति संबंधी नियम।

§ १—प्रातिमोक्षकी आवृत्ति

१—राजगृह

(१) उपोसथका विधान

उस समय बुद्ध भगवान् रा ज गृ ह के गृध्र कूट पर्वतपर रहते थे। उस समय दूसरे मतवाले (परिव्राजक) चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको इकट्ठा होकर धर्मोपदेश करते थे। उनके पास लोग धर्म सुननेके लिये जाया करते थे, (जिससे कि) वह दूसरे मतवाले परिव्राजकोंके प्रति प्रेम और श्रद्धा करते थे; और दूसरे मतवाले परिव्राजक (अपने लिये) अनुयायी पाते थे। तब मगधराज सेनिय बि म्बि सा र को एकान्तमें विचार करते वक्त चित्तमें ऐसा ख्याल पैदा हुआ—'इस समय दूसरे मतवाले परिव्राजक चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको इकट्ठा होकर धर्मोपदेश करते हैं। उनके पास लोग धर्म सुननेके लिये जाया करते हैं, (जिससे कि) वह दूसरे मतवाले परिव्राजकोंके प्रति प्रेम और श्रद्धा करते हैं; और दूसरे मतवाले परिव्राजक (अपने लिये) अनुयायी पाते हैं। क्यों न आर्य (=बौद्ध-भिक्षु) लोग भी चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको एकत्रित हों?' तब मगधराज सेनिय बिम्बिसार, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर··अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मगधराज सेनिय बिम्बिसारने भगवान्से यह कहा—"भन्ते! मुझे एकान्तमें बैठे विचार करते चित्तमें ऐसा ख्याल हुआ—'इस समय दूसरे मतवाले परिव्राजक चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको इकट्ठा होकर धर्मोपदेश करते हैं। उनके पास लोग धर्म सुननेके लिये जाया करते हैं, (जिससे कि) वह दूसरे मतवाले परिव्राजकोंके प्रति प्रेम और श्रद्धा करते हैं और दूसरे मतवाले परिव्राजक (अपने लिये) अनुयायी पाते हैं। क्यों न आर्य (=भिक्षु) लोग भी चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको एकत्रित हों?' अच्छा हो भन्ते! आर्य लोग भी चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको इकट्ठा हों।"

तब भगवान्ने मगधराज सेनिय बिम्बिसारको धार्मिक कथा कह...समुत्तेजित, संप्रहर्षित किया। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसार भगवान्की धार्मिक कथासे समुत्तेजित, संप्रहर्षित हो आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया। तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको एकत्रित होनेकी।"[1]

(२) उपोसथके दिन धर्मोपदेश

उस समय (यह सोचकर कि) भगवान्ने चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको एकत्रित होनेकी आज्ञा दी है। भिक्षु लोग चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको एकत्रित हो चुपचाप बैठते थे। जो मनुष्य धर्मोपदेश सुननेके लिये आते थे वह (यह देख) हैरान होते...थे—'कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको एकत्रित हो चुपचाप बैठते हैं, जैसे कि गूंगे भेळ! एकत्रित होकर तो धर्मोपदेश करना चाहिये था न।' भिक्षुओंने उन मनुष्योंके हैरान होनेको सुना। तब उन भिक्षुओंने भगवान्से इस बातको कहा, और भगवान्ने इसी संबंधमें, इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको एकत्रित हो धर्मोपदेश करनेकी।" 2

(३) प्रातिमोक्षकी आवृत्तिमें नियम

१—एक समय एकान्तमें स्थित विचारमग्न भगवान्के चित्तमें विचार उत्पन्न हुआ—'क्यों न, जिन शिक्षा-पदों (=भिक्षु-नियमों)को मैंने भिक्षुओंके लिये विधान किया है उन्हें लेकर प्रा ति मो क्ष की आवृत्तिकी अनुमति दूँ। यही उनका उ पो स थ कर्म हो।' तब भगवान्ने सायंकाल एकान्त चिन्तनसे उठ इसी संबंधमे, इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! आज एकान्तमें स्थित विचारमग्न मेरे चित्तमें विचार उत्पन्न हुआ—क्यों न, जिन शिक्षा-पदोंको मैंने भिक्षुओंके लिये विधान किया है उन्हें लेकर प्रा ति मो क्ष की आवृत्तिकी अनुमति दूँ।3

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, प्रातिमोक्षकी आवृत्तिकी।

"और भिक्षुओ! इस प्रकार आवृत्ति करनी चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

ज्ञ प्ति—भन्ते! संघ मेरी (बात) सुने। यदि संघ ठीक समझे तो उपोसथ करे और प्रा ति मो क्ष की आवृत्ति करे—'संघका क्या है पूर्व कृत्य? आयुष्मानो! (अपनी आचार-)शुद्धिको कहो, ०[1] प्रकट करना उसके लिये अच्छा होता है।" 4

प्रा ति मो क्ष (=पातिमोक्ख), प्राति=आदि, मुख=प्रमुख (=प्रधान)। यह भलाइयोंमें प्रमुख है, इसलिये प्रा ति मो क्ष[2] कहा जाता है।......

(४) प्रातिमोक्षकी आवृत्तिमें दिन-नियम

"भिक्षुओ! पक्षमें तीन तीन बार प्रातिमोक्ष-आवृत्ति नहीं करनी चाहिये। जो करे उसे दुक्कट-का दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पक्षमें एक बार चतुर्दशी या पंचदशीको प्रातिमोक्ष-आवृत्ति करने की।" 6

(५) प्रातिमोक्षकी आवृत्तिमें समग्र होनेका नियम

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु परिषद्के अनुसार अपनी-अपनी परिषद्के लिये प्रातिमोक्ष-आवृत्ति करते थे। भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ! परिषद्के अनुसार अपनी-अपनी परिषद्के लिये प्रातिमोक्ष-आवृत्ति नहीं करनी चाहिये। जो पाठ करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, स म ग्र (=सभी एकत्रित भिक्षु-मंडली)को उ पो स थ क र्म की।" 7

तब भिक्षुओंके मनमें यह हुआ—"भगवान्‌ने स म ग्र (=सभी एकत्रित भिक्षु-मंडली)के लिये उ पो स थ क र्म का विधान किया है, यह समग्रता क्या चीज़ है? क्या एक निवास-स्थानमें रहने वाले सभी, या सारी पृथ्वी (के भिक्षुओंको समग्र कहेंगे)?" भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, एक निवास-स्थानमें जितने (भिक्षु) हैं उन्हींको समग्र माननेकी।" 8

२—उस समय आयुष्मान् म हा क प्पि न रा ज गृ ह के म द्द कु च्छि (=मद्रकुक्षि) मृ ग दा व-में रहते थे। तब आयुष्मान् महाकप्पिनको एकान्तमें विचारमग्न होते समय ऐसा चित्तमें विचार उत्पन्न हुआ—'क्या उ पो स थ में मैं जाऊँ या नहीं जाऊँ? क्या सं घ क र्म में मैं जाऊँ या न जाऊँ? मैं तो अत्यन्त ही विशुद्ध हूँ।' तब भगवान्‌ने आयुष्मान् महाकप्पिनके मनके विचारको अपने मनसे जानकर, जैसे बलवान् पुरुष समेटी बाँहको (बिना प्रयास) पसारे या पसारी बाँहको (बिना प्रयास) समेटे, वैसे ही गृध्रकूट पर्वतपर अन्तर्ध्यान हो म द्र कु क्षि मृ ग दा व में आयुष्मान् महाकप्पिनके सामने प्रकट हुए। भगवान् बिछे आसनपर बैठे। आयुष्मान् महाकप्पिन भी भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् महाकप्पिनसे भगवान्‌ने यह कहा—

"क्या कप्पिन! एकान्तमें विचार मग्न होते समय तुम्हें ऐसा चित्तमें विचार उत्पन्न हुआ—'क्या उ पो स थ में मैं जाऊँ या नहीं जाऊँ? क्या संघकर्ममें मैं जाऊँ या नहीं जाऊँ? मैं तो अत्यन्त ही विशुद्ध हूँ'?"

"हाँ भन्ते!"

"यदि तुम (जैसे) ब्राह्मण उपोसथका सत्कार=गुरुकार नहीं करेंगे, मान=पूजा नहीं करेंगे तो कौन उपोसथका सत्कार=गुरुकार, मान=पूजा करेगा? ब्राह्मण! उपोसथमें तुम्हें जाना चाहिये, न जाना नहीं चाहिये; संघ-कर्ममें तुम्हें जाना चाहिये, न-जाना नहीं चाहिये।"

"अच्छा भन्ते!" (कह) आयुष्मान् महाकप्पिनने भगवान्‌को उत्तर दिया।

तब भगवान् आयुष्मान् महाकप्पिनको धार्मिक कथा कह...समुत्तेजितकर... जैसे बलवान् पुरुष समेटी बाँहको पसारे या पसारी बाँहको समेटे ऐसे ही म द्र कु क्षि मृ ग दा व में आयुष्मान् महा-कप्पिनके सम्मुख अन्तर्धान हो गृध्रकूट पर्वत पर प्रकट हुए।

§२—उपोसथ केन्द्रकी सीमा और उपोसथोंकी संख्या

(१) सीमा बाँधना

१—तब भिक्षुओंके मनमें यह हुआ—'भगवान्‌ने एक निवास-स्थानमें जितने (भिक्षु) हों उतनों को समग्र कहा, किन्तु एक निवास- स्थान कितनेका होता है?' भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ सीमाके निर्णय करनेकी।" 9

"भिक्षुओ ! इस प्रकार सीमाका निर्णय करना चाहिये; पहले चिह्न—पर्वत-चिह्न, पाषाण-चिह्न, वन-चिह्न, वृक्ष-चिह्न, मार्ग-चिह्न, वल्मीक (=दीमककी घरकी मिट्टी)-चिह्न, नदी-चिह्न, उदक-चिह्न—बतलाना चाहिये। चिह्नोंको बतलाकर चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क. ज्ञ प्ति—"भन्ते ! संघ मेरी (बात) सुने। चारों ओरके जितने चिह्न हैं वे बतला दिये गये। यदि संघ उचित समझे तो इन चिह्नोंवाली सीमाको एक उपोसथवाला एक निवास-स्थान स्वीकार करे—यह सूचना है।

ख. अ नु श्रा व ण—(१) "भन्ते ! संघ मेरी (बात) सुने। जितने चारों ओरके चिह्न बतलाये गये हैं, संघ इन चिह्नोंवाली सीमाको एक उपोसथवाला एक निवास-स्थान स्वीकार करता है। जिस आयुष्मान्‌को इन चिह्नोंवाली सीमाका एक उपोसथवाला एक निवास-स्थान मानना पसंद है वह चुप रहे; जिसको पसंद नही है वह बोले।...।

ग. धा र णा—"संघको यह चिह्न एक उपोसथवाले एक निवास-स्थानकी सीमाके लिये स्वीकार है, इसलिये चुप है—ऐसा इसे मैं समझता हूँ।"

२—उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु (यह सोचकर कि) भगवान्‌ने सीमा निर्णय करनेकी अनुमति दी है, बड़ी भारी चार योजन, पाँच योजन, छः योजनकी सीमानिश्चित करते थे। दूर होनेसे भिक्षु लोग उ पो स थ के लिये प्रातिमोक्षका पाठ करते वक्त भी आते थे। पाठ हो चुकनेपर भी आते थे। बीचमें भी रह जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! चार योजन, पाँच योजन, या छः योजनकी बहुत भारी सीमा नही निश्चित करनी चाहिये। जो निश्चित करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ अधिकसे अधिक तीन योजनकी सीमा निश्चित करनेकी।" 10

३—उस समय पड्वर्गीय भिक्षु नदीके परले पार तककी सीमा निश्चित करते थे। उपोसथके लिये आते वक्त भिक्षु बह जाते थे, (उनके) पात्र-चीवर भी बह जाते थे। भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! नदीके पार सीमा नही निश्चित करनी चाहिये। जो निश्चित करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, ऐसी जगह नदीके पार भी सीमा निश्चित करनेकी जहाँ हमेशा रहनेवाली नाव, या हमेशा रहनेवाला पुल हो।" 11

ख. अ नु श्रा व ण––(१) "भन्ते ! संघ मेरी सुने, संघ इस नामवाले विहारको उपोसथागार करार देता है; जिस आयुष्मान्को इस नामवाले विहारका उपोसथागार करार देना पसन्द हो वह चुप रहे; जिसको न पसन्द हो बोले।...।

ग. धा र णा––"संघको इस नामवाले विहारको उपोसथागार करार देना स्वीकृत है, इसलिये चुप है––इसे मैं ऐसा समझता हूँ।"

२––उस समय एक (भिक्षु-)आश्रममें दो उपोसथागार करार दिये गये थे। यह समझकर कि यहाँ उपोसथ होगा भिक्षु दोनों जगह एकत्रित होते थे। भगवान्से यह बात कही :––

"भिक्षुओ ! एक आवास (=आश्रम)में दो उपोसथागार नहीं करार देना चाहिये। जो करार दे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, एकको हटाकर दूसरेमें उपोसथ करनेकी। 13

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार त्याग करना चाहिये, चतुर, समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे––

क. ज्ञ प्ति––"भन्ते ! संघ मेरी सुने। यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाले उपोसथागारको त्याग दे––यह सूचना है।

ख. अ नु श्रा व ण––(१) "भन्ते ! संघ मेरी सुने। संघ इस नामवाले उपोसथागारको त्यागता है। जिस आयुष्मान्को इस नामवाले उपोसथागारका त्याग पसन्द हो वह चुप रहे; जिसको पसन्द न हो वह बोले।...

ग. धा र णा––"संघने इस नामवाले उपोसथागारको त्याग दिया। संघको पसन्द है, इसलिये चुप है––ऐसा मैं इसे समझता हूँ।"

३––उस समय एक आवासमें बहुत छोटा उपोसथागार करार दिया गया था। एक उपोसथ (के दिन) बड़ा भारी भिक्षु-संघ एकत्रित हुआ। भिक्षुओंने न करार दी हुई भूमिमें बैठकर प्रातिमोक्षको सुना। तब उन भिक्षुओंको ऐसा हुआ––'भगवान्ने विधान किया है कि उपोसथागारके लिये सम्मति लेकर उसमें उपोसथ करना चाहिये और हमने न करार दी हुई भूमिमें बैठकर प्रातिमोक्षको सुना। क्या हमारा उपोसथ करना ठीक हुआ या बेठीक ?' भगवान्से यह बात कही––

"भिक्षुओ ! चाहे करार दी हुई भूमिमें, चाहे करार न दी हुई भूमिमें प्रातिमोक्षको सुने, उपोसथका करना ठीक ही होता है। इसलिये भिक्षुओ ! संघ जितने बड़े उपोसथके बरामदेको चाहे उतने बड़े उपोसथके बरामदेको करार दे। 14

"और भिक्षुओ ! करार इस प्रकार देना चाहिये––पहले चिह्नोंको बतलाना चाहिये। चिह्नोंको बतलाकर चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे––

क. ज्ञ प्ति––"भन्ते ! संघ मेरी सुने। चारों ओर जिन चिह्नोंकी सीमा बतलाई गई है उन चिह्नोंसे घिरे उपोसथके बरामदेको यदि संघ उचित समझे तो करार दे––यह सूचना है।

ख. अ नु श्रा व ण––(१) "भन्ते ! संघ मेरी सुने––चारों ओर जिन चिह्नोंकी सीमा बतलाई गई है उन चिह्नोंसे घिरे उपोसथके बरामदेको संघ करार देता है । इन चिह्नोंसे घिरे बरामदेका उपोसथ करार देना जिस आयुष्मान्को पसंद हो वह चुप रहे, जिसको पसंद न हो वह बोले।...

ग. धा र णा––"इन चिह्नोंसे घिरे (स्थानका) उपोसथका बरामदा करार देना संघको स्वीकार है, इसलिये चुप है––इसे ऐसा मैं समझता हूँ।"

४––उस समय एक आवासमें उपोसथके दिन नये नये भिक्षु सबसे पहिले ही एकत्रित हो, स्थविर भिक्षु नहीं आ रहे हैं, यह सोच चले गये और उपोसथ अपूर्ण हो गया। भगवान्से यह बात कही––

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उपोसथके दिन सबसे पहिले स्थविर भिक्षुओंके एकत्रित होनेकी।" 15

(३) एक आवासमें उपोसथागारकी संख्या और स्थान

१—उस समय रा ज गृ ह में बहुतसे आवासोंकी एक सीमा थी, जिसके लिये भिक्षु विवाद करते थे—हमारे आवासमें उपोसथ किया जाय, हमारे आवासमें उपोसथ किया जाय। भगवान्‌से यह बात कही—

"यदि भिक्षुओ! बहुतसे आवासोंकी एक सीमा हो जिससे भिक्षु हमारे आवासमें उपोसथ किया जाय, हमारे आवासमें उपोसथ किया जाय, कहकर विवाद करें, तो भिक्षुओ! उन सभी भिक्षुओंको एक जगह एकत्रित हो उपोसथ करना चाहिये। और जहाँ स्थविर भिक्षु रहते हैं वहाँ एकत्रित हो उपोसथ करना चाहिये। (अलग) वर्ग बाँधकर संघको उपोसथ नहीं करना चाहिये। जो करे उसे दुक्कट का दोष हो।" 16

२—उस समय आयुष्मान् म हा का श्य प अं ध क वि द से रा ज गृ ह उपोसथके लिये आते हुए नदी पार करते वक्त गिर गये और उनके चीवर भीग गये। भिक्षुओंने आयुष्मान् महाकाश्यपसे पूछा—

"आवुस! किसलिये तुम्हारे चीवर भीगे हैं?"

"आवुसो! आज मैं अं ध क वि द से राजगृह उपोसथके लिये आ रहा था। रास्तेमें नदी पार करते गिर गया इसलिये मेरे चीवर भीगे हैं। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! एक उपोसथवाले एक निवास-स्थानकी जो सीमा संघने करार दी है संघ उस सीमाको तीन चीवरोंका नियम न रखकर करार दे। 17

और भिक्षुओ! इस प्रकार करार देना चाहिये. चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क. ज्ञ प्ति—"भन्ते! संघ मेरी सुने। संघने जो एक उपोसथवाले एक निवास-स्थानकी सीमा करार दी है, यदि संघ उचित समझे तो वह उस सीमाको तीन चीवरका नियम न रखकर करार दे—यह सूचना है।

ख. अ नु श्रा व ण—(१) "भन्ते! संघ मेरी सुने। संघने जो एक उपोसथवाले एक निवास-स्थानकी सीमा करार दी है उस सीमाको संघ तीन चीवरका नियम न रखकर करार देता है। जिस आयुष्मान्‌को इस सीमामें तीन चीवरका नियम न रहनेका करार देना पसंद हो वह चुप रहे; जिसको पसंद न हो बोले।...

ग. धा र णा—"संघको इस सीमाका तीन चीवरका नियम न रहनेका करार देना स्वीकृत है इसलिये चुप है—इसे मैं ऐसा समझता हूँ।"

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार करार देना चाहियें। चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करें—

क. ज्ञ प्ति—"भन्ते ! संघ मेरी सुने। संघने जो एक उपोसथवाले एक निवासस्थानकी सीमा करार दी है यदि संघ उचित समझे तो गाँव और गाँवके टोलेके अपवादके साथ उस सीमाको तीन चीवरोंका नियम लागू न होना करार दे'—यह सूचना है।

ख. अ नु श्रा व ण—"भन्ते ! संघ मेरी सुने—संघने जो एक उपोसथवाले एक निवास-स्थानकी सीमा करार दी थी गाँव और गाँवके टोलेके अपवादके साथ संघ उस सीमामें तीन चीवरोंका नियम न होना करार देता है। जिस आयुष्मान्‌को गाँव और गाँवके टोलेके अपवादके साथ इस सीमामें तीन चीवरका नियम न होना, करार देना पसंद हो वह चुप रहे, जिसे पसंद न हो वह बोले।...।

ग. धा र णा—"संघको गाँव और गाँवके टोलेके अपवादके साथ उस सीमाका तीन चीवरोंका नियम न रखना करार देना पसन्द है, इसीलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।"

(५) सीमा और चीवरके नियम

१—"भिक्षुओ ! सीमाके करार देते वक्त पहिले एक निवासकी सीमा करार देनी चाहिये। फिर तीन चीवरके नियम न रहनेको करार देना चाहिये। भिक्षुओ ! सीमाका त्याग करते वक्त पहले तीन चीवरके नियम न रहनेको त्यागना चाहिये, पीछे (एक निवास-स्थानकी) सीमाको त्यागना चाहिये। 19

"और भिक्षुओ ! तीन चीवरके नियम न रहनेको इस प्रकार त्यागना चाहिये, चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क. ज्ञ प्ति—"भन्ते ! संघ मेरी सुने। जो वह संघने तीन चीवरके नियम न रहनेको करार दिया था, यदि संघ उचित समझे तो उसे त्याग दे—यह सूचना है।

ख. अ नु श्रा व ण—"भन्ते ! संघ मेरी सुने। जो वह संघने तीन चीवरके नियम न होनेको करार दिया था संघ उसे...त्यागता है। जिस आयुष्मान्‌को यह तीन चीवरोंके नियम न रहनेका त्याग पसंद है वह चुप रहे; जिसको पसंद नहीं है वह बोले।...

ग. धा र णा—"संघको...पसंद है, इसलिये चुप है—इसे मैं ऐसा समझता हूँ।"

२—"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (एक निवास-स्थानकी) सीमाको त्यागना चाहिये, चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क. ज्ञ प्ति—"भन्ते ! संघ मेरी सुने। संघने जो एक उपोसथवाले निवास-स्थानकी सीमा करार दी थी, यदि संघ उचित समझे तो संघ उस सीमाको त्याग दे—यह सूचना है।

ख. अ नु श्रा व ण—"भन्ते ! संघ मेरी सुने। संघने जो वह एक उपोसथवाले एक निवास-स्थान की सीमा करार दी थी, संघ उस सीमाको त्यागता है। जिस आयुष्मान्‌को इस...सीमाका त्याग पसंद है वह चुप रहे, जिसको पसंद नहीं है वह बोले।...।

ग. धा र णा—"संघने उस...सीमाको त्याग दिया, संघको यह पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।"

३—"भिक्षुओ ! सीमाके न करार देनेपर, न स्थापित किये जानेपर (भिक्षु) जिस गाँव या कस्बेका आश्रय लेकर रहता है उस गाँव या कस्बेकी जो सीमा है वही एक उपोसथवाला एक निवास-स्थान है। गाँव न होनेपर भिक्षुओ ! जंगलके चारों ओर जो सात अवकाश हैं वही वहाँ एक उपोसथ वाले एक निवास-स्थानकी सीमा हैं। भिक्षुओ ! सभी नदियाँ असीम हैं, सभी समुद्र असीम हैं, सभी स्वाभाविक सरोवर असीम है। भिक्षुओ ! नदी, समुद्र, या स्वाभाविक सरोवरमें मझोले (कदके) पुरुषके चारों ओर जो पानीका घिराव होता है वही वहाँ एक उपोसथवाले एक निवास-स्थान की सीमा है।" 20

(६) सीमाके भीतर दूसरी सीमा नहीं

१—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु सीमाके भीतर सीमा डालते थे। भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! जिनकी सीमा पहले करार दी गई है उनका वह काम धर्मानुसार अटूट और यथार्थ है। भिक्षुओ ! जिनकी सीमा पीछे करार दी गई है उनका वह काम धर्म-विरुद्ध, टूटने लायक, अयथार्थ है। भिक्षुओ ! सीमाके भीतर सीमा न डालनी चाहिये। जो डाले उसे दु क्क ट का दोष हो।" 21

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सीमामें सीमा लगाते थे। भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! जिनकी सीमा पहले करार दी गई है उनका काम धर्मानुकूल, अटूट, यथार्थ है। जिनकी सीमा पीछे करार दी गई उनका काम धर्मविरुद्ध, टूटने लायक, अयथार्थ है। भिक्षुओ ! सीमामें सीमा नहीं लगानी चाहिये। जो लगाये उसे दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, सीमाको करार देते वक्त बीचमें फासिला रखकर सीमा करार देनेकी।" 22

(७) उपोसथोंकी संख्या

१—उस समय भिक्षुओंके (मनमें) ऐसा हुआ—कितने उपोसथ हैं? भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! चतुर्दशी, पंचदशी (=पूर्णमासी)के यह दो उपोसथ हैं, ...। 23

२—भिक्षुओंके (मनमें) यह हुआ—'कितने उपोसथ कर्म हैं?' भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! यह चार उपोसथ कर्म है : (१) (संघके कुछ) भागका धर्म-विरुद्ध (=नियम विरुद्ध) उपोसथ कर्म करना; (२) समग्र (संघ)का धर्म-विरुद्ध उपोसथ कर्म करना; (३) भागका धर्मानुकूल उपोसथ करना; (४) समग्रका धर्मानुकूल उपोसथ कर्म करना। उनमें भिक्षुओ ! जो यह धर्म-विरुद्ध (कुछ) भागका उपोसथ कर्म है, भिक्षुओ ! इस प्रकारका उपोसथ कर्म नहीं करना चाहिये। भिक्षुओ ! मैंने इस प्रकारके उपोसथकर्म (करने)की अनुमति नहीं दी है। और भिक्षुओ ! जो यह धर्म-विरुद्ध समग्रका उपोसथ कर्म है, भिक्षुओ ! इस प्रकारके उपोसथ कर्मको नहीं करना चाहिये। मैंने इस प्रकारके उपोसथ कर्मकी अनुमति नहीं दी है। और भिक्षुओ ! जो यह धर्मानुकूल भागका उपोसथ कर्म है, भिक्षुओ ! इस प्रकारके उपोसथ कर्मको नहीं करना चाहिये। मैंने इस प्रकारके उपोसथ कर्मकी अनुमति नहीं दी। उनमें भिक्षुओ ! जो यह धर्मानुकूल समग्र(संघ)का उपोसथ कर्म है, भिक्षुओ ! इस प्रकारके उपोसथ कर्मको करना चाहिये। मैंने इस प्रकारके उपोसथ कर्मकी अनुमति दी है। इसलिये भिक्षुओ ! जो यह धर्मानुकूल समग्रका उपोसथ कर्म है उसे करूँगा—ऐसा भिक्षुओ ! [illegible] सीखना चाहिये।" 24

§३—प्रातिमोक्षकी आवृत्ति और पूर्वके कृत्य

(१) आवृत्तिमें क्रम

(३) निदानका पाठ करके और चार पा रा जि कों का पाठ करके और तेरह सं घा दि से सों का पाठ करके वाकीको स्मृतिसे सुनाना चाहिये; यह तीसरा प्रातिमोक्षका पाठ है; (४) निदानका पाठ करके, चार पाराजिकोंका पाठ करके, तेरह संघादिसेसोंका पाठ करके, दो अ नि य तों का पाठ करके वाकीको सुने अनुसार सुनाना चाहिये, यह चौथा प्रातिमोक्षका पाठ है। (५) और विस्तारके साथ पाँचवाँ। भिक्षुओ! यह पाँच प्रातिमोक्षके पाठ हैं।" 25

उस समय भगवान्‌ने प्रातिमोक्षके पाठको संक्षेपसे कहनेकी अनुमति दी थी, इस-लिये (भिक्षु) सर्वदा संक्षेपसे प्रातिमोक्षका पाठ करते थे। भगवान्‌से यह वात कही—

"भिक्षुओ! संक्षेपसे प्रातिमोक्षका पाठ नहीं करना चाहिये। जो पाठ करे उसे दु क्क ट का दोष हो।" 26

(२) आपत्कालमें संक्षिप्त आवृत्ति

१—उस समय को स ल देशके एक आवासमें उपोसथके दिन शवरों (के उपद्रव)का भय था (इसलिये) भिक्षु विस्तारके साथ प्रातिमोक्षका पाठ नहीं कर सके। भगवान्‌से यह वात कही—

"भिक्षुओ अनुमति देता हूँ विघ्न होनेपर संक्षेपसे प्रातिमोक्षके पाठ करनेकी।" 27

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु वाधा न होनेपर भी संक्षेपसे प्रातिमोक्षका पाठ करते थे। भगवान् से यह वात कही—

"भिक्षुओ! वाधा न होनेपर संक्षेपसे प्रातिमोक्षका पाठ नहीं करना चाहिये। जो पाठ करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ वाधा होनेपर संक्षेपसे प्रातिमोक्षके पाठ करनेकी। वह वाधाएँ यह हैं—(१) राज-वाधा, (२) चोर-वाधा, (३) अग्नि-वाधा, (४) उदक-वाधा, (५) मनुष्य-वाधा, (६) अमनुष्य-बाधा, (७) हिंसक-जंतु-वाधा, (८) सरीसृप-वाधा, (९) जीवनकी वाधा, (१०) ब्रह्मचर्यकी वाधा,—भिक्षुओ! ऐसे विघ्नोंके होनेपर संक्षेपसे प्रातिमोक्षके पाठकी अनुमति देता हूँ; और वाधा न होनेपर विस्तारसे।" 28

(३) याचना करनेपर उपदेश देना

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु संघके मध्यमें विना याचना किये ही धर्मोपदेश करते थे। भगवान्‌से यह वात कही—

"भिक्षुओ! याचना किये विना संघके वीचमें धर्मोपदेश नहीं करना चाहिये। जो करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ स्थविर भिक्षुको स्वयं उपदेश करनेकी या दूसरेको (इसके लिये) प्रार्थना करनेकी।" 29

(४) सम्मति होनेपर विनय पूछना

१—उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु विना सम्मतिके संघके वीचमें विनय पूछते थे। भगवान्‌से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! विना सम्मतिके संघके वीचमें विनयको नहीं पूछना चाहिये। जो पूछे उसको दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सम्मति पाये (भिक्षु)को संघके वीच विनय पूछनेकी। 30

"और भिक्षुओ! इस प्रकार सम्मति लेनी चाहिये—स्वयं अपने लिये सम्मति लेनी चाहिये या दूसरेको दूसरेके लिये सम्मति लेनी चाहिये। कैसे स्वयं अपने लिये सम्मति लेनी चाहिये?—चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—भन्ते! संघ मेरी सुने। यदि संघ उचित समझे तो मैं इस नाम

वाले भिक्षुसे विनय पूछूँ। इस प्रकार स्वयं अपने लिये सम्मति लेनी चाहिये। कैसे दूसरेको दूसरेके लिये सम्मति लेनी चाहिये? चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे। भन्ते! संघ मेरी सुने—यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाला (भिक्षु), इस नामवाले (भिक्षु)से विनय पूछे। इस प्रकार दूसरेको दूसरेके लिये सम्मति लेनी चाहिये।"

२—उस समय अच्छे भिक्षु (संघकी) सम्मतिसे संघके बीचमें विनय पूछते थे। षड्वर्गीय भिक्षुओंको प्रतिकूलता होती थी, नाराजगी होती थी, (और वह) वध करनेका डर दिखाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, संघके बीचमें (उसकी) सम्मतिसे परिषद्‌को देखकर व्यक्तिकी तुलना करके विनय पूछनेकी।" 31

३—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु संघके बीचमें सम्मतिके बिना ही विनयका उत्तर देते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! सम्मति न पाया संघके बीचमें विनयका उत्तर न देदे। जो उत्तर दे उसको दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सम्मति-प्राप्तको संघके बीचमें विनयका उत्तर देनेकी।" 32

"और भिक्षुओ! इस प्रकार संमंत्रणा करनी चाहिये—स्वयं अपने लिये संमंत्रणा करनी चाहिये या दूसरेको दूसरेके लिये मंत्रणा करनी चाहिये। कैसे भिक्षुओ! स्वयं अपने लिये संमंत्रणा करनी चाहिये? चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—पूज्य संघ मेरी सुने। यदि संघ उचित समझे तो मैं इस नामवाले (भिक्षु) द्वारा विनय पूछनेपर उत्तर दूँ। इस प्रकार स्वयं अपने लिये संमंत्रणा करनी चाहिये। कैसे भिक्षुओ! दूसरेको दूसरेके लिये संमंत्रणा करनी चाहिये?—'चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—पूज्य संघ मेरी सुने। यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाला (भिक्षु) इस नामवाले भिक्षुद्वारा विनय पूछनेपर उत्तर दे।' इस प्रकार दूसरेको दूसरेके लिये संमंत्रणा करनी चाहिये।"

४—उस समय भले भिक्षु सम्मति पाकर संघके बीचमें विनयका उत्तर देते थे। षड्वर्गीय भिक्षुओं-को प्रतिकूलता और नाराजगी होती थी, (और वह) वध करनेका डर दिखलाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ संघके बीचमें सम्मति-प्राप्त द्वारा परिषद्‌को देख भालकर व्यक्ति-की तुलनाकर विनयका उत्तर देनेकी।" 33

(५) अवकाश लेकर दोषारोप करना

नहीं करना चाहिये, जो कराये उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ व्यक्तिको तोलकर अवकाश करानेकी।"36

(६) नियम-विरुद्ध कामके लिये फटकार

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु संघके बीचमें अधर्मका (=सभाके नियमके विरुद्ध) काम करते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अधर्मका काम नहीं करना चाहिये। जो करे उसे दुक्कटका दोष हो।"37

तिसपर भी अधर्मका काम करते ही थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अधर्मका काम करनेपर धिक्कारनेकी।" 38

२—उस समय भले भिक्षु षड्वर्गीय भिक्षुओंको अधर्मके काम करनेपर धिक्कारते थे। षड्‌वर्गीय भिक्षु द्रोह करते नाराज़ होते थे और वध करनेकी धमकी देते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ देखेको प्रगट करनेकी।" 39

३—उन्हीं षड्वर्गीय (भिक्षुओं)के पास देखेको प्रकट करते थे (इसपर) षड्वर्गीय भिक्षु द्रोह करते, नाराज होते और वधकी धमकी देते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चार पाँच (व्यक्तियों) द्वारा धिक्कारनेकी और दो तीन द्वारा देखेको प्रकट करनेकी; और एकको 'यह मुझे पसन्द नहीं है' ऐसा अधिष्ठान करनेकी।" 40

(७) प्रातिमोक्षको ध्यानसे सुनाना

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु संघके बीचमें प्रातिमोक्षका पाठ करते हुए जानबूझकर नहीं सुनाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! प्रातिमोक्ष पाठ करनेवालेको जानबूझकर-न-सुनाना नहीं करना चाहिये। जो न सुनाये उसे दुक्कटका दोष होता है।" 41

(८) प्रातिमोक्षकी आवृत्तिमें स्वर-नियम

उस समय आयुष्मान् उदायि संघके प्रातिमोक्ष-पाठ करनेवाले थे। उनका स्वर कौवे जैसा था। तब आयुष्मान् उदायि को ऐसा हुआ—'भगवान्‌ने विधान किया है प्रातिमोक्ष-पाठ करने वालेको (जोरसे) सुनानेका; और मैं काक जैसे स्वरवाला हूँ। मुझे कैसे करना चाहिये?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, प्रातिमोक्ष-पाठ करनेवालेको (जोरसे) सुनानेके लिये कोशिश करनेकी, कोशिश करनेवालेको दोष नहीं।" 42

(९) कहाँ और कब प्रातिमोक्षकी आवृत्ति निषिद्ध है

१—उस समय देवदत्त गृहस्थोंसे युक्त परिषद्‌में प्रातिमोक्ष-पाठ करता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! गृहस्थ-युक्त परिषद्‌में प्रातिमोक्ष-पाठ नहीं करना चाहिये। जो पाठ करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 43

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु बिना कहे ही संघके बीचमें प्रातिमोक्षका पाठ करते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! बिना प्रार्थना किये संघके बीचमें प्रातिमोक्ष-पाठ नहीं करना चाहिये। जो पाठ करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ स्थविरके आश्रयसे प्रातिमोक्षकी।" 44

अन्यतीर्थिक भाणवार समाप्त ॥१॥

२—चोदनावत्थु

तब भगवान् राजगृहमें इच्छानुसार विहार करके चोदनावत्थुकी ओर विचरनेके लिये चल पळे। क्रमशः विचरते जहाँ चोदनावत्थु था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् चोदनावत्थु (=चोदना-वस्तु)में विहार करते थे।

(१०) प्रातिमोक्षकी आवृत्ति कैसा भिक्षु करे

१—उस समय एक आवासमें बहुतसे भिक्षु रहते थे। वहाँका स्थविर (=वृद्ध) भिक्षु मूर्ख अजान था। वह उपोसथ या उपोसथ-कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठको नहीं जानता था। तब उन भिक्षुओं(के मनमें) यह हुआ—'भगवान्ने स्थविर (=वृद्ध)के आश्रयसे प्रातिमोक्षका विधान किया है। और यह हमारा स्थविर मूर्ख, अजान है। यह उपोसथ या उपोसथ कर्म, प्रातिमोक्ष या प्राति-मोक्ष-पाठको नहीं जानता। हमें कैसे करना चाहिये?' भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, वहाँ जो भिक्षु चतुर, समर्थ हो, उसके आश्रयमें प्रातिमोक्ष हो।" 45

२—उस समय उपोसथ के दिन एक आवासमें बहुतसे मूर्ख, अजान भिक्षु रहते थे; वह उपोसथ या उपोसथ-कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठको नहीं जानते थे। उन्होंने स्थविरसे प्रार्थना की—'भन्ते! स्थविर प्रातिमोक्ष-पाठ करें।' उसने उत्तर दिया—'आवुसो! मेरे लिये (यह) नहीं है।' दूसरे स्थविरसे प्रार्थना की—०। तीसरे स्थविरसे प्रार्थना की—"भन्ते! स्थविर प्रातिमोक्ष-पाठ करें।' उसने भी उत्तर दिया—'आवुसो! मेरे लिये (यह) नहीं है।' इसी प्रकारसे संघके (सबसे) नये (भिक्षु)तकसे प्रार्थना-की— 'आयुष्मान् प्रातिमोक्ष-पाठ करें।' उसने भी उत्तर दिया—'भन्ते! मेरे लिये (यह) नहीं है।' भगवान्से यह बात कही—

'यदि भिक्षुओ! एक आवासमें बहुतसे मूर्ख अजान भिक्षु रहते हैं और वह उपोसथ या उपो-सथ-कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठ नहीं जानते, वह स्थविर (=भिक्षु)से प्रार्थना करते हैं—'भन्ते! स्थविर प्रातिमोक्ष-पाठ करें' और वह ऐसा कहे—'मेरे लिये यह करना नहीं है।' ० इसी प्रकार संघके (सबसे) नये (भिक्षु)से प्रार्थना करते हैं—'आयुष्मान्! प्रातिमोक्षका पाठ करें।' वह भी ऐसा कहे—'यह मेरे लिये करना नहीं है।' तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको एक भिक्षु यह कहकर चारों ओर आवासमें भेजना चाहिये—जा आवुस! संक्षेप या विस्तारसे प्रातिमोक्षको याद करके आजा।"

तब भिक्षुओंको ऐसा हुआ 'किसके द्वारा भेजना चाहिये?' भगवान्ने कहा।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ स्थविर भिक्षुको नये भिक्षुके लिये आज्ञा देनेकी।" 46

३—स्थविरके आज्ञा देनेपर नये भिक्षु नहीं जाते थे। भगवान्ने यह बात कही—

"भिक्षुओ! स्थविरके आज्ञा देनेपर नीरोग (भिक्षु)को जानेसे इनकार नहीं करना चाहिये। जो जानेसे इनकार करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 47

नहीं करना चाहिये, जो कराये उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ व्यक्तिको तोलकर अवकाश करानेकी।"36

(६) नियम-विरुद्ध कामके लिये फटकार

१—उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु संघके बीचमें अधर्मका (=सभाके नियमके विरुद्ध) काम करते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अधर्मका काम नहीं करना चाहिये। जो करे उसे दुक्कटका दोष हो।"37

तिसपर भी अधर्मका काम करते ही थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ अधर्मका काम करनेपर धिक्कारनेकी।" 38

२—उस समय भले भिक्षु षड्वर्गीय भिक्षुओंको अधर्मके काम करनेपर धिक्कारते थे । षड्-वर्गीय भिक्षु द्रोह करते नाराज़ होते थे और वध करनेकी धमकी देते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ देखेको प्रगट करनेकी।" 39

३—उन्हीं षड्वर्गीय (भिक्षुओं)के पास देखेको प्रकट करते थे (इसपर) षड्वर्गीय भिक्षु द्रोह करते, नाराज होते और वधकी धमकी देते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ चार पाँच (व्यक्तियों) द्वारा धिक्कारनेकी और दो तीन द्वारा देखेको प्रकट करनेकी; और एकको 'यह मुझे पसन्द नहीं है' ऐसा अधिष्ठान करनेकी।" 40

(७) प्रातिमोक्षको ध्यानसे सुनाना

उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु संघके बीचमें प्रातिमोक्षका पाठ करते हुए जानबूझकर नहीं सुनाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! प्रातिमोक्ष पाठ करनेवालेको जानबूझकर-न-सुनाना नहीं करना चाहिये । जो न सुनाये उसे दुक्कटका दोष होता है।" 41

(८) प्रातिमोक्षकी आवृत्तिमें स्वर-नियम

उस समय आयुष्मान् उ दा यि संघके प्रातिमोक्ष-पाठ करनेवाले थे। उनका स्वर कौवे जैसा था। तब आयुष्मान् उ दा यि को ऐसा हुआ—'भगवान्‌ने विधान किया है प्रातिमोक्ष-पाठ करने वालेको (जोरसे) सुनानेका; और मैं काक जैसे स्वरवाला हूँ। मुझे कैसे करना चाहिये ?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, प्रातिमोक्ष-पाठ करनेवालेको (जोरसे) सुनानेके लिये कोशिश करनेकी, कोशिश करनेवालेको दोष नहीं।" 42

(९) कहाँ और कब प्रातिमोक्षकी आवृत्ति निषिद्ध है

१—उस समय देवदत्त गृहस्थोंसे युक्त परिषद्‌में प्रातिमोक्ष-पाठ करता था । भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! गृहस्थ-युक्त परिषद्‌में प्रातिमोक्ष-पाठ नहीं करना चाहिये। जो पाठ करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 43

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु विना कहे ही संघके बीचमें प्रातिमोक्षका पाठ करते थे। भग-वान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! विना प्रार्थना किये संघके बीचमें प्रातिमोक्ष-पाठ नहीं करना चाहिये। जो पाठ करे उसे दुक्कटका दोष हो । भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ स्थविरके आश्रयसे प्रातिमोक्षकी।" 44

अन्यतीर्थिक भाणवार समाप्त ॥१॥

२—चोदनावत्थु

तब भगवान् रा ज गृ ह में इच्छानुसार विहार करके चो द ना व त्थु की ओर विचरनेके लिये चल पळे। क्रमशः विचरते जहाँ चोदनावत्थु था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् चोदनावत्थु (=चोदना-वस्तु)में विहार करते थे।

(१०) प्रातिमोक्षकी आवृत्ति कैसा भिक्षु करे

१—उस समय एक आवासमें बहुतसे भिक्षु रहते थे। वहाँका स्थविर (=वृद्ध) भिक्षु मूर्ख अजान था। वह उ पो स थ या उपोसथ-कर्म, प्रा ति मो क्ष या प्रातिमोक्ष-पाठको नहीं जानता था। तब उन भिक्षुओं(के मनमें) यह हुआ—'भगवान्ने स्थविर (=वृद्ध)के आश्रयमें प्रातिमोक्षका विधान किया है। और यह हमारा स्थविर मूर्ख, अजान है। यह उपोसथ या उपोसथ कर्म, प्रातिमोक्ष या प्राति-मोक्ष-पाठको नहीं जानता। हमें कैसे करना चाहिये?' भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, वहाँ जो भिक्षु चतुर, समर्थ हो, उसके आश्रयमें प्रातिमोक्ष हो।"45

२—उस समय उपोसथ के दिन एक आवासमें बहुतसे मूर्ख, अजान भिक्षु रहते थे; वह उपोसथ या उपोसथ-कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठको नहीं जानते थे। उन्होंने स्थविरसे प्रार्थना की—'भन्ते! स्थविर प्रातिमोक्ष-पाठ करें।' उसने उत्तर दिया—'आवुसो! मेरे लिये (यह) नहीं है।' दूसरे स्थविरसे प्रार्थना की—०। तीसरे स्थविरसे प्रार्थना की—"भन्ते! स्थविर प्रातिमोक्ष-पाठ करें।' उसने भी उत्तर दिया—'आवुसो! मेरे लिये (यह) नहीं है।' इसी प्रकारसे संघके (सबसे) नये (भिक्षु)तकसे प्रार्थना-की— 'आयुष्मान् प्रातिमोक्ष-पाठ करें।' उसने भी उत्तर दिया—'भन्ते! मेरे लिये (यह) नहीं है।' भगवान्से यह बात कही—

'यदि भिक्षुओ! एक आवासमें बहुतसे मूर्ख अजान भिक्षु रहते हैं और वह उपोसथ या उपो-सथ-कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठ नहीं जानते, वह स्थविर (=भिक्षु)से प्रार्थना करते हैं—'भन्ते! स्थविर प्रातिमोक्ष-पाठ करें' और वह ऐसा कहे—'मेरे लिये यह करना नहीं है।' ० इसी प्रकार संघके (सबसे) नये (भिक्षु)से प्रार्थना करते हैं—'आयुष्मान्! प्रातिमोक्षका पाठ करें।' वह भी ऐसा कहे—'यह मेरे लिये करना नहीं है।' तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको एक भिक्षु यह कहकर चारों ओर आवासमें भेजना चाहिये—जा आवुस! संक्षेप या विस्तारसे प्रातिमोक्षको याद करके आजा।"

तब भिक्षुओंको ऐसा हुआ 'किसके द्वारा भेजना चाहिये?' भगवान्से कहा।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ स्थविर भिक्षुको नये भिक्षुके लिये आज्ञा देनेकी।" 46

३—स्थविरके आज्ञा देनेपर नये भिक्षु नहीं जाते थे। भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ! स्थविरके आज्ञा देनेपर नीरोग (भिक्षु)को जानेसे इनकार नहीं करना चाहिये। जो जानेसे इनकार करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 47

३—राजगृह

(११) काल और अंककी विद्या सीखनी चाहिये

१—तब भगवान् चो द ना व त्थु में इच्छानुसार विहार करके फिर राजगृह चले आये। उस समय भिक्षाटन करते भिक्षुओंसे लोग पूछते थे—'भन्ते! पक्षकी (आज) कौन (तिथि) है?' भिक्षु ऐसा बोलते थे—'आवुसो! हमें मालूम नहीं।' लोग हैरान...होते थे—'यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण पक्ष-की गणना मात्रको भी नहीं जानते। यह और भली बात क्या जानेंगे!' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पक्षकी गणना सीखनेकी।" 48

तब भिक्षुओंके (मनमें) यह हुआ—'किनको पक्ष-गणना सीखनी चाहिये?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सबको ही पक्ष-गणना सीखनेकी।"49

२—उस समय लोग भिक्षाटन करते भिक्षुओंसे पूछते थे—'भन्ते! भिक्षु कितने हैं?' भिक्षु ऐसा बोलते थे—'आवुसो! हमें मालूम नहीं।' लोग हैरान...होते थे—'यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण एक दूसरेको भी नहीं जानते और यह क्या किसी भली बातको जानेंगे!' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भिक्षुओंके गिननेकी।" 50

३—तब भिक्षुओंके (मनमें) यह हुआ—'भिक्षुओंकी गणना अब करनी चाहिये?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उपोसथके दिन नाम लेकर या शलाका बाँटकर गिन्ती करनेकी।" 51

(१२) उपोसथके समयकी पूर्वसे सूचना

१—उस समय आज उपोसथ है—यह न जानकर दूरके गाँवको भिक्षाटनके लिये चले जाते थे और वह (उपोसथमें) प्रातिमोक्षके पाठ करते वक्त भी पहुँचते थे, पाठके समाप्त हो जानेपर भी पहुँचते थे।—भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, आज उपोसथ है, इसको बतलानेकी।" 52

२—तब भिक्षुओंके (मनमें) यह हुआ—'किसको कहना चाहिये?'—भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अधिक बूढ़े स्थविर भिक्षुको बतलानेकी।" 53

३—उस समय एक अधिक वृद्ध स्थविर याद नहीं रखता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भोजनके वक्त बतलानेकी।" 54

४—भोजनके समय भी नहीं याद रखता। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, जिस समय याद हो उसी समय बतलानेकी।" 55

(१३) उपोसथागारकी सफाई आदि

१—(क) उस समय एक आवासमें उपोसथागार मलिन रहता था। नये आनेवाले भिक्षु हैरान...होते थे—'क्यों भिक्षु उपोसथागारमें झाळू नहीं देते!' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उपोसथागारमें झाळू देनेकी।" 56

(ख) तब भिक्षुओंको ऐसा हुआ—'किसे उपोसथागारमें झाळू देना चाहिये?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, स्थविर भिक्षुको नये भिक्षुके लिये आज्ञा देनेकी।" 57

(ग) स्थविर भिक्षुके आज्ञा देनेपर नये भिक्षु नहीं झाळू देते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! स्थविर भिक्षुके आज्ञा देनेपर नीरोग होते झाळू देनेसे इनकार नहीं करना चाहिये। जो झाळू देनेसे इनकार करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 58

२—(क) उस समय उपोसथागारमें आसन बिछा नहीं होता था। भिक्षु भूमिपर ही बैठ जाते थे, जिससे शरीर भी, चीवर भी मैले होते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, उपोसथागारमें आसन बिछानेकी।" 59

(ख) तब भिक्षुओंको ऐसा हुआ—'उपोसथागारमें किसे आसन बिछाना चाहिये?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, स्थविर भिक्षुको नये भिक्षुके लिये आज्ञा देनेकी।" 60

(ग) स्थविर भिक्षुके आज्ञा देनेपर भी नये भिक्षु नहीं मानते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! स्थविर भिक्षुके आज्ञा देनेपर नीरोग होते इनकार नहीं करना चाहिये। जो इनकार करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 61

३—(क) उस समय उपोसथागारमें दीपक नहीं होता था। भिक्षु अंधकारमें शरीरको भी चहल देते थे, चीवरको भी चहल देते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, उपोसथागारमें दीपक जलानेकी।" [1] ० । 62

§४—असाधारण अवस्थामें उपोसथ

(१) लम्बी यात्राके लिये आज्ञा

उस समय बहुतसे मूर्ख अजान भिक्षुओंने लंबी यात्राको जाते वक्त आचार्य उपाध्यायसे नहीं पूछा। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! यहाँ बहुतसे मूर्ख अजान भिक्षु लम्बी यात्रा जाते वक्त आचार्य उपाध्यायसे नहीं पूछते। भिक्षुओ! उन्हें आचार्य उपाध्यायसे पूछना चाहिये कि वह कहाँ जायँगे किसके साथ जायँगे। भिक्षुओ! यदि वह मूर्ख अजान भिक्षु दूसरे मूर्ख अजान भिक्षुओंको साथी बतलायें तो आचार्य उपाध्यायोंको अनुमति नहीं देनी चाहिये। यदि अनुमति दें तो दुक्कटका दोष हो; और यदि भिक्षुओ! वह मूर्ख अजान भिक्षु आचार्य उपाध्यायकी अनुमति विना ही चले जायँ तो उन्हें दुक्कटका दोष हो।" 63

(२) प्रातिमोक्ष जाननेवाला भिक्षु न होनेपर आवासमें नहीं रहना चाहिये

"(क) यदि भिक्षुओ! एक आवासमें बहुतसे मूर्ख अजान भिक्षु रहते हैं और वह उपोसथ या उपोसथ कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठ नहीं जानते, वहाँ दूसरे बहुश्रुत (=विद्वान्), आ ग म (=बुद्ध उपदेश)को जाननेवाले हैं, ध र्म ध र (=बुद्धके सुत्तोंको जाननेवाले), विनयधर (=भिक्षु नियमोंको याद रखनेवाले), मा त्रि का ध र (=सुत्तोंमें आई दर्शन-संबंधी पंक्तियोंको याद रखनेवाले), पंडित, चतुर, मेधावी, लज्जाशील, संकोची और सीख चाहनेवाले भिक्षु आवें तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको उस भिक्षुका संग्रह करना चाहिये=अनुग्रह करना चाहिये, (आवश्यक वस्तुएँ) प्रदान करनी चाहिए। (स्नान) चूर्ण, मिट्टी, दतौन, मुँह धोनेके पानीसे सेवा करनी चाहिये। यदि संग्रह=अनुग्रह, (आवश्यक वस्तु) प्रदान, चूर्ण, मिट्टी, दतौन, मुँह धोनेका पानी द्वारा सेवा न करे तो दुक्कटका दोष हो। (ख) यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे मूर्ख अजान भिक्षु रहते हैं और वह उपोसथ या उपोसथ कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठको नहीं जानते तो भिक्षुओ उन भिक्षुओंको आवासके चारों ओर (यह कहकर) एक भिक्षुको भेजना चाहिये—आवुस! जा संक्षेप या विस्तारसे प्रातिमोक्षको सीख कर चला आ। इस प्रकार यदि हो जाय तो अच्छा नहीं तो उन सभी भिक्षुओंको, जहाँ उपोसथ या उपोसथ-कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठ जाननेवाले रहते हैं उस आवासमें चला जाना चाहिये; यदि न चले जायँ तो दुक्कटका दोष हो। (ग) यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें बहुतसे मूर्ख अजान भिक्षु वर्षावास करते हैं, वह उपोसथ या उपोसथ-कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठ नहीं जानते, तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको (अपनेमेंसे) एक भिक्षुको (यह कहकर) आवासके चारों ओर भेजना चाहिये—जा आवुस, संक्षेप या विस्तारसे प्रातिमोक्षको सीख आ। इस प्रकार यदि मिले तो अच्छा, नहीं तो भिक्षुओ! उन्हें उस आवासमें वर्षावास नहीं करना चाहिये; यदि वर्षावास करें तो उन्हें दुक्कटका दोष हो।" 64

---

[1] आसन और झाड़ू देनेके प्रकरणके समानही यहाँ भी पाठ है।

(३) उपोसथ या संघकर्ममें अनुपस्थित व्यक्तिका कर्तव्य

१—तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! (सब लोग) जमा हो जाओ, संघ उपोसथ करेगा।"

ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! एक भिक्षु रोगी है। वह नहीं आया है।"

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, रोगी भिक्षुको (अपनी) शुद्धि (की बात) भेजनेकी।" 65

"और भिक्षुओ! (शुद्धिकी बात) इस प्रकार भेजनी चाहिये—उस रोगीको एक भिक्षुके पास जाकर उ त्त रा सं ग को एक कंधेपर कर, उकळूँ बैठ, हाथ जोळ ऐसा कहना चाहिये—'शुद्धि देता हूँ, मेरी शुद्धिको ले जाओ, मेरी शुद्धिको (संघमें जाकर) कहना।' इस प्रकार कायासे सूचित करे, वचनसे सूचित करे, काय-वचनसे सूचित करे तो शुद्धि भेजी गई (समझी) जाती है। यदि न कायासे सूचित करे, न वचनसे सूचित करे, न काय-वचनसे सूचित करे तो शुद्धि भेजी गई नहीं होती। इस प्रकार यदि कर सके तो ठीक, यदि न कर सके तो भिक्षुओ! वह भिक्षु चारपाई, या चौकीपर (बैठाकर) संघके बीचमें लाया जाय, और उपोसथ करे। यदि भिक्षुओ! रोगीके परिचारक भिक्षुओंको ऐसा हो—'यदि हम रोगीको उसकी जगहसे हटायेंगे तो रोग बढ़ जायगा या मृत्यु होगी', तो भिक्षुओ! रोगीको उस जगहसे नहीं हटाना चाहिये। (बल्कि) संघको वहाँ जाकर उपोसथ करना चाहिये, किन्तु संघके एक भागको उपोसथ नहीं करना चाहिये; यदि करे तो दु क्क ट का दोष हो।

"यदि भिक्षुओ! शुद्धि (की बात कह) देनेपर शुद्धि ले जानेवाला वहाँसे चला जाय तो शुद्धि दूसरेको देनी चाहिये। यदि भिक्षुओ! शुद्धि (की बात कह) देनेपर शुद्धि ले जानेवाला (भिक्षु-पनसे) निकल जाये या मर जाये या श्रामणेर बन जाये, या भिक्षु-नियमको त्याग दे, या अन्तिम अपराध (= पा रा जि क)का अपराधी हो जाये, या पागल विक्षिप्त-चित्त, मूर्छित हो जाये, या दोष न स्वीकार करनेसे उ त्क्षि प्त क हो जाये, या दोष या दोषके कामसे उत्क्षिप्तक हो जाये, या बुरी धारणाके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक माना जाने लगे, पंडक माना जाने लगे, चोरीसे भिक्षु-वस्त्र पहननेवाला माना जाने लगे, या तीर्थिकोंमें चला गया हो, या तिर्यक् योनिमें चलागया माना जाने लगे, मातृघातक ०, पितृघातक०, अर्हत्-घातक०, भिक्षुणी-दूषक०, संघमें फूट डालनेवाला०, (बुद्धके शरीरसे) लोहू निकालनेवाला०, (स्त्री-पुरुष) दोनोंके लिंगवाला माना जाने लगे, तो दूसरेको शुद्धि-प्रदान करनी चाहिये। भिक्षुओ! यदि शुद्धि ले जानेवाला शुद्धि दे देनेके बाद चला जाये तो शुद्धि नहीं ले जाई गई समझनी चाहिये। भिक्षुओ! यदि शुद्धि ले जाने वाला शुद्धिके दे देनेके बाद रास्तेमें ही (भिक्षु आश्रमसे) निकल जाय०[1] (स्त्री-पुरुष) दोनोंके लिंगवाला माना जाने लगे तो शुद्धि ले जाई गई समझनी चाहिये। यदि भिक्षुओ! शुद्धि ले जानेवाला शुद्धि दे देनेके बाद संघमें जाकर सो जानेसे नहीं बतलाता, प्रमाद करनेसे नहीं बोलता, (अपराध) करनेसे नहीं बोलता तो शुद्धि ले जाई गई होती है। और शुद्धि ले जानेवालेको दोष नहीं। यदि भिक्षुओ! शुद्धि ले जानेवाला शुद्धिके दे देनेके बाद संघमें पहुँचकर जान बूझकर नहीं बतलाता, तो भी शुद्धि ले जाई गई होती है; और शुद्धि ले जानेवालेको दुक्कटका दोष होता है।" 66

२—तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया। "भिक्षुओ! जमा हो। संघ (विवाद-निर्णय आदि) कर्मको करेगा।"

ऐसा कहने पर एक भिक्षुने भगवान्‌से यह कहा—"भन्ते! एक भिक्षु रोगी है, नहीं आया है।"

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ रोगी भिक्षुको (अपना) छंद (=सम्मति, vote) भेजने की।" 67

---

[1] पहलेहीकी तरह दुहराना चाहिये।

"और भिक्षुओ ! छंद इस प्रकार भेजना चाहिये—०[1]। छंद ले जानेवाला छंद के दे देनेके बाद संघमें पहुँचकर जान बूझकर नहीं बतलाता, तो भी छंद ले जाया गया होता है, और छंद ले जाने-वालेको दुक्कट का दोष होता है। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उपोसथके दिन शुद्धि देते वक्त छंदके भी देनेकी, यदि संघको कुछ करणीय हो।"

३—उस समय एक भिक्षुको उपोसथके दिन उसके खान्दानवालोंने पकळ लिया। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! यदि उपोसथके दिन किसी भिक्षुको उसके खान्दानवाले पकळ लें तो (दूसरे) भिक्षुओं-को खान्दानवालोंसे ऐसा कहना चाहिये—'अच्छा हो आयुष्मानो ! तुम मुहूर्त भर इस भिक्षुको छोळ दो जितनेमें कि यह भिक्षु उपोसथ करले।' यदि ऐसा हो सके तो अच्छा, यदि न हो सके तो भिक्षुओंको खान्दानवालोंसे ऐसा कहना चाहिये—आयुष्मानो ! मुहूर्त भरके लिये जरा एक ओर हो जाओ, जितनेमें कि यह भिक्षु अपनी शुद्धि दे दे।' इस प्रकार यदि हो सके तो अच्छा, यदि न हो सके तो भिक्षु खान्दान वालोंसे ऐसा कहे—'आयुष्मानो ! तुम लोग मुहूर्त भरके लिये इस भिक्षुको सीमाके बाहर ले जाओ जितनेमें कि संघ उपोसथ करले।' इस प्रकार यदि हो सके तो अच्छा, यदि न हो सके तो भी संघके एक भागको उपोसथ नहीं करना चाहिये, यदि करे तो दुक्कटका दोष हो।" 68

४— "भिक्षुओ ! यदि उपोसथके दिन किसी भिक्षुको राजा पकळे, ०। 69

५—"भिक्षुओ ! यदि उपोसथके दिन किसी भिक्षुको चोर पकळे, ०। 70

६—" ० बदमाश पकळे, ०। 71

७—"०भिक्षुके शत्रु पकळें, ०। 72

(४) पागलके लिये संघकी स्वीकृति

८—तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ ! जमा हो। संघको करणीय (काम) है।" ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! एक गर्ग नामवाला भिक्षु उन्मत्त है। वह नहीं आया।"

"भिक्षुओ ! यह दो प्रकारके उन्मत्त होते हैं—(१) भिक्षु उन्मत्त है और उपोसथको याद भी रखता है नहीं भी रखता है; (२) भिक्षु उन्मत्त है और संघ कर्मको याद भी रखता है, नहीं भी रखता है; है लेकिन (उपोसथ) नहीं याद रखता, उपोसथमें आता भी है नहीं भी आता, संघ-कर्ममें आता भी है नहीं भी आता; है किन्तु नहीं आता। "भिक्षुओ ! उनमें जो वह उन्मत्त-पागल, उपोसथको याद भी रखता है, नहीं भी याद रखता, संघ-कर्मको याद भी रखता है नहीं भी याद रखता; उपोसथमें आता भी है, नहीं भी आता; संघ-कर्ममें आता भी है, नहीं भी आता; भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ ऐसे उन्मत्तके लिये उन्मत्त होनेके ठहराव करनेकी। 73

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार ठहराव करना चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क. ज्ञप्ति—"भन्ते ! संघ मेरी सुने, गर्ग भिक्षु उन्मत्त है, वह उपोसथको याद भी रखता है, नहीं भी याद रखता; संघ-कर्मको याद भी रखता है, नहीं भी याद रखता; उपोसथमें आता भी है, नहीं भी आता; संघ-कर्ममें आता भी है, नहीं भी आता। यदि संघ उचित समझे तो वह गर्ग भिक्षुके उन्मत्त होनेका ठहराव करे। गर्ग भिक्षु चाहे उपोसथको याद रखे या न रखे; संघ-कर्मको याद रखे

---

[1] शुद्धि भेजनेकी तरह ही सभी बातें यहाँ भी दुहरानी चाहिएं।

(३) उपोसथ या संघकर्ममें अनुपस्थित व्यक्तिका कर्तव्य

१—तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! (सब लोग) जमा हो जाओ, संघ उपोसथ करेगा।"

ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! एक भिक्षु रोगी है। वह नहीं आया है।"

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, रोगी भिक्षुको, (अपनी) शुद्धि (की बात) भेजनेकी।" 65

"और भिक्षुओ ! (शुद्धिकी बात) इस प्रकार भेजनी चाहिये—उस रोगीको एक भिक्षुके पास जाकर उ त्त रा सं ग को एक कंधेपर कर, उकळूँ बैठ, हाथ जोळ ऐसा कहना चाहिये—'शुद्धि देता हूँ, मेरी शुद्धिको ले जाओ, मेरी शुद्धिको (संघमें जाकर) कहना।' इस प्रकार कायासे सूचित करे, वचनसे सूचित करे, काय-वचनसे सूचित करे तो शुद्धि भेजी गई (समझी) जाती है। यदि न कायासे सूचित करे, न वचनसे सूचित करे, न काय-वचनसे सूचित करे तो शुद्धि भेजी गई नहीं होती। इस प्रकार यदि कर सके तो ठीक, यदि न कर सके तो भिक्षुओ ! वह भिक्षु चारपाई, या चौकीपर (बैठाकर) संघके बीचमें लाया जाय, और उपोसथ करे। यदि भिक्षुओ ! रोगीके परिचारक भिक्षुओंको ऐसा हो—'यदि हम रोगीको उसकी जगहसे हटायेंगे तो रोग बढ़ जायगा या मृत्यु होगी', तो भिक्षुओ ! रोगीको उस जगहसे नहीं हटाना चाहिये। (बल्कि) संघको वहाँ जाकर उपोसथ करना चाहिये, किन्तु संघके एक भागको उपोसथ नहीं करना चाहिये; यदि करे तो दु क्क ट का दोष हो।

"यदि भिक्षुओ ! शुद्धि (की बात कह) देनेपर शुद्धि ले जानेवाला वहाँसे चला जाय तो शुद्धि दूसरेको देनी चाहिये। यदि भिक्षुओ ! शुद्धि (की बात कह) देनेपर शुद्धि ले जानेवाला (भिक्षु-पनसे) निकल जाये या मर जाये या श्रामणेर बन जाये, या भिक्षु-नियमको त्याग दे, या अन्तिम अपराध (=पा रा जि क)का अपराधी हो जाये, या पागल विक्षिप्त-चित्त, मूर्छित हो जाये, या दोष न स्वीकार करनेसे उ त्क्षि प्त क हो जाये, या दोष या दोषके कामसे उत्क्षिप्तक हो जाये, या बुरी धारणाके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक माना जाने लगे, पंडक माना जाने लगे, चोरीसे भिक्षु-वस्त्र पहननेवाला माना जाने लगे, या तीर्थिकोंमें चला गया हो, या तिर्यक् योनिमें चलागया माना जाने लगे, मातृघातक०, पितृघातक०, अर्हत्-घातक०, भिक्षुणी-दूषक०, संघमें फूट डालनेवाला०, (बुद्धके शरीरसे) लोहू निकालनेवाला०, (स्त्री-पुरुष) दोनोंके लिंगवाला माना जाने लगे, तो दूसरेको शुद्धि-प्रदान करनी चाहिये। भिक्षुओ ! यदि शुद्धि ले जानेवाला शुद्धि दे देनेके बाद चला जाये तो शुद्धि नहीं ले जाई गई समझनी चाहिये। भिक्षुओ ! यदि शुद्धि ले जाने वाला शुद्धिके दे देनेके बाद रास्तेमें ही (भिक्षु आश्रमसे) निकल जाय०[1] (स्त्री-पुरुष) दोनोंके लिंगवाला माना जाने लगे तो शुद्धि ले जाई गई समझनी चाहिये। यदि भिक्षुओ ! शुद्धि ले जानेवाला शुद्धि दे देनेके बाद संघमें जाकर सो जानेसे नहीं बतलाता, प्रमाद करनेसे नहीं बोलता, (अपराध) करनेसे नहीं बोलता तो शुद्धि ले जाई गई होती है। और शुद्धि ले जानेवालेको दोष नहीं। यदि भिक्षुओ ! शुद्धि ले जानेवाला शुद्धिके दे देनेके बाद संघमें पहुँचकर जान बूझकर नहीं बतलाता, तो भी शुद्धि ले जाई गई होती है; और शुद्धि ले जानेवालेको दुक्कटका दोष होता है।" 66

२—तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया। "भिक्षुओ ! जमा हो। संघ (विवाद-निर्णय आदि) कर्मको करेगा।"

ऐसा कहने पर एक भिक्षुने भगवान्‌से यह कहा—"भन्ते ! एक भिक्षु रोगी है, नहीं आया है।"

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ रोगी भिक्षुको (अपना) छंद (=सम्मति, vote) भेजने की।" 67

---

[1] पहलेहीकी तरह दुहराना चाहिये।

"और भिक्षुओ ! छंद इस प्रकार भेजना चाहिये—०[1] । छंद ले जानेवाला छंदके दे देनेके बाद संघमें पहुँचकर जान बूझकर नहीं बतलाता, तो भी छंद ले जाया गया होता है, और छंद ले जानेवालेको दुक्कट का दोष होता है। भिक्षुओ ! अनमति देता हूँ उपोसथके दिन शुद्धि देते वक्त छंदके भी देनेकी, यदि संघको कुछ करणीय हो।"

३—उस समय एक भिक्षुको उपोसथके दिन उसके खान्दानवालोंने पकळ लिया। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! यदि उपोसथके दिन किसी भिक्षुको उसके खान्दानवाले पकळ लें तो (दूसरे) भिक्षुओंको खान्दानवालोंसे ऐसा कहना चाहिये—'अच्छा हो आयुष्मानो ! तुम मुहूर्त भर इस भिक्षुको छोळ दो जितनेमें कि यह भिक्षु उपोसथ करले।' यदि ऐसा हो सके तो अच्छा, यदि न हो सके तो भिक्षुओंको खान्दानवालोंसे ऐसा कहना चाहिये—आयुष्मानो ! मुहूर्त भरके लिये जरा एक ओर हो जाओ, जितनेमें कि यह भिक्षु अपनी शुद्धि दे दे।' इस प्रकार यदि हो सके तो अच्छा, यदि न हो सके तो भिक्षु खान्दान वालोंसे ऐसा कहे—'आयुष्मानो ! तुम लोग मुहूर्त भरके लिये इस भिक्षुको सीमाके बाहर ले जाओ जितनेमें कि संघ उपोसथ करले।' इस प्रकार यदि हो सके तो अच्छा, यदि न हो सके तो भी संघके एक भागको उपोसथ नहीं करना चाहिये, यदि करे तो दुक्कटका दोष हो।" 68

४— "भिक्षुओ ! यदि उपोसथके दिन किसी भिक्षुको राजा पकळे, ०। 69

५—"भिक्षुओ ! यदि उपोसथके दिन किसी भिक्षुको चोर पकळे, ०। 70

६—" ० बदमाश पकळे, ०। 71

७—"०भिक्षुके शत्रु पकळें, ०। 72

(४) पागलके लिये संघकी स्वीकृति

८—तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ ! जमा हो। संघको करणीय (काम) है।" ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! एक ग र्ग नामवाला भिक्षु उन्मत्त है। वह नहीं आया।"

"भिक्षुओ ! यह दो प्रकारके उन्मत्त होते हैं—(१) भिक्षु उन्मत्त है और उपोसथको याद भी रखता है नहीं भी रखता है; (२) भिक्षु उन्मत्त है और संघ कर्मको याद भी रखता है, नहीं भी रखता है; है लेकिन (उपोसथ) नहीं याद रखता, उपोसथमें आता भी है नहीं भी आता, संघ-कर्ममें आता भी है नहीं भी आता; है किन्तु नहीं आता। "भिक्षुओ ! उनमें जो वह उन्मत्त-पागल, उपोसथको याद भी रखता है, नहीं भी याद रखता, संघ-कर्मको याद भी रखता है नहीं भी याद रखता; उपोसथमें आता भी है, नहीं भी आता; संघ-कर्ममें आता भी है, नहीं भी आता; भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ ऐसे उन्मत्तके लिये उन्मत्त होनेके ठहराव करनेकी। 73

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार ठहराव करना चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क. ज्ञ प्ति—"भन्ते ! संघ मेरी सुने, ग र्ग भिक्षु उन्मत्त है, वह उपोसथको याद भी रखता है, नहीं भी याद रखता; संघ-कर्मको याद भी रखता है, नहीं भी याद रखता; उपोसथमें आता भी है, नहीं भी आता; संघ-कर्ममें आता भी है, नहीं भी आता। यदि संघ उचित समझे तो वह ग र्ग भिक्षुके उन्मत्त होनेका ठहराव करे। ग र्ग भिक्षु चाहे उपोसथको याद रखे या न रखे; संघ-कर्मको याद रखे

[1] शुद्धि भेजनेकी तरह ही सभी बातें यहाँ भी दुहरानी चाहिएं।

या न रखे; उपोसथमें आये या न आये; संघ-कर्ममें आये या न आये; संघ ग र्ग भिक्षुके साथ या उसके बिना उपोसथ करे, संघ-कर्म करे—यह सूचना है।

ख. अ नु श्रा व ण—(१) "भन्ते! संघ मेरी सुने—ग र्ग भिक्षु उन्मत्त है। वह उपोसथको याद भी रखता है नहीं भी रखता० संघ ग र्ग भिक्षुके उन्मत्त होनेका ठहराव करता है। ग र्ग भिक्षु चाहे उपोसथको याद रखे या न रखे, संघ-कर्मको याद रखे या न रखे; उपोसथमें आये या न आये; संघ-कर्ममें आये या न आये। संघ ग र्ग भिक्षुके विना उपोसथ करेगा, संघ-कर्म करेगा। जिस आयुष्मान्को ग र्ग भिक्षुके लिये उन्मत्त होनेका ठहराव०, पसन्द है वह चुप रहे, जिसको पसंद नहीं है वह बोले।..।

ग. धा र णा—"संघने ग र्ग भिक्षुके लिये उन्मत्त होनेका ठहराव स्वीकार किया० संघ ग र्ग भिक्षुके साथ या गर्ग भिक्षुके विना उपोसथ करेगा, संघ-कर्म करेगा। यह संघको पसंद है, इसलिये चुप है—इसे मैं ऐसा समझता हूँ।"

(५) उपोसथके लिये अपेक्षित वर्ग-संख्या

उस समय एक आवासमें उपोसथके दिन चार भिक्षु रहते थे। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—'भगवान्ने उपोसथ करनेका विधान किया है और हम चार ही जने हैं, कैसे हमें उपोसथ करना चाहिये।' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, चार (भिक्षुओं)के प्रातिमोक्ष-पाठकी।" 74

(६) शुद्धिवाला उपोसथ

१—उस समय एक आवासमें उपोसथके दिन तीन भिक्षु रहते थे। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—'भगवान्ने चार भिक्षुओंके प्रातिमोक्ष-पाठकी अनुमति दी है और हम तीन ही जने हैं। कैसे हमें उपोसथ करना चाहिये?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, तीनको शुद्धिवाले उपोसथके करनेकी।" 75

"और इस प्रकार करना चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षु उन भिक्षुओंको सूचित करे—'आयुष्मानो! मेरी सुनो, आज उपोसथ है। यदि आयुष्मानोंको पसंद हो तो हम एक दूसरेके साथ शुद्धि वाला उपोसथ करें।' (तब) स्थविर भिक्षुको एक कंधेपर उत्तरासंगकर, उकळूँ बैठ, हाथ जोळ, उन भिक्षुओंसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुसो! मैं दोषोंसे शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझो, आवुसो! मैं शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझो; आवुसो मै शुद्ध हूँ मुझे शुद्ध समझो!' नये भिक्षुको एक कंधेपर उत्तरासंगकर उकळूँ बैठ, हाथ जोळ, उन भिक्षुओंसे ऐसा कहना चाहिये—'भन्ते! मैं शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझें, भन्ते! मैं शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझें; भन्ते! मैं शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझें।'"

२—उस समय एक आवासमें उपोसथके दिन दो भिक्षु रहते थे। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—'भगवान्ने चारके प्रातिमोक्ष-पाठकी अनुमति दी है और तीनको शुद्धिवाले उपोसथको करनेकी किन्तु हम दो ही जने हैं, कैसे हमें उपोसथ करना चाहिये?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ दोको शुद्धिवाला उपोसथ करनेकी।" 76

"और भिक्षुओ! इस प्रकार करना चाहिये—(पहले) स्थविर (=वृद्ध) भिक्षुको उत्तरासंग एक कंधेपर कर, उकळूँ बैठ, हाथ जोळ, नये भिक्षुसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस! मैं शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझो; आवुस! मैं शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझो; आवुस! मैं शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझो।' (फिर) नये भिक्षुको एक कंधेपर उत्तरासंगकर, उकळूँ बैठ, हाथ जोळ, स्थविर भिक्षुसे कहना चाहिये—'भन्ते! मैं शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझें; भन्ते! मैं शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझें, भन्ते! मैं शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझें।'"

३—उस समय उस आवासमें उपोसथके दिन एक भिक्षु रहता था। उस भिक्षुको ऐसा हुआ—'भगवान्ने अनुमति दी है चारको प्रातिमोक्ष-पाठ करनेकी; तीनको शुद्धिवाला उपोसथ, दोको शुद्धिवाला उपोसथ करनेकी, किन्तु मैं अकेला हूँ, मुझे कैसे उपोसथ करना चाहिये ?' भगवान्से यह बात कही।—

"यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें उपोसथके दिन एक भिक्षु रहता है तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको जिस उपस्थान-शाला (=चौपाल), मंडप, वृक्ष-छायामें भिक्षु आया करते हैं, उस स्थानको झाळू दे, पीने और इस्तेमाल करनेके पानीको रख, आसन विछा, दीपक जला बैठना चाहिये। यदि दूसरे भिक्षु आवें तो उनके साथ उपोसथ करना चाहिये। यदि न आयें तो, आज मेरा उपोसथ है, ऐसा दृढ संकल्प (=अधिष्ठान) करना चाहिये। यदि अ धि ष्ठा न न करे तो दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! जहाँ पर चार भिक्षु रहें, वहाँ एककी शुद्धि लाकर तीनको प्रा ति मो क्ष-पाठ नहीं करना चाहिये। यदि पाठ करें तो दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! जहाँपर तीन भिक्षु हैं, वहाँ एककी शुद्धि लाकर (बाकी) दोको शुद्धिवाला उपोसथ नहीं करना चाहिये। यदि करें तो दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! जहाँपर दो भिक्षु हैं वहाँ एककी शुद्धि लाकर (बचे एकको) अ धि ष्ठा न न करना चाहिये। यदि अधिष्ठान करे तो दुक्कटका दोष हो।" 77

(७) उपोसथके दिन दोषोंका प्रतिकार

उस समय उपोसथके दिन एक भिक्षुसे दोष (=अपराध) हो गया। तब उस भिक्षुको यह हुआ—'भगवान्ने विधान किया है कि सदोष (भिक्षु)को उपोसथ नहीं करना चाहिये, और मैं सदोष हूँ। मुझे कैसे करना चाहिये ?' भगवान्से यह बात कही।—

१—"भिक्षुओ ! यदि उपोसथके दिन किसी भिक्षुको दोष याद आया हो; तो भिक्षुओ ! उस भिक्षु को एक भिक्षुके पास जाकर उत्तरासंग एक कंधेपर कर उकळूं बैठ, हाथ जोळ ऐसा बोलना चाहिये— 'आवुस ! मुझसे ऐसा दोष हुआ है। उसकी मैं प्र ति दे श ना (=अपराध-स्वीकार, Confession) करता हूँ' (और) उस (दूसरे भिक्षु)को कहना चाहिये—'क्या तुम देखते हो (अपने दोषको) ?"

'हाँ देखता हूँ।'

'आगेके लिये बचाव करना।' 78

२—"यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षुको उपोसथके दिन दोष (किया या नहीं किया इसमें) संदेह हो तो उस भिक्षुको एक भिक्षुके पास जाकर उत्तरासंग एक कंधेपर कर उकळूँ बैठ, हाथ जोळ ऐसा कहना चाहिये—

'आवुस ! मैं इस नामवाले दोषके विषयमें संदेहमें पळा हूँ। जब संदेह-रहित होऊँगा तो उस दोषका प्रतिकार करूँगा'—इस प्रकार कह वह उपोसथ करे, प्रातिमोक्ष सुने। उसके लिए उपोसथ में रुकावट नहीं करनी चाहिये।" 79

(८) दोषका प्रतिकार कैसे और किसके सामने

१—(क). उस समय षड्वर्गीय भिक्षु अधूरे दोषकी दे श ना (=अपराध-स्वीकार) करते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अधूरे दोषकी दे श ना नहीं करनी चाहिये। जो (अधूरी) देशना करे उसे दु क्क ट का दोष हो।" 80

(ख). उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु अधूरे दोष (की दे श ना करनेपर उस)को ग्रहण करते थे। भगवान्ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अधूरे दोष(की प्र ति दे श ना)को नहीं ग्रहण करना चाहिये। जो ग्रहण करे उसे दु क्क ट का दोष हो।" 81

२—उस समय एक भिक्षुको प्रातिमोक्ष-पाठके समय दोष याद आया। तब उस भिक्षुको ऐसा हुआ—'भगवान्ने विधान किया है कि सदोष (भिक्षु)को उ पो स थ नहीं करना चाहिये, और मैं सदोष हूँ। मुझे कैसा करना चाहिये?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! यदि किसी भिक्षुको प्रातिमोक्ष-पाठके समय दोष याद आये तो भिक्षुओ! उस भिक्षुको अपने पासके भिक्षुसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस! मैंने इस नामवाले दोषको किया है। यहाँसे उठकर मैं उस दोषका प्रतिकार करूँगा।' (यह) कह उ पो स थ करना चाहिये, प्रातिमोक्ष सुनना चाहिये; उसके लिये उपोसथमें रुकावट न डालनी चाहिये। यदि भिक्षुओ! प्रातिमोक्ष-पाठके समय किसी भिक्षुको दोषके विषयमें संदेह हो तो उस भिक्षुको पासके भिक्षुसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस! मुझे इस नामवाले दोषके विषयमें संदेह है। जब संदेह-रहित हूँगा तब उस दोषका प्रतिकार करूँगा।' (यह) कह उपोसथ करना चाहिये, प्रातिमोक्ष सुनना चाहिये। उसके लिये उपोसथको छोळना नहीं चाहिये।" 82

३—(क). उस समय एक आवासमें उपोसथके दिन सभी संघसे अधूरा दोष हुआ था। तब उन भिक्षुओंको ऐसा हुआ—'भगवान्ने विधान किया है कि अधूरे दोषकी प्र ति दे श ना नहीं करनी चाहिये, न अधूरे दोष(की प्र ति दे श ना)को ग्रहण करना चाहिये। और इस सारे संघसे अधूरा दोष हुआ है। हमें कैसा करना चाहिये?' भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ! यदि किसी आवासमें उपोसथके दिन सारे संघसे अधूरा (=सभाग) दोष हुआ हो, तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको (अपनेमेंसे) एक भिक्षुको पासवाले आवासोंमें (यह कहकर) भेजना चाहिये—'आवुस! जा, इस दोषका प्रतिकार कर चला आ। फिर हम तेरे पास दोषका प्रतिकार करेंगे।' यदि ऐसा हो सके तो अच्छा, न हो सके तो चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—'भन्ते! संघ मेरी सुने—इस सारे संघसे अधूरा दोष हुआ है (संघ) जब दूसरे दोष-रहित शुद्ध भिक्षुको देखेगा तो उसके पास उस दोषका प्रतिकार करेगा।' (यह) कह उपोसथ करना चाहिये, प्रातिमोक्ष पढ़ना चाहिये। उसके लिये उपोसथको छोळ नहीं देना चाहिये। 83

(ख). "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन सारे संघको सभाग दोषके होनेमें सन्देह हो गया हो तो चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—भन्ते! संघ मेरी सुने। इस सारे संघको सभाग दोषके विषयमें संदेह है। जब वह संदेह-रहित होगा तो उस दोषका प्रतिकार करेगा।' (यह) कह उपोसथ करे। प्रातिमोक्षका पाठ करे उसके लिये उपोसथको छोळ नहीं देना चाहिये। 84

(ग). "यदि भिक्षुओ! एक आवासमें वर्षावास करते संघसे सभाग दोष हो गया हो तो उन भिक्षुओंको (अपनेमेंसे) एक भिक्षुको (यह कहकर) आस-पासके आवासमें भेजना चाहिये—'जा आवुस! उस दोषका प्रतिकार कर चला आ; (फिर) हम तेरे पास उस दोषका प्रतिकार करेंगे।' यदि यह हो सके तो अच्छा है; न हो सके तो एक भिक्षुको सप्ताह भरके लिये (यह कहकर) भेजना चाहिये—'जा आवुस! उस दोषका प्रतिकार कर चला आ; फिर हम तेरे पास दोषका प्रतिकार करेंगे।' " 85

४—उस समय एक आवासमें सारे संघसे सभाग दोष हुआ था और वह उस दोषके नाम-गोत्र को नहीं जानता था। तब वहाँ एक दूसरा बहु-श्रुत, आगमज्ञ, धर्म-धर, विनय-धर, मात्रिका-धर, पंडित, चतुर, मेधावी, लज्जा-शील, संकोची और सीखनेकी चाहवाला भिक्षु आया। तब उसके पास एक भिक्षु गया। जाकर उस भिक्षुसे यह बोला—

"आवुस! जो ऐसा ऐसा काम करे वह किस दोषका भागी होता है?"

उसने जवाब दिया—"आवुस! जो ऐसा ऐसा करे वह इस नामवाले दोषका भागी होता है। आवुस! तुम इस नामवाले दोषके भागी हो, सो उस दोषका प्रतिकार करो।"

उसने कहा—"आवुस! मैं अकेलाही इस दोषका भागी नहीं हूँ। इस सारे संघसे यह दोष हुआ है।"

दूसरेने कहा—"आवुस! दूसरेके सदोष या निर्दोष होनेसे तुम्हें क्या? आवुस! तू अपने दोषको हटा।"

तब उस भिक्षुने उस भिक्षुके वचनसे उस दोषका प्रतिकार कर जहाँ उसके साथी दूसरे भिक्षु थे वहाँ गया। जाकर उन भिक्षुओंसे यह बोला—

"आवुस! जो ऐसे ऐसे (काम)को करता है, वह इस नामवाले दोषका भागी होता है। आवुसो! तुम इस नामवाले दोषके भागी हो, सो उस दोषका प्रतिकार करो।"

परन्तु उन भिक्षुओंने उस भिक्षुके वचनसे उस दोषका प्रतिकार करना नहीं चाहा। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! यदि किसी आवासमें सारे संघसे सभाग दोष हुआ हो०[1] आवुसो! तुम इस नामवाले दोषके भागी हो, सो उस दोषका प्रतिकार करो।' यदि भिक्षुओ! वह भिक्षु, उस भिक्षुके वचनसे उस दोषका प्रतिकार करे तो ठीक; यदि प्रतिकार न करे तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको उस भिक्षुसे अनिच्छुक नहीं रहना चाहिये।" 86

चोदनावस्तु भाणवार समाप्त ॥२॥

§५—कुछ भिक्षुओंकी अनुपस्थितिमें किये गये नियम-विरुद्ध उपोसथ

(१) अन्य आश्रमवासियोंकी अनुपस्थितिमें आश्रमवासियोंका उपोसथ

क. (a) *अन्य आश्रमवासियोंकी अनुपस्थितिको जानकर दोषरहित उपोसथ*

उस समय एक आवासमें बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु, उपोसथके दिन एकत्रित हुए। उन्होंने नहीं जाना कि कुछ आश्रमवासी भिक्षु नहीं आये। उन्होंने धर्म समझ, विनय समझ (संघका एक) भाग होते भी (अपनेको) समग्र समझ उपोसथ किया, प्रातिमोक्ष-पाठ किया। उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक थे, आ गये। भगवान्से यह बात कही।—

१—(१) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे न जानें कि कुछ दूसरे आश्रमवासी भिक्षु नहीं आये, वे धर्म समझ, विनय समझ, (संघका एक) भाग होते भी (अपनेको) समग्र समझ उपोसथ करें, प्रातिमोक्षका पाठ करें और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हैं आजायँ तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये। (फिरसे) पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 87

(२) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आश्रम-

[1] देखो ऊपर।

वासी भिक्षु एकत्रित होते हैं, वह नहीं जानते कि कुछ आश्रमवासी भिक्षु नहीं आये हैं। वे धर्म समझ, विनय समझ, (संघका एक) भाग होते भी (अपनेको) समग्र समझ उपोसथ करें, प्रातिमोक्षका पाठ करें और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु—जो संख्यामें समान हों—आजायें तो जो पाठ हो चुका वह ठीक, वाकीको (वह भी) सुनें। पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 88

(३) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन वहुतसे—चार या अधिक—आश्रम-वासी भिक्षु एकत्रित हों और वे न जानें कि कुछ आश्रमवासी भिक्षु नहीं आये। वे धर्म समझ, विनय समझ, (संघका एक) भाग होते भी (अपनेको) समग्र समझ उपोसथ करें, प्रातिमोक्षका पाठ करें और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हैं० तो जो पाठ हो चुका वह ठीक, वाकीको वह भी सुनें। पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 89

२—(४) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन वहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हों० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हैं आजायँ तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्षपाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 90

(५) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन वहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हों० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हैं, आजायँ तो भिक्षुओ! जो पाठ हो चुका सो ठीक। उनके पास (आये भिक्षुओंको) शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 91

(६) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन वहुतसे—चार या अधिक—भिक्षु एकत्रित हों० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु—जो संख्यामें उनसे कम हैं—आजायँ तो भिक्षुओ! पाठ हो चुका सो ठीक। उनके पास (आये भिक्षुओंको) शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 92

३—(७) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन वहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हों० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के अभी न उठने पर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हैं आजायँ, तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये, (पहले) पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 93

(८) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन वहुतसे—चार या अधिक—आश्रम-वासी भिक्षु एकत्रित हों० और प्रातिमोक्ष-पाठकर चुकने किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर दूसरे आश्रम-वासी भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हैं, आजायँ तो भिक्षुओ होगया पाठ ठीक। उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 94

(९) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन वहुतसे—चार या अधिक—आश्रम-वासी भिक्षु एकत्रित हों०और प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर भी दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हैं, आजायँ, तो भिक्षुओ! होगया पाठ ठीक। उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 95

४—(१०) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन वहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हों० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी जो संख्यामें उनसे अधिक हों आजायँ तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये। (पहले) पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 96

(११) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन वहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी

भिक्षु एकत्रित हों० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी जो संख्यामें उनके समान हों आजायँ तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो चुका सो ठीक; उनके पास शु द्धि वतलानी चाहिये । पाठ करनेवाले (भिक्षुओं)को दोष नहीं । 97

(१२) "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक-आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हों० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिपद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हों आजायँ तो भिक्षुओ ! पाठ हो चुका सो ठीक; उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये । पाठ करनेवाले (भिक्षुओं)को दोप नहीं । 98

५—(१३) "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हों० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर तथा सारी परिपद्के उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हों, आजायँ तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवाले (भिक्षुओं)को दोष नहीं । 99

(१४) "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हों० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर तथा सारे परिषद्के उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हों, आजायँ तो भिक्षुओ ! पाठ हो चुका सो ठीक; उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवाले (भिक्षुओं)का दोष नहीं। 100

(१५) "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हों० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर तथासारी परिषद्के उठ जाने पर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हों, आजायँ,तो भिक्षुओ ! पाठ हो चुका सो ठीक; उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवाले (भिक्षुओं)का दोष नहीं।" 101

पन्द्रह अदोषता समाप्त ।

(b) अन्य आश्रमवासियोंकी अनुपस्थितिको जानकर किया गया दोषयुक्त उपोसथ

६—(१) "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें कि कुछ आश्रमवासी भिक्षु नहीं आये। वे धर्म समझ, विनय समझ, (संघका एक) भाग होते भी (अपनेको) समग्र समझ उपोसथ करें, प्रातिमोक्षका पाठ करें और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हैं, आजायँ, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये और (पहले) पाठ करनेवालोंको दु क्क ट का दोप है। 102

(२) "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हों० और वे जानें० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हों, आजायँ, तो भिक्षुओ ! जो पाठ होगया वह ठीक; वाकीको (वह भी) सुनें। पाठ करनेवालोंको दु क्क ट का दोप है । 103

(३) "यदि० उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हों, आजायँ, तो भिक्षुओ ! जो पाठ होगया वह ठीक; वाकीको (वह भी) सुनें। पाठ करनेवालोंको दु क्क ट का दोष है। 104

७—(४) "यदि० उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हैं, आजायँ, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको

फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये; और (पहले) पाठ करनेवालोंको दुक्कट का दोष है। 105

(५) "यदि० उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें०और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकने पर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हों, आजायँ, तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक; उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कट का दोष है। 106

(६) "यदि० उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकने पर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हों, आजायँ, तो भिक्षुओ ! जो पाठ होगया वह ठीक; उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कट का दोष है। 107

८—(७) "यदि० उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हों, आजायँ, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये (पहले) पाठ करनेवालोंको दुक्कट का दोष है। 108

(८) "यदि० उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हों, आ जायँ, तो भिक्षुओ ! जो पाठ होगया वह ठीक; उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कट का दोष है। 109

(९) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें ० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के अभी न उठने पर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हों, आजायँ, तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक; उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करने वालोंको दुक्कट का दोष है। 110

९—(१०) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें ० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हों, आजायँ, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कट का दोष है। 111

(११) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें ० और उनके प्रातिमोक्ष पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हों, आजायँ, तो भिक्षुओ ! पाठ हो गया वह ठीक; उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवाले भिक्षुओंको दुक्कटका दोष है। 112

(१२) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें ० और उनके प्रातिमोक्ष पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हों, आजायँ, तो भिक्षुओ ! पाठ हो गया वह ठीक; उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवाले भिक्षुओंको दुक्कट का दोष है। 113

१०—(१३) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें ० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकने तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हों, आजायँ, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कट का दोष है। 114

(१४) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें ० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हों, आजायँ, तो भिक्षुओ ! पाठ हो गया सो ठीक; उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवाले भिक्षुओंको

दु क्क ट का दोप है। 115

(१५) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें ० और उनके प्रातिमोक्ष पाठ कर चुकनेपर तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हों, आ जायँ, तो भिक्षुओ ! पाठ हो गया सो ठीक; उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवाले भिक्षुओं-को दु क्क ट का दोप है।" 116

पंद्रह वर्ग-अवर्गके ज्ञान समाप्त

(c) अन्य आश्रमवासियोंकी अनुपस्थितिमें सन्देहके साथ किया गया दोष-युक्त-उपोसथ

११—(१) "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें बहुतसे—चार या अधिक-आश्रमवासी भिक्षु उ पो स थ के दिन एकत्रित हों और वे जानें कि कुछ दूसरे आश्रमवासी भिक्षु नहीं आये। वह—हमें उपोसथ करना युक्त है या नहीं—इसमें सन्देह युक्त होते उपोसथ करें, प्रातिमोक्षका पाठ करें, और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हों, आ जायें, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये, और (पहले) पाठ करनेवालोंको दु क्क ट का दोप है। 117

(२) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों, और वे जानें ०, सन्देह युक्त होते उपोसथ करें ० प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय ० भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हों आ जायें, तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक; बाकीको (वह भी) सुने, पाठ करनेवालोंको दु क्क ट का दोप है। 118

(३) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों, वे जानें ०, सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें ० प्राति-मोक्ष-पाठ करते समय ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हों आ जायें, तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक; बाकीको (वह भी) सुने। पाठ करनेवालोंको दु क्क ट का दोष है। 119

१२—(४) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों, और वे जानें०, सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें ० प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हों, आजायें, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये, और पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोप है। 120

(५) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों, और वे जानें ०, सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें ० प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हों आजायें, तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दु क्क ट का दोप है। 121

(६) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने पर ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हों आजायें तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दु क्क ट का दोप है। 122

१३—(७) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों, और वे जानें० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हों आजायें, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोप है। 123

(८) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों, और वे जानें ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हों आजायें, तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालों को दु क्क ट का दोप है। 124

(९) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों, और वे जानें ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें ०

प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने किन्तु परिपद्के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हों आ-जायें, तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 125

१४—(१०) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों, और वे जानें ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिपद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हों आजायें, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोप है। 126

(११) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों, और वे जानें ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ कर ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिपद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हों आजायें तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक; उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोप है। 127

(१२) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों, और वे जानें ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर तथा परिपद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हों आजायें तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक; उनके पास शुद्धि बत-लानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोप है। 128

१५—(१३) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों, और वे जानें ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर तथा सारी परिपद्के उठ जानेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हों आजायें तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्षका पाठ करना चाहिये। पाठ करने-वालोंको दुक्कटका दोष है। 129

(१४) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों, और वे जानें ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हों, आजायें तो भिक्षुओ ! पाठ हो चुका सो ठीक; उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 130

(१५) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों, और वे जानें ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर तथा सारी परिपद्के उठ जानेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हों, आजायें तो भिक्षुओ ! पाठ हो चुका सो ठीक; उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोप है।" 131

पन्द्रह संदेहयुक्त समाप्त

(d) अन्य आवासिकोंकी अनुपस्थितिमें संकोचके साथ किया गया दोषयुक्त उपोसथ

१६—(१) "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें बहुतसे—चार या अधिक आश्रमवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हों, और वे जानें कि कुछ आश्रमवासी भिक्षु नहीं आये। वह—हमें उपोसथ करना युक्त ही है, अयुक्त नहीं है—ऐसे संकोचके साथ उपोसथ करें, प्रातिमोक्षका पाठ करें, और उनके प्रातिमोक्ष पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हों आजायें, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये और (पहले) पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोप है। 132

(२) "यदि ० संकोचके साथ उपोसथ करें ० भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हों आजायँ, तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक, बाकीको वह भी सुनें। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोप है। 133

(३) "यदि ० संकोचके साथ उपोसथ करें ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हों आ जायँ, तो भिक्षुओ! जो पाठ हो गया वह ठीक; बाकीको वह भी सुनें। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 134

१७—(४) "यदि ० संकोचके साथ उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हों आजायें, तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 135

(५) "यदि ० संकोचके साथ उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हों, आजायँ, तो पाठ हो गया वह ठीक; उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 136

(६) "यदि ० संकोचके साथ उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हों, आजायँ, तो पाठ होगया वह ठीक; उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 137

१८—(७) "यदि ० संकोचके साथ उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर ० किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हों, आजायँ तो उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्षका पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 138

(८) "यदि ० संकोचके साथ उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हों, आजायँ तो पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 139

(९) "यदि ० संकोचके साथ उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो संख्या में उनसे कम हों, आ जायँ तो पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 140

१९—(१०) "यदि ० संकोचके साथ उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हों, आ जायँ, तो उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्षका पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 141

(११) "यदि ० संकोचके साथ उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हों, आ जायँ तो पाठ हो चुका सो ठीक; उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 142

(१२) "यदि ० संकोचके साथ उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हों, आ जायँ तो पाठ हो चुका सो ठीक; उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 143

२०—(१३) "यदि ० संकोचके साथ उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हों आ जायँ, तो उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्षका पाठ करना चाहिये। (और पहिले) पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 144

(१४) "यदि ० संकोचके साथ उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हों आ जायँ, तो जो पाठ हो चुका सो ठीक; उनके पास शुद्धि करनी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 145

(१५) "यदि ० संकोचके साथ उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर तथा सारी

परिषद्के उठ जानेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हों आ जायँ, तो पाठ हो चुका सो ठीक; उनके पास शुद्धि करनी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दु क्क ट का दोष है।" 146

पन्द्रह संकोच-सहित समाप्त

(e) अन्य आश्रमवासियोंकी अनुपस्थितिमें कटूक्ति-पूर्वक किया गया दोषयुक्त उपोसथ

२१—(१) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें कि कुछ दूसरे आश्रमवासी भिक्षु नहीं आये; फिर—वह विनष्ट हो जायँ, वह विनष्ट हो जायँ, उनसे क्या मतलब!—ऐसे कटूक्ति पूर्वक उपोसथ करें, प्रातिमोक्षका पाठ करें और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हों आ जायँ तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये और (पहले) पाठ करनेवालोंको थु ल्ल च्च य (=स्थूल-अत्यय=बळा अपराध)का दोष है। 147

(२) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करें ० प्रातिमोक्ष पाठ करते समय ० भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हों आ जायँ तो भिक्षुओ! जो पाठ हो गया वह ठीक; बाकीको (वह भी) सुनें। पाठ करनेवालोंको थु ल्ल च्च य का दोष है। 148

(३) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करें ० प्रातिमोक्ष पाठ करते समय ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हों आ जायँ तो भिक्षुओ! जो पाठ हो गया वह ठीक; बाकीको (वह भी) सुनें। पाठ करनेवालोंको थु ल्ल च्च य का दोष है। 149

२२—(४) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करें ० प्रातिमोक्ष पाठ कर चुकनेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हों, आ जायँ तो उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये और पाठ करनेवालोंको थु ल्ल च्च य का दोष है। 150

(५) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हों, आ जायँ तो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये और पाठ करनेवालेको थु ल्ल च्च य का दोष है। 151

(६) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हों, आ जायँ तो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये और पाठ करनेवालेको थु ल्ल च्च य का दोष है। 152

२३—(७) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हों, आ जायँ तो उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये और पाठ करनेवालोंको थू ल्ल च्च य का [1] दोष है। 153

(८) "यदि कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हों, आ जायँ तो पाठ हो गया सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये और पाठ करनेवालोंको थु ल्ल च्च य का दोष है। 154

(९) "यदि० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हों, आ जायँ तो पाठ हो गया सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये और पाठ करनेवालोंको थु ल्ल च्च य का दोष है। 155

---

[1] **थुल्लच्चय (=स्थूल-अत्यय) एकके भूलोंकी देशना करता है और जो उसे नहीं ग्रहण करता उसके समान दोष (अत्यय) नहीं इसलिये यह वैसा कहा जाता है। (—अट्ठ कथा)।**

२४—(१०) "यदि० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करें ० प्रातिमोक्ष पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर० भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हों आ जायँ तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये। (पहिले) पाठ करनेवालोंको थु ल्ल च्च य का दोष है। 156

(११) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करें ० प्रातिमोक्ष पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हों आ जायँ तो भिक्षुओ! पाठ हो चुका सो ठीक; उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये; और पाठ करनेवालोंको थु ल्ल च्च य का दोष है। 157

(१२) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करें ० प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हों, आ जायँ तो भिक्षुओ! पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये; और पाठ करनेवालोंको थु ल्ल च्च य का दोष है। 158

२५—(१३) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हों, आ जायँ, तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये और पाठ करनेवालोंको थु ल्ल च्च य का दोष है। 159

(१४) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर ० भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हों आ जायँ, तो भिक्षुओ! जो पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये; और पाठ करनेवालोंको थु ल्ल च्च य का दोष है। 160

(१५) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर ० भिक्षु जो संख्या में उनसे कम हों आ जायँ, तो भिक्षुओ! जो पाठ हो चुका सो ठीक; उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये; और पाठ करनेवालोंको थु ल्ल च्च य का दोष है।" 161

पन्द्रह कटूक्ति-पूर्वक समाप्त

पचीसी समाप्त

ख. अन्य आवासिकोंकी अनुपस्थितिको जाने विना किया गया उपोसथ

२६–५०—"यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें वहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हों, वह नहीं जानें कि कुछ अन्य आश्रमवासी भिक्षु सीमाके भीतर आ रहे हैं। ०[1]। 162–186

५१–७५—"यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों, वह नहीं जा न ते कि कुछ अन्य आश्रमवासी भिक्षु सीमाके भीतर आ गये हैं। ०[1]।" 187–212

ग. अन्य आवासिकोंकी अनुपस्थितिको देखे विना किया गया उपोसथ

७६–१००—"यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों, वह नहीं दे ख ते कि कुछ अन्य आश्रमवासी भिक्षु सीमाके भीतर आ रहे हैं। ०[1]। 213–237

[1] पिछली पचीसीकी तरह इसे भी उ पो स थ करते, उ पो स थ कर चुकने, परिषद्के वैठे रहने परिषद्में कुछके उठजाने तथा कुछके वैठे रहने और सारी परिषद्के उठ जाने, इन पाँचोंको न जानने, जानने, संदेहयुक्त, संकोचयुक्त और कटूक्ति-पूर्वकके साथ पढ़नेपर पच्चीस भेद होंगे।

१०१–१२५—"यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों, वह नहीं देखते कि कुछ अन्य आश्रमवासी भिक्षु सीमाके भीतर आ गये हैं। ०[1] । 238–262

घ. अन्य आवासिकोंकी अनुपस्थितिको सुने बिना किया गया उपोसथ

१२६–१५०—"यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों, वह नहीं सुनते कि कुछ अन्य आश्रमवासी भिक्षु सीमाके भीतर आ रहे हैं। ०[1] । 263–287

१५१–१७५—"यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हों, वह नहीं सुनते कि कुछ अन्य आश्रमवासी भिक्षु सीमाके भीतर आ गये हैं। ०[2] ।" 288–312

(२) कुछ नवागन्तुकोंकी अनुपस्थितिको जानकर या जाने, देखे, सुने बिना नवागन्तुकोंका किया उपोसथ

१७६–३५०—"यदि० भिक्षुओ ! किसी आवासमें बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे न जानें कि कुछ नवागन्तुक भिक्षु नहीं आये०[3] ।"313–487

(३) कुछ आश्रमवासियोंकी अनुपस्थितिको जानकर या जाने, देखे, सुने बिना नवागन्तुकोंका किया उपोसथ

३५१–५२५—"यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें बहुतसे—चार या अधिक—नवागन्तुक भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे न जानें कि कुछ आश्रमवासी भिक्षु नहीं आये ०[4] ।"488–662

(४) कुछ नवागन्तुकोंकी अनुपस्थितिको जाने, देखे, सुने बिना नवागन्तुकोंका किया उपोसथ

५२६–७००—[3] "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें बहुतसे—चार या अधिक—नवागन्तुक भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे न जानें कि कुछ नवागन्तुक भिक्षु नहीं आये ०[4] ।" 663–837

§६–उपोसथके काल, स्थान और व्यक्तिके नियम

(१) उपोसथकी दो तिथियोंमें एक स्वीकार

१—"जब भिक्षुओ ! आश्रमवासी भिक्षुओंका (उपोसथ) चतुर्दशीका हो और नवागन्तुकोंका पंचदशीका, तो यदि आश्रमवासी (संख्यामें) अधिक हों तो नवागन्तुकोंको आश्रमवासियोंका अनुसरण करना चाहिये। यदि (दोनों) बराबर हों तो (भी) नवागन्तुकोंको आश्रमवासियोंका अनुसरण करना चाहिये। यदि नवागन्तुक (संख्यामें) अधिक हों तो आश्रमवासियोंको नवागन्तुकोंका अनुसरण करना चाहिये। 838

---

[1] "आश्रमवासी भिक्षु नहीं आये",को लेकर जैसे ऊपर १७५ प्रकारसे कहा गया है वैसेही यहाँ भी दुहराना चाहिये ।

[2] 'आश्रमवासी भिक्षु नहीं आये'को लेकर जैसे ऊपर १७५ प्रकारसे कहा गया है वैसेही यहाँ भी दुहराना चाहिये ।

[3] सद्धर्मप्रकाशप्रेसके (अलुतगम बेन्तोता, लंका १९११ ई०) 'महावग्ग'में 'सत्ततिक सतानि' (=सत्तर सौ) छपा है जिसमें 'तिक' यह दो अधिक अक्षर प्रमादसे छपे मालूम होते हैं, क्योंकि उपर्युक्त क्रमसे गिनती ७०० (=सत्त सतानि) ही होनी चाहिये ।

[4] ऊपर जैसाही यहाँ भी समझो ।

२—"जब भिक्षुओ ! आश्रमवासी भिक्षुओंका (उपोसथ) पंचदशीका हो और नवागन्तुकोंका चतुर्दशीका, तो यदि (संख्यामें) आश्रमवासी अधिक हों तो नवागन्तुकोंको आश्रमवासियोंका अनुसरण करना चाहिये ०[1] । 839

३—"जब भिक्षुओ ! आश्रमवासी भिक्षुओंका (उपोसथ) प्रतिपद्का हो और नवागन्तुकोंका पंचदशीका तो यदि (संख्यामें) आश्रमवासी अधिक हों तो आश्रमवासियोंको इच्छा बिना (अपनेको देकर) नवागन्तुकोंके (संघ)की पूर्णता नहीं करनी चाहिये; नवागन्तुकोंको सीमासे बाहर जाकर उपोसथ करना चाहिये। यदि (दोनों संख्यामें) बराबर हों तो आश्रमवासियोंको इच्छा बिना (अपनेको देकर) नवागन्तुकों(के संघ)की पूर्णता नहीं करनी चाहिये। यदि (संख्यामें) नवागन्तुक अधिक हों तो आश्रमवासियोंको आगन्तुकों(के संघ)की या तो संपूर्णता करनी चाहिये या सीमासे बाहर जाना चाहिये। 840

४—"जब भिक्षुओ ! आश्रमवासी भिक्षुओंका (उपोसथ) पंचदशीका हो और नवागन्तुकोंका प्रतिपद्का तो यदि संख्यामें आश्रमवासी अधिक हों तो नवागन्तुकोंको आश्रमवासियोंके संघकी पूर्णता करनी चाहिये या सीमासे बाहर जाना चाहिये; यदि बराबर हों तो नवागन्तुकोंको आश्रमवासियोंकी पूर्णता करनी चाहिये या सीमासे बाहर जाना चाहिये; यदि संख्यामें नवागन्तुक अधिक हों तो नवागन्तुकोंको, इच्छा बिना, आश्रमवासियोंकी संपूर्णता नहीं करनी चाहिये, बल्कि आश्रमवासियोंको सीमाके बाहर जाकर उपोसथ करना चाहिये।" 841

(२) आवासिकों और नवागन्तुकोंका अलग उपोसथ नहीं

१—"जब भिक्षुओ ! नवागन्तुक भिक्षु आश्रमवासी भिक्षुओंकी आश्रमवासिताके आकार, लिंग = निमित्त; उद्देश्य, और अच्छी तरहसे बिछी चारपाई, चौकी, तकिया-बिछौना पीने धोनेके पानी, तथा अच्छी तरह साफ-वाफ आँगन देखें। और देखकर संदेहमें पळें—क्या आश्रमवासी भिक्षु हैं या नहीं। संदेहमें पळकर वह खोज न करें। और बिना खोजे उपोसथ करें, तो दु क्क ट का दोष है। यदि संदेहमें पळकर वह खोज करें, खोज कर न देखें और बिना देखे उपोसथ करें तो दोष नहीं। संदेहमें पळकर वह अलग उपोसथ करें तो दु क्क ट का दोष है। संदेहमें पळे वे खोजें, खोजनेपर देखें, देखनेपर 'नष्ट हों ये, विनष्ट हों ये, इनसे क्या मतलब?'—इस कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करें तो थु ल्ल च्च य का दोष है। 842

२—"जब भिक्षुओ ! नवागंतुक भिक्षु आश्रमवासी भिक्षुओंकी आश्रमवासिताके आकार, लिंग, उद्देश्य, टहलनेमें पैरका शब्द, पाठका शब्द, खाँसनेका शब्द और थूकनेका शब्द सुनें। और सुनकर संदेहमें पळें०[2] थुल्लच्चयका दोष होता है। 843

३—"जब भिक्षुओ ! आश्रमवासी भिक्षु नवागंतुक भिक्षुओंकी नवागंतुकताके आकार लिंग =निमित्त, उद्देश्य, अपरिचित पात्र, अपरिचित चीवर, अपरिचित आसन, पाँवोंका धोना, पानीका सींचना देखें, देखकर संदेहमें पळें—क्या नवागंतुक है, या नहीं है ?—संदेहमें पळकर वह खोज न करें०[2] थुल्लच्चयका दोष है। 844

४—"जब भिक्षुओ ! आश्रमवासी भिक्षु नवागंतुक भिक्षुओंकी नवागंतुकताके आकार लिंग = निमित्त, उद्देश्य, आते वक्त पैरका शब्द, जूताके फटफटानेका शब्द, खाँसनेका शब्द, थूँकनेका शब्द सुनते हैं। सुनकर संदेहमें पळते हैं—क्या नवागंतुक है, या नहीं है ?—संदेहमें पळकर खोज न करें०[3]

---

[1] ऊपरहीकी तरह इसे भी पढ़ो। [2] ऊपरहीकी तरह इसे भी पढ़ो।
[3] ऊपरहीकी तरह पढ़ो।

थु ल्ल च्च य का दोष होता है। 845

५—"जब भिक्षुओ ! नवागंतुक भिक्षु नाना प्रकारके सहनिवासवाले आश्रमवासी भिक्षुओंको देखते हैं तो उन्हें एक प्रकारके सहनिवासका ख्याल आता है। एक प्रकारके सहनिवासका ख्याल आनेपर वह दर्याफ्त नहीं करते। दर्याफ्त किये विना यदि अकेले उपोसथ करें तो दोष नहीं। वह पूछें। पूछकर निश्चय न करें, निश्चय किये विना यदि अकेले उपोसथ करें तो दु क्क ट का दोष है। वे पूछें, पूछकर निश्चय न करें, निश्चय किये विना अलग उपोसथ करें तो दोष नहीं। 846

६—"जब भिक्षुओ ! नवागंतुक भिक्षु एक तरहके सहनिवासवाले आश्रमवासी भिक्षुओंको देखें और वह भिन्न सहनिवासवाले हैं का ख्याल करलें, भिन्न सहनिवासका ख्याल करके दर्याफ्त न करें, दर्याफ्त किये बिना अकेले उपोसथ करें तो दु क्क ट का दोष है। यदि वह पूछें, पूछकर निश्चय करें, निश्चय करनेके बाद अलग उपोसथ करें तो दु क्क ट का दोष है। वे पूछें, पूछनेके बाद निश्चय करें, निश्चय करके अलग उपोसथ करें तो दोष नहीं। 847

७—" जब भिक्षुओ ! आश्रमवासी भिक्षु, नवागंतुकोंको नाना प्रकारके वस्त्र पहने देखें और वे एक प्रकारके वस्त्रवाला होनेका ख्याल करें, एक प्रकारके वस्त्रवाला होनेका ख्याल करके दर्याफ्त न करें (=न पूछें), पूछे बिना अकेले उपोसथ करें तो दोष नहीं। वे पूछें, पूछकर निश्चय न करें और निश्चय किये बिना अकेले उपोसथ करें तो दु क्क ट का दोष है। वे पूछें, पूछकर निश्चय न करें, निश्चय किये बिना अलग उपोसथ करें तो दोष नहीं। 848

८—"जब भिक्षुओ ! आश्रमवासी भिक्षु नवागंतुक भिक्षुओंको एक प्रकारके वस्त्रवाला देखें, वे नाना प्रकारके वस्त्रवाला होनेका ख्याल करें, नाना प्रकारके वस्त्रवाला होनेका ख्याल करके दर्याफ्त न करें, दर्याफ्त किये बिना निश्चय करें, निश्चय करके अलग उपोसथ करें तो दु क्क ट का दोष है। वे पूछें, पूछकर निश्चय करें, निश्चय करके एक साथ उपोसथ करें तो दोष नहीं।" 849

(३) उपोसथके दिन आवासके त्यागमें नियम

१—"भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु वाले आश्रमको छोळ, भिक्षु रहित आश्रममें न जाना चाहिये। 850

२—"भिक्षुओ संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षुवाले आश्रमको छोळ जो आश्रम भी नहीं है और जहाँ भिक्षु भी नहीं है वहाँ नहीं जाना चाहिये। 851

३—"भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु वाले आश्रमसे न भिक्षु रहित आश्रममें जाना चाहिये और न वहाँ ही जाना चाहिये जो आश्रम नहीं है। 852

४—"भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन जो (भिक्षु) आश्रम नहीं है किन्तु वहाँ भिक्षु रहते हैं, ऐसे स्थानसे भिक्षु-रहित आश्रममें नहीं जाना चाहिये। 853

५—"भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन ऐसे स्थान से जो (भिक्षु) आश्रम नहीं है किन्तु जहाँ भिक्षु रहते हैं ऐसे स्थानसे उस स्थानको नहीं जाना चाहिये जो न (भिक्षु-) आश्रम है और न जहाँ भिक्षु रहते हैं। 854

६—"भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन जो (भिक्षु–) आश्रम नहीं है किन्तु जहाँ भिक्षु हैं, ऐसे स्थानसे उन स्थानोंको नहीं जाना चाहिये जो

भिक्षु-रहित (भिक्षु–) आश्रम है। या जो भिक्षु-रहित अन्-आश्रम है। 855

७—" भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु-वाले आश्रमको छोळ अन्-आश्रम या भिक्षु-रहित आश्रममें न जाना चाहिये। 856

८—" भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षुवाले आश्रम या अनाश्रमको छोळकर भिक्षु-रहित अन्-आश्रममें नहीं जाना चाहिये। 857

९—" भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु-वाले आश्रम या अनाश्रमसे भिक्षु-रहित आश्रम या अनाश्रममें नहीं जाना चाहिये। 858

१०—" भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु-वाले आश्रमसे उस भिक्षुवाले आश्रममें जाना चाहिये जहाँपर कि नाना सहनिवासवाले भिक्षु हों।

११—" भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षुवाले आश्रमसे उस भिक्षुवाले अनाश्रममें नहीं जाना चाहिये जहाँ कि नाना सहनिवासवाले भिक्षु हों। 859

१२—"भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्ना-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु-वाले आश्रमसे ऐसे भिक्षुवाले आश्रम या अनाश्रममें नहीं जाना चाहिये जहाँपर नाना सहनिवासवाले भिक्षु हों। 860

१३—" भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु-वाले अन्-आश्रमसे ऐसे भिक्षुवाले आश्रममें नहीं जाना चाहिये, जहाँ नाना सहनिवासवाले भिक्षु हों। 861

१४—" भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षुवाले अन्-आश्रमसे ऐसे भिक्षुवाले आश्रम या अन्-आश्रममें नहीं जाना चाहिये जहाँ कि नाना सहनिवासवाले भिक्षु हों। 862

१५—" भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षुवाले आश्रम या अन्-आश्रमसे ऐसे भिक्षुवाले अन्-आश्रममें नहीं जाना चाहिये जहाँ कि नाना सहनिवासवाले भिक्षु हों। 863

१६—"भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु-वाले आश्रम या अन्-आश्रमसे भिक्षुवाले ऐसे आश्रम या अन्-आश्रम में नहीं जाना चाहिये जहाँ कि नाना सहनिवासवाले भिक्षु हों। 864

१७—" भिक्षुओ ! उपोसथके दिन भिक्षुवाले आश्रमसे ऐसे भिक्षुवाले आश्रममें जाना चाहिये जहाँपर एक प्रकारके सहनिवासवाले भिक्षु हों, और जहाँपर जानेके लिये वह उसी दिन पहुँच जा सके। 865

१८—" भिक्षुओ ! उपोसथके दिन भिक्षुवाले आश्रमसे ऐसे भिक्षुवाले अन्-आश्रममें जाना चाहिये ०। 866

१९—" भिक्षुओ ! उपोसथके दिन भिक्षुवाले आश्रमसे भिक्षुवाले ऐसे आश्रम या अन्-आश्रममें जाना चाहिये जहाँपर कि एक सहनिवासवाले भिक्षु हों और जहाँपरके लिये वह समझे कि उसी दिन पहुँच सकता है। 867

२०—" भिक्षुओ ! उपोसथके दिन भिक्षुवाले अनावाससे ऐसे भिक्षुवाले आवासमें जाना चाहिये ०। 868

२१—" ० भिक्षुवाले अनाश्रमसे ऐसे भिक्षुवाले अन्-आश्रममें जाना चाहिये ०। 869

२२—" ० भिक्षुवाले अन्-आश्रम भिक्षुवाले ऐसे आश्रमसे या अन्-आश्रममें जाना चाहिये ०। 870

२३—"० भिक्षुवाले आश्रम या अन्-आश्रमसे भिक्षुवाले ऐसे आश्रममें जाना चाहिये०। 871

२४—" ० भिक्षुवाले आश्रमसे ऐसे भिक्षुवाले अन्-आश्रममें जाना चाहिये ०। 872

२५—" ० भिक्षुओ ! उपोसथके दिन भिक्षुवाले आश्रम या अनाश्रमसे भिक्षुवाले ऐसे आश्रम या अनाश्रममें जाना चाहिये जहाँपर एक जैसे सहनिवासवाले भिक्षु हों, और जहाँपरके लिये वह जानता हो कि उसी दिन पहुँच सकेगा।" 873

(४) प्रातिमोक्ष-आवृत्तिके लिये अयोग्य सभा

१—" भिक्षुओ ! जिस परिषद्में भिक्षुणी बैठी हो उसमें प्रातिमोक्ष पाठ नहीं करना चाहिये। जो पाठ करे उसे दुक्कटका दोष हो। 874

२—" ० शिक्षमाणा बैठी हो ०। 875

३—" ० श्रामणेर बैठा हो ०। 876

४—" ० श्रामणेरी बैठी हो ०। 877

५—" ० (भिक्षु) नियमोंका प्रत्याख्यान करनेवाला बैठा हो ०। 878

६—" ० अन्तिम दोष (=पाराजिक)का दोषी बैठा हो ०। 879

७—" ० दोषके न देखनेसे उत्क्षिप्त हुआ (पुरुष) बैठा हो उसमें प्रातिमोक्ष पाठ नहीं करना चाहिये। जो पाठ करे उसे धर्मानुसार (दंड) करवाना चाहिये। 880

८—" ० दोषके प्रतिकार न करनेसे उत्क्षिप्त हुआ पुरुष बैठा हो ०। 881

९—" ० बुरी धारणाके न त्यागनेसे उत्क्षिप्त हुआ पुरुष बैठा हो ०। 882

१०—" ० पंडक बैठा हो उसमें प्रातिमोक्ष पाठ नहीं करना चाहिये। जो पाठ करे उसे दुक्कट का दोष हो। 883

११—" ० चोरीसे (=अपने आप) चीवर पहन लेनेवाला (पुरुष) बैठा हो ०। 884

१२—" ० तीर्थिकोंके पास चला गया बैठा हो ०। 885

१३—" ० तिर्यग् योनिवाला (=नाग आदि) बैठा हो ०। 886

१४—" ० मातृ-घातक बैठा हो ०। 887

१५—" ० पितृ-घातक बैठा हो ०। 888

१६—" ० अर्हद्-घातक बैठा हो ०। 889

१७—" ० भिक्षुणी-दूषक बैठा हो ०। 890

१८—" ० संघमें फूट डालनेवाला बैठा हो ०। 891

१९—" ० (बुद्धके शरीरसे) लोहू निकालनेवाला बैठा हो ०। 892

२०—" ० (स्त्री-पुरुष) दोनों लिंगोंवाला बैठा हो ०। 893

२१—" ० भिक्षुओ ! परिषद्के न उठी होनेके सिवाय परिवास संबंधी शुद्धि देकर उपोसथ नहीं करना चाहिये।" 894

(५) उपोसथके दिन ही उपोसथ

"भिक्षुओ ! संघकी समग्रताके अतिरिक्त उपोसथसे भिन्न दिनको उपोसथ नहीं करना चाहिये।" 895

तृतीय भाणवार समाप्त ॥३॥

उपोसथ-क्खन्धक समाप्त ॥२॥

३—वर्षोपनायिका-स्कंधक

१—वर्षावासका विधान और उसका काल । २—बीचमें सप्ताह भरके लिये वर्षावासका तोळना
३—वर्षावास करनेके स्थान । ४—स्थान-परिवर्तनमें सदोषता और निर्दोषता ।

§ १—वर्षावासका विधान और काल

१—राजगृह

(१) वर्षावासका विधान

१—उस समय बुद्ध भगवान् रा ज गृ ह के वे णु व न क लं द क नि वा प में विहार करते थे उस समय तक भगवान्ने वर्षावास करने का विधान नहीं किया था और भिक्षु हेमन्तमें, भी ग्रीष्ममें भी, वर्षामें भी विचरण करते थे । लोग हैरान होते थे—'कैसे शाक्य-पुत्रीय श्रमण हरे तृणोंको मर्दन करते एक इन्द्रियवाले जीव (=वृक्ष-वनस्पति)को पीळा देते वहुतसे छोटे छोटे प्राणि समुदायोंको मारते हेमन्तमें भी, ग्रीष्ममें भी, वर्षामें भी विचरण करते हैं ! यह दूसरे तीर्थ (=मत) वाले जिनका धर्म अच्छी तरह व्याख्यान नहीं किया गया है वह भी वर्षावासमें लीन होते हैं, एक जगह रहते हैं यह चिळियाँ वृक्षोंके ऊपर घोंसले वनाकर वर्षावासमें लीन होती हैं, एक जगह रहती हैं किन्तु ये शाक्य-पुत्रीय श्रमण हरे तृणोंको मर्दन करते० विचरण करते हैं ।' भिक्षुओंने उन मनुष्योंके हैरान होनेको सुना । तव उन भिक्षुओंने भगवान्से यह वात कही । भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संवोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ वर्षावास करनेकी ।" 1

(२) वर्षावासका आरम्भ

१—तव भिक्षुओंको यह हुआ—'कवसे वर्षावास करना चाहिये ?'

भगवान्से यह वात कही ।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ वर्षा (ऋतु) में वर्षावास करनेकी ।" 2

२—तव भिक्षुओंको यह हुआ—'क्या है व स्सू प ना यि का (=वर्षोपनायिका=जो तिथि वर्षा को ले आती है) ?'

भगवान्से यह वात कही ।—

"भिक्षुओ ! पहिली और पिछली यह दो वर्षोपनायिका हैं । आषाढ़ पूर्णिमाके दूसरे दिनसे पहला (वर्षावास) आरम्भ करना चाहिये, या आषाढ़ पूर्णिमाके मास भर वाद पिछला (वर्षावास) आरम्भ करना चाहिये । भिक्षुओ ! यह दो (श्रावण कृष्ण-प्रतिपद् और भाद्र कृष्ण-प्रतिपद्) व र्षो-प ना यि का है ।" 3

(३) वर्षावासके बीच यात्रा नहीं

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु वर्षावास बसकर वर्षाकालके बीचहीमें विचरण करनेके लिये चल देते थे। लोग उसी प्रकार हैरान होते थे—'कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण हरे तृणोंको मर्दन करते० विचरण करते हैं !'

भिक्षुओंने उन मनुष्योंके हैरान होने..को सुना। तब जो अल्पेच्छ (=लोभ रहित) भिक्षु थे वह हैरान होते थे—'कैसे षड्वर्गीय भिक्षु वर्षावास आरम्भ करके वर्षाकालके भीतर ही विचरण करने चले जाते हैं !' तब उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही। भगवान्‌ने इसी प्रकरणमें इसी संबंधमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया।—

"भिक्षुओ ! वर्षावास आरंभ करके पहले तीन मास (श्रावण, भाद्र, आश्विन) या पिछले तीन (भाद्र, आश्विन, कार्तिक) विना एक जगह बसे विचरणके लिये नहीं जाना चाहिये। जो जाये उसे दु क्क ट का दोष हो।"4

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु वर्षावासके लिये (एक जगह) रहना नहीं चाहते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! वर्षावासके लिये (एक जगह) न-रहना, नहीं करना चाहिये। जो (वर्षावासके लिये) न रहे उसे दुक्कटका दोष हो।"5

(४) वर्षोपनायिकाको आवास नहीं छोळना

उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु वर्षावास न रखनेकी इच्छासे व र्षो प ना यि का के दिन ही जान बूझकर आश्रम छोळ देते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! वर्षावास न रखनेकी इच्छासे वर्षोपनायिकाके दिन जान बूझकर आश्रमको नहीं छोळना चाहिये। जो छोळे उसको दुक्कटका दोष हो।"6

(५) राजकीय अधिकमासका स्वीकार

उस समय मगधराज सेनिय बि म्बि सा र ने वर्षमें (अधिकमास) जोळनेकी इच्छासे भिक्षुओंके पास संदेश भेजा—'क्यों न आर्य लोग आनेवाली पूर्णिमासे व र्षा वा स आरम्भ करें।' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ (अधिक मासके विषय में) राजाओंका अनुसरण करनेकी।" 7

§२—बीचमें सप्ताह भरके लिये वर्षावासका तोळना

२—*श्रावस्ती*

(१) संदेश मिलनेपर सात दिनके लिये बाहर जाना

तब भगवान् रा ज गृ ह में इच्छानुसार विहार करके श्रा व स्ती में विचरण करने चल दिये। क्रमशः विचरण करते जहाँ श्रा व स्ती है वहाँ पहुँचे और वहाँ भगवान् श्रा व स्ती में अ ना थ पि डि क के आराम जे त व न में विहार करते थे। उस समय को स ल देशमें उ द य न उपासकने संघके लिये विहार (=निवास-स्थान=आश्रम) बनवाये थे। उसने भिक्षुओंके पास संदेश भेजा—'भदन्त लोग आवें। मैं दान देना चाहता हूँ, धर्मोपदेश सुनना चाहता हूँ, और भिक्षुओंका दर्शन करना चाहता हूँ।' भिक्षुओंने ऐसा कहा—'आवुस ! भगवान्‌ने विधान किया है कि व र्षा वा स आरंभ

करके पहले तीन मास या पिछले तीन मास बिना वसे विचरण करनेके लिये नहीं चल देना चाहिये। उदयन उपासक तब तक प्रतीक्षा करे, जब तक कि भिक्षु वर्षावास करते हैं। वर्षावास समाप्त करके वे आयेंगे। यदि उसको काम करनेकी शीघ्रताहो तो वहीं आश्रम-वासी भिक्षुओंके पास विहार की प्रतिष्ठा करानी चाहिये।'

(यह सुन कर) उदयन उपासक हैरान ··· होता था—'कैसे भदन्त लोग मेरे संदेश भेजनेपर नहीं आते! मैं (दान-)दायक, (कर्म-)कारक, और संघका सेवक हूँ।' भिक्षुओंने उदयन उपासक के हैरान ... होनेको सुना। तब उन्होंने भगवान्‌से यह बात कही। भगवान्‌ने उसी संबंधमें उसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया।—

१—"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, सात (व्यक्तियों)के सप्ताह भरके कामके लिये संदेश भेजनेपर जानेकी, किन्तु बिना संदेश भेजे नहीं—(१) भिक्षुका (काम हो), (२) भिक्षुणीका (काम हो), (३) शिक्षमाणाका (कामहो), (४) श्रामणेरका (काम हो), (५) श्रामणेरीका (काम हो), (६) उपासकका (काम हो), (७) उपासिकाका (काम हो); भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, इन सातोंका सप्ताह भरका काम होनेपर संदेश भेजनेपर जानेकी, किन्तु बिना संदेश भेजे नहीं। सप्ताह भर रहकर फिर लौट आना चाहिये। 8

२—(क)। "जब भिक्षुओ! (किसी) उपासकने संघके लिये विहार बनवाया हो और यदि वह भिक्षुओंके पास संदेश भेजे—'भदन्त लोग आवें, मैं दान देना चाहता हूँ, धर्मोपदेश सुनना चाहता हूँ, और भिक्षुओंका दर्शन करना चाहता हूँ'; तो भिक्षुओ! संदेश भेजनेपर सप्ताह भरके कामके लिये जाना चाहिये, किन्तु संदेश न भेजनेपर नहीं (जाना चाहिये) और सप्ताह भरमें लौट आना चाहिये। 9

(ख) "यदि भिक्षुओ! (एक) उपासकने संघके लिये अटारी (अड्ढयोग) बनवाई हो, प्रासाद, हर्म्य, गुहा, परिवेण (=आँगनदार घर), कोठरी, उपस्थान-शाला (=चौपाल), अग्नि-शाला, कप्पियकुटी (=भंडार), पाखाना, (=बच्च-कुटी), चंक्रम (=टहलनेकी जगह), चंक्रमन-शाला (=टहलनेकी शाला), उदपान (=प्याव), उदपान-शाला, जन्ताघर (=स्नानगृह), जन्ताघर-शाला, पुष्करिणी, मंडप, आराम (=बाग), और आराम-वस्तु (=बागके भीतरके घर) बनवाये हों; और वह भिक्षुओंके पास संदेश भेजे—'भदन्त लोग आयें, मैं दान देना चाहता हूँ, धर्मोपदेश सुनना चाहता हूँ, भिक्षुओंका दर्शन करना चाहता हूँ,।'—तो भिक्षुओ! संदेश मिलनेपर सप्ताह भरके कामके लिये जाना चाहिये; बिना संदेश भेजे नहीं (जाना चाहिये); सप्ताह भरमें लौट आना चाहिये। 10

(ग) "यदि भिक्षुओ! (एक) उपासकने बहुतसे भिक्षुओंके लिये अटारी० सप्ताह भरमें लौट आना चाहिये। 11

(घ) "० एक भिक्षुके लिये०। 12

(ङ) "० भिक्षुणी-संघके लिये०। 13

(च) "० बहुतसी भिक्षुणियोंके लिये०। 14

(छ) "० एक भिक्षुणीके लिये०। 15

(ज) "० बहुतसी शिक्षमाणाओंके लिये०। 16

(झ) "० एक शिक्षमाणाके लिये०। 17

(ञ) "० बहुतसे श्रामणेरोंके लिये०। 18

(ट) "० एक श्रामणेरके लिये०। 19

(ठ) " ० बहुतसी श्रामणेरियोंके लिये० । 20

(ड) " ० एक श्रामणेरीके लिये० । 21

(ढ) " यदि भिक्षुओ ! उपासकने अपने लिये घर, शयनीय-घर, उ द्दो सि त (=रातके रहनेका घर), अटारी, मा ल (=पर्णकुटी), दूकान (=आपण), आपणशाला, प्रासाद, हर्म्य, गुहा, परिवेण, कोठरी, उपस्थान-शाला, अग्नि-शाला, र स व ती (रसोईघर), पाखाना, चंक्रम, चंक्रमनशाला, प्याव, प्यावशाला (पौसला), स्नान-गृह (=जन्ताघर), जन्ताघर-शाला पुष्करिणी, मंडप, आराम, आरामवस्तु, बनवाये हो, और वह पुत्रका व्याह करनेवाला हो, या कन्याका व्याह करनेवाला हो, या रोगी हो, या उत्तम सु त्त न्तों (=बुद्धोपदेश)का पाठ करता हो; और वह भिक्षुओंके पास संदेश भेजे—'भदन्त लोग आयें०,—सप्ताह भरमें लौट आना चाहिये । 22

३—(क) "यदि भिक्षुओ ! (किसी) उपासिकाने संघके लिये विहार बनवाया हो और वह भिक्षुओंके पास संदेश भेजे—'आर्य लोग आयें, मैं दान देना चाहती हूँ, धर्मोपदेश सुनना चाहती हूँ, भिक्षुओंका दर्शन करना चाहती हूँ' तो—संदेश भेजनेपर सप्ताह भरके लिये जाना चाहिये, बिना संदेश भेजे नहीं; और सप्ताह भरमें लौट आना चाहिये । 23

(ख) "यदि भिक्षुओ ! किसी उपासिकाने संघके लिये अड्ढयोग (=अटारी)० सप्ताह भरमें लौट आना चाहिये । 24

(ग) " यदि भिक्षुओ ! किसी उपासिकाने बहुतसे भिक्षुओंके लिये० । 25

(घ) " ० एक भिक्षुके लिये० । 26

(ङ) " ० भिक्षुणीसंघके लिये० । 27

(च) " ० बहुतसी भिक्षुणियोंके लिये० । 28

(छ) " ० एक भिक्षुणीके लिये० । 29

(ज) " ० बहुतसी शिक्षमाणाओंके लिये० । 30

(झ) " ० एक शिक्षमाणाके लिये० । 31

(ञ) " ० बहुतसे श्रामणेरोंके लिये० । 32

(ट) " ० एक श्रामणेरके लिये० । 33

(ठ) " ० बहुतसी श्रामणेरियोंके लिये० । 34

(ड) " ० एक श्रामणेरीके लिये ० । 35

(ढ) " ० अपने लिये निवास घर—शयनीय घर ० । 36

(ण) " ० पुत्रका व्याह करनेवाली, या कन्याका व्याह करनेवाली हो, या रोगी हो, या उत्तम सुत्तन्तोंका पाठ करती हो और वह भिक्षुओंके पास संदेश भेजे—आर्य लोग आयें, इस सुत्तन्तको सीखें, कहीं ऐसा न हो कि यह सु त्त न्त (याद करनेवालेके बिना) नष्ट हो जाय', या उसका और कोई कृत्य करणीय हो और वह भिक्षुओंके पास संदेश भेजे—'आर्य लोग आवें, मैं दान देना चाहती हूँ, धर्मोपदेश सुनना चाहती हूँ, भिक्षुओंका दर्शन करना चाहती हूँ'—तो भिक्षुओ ! संदेश भेजनेपर सप्ताह भरके लिये जाना चाहिये, न संदेश भेजनेपर नहीं; और सप्ताह भरमें लौट आना चाहिये । 37

४—(क) " यदि भिक्षुओ ! भिक्षुने संघके लिये ० । 38

(ख) " ० यदि भिक्षुओ ! भिक्षुने बहुतसे भिक्षुओंके लिये ० । 39

(ग) " ० एक भिक्षुके लिये ० । 40

(घ) " ० भिक्षुणी-संघके लिये ० । 41

(ङ) "० बहुत सी भिक्षुणियोंके लिये ० । 42
(च) "० एक भिक्षुणीके लिये ० । 43
(छ) "० एक भिक्षुणीके लिये ० । 44
(ज) "० बहुतसे शिक्षमाणाओंके लिये ० । 45
(झ) "० एक शिक्षमाणाके लिये ० । 46
(ञ) "० बहुतसे श्रामणेरोंके लिये ० । 47
(ट) "० एक श्रामणेरके लिये ० । 48
(ठ) "० बहुतसी श्रामणेरियों के लिये ० । 49
(ड) "० एक श्रामणेरीके लिये ० । 50
(ढ) "० अपने लिये ० । 51

५—(क) "यदि भिक्षुओ ! भिक्षुणीने संघके लिये ० ।52 ०[1] (ढ) अपने लिये ०' । 65
६—(क) "यदि भिक्षुओ ! शिक्षमाणाने ० । ० ।[1]66 (ढ) ० अपने लिये । 79
७—(क) "यदि भिक्षुओ ! श्रामणेरने ० । ०[1]80 (ढ) ० अपने लिये ० । 93
८—(क) "यदि भिक्षुओ ! श्रामणेरीने ० । ०[1] 94 (ढ) ० अपने लिये ० ।" 107

(२) संदेशके बिना भी सात दिनके लिये बाहर जाना

उस समय एक भिक्षु रोगी था । उसने भिक्षुओंके पास संदेश भेजा—'मैं रोगी हूँ, भिक्षु लोग आवें । भिक्षुओंके आगमनको चाहता हूँ ।' भगवान्से यह बात कही ।

१—"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ पाँच (व्यक्तियों)के सप्ताह भरके कामके लिये संदेश भेजे विना भी जानेकी । संदेश भेजनेपरकी तो बात ही क्या—भिक्षुके, (कामके लिये), भिक्षुणीके, शिक्षमाणाके, श्रामणेरके और श्रामणेरीके । भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ इन पाँचोंके सप्ताह भरके कामके लिये विना संदेश भेजे भी जानेकी । संदेश भेजनेपरकी तो बात ही क्या । सप्ताहमें लौटना चाहिये । 108

२—(क) "भिक्षुओ ! यदि कोई भिक्षु रोगी हो और वह भिक्षुओंके पास संदेश भेजे—'मैं रोगी हूँ, भिक्षु लोग आवें; मैं भिक्षुओंका आगमन चाहता हूँ, तो भिक्षुओ ! सप्ताह भरके कामके लिये विना संदेश भेजे भी जाना चाहिये, संदेश भेजनेपर तो बात ही क्या । रोगीके पथ्यका प्रबंध करूँगा, रोगीके सुश्रूषकका प्रबंध करूँगा, रोगीके लिये ओषधका प्रबंध करूँगा, देखभाल करूँगा या सुश्रूषा करूँगा—(इस विचारसे जाना चाहिये) सप्ताहमें लौट आना चाहिये । 109

(ख) "यदि भिक्षुओ ! भिक्षुका मन (संन्याससे) उचट गया हो और वह भिक्षुओंके पास संदेश भेजे—'मेरा मन उचट गया है, भिक्षु लोग आवें, भिक्षुओंका आगमन चाहता हूँ, तो भिक्षुओ ! विना संदेश भेजे भी सप्ताह भरके कामके लिये जाना चाहिये । संदेश भेजनेपर तो बात ही क्या । (यह सोचकर कि) उचाटको दूर करूँगा या दूर करवाऊँगा, या धार्मिक कथा कहूँगा; सप्ताहमें लौट आना चाहिये । 110

(ग) "यदि भिक्षुओ ! (किसी) भिक्षुको संदेह (=कौकृत्य) उत्पन्न हुआ हो और वह भिक्षुओंके पास संदेश भेजे, मुझे संदेह (=कौकृत्य) उत्पन्न हुआ है ० (यह सोचकर कि) संदेहको

[1]ऊपरकी तरह यहाँ भी दुहराना चाहिये ।

हटाऊँगा या हटवाऊँगा, या धर्मकी वात सुनाऊँगा ०। 111

(घ) "यदि भिक्षुओ! भिक्षुको वुरी धारणा उत्पन्न हुई हो (यह सोचकर कि) वुरी धारणाको दूर करूँगा या कराऊँगा, या उसे धर्मकी वात सुनाऊँगा ०। 112

(ङ) "यदि भिक्षुओ! भिक्षुने प रि वा स देने योग्य वळा दोष किया हो और वह भिक्षुओंके पास संदेश भेजे—मैंने परिवासके योग्य वळा दोष किया है ० (यह सोचकर कि) परिवास देनेका यत्न करूँगा या सुनाऊँगा, या गणके सामने होऊँगा ०। 113

(च) "यदि भिक्षुओ! भिक्षु मू ल प्र ति क र्ष ण (दंड)के योग्य हो और वह भिक्षुओंके पास संदेश भेजे—मैं मूल प्रतिकर्षणार्ह हूँ ० (यह सोचकर कि) मूल प्रतिकर्षणके लिये प्रयत्न करूँगा या सुनाऊँगा या गणके सम्मुख होऊँगा ०। 114

(छ) "यदि भिक्षुओ! (कोई) भिक्षु मा न त्वा र्ह (=मानत्व दंड देनेके योग्य)हो।० 115

(ज) "यदि भिक्षुओ! (कोई) भिक्षु अ ब्भा न (=आह्वान) के योग्य हो ०। 116

(झ) "यदि भिक्षुओ! संघ किसी भिक्षुका (दंड) कर्म—त र्ज नी य, नि य स्स, प्र व्रा ज-नीय, प्र ति सा र णी य, उ त्क्षे प णी य—करना चाहे और वह भिक्षुओंके पास संदेश भेजे—संघ मेरा (दंड-)[1] कर्म करना चाहता है ० (यह विचारकर कि) संघ (दंड-)कर्म न करे या हल्का (दंड) करे। और सप्ताहमें लौट आना चाहिये। 117

(ञ) "यदि भिक्षुओ! संघने भिक्षुको त र्ज नी य ० (दंड-)कर्म कर दिया हो, और वह भिक्षुओंके पास संदेश भेजे—'संघने मुझे (दंड-)कर्म कर दिया। भिक्षु लोग आवें। मैं भिक्षुओंका आगमन चाहता हूँ; तो भिक्षुओ! विना संदेश भेजे भी सप्ताह भरके कामके लिये जाना चाहिये संदेश भेजनेपर तो बात ही क्या। ऐसा (प्रयत्न) करनेके लिये कि (वह भिक्षु) अच्छी तरह बर्ताव करे, रोवाँ गिरावे, निस्तारके लिये बर्ताव करे, (जिसमें कि) संघ उस दंडको उठा ले। सप्ताहमें लौट आना चाहिये। 118

३—(क) यदि भिक्षुओ! कोई भिक्षुणी रोगिणी हो ०[1]। 128

४—(क) "यदि भिक्षुओ! शिक्षमाणा रोगिणी हो ०।[1] (ङ) शिक्षमाणाकी शिक्षा टूट गई हो ० (यह सोचकर कि) उसे शिक्षा (=आचार-नियम)के ग्रहण करानेका प्रयत्न करूँगा ०। (च) यदि भिक्षुओ! शिक्षमाणा उपसंपदा ग्रहण करना (=भिक्षुणी बनना) चाहती है और वह भिक्षुओंके पास संदेश भेजे—'मैं उपसंपदा ग्रहण करना चाहती हूँ, आर्य लोग आयें। मैं आर्योका आगमन चाहती हूँ' तो भिक्षुओ! विना संदेश भेजे भी सप्ताह भरके कामके लिये जाना चाहिये। संदेश भेजने-पर तो वात ही क्या। (यह सोचकर कि) उपसंपदा ग्रहणमें उत्सुकता पैदा करूँगा, सुनाऊँगा, या गणके सामने होऊँगा, सप्ताहमें लौट आना चाहिये। 133

५—(क) "यदि भिक्षुओ! श्रामणेर रोगी हो ०[1] (ङ)० श्रामणेर वर्ष पूछना चाहे और वह भिक्षुओंके पास दूत भेजे ० (यह सोचकर कि) उससे पूछूँगा, या उसे बतलाऊँगा ०। या श्रामणेर उपसंपदा ग्रहण करना चाहता है ०। 138

७—"यदि भिक्षुओ! श्रामणेरी हो ०[2]।"[3]

८—उस समय किसी भिक्षुकी माता रोगिणी थी। उसने पुत्रके पास संदेश भेजा—मैं रोगिणी

---

[1] ऊपर भिक्षुके लिये आई हुई (ञ) तक सभी बातें यहाँ भी दुहरानी चाहिए।

[2] भिक्षुके लिये ऊपर (घ) तक आई हुई सभी बातें यहाँ भी दुहरानी चाहिए।

[3] श्रामणेरकी तरह यहाँ भी दुहराना चाहिये।

हूँ, मेरा पुत्र आये, मैं पुत्रका आगमन चाहती हूँ। तब उस भिक्षुको हुआ—'भगवान्‌ने विधान किया है संदेश भेजनेपर सात जनोंके सप्ताह भरके कामके लिये जानेको। संदेश न भेजनेपर नहीं; और सन्देश भेजे विना भी पाँच जनोंके सप्ताह भरके कामके लिये जानेको; संदेश भेजनेपर तो बात ही क्या। और यह मेरी माता रोगिणी है, किन्तु वह उपासिका (=बौद्ध स्त्री) नहीं है। मुझे कैसे करना चाहिये ?' भगवान्‌से यह बात कही —

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ सात जनोंके सप्ताह भरके कामके लिये, विना संदेश भेजे भी जानेकी। संदेश भेजनेपर तो बात ही क्या—'भिक्षु, भिक्षुणी, शिक्षमाणा, श्रामणेर, श्रामणेरी, माता और पिता (के कामके लिये)। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ इन सातोंके सप्ताह भरके कामके लिये विना संदेश भेजे भी जानेकी; संदेश भेजनेपर तो बात ही क्या। सप्ताह में लौट आना चाहिये।139

९—"यदि भिक्षुओ ! (किसी) भिक्षुकी माता रोगिणी हो, और वह पुत्रके पास संदेश भेजे—'मैं रोगिणी हूँ, मेरा पुत्र आवे, मैं पुत्रका आगमन चाहती हूँ;' तो भिक्षुओ ! सप्ताह भरके कामके लिये विना संदेश पाये भी जाना चाहिये; संदेश पानेकी तो बात ही क्या। (इस विचारसे कि) पथ्यका प्रबंध करूँगा, रोगिणीकी सुश्रूषाका प्रबन्ध करूँगा, औषधिका प्रबंध करूँगा, देखभाल करूँगा या सेवा करूँगा। सप्ताहमें लौट आना चाहिये। 140

१०—"यदि भिक्षुओ ! (किसी) भिक्षुका पिता रोगी हो ०[1]।" 141

(३) संदेश मिलनेपर सात दिनके लिये बाहर जाना

१—"यदि भिक्षुओ ! भिक्षुका भाई बीमार हो और वह भाईके पास संदेश भेजे—'मैं रोगी हूँ, मेरा भाई आये, मैं भाईका आगमन चाहता हूँ, तो भिक्षुओ ! सप्ताह भरके कामके लिये संदेश भेजनेपर जाना चाहिये, विना संदेशके नहीं; और सप्ताह भरमें लौट आना चाहिये। 142

२—" यदि भिक्षुओ ! (किसी) भिक्षुका जाति-भाई बीमार हो और वह भिक्षुके पास संदेश भेजे—'मैं बीमार हूँ, भदन्त आयें, मैं भदंतका आगमन चाहता हूँ' तो भिक्षुओ ! सप्ताह भरके कामके लिये संदेश भेजनेपर जाना चाहिये संदेश न भेजनेपर नहीं। और सप्ताहमें लौट आना चाहिये। 143

३—" यदि भिक्षुओ ! भिक्षुका भृतिक (=विहारका नौकर) बीमार हो और वह भिक्षुओंके पास संदेश भेजे—'मैं बीमार हूँ, भदन्त लोग आयें, मैं भदन्तोंका आगमन चहता हूँ;' तो भिक्षुओ ! संदेश भेजनेपर सप्ताह भरके कामके लिये जाना चाहिये। संदेश न भेजनेपर नहीं। सप्ताहमें लौट आना चाहिये।" 144

४—उस समय संघका (बळा) विहार टूट रहा था। एक उपासकने जंगलमें (लकळी) सामान कटवाया था। उसने भिक्षुओंके पास सन्देश भेजा—'यदि भदन्त लोग इस सामानको ले जा सकें तो मैं इसे उन्हें देता हूँ;' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, संघके कामसे जानेको (किन्तु) सप्ताहमें लौट आना चाहिये।" 145

वर्षावास भाणवार समाप्त

---

[1] माताकी तरह यहाँ भी दुहराना चाहिये।

§३–वर्षावास करनेके स्थान

(१) विशेष परिस्थितिमें स्थान-त्याग

उस समय कोसल देशके एक (भिक्षु)आश्रममें वर्षावास करनेवाले भिक्षुओंको जंगली जानवरों (=व्यालों)ने उत्पीळित किया, पकळा, और मारा भी। भगवान्से यह बात कही।—

१—"यदि भिक्षुओ ! वर्षावास करते भिक्षुओंको जंगली जानवर पीळित करते, पकळते और मारते हैं तो इस विघ्न-बाधाके कारण, वहाँसे चल देना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नहीं (करना चाहिये)। 146

२—यदि भिक्षुओ ! वर्षावास करते भिक्षुओंको सरीसृप (=साँप-बिच्छू) पीळित करें, डसे और मारें तो इस विघ्न-बाधाके कारण, वहाँसे चल देना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नहीं (करना चाहिये)। 147

३—"० चोर ०।" 148

४—"० पिशाच ०। 149

५—"यदि भिक्षुओ ! वर्षावास करनेवाले भिक्षुओंका ग्राम आगसे जल जाये और भिक्षुओं को भिक्षाकी तकलीफ़ हो तो इस विघ्न-बाधाके कारण वहाँसे चल देना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नहीं (करना चाहिये)। 150

६—"० भिक्षुओंका आसन और निवास आगसे जल गया हो और भिक्षु आसन और निवासके बिना तकलीफ़ पाते हों ०। 151

७—"० भिक्षुओंका गाँव जलसे डूब गया हो और भिक्षुओंको भिक्षाकी तकलीफ़ हो ०। 152

८—"० भिक्षुओंका आसन और निवास पानीसे डूब गया हो, और भिक्षु आश्रम और निवासके बिना तकलीफ़ पातेहों ०।" 153

(२) गाँव उजळनेपर गाँववालोंके साथ

१—उस समय एक(भिक्षु) आवासमें वर्षावास करते समय भिक्षुओंका गाँव चोरोंने उठा दिया। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, जहाँ वह गाँव गया वहाँ जानेकी।" 154

२—० गाँव दो टुकळे हो गया। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, जिधर अधिक संख्या है, उधर जानेकी।" 155

३—अधिक संख्यावाले श्रद्धा-रहित, प्रसन्नता-रहित थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, जिधर श्रद्धावान्, प्रसन्नतावान् हैं उधर जानेकी।" 156

(३) स्थानकी प्रतिकूलतासे ग्राम-त्याग

१—उस समय कोसल देशके एक(भिक्षु-)आवासमें वर्षावास करते भिक्षुओंको आवश्यकतानुसार रूखा-अच्छा भोजन भी पूरा नहीं मिला। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! यदि वर्षावास करनेवाले भिक्षुओंको आवश्यकतानुसार रूखा-अच्छा भोजन भी पूरा नहीं मिलता तो इसी विघ्न-बाधाके कारण वहाँसे चल देना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नहीं। 157

२—"यदि भिक्षुओ ! वर्षावास करनेवाले भिक्षु आवश्यकतानुसार अच्छा या बुरा भोजन पूरा पाते हैं किन्तु वह भोजन अनुकूल नहीं है तो इसी विघ्न-बाधाके कारण वहाँसे चल देना चाहिये, वर्षावास टूटनेका डर नहीं। 158

३—"० भोजन पूरा पाते हैं और वह भोजन अनुकूल भी होता है, किन्तु अनुकूल ओषध नहीं पाते तो इसी विघ्न-बाधा ०। 159

४—"० अनुकूल ओषध भी पाते हैं लेकिन अनुकूल उपस्थाक (=अन्न, भोजन देनेवाला गृहस्थ) नहीं पाते तो इसी विघ्न-बाधा०।" 160

(४) व्यक्तिको प्रतिकूलतासे स्थान-त्याग

१—"यदि भिक्षुओ ! वर्षावास करनेवाले भिक्षुको स्त्री बुलाती है—'आओ, भन्ते ! तुम्हें हिरण्य (=अशर्फ़ी) दूँगी, तुम्हें सुवर्ण दूँगी, तुम्हें खेत, मकान, बैल, गाय, दास, दासी, भार्या बनानेके लिये कन्या दूँगी या मैं तुम्हारी हूँगी या तुम्हारे लिये दूसरी भार्या लाऊँगी,' तब यदि भिक्षुके (मनमें) ऐसा हो—'भगवान्‌ने चित्तको जल्दी बदल जानेवाला कहा है, क्या जानें मेरे ब्रह्मचर्यमें विघ्न हो' तो वहाँसे चल देना चाहिये; वर्षावासके टूटनेका डर नहीं। 161

२—"० भिक्षुको वेश्या बुलाती है ०[1]। 162

३—"० भिक्षुको स्थूलकुमारी (=अधिक अवस्थावाली अविवाहिता स्त्री) बुलाती है ०[1]। 163

४—"० भिक्षुको पंडक (हिंजळा) बुलाता है ०[1]। 164

५—"० भिक्षुको जातिवाले बुलाते हैं ०[1]। 165

६—"० भिक्षुको राजा बुलाते हैं ०[1]। 166

७—"० भिक्षुको चोर बुलाते हैं ०[1]। 167

८—"० भिक्षुको बदमाश बुलाते हैं ०[1]। 168

९—"० यदि भिक्षुओ ! वर्षावास करनेवाला भिक्षु जिसका स्वामी नहीं, ऐसे ख़ज़ानेको देखे। तब भिक्षुको ऐसा हो—'भगवान्‌ने चित्तको जल्दी बदल जानेवाला कहा है, क्या जाने मेरे ब्रह्मचर्यमें विघ्न हो।' तो वहाँसे चल देना चाहिये; वर्षावासके टूटनेका डर नहीं।" 169

(५) संघ-भेद रोकनेके लिये स्थान-त्याग

१—"यदि भिक्षुओ ! वर्षावास करनेवाला भिक्षु बहुतसे भिक्षुओंको संघमें फूट डालनेकी कोशिश करते देखे और वहाँ भिक्षुको ऐसा हो—'संघ में फूट डालनेको भगवान्‌ने भारी (दोष) कहा है, मेरे सामनेही संघमें कहीं फूट न पळ जाय;' (यह सोच) वहाँसे चल देना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नहीं। 170

२—"यदि भिक्षुओ ! वर्षावास करता भिक्षु सुने कि अमुक (भिक्षु-)आवासमें बहुतसे भिक्षु संघमें फूट डालनेकी कोशिश कर रहे हैं ०। 171

३—"० भिक्षु सुनता है कि अमुक (भिक्षु-)आवासमें बहुतसे भिक्षु संघमें फूट डालनेकी कोशिश कर रहे हैं, और यदि भिक्षुको ऐसा हो—'यह भिक्षु मेरे मित्र हैं। यदि मैं इनको कहूँ कि आवुसो ! भगवान्‌ने संघमें फूट डालनेको भारी (अपराध) कहा है, मत आप आयुष्मान् संघमें

[1] ऊपर 'स्त्री' हीकी तरह यहाँ भी पढ़ना चाहिये।

फूट डालनेकी इच्छा करें;' तो वह मेरी बातको करेंगे, कान देकर सुनेंगे, ध्यान देंगे, तो वहाँ चला जाना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नहीं। 172

४—"यदि भिक्षुओ! वर्षावास करनेवाला भिक्षु सुने कि अमुक (भिक्षु-)आवासमें बहुतसे भिक्षु संघमें फूट डालनेकी कोशिश कर रहे हैं, और यदि भिक्षुको ऐसा हो—'वे भिक्षु मेरे मित्र नहीं हैं, किन्तु उनके मित्र मेरे मित्र हैं। यदि मैं उनके मित्रोंसे कहूँगा तो वे इन्हें कहेंगे—'आवुसो! भगवान्‌ने संघमें फूट डालनेको भारी (अपराध) कहा है, मत आप आयुष्मान् संघमें फूट डालनेकी इच्छा करें;' तो वह उनकी बातको करेंगे, कान देकर सुनेंगे, ध्यान देंगे, तो वहाँ चला जाना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नहीं। 173

५—"यदि भिक्षुओ! वर्षावास करनेवाला भिक्षु सुने—'अमुक (भिक्षु-)आवासमें बहुतसे भिक्षुओंने संघमें फूट डाल दी। यदि भिक्षुको ऐसा हो—'यह भिक्षु मेरे मित्र हैं ०[1]। 174

६—" ० भिक्षु सुने ०। यदि भिक्षुको ऐसा हो—'वे भिक्षु मेरे मित्र नहीं हैं किन्तु उनके मित्र मेरे मित्र ०[1]। 175

७—" ० भिक्षु सुने—अमुक (भिक्षुणी-)आवासमें बहुतसी भिक्षुणियाँ संघमें फूट डालनेकी कोशिश कर रही हैं। यदि भिक्षुको ऐसा हो—वे भिक्षुणियाँ मेरी मित्र हैं। यदि मैं उनसे कहूँगा—भगिनियो! भगवान्‌ने संघमें फूट डालनेको भारी (अपराध) कहा है० ध्यान देंगी, तो वहाँ चला जाना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नहीं। 176

८—"० वे भिक्षुणियाँ मेरी मित्र नहीं हैं, किन्तु उनके मित्र मेरे मित्र हैं। यदि मैं उनके मित्रोंसे कहूँगा तो वे इन्हें कहेंगे ० ध्यान देंगी०। 177

९—"० भिक्षु सुने—अमुक (भिक्षुणी-)आवासमें बहुतसी भिक्षुणियोंने संघमें फूट डाल दी है और यदि भिक्षुको ऐसा हो—वे भिक्षुणियाँ मेरी मित्र हैं०। 178

१०—"० भिक्षु सुने—अमुक (भिक्षुणी-)आवासमें बहुतसी भिक्षुणियोंने संघमें फूट डाल दी है और यदि भिक्षुको ऐसा हो—वे भिक्षुणियाँ मेरी मित्र नहीं हैं, किन्तु उनके मित्र मेरे मित्र हैं०।" 179

(६) घुमन्तू गृहस्थोंके साथ-साथ वर्षावास

१—(क) उस समय एक भिक्षु व्रज (=गायोंके रेवळ)में वर्षावास करना चाहता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ व्रजमें वर्षावास करनेकी।" 180

(ख) व्रज उठकर वहाँसे चला गया। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, जहाँ व्रज उठकर जाए वहाँ जानेकी।" 181

२—उस समय एक भिक्षु वर्षोपनायिकाके समीप आनेपर सार्थ (=कारवाँ)के साथ जाना चाहता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सार्थके साथ वर्षावास करनेकी।" 182

३—उस समय एक भिक्षु वर्षोपनायिकाके समीप आनेपर नावसे जाना चाहता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ नावपर वर्षावास करनेकी।" 183

---

[1] ऊपरकी तरह यहाँ दुहराओ।

(७) वर्षावासके लिए अयोग्य स्थान

१—उस समय भिक्षु वृक्षोंके कोटरमें वर्षावास करते थे। लोग देखकर .. हैरान होते थे—कैसे (यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण वृक्षोंके कोटरमें वर्षावास करते हैं) जैसे कि पिशाच !' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! वृक्षके कोटरमें वर्षावास नहीं करना चाहिये; जो करे उसको दुक्कट का दोष हो।" 184

२—उस समय भिक्षु वृक्ष-वाटिकामें वर्षावास करते थे। लोग हैरान .. होते थे—(कैसे यह शाक्यपुत्रीय श्रमण वृक्ष-वाटिकामें वर्षावास करते हैं) जैसेकि शिकारी ! भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! वृक्ष-वाटिकामें वर्षावास नहीं करना चाहिये। जो करे उसे दुक्कट का दोष है।" 185

३—उस समय भिक्षु चौळेमें वर्षावास करते थे। वर्षा आनेपर वृक्षके नीचेकी ओर भी भागते थे; नीमके झुरमुटकी ओर भी भागते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! चौळेमें वर्षावास नहीं करना चाहिये; जो करे उसे दुक्कट का दोष हो।" 186

४—उस समय भिक्षु बिना घर-मकान के वर्षावास करते थे और सर्दीसे भी तकलीफ़ पाते थे गर्मीसे भी तकलीफ़ पाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! बिना घर-मकानके वर्षावास नहीं करना चाहिये। जो करे उसे दुक्कट का दोष हो।" 187

५—उस समय भिक्षु मुर्दो (के रखने)की कुटियोंमें वर्षावास करते थे। लोग हैरान .. होते थे—(कैसे यह शाक्यपुत्रीय श्रमण मुर्दोकी कुटियोंमें वर्षावास करते हैं) जैसेकि मुर्दा जलानेवाले शवदाहक ! भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! मुर्दोकी कुटियोंमें वर्षावास नहीं करना चाहियै, जो करे उसे दुक्कट का दोष हो।" 188

६—उस समय भिक्षु छप्परोंमें वर्षावास करते थे। लोग हैरान .. होते थे—(०) जैसेकि चरवाहे ! भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! छप्परोंमें वर्षावास नहीं करना चाहियें। जो करे उसे दुक्कट का दोष हो।" 189

७—उस समय भिक्षु चाटी (=अनाज रखनेका मिट्टीका बड़ा कुंडा जिसे कहीं-कहीं छोंळ भी कहते हैं)में वर्षावास करते थे। लोग हैरान .. होते थे ० जैसे तीर्थिक[1] ! भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! चाटी में वर्षावास नहीं करना चाहिये ० दुक्कट०।" 190

(८) वर्षावासमें प्रव्रज्या

१—उस समय श्रावस्ती में संघने प्रतिज्ञा (=कतिका) की थी—'वर्षाके भीतर प्रव्रज्या नहीं देंगे।' विशाखा मृगारमाताके नातीने भिक्षुओंके पास जाकर प्रव्रज्या माँगी। भिक्षुओंने कहा—'आवुस ! संघने प्रतिज्ञा की है कि वर्षाके भीतर प्रव्रज्या न देगें। आवुस तब तक प्रतीक्षा करो, जब तक कि भिक्षु वर्षावास कर लेते हैं। वर्षा समाप्त होनेपर वे प्रव्रज्या देंगे।' तब भिक्षुओंने वर्षावास करके विशाखा मृगारमाताके नातीसे कहा—'अब आओ आवुस ! प्रव्रज्या लो।' उसने

[1] बुद्धके समयके आजीवक, निर्ग्रन्थ (=जैन) आदि साधु-सम्प्रदाय।

कहा—'भन्ते ! यदि मैं पहले प्रव्रजित हुआ होता तो (भिक्षु जीवनमें) रमण करता; किन्तु अब मैं नहीं प्रव्रजित होऊँगा।' विशाखा मृगारमाता हैरान . . होती थी—कैसे आर्य लोग ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं कि वर्षाके भीतर प्रव्रज्या नहीं देंगे ! कौन काल ऐसा है कि जिसमें धर्माचरण नहीं किया जाय ?' भिक्षुओंने विशाखा मृगारमाताके हैरान . . होनेको सुना। तब उन्होंने यह बात भगवानसे कही।—

"भिक्षुओ ! ऐसी प्रतिज्ञा नहीं करनी चाहिये कि वर्षाके भीतर हम प्रव्रज्या नहीं देंगे। जो करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 191

§४—स्थान-परिवर्तनमें सदोषता और निर्दोषता

(१) पहिली वर्षोपनायिकासे वचन दे वर्षावासमें व्यतिक्रम निषिद्ध

१—उस समय आयुष्मान् उपनंद शाक्यपुत्रने राजा प्रसेनजित् कोसलसे पहिली वर्षोपनायिका से वर्षावास करनेका वचन दिया था। और उन्होंने उस आवास (भिक्षु-आश्रम)में जाते वक्त रास्तेमें बहुत चीवरोंवाला एक आवास देखा। तब उनको हुआ—क्यों न मैं दोनों आवासोंमें वर्षावास करूँ ? इस प्रकार मुझे बहुत चीवर मिलेगा। तब वह दोनों आवासोंमें वर्षावास करने लगे। राजा प्र से न जि त् को स ल हैरान ... होता था—'कैसे आर्य उ प नं द शाक्यपुत्र हमें वर्षावासका वचन देकर झूठ करते हैं। भगवान्ने अनेक प्रकारसे झूठ बोलनेकी निंदा की है, और झूठ बोलनेके त्यागकी प्रशंसा है।' भिक्षुओंने राजा प्रसेनजित् कोसलके हैरान होनेको सुना। तब जो अल्पेच्छ भिक्षु थे वह हैरान होते थे—'कैसे आयुष्मान् उ प नं द शाक्यपुत्र राजा प्रसेनजित् कोसलको वर्षावासका वचन दे झूठ करते हैं ! भगवान्ने तो अनेक प्रकारसे झूठ बोलनेकी निंदा की है और झूठ बोलनेके त्यागकी प्रशंसा है।' तब उन भिक्षुओंने यह बात भगवान्से कही। भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें भिक्षु-संघको एकत्रित कर आयुष्मान् उ प नं द शाक्यपुत्रसे पूछा—

"सचमुच उ प नं द ! तूने राजा प्र से न जि त् कोसलको वर्षावासका वचन दे झूठ किया ?"

"हाँ सच भगवान् !"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—'कैसे तू निकम्मा आदमी राजा प्रसेनजित् कोसलको वर्षावासका वचन दे झूठा करेगा ? मोघ-पुरुष ! मैंने तो अनेक प्रकारसे झूठ बोलनेकी निंदा की है और झूठ बोलनेके त्यागकी प्रशंसा है। मोघ-पुरुष ! यह न अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है०।' फटकार कर धार्मिक कथा कह भगवान्ने (भिक्षुओंको) संबोधित किया—

"यदि भिक्षुओ ! कोई भिक्षु (किसीको) पहिली व र्षो प ना यि का से वर्षावास करनेका वचन दे और उस आवासमें जाते वक्त रास्तेमें एक बहुत चीवरोंवाला आवास देखे। तब उसको हो—क्यों न मैं दोनों आवासोंमें वर्षावास करूँ ? इस प्रकार मुझे बहुत चीवर मिलेगा'। तब वह दोनों आवासोंमें वर्षावास करने लगे। भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिली (वर्षोपनायिका) न मालूम हो, तोभी तुरंत उसको दुक्कटका दोष हो।" 192

(२) पहिली वर्षोपनायिकासे वचन दे आवाससे जाने-लौटनेके नियम

१—(दोष)—क. "यदि भिक्षुओ ! किसी भिक्षुने पहिली व र्षो प ना यि का से वर्षावास करनेका वचन दिया हो और उस आवासमें जाते वक्त वह बाहर उपोसथ करे पीछे विहारमें जाये, आसन-वासन बिछाये, धोने-पीनेका पानी रक्खे, आँगनमें झाड़ू दे, और करने लायक कामके न रहने

पर उसी दिन चला जाये। भिक्षुओ! उस भिक्षुको पहली वर्षोपनायिका न मालूम हो, तो भी तुरंत उसको दुक्कटका दोष हो। 193

ख. "यदि भिक्षुओ! किसी भिक्षुने पहिली वर्षोपनायिकासे वर्षावास करनेका वचन दिया हो और उस आवासमें जाते वक्त वह बाहर उपोसथ करे, पीछे विहारमें जाये, आसन-वासन बिछाये, धोने-पीनेका पानी रखे, आँगनमें झाळूदे, और करने लायक़ कामके बाक़ी रहतेही उसी दिन चला जाये; भिक्षुओ! उस भिक्षुको पहिली वर्षोपनायिका न मालूम हो, तो भी तुरन्त उसको दुक्कटका दोष हो। 194

ग. "आँगनमें झाळूदे और करने लायक कामके बाकी न रहनेपर दो-तीन दिन बिता कर चला जाय; भिक्षुओ! उस भिक्षुको० दुक्कटका दोषहो। 195

घ. "आँगनमें झाळू दे और करने लायक कामके बाकी रहते ही दो-तीन दिन बिताकर चला जाये; भिक्षुओ! उस भिक्षुको० दुक्कटका दोषहो। 196

ङ. "० आँगनमें झाळू दे और सप्ताहभरके करने लायक़ कामके रहते दो-तीन दिन बिताकर चला जाय, और वह उस सप्ताहको बाहर बितावे; भिक्षुओ! उस भिक्षुको० दुक्कटका दोष हो।" 197

(३) कब आना-जाना और कब नहीं

२—(दोष नहीं)—क. "० आँगनमें झाळू दे और सप्ताह भरके करने लायक कामके रहते दो-तीन दिन बिताकर चला जाय, और वह उस सप्ताहके भीतरही लौट आये; भिक्षुओ! उस भिक्षुको दोष नहीं। 198

ख. "० आँगनमें झाळू दे और वह प्रवारणाके[1] आनेके एक सप्ताह पहले करने लायक कामको बाकी रखकर चला जाता है तो भिक्षुओ! वह भिक्षु चाहे उस आवासमें आये या न आये, उस भिक्षुको० दोष नहीं। 199

३—(दोष) ८. "० आँगनमें झाळू दे और वह करने लायक काम बाकी न रखकर उसी दिन चला जाता ह। भिक्षुओ! उस भिक्षुको० दुक्कट हो। 200

ख. "० आँगनमें झाळू दे और वह करने लायक कामको बाकी रखकर उसी दिन चला जाता है० दुक्कट हो। 201

ग. "० आँगनमें झाळूदे और करने लायक कामको न छोळ दो-तीन दिन रहकर चला जाता है ०। 202

घ. "० आँगनमें झाळू दे और करने लायक कामको बाकी रख दो-तीन दिन रहकर चला जाता है ०। 203

ङ. १२. "० आँगनमें झाळू दे और सप्ताह भरके लायक कामको छोळ दो-तीन दिन रहकर चला जाता है और वह सप्ताह भर बाहर बिताता है, उस भिक्षुको० दुक्कट हो। 204

च. "० आँगनमें झाळू दे और वह दो-तीन दिन वसकर सप्ताहभर करने लायक कामको छोळकर चला जाता है और उसी सप्ताहमें लौट आता है, उस भिक्षुको० दुक्कट हो। 205

४—(दोष नहीं) "० आँगनमें झाळू दे और प्रवारणाके एक सप्ताह पहिले करने लायक कामको बाकी रखकर चला जाता है, तो भिक्षुओ चाहे वह उस आवासमें आये या न आये उस भिक्षुको० दोष नहीं।" 206

[1] वर्षावास समाप्तिपर पळनेवाली (आश्विन) पूर्णिमाको प्रवारणा कहते हैं।

(४) पिछली वर्षोपनायिकासे वचन दे आवाससे जाने-लौटनेमें नियम

१—(दोष)—क. "यदि भिक्षुओ ! भिक्षुने पिछली (वर्षोपनायिका)से वर्षावास करनेका वचन दिया हो और वह उस आवासको जाते वक्त बाहर उपोसथ करे, पीछे विहार में जाय, आसन-वासन बिछाये, धोने-पीनेका पानी रखे, आँगनमें झाळू दे और वह उसी दिन करने लायक कामको बाकी न रखकर चला जाय, भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पिछली वर्षोपनायिका न मालूम हो तो भी तुरंत उसको दु क्क ट का दोष हो । 207

ख. "० आँगनमें झाळू दे और वह उसी दिन करने लायक कामको बाकी रखकरचला जाय ० दुक्कटका दोष हो । 208

ग. "० आँगनमें झाळू देता है और दो-तीन दिन रहकर करने लायक कामको न बाकी रखकर चला जाता है ० दु क्क ट का दोष हो । 209

घ. "० आँगनमें झाळू देता है और दो-तीन दिन रहकर करने लायक काम बाक़ी रखकर चला जाता है ० दु क्क ट का दोष हो । 210

ङ. "० आँगनमें झाळू देता है और दो तीन दिन रहकर सप्ताहभर करने लायक कामको बाक़ी रखकर चला जाता है, और वह उस सप्ताहको बाहर बिताता है ० दु क्क ट का दोष हो । 211

२—(दो ष न हीं)—क. "० आँगनमें झाळू देता है और दो-तीन दिन रह सप्ताह भर करने लायक कामको बाक़ी रखकर चला जाता है और उस सप्ताहके भीतर ही लौट आता है ० दोष नहीं । 212

ख. "० आँगनमें झाळू देता है और वह चा तु र्मा सी कौ मु दी (=शरद पूनो=आश्विन पूर्णिमा)के एक सप्ताह पूर्व करने लायक कामको बाकी रखकर चला जाता है तो भिक्षुओ ! चाहे वह भिक्षु उस आवासमें आवे या न आवे उस भिक्षुको० दोष नहीं । 213

३—(दोष)—क. "० आँगनमें झाळू देता है और वह उसी दिन करने लायक कामको बाकी न रख चला जाता है ० दुक्कटका दोष हो । 214

ख. "० आँगनमें झाळू देता है और वह उसी दिन करने लायक कामको बाक़ी रखकर चला जाता है ० । 215

ग. "० आँगनमें झाळू देता है और दो-तीन दिन रहकर करने लायक कामको बाक़ी न रखकर चला जाता है ० । 216

घ. "० आँगनमें झाळू देता है और दो-तीन दिन रहकर करने लायक कामको बाक़ी रखकर चला जाता है ० । 217

ङ. "० आँगनमें झाळू देता है और दो तीन दिन रहकर सप्ताह भरके करने लायक कामको बाक़ी रखकर चला जाता है और वह उस सप्ताहको बाहर बिताता है उस भिक्षुको ० दु क्क ट का दोष हो । 218

४—(दो ष न हीं)—क. "० आँगनमें झाळू देता है, और दो-तीन दिन रह सप्ताह भरके कामको बाक़ी रखकर चला जाता है और उसी सप्ताहके भीतर लौट आता है, तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको० दोष नहीं । 219

ख. "० आँगनमें झाळू देता है, और वह चा तु र्मा सी कौ मु दी (=आश्विन पूर्णिमा)के एक सप्ताह पूर्व करने लायक कामको बाकी रखकर चला जाता है, तो भिक्षुओ ! चाहे वह भिक्षु उस आवासमें आये या न आये उस भिक्षुको० दोष नहीं । 220

वस्सूपनायिकक्खन्धक समाप्त ॥३॥

४—प्रवारणा-स्कंधक

१.—प्रवारणामें स्थान, काल और व्यक्ति-संबंधी नियम। २—कुछ भिक्षुओंकी अनुपस्थितिमें की गई नियम-विरुद्ध प्रवारणा। ३—असाधारण प्रवारणा। ४—प्रवारणा स्थगित करना। ५—प्रवारणाकी तिथिको आगे बढ़ाना।

§१—प्रवारणामें स्थान, काल और व्यक्ति सम्बन्धी नियम

१—श्रावस्ती

(१) मौन व्रतका निषेध

१—उस समय बुद्धभगवान् श्रा व स्ती में अ ना थ पिं डि क के आराम जे त व न में विहार करते थे। उस समय बहुतसे प्रसिद्ध संभ्रान्त भिक्षु को स ल देशके एक भिक्षु-आश्रममें वर्षावास करते थे। तब उन भिक्षुओं को यह हुआ—'किस उपायसे हम एक मत विवाद-रहित हो मोद-युक्त, अच्छी तरह वर्षावास करें, और भोजनसे न दुख पायें।' तब उन भिक्षुओं को यह हुआ—'यदि हम एक दूसरेसे आलाप-संलाप न करें, जो भिक्षा करके गाँवसे पहले आये वह आसन बिछावे, पैर धोनेका जल, पैर धोनेका पीढ़ा, पैर रगळनेकी कठली, रक्खें, कूळेकी थालीको धोकर रक्खे, धोने-पीनेके पानीको रक्खे, भिक्षा करके गाँवसे पीछे आये, तो जो कुछ खाकर बचा हुआ हो यदि चाहे तो उसे खाय, न चाहे तो तृण-रहित स्थानमें छोळदे या प्राणी-रहित पानीमें डाल दे, और वह आसनको उठाये, पैर धोनेका जल, पैर धोनेका पीढ़ा, पैर रगळनेकी कठली समेटे, कूळेकी थालीको धोकर रखदे, धोने-पीनेका पानी उठावे, और चौकेको साफ करे। जो पीनेवाले पानीके घळे, इस्तेमाल करनेवाले पानीके घळे, या पाखानेके घळेको रिक्त, खाली देखे तो उसे भरके रखदे। यदि उससे न होसके तो हाथके इशारेसे बुलाकर हाथके संकेतसे रखवा दे। उसके कारण दुर्वचन न बोले। इस प्रकार हम एकमत, विवाद रहित हो मोदयुक्त, अच्छी तरह वर्षावास कर सकेंगे और भोजनसे भी न दुख पायेंगे।

तब उन भिक्षुओंने एक दूसरेसे आलाप-संलाप नहीं किया ० उसके कारण दुर्वचन नहीं बोले। यह नियम था कि वर्षाके बाद वर्षावास करके भिक्षु भगवान्‌के दर्शनके लिये जाते थे। तब वर्षावास समाप्त कर तीन महीनेके बाद आसन-वासन समेट, पात्र-चीवर ले वह भिक्षु श्रा व स्ती की ओर चल पळे। क्रमशः जहाँ श्रावस्तीमें अ ना थ पिं डि क का आराम जे त व न था और जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठे। बुद्ध भगवानोंका यह नियम है कि वह आये भिक्षुओंसे कुशल-प्रश्न पूछते हैं। तब भगवानने उन भिक्षुओंसे यह कहा—

"भिक्षुओ! अच्छा तो रहा, यापन करने योग्य तो रहा? तुम लोगोंने एकमत, विवाद-रहित हो मोद-युक्त अच्छी तरह वर्षावास तो किया? भोजनके लिये तुम्हें तकलीफ तो नहीं हुई?"

"हाँ भगवान् ! अच्छा रहा, यापन करने योग्य रहा, हमने एक मत विवाद-रहित हो मोद-युक्त अच्छी तरह वर्षावास किया, भोजनके लिये हमें तकलीफ़ नहीं हुई ।"

जानते हुए भी (किसी किसी बातको) तथागत पूछते हैं, जानते हुए भी (किसी किसी बातको) नहीं पूछते । काल जानकर पूछते हैं, (न पूछने का) काल जानकर नहीं पूछते । तथागत सार्थक (बात) को पूछते हैं, व्यर्थकी (बातको) नहीं (पूछते) । व्यर्थकी (बातका पूछना) तथागतकी मर्यादासे परे है । बुद्ध भगवान दो कारणोंसे भिक्षुओंसे पूछते हैं—(१) धर्म उपदेश करने के लिए; (२) या शिष्योंके लिए शि क्षा पा द (= नियम) विधान करनेके लिए । तब भगवान्ने उन भिक्षुओंसे यह कहा:—

"भिक्षुओ ! कैसे तुमने एकमत विवाद-रहित हो मोद-युक्त अच्छी तरह वर्षावास किया और तुम्हें भोजनके लिये तकलीफ़ नहीं हुई ।"

"भन्ते ! हम बहुतसे प्रसिद्ध संभ्रान्त भिक्षु कोसल देशके एक भिक्षु-आश्रममें वर्षावास करने लगे । तब हम भिक्षुओंको यह हुआ—किस उपायसे०[१] उसके कारण दुर्वचन न बोले । इस प्रकार भन्ते ! हमने एकमत विवाद-रहित हो मोद-युक्त अच्छी तरह वर्षावास किया; और भोजनके लिये तकलीफ नहीं हुई ।"

तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! न-अच्छी-तरहसे ही इन मोघ-पुरुषों (= निकम्मे आदमियों)ने वर्षावास किया तो भी यह समझते हैं कि इन्होंने अच्छी तरहसे वर्षावास किया । भिक्षुओ ! इन मोघ-पुरुषोंने पशुओंकी तरह ही एक साथ वास किया, तो भी यह समझते हैं कि इन्होंने अच्छी तरह वर्षावास किया भिक्षुओ ! इन मोघ-पुरुषोंने भेळोंकी तरह ही एक साथ वास किया, तो भी० । भिक्षुओ ! इन मोघ-पुरुषोंने पक्षियोंकी तरहही एक साथ वास किया, तो भी० । भिक्षुओ ! कैसे इन मोघ-पुरुषोंने ती र्थि कों के मूक व्रतको ग्रहण किया ! भिक्षुओ ! यह न अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिए है० ।"

फटकार कर धर्म-संबंधी कथा कह, भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! मूक व्रतको, जिसको कि तीर्थिक लोग ग्रहण करते हैं—नहीं ग्रहण करना चाहिये । जो ग्रहण करे उसको दु क्क ट का दोष हो । भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ वर्षावास समाप्त किये भिक्षुओंको देखे, सुने और सन्देह वाले इन तीन तरह (के अपराधों या दोषों)की प्र वा र णा (=वारणा= मार्जन) करनेकी और वह तुम्हें एक दूसरेके लिये अनुकूल, दोष हटाने वाली, विनय-अनुमोदित होगी ।" 1

"और भिक्षुओ ! प्र वा र णा इस प्रकार करनी चाहिये—चतुर, समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे–'भन्ते ! संघ मेरी सुनें । आज प्रवारणा (=पवारणा) है । यदि संघ उचित समझे तो वह प वा-र णा करे ।' तब स्थविर (=वृद्ध) भिक्षु एक कंधेपर उत्तरासंग रख उकळूँ बैठ, हाथ जोळ ऐसा कहे—'आवुस ! संघके पास देखे, सुने और संदेह वाले इन तीन प्रकारके (अपने अपराधोंकी) में प्रवारणा करता हूँ । आयुष्मान् कृपा करके मुझे (मेरे) देखे, सुने और संदेह वाले अपराधोंको बतलावें । देखनेपर मैं उनका प्रतिकार करूँगा । दूसरी बार भी० । तीसरी बार भी० ।' (फिर) नये भिक्षुको एक कंधेपर उत्तरासंघ करके उकळूँ बैठ, हाथ जोळकर ऐसा कहना चाहिये—'भन्ते ! संघके पास (देखे, सुने और संदेहवाले इन तीन प्रकार अपराधोंकी) मैं प्रवारणा करता हूँ । आयुष्मान् कृपा करके मुझे (मेरे) देखे, सुने और संदेहवाले अपराधोंको बतलावें । देखनेपर मैं उनका प्रतिकार करूँगा । दूसरी बार भी० । तीसरी बार भी०' ।"

---

[१] देखो पृष्ठ १८५ (१) ।

(२) वृद्धोंके सामने बैठनेमें नियम

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु स्थविर भिक्षुओंके उकळूँ बैठ प्रवारणा करते वक्त आसनोंपर ही बैठे रहते थे। (इससे) जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे हैरान होते थे—'कैसे षड्वर्गीय भिक्षु स्थविर भिक्षुओंके उकळूँ बैठ प्रवारणा करते वक्त अपने आसनोंपर ही बैठे रहते हैं !' तब उन भिक्षुओं ने भगवान्से यह बात कही—

"सचमुच भिक्षुओ ! षड्वर्गीय भिक्षु स्थविर भिक्षुओंके उकळूँ बैठ प्रवारणा करते वक्त आसनोंपर ही बैठे रहते हैं ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—"कैसे भिक्षुओ ! वे मोघपुरुष स्थविर भिक्षुओंके उकळूँ बैठे प्रवारणा करते वक्त आसनपर ही बैठे रहते हैं ? भिक्षुओ ! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है० ।"

—फटकार करके धर्म संबंधी कथा कह भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! स्थविर भिक्षुओंके उकळूँ बैठ प्रवारणा करते वक्त आसनपर नहीं बैठना चाहिये । जो बैठे उसे दुक्कट का दोष हो । भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, सभीको उकळूँ बैठ प्रवारणा करने की ।"2

२—उस समय बुढ़ापेसे अतिदुर्बल एक स्थविर सबके प्रवारणा कर लेनेकी प्रतीक्षामें उकळूँ बैठे मूर्छित होकर गिर पळे । भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ तब तक उकळूँ बैठने की जब तक कि उसके पासवाला प्रवारणा करे और (अनुमति देता हूँ) प्रवारणा कर लेनेपर आसनपर बैठने की ।"3

(३) प्रवारणाकी तिथियाँ

तब भिक्षुओंको ऐसा हुआ—'कितनी प्रवारणाएँ हैं !' भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! चतुर्दशीकी और पंचदशीकी, यह दो प्रवारणाएँ हैं ।"4

(४) प्रवारणाके चार कर्म

तब भिक्षुओंको ऐसा हुआ—"कितने प्रवारणाके कर्म हैं ?" भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! यह चार प्रवारणाके कर्म हैं—(१) धर्म-विरुद्ध वर्ग (=अपूर्ण संघ)का प्रवारणा कर्म, (२) धर्म-विरुद्ध संपूर्ण (संघ)का प्रवारणा कर्म, (३) धर्मानुसार वर्गका प्रवारणा कर्म, (४) धर्मानुसार संपूर्ण (संघ)का प्रवारणा कर्म । भिक्षुओ ! जो यह धर्म-विरुद्ध वर्गका प्रवारणा कर्म है, ऐसे प्रवारणा कर्मको नहीं करना चाहिये, और मैंने इस प्रकारके प्रवारणा कर्मकी अनुमति नहीं दी है । भिक्षुओ ! जो यह धर्म-विरुद्ध समग्र (संघ) का प्रवारणा कर्म है ऐसे प्रवारणा कर्मको नहीं करना चाहिये; और मैंने ऐसे प्रवारणा कर्मकी अनुमति नहीं दी है । भिक्षुओ ! जो यह धर्मानुसार वर्गका प्रवारणा कर्म है, ऐसे प्रवारणा कर्म को नहीं करना चाहिये; और ऐसे प्रवारणा कर्मकी मैंने अनुमति नहीं दी है । भिक्षुओ ! जो यह धर्मानुसार समग्र (संघ)का प्रवारणा कर्म है ऐसे प्रवारणा कर्मको करना चाहिये । इस प्रकारके प्रवारणा कर्मकी मैंने अनुमति दी है । इसलिये भिक्षुओ ! तुम्हें यह सीखना चाहिये कि जो यह धर्मानुसार समग्र (संघ) का प्रवारणा कर्म है ऐसे प्रवारणा कर्मको मैं करूँगा ।" 5

(५) अनुपस्थितकी प्रवारणा

१—तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! एकत्रित हो जाओ, संघ प्रवारणा करेगा।" ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! एक भिक्षु बीमार है, वह नहीं आया है।"

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ—रोगी भिक्षुकी प्र वा र णा (को दूसरे द्वारा भेज) देने की।" 6

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (प्रवारणा) देनी चाहिये—उस रोगी भिक्षुको एक भिक्षुके पास जाकर एक कंधेपर उत्तरासंग रख, उकळूँ बैठ, हाथ जोळकर ऐसे कहना चाहिये—'मैं प्रवारणा देता हूँ। मेरी प्रवारणाको लेजाओ ! मेरे लिये प्रवारणा करना।' इस प्रकार कायासे सूचित करे, वचनसे सूचित करे, या काय-वचनसे सूचित करे तो प्रवारणा देदी गई होती है। यदि न कायासे सूचित करे, न वचनसे सूचित करे, न काय-वचनसे सूचित करे, तो प्रवारणा दी गई नहीं होती। इस प्रकार यदि प्रवारणा मिल सके तो ठीक नहीं और यदि नहीं तो भिक्षुओ ! उस रोगी भिक्षुको चारपाई या चौकीपर उठाकर ले आकर प्रवारणा करनी चाहिये। यदि भिक्षुओ ! रोगीके परिचारक भिक्षुओंको ऐसाहो—यदि हम रोगीको उसकी जगहसे हटायेंगे तो रोग बढ़ जायगा और उसकी मृत्यु होगी—तो भिक्षुओ रोगीको उस जगहसे नहीं हटाना चाहिये बल्कि संघको वहाँ जाकर प्रवारणा करनी चाहिये। किन्तु संघके एक भागको प्रवारणा नहीं करनी चाहिये; यदि करे तो दुक्कटका दोष हो।

२—"यदि भिक्षुओ प्रवारणा देनेपर प्रवारणा ले जाने वाला वहाँसे चला जाये तो प्रवारणा दूसरेको देनी चाहिये। यदि भिक्षुओ ! प्रवारणा देनेपर प्रवारणा लेजानेवाला (भिक्षुपनसे) निकल जायें या मर जाये या श्रामणेर बनजाय या भिक्षुनियमको त्यागदे या अन्तिम अपराध (=पाराजिक) का अपराधी हो जाय, या पागल, विक्षिप्त-चित्त, या मूर्च्छित हो जाये या दोष न स्वीकार करनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये, या दोष या दोषके कामसे उत्क्षिप्तक हो जाये, या बुरी धारणाके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक माना जाने लगे, पंडक माना जाने लगे, चोरीसे भिक्षुवस्त्र पहिनने वाला माना जाने लगे, मातृघातक०, पितृघातक०, अर्हद्-घातक०, भिक्षुणीदूषक०, संघमें फूटडालन वाला०, बुद्धके शरीरसे लोहू निकालने वाला०, (स्त्री-पुरुष) दोनोंके लिंगवाला माना जाने लगे, तो दूसरेको प्रवारणा प्रदान करनी चाहिये ०[1]।"

(६) प्रवारणामें अपेक्षित भिक्षु-संख्या

४—[2]उस समय एक आवासमें प्रवारणाके दिन पाँच भिक्षु रहते थे। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—भगवान्ने संघको प्रवारणा करनेका विधान किया है और हम पाँचही जने हैं। कैसे हमें प्रवारणा करनी चाहिये। भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ (कमसे कम) पाँच (भिक्षुओं)के संघको प्रवारणा करने की।"7

(७) अन्यान्य-प्रवारणामें नियम

१—उस समय एक आवासमें प्रवारणाके दिन चार भिक्षु रहते थे। तब उन भिक्षुओंको यह

---

[1] देखो उपोसथ-स्कंधक २§२।३ (२-४) (पृष्ठ १५२-५३, 67-69) 'शुद्धि' और 'उपोसथ' की जगह 'प्रवारणा' पढ़ना चाहिये।

[2] १, २, ३ स्तंभके लिये उपोसथ-स्कंधक २§२।३ (२-४) (पृष्ठ १५२-५३,67-69) देखना चाहिये।

हुआ—भगवान्‌ने पाँच भिक्षुओंके संघको प्रवारणा करनेकी अनुमति दी है और हम चार ही जने हैं। हमें कैसे प्रवारणा करनी चाहिये ?, यह बात भगवान्‌से कही —

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ चार (भिक्षुओं)को एक दूसरेके साथ (=अन्योन्य) प्रवारणा करनेकी। 8

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार प्रवारणा करनी चाहिये—'चतुर समर्थ भिक्षु उन भिक्षुओंको सूचित करे—'आयुष्मानो ! मेरी सुनो, आज प्रवारणा है। यदि आयुष्मानोंको पसंद हो तो हम एक दूसरेके साथ प्रवारणा करें।' (तव) स्थविर भिक्षुको एक कंधेपर उत्तरासंग कर उकळूँ बैठ, हाथ जोळ, उन भिक्षुओंसे ऐसा कहना चाहिये—आवुसो ! मैं आयुष्मानोंके पास प्रवारणा करता हूँ। आयुष्मानो ! कृपा करके मुझे (मेरे) देखे, सुने और संदेहवाले अपराधोंको बतलावें। देखनेपर मैं उनका प्रतिकार करूँगा। इसके बाद भी०। तीसरी बार भी०।' (फिर) नये भिक्षुको एक कंधेपर उत्तरासंग करके, उकळूँ बैठ, हाथ जोळकर उन भिक्षुओंसे ऐसा कहना चाहिये—'भन्ते ! आयुष्मानोंके पास देखे, सुने मैं प्रवारणा करता हूँ। आयुष्मान् कृपा करके (मेरे) देखे, सुने, संदेहवाले अपराधोंको बतलावें। देखनेपर मैं उनका प्रतिकार करूँगा। दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी०।'"

२—उस समय एक आवासमें प्रवारणाके दिन तीन भिक्षु रहते थे। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—'भगवान्‌ने अनुमति दी है, पाँचके संघको प्रवारणा करनेकी। चारको एक दूसरेके साथ प्रवारणा करनेकी, किन्तु हम तीनही जने हैं; कैसे हमें प्रवारणा करनी चाहिये ?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देताहूँ तीन (भिक्षुओं)को एक दूसरेके साथ प्रवारणा करनेकी। 9

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार प्रवारणा करनी चाहिये—०[1]।"

३—उस समय एक आवासमें प्रवारणाके दिन दो भिक्षु रहते थे। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—'भगवान्‌ने अनुमति दी है, पाँचके संघको प्रवारणा करनेको और चारको एक दूसरेके साथ प्रवारणा करनेकी, और तीन को (भी) एक दूसरेके साथ प्रवारणा करनेकी, किन्तु हम दोही जने हैं; कैसे हमें प्रवारणा करनी चाहिये ?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, दो (भिक्षुओं)को एक दूसरेके साथ प्रवारणा करने की। 10

"और भिक्षुओ इस प्रकार प्रवारणा करनी चाहिये—०[1]।"

(८) एक भिक्षुकी प्रवारणा

उस समय एक आवासमें प्रवारणाके दिन एक भिक्षु रहता था। उस भिक्षुको ऐसा हुआ—'भगवान्‌ने अनुमति दी है ०[2] और दोको (भी) एक दूसरेके साथ प्रवारणा करने की, किन्तु मैं अकेला हूँ; मुझे कैसी प्रवारणा करनी चाहिये ?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें प्रवारणाके दिन एक भिक्षु रहता है, तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको जिस उपस्थान-शाला (=चौपाल) ०[2] उसके लिये उपोसथमें रुकावट नहीं करनी चाहिये।" 11

[1] चार भिक्षुओं वाली प्रवारणाकी तरह यहाँ भी दुहराना चाहिये।

[2] देखो २§४।६ (३) (पृष्ठ १५५-77)—'उपोसथ' और 'शुद्धि'की जगहपर 'प्रवारणा' पढ़ना चाहिये।

(९) प्रवारणामें दोष-प्रतिकार कैसे और किसके सामने

[1] उस समय एक भिक्षुको प्रवारणा करते समय दोष याद आया। "०[2] जब वह संदेह रहित होगा तो उस दोषका प्रतिकार करेगा।' (यह) कह प्रवारणा करे। इसके लिये प्रवारणाको छोड़ नहीं देना चाहिये"। 12-13

प्रथम भाणवार समाप्त

§२—कुछ भिक्षुओंकी अनुपस्थितिमें की गई नियम-विरुद्ध प्रवारणा

क. (क) अन्य आश्रमवासियोंकी अनुपस्थितिको जानकर की गई दोपरहित प्रवारणा

उस समय एक आवासमें प्रवारणाके दिन बहुतसे—पाँच या अधिक आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हुए। उन्होंने नहीं जाना कि कुछ आश्रमवासी भिक्षु नहीं आये। ०[3] और भिक्षुओ ! संघकी समग्रताके अतिरिक्त प्रवारणासे भिन्न दिनको प्रवारणा नहीं करनी चाहिये।"821

द्वितीय भाणवार समाप्त

§३—असाधारण प्रवारणा

(१) विशेष अवस्थाओंमें संक्षिप्त प्रवारणा

१—(क) उस समय कोसल देशमें एक आवासमें प्रवारणाके दिन शबरोंका भय होगया। भिक्षु तीन वचनसे[4] प्रवारणा नहीं कर सके। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ दो वचनसे प्रवारणा करनेकी।" 822

(ख) और अधिक शबरोंका भय हुआ जिससे भिक्षु दो वचनसे भी प्रवारणा नहीं कर सके। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ एक वचनसे प्रवारणा करनेकी। 823

(ग) और भी अधिक शबरोंका भय हुआ। भिक्षु एक वचनसे भी प्रवारणा नहीं कर सके।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उसी वर्षमें प्रवारणा करनेकी।" 824

२—उस समय एक आवासमें प्रवारणाके दिन लोग दान देते थे, जिससे बहुत अधिक रात बीत जाती थी। तब उन भिक्षुओंको हुआ—'लोग दान देते हैं जिससे अधिक रात बीत गई; यदि संघ तीन वचनसे प्रवारणा करेगा तो संघकी प्रवारणा भी नहीं पूरी होगी और बिहान होजायगा। हमें कैसे करना चाहिये ?' भगवान्‌से यह बात कही।—

---

[1] इसके लिये २§४।७ (पृष्ठ १५५,78,79)को देखना चाहिये।

[2] देखो २§४।८ (१,२) (पृष्ठ १५५-५६) 'प्रातिमोक्ष'की जगह 'प्रवारणा' पढ़ना चाहिये

[3] देखो वर्षोपनायिक-स्कंधक ३§३–४ (पृष्ठ १७८–८४) चार भिक्षुके स्थानपर पाँच भिक्षु और 'उपोसथ'के स्थानपर 'प्रवारणा' पढ़ना चाहिये।

[4] संघके सामने निवेदन करते समय 'दूसरी वार भी', 'तीसरी वार भी' कहकर जो वहीं वाक्यावली दो वार, तीन वार, दुहराई जाती है उसीको 'दो वचन', 'तीन वचन' कहते हैं।

"यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें प्रवारणाके दिन लोग दान दें जिससे बहुत अधिक रात बीत जाये और भिक्षुओंको ऐसा हो—'लोग दान देते हैं जिससे अधिक रात बीत गई; यदि संघ तीन वचनसे प्रवारणा करेगा तो संघकी प्रवारणा भी नहीं पूरी होगी और विहान होजयागा,' तो चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—'भन्ते ! संघ मेरी सुने, लोगोंके दान देनेमें आज बहुत रात बीत गई यदि संघ तीन वचनसे प्रवारणा करेगा तो संघकी प्रवारणा भी नहीं पूरी होगी और विहान होजायगा। यदि संघ उचित समझे तो वह दो-वचन-वाली, एक-वचन-वाली, या उसी-वर्ष-वाली प्रवारणा करे।' 825

३—"यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें प्रवारणाके दिन भिक्षुओंके धर्म (=सुत्तंत=बुद्धोपदेश)का पाठ करते, सुत्त पाठियोंके सुत्तंतका संगायन करते विनयधर्मके विनयका निर्णय करते, धर्मकथिकों (=धर्मोपदेशकों)के धर्मकी परीक्षा करते, भिक्षुओंके कलह करते, अधिक रात बीत जाये और तब भिक्षुओंको ऐसा हो—० भिक्षुओंके कलह करते आज बहुत अधिक रात चली गई, यदि संघ तीन-वचन-वाली प्रवारणा करेगा तो संघकी प्रवारणा भी नहीं पूरी होगी और विहान हो जायगा'; तो चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—'० भिक्षुओंके कलह करते (आज) बहुत अधिक रात बीत गई। यदि संघ तीन-वचन-वाली प्रवारणा करेगा तो संघकी प्रवारणा भी नहीं होगी और विहान होजायगा। यदि संघ उचित समझे तो वह दो-वचन-वाली, एक-वचन-वाली, या उसी वर्ष वाली प्रवारणा करे।' " 826

४—उस समय को स ल देशके एक आवासमें प्रवारणाके दिन बहुत भारी भिक्षु-संघ एकत्रित हुआ था। वहाँ वर्षासे बचनेका स्थान कम था और बहुत भारी मेघ उठा हुआ था। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—'यह बहुत भारी भिक्षु-संघ एकत्रित हुआ है। यहाँ वर्षासे बचनेका स्थान कम है और बहुत भारी मेघ उठा हुआ है यदि संघ तीन-वचन-वाली प्रवारणा करेगा तो संघकी प्रवारणा भी पूरी न होगी और यह मेघ बरसने लगेगा। (इस वक्त) हमें कैसे करना चाहिये ?' भगवान्‌से ०।—

"यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें प्रवारणाके दिन बहुत भारी भिक्षु-संघ एकत्रित हुआ हो, वहाँ वर्षासे बचनेका स्थान कम हो; और बहुत भारी मेघ उठा हुआ हो; और उस वक्त भिक्षुओंको ऐसा हो—'यह बहुत भारी भिक्षु-संघ एकत्रित हुआ है। यहाँ वर्षासे बचनेका स्थान कम है, और बहुत भारी मेघ उठा हुआ है। यदि संघ तीन-वचन-वाली प्रवारणा करेगा तो संघकी प्रवारणा भी पूरी न होगी और यह मेघ बरसने लगेगा'; तो चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—'भन्ते ! संघ मेरी सुने, यह बहुत भारी भिक्षु-संघ एकत्रित हुआ है ० यह मेघ बरसने लगेगा। यदि संघ उचित समझे तो वह दो-वचन-वाली, एक-वचन-वाली या उसी वर्ष वाली प्रवारणा करे।" 827

५—"यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें प्रवारणाके दिन राजाकी तरफ़से विघ्न हो ०। 828

६—"यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें प्रवारणाके दिन चोरका विघ्न हो ०। 829

७—" ० अग्निका विघ्न हो ०। 830

८—" ० पानीका विघ्न हो ०। 831

९—"० मनुष्यका विघ्न हो ०। 832

१०—"० अमनुष्यका विघ्न हो ०। 833

११—"० हिंसक जन्तुओंका भय हो ०। 834

१२—"० सरीसृपोंका भय हो ०। 835

१३—"० जीवनका भय हो ०। 836

१४—"० ब्रह्मचर्यमें विघ्न हो और वहाँ भिक्षुओंको ऐसा हो—'यह ब्रह्मचर्यका विघ्न उपस्थित है, यदि संघ तीन-वचन-वाली प्रवारणा करेगा तो संघकी प्रवारणा भी पूरी न होगी और ब्रह्मचर्यका विघ्न भी होजायगा;' तो चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—'भन्ते ! संघ मेरी सुने, यह ब्रह्मचर्यका विघ्न (उपस्थित) है ०, यदि संघ उचित समझे तो वह दो-वचन-वाली, एक-वचन वाली या उसी वर्षवाली प्रवारणा करे।' "837

(२) दोषयुक्त व्यक्तिकी प्रवारणाका निषेध

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु दोषयुक्त होते प्रवारणा करते थे। भगवान्से यह बात कही।

"भिक्षुओ ! दोषयुक्त हो प्रवारणा नहीं करनी चाहिये। जो प्रवारणा करे उसे दुक्कटका दोष है। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ जो दोषयुक्त होते प्रवारणा करे उसे अवकाश करा दोषारोपण करनेकी।" 838

§४–प्रवारणाका स्थगित करना

(१) अवकाश न करनेपर स्थगित

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु अवकाश करवाते वक्त अवकाश करना नहीं चाहते थे। भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ अवकाश न करनेवालेकी प्रवारणाको स्थगित करनेकी। 839

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार स्थगित करना चाहिये। चतुर्दशी या पंचदशीकी उस प्रवारणाको उस व्यक्तिके साथ होनेपर संघके बीचमें बोलना चाहिये—'भन्ते ! संघ मेरी सुने, अमुक नाम वाला व्यक्ति दोष-युक्त है। उसकी प्रवारणाको स्थगित करता हूँ। सामने होनेपर भी उसकी प्रवारणा नहीं करनी चाहिये'; इस प्रकार प्रवारणा स्थगित होती है।"

(२) अनुचित स्थगित करना

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु (यह सोच) कि अच्छे भिक्षुके मुखपर हमारी प्रवारणा स्थगित करते हैं, ईर्ष्यासे दोष-रहित शुद्ध भिक्षुओंकी प्रवारणाको भी झूठ-मूठ बिना कारण स्थगित करते थे; और जिनकी प्रवारणा होगई उनकी प्रवारणाको भी स्थगित करते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! दोषरहित शुद्ध भिक्षुओंकी प्रवारणाको बिना कारण झूठ-मूठ स्थगित न करना चाहिये। जो स्थगित करे उसको दुक्कटका दोष है। और भिक्षुओ ! जिनकी प्रवारणा हो चुकी उनकी प्रवारणाको स्थगित नहीं करना चाहिये; जो स्थगित करे उसको दुक्कटका दोष है।" 840

(३) स्थगित करनेका प्रकार

"भिक्षुओ ! इस प्रकार प्रवारणा स्थगित होती है और इस प्रकार अ-स्थगित।

१—"कैसे भिक्षुओ ! प्रवारणा अस्थगित होती है ? यदि भिक्षुओ ! तीन वचनसे प्रवारणाको भाषण कर, कह कर समाप्त की गई प्रवारणाको स्थगित करे, तो वह प्रवारणा अ-स्थगित होती है। भिक्षुओ ! यदि दो वचनसे ०। भिक्षुओ ! यदि एक वचनसे ०। भिक्षुओ ! यदि उसी वर्ष वाली प्रवारणाको भाषणकर, कहकर समाप्त की गई प्रवारणाको स्थगित करे तो वह प्रवारणा अ-स्थगित (ही) है—इस प्रकार भिक्षुओ ! प्रवारणा अ-स्थगित होती है।

२—"कैसे भिक्षुओ ! प्रवारणा स्थगित होती है ? यदि भिक्षुओ ! तीन वचनसे भाषणकी गई, कही गई प्रवारणाके समाप्त न होते उसे (कोई) स्थगित करता है तो वह प्रवारणा स्थगित होती है ।० दो वचनवाली ०।० एक वचनवाली ०।० उसी वर्षवाली ०।—इस प्रकार भिक्षुओ ! प्रवारणा स्थगित होती है ।"

(४) फटकार करके प्रवारणा पूरा करना

१—"यदि भिक्षुओ ! प्रवारणाके दिन एक भिक्षु (दूसरे) भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करता है, और उस भिक्षुको दूसरे भिक्षु जानते हैं—इन आयुष्मान्‌का कायिक आचार शुद्ध नहीं, वाचिक आचार शुद्ध नहीं, आजीविका शुद्ध नहीं, यह मूर्ख अजान हैं । प्रेरित करनेपर ऐसा कहनेमें समर्थ नहीं हैं—बस भिक्षु मत भंडन कलह, विग्रह, विवाद कर—इस प्रकार फटकार करके संघको प्रवारणा करनी चाहिये । 841

२—"जब भिक्षुओ ! प्रवारणाके दिन, एक भिक्षु दूसरे भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करता है, उस भिक्षुको यदि दूसरे भिक्षु जानते हैं—इन आयुष्मान्‌का कायिक आचार शुद्ध है, वाचिक आचार अशुद्ध है, आजीविका अशुद्ध है, यह अज्ञ मूर्ख है, प्रेरणा करनेपर भी अनियोग देने में समर्थ नहीं, तो—मत भिक्षु भंडन=कलह, विग्रह, विवाद कर,—यह कह फटकार संघको प्रवारणा करनी चाहिये । 842

३—"जब भिक्षुओ ! प्रवारणाके दिन एक दूसरे भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करे । उस भिक्षुको यदि दूसरे भिक्षु जानते हैं—इस आयुष्मान्‌का कायिक आचार शुद्ध है (किन्तु) आजीविका शुद्ध नहीं है, यह अज्ञ मूर्ख है, प्रेरित करनेपर भी अनियोग देनेमें समर्थ नहीं है, तो—मत भिक्षु ! भंडन=कलह, विग्रह, विवाद कर—(कह) फटकार कर संघको प्रवारणा करनी चाहिये । 843

४—"जब भिक्षुओ ! ० इन आयुष्मान्‌का कायिक आचार शुद्ध है, वाचिक आचार शुद्ध है, आजीविका शुद्ध है (किन्तु) यह मूर्ख अज्ञ हैं, प्रेरित करनेपर भी अनियोग देनेमें समर्थ नहीं हैं, तो—मत भिक्षु ! ० विवाद कर—(कह) फटकार कर संघको प्रवारणा करनी चाहिये ।" 844

(५) दंड करके प्रवारणा करना

१—"जब भिक्षुओ ! ० दूसरे भिक्षु जानते हैं—इन आयुष्मान्‌का कायिक समाचार, वाचिक समाचार शुद्ध है, आजीविका शुद्ध है, यह पंडित चतुर है, प्रेरित करनेपर अनियोग देनेमें समर्थ हैं; तो उससे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! जो तुमने इस भिक्षुकी प्रवारणा स्थगितकी सो किस लिये स्थगित की ? क्या शील-संबंधी दोषसे स्थगितकी, या आचार-संबंधी दोषसे स्थगित की, या दृष्टि (धारणा)-संबंधी दोषसे स्थगितकी ? यदि वह ऐसा कहे—'शील-संबंधी दोषसे स्थगित करता हूँ, या आचार-संबंधी दोषसे स्थगित करता हूँ, या दृष्टि-संबंधी दोषसे स्थगित करता हूँ ।' तो उससे ऐसे पूछना चाहिये—क्या आयुष्मान् शील-संबंधी दोषको जानते हैं ? आचार-संबंधी दोषको जानते हैं ? या धारणा (=दृष्टि)-संबंधी दोषको जानते हैं ?' यदि वह ऐसा कहे—आवुसो ! मैं शील-संबंधी दोषको जानता हूँ, आचार-संबंधी दोषको जानता हूँ, धारणा-संबंधी दोषको जानता हूँ; तो उसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! क्या है शील-संबंधी दोष, क्या है आचार-संबंधी दोष, क्या है धारणा-संबंधी दोष ?' यदि वह ऐसा कहे—'चार पा रा जि क, तेरह सं घा दि से स, यह शील-संबंधी दोष है; थु ल्ल च्च य, पा चि त्ति य, पा टि दे स नि य, दु क्क ट, दु र्भा ष ण यह आचार-संबंधी दोष हैं; मिथ्या-दृष्टि, अन्त-ग्राहिका दृष्टि,[1] यह दृष्टि-संबंधी दोष है; तो उसे यह कहना चाहिये—आवुस ! जो तुमने

[1] आत्माको नित्य या संतति-रहित मानना ।

इस भिक्षुकी प्रवारणा स्थगित की है वह क्या देखेसे स्थगित की है, सुनेसे स्थगित की है, या शंकाके कारण स्थगित की है ? यदि वह कहे—'देखेसे मैंने स्थगित की है, या सुनेसे मैंने स्थगित की है, या संदेहसे मैंने स्थगित की है, तो उसको ऐसा कहना चाहिये—आवुस ! जोकि तुमने इस भिक्षुकी प्रवारणा देखे (दोष)के कारण स्थगित कर दी तो क्या तुमने देखा, कैसे देखा, कब तुमने देखा, कहाँ तुमने देखा कि उसने पाराजिकका अपराध किया संघादिसेसका अपराध किया, थुल्लच्चय, पाचित्तिय, पाटिदेसनिय, दुक्कट, दुर्भाषणका अपराध किया ? (उस वक्त) कहाँ तुम थे और कहाँ यह भिक्षु था। क्या तुम करते थे और क्या यह भिक्षु करता था ? यदि वह ऐसा कहे—'आवुसो ! मैं इस भिक्षुकी प्रवारणाको देखे (अपराध)से स्थगित नहीं करता, वल्कि सुने (अपराध)से स्थगित करता हूँ।' तो उसको कहना चाहिये—'आवुस ! जोकि तुमने इस भिक्षुकी प्रवारणाको सुने (अपराध)से स्थगित किया, तो तुमने क्या सुना, कब सुना, कहाँ सुना, कि इसने पाराजिक० दुर्भाषणका अपराध किया ? भिक्षुसे सुना या भिक्षुणीसे सुना, या शिक्षमाणासे सुना या श्रामणेरसे सुना या श्रामणेरीसे सुना, या उपासकसे सुना, या उपासिकासे सुना, या राजासे सुना, या राजाके महामात्यसे सुना, या तीर्थिकोंसे सुना या तीर्थिकोंके अनुयायियोंसे सुना ?' यदि वह ऐसा कहे—'आवुसो ! मैं इस भिक्षुकी प्रवारणाको सुने अपराधसे स्थगित नहीं करता वल्कि संदेहसे स्थगित करता हूँ'; तो उससे ऐसा पूछना चाहिये—'आवुस ! जो तूने इस भिक्षुकी प्रवारणाको संदेहसे स्थगित किया है, तो तू क्या संदेह करता है, कैसे संदेह करता है, कब संदेह करता है, कहाँ संदेह करता है, कि इसने पाराजिक० दुर्भाषणका अपराध किया ? भिक्षुसे सुनकर संदेह करता है ० या तीर्थिकोंके अनुयायियोंसे सुनकर संदेह करता है ?' यदि वह ऐसा कहे—आवुसो ! मैं इस भिक्षुकी प्रवारणाको संदेहसे नहीं स्थगित करता वल्कि मैं नहीं जानता कि मैं क्यों इस भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करता हूँ। यदि भिक्षुओ ! वह दोषारोपण करनेवाला (=चोदक) भिक्षु प्रत्युत्तर (=अनुयोग)से जानकार गुरुभाइयों (=स-ब्रह्मचारियों) के चित्तको संतुष्ट न कर सके तो कहना चाहिये कि उसका दोषारोपण ठीक नहीं। यदि भिक्षुओ ! दोषारोपण करनेवाला भिक्षु प्रत्युत्तरसे स-ब्रह्मचारियोंके चित्तको संतुष्ट कर सके तो कहना चाहिये उसका दोषारोपण ठीक है। यदि भिक्षुओ ! दोषारोपण करनेवाला भिक्षु विना जळके पाराजिक (दोष) लगानेको स्वीकार करे तो उसपर संघादिसेस (दोष)का आरोप कर संघको प्रवारणा करनी चाहिये। यदि वह दोषारोपण करनेवाला भिक्षु विना जळके संघादिसेस दोष लगानेको स्वीकार करे तो उसपर धर्मानुसार (दंड) करवाके संघको प्रवारणा करनी चाहिये।० विना जळके थुल्लच्चय० दुर्भाषण (दोष) लगानेको स्वीकार करे तो धर्मानुसार (दंड) करवाके संघको प्रवारणा करनी चाहिये। यदि भिक्षुओ ! वह भिक्षु जिसपर दोषारोपण किया गया है, (अपनेको) पाराजिकका दोषी स्वीकार करता है तो उसे (हमेशाके लिये संघसे) निकालकर संघको प्रवारणा करनी चाहिये। यदि भिक्षुओ ! वह भिक्षु जिसपर दोषारोपण किया गया है, संघादिसेसका दोषी (अपनेको) स्वीकार करता है तो उसपर संघादिसेस दोष लगाकर संघको प्रवारणा करनी चाहिये। यदि० थुल्लच्चय० दुर्भाषणका दोषी (अपनेको) स्वीकार करता है तो, धर्मानुसार (दंड) करवाके संघको प्रवारणा करनी चाहिये। 845

२—"यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षुने प्रवारणाके दिन थुल्लच्चय दोष किया हो और कोई कोई भिक्षु (उस भिक्षुके दोषको) थुल्लच्चय समझते हों, और कोई कोई संघादिसेस; तो जो भिक्षु थुल्लच्चय समझनेवाले हैं वह उस भिक्षुको एक ओर लेजाकर धर्मानुसार (दंड) करवाकर संघमें

आ ऐसा कहें—'आवुसो ! इस भिक्षुने जो दोष किया था उसका इसने धर्मानुसार प्रतिकार कर दिया । यदि संघ उचित समझे तो प्र वा र णा करे । 846

३—"यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षुने प्रवारणाके दिन थु ल्ल च्च य का दोष किया हो और; कोई कोई भिक्षु (उस भिक्षुके दोषको) थु ल्ल च्च य मानते हों, और कोई कोई पा चि त्ति य; कोई कोई थु ल्ल च्च य मानते हों और कोई कोई पा टि दे स नि य; कोई कोई थु ल्ल च्च य मानते हों और कोई कोई दु क्क ट; कोई कोई थुल्लच्चय मानते हों और कोई कोई दु र्भा ष ण; तो भिक्षुओ ! जो थु ल्ल च्च य समझनेवाले हैं वह उस भिक्षुको एक ओर ले जाकर धर्मानुसार (दंड) करवाकर संघमें आ ऐसा कहें—'आवुसो ! इस भिक्षुने जो दोष किया था उसका इसने धर्मानुसार प्रतिकार कर लिया । यदि संघ उचित समझे तो प्रवारणा करे ।" 847

४—"यदि भिक्षुओ ! ० पा चि त्ति य दोष किया हो ० । 848

५—"०पा टि दे स नि य (दोष) किया हो ० । 849

६—"०दु क्क ट (का दोष) किया ० । 850

७—"०दुर्भाषण (दोष) किया हो और कोई कोई भिक्षु (उस भिक्षुके दोषको) दु र्भा ष ण मानते हों और कोई कोई सं घा दि से स, तो भिक्षुओ ! जो वह दुर्भाषण समझनेवाले हैं उस भिक्षुको एक ओर लेजाकर धर्मानुसार (दंड) करवाकर संघमें आ ऐसा कहें—'आवुसो ! इस भिक्षुने जो दोष किया था उसका इसने धर्मानुसार प्रतिकार कर दिया । यदि संघ उचित समझे तो प्रवारणा करे ।' यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षुने प्रवारणाके दिन दुर्भाषण (दोष) किया हो और कोई कोई भिक्षु (उस भिक्षुके दोषको) दु र्भा ष ण मानते हों और कोई कोई थु ल्ल च्च य; कोई कोई दु र्भा ष ण मानते हों और कोई कोई पा चि त्ति य, कोई कोई दु र्भा ष ण मानते हों और कोई कोई पा टि दे स नि य, कोई कोई दु र्भा ष ण मानते हों और कोई कोई दु क्क ट; तो भिक्षुओ! जो भिक्षु दु र्भा ष ण माननेवाले हैं, उस भिक्षुको एक ओर लेजाकर० यदि संघ उचित समझे तो प्रवारणा करे ।" 851

(६) वस्तु या व्यक्तिको स्थगित करना

१—"यदि भिक्षुओ ! कोई भिक्षु प्रवारणाके दिन संघमें कहे—'भन्ते ! संघ मेरी सुने, यह वस्तु (=दोष) जान पळती है किन्तु व्यक्ति नहीं जान पळता; यदि संघ उचित समझे तो वस्तुको स्थगित कर प्रवारणा करे,' तो उसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! भगवान्ने शुद्ध (भिक्षुओं)को प्रवारणा करनेका विधान किया है । यदि वस्तु जान पळती है और व्यक्ति नहीं तो उसे इसी वक्त कहो ।" 852

२—"यदि भिक्षुओ ! कोई भिक्षु प्रवारणाके दिन संघके बीचमें ऐसा कहे—'भन्ते! संघ मेरी सुने, यहां व्यक्ति जान पळता है किन्तु वस्तु नहीं; यदि संघ उचित समझे तो व्यक्तिको स्थगितकर प्रवारणा करे,' तो उसको ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! भगवान्ने शुद्ध और समग्र (भिक्षुओं)के (संघको) प्रवारणा करनेका विधान किया है । यदि व्यक्ति जान पळता है वस्तु नहीं तो उस (वस्तु)को इसी वक्त कहो ।" 853

३—"यदि भिक्षुओ ! कोई भिक्षु प्रवारणाके दिन संघमें ऐसा कहे—'भन्ते ! संघ ! मेरी सुने, यह वस्तु भी जान पळती है व्यक्ति भी ; यदि संघ उचित समझे तो वस्तु और व्यक्तिको स्थगितकर प्रवारणा करे, तो उसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! भगवान्ने शुद्ध और समग्र (भिक्षुओं)के (संघको) प्रवारणा करनेका विधान किया है । यदि वस्तु भी जान पळती है व्यक्ति भी तो उसको इसी वक्त कहो ।" 854

"यदि भिक्षुओ ! प्रवारणासे पहले वस्तु (=दोप) जान पळे और पीछे व्यक्ति (=अपराधी, दोषी); तो (दोपका) वतलाना उचित है । यदि भिक्षुओ ! प्रवारणाके पहले व्यक्ति जान पळे और पीछे वस्तु; तो (दोपका) वतलाना उचित है । यदि भिक्षुओ ! प्रवारणामे पहले वस्तु भी जान पळे और व्यक्ति भी और उसका आरोप (=उत्कोटन) प्रवारणा कर चुकनेपर कहे, तो (आरोपीको) उ त्को ट न क पा चि त्ति य होता है ।" 855

(७) झगळालुओंसे बचनेका ढंग

उस समय कोसल देशके एक आवासमें बहुतसे प्रसिद्ध और संभ्रान्त भिक्षु वर्षावास कर रहे थे । उनके आसपास दूसरे भंडन (=कलह), विवाद, और शोर करनेवाले तथा संघमें झगळा (=मुकदमा) लगानेवाले भिक्षु (यह सोचकर) वर्षावास करने गये—'उन भिक्षुओंके वर्षावास कर लेनेपर प्र वा र णा के दिन हम उनकी प्रवारणाको स्थगित करेंगे ।' उन भिक्षुओंने सुना कि हमारे पासमें दूसरे० झगळा लगानेवाले भिक्षु (यह सोचकर) वर्षावास कर रहे हैं—०'कैसे हमें करना चाहिये ?' भगवान्से यह बात कही ।—

"यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें बहुतसे प्रसिद्ध संभ्रान्त भिक्षु वर्षावास करते हों और उनके पासमें० प्रवारणाको स्थगित करेंगे; तो भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, उन भिक्षुओंको दो-तीन चतुर्दशीके उपोसथ करनेकी जिसमें कि वे उन भिक्षुओंसे पहिले ही प्रवारणा कर सकें। यदि भिक्षुओ! वे ० संघमें झगळा लगानेवाले भिक्षु उस आवासमें आते हैं, तो उन आवासमें रहनेवाले भिक्षुओंको जल्दी जल्दी एकत्रित हो प्रवारणा कर लेनी चाहिये, और प्रवारणा करके कहना चाहिये—'आवुसो ! हमने प्रवारणा कर ली । आयुष्मानोंको जैसा जान पळे वैसा करें ।' भिक्षुओ ! यदि वे ० संघमें झगळा डालने वाले भिक्षु बिना प्रबंध किये उस आवासमें आवें तो आवासमें रहनेवाले भिक्षुओंको आसन बिछाना चाहिये, पैर धोनेका जल, पैर धोनेका पीढ़ा, पैर रगळनेकी कठली रख देनी चाहिये, और अगवानी करके (उनके) पात्र, चीवरको ग्रहण करना चाहिये । पानीके लिये पूछना चाहिये और उनको कहकर सीमाके बाहर जाकर प्रवारणा करनी चाहिये । प्रवारणा करके कहना चाहिये—'आवुसो ! हमने प्रवारणा कर ली । आयुष्मानोंको जैसा जान पळे वैसा करें ।' यदि ऐसा हो सके तो ठीक, न हो सके तो एक चतुर समर्थ आश्रम-निवासी भिक्षु दूसरे आश्रम-निवासी भिक्षुओंको सूचित करे—'आवासके-रहनेवाले-आयुष्मानो ! मेरी सुनो, यदि आयुष्मान् उचित समझें तो इस वक्त हम उपोसथ करें, प्रातिमोक्ष-पाठ करें और आगामी अमावस्यामें प्रवारणा करेंगे ।' यदि भिक्षुओ ! वे ० संघमें झगळा लगानेवाले भिक्षु ऐसे कहें—'अच्छा हो आवुसो ! कि हम अभी प्रवारणा करें ।' तो उन्हें इस प्रकार कहना, चाहिये—'आवुसो ! हमारी प्रवारणामें तुम्हें अधिकार नहीं । हम (अभी) प्रवारणा नहीं करेंगे ।' यदि भिक्षुओ ० वे संघमें झगळा डालनेवाले भिक्षु उस अमावस्या तक (भी) रहें तो एक चतुर समर्थ आश्रमवासी भिक्षुओंको सूचित करे—आवासके रहनेवाले आयुष्मानो ! मेरी सुनो । यदि आयुष्मान् उचित समझें तो इस वक्त हम उपोसथ करें, प्रातिमोक्ष-पाठ करें और आगामी पूर्णिमामें प्रवारणा करेंगे ।' यदि भिक्षुओ ! ० वे संघमें झगळा लगानेवाले भिक्षु ऐसा कहें० । यदि भिक्षुओ ! ० वे संघमें झगळा लगाने वाले भिक्षु उस पूर्णिमा तक रहें तो भिक्षुओ ! उन सभी भिक्षुओंको आगामी चातुर्मासी कौमुदी (आश्विन) पूर्णिमाको इच्छा न रहनेपर भी प्रवारणा करनी चाहिये । 856

"यदि भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंके प्रवारणा करते समय एक रोगी (भिक्षु) दूसरे नीरोगी (=भिक्षु)की प्रवारणाको स्थगित करे तो उससे ऐसा कहना चाहिये—आयुष्मान् ! रोगी हैं और रोगीको भगवान्ने दोपारोपण (=अनुयोग) करनेके लिये अयोग्य कहा है । आवुस ! तब तक प्रतीक्षा करो

जब तक कि नीरोग हो जाओ। नीरोग हो चुकनेपर इच्छा हो तो दोषारोपण करना।' ऐसा कहनेपर भी यदि वह (दोष-)आरोप करे तो उसे अनादर-संबंधी पाचित्तिय है।" 857

(८) प्रवारणा स्थगित करनेके अनधिकारी

१—"यदि भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंके प्रवारणा करते समय एक नीरोग (भिक्षु) दूसरे रोगी भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करे तो उससे कहना चाहिये—'आवुस ! यह भिक्षु रोगी है। रोगीको भगवान्‌ने आरोप न लगाने योग्य कहा है। आवुस ! प्रतीक्षा करो जब तक कि यह नीरोग हो जाय। नीरोग हो जानेपर यदि इच्छा हो तो दोष लगाना।' ऐसा कहनेपर भी यदि वह आरोप करे तो उसे अनादर-संबंधी पा चि त्ति य है। 858

२—"यदि भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंके प्रवारणा करते समय एक रोगी (भिक्षु) दूसरे रोगी (भिक्षु)की प्रवारणाको स्थगित करे, तो उन्हें ऐसा कहना चाहिये—'(आप दोनों) आयुष्मान् रोगी हैं। रोगीको भगवान्‌ने आरोपण करनेके अयोग्य कहा है। आवुसो ! प्रतीक्षा करो जब तक कि तुम दोनों नीरोग हो जाओ। नीरोग हो जानेपर यदि इच्छा हो तो दूसरे नीरोग (भिक्षु)पर आरोप करना।' ऐसा कहनेपर भी यदि वह आरोप करे तो उसे अनादर-संबंधी पा चि त्ति य है। 859

३—"यदि भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंके प्रवारणा करते समय एक (भिक्षु) दूसरे (भिक्षु)की प्रवारणाको स्थगित करे, तो संघको दोनोंसे जिरह करके, बात करके, पता लगा करके, धर्मानुसार (दंड) करवा संघको प्रवारणा करनी चाहिये।" 860

§५—प्रवारणाकी तिथिको आगे बढ़ाना

(१) ध्यान आदिकी अनुकूलताके लिये

उस समय कोसल देशके एक आवासमें बहुतसे प्रसिद्ध संभ्रान्त भिक्षु वर्षावास कर रहे थे। उनके एकमत, विवाद-रहित हो मोदयुक्त (वहाँ) रहते एक अच्छा वि हा र (=ध्यान समाधि आदि) प्राप्त हुआ। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—'हमें एकमत विवाद-रहित हो मोदयुक्त रहनेमें एक अच्छा विहार प्राप्त हुआ है। यदि हम इसी वक्त प्रवारणा करेंगे तो हो सकता है कि प्रवारणा करके भिक्षु विचरनेके लिये चले जायँ और इस प्रकार हम इस उत्तम वि हा र से बाहर हो जायँगे; हमें कैसे करना चाहिये?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें बहुतसे प्रसिद्ध संभ्रान्त भिक्षु० इस प्रकार हम इस उत्तम विहारसे बाहर हो जायँगे,' तो भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ प्रवारणाके संग्रह करने की। 861

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (संग्रह) करना चाहिये—सबको एक जगह एकत्रित होना चाहिये। एकत्रित होनेके बाद चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क. ज्ञप्ति—भन्ते ! संघ मेरी सुने, हमें एकमत विवाद-रहित हो मोदयुक्त रहनेमें एक अच्छा विहार प्राप्त हुआ है; यदि हम० बाहर हो जायँगे। यदि संघ उचित समझे तो प्रवारणाका संग्रह (=रोक रखना) करे, इस वक्त उपोसथ करे, प्रातिमोक्ष-पाठ करे और चातुर्मासी कौमुदी—पूर्णिमाको प्रवारणा करेगा—यह सूचना है।

ख. अनुश्रावण—(१) भन्ते ! संघ मेरी सुने, हमें एकमत विवाद-रहित हो मोद-युक्त रहनेमें एक अच्छा विहार प्राप्त हुआ है। यदि हम० और आगामी चातुर्मासी कौमुदी पूर्णिमाको प्रवारणा करेंगे। जिन आयुष्मानोंको पसन्द है प्रवारणाका संग्रह किया जाय और इस समय उपोसथ किया

जाय तथा प्रातिमोक्षका पाठ किया जाय और आगामी चातुर्मासी कौमुदी पूर्णिमाको प्रवारणा की जाय वह चुप रहे और जिसको पसंद नहीं है वह बोले।'......

ग. धारणा—'संघने स्वीकार किया कि प्रवारणाका संग्रह किया जाय। इस समय उपोसथ किया जाय तथा प्रातिमोक्षका पाठ किया जाय और आगामी चातुर्मासी कौमुदी पूर्णिमाको प्रवारणा की जाय संघको पसंद है, इसलिये चुप है—इसे मैं ऐसा समझता हूँ।'

(२) प्रवारणाको बढ़ा देनेपर जानेवालेके लिये गुंजाइश

"यदि भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंके प्रवारणा-संग्रह कर लेनेपर एक भिक्षु ऐसा बोले—आवुसो ! मैं देशमें विचरण करने जाना चाहता हूँ। देशमें मेरा कुछ काम है।' तो उससे ऐसा कहना चाहिये—'अच्छा आवुस ! प्रवारणा करके चले जाना।' यदि भिक्षुओ ! वह भिक्षु प्रवारणा करते समय दूसरे भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करे तो वह उससे ऐसा कहे—आवुस ! मेरी प्रवारणामें तुम्हें अधिकार नहीं। मेरी प्रवारणा तुम्हारे साथ न होगी।' यदि भिक्षुओ ! प्रवारणा करते वक्त उस भिक्षुकी प्रवारणाको दूसरा भिक्षु स्थगित करे तो संघको दोनोंसे जिरह करके, बात करके, पता लगा करके, धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये। 862

"यदि भिक्षुओ ! वह भिक्षु देशमें उस कामको भुगताकर उस चातुर्मासी कौमुदी (पूर्णिमा) के भीतर फिर आवासमें लौट आये तो उन भिक्षुओंके प्रवारणा करते वक्त यदि कोई भिक्षु उस भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करे तो वह उससे ऐसा कहे—'आवुस मेरी प्रवारणामें तुम्हारा अधिकार नहीं है। मेरी प्रवारणा हो चुकी है।' यदि उन भिक्षुओंके प्रवारणा करते वक्त वह भिक्षु किसी भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करे तो संघको दोनोंसे जिरह करके, बात करके, पता लगा करके, धर्मानुसार (दंड) करके प्रवारणा करनी चाहिये।" 863

इस खंधकमें ४६ वस्तु हैं

पवारणाक्खन्धक समाप्त ॥४॥

———

५—चर्म-स्कंधक

१—जूते संबंधी नियम। २—सवारी, चारपाई, चौकीके नियम।
३—मध्यदेशसे बाहर विशेष नियम।

§१—जूते संबंधी नियम

१—राजगृह

(१) सोण कोटिविंशकी प्रव्रज्या

१—उस समय बुद्ध भगवान् राजगृहमें गृध्रकूट पर्वतपर विहार करते थे। उस समय मगधराज सेनिय बिम्बिसार अस्सी हज़ार गाँवोंका स्वामी हो राज्य करता था। उस समय चंपामें सोण कोटिवीस (=बीस करोड़का धनी) नामक सुकुमार श्रेष्ठिपुत्र रहता था। उसके पैरके तलवोंमें रोएँ उगे थे। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसारने उन अस्सी हज़ार गाँवों (के मुखियों) को किसी कामके लिये जमाकर सोण कोटिवीसके पास दूत भेजा—'सोणका आगमन चाहता हूँ।' तब सोण कोटिवीसके माता-पिताने सोणसे यह कहा—'तात सोण! राजा तेरे पैरोंको देखना चाहता है। सो तात सोण! तू राजाकी ओर पैर न फैलाना। राजाके सामने पल्थी मारकर बैठना। पल्थी मारकर बैठनेपर राजा तेरे पैरोंको देख लेगा।'

तब सोण कोटिवीसके लिये पालकी लाई गई। सोण कोटिवीस जहाँ मगधराज सेनिय बिम्बिसार था वहाँ गया। जाकर मगधराज सेनिय बिम्बिसारको प्रणाम कर पल्थी मारकर बैठा। मगधराज सेनिय बिम्बिसारने सोण कोटिवीसके पैरके तलवोंमें उत्पन्न रोमोंको देखा। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसारने उन अस्सी हज़ार गाँवोंके मुखियोंको इस जन्मके हितकी बातका उपदेश कर प्रेरित किया—'भणे[1]! मैंने तुम्हें इस जन्मके हितकी बातके लिये उपदेश किया। जाओ! उन भगवान्की सेवामें। वह भगवान् तुम्हें जन्मान्तरके हितकी बातके लिये उपदेश करेंगे।'

तब वह अस्सीहज़ार गाँवोंके मुखिया जहाँ गृध्रकूट पर्वत था वहाँ गये। उस समय आयुष्मान् स्वागत भगवान्के उपस्थाक (=निरंतर सेवक) थे। तब उन अस्सी हज़ार गाँव (के-मुखियों)ने आयुष्मान् स्वागतके पास..जाकर यह पूछा—"भन्ते! यह अस्सी हज़ार गाँवोंके (मुखिया) भगवान्के दर्शनको यहाँ आये हैं। अच्छा हो भन्ते! हम भगवान्का दर्शन पायें।"

"तो तुम आयुष्मानो! मुहूर्त भर यहीं रहो, जब तक कि मैं भगवान्से निवेदन करूँ।"

तब आयुष्मान् स्वागतने उन अस्सी हज़ार गाँवों (के मुखियों)के सामने देखते-देखते पटिसा (=अर्धचन्द्रपाषाण)में डूबकर (=अन्तर्धान हो) भगवान्के सामने प्रकट हो यह

[1] अपनेसे छोटेको संबोधन करनेमें इस शब्दका व्यवहार होता था।

कहा—"भन्ते ! यह अस्सी हज़ार गाँवोंके मुखिया भगवान्‌के दर्शनको यहाँ आये हैं, सो अब जिसका भगवान् काल समझें (वैसा वह करें)।"

"तो स्वागत ! विहारकी छायामें आसन बिछा।"

"अच्छा भन्ते !"—(कह) आयुष्मान् स्वागतने भगवान्‌को उत्तर दे, चौकी ले, भगवान्‌के सामने अन्तर्धान हो उन अस्सी हज़ार गाँवोंके देखते-देखते उनके सामने प टि या से प्रकटहो विहारकी छायामें आसन बिछाया.। तब भगवान् विहार (=रहनेकी कोठरी)से निकलकर विहारकी छायामें बिछे आसनपर बैठे। तब वह अस्सी हज़ार गाँवोंके मुखिया जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे। तब वह अस्सी हज़ार गाँवोंके मुखिया आयुष्मान् स्वागत की ओर ही निहारते थे, भगवान्‌की ओर नहीं। तब भगवान्‌ने उन अस्सी हज़ार गाँवोंके मुखियोंके मनकी बातको जानकर आयुष्मान् स्वागतको संबोधित किया—

"तो, स्वागत ! और भी प्रसन्नताके लिये तू दिव्य-शक्ति ऋद्धि-प्रा नि हा र्य (=ऋद्धियोंका दिखाना) को दिखा।"

"अच्छा भन्ते !" (कह) आयुष्मान् स्वा ग त भगवान्‌को उत्तर दे आकाशमें जाकर टहलते भी थे, खळे भी होते थे, बैठते भी थे, लेटते भी थे, धुआँ भी देते थे, प्रज्ज्वलित भी होते थे, अन्तर्धान भी होते थे। तब आयुष्मान् स्वा ग त ने आकाशमें अनेक प्रकारकी दिव्य-शक्ति ऋ द्धि-प्रा ति हा र्य को दिखा भगवान्‌के पैरोंमें सिरसे वंदनाकर भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! भगवान् मेरे शास्ता (=गुरु) हैं और मैं श्रावक (=शिष्य) हूँ। भन्ते ! भगवान् मेरे शास्ता हैं और मैं श्रावक हूँ। भन्ते ! भगवान् मेरे शास्ता हैं और मैं श्रावक हूँ।"

तब उन अस्सी हज़ार गाँवोंके मुखियोंने—'आश्चर्य है हो ! अद्‌भुत है हो !! जो कि शिष्य ऐसा दिव्य-शक्तिधारी है। ऐसा महा ऋद्धिवाला है !! अहो ! शास्ता कैसे होंगे !'—(कह) भगवान्‌की ओरही निहारते थे, आयुष्मान् स्वागतकी ओर नहीं।

तब भगवान्‌ने उन अस्सी हज़ार गाँवों(के मुखियों)के मनकी बातको जानकर दान-कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा और काम-भोगोंके दुष्परिणाम, अपकार, मालिन्य और काम-भोगसे रहित होनेके गुणको प्रकट किया। जब भगवान्‌ने उन्हें भव्य-चित्त, मृदु-चित्त, अनाच्छादित-चित्त, आह्लादित-चित्त, प्रसन्न-चित्त देखा; तब जो बुद्धोंका उठानेवाला उपदेश है—दुःख, दुःखका कारण, दुःखका नाश, और दुःखके नाशका उपाय—उसे प्रकाशित किया। जैसे कालिमा रहित श्वेत वस्त्र अच्छी तरह रंगको पकळता है, इसी प्रकार उन अस्सी हज़ार गाँवोंके मुखियोंको उसी आसनपर—'जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है, वह नाश होनेवाला है', यह विरज=निर्मल धर्मकी आँख उत्पन्न हुई। तब उन्होंने दृष्ट-धर्म (=धर्मका साक्षात्कार करनेवाला), प्राप्त-धर्म, विदित-धर्म, पर्यवगाढ़-धर्म (अच्छी तरह धर्मका अवगाहन करनेवाला), संदेह-रहित, वाद-विवाद-रहित और विशारदताको प्राप्त हो भगवान्‌के धर्ममें अत्यन्त निष्ठावान् हो भगवान्‌से यह कहा—'आश्चर्य ! भन्ते !! अद्‌भुत ! भन्ते !! जैसे औंधेको सीधा करदे, ढँकेको उघाळ दे, भूलेको रास्ता बतलाये, अँधेरेमें तेलका दीपक रखदे, जिससे कि आँखवाले देखें। ऐसेही भगवान्‌ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया। यह हम भगवान्‌की शरण जाते हैं; धर्म और भिक्षु संघकी भी। आजसे भगवान् हमें अंजलिबद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करें'।'

२—तब सो ण को टि वी स को ऐसा हुआ—'मैं भगवान्‌के उपदेशे धर्मको जिस प्रकार समझ रहा हूँ (उससे जान पळता है कि) यह सर्वथा परिपूर्ण, सर्वथा परिशुद्ध, खरादे-शंखसा उज्ज्वल ब्रह्मचर्य, घरमें रहकर सुकर नहीं है। क्यों न मैं शिर-दाढ़ी मुँळा, काषाय वस्त्र पहिन घरसे बेघर

हो प्रव्रजित हो जाऊँ ?'

तब वह अस्सी हजार गाँवोंके मुखिया भगवान्‌के भाषणका अभिनंदनकर अनुमोदनकर आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चले गये। तब सो ण को टि वी स उन अस्सी हजार गाँवोंके मुखियोंके चले जानेके थोळीही देर बाद जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सो ण कोटिवीसने भगवान्‌से यह कहा—

"मै भगवान्‌के उपदेश धर्मको जिस प्रकार समझ रहा हूँ (उससे जान पळता है कि) यह० ब्रह्मचर्य घरमें रहकर सुकर नहीं। भन्ते! मैं शिर-दाढी मुंळा, कापाय वस्त्र पहिन, घर-से-बेघर हो प्रव्रजित होना चाहता हूँ। भन्ते! भगवान् मुझे प्रव्रज्या दें।"

सो ण कोटिवीसने भगवान्‌के पास प्रव्रज्या पाई, उपसम्पदा पाई। उपसम्पदा पानेके थोळे ही समय बादसे आयुष्मान् सो ण, सी त व न में विहार करते थे। उनके बहुत उद्योग-परायण हो टहलते वक्त पैर फट गये और टहलनेकी जगह खूनसे वैसे ही भर गई जैसे कि गाय मारनेकी जगह। तब एकान्त में विचारमग्न हो बैठे आयुष्मान् सोणके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ—"भगवान्‌के जितने उद्योग-परायण हो विहरनेवाले शिष्य हैं मैं उनमेंसे एक हूँ, तो भी मेरा मन आस्रवों (=चित्तमलों)को छोळ कर मुक्त नहीं हो रहा है। मेरे घरमें भोग-सामग्री है। वहाँ रहते मैं भोगोंको भी भोग सकता हूँ और पुण्य भी कर सकता हूँ। क्यों न मैं लौटकर गृहस्थ हो भोगोंका उपभोग करूँ और पुण्य भी करूँ।"

३—तब भगवान्‌ने आयुष्मान् सोणके चित्तके विचारको अपने मनसे जानकर, जैसे बलवान् पुरुष (विना प्रयास) समेटी बाँहको फैलाये और फैलाई बाँहको समेटे वैसे, ही गृ ध्र कू ट पर्वतपर अन्तर्धान हो (भगवान्) सी त व न में प्रकट हुए। तब भगवान् बहुतसे भिक्षुओंके साथ आश्रममें टहलते, जहाँ आयुष्मान् सो ण के टहलनेका स्थान था, वहाँ गये। भगवान्‌ने आयुष्मान् सो ण के टहलनेकी जगह खूनसे भरी देखी। देखकर भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! यह किसका टहलनेका स्थान खूनसे भरा है जैसे कि गाय मारनेका स्थान?"

"भन्ते! बहुत उद्योग-परायण हो टहलते हुए आयुष्मान् सो ण के पैर फट गये। उन्हींकी टहलनेकी जगह है जो खूनसे भरी है जैसे कि गाय मारनेका स्थान।"

(२) अत्यन्त परिश्रम भी ठीक नहीं

तब भगवान् जहाँ आयुष्मान् सो ण का विहार (=रहनेकी कोठरी) था वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। आयुष्मान् सो ण भी भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् सो ण से भगवान्‌ने यह कहा—

"क्या सो ण! एकान्तमें विचारमग्न हो बैठे तेरे मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ—० पुण्य भी करूँ?"

"हाँ, भन्ते!"

"तो क्या मानता है सो ण! क्या तू पहले गृहस्थ होते समय वी णा बजानेमें चतुर था?"

"हाँ, भन्ते!"

"तो क्या मानता है सो ण! जब तेरी वी णा के तार बहुत जोरसे खिंचे होते थे तो क्या उस समय तेरी वी णा स्वरवाली होती थी, काम लायक होती थी?"

"नहीं, भन्ते!"

"तो क्या मानता है सो ण! जब तेरी वीणाके तार अत्यन्त ढीले होते थे, क्या उस समय तेरी वीणा स्वरवाली होती थी, काम लायक होती थी?"

"नहीं, भन्ते!"

"तो क्या मानता है सो ण ! जव तेरी वीणाके तार न वहुत जोरसे खिंचे होते थे, न अत्यन्त ढीले होते थे, क्या उस समय तेरी वीणा स्वरवाली होती थी, काम लायक होती थी ?"

"हाँ, भन्ते !"

"इसी प्रकार सोण ! अत्यधिक उद्योग-परायणता औद्धत्य को उत्पन्न करती है, अत्यन्त शिथिलता कौसीद्य (=शारीरिक आलस्य) उत्पन्न करती है, इसलिये सो ण उद्योग करनेमें समता को ग्रहणकर, इन्द्रियोंके संबंधमें समता ग्रहण कर, और वहाँ कारणको ग्रहण कर।"

"अच्छा भन्ते !"—(कह) आयुष्मान् सोणने भगवान्‌को उत्तर दिया।

तव भगवान् आयुष्मान् सो ण को यह उपदेशकर जैसे वलवान् पुरुष० वैसेही सीतवनमें आयुष्मान् सो ण के सामने अन्तर्धान हो गृध्रकूटमें जा प्रकट हुए। तव आयुष्मान् सो ण ने दूसरे समय उद्योग करनेमें समताको ग्रहण किया, इन्द्रियोंके संवंधमें समताको ग्रहण किया, और वहाँ कारणको ग्रहण किया; और आयुष्मान् सो ण एकान्तमें प्रमादरहित, उद्योगयुक्त, आत्मनिग्रही हो विहरते अचिर में ही, जिसके लिये कुलपुत्र घरसे वेघर हो प्रव्रजित होते हैं उस अनुपम ब्रह्मचर्यके अन्त (=निर्वाण) को, इसी जन्ममें स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने लगे। 'जन्म क्षय हो गया, ब्रह्मचर्य-वास पूरा होगया, करना था सो कर लिया और यहाँ कुछ करनेको नहीं'—यह जान लिया। और आयुष्मान् सोण अर्हतों (=जीवन्मुक्त)मेंसे एक हुए।

(३) अर्हत्वका वर्णन

तव अर्हत्व प्राप्त कर लेनेपर आयुष्मान् सो ण को यह हुआ—'क्यों न मैं भगवान्‌के पास (अपने) अर्हत्व-प्राप्तिको बखानूँ।' तव आयुष्मान् सो ण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर अभिवादनकर एक ओर वैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् सो ण ने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! जो क्षीण मलवाला (ब्रह्मचर्य)वासको पूरा कर चुका, करणीयको कर चुका, भार-मुक्त, निर्वाण-प्राप्त, भव-बंधन-क्षीण, ठीक तरहसे ज्ञानसे विमुक्त अर्हत् होता है वह छ बातोंके कारण मुक्त होता है—(१) निष्कामतासे मुक्त होता है, (२) प्रविवेक (=एकान्त चिन्तन)से मुक्त होता है, (३) द्रोह-रहित होनेसे मुक्त होता है, (४) (विषयोंके) ग्रहणके क्षयसे मुक्त होता है, (५) तृष्णाके क्षयके कारण मुक्त होता है, (६) मोहके नाशसे मुक्त होता है। भन्ते ! शायद यहाँ किसी आयुष्मान् को ऐसा हो कि यह आयुष्मान् (अर्हत्) सिर्फ श्रद्धामात्रसे निष्कामताके कारण मुक्त हैं, किन्तु भन्ते ! ऐसा नहीं देखना चाहिये। भन्ते ! जिसका चित्त-मल क्षीण होगया है, जिसने ब्रह्मचर्य (-वास) पूरा कर लिया, जो करने लायक कामको कर चुका है, वह करने लायक सभी कामोंको न देखते हुए, किये हुए कामोंके संचयको न देखनेसे और रागके नाशसे वीतराग होनेसे निष्कामताके कारण मुक्त होता है; द्वेषके क्षय होनेसे, दोपरहति हो निष्कामताके कारण मुक्त होता है; मोहके क्षयसे मोहरहित हो निष्कामताके कारण मुक्त होता है। शायद भन्ते ! यहाँ किसी आयुष्मान्‌को ऐसा हो—'यह आयु-ष्मान् लाभ-सत्कार और प्रशंसाकी इच्छासे एकान्त-सेवन करके मुक्त हुए; किन्तु भन्ते ! ऐसा नहीं देखना चाहिये। जिसका चित्त-मल क्षीण होगया है, जिसने ब्रह्मचर्य पूरा कर लिया है, जो करने लायक कामको कर चुका है, वह करने लायक सभी कामोंको न देखते हुए, किये हुए कामोंके संचयको न देखने से और रागके नाशसे वीतराग होनेसे वि वे क (=एकान्तचिन्तन)के कारण मुक्त होता है, द्वेषके क्षय होनेसे, दोप-रहित हो विवेकके कारण मुक्त होता है। मोहके क्षय होनेसे मोह-रहित हो विवेक के कारण मुक्त होता है। शायद भन्ते ! यहाँ किसी आयुष्मान्‌को ऐसा हो—'यह आयुष्मान् ! शी ल-व्र त प रा म र्श (=शील और व्रतके अभिमान)को सारके तौरपर मान, द्रोह-रहित (=पायदा-

रहित) हो मुक्त हुए;' किन्तु भन्ते! ऐसा नहीं देखना चाहिये०[1] मोह-रहित हो द्रोहरहित होनेके कारण मुक्त होता है। शायद भन्ते! ० (विषयोंके) ग्रहण (=उपादान)के क्षयसे मुक्त हुए हैं ।०[2] मोहरहित हो (विषयोंके) ग्रहणके क्षयसे मुक्त होता है। (५) शायद भन्ते! ० तृष्णाके क्षयके कारण मुक्त हुए हैं०[3] मोहरहित हो तृष्णाके क्षयके कारण मुक्त होता है। (६) शायद भन्ते! ० मोहके नाशसे मुक्त हुए हैं०[4] मोहरहित हो मोहके नाशसे मुक्त होता है।

"भन्ते! इस प्रकार अच्छी तरहसे जिसका चित्त मुक्त होगया है, ऐसे भिक्षुके सामने यदि आँख द्वारा जानने योग्य रूप बार-बार भी आएँ तो भी उसके चित्तमें नहीं लिपट सकते। उसका चित्त निर्लेप ही रहेगा। स्थिर और अ-चंचलही रहेगा और वह उसके व्यय (=विनाश)को देखेगा।० यदि कान द्वारा जानने योग्य शब्द ० बार बार भी आवें०।० यदि नाक द्वारा जानने योग्य गंध बार बार भी आवें०।०यदि जिह्वा द्वारा जानने योग्य रस बार बार भी आवें० यदि काया द्वारा जानने योग्य (शीत उष्ण आदिवाले) स्पर्श बार बार भी आवें०।० यदि मनद्वारा जानने योग्य धर्म बार बार भी आवें तो भी उसके चित्तमें नहीं लिपट सकते। उसका चित्त निर्लेप ही रहेगा। स्थिर और अ-चंचल ही रहेगा और वह उसके व्यय (=विनाश)को देखेगा। जैसे भन्ते! छिद्र-रहित, दरार-रहित, ठोस पथरीला पर्वत हो, तो चाहे (उसकी) पूर्व दिशासे भी बार बार आँधी-पानी आये किन्तु उसे कम्पित, सम्प्रकम्पित =सम्प्रवेपित नहीं कर सकता; पश्चिम दिशासे भी०; उत्तर दिशासे भी०; दक्षिण दिशासे भी बार बार आँधी-पानी आये किन्तु उसे कम्पित० नहीं कर सकता। ऐसेही भन्ते! इस प्रकार अच्छी तरहसे जिसका चित्त मुक्त होगया है० उसके व्यय (=विनाश)को देखेगा।—

निष्कामतासे मुक्त, विवेक-युक्त चित्तवाले,
अद्रोहसे मुक्त और उपादान-क्षयवाले;
तृष्णाके क्षयसे मुक्त, सम्मोह-रहित-चित्तवाले (पुरुष)का,
चित्त आयतनोंकी उत्पत्तिको देखकर मुक्त होता है।
उस अच्छी तरहसे मुक्त, शान्त चित्तवाले भिक्षुको,
किये (कामों)का संचय नहीं, न कुछ करणीय शेष है।
जैसे ठोस पहाड़ हवासे कंपायमान नहीं होता,
इसी प्रकार प्रिय रूप, रस, शब्द, गंध, और स्पर्श;
(यह) पदार्थ अनित्य हैं और वह अर्हत्को कंपित नहीं करते।
वह विनाशको देखता है और उसका चित्त सुमुक्त हो स्थित होता है।

तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! इस प्रकार कुलपुत्र लोग अर्हत्व-प्राप्तिको बखानते हैं; (जिसमें कि) बात भी कह दी जाती है और आत्म-श्लाघा भी नहीं होती, किन्तु कोई कोई मोघ-पुरुष तो मानो परिहास करते अर्हत्व-प्राप्तिको बखानते हैं, वह पीछे विनाशको प्राप्त होते हैं।"

फिर भगवान्ने आयुष्मान् सो ण को संबोधित किया—

[1] ऊपर 'निष्कामता'की जगहपर 'द्रोहरहित' शब्दको रख बाकी उसी तरह समझना चाहिये।

[2] ऊपर 'निष्कामता'की जगहपर, 'विषयोंके ग्रहणके क्षय' वाक्यको रख बाकी उसी तरह समझना चाहिये।

[3] ऊपर 'निष्कामता'की जगह 'तृष्णाके क्षय'वाक्यको रख, बाकी उसी तरह समझना चाहिये।

[4] ऊपर 'निष्कामता'की जगह' 'मोहके नाशसे' वाक्यको रख बाकी उसी तरह समझना चाहिये।

"सो ण तू सुकुमार है, सो ण ! अनुमति देता हूँ तेरे लिये एक तल्लेके जूतेकी।"

"भन्ते ! मैं अस्सी गाळी हिरण्य (=अशर्फी) और हाथियोंके सात अ नी क[1]को छोळ वरसे वेघर हो प्रव्रजित हुआ। मेरे लिये (लोग) कहनेवाले होंगे सो ण कोटिवीस अस्सी गाळी अशर्फी और हाथियोंके सात अनीकको छोळकर प्रव्रजित हुआ, सो वह अव एक-तल्ले जूतेमें आसक्त हुआ है। यदि भगवान् भिक्षु-संघके लिये अनुमति दें तो मैं भी इस्तेमाल करूँगा। यदि भगवान् भिक्षु-संघके लिये अनुमति नहीं देंगे तो मैं भी इस्तेमाल नहीं करूँगा।"

(४) एक तल्लेके जूतेका विधान

तव भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ एक तल्लेवाले जूते की। भिक्षुओ ! दो तल्लेवाले जूतेको नहीं धारण करना चाहिये, न तीन तल्लेवाले जूतेको धारण करना चाहिये, न अधिक तल्लेवाले जूतेको धारण करना चाहिये जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो।"1

उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु सारे नीले रंगके जूतेको धारण करते थे,० सारे पीले०, ० सारे लाल०, ०सारे मजीठिया (रंगके)०, ०सारे काले०, ०सारे महारंग-से-रँगे०, ०सारे महानाम-(रंग) से-रँगे जूतोंको धारण करते थे। लोग हैरान. . .होते थे—(कैसे पड्वर्गीय भिक्षु सारे नीले रंगके जूते को० धारण करते हैं) जैसे कि काम-भोगी गृहस्थ !' भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ ! सारे नीले० सारे महानाम-(रंग)से-रँगे जूतोंको नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दु क्क ट का दोष हो।"2

(५) जूतोंके रंग और भेद

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु नीलीपत्तीवाले जूतोंको धारण करते थे,० पीली पत्तीवाले०, ०लाल पत्तीवाले०, ०मजीठिया रंगकी पत्तीवाले०, ०काली पत्तीवाले०,०महारंगसे रँगी पत्तीवाले०, ०महानाम (रंग)से रंगी पत्तीवाले जूतोंको धारण करते थे। लोग हैरान. . .होते थे(०) जैसे कि काम-भोगी गृही। भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ ! नीली पत्तीवाले० महानाम (रंग)से रँगी पत्तीवाले जूतेको नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो।"3

२—उस समय षड्वर्गीय लोग एँळी ढकनेवाले जूतोंको धारण करते थे, पु ट-व द्ध[2] जूतेको धारण करते थे, प ळि गुं ठि म[3] जूतेको धारण करते थे, रुईदार जूतेको धारण करते थे, तीतरके पंखों जैसे जूतोंको धारण करते थे, भेळेकी सींग वँधे हुए जूतोंको धारण करते थे, वकरेकी सींग वँधे जूतोंको धारण करते थे, विच्छूके डंककी तरह नोकवाले जूते धारण करते थे, मोर-पंख-सिये जूतोंको धारण करते थे, चित्र-जूतेको धारण करते थे । लोग हैरान. . .होते थे—(०) जैसे काम-भोगी गृही। भगवान्से यह वात कही—

"भिक्षुओ ! एँड़ी ढँकनेवाले० चित्र-जूतेको न धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो।"4

३—उस समय पड्वर्गीय भिक्षु सिंह-चर्मसे वने जूतेको धारण करते थे, व्याघ्रके चर्म०, ०चीते

---

[1] छ हाथी और एक हथिनीका अनीक होता है ।

[2] यूनानी लोगोंके जूतों जैसे (—अट्ठकथा)।

[3] आजकलके 'वूट' की तरह सारे पैरको ढाँकने वाला जूता ।

के चर्म०, ०हरिनके चर्म०, ० ऊदबिलावके चर्म ०, ०बिल्लीके चर्म०, ० काळक-चर्म०, ०उल्लूके चर्मसे परिष्कृत जूतोंको धारण करते थे। ० भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! सिंह-चर्मसे बने० जूतोंको नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कट का दोष हो।"5

(६) पुराने बहुत तल्लेके जूतेका विधान

तब भगवान् पूर्वाह्णके समय (वस्त्र) पहन, पात्र-चीवर ले एक भिक्षुको अनुगामी बना रा ज-गृ ह में भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुए। बहुत तल्लेवाले जूतेको पहने एक उपासकने दूरसे ही भगवान्‌को आते देखा। देखकर जूतेको छोळ जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर जहाँ, वह भिक्षु था, वहाँ गया। जाकर उस भिक्षुको अभिवादनकर यह बोला—

"भन्ते ! किस लिये पैर खुजला रहे हैं ?" "पैर फूट गये हैं।"

"तो, भन्ते ! यह जूता है।"

"नहीं, आवुस ! भगवान्‌ने बहुत तल्लेके जूतेका निषेध किया है।"

(भगवान्‌ने कहा—) "भिक्षु ! लेले इस जूतेको।"

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें, इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ (पहिनकर) छोळे हुए बहुत तल्लेके जूतेकी। भिक्षुओ ! नया बहुत तल्ले-वाला जूता नहीं पहनना चाहिये। जो पहने उसे दुक्कटका दोष हो।" 6

(७) गुरुजनोंके नंगे-पैर होनेपर जूतेका निषेध

उस समय भगवान् चौळेमें बिना जूतेहीके टहल रहे थे। 'शास्ता बिना जूतेके टहल रहे हैं' यह (देख) स्थविर भिक्षु भी बिना जूतेहीके टहल रहे थे। प ड् व र्गी य भिक्षु शास्ताको बिना जूतेके टहलते और स्थविर भिक्षुओंको भी बिना जूतेके टहलते (देखकर) भी जूता पहने टहलते थे। (यह देख) जो अल्पेच्छ भिक्षु थे, वह हैरान...होते थे—'कैसे षड्वर्गीय भिक्षु शास्ताको बिना जूतेके टहलते (देख) और स्थविर भिक्षुओंको भी बिना जूतेके (देख) जूता पहने टहलते हैं !' तब उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही।—

"क्या सचमुच भिक्षुओ ! षड्वर्गीय भिक्षु शास्ताको बिना जूतेके टहलते (देख)० जूता पहन कर टहलते हैं ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—

"कैसे भिक्षुओ ! यह मोघ-पुरुष, शास्ताको बिना जूता पहने टहलते (देख) ० जूता पहने टहलते हैं ! भिक्षुओ ! यह काम-भोगी श्वेत वस्त्र पहननेवाले गृही भी अपनी जीविकाके हुनर (=शिल्प) के लिये, (अपने) आचार्योंमें गौरवयुक्त, आदरयुक्त, एक तरहकी वृत्तिवाले हो रहते हैं। भिक्षुओ ! यह कैसे शोभा देगा कि तुम इस प्रकारके सुन्दर तौरसे व्याख्यात धर्ममें प्रव्रजित होकर आचार्योंमें, और आचार्यतुल्योंमें, उपाध्यायोंमें और उपाध्यायतुल्योंमें, गौरव रहित, आदररहित, असमान वृत्तिके हो रहोगे ! भिक्षुओ ! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है०।"

भगवान्‌ने फटकारकर धार्मिककथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! आचार्य या आचार्यतुल्योंको, उपाध्याय या उपाध्याय तुल्योंको बिना जूतेके

[1] एक प्रकारका पैरका रोग जिसमें काँटे लगानेसा दर्द होता है।

टहलते देख जूता पहिनकर नहीं टहलना चाहिये; जो टहले उसे दु क्क ट का दोष हो । भिक्षुओ! आरामें जूता नहीं पहनना चाहिये, जो पहने उसे दुक्कटका दोष हो।" 7

(८) विशेष अवस्थामें आराममें भी जूता पहिनना

१––उस समय एक भिक्षुको पा द की ल रोग[1] था। भिक्षु पकळकर उसे पाखानेके लिये और पिशाब कराने ले जाते थे। भगवान्ने विहार देखनेके लिये घूमते वक्त उन भिक्षुओंको उस भिक्षुको पकळकर पाखानेके लिये भी पेशावके लिये भी ले जाते देखा। देखकर जहाँ वह भिक्षु थे वहाँ गये। जाकर उन भिक्षुओंसे यह कहा––"भिक्षुओ! इस भिक्षुको क्या बीमारी है?"

"भन्ते! इस आयुष्मान्को पा द की ल रोग है। इनको हम पकळकर पाखानेके लिये भी, पेशाब के लिये भी ले जाते हैं।"

तब भगवान्ने इसी संबंधमें, इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया।––

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उसे जूता धारण करनेकी जिसके कि पैरमें पीळा हो, पैर फटे हों या पादकील रोग हो।" 8

२––उस समय भिक्षु विना पैर धोये चारपाईपर भी चढ़ते थे, चौकीपर भी चढ़ते थे। उससे चीवर भी मैला होता था और निवास-स्थान भी। भगवान्से यह बात कही०––

"भिक्षुओ! जूता धारण करनेकी अनुमति देता हूँ। यदि उसी समय चारपाई या चौकीपर चढ़ना हो।" 9

(९) आराममें जूता, मसाल, दीपक और दंड रखनेका विधान

उस समय भिक्षु रातके वक्त उपोसथके स्थानमें भी, बैठनेके स्थानमें भी जाते हुए अन्धकारमें खाँळ (=गळहे)में भी, काँटेमें भी चले जाते थे और पैरोंको पीळा होती थी। भगवान्से यह बात कही।––

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ आराममें भी जूता, मसाल, दीपक और क त्त र दं ड (=डंडा)-को धारण करनेकी।" 10

(१०) खळाऊँका निषेध

उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु रात्रिके भिनसारको उठकर खळाऊँपर चढ़ ऊँचे शब्द, महाशब्द, खटखट शब्द करते टहलते थे और अनेक प्रकारकी ति र च्छा न क था (=फजूलकी बात) जैसे कि––राज-कथा, चोर-कथा, महामात्य-कथा, सेना-कथा, भय-कथा, युद्ध-कथा, अन्न-कथा, पान-कथा, वस्त्र-कथा, शयन-कथा, माला-कथा, गंध-कथा, ज्ञाति-कथा, यान-कथा, ग्राम-कथा, कस्बेकी कथा, नगर-कथा, देश-कथा, स्त्री-कथा, पुरुष-कथा, शूर-कथा, चौरस्तेकी कथा, पनघटकी कथा, पहले मरोंकी कथा, मानत्त्वकी कथा, लोक-आख्यायिका, समुद्र-आख्यायिका––ऐसी भव और अभवकी कथा कहते थे और इस प्रकार कीळोंको भी आक्रान्त करते थे, मारते थे और भिक्षुओंको भी समाधिसे च्युत कर देते थे। तब जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे वह हैरान..होते थे––'कैसे षड्वर्गीय भिक्षु रातके विहानको ० भिक्षुओंको भी समाधिसे च्युत कर देते हैं!' भगवान्से यह बात कही।––

"सचमुच भिक्षुओ! षड्वर्गीय भिक्षु ० समाधिसे च्युत करते हैं?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्!"

फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया––

"भिक्षुओ! काठकी खळाऊँको नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसको दुक्कटका दोष हो।" 11

---

[1] एक प्रकारका पैरका रोग, जिसमें काँटे लगा सा ज़ख्म होता है।

२—वाराणसी

(११) निषिद्ध पादुकायें

१—तब भगवान् रा ज गृ ह में इच्छानुसार विहारकर जहाँ वा रा ण सी है उधर विचरनेको चल दिये। क्रमशः विचरते जहाँ वाराणसी है वहाँ पहुँचे और वहाँ वाराणसीमें भगवान् ऋ षि प त न मृ ग दा व में विहार करते थे। उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु—भगवान्ने काटकी खळाऊँका निषेध किया है सोच, ताळके पौधोंको कटवा तालके पत्तोंकी पादुका (बनवा) धारण करते थे। (पत्तेके) काटनेसे वह तालके पौधे सूख जाते थे। लोग हैरान. . .होते थे—कैसे शाक्य-पुत्रीय श्रमण तालके पौधेको कटवा कर तालके पत्तेकी पादुका धारण करते हैं, और कटे हुए वह तालके पौधे सूख जाते हैं! शाक्यपुत्रीय श्रमण एकेन्द्रिय जीव (=वृक्ष)की हिंसा करते हैं।' भिक्षुओंने उन मनुष्योंके हैरान. . .होनेको सुना। उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! षड्वर्गीय भिक्षु ० तालके पौधे सूख जाते हैं?"

"(हाँ) सचमुच भगवान!"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—"भिक्षुओ! कैसे वह मोघ पुरुष ० तालके पौधे सूखते हैं? भिक्षुओ! (कितने ही) मनुष्य वृक्षोंमें जीवका ख्याल रखते हैं। भिक्षुओ! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

फटकारकर भगवान्ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! तालके पत्रकी पादुका नहीं धारण करनी चाहिये०। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 12

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु—भगवान्ने तालके पत्रकी पादुकाका निषेध किया है—यह सोच बाँसके पौधोंको कटवाकर बाँसके पौधोंकी पादुका धारण करते थे। कटजानेसे वे बेंतके पौधे सूख जाते थे। लोग हैरान. . .होते थे—० एकेन्द्रिय जीवकी हिंसा करते हैं।' भिक्षुओंने ० सुना। तब उन भिक्षुओंने यह बात भगवान्से कही ०।—

"भिक्षुओ! बाँसके पौधोंकी पादुका नही धारण करनी चाहिये। जो धारण करे उसे दु क्क ट का दोष हो।" 13

३—तब भगवान् वा रा ण सी में इच्छानुसार विहार कर जिधर भ द्दि या[1] (=भद्रिका) है उधर विचरनेके लिये चल दिये। क्रमशः विचरते, जहाँ भ द्दि या है, वहाँ पहुँचे। भगवान् वहाँ भ द्दि या में के जा ति या वनमें विहार करते थे। उस समय भद्दियावाले भिक्षु अनेक प्रकारकी पादुकाके मंडनमें लगे रहते थे—तृण-पादुका भी बनाते बनवाते थे, मूँजकी पादुका भी बनाते बनवाते थे, ब ल्ब ज (=बब्भळ घास)की पादुका०, हितालकी पादुका०, कमल-पादुका०, कम्बल-पादुका०, भी बनाते बनवाते थे; और शील, चित्त तथा प्रज्ञाके विषयमें पाठ और पूँछताछ करना छोळे हुए थे। (इससे) जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे वह हैरान. . . होते थे ०। तब उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! भद्दियाके भिक्षु अनेक प्रकारके पादुकाके मंडनमें लगे रहते हैं ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्।"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—"भिक्षुओ! कैसे वह मोघ पुरुष ०? भिक्षुओ! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

[1] सम्भवतः वर्तमान मुंगेर (बिहार)।

फटकार करके धार्मिक कथा कह भगवान्‌ने भिक्षुओंको संवोधित किया।—

"भिक्षुओ ! तृण, मूँज०, वल्वज०, हिंताल०, कमल०, कम्बल०,की पादुकाएँ नहीं धारण करनी चाहिएँ, और न सुवर्णमयी, न रौप्यमयी०, न मणिमयी०, न वैदूर्यमयी०, न स्फटिकमयी०, न काँसमयी०, न काँचमयी०, न राँगेकी०, न सीसेकी०, न ताँबे (=ताम्र। लोह)की पादुकाएँ धारण करनी चाहिएँ। जो धारण करे उसे दु क्क ट का दोप हो। और भिक्षुओ ! काची (=घुट्ठी ?) तक पहुँचनेवाली पादुकाको नहीं धारण करनी चाहिये। जो धारण करे उसे दु क्क ट का दोप हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, नित्य रहनेकी जगहपर तीन प्रकारकी पादुकाओंके, इस्तेमाल करनेकी—न चलनेकी, और पेशाब पाखानेकी, और आचमन (के वक्त)की।" 14

४—श्रावस्ती

(१२) गाय बछड़ोंको पकड़ने मारने आदिका निषेध

तब भगवान् भ द्दि यामें अच्छी तरह विहार कर जिधर श्रा व स्ती है, उधर विचरनेके लिये चल दिये। क्रमशः विचरते जहाँ श्रावस्ती है वहाँ पहुँचे। भगवान् वहाँ श्रावस्तीमें अ ना थ पि डि क-के आराम जे त व न में विहार करते थे। उस समय षड्वर्गीय भिक्षु अ चि र व ती (=राप्ती) नदीमें तैरती गायोंकी सींगोंको भी पकड़ते थे, कानों०, गर्दन०, पूँछको भी पकड़ते थे, पीठपर भी चढ़ते थे। राग-युक्त चित्तसे लिंगको भी छूते थे, वछियोंको भी अवगाहन कर मारते थे। लोग हैरान...होते थे—'कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण ० तैरती गायोंको ० मारते हैं, जैसे कि काम-भोगी गृहस्थ। भिक्षुओंने सुना।' ० भगवान्‌से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ ! ० ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

० भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! गायोंकी सींग०, कान०, गर्दन०, पूँछ नहीं पकड़नी चाहिये और न पीठपर चढ़ना चाहिये। जो चढ़े उसे दु क्क ट का दोप हो। और भिक्षुओ ! न राग-युक्त चित्तसे लिंगको छूना चाहिये। जो छूवे उसे थु ल्ल च्च य का दोष हो। न बछियोंको मारना चाहिये; जो मारे उसे धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये।" 15

§२—सवारी, चारपाई चौकीके नियम

(१) सवारीका निषेध

उस समय ष ड्‌ व र्गी य भिक्षु पराये पुरुषके साथवाली स्त्रीसे युक्त, पराई स्त्रीके साथवाले पुरुषसे युक्त यानसे जाते थे। लोग हैरान...होते थे—(०) जैसे गंगाके मेलेको।' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! यानसे नहीं जाना चाहिये। जो जाये उसे दु क्क ट का दोप हो।" 16

(२) रोगमें सवारीका विधान

१—उस समय एक भिक्षु को स ल देशमें भगवान्‌के दर्शनके लिये श्रा व स्ती जाते वक्त रास्तेमें बीमार हो गया। तब वह भिक्षु रास्तेसे हटकर एक वृक्षके नीचे बैठा। लोगोंने उस भिक्षुको देखकर यह कहा—

"भन्ते ! आर्य कहाँ जायँगे ?"

"आवुस ! मैं भगवान्‌के दर्शनके लिये श्रावस्ती जाऊँगा।"

"आइये भन्ते ! चलें।"

"आवुस ! मैं नहीं चल सकता। बीमार हूँ।"

"आइये भन्ते ! यानपर चढ़िये।"

"नहीं आवुस ! भगवान्ने यानका निषेध किया है।"

इस प्रकार संकोच करके नहीं चढ़ा। तब उस भिक्षुने श्रा व स्ती जाकर भिक्षुओंसे यह बात कही। भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, रोगीको यानकी।" 17

२—तब भिक्षुओंको यह हुआ—'क्या नर-जोते (यान), या मादा-जोते (यान) (से जाना चाहिये) ?।' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, नरजोते ह त्थ व ट्ट क [1]की।" 18

(३) विहित सवारियाँ

उस समय एक भिक्षुको यानकी चोटसे बहुत भारी पीळा हुई। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, शिविका, पालकी (=पा टं की)की।" 19

(४) महार्घ शय्याका निषेध

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु उ च्चा श य न, म हा श य न जैसे कि कुर्सी (=आसंदी), पलंग, गोंळक, चित्रक, पटिक [2](=गलीचा), पटलिक, [3]तूलिक (=तोशक), विकतिक, [4]उद्दलोमी एकान्तलोमी, कटिस्स, कौशेय, कुत्तक ऊनी बिछौना, हाथीका झूल, घोळेका झूल, रथका झूल, मृग-छाला, समूरी मृगका सुन्दर बिछौना, ऊपरकी चादर, (सिरहाने, पैरहाने) दोनों ओर लाल तकियोंको धारण करते थे। विहारमें घूमते वक्त लोग देखकर हैरान...होते थे—(०) जैसे कि काम-भोगी गृहस्थ।' भगवान्ने यह बात कही—

"भिक्षुओ ! उ च्चा श य न, म हा श य न, जैसे कि—० दोनों ओर लाल तकियोंको नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दु क्क ट का दोष हो।" 20

(५) सिंह आदिके चमळोंका निषेध

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु—'भगवान्ने उ च्चा श य न, म हा श य न का निषेध किया है—(यह सोच) सिंह-चर्म, व्याघ्र-चर्म, चीतेका चर्म इन (तीन) महा-चर्मोंको धारण करते थे और उन्हें चारपाईके प्रमाणसे भी काट रखते थे, चौकीके प्रमाणसे भी काट रखते थे। चारपाईके भीतर भी बिछा रखते थे, बाहर भी बिछा रखते थे। चौकीके भीतर भी०, बाहर भी बिछा रखते थे। विहार घूमते वक्त लोग देखकर हैरान...होते थे—(०) जैसे काम-भोगी गृहस्थ।' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! महाचर्मों—सिंह, व्याघ्र, चीतेके चर्मको नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दु क्क ट का दोष हो।" 21

(६) प्राणिहिंसाकी प्रेरणा और चर्मधारणका निषेध

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु, भगवान्ने महाचर्मोंका निषेध किया है, (यह सोच) गायके चाम-

[1] एक तरहकी सवारी।

[2] किनारीदार बिछानेका कम्बल।

[3] एक ओर किनारीवाला बिछानेका कम्बल।

[4] बिछानेका जड़ाऊ रेशमी कपड़ा।

को धारण करते थे और उसे चारपाईके प्रमाणसे भी काटकर रखते थे ० चौकीके बाहर भी बिछा रखते थे।

उस समय एक दुराचारी भिक्षु, एक दुराचारी उपासकके घरमें आने जानेवाला था। तब वह दुराचारी भिक्षु पूर्वाह्णके समय (वस्त्र) पहनकर, पात्र-चीवरले, जहाँ उस दुराचारी उपासकका घर था वहाँ गया। जाकर बिछे आसनपर बैठा। तब वह दुराचारी उपासक जहाँ वह दुराचारी भिक्षु था वहाँ गया। जाकर उसे अभिवादनकर एक ओर बैठा। उस समय उस दुराचारी उपासकके पास एक तरुण सुन्दर दर्शनीय (चित्तको) प्रसन्न करनेवाला, चीतेके बच्चेकी तरहका चितकबरा बछळा था। तब वह पापी भिक्षु उस बछळेको बळे चावसे निहारता था। तब उस पापी उपासकने उस पापी भिक्षुसे यह कहा—

"भन्ते ! आर्य क्यों मेरे बछळेको इतनी चावसे निहार रहे हैं ?"

"आवुस ! मुझे इस बछळेके चमळेका काम है।"

तब उस पापी उपासकने उस बछळेको मारकर चमळेको छून कर उस पापी भिक्षुको दिया। तब वह पापी भिक्षु उस चमळेको (लेकर) संघाटीसे ढाँककर चला गया। तब उस बछळेपर स्नेह रखनेवाली गायने उस पापी भिक्षुका पीछा किया। भिक्षुओंने पूछा—

"आवुस ! क्यों यह गाय तेरा पीछा कर रही है ?"

"आवुसो ! मैं भी नहीं जानता कि क्यों यह गाय मेरा पीछा कर रही है।"

उस समय उस पापी भिक्षुकी संघाटी खूनसे सनी हुई थी। भिक्षुओंने यह कहा—

"किन्तु आवुस यह तेरी संघाटीको क्या हुआ ?"

तब उस पापी भिक्षुने भिक्षुओंसे वह बात कह दी।

"क्या आवुस ! तूने प्राण हिंसाकी प्रेरणाकी ?"

"हाँ आवुस !"

तब वह जो अल्पेच्छ भिक्षु थे वह हैरान· · ·होते थे—

"कैसे भिक्षु प्राण-हिंसाकी प्रेरणा करेगा ? भगवान्‌ने तो अनेक प्रकारसे प्राण-हिंसाकी निंदा की है; और प्राण-हिंसाके त्यागको प्रशंसा है।"

तब उन भिक्षुओं ने भगवान्‌से यह बात कही।—

तब भगवान्‌ने इसी प्रकरणमें, इसी संबंधमें भिक्षु-संघको एकत्रित करवा उस पापी भिक्षुसे पूछा—

"सचमुच भिक्षु तूने प्राण-हिंसाके लिये प्रेरणाकी ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—"मोघ पुरुष (=निकम्मे आदमी) ! कैसे तूने प्राणहिंसाकी प्रेरणा की ? मोघपुरुष ! मैंने तो अनेक प्रकारसे प्राण-हिंसाकी निंदा की है और प्राण-हिंसाके त्यागको प्रशंसा है। मोघ पुरुष ! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

फटकारकर धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! प्राण-हिंसाकी प्रेरणा नहीं करनी चाहिये। जो प्रेरणा करे उसका धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये। भिक्षुओ ! गायका चाम नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ ! कोई भी चर्म नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दु क्क ट का दोष हो।" 22

(७) चमळे मढ़ी चारपाई आदिपर बैठा जा सकता है

१—उस समय लोगोंकी चारपाइयाँ भी, चौकियाँ भी, चमळेसे मढ़ी होती थी, चमळेसे बँधी

होती थी; भिक्षु संकोच करके उनपर नहीं बैठते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"अनुमति देता हूँ भिक्षुओ! गृहस्थोंके विस्तरेपर बैठने की; किन्तु लेटनेकी नहीं।" 23

२—उस समय बिहार चमळेके टुकळोंसे बिछे थे। भिक्षु संकोचके मारे नहीं बैठते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सिर्फ़ बंधन भर पर बैठनेकी।" 24

(८) जूता पहिने गाँवमें जानेका निषेध

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु जूता पहने गाँवमें प्रवेश करते थे। लोग हैरान...होते थे (०) जैसे काम-भोगी गृहस्थ। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! जूता पहने गाँवमें प्रवेश नहीं करना चाहिये। जो प्रवेश करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 25

२—उस समय एक भिक्षु बीमार था और वह जूता पहने बिना गाँवमें प्रवेश करनेमें असमर्थ था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ बीमार भिक्षुको जूता पहनकर गाँवमें प्रवेश करनेकी।" 26

§३—मध्यदेशसे बाहर विशेष नियम

(१) सोण-कुटिकण्णकी प्रव्रज्या

उस समय आयुष्मान् म हा का त्या य न अ व न्ती[1] (देश)में कु र र घर के प्र पा त प र्व त पर वास करते थे। उस समय सो ण कु टि क ण्ण उनका उपस्थाक था—एकान्तमें स्थित, विचारमें डूबे सोण-कुटिकण्ण उपासकके मनमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—

"जैसे जैसे आर्य महाकात्यायन धर्म उपदेश करते हैं, (उससे) यह सर्वथा परिपूर्ण, सर्वथा परिशुद्ध शंखसा धुला ब्रह्मचर्य, गृहमें बसते पालन करना, सुकर नहीं है। क्यों न मैं० प्रव्रजित हो जाऊँ।"

तब सोण-कुटिकण्ण उपासक, जहाँ आयुष्मान् महाकात्यायन थे, वहाँ गया...जाकर...अभिवादनकर एक ओर...बैठ...यह बोला—

"भंते! एकान्तमें स्थित हो विचारमें डूबे मेरे मनमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—०। भंते! आर्य महाकात्यायन मुझे प्रव्रजित करें।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् महाकात्यायनने सोण०से यह कहा—

"सोण! जीवनभर एकाहार, एक शय्यावाला ब्रह्मचर्य दुष्कर है। अच्छा है, सोण! तू गृहस्थ रहते ही बुद्धोंके शासन (उपदेश)का अनुगमन कर; और काल-युक्त (=पर्व-दिनोंमें) एक-आहार, एक-शय्या (=अकेला रहना) रख।"

तब सोण-कुटिकण्ण उपासकका प्रव्रज्याका उछाह ठंडा पळ गया।

दूसरी बार भी० मनमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—०। ० तीसरी बार भी०। "० भंते! आर्य महाकात्यायन मुझे प्रव्रजित करें।"

तब आयुष्मान् महाकात्यायनने सोण-कुटिकण्ण उपासकको प्रव्रजित किया (=श्रामणेर बनाया)। उस समय अ व न्ति द क्षि णा प थ में बहुत थोळे भिक्षु थे। तब आयुष्मान् म हा का त्या

[1] वर्तमान मालवा।

य न ने तीन वर्ष बीतनेपर बहुत कठिनाईसे जहाँ तहाँसे दशवर्ग (=दशभिक्षुओंका) भिक्षु-संघ एकत्रित कर, आयुष्मान् सोणको उपसंपन्न किया (=भिक्षु बनाया)। वर्षावास बस, एकान्तमें स्थित, विचार में डूबे आयुष्मान् सोणके चित्तमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—'मैंने उन भगवान्‌को सामने से नहीं देखा, बल्कि मैंने सुनाही है,—वह भगवान् ऐसे हैं, ऐसे हैं। यदि उपाध्याय मुझे आज्ञा दें, तो मैं भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्धके दर्शनके लिये जाऊँ।'

तब आयुष्मान् सोण सायंकाल ध्यानसे उठ, जहाँ आयुष्मान् महाकात्यायन थे, वहाँ जाकर...अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठ...आयुष्मान् महाकात्यायनसे कहा—

"भंते! एकांतमें विचारमें डूबे मेरे चित्तमें एक ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ है–यदि उपाध्याय मुझे आज्ञा दें, तो मैं भगवान्०के दर्शनके लिये जाऊँ।"

"साधु! साधु! सोण! जाओ सोण० भगवान्‌के चरणोंमें वन्दना करना[1]—'भन्ते! मेरे उपाध्याय भगवान्‌के चरणोंमें सिरसे वन्दना करते हैं। और यह भी कहना—'भन्ते अ व न्ति-द क्षि णा प थ में बहुत कम भिक्षु हैं। तीन वर्ष व्यतीत कर बळी मुश्किलसे जहाँ तहाँसे दशवर्ग भिक्षुसंघ एकत्रितकर मुझे उपसंपदा मिली। अच्छा हो भगवान् अवन्ति-दक्षिणा-पथमें (१) अल्पतर गण (=कम कोरम् की जमायत)से उपसंपदाकी अनुज्ञा दें। अवन्ति-दक्षिणा पथमें भन्ते! भूमि कालो (=कण्हुत्तरा) कड़ी, गोखरू (=गोकंटकों)से भरी है। अच्छा हो भगवान् अवन्ति-दक्षिणा-पथमें (२) (भिक्षु) गणको गण-वाले उपानह (=पनहों)की अनुज्ञा दें। अवन्ति-दक्षिणपथमें भन्ते! मनुष्य स्नानके प्रेमी, उदकसे शुद्धि मानने वाले हैं; अच्छा हो भन्ते! अवन्ति-दक्षिणा-पथमें (३) नित्य-स्नानकी अनुज्ञा दें। अवन्ति-दक्षिणापथमें भन्ते! चर्ममय आस्तरण (=बिछौने) होते हैं; जैसे मेष-चर्म, अज-चर्म, मृग-चर्म। ० (४) चर्ममय आस्तरणकी अनुज्ञा दें। भन्ते! इस समय सीमासे बाहर गये भिक्षुओंको (मनुष्य) चीवर देते हैं—'यह चीवर अमुक नामकको दो।' वह आकर कहते हैं—'आवुस! इस नामवाले मनुष्यने तुझे चीवर दिया है।' वह (विधि-निषेध) सन्देहमें पळ (सेवन नहीं करते, फिर कहीं उन्हें) निस्सर्गीय (=छोळनेका प्रायश्चित) न होजाय। अच्छा हो भगवान् (५) चीवर-पर्याय कर दें।"

"अच्छा भन्ते!" कह.....सो ण कु टि क ण्ण.....आयुष्मान् महाकात्यायनको अभि-वादनकर प्रदक्षिणाकर जहाँ श्रा व स्ती थी वहाँको चले।

क्रमशः विचरते जहाँ श्रावस्ती में अनाथ-पिंडिक था, जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये।

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"आनन्द! इस नवागत भिक्षुको वास दो।"

तब आयुष्मान् आनन्दको हुआ—"भगवान् जिसके लिये कहते हैं—'आनन्द! इस नवागत भिक्षुको वास दो।' उसे भगवान् एक ही विहारमें साथ रखना चाहते हैं। यह सोच जिस विहार में भगवान् रहते थे, उसीमें आयुष्मान् सोणका आसन लगवा दिया।

भगवान्‌ने बहुत रात खुले स्थानमें बिताकर प्रवेश किया। तब रातको भिनसारमें उठकर भगवान्‌ने आयुष्मान् सोणको कहा—

"भिक्षु! ध र्म का पाठ कर सकते हो।"

"हाँ भन्ते!" (कह) आयुष्मान् सोणने··सभी सोलह अ ट्ट क व ग्गि कों[1]को स्वर-सहित

---

[1]सुत्तनिपात पारायणवग्ग ५।

पाठ किया।

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् सोणके स्वरयुक्त पाठके खतम हो जानेपर उनका अनुमोदन किया।—

"साधु, साधु भिक्षु ! तूने सोलह अट्ठकवग्गिकों को अच्छी तरह ग्रहण किया है, अच्छी तरह मनमें किया है, अच्छी तरह धारण किया है। सुन्दर स्पष्ट सरल अर्थ द्योतक वाणीसे युक्त है। भिक्षु ! तू कितने वर्षका (भिक्षु) है ?

"भन्ते ! मैं एक वर्षका हूँ।—

"भिक्षु ! तूने इतनी देर क्यों लगाई।"

"भन्ते ! देरसे कामोंके दुष्परिणामको देख पाया। और गृहवास बहु-कार्य=बहु-करणीय संबाध (=बाधायुक्त) होता है।"

भगवान्‌ने इस अर्थको जानकर उसी समय इस उदानको कहा—

"लोकके दुष्परिणामको देख और उपधि-रहित धर्मको जानकर; आर्य पापमें नहीं रमता, शुचि (=पवित्रात्मा) पापमें नहीं रमता।"

तब आयुष्मान् सोणने—'भगवान् मेरा अनुमोदन कर रहे हैं, यही इसका समय है'······ (सोच) आसनसे उठ, उत्तरासंग एक कन्धेपर कर भगवान्‌के चरणोंपर सिरसे पळकर, भगवान्‌से कहा—

"भन्ते ! मेरे उपाध्याय आयुष्मान् महाकात्यायन भगवान्‌के चरणोंमें सिरसे वन्दना करते हैं, और यह कहते हैं—

"भन्ते ! अवन्ति-दक्षिणा-पथमें बहुत कम भिक्षु हैं ०, अच्छा हो भगवान् चीवर-पर्याय (=विकल्प) कर दें ?"

(२) सीमान्त देशोंमें विशेष नियम

तब भगवान्‌ने इसी प्रकरणमें धार्मिक-कथा कहकर भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ ! अवन्ति-दक्षिणापथमें बहुत कम भिक्षु हैं। भिक्षुओ ! सभी प्रत्यन्त जनपदों (=सीमान्त देशों)में विनयधरको लेकर पाँच, (कोरम वाले) भिक्षुओंके गणसे उपसंपदा (करने)की अनुमति देता हूँ।" 27

यहाँ यह प्रत्यन्त (सीमान्त) जनपद हैं—पूर्व दिशामें कजंगल[1] नामक निगम (=कसबा) है, उसके बाद बड़े साख् (के जंगल) हैं, उसके परे 'इधरसे बीचमें' प्रत्यन्त जनपद हैं। पूर्व-दक्षिण दिशामें सललवती[2] नामक नदी है, उससे परे, इधरसे बीचमें (=ओरतो मज्झे) प्रत्यन्त जनपद हैं। दक्षिण दिशामें सेतकण्णिक[3] नामक निगम है ०। पश्चिम दिशामें थूण[4] नामक ब्राह्मण-ग्राम ०। उत्तर दिशामें उशीरध्वज नामक[5] पर्वत, उससे परे ० प्रत्यन्त जनपद हैं।

"भिक्षुओ ! इस प्रकारके प्रत्यन्त जनपदोंमें अनुज्ञा देता हूँ—विनयधर सहित पाँच भिक्षुओंके गणसे उपसंपदा करने की।······28

"सब सीमान्त-देशोंमें·····गणवाले उपानह ०। 29

[1] वर्तमान कंकजोल (जिला-संथाल परगना, बिहार)।
[2] वर्तमान सिलई नदी (जिला हजारीबाग और वीरभूम)।
[3] हजारीबाग जिलेमें कोई स्थान था।
[4] आधुनिक थानेश्वर। [5] हरिद्वारके समीप।

"० नित्य-स्नान ०।30

० सब चर्म—मेष-चर्म, अज-चर्म मृग-चर्म जैसे भिक्षुओ ! मध्य देशों (=युक्त प्रान्त, बिहार)में एरगू मोरगू, मज्जारू जन्तु हैं ऐसेही भिक्षुओ ! अवन्ती दक्षिणापथमें मेष-चर्म, अज-चर्म, मृग-चर्म (आदि) चर्मके बिछौने हैं ०।31

अनुज्ञा देता हूँ· ·(चीवर) उपभोग करनेकी, वह तब तक (तीन चीवरमें) न गिनाजाय, जब तक कि हाथमें न आजाय।" 32

चम्मक्खन्धक समाप्त ॥५॥

६—भैषज्य-स्कंधक

१—औषध और उसके बनानेके साधन। २—स्वेदकर्म तथा चीर-फाळ आदि की चिकित्सा। ३—आराममें चीजोंको रखना सँभालना आदि। ४—अभक्ष्य मांस। ५—संघाराममें चीजोंके रखनेके स्थान। ६—गोरस और फलरस आदिका विधान।

§१—औषध और उसके बनानेके साधन

१—श्रावस्ती

(१) पाँच भैषज्योंका विधान

१—उस समय बुद्ध भगवान् श्रा व स्ती में अ ना थ पिं डि क के आराम जेतवनमें विहार करते थे।

उस समय भिक्षु शरदकी बीमारी (=जाळा बुखार) से उठे थे, उनका पिया यवागू (=खिचळी) भी वमन होजाता था, खाया भात भी वमन होजाता था, इसके कारण वह कृश, रुक्ष और दुर्वर्ण पीले पीले नसोंमें-सटे-शरीर वाले हो गये थे। भगवान्‌ने उन भिक्षुओंको कृश० नसोंमें-सटे-शरीरवाला देखा। देखकर आयुष्मान् आनन्दसे पूछा—

"आनन्द! क्यों आजकल भिक्षु कृश० नसोंमें-सटे-शरीर वाले हैं?"

"इस समय भन्ते! भिक्षु शरदकी बीमारीसे उठे हैं, उनका पिया यवागू भी वमन हो जाता है० नसोंमें-सटे-शरीर वाले हो गये हैं।"

तब एकान्तमें स्थित हो विचार मग्न होते समय भगवान्‌के मनमें ख्याल पैदा हुआ—'इस समय भिक्षु शरदकी बीमारीसे उठे हैं० नसोंमें-सटे-शरीर वाले हो गये हैं। क्यों न मैं भिक्षुओंको (ऐसे) भै ष ज्य (=औषध) की अनुमति दूँ, जिसको लोग भैषज्य मानते हों जो आहारका काम भी कर सकें, किन्तु स्थूल-आहार न समझा जाये।' तब भगवान्‌को यह हुआ—यह पाँच भैषज्य हैं जैसे कि—घी, मक्खन, तेल, मधु और खाँड—इन्हें लोग भैषज्य भी मानते हैं, और यह आहारका काम भी कर सकते हैं, किन्तु स्थूल-आहार नहीं समझे जाते। क्यों न मैं इन भिक्षुओंको इन पाँच भैषज्योंको समयसे लेकर समयपर उपयोग करनेकी अनुमति दूँ।'

तब भगवान्‌ने सायंकालको एकान्त चिन्तनसे उठकर इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! आज एकान्तमें स्थित हो विचार-मग्न होते समय मेरे मनमें ख्याल पैदा हुआ—'इस समय भिक्षु शरदकी बीमारीसे उठे हैं० क्यों न मैं भिक्षुओंको (ऐसे) भैषज्यकी अनुमति दूँ।'

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच भैषज्योंको पूर्वाह्णमें लेकर पूर्वाह्णमें सेवन करनेकी।"I

२—उस समय भिक्षु उन पाँच भैषज्योंको पूर्वाह्णमें लेकर पूर्वाह्णमें सेवन करते थे। उनको

जो वह रूखे भोजन थे वह भी अच्छे न लगते थे। चिकने (भोजनों)की तो बात ही क्या ? और वह शरद्की बीमारीसे उठनेपर उससे और भोजनके अच्छे न लगने इन दोनों कारणोंसे और भी अधिक कृश० नसोंमें-सटे-शरीर वाले थे। भगवान्ने उन भिक्षुओंको और भी अधिक कृश० देखा। देखकर आयुष्मान् आनन्दसे पूछा—

"आनन्द ! क्यों आजकल भिक्षु और भी अधिक कृश० हैं ?"

"भन्ते ! इस समय भिक्षु उन पाँच भैपज्योंको पूर्वाह्णमें लेकर पूर्वाह्णमें सेवन करते हैं। उनको जो वह रूखे भोजन हैं वह भी अच्छे नहीं लगते० नसोंमें सटेशरीरवाले हैं।"

तब भगवान्ने इसी प्रकरणमें, इसी संबंधमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उन पाँच भैपज्योंको ग्रहणकर पूर्वाह्ण (=काल)में भी अपराह्ण (=विकाल)में भी सेवन करनेकी।" 2

(२) चर्वीवाली दवा

उस समय रोगी भिक्षुओंको चर्वीकी दवाईका काम था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देताहूँ चर्वीकी दवाईकी, (जैसेकि) रीछकी चर्वी, मछलीकी चर्वी, सोंसकी चर्वी, सुअरकी चर्वी, गदहेकी चर्वी, काल(पूर्वाह्ण)में लेकर कालसे पका कालसे, तेलके साथ मिलाकर सेवन करनेकी। भिक्षुओ ! यदि विकालसे ग्रहण की गई हों, विकालसे पकाई और विकालसे खिलाई गई हों (और) भिक्षुओ ! उनका सेवन करे तो तीनों दुक्कटोंका दोप हो। यदि भिक्षुओ ! कालसे लेकर विकालसे पका, विकालसे मिला उनका सेवन करे तो दो दुक्कटोंका दोप हो। यदि भिक्षुओ ! कालसे लेकर कालसे पका, विकालसे उनका सेवन करे (तो) एक दुक्कटका दोप हो। यदि भिक्षुओ ! कालसे ले कालसे पका कालसे मिला उनका सेवन करे तो दोप नहीं।" 3

(३) मूलकी दवाइयाँ

१—उस समय रोगी भिक्षुओंको जड़ वाली दवाओंका काम था। भगवान्से यह बात कही।—

" भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ जळवाली दवाओंकी (जैसेकि),—हल्दी, अदरक, वच, वचस्थ (=वच), अतीस, खस भद्रमुक्ता (=नागरमोथा), और जो कोई दूसरी भी जळवाली दवाइयाँ हैं, जोकि न खाद्य हैं, न खानेके काम आती हैं, न भोज्य हैं न भोजनके काम आती हैं, उन्हें लेकर जीवन भर रखनेकी। प्रयोजन होनेपर सेवन करनेकी, प्रभोजन न होनेपर सेवन करने वाले को दुक्कटका दोष हो।" 4

२—उस समय रोगी भिक्षुओंको पिसी हुई जळवाली दवाइयोंका काम था। भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ खरल-वट्टेकी।" 5

(४) कपायकी दवाइयाँ

उस समय रोगी भिक्षुओंको कपायकी दवाईका काम था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ कपायवाली दवाइयोंकी (जैसा कि)—नीमका कपाय, कुटज (=कूट)का कपाय, पटोल (=परवल)का कपाय, पग्गव[1] का कपाय, नक्तमाल का कपाय और जो कोई दूसरी भी कपायकी दवाइयाँ हैं जो न खाद्य हैं न खानेके काम आती हैं, न भोज्य हैं, न भोजनके

[1] कळवे फलवाली एक बूटी।

काम आती हैं, उन्हें लेकर जीवन भर रखनेकी। प्रयोजन होनेपर सेवन करनेकी। प्रयोजन न होनेपर सेवन करनेवालेको दुक्कटका दोष हो।" 6

(५) पत्तेकी दवाइयाँ

उस (समय) रोगी भिक्षुओंको पत्तेकी दवाइयोंका काम था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पत्तेकी दवाइयोंकी, (जैसे कि) नीमका पत्ता, कुटजका पत्ता, पटोल्का पत्ता, तुलसीका पत्ता, कपासीका पत्ता, और जो कोई दूसरी भी पत्तेकी दवाइयाँ हैं, ० प्रयोजन न होनेपर सेवन करनेवालेको दुक्कटका दोष हो।" 7

(६) फलकी दवाइयाँ

उस समय रोगी भिक्षुओंको फलकी दवाइयोंका काम था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ फलकी दवाइयोंकी (जैसे कि)—विडंग, पिप्पली, मिर्च, हर्रा, बहेरा, आँवला, गोष्ठफल और जो कोई दूसरी भी फलकी दवाइयाँ हैं०। 8

(७) गोंदकी दवाइयाँ

० गोंदवाली दवाइयोंका काम था। ०—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ गोंदवाली दवाइयोंकी (जैसे कि)—हींग, हींगकी गोंद, हींगकी सिपाटिका, तक, तक पत्ती, तक पर्णी, सज्जुकी गोंद, और जो कोई दूसरी भी गोंदवाली दवाइयाँ हैं०।" 9

(८) लवणकी दवाइयाँ

० लवणवाली दवाइयोंका काम था०।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ लवणवाली दवाइयोंकी (जैसे कि)—सामुद्रिक (नमक), काला नमक, सेंधा नमक, वानस्पतिक (नमक), बिळाल[1] और जो कोई दूसरी भी नमककी दवाइयाँ हैं०।" 10

(९) चूर्णकी दवाइयाँ और ओखल-मूसल-चलनी

१—उस समय आयुष्मान् आ नं द के उपाध्याय आयुष्मान् बे ल ट्ट सी स को दादकी बीमारी थी। उसके लागेसे चीवर शरीरमें चिपक जाता था। उसको भिक्षु पानीसे भिगो भिगोकर छुळाते थे। भगवान्‌ने विहार घूमते वक्त भिक्षुओंको पानीसे भिगो भिगोकर चीवरको छुळाते देखा। देखकर जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ गये। जाकर उन भिक्षुओंसे यह पूछा।—

"भिक्षुओ! इस भिक्षुको क्या रोग है?"

"भन्ते! इन आयुष्मान्‌को स्थू ल क क्ष (=काछका मोटा हो जाना, दाद)का रोग है। इसके लागेसे चीवर शरीरमें चिपक जाता है। उसीको हम पानीसे भिगो भिगोकर छुळा रहे हैं।"

तब भगवान्‌ने इसी प्रकरणमें इसी संबंधमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया।—

भिक्षुओ! जिसको खुजली, फोळा (=पिळका), आस्राव (=बहनेवाला फोळा) स्थूलकक्ष (हो) या शरीरसे दुर्गंध आता हो उसे चूर्णवाली दवाइयोंकी अनुमति देता हूँ। नीरोगको छकन (=गोबर), मिट्टी, पके रंग (का चूर्ण)। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ ओखल और मूसलकी।" 11

२—उस समय भिक्षुओंको चूर्णवाली दवाइयोंको चालनेकी ज़रूरत थी। भगवान्‌ने यह बात कही।—

[1] एक प्रकारका नमक।

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ आटेकी चलनीकी।"

सूक्ष्म (=चलनी)की आवश्यकता थी।—

भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ कपळेकी चलनीकी।" 12

(१०) कच्चे मांस और कच्चे खूनकी दवा

उस समय एक भिक्षुको अ-म नु ष्य (-भूत-प्रेत)का रोग था। आचार्य उपाध्याय उसकी सेवा करते करते नीरोग नहीं कर सके। सूअर मारनेके स्थानपर जाकर उसने कच्चे मांसको खाया, कच्चे खून को पिया, और उसका वह अ-म नु ष्य वाला रोग शान्त होगया। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ अ-मनुष्यवाले रोगमें कच्चे मांस और कच्चे खूनकी।" 13

(११) अंजन, अंजनदानी सलाई आदि

१—उस समय एक भिक्षुको आँखका रोग था। उसे भिक्षु पकळकर पिशाब-पाखानेके लिये ले जाते थे। विहार घूमते वक्त भगवान्‌ने पकळकर उस भिक्षुको पिशाब-पाखानेके लिये ले जाये जाते देखा। देखकर जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ गये। जाकर उन भिक्षुओंसे यह पूछा—

"भिक्षुओ ! इस भिक्षुको क्या रोग है ?"

"भन्ते ! इस आयुष्मान्‌को आँखका रोग है। इन्हें हम पकळकर पिशाब-पाखानेके लिये ले जाते हैं। तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें० भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ अंजनकी (जैसे कि)—काला अंजन, रस-अंजन, स्रोत(=नदी की धारमें मिला) अंजन, गेरू, काजल।" 14

२—अंजनके साथ पीसनेके सामानकी आवश्यकता थी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ चंदन, तगर, कालानुसारी, तालिस, भद्रमुक्ताकी।" 15

३—उस समय भिक्षु पीसे हुए अंजनको कटोरेमें रख छोळते थे, पुरवोंमें रख छोळते थे, और उसमें तिनका, धूल आदि पळ जाता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ अंजनदानीकी।" 16

४—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु सुनहली, रुपहली, नाना प्रकारकी अंजनदानियोंको धारण करते थे। लोग हैरान...होते थे—(०) जैसे काम-भोगी गृहस्थ। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! नाना प्रकारकी अंजनदानियोंको नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ हड्डीकी, (हाथी) दाँतकी, सींगकी, नरकटकी वाँसकी, काठकी, लाखकी, फलकी, ताँबे (=लोह)की, शंखकी (अंजनदानियोंके रखनेकी)।" 17

५—उस समय अंजन-दानियाँ खुली होती थीं जिससे तिनका, धूल पळ जाती थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ ढक्कनकी।" 18

६—ढक्कन गिर जाते थे।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ सूतसे बाँधकर अंजनदानियोंके बाँधनेकी।" 19

७—अंजनदानियाँ फट जाती थीं।—

"० अनुमति देता हूँ सूतसे मढ़नेकी।" 20

८—उस समय भिक्षु उँगलीसे आँजते थे और आँखें दुखती थीं। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ आँजनेकी सलाईकी।" 21

९—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु सोने-रूपेकी नाना प्रकारकी सलाइयाँ रखते थे। लोग हैरान...होते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! नाना प्रकारकी आँजनेकी सलाइयोंको नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ हड्डीकी०, शंखकी० (सलाईकी)।" 22

१०—उस समय आँजनेकी सलाइयाँ ज़मीनपर गिर पळती थीं और रुखळ हो जाती थीं। भगवान् ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सलाईदानीकी।" 23

११—उस समय भिक्षु अंजनदानीको भी, आँजनेकी सलाईको भी हाथमें रखते थे। भगवान् से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अंजनदानीके बटुएका।" 24

१२—उस समय कंधेका बटुआ (=अंसवट्टक) न था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ कंधेके बटुएकी, बाँधनेके सूतकी।" 25

(१२) सिरका तेल

१—उस समय आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ को सिर-दर्द था। भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सिरपर तेलकी।" 26

(१३) नस्य और नसकरनी आदि

१—ठीक नहीं हुआ। भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ नस्य लेनेकी।" 27

२—नस्य गल जाती थी। भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ न स क र नी (=नाकमें नस डालनेकी नली)की।" 28

३—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु सोने-रूपे नाना प्रकारकी नसकरनीको धारण करते थे। लोग हैरान...होते थे—०। भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! नाना प्रकारकी नसकरनीको नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ शंख ० की।"

४—नस बराबर नहीं पळती थी। भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ जोळी नसकरनी की।" 29

(१४) धूम-बत्तीका विधान

१—(उससे भी) अच्छा न होता था। भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ (दवाईके) धुएँके पीनेकी।" 30

२—उसी बत्तीको लीपकर पीते थे। उससे कंठ जलता था। भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ धू म ने त्र की (=फोंफी)।" 31

३—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु नाना प्रकारके सोने-रूपेके धू म्र ने त्र धारण करते थे। लोग हैरान...होते थे। भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! नाना प्रकारके धूम्रनेत्र नहीं धारण करना चाहिये, जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ हड्डीके० शंखके धूम्रनेत्रकी।" 32

४—उस समय धूम्रनेत्र बिना ढँके रहते थे और उनमें कीड़े चले जाते थे। भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ ढक्कनकी।"

५—उस समय भिक्षु धू म्र ने त्र हाथमें रखते थे।०।—

"०अनुमति देता हूँ धू म्र ने त्र के थैलीकी।" 33

६—एक ओर घिस जाते थे। ०—

"० अनुमति देता हूँ दोहरी थैलीकी। ०। कन्धेके वद्धएकी, बाँधनेके सूतकी।" 34

(१५) वातका तेल

उस समय आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ को वातका रोग था । वैद्य तेल पकानेको कहते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ तेल पकानेकी।" 35

(१६) दवामें मद्य मिलाना

१—उस समय तेलमें शराब (=मद्य) डालनी थी। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ तेल-पाकमें मद्य डालनेकी।" 36

२—उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु बहुत मद्य डालकर तेल पकाते थे और उन्हें पीकर मतवाले होते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! बहुत मद्य डाले हुए तेलको नहीं पीना चाहिये। जो पीये उसे धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, उस तेलके पीनेकी जिसमें मद्यका रंग, गन्ध और रस न जान पळे।" 37

३—उस समय भिक्षुओंके पास अधिक मद्य डालकर पकाया हुआ बहुतसा तेल था। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ कि अधिक मद्य डालकर पकाये हुए तेलके साथ हमें क्या करना चाहिये। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अभ्यंजन (=मालिश करनेकी)।" 38

(१७) तेलका बर्तन

उस समय आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ के पास बहुतसा तेल पका था लेकिन तेलका बर्तन मौजूद न था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ तीन तुम्बोंकी—लोह(=ताँवा)के तूँबेकी, काठके तूँबेकी, फलके तूँबेकी।" 39

§२—स्वेदकर्म और चीर-फाळ आदि

(१) स्वेदकर्म

१—उस समय आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ के शरीरमें वात (का रोग) था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ स्वे द क र्म (=पसीना निकालनेकी चिकित्सा)की।" 40

२—नहीं अच्छा होता था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ स म्भा र-स्वे द की[1] ।" 41

३—नहीं अच्छा होता था।—

---

[1] अनेक प्रकारके पसीना लानेवाले पत्तोंके बीच सोना।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ म हा स्वे द[1] की।" 42

(२) सींगसे खून निकालना

४—नहीं अच्छा होता था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ भं गो द क[2] की।" 43

५—नहीं अच्छा होता था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उ द क को ष्ट क की[3]।" 44

१—उस समय आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छको गठिया (=पर्ववात)का रोग था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ खून निकालनेकी।" 45

२—नहीं अच्छा होता था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सींगसे खून निकालनेकी।" 46

(३) पैरमें मालिस और दवा

१—उस समय आयुष्मान् पि लि न्दि वच्छके पैर फटे थे। भगवान्से यह बात कही।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पैरमें मालिश करनेकी।" 47

२—नहीं अच्छा होता था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पैरके लिये (दवा) बनानेकी।" 48

(४) चीर फाळ

उस समय एक भिक्षुको फोळेका रोग था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ श स्त्र-क र्म (=चीर-फाळ)की।" 49

(५) मलहम-पट्टी

१—काढ़ेके पानीकी जरूरत थी।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ काढ़ेके पानीकी।" 50

२—०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ तिलकल्क (=खली)की।" 51

३—०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ क ब ळि का (=मलहम का फाहा)की।" 52

४—०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ घाव बाँधनेकी पट्टीकी।" 53

५—घाव खुजलाते थे।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सरसोंके लोपेसे नहलानेकी।" 54

६—घाव पकता था।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ धुँआन करनेकी।" 55

७—बढ़ा मांस उठ आता था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ नमककी कंकरीसे काटनेकी।" 56

[1] पोरसा भर गढ़ा खोदकर उसे अंगारसे भरकर मिट्टी बालूसे मूँदकर वहाँ नाना प्रकारके वात रोग दूर करनेवाले पत्तोंको बिछाकर, शरीरमें तेल लगा उसपर लेटकर पसीना निकालना (—अट्ठकथा)।

[2] पत्तोंके काढ़ेसे शरीरको सींच सींचकर पसीना निकालना।

[3] गर्म पानी भरे बर्तन जिस कोठरीमें रखे हैं, उसमें बैठकर पसीना निकालना।

८—घाव नहीं भरता था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ घावके तेलकी।" 57

९—तेल गिर जाता था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ विकासिक (=पतली पट्टी) मभी घावकी चिकित्सा की।" 58

(६) सर्प-चिकित्सा

१—उस समय एक भिक्षुको साँपने काटा था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चार म हा वि क टों के (गिन्ला) देनेकी। जैसे कि पाखाना, पेशाव, राख और मिट्टी।" 59

२—तब भिक्षुओंको यह हुआ—क्या (दूसरेके) देनेपर (लेना चाहिये) या स्वयं ले लेना चाहिये। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ कल्प्यकारक (=ग्रहणकरानेवाले)के होनेपर दिया लेनेकी और कल्प्यकारकके न होनेपर स्वयं लेकर सेवन करनेकी।" 60

(७) विष-चिकित्सा

१—उस समय एक भिक्षुने विष खा लिया था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाखाना पिलानेकी।" 61

२—तब भिक्षुओंको यह हुआ—क्या (दूसरेके) देनेपर (लेना चाहिये) या स्वयं लेना चाहिये। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, जैसा करनेसे वह ग्रहण करे वही ग्रहणका ढंग है। (काम होजानेपर) फिर नहीं ग्रहण कराना चाहिये।" 62

(८) घरदिन्नक रोगकी चिकित्सा

उस समय एक भिक्षुको घ र दि न्न क[1] रोग था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ हराई (=सीता)की मिट्टी पिलानेकी।" 63

(९) भूत-चिकित्सा

उस समय एक भिक्षुको दु ष्ट ग्र ह (=भूत)ने पकळा था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ आ मि पो द क (=अनाज जलाकर बनाया सीरा) पिलानेकी।" 64

(१०) पांडुरोग-चिकित्सा

उस समय एक भिक्षुको पाण्डु रोग था। ०।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ (गो)-मूत्रकी हर्रे पिलानेकी।" 65

(११) जुलपित्ती आदिकी चिकित्सा

१—० जुलपित्ती (=छ वि दो ष) हो आई थी। ०।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ गंधकके लेप करनेकी।" 66

२—० शरीर सुन्न हो गया था। ०।—

"० अनुमति देता हूँ जुलाब पीनेकी।" 67

---

[1] स्वाभाविक अस्वाभाविक दोनों प्रकारका।

३—० अ च्छ कं जी (=काँजी) की जरूरत थी। ०।—

"० अनुमति देता हूँ अ च्छ कं जी की।" 68

४—० अ क ट जू स (=स्वाभाविक जूस) की जरूरत थी। ०।—

५—"० अनुमति देता हूँ अ क ट जू स की।" 69

६—० क टा क ट[1] की जरूरत थी। ०।—

७—"० अनुमति देता हूँ क टा क ट की।" 70

८—० प्र ति च्छा द न (=ढाँकनेकी वस्तु) की जरूरत थी। ०।—

"० अनुमति देता हूँ प्र ति च्छा द न की।" 71

§३—आराममें चीजोंका रखना सँभालना आदि

(१) पिलिन्दि वच्छका राजगृहमें लेण बनवाना

इस समय आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ राजगृहमें ले ण (=गुहा) बनवानेके लिये पहाळ साफ़ करवा रहे थे। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसार जहाँ आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मगधराज सेनिय बिम्बिसारने आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ से यह कहा—

"भन्ते! स्थविर क्या करा रहे हैं?"

"महाराज! ले ण बनवानेके लिये पहाळ (=पब्भार) साफ़ करा रहा हूँ।"

"क्या भन्ते! आर्यको आरामिक (=आराममें काम करनेवाले) की आवश्यकता है?"

"महाराज! भगवान्‌ने आरामिक (रखने) की अनुमति नहीं दी है।"

"तो भन्ते! भगवान्‌से पूछकर मुझसे कहना।"

"अच्छा महाराज," (कह) आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ ने मगधराज सेनिय बिम्बिसारको उत्तर दिया। तब आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ ने मगधराज सेनिय बिम्बिसारको धार्मिक कथा द्वारा... समुत्तेजित सम्प्रहर्षित किया। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसार...सम्प्रहर्षित हो आसनसे उठ आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया। तब आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छने भगवान्‌के पास (यह संदेश दे) दूत भेजा—

"भन्ते! मगधराज सेनिय बि म्बि सा र आरामिक देना चाहता है। कैसा करना चाहिये?"

(२) आराममें सेवक रखना

भगवान्‌ने इसी प्रकरणमें इसी संबंधमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ आरामिककी।" 72

दूसरी बार भी मगधराज सेनिय बिम्बिसार जहाँ आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ थे वहाँ गया ० आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छसे यह पूछा—

"क्या भन्ते! भगवान्‌ने आरामिककी अनुमति दी?"

"हाँ महाराज!"

"तो भन्ते! आपको मैं आरामिक देता हूँ।"

तब मगधराज सेनिय बिम्बिसारने आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ को आरामिक देनेका वचन दे

[1] [illegible] उपकार होनेवाला रोग।

भूल कर देरके वाद याद करके एक स र्वा र्थ क म हा मा त्य (=प्राइवेट सेक्रेटरी)को संबोधित किया—

"भणे ! जो मैंने आर्यके लिये आरामिक देनेको कहा था, क्या वह दे दिया गया ?"

"नहीं देव ! आर्यको आरामिक (नहीं) दिया गया।"

"भणे ! कितना समय उसको हो गया ?"

तव उस महामात्यने रातोंको गिनकर मगधराज सेनिय वि म्बि सा र से यह कहा—

"देव ! पाँच सौ रातें।"

"तो भणे ! आर्यको पाँच सौ आरामिक दो।"

"अच्छा देव" (कह) उस महामात्यने मगधराज सेनिय विम्बिसारको उत्तर दे आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ को पाँच सौ आरामिक दिये, जिनका कि एक गाँव वस गया। जिसे कि (पीछे लोग) आ रा मि क ग्रा म भी कहते थे, पि लि न्दि ग्रा म भी कहते थे।

(३) पिलिन्दि वच्छका चमत्कार

उस समय आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छ उस ग्रामके भिक्षाटक (=कु लू प ग) थे। तव आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ पूर्वाह्णके समय पहनकर पात्र-चीवर ले पि लि न्दि ग्रा म में भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुए। उस उमय उस गाँवमें उत्सव था। लळके अलंकृत हो माला पहने खेलते थे। तव आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ पि लि न्दि गाँ व में विना ठहरे भिक्षाचार करते जहाँ एक आरामिकका घर था वहाँ पहुँचे। जाकर विछे आसनपर वैठे। उस समय उस आरामिककी लळकी दूसरे लळकोंको अलंकृत, मालाकृत देख रोती थी—'माला मुझे दो ! अलंकार मुझे दो !' तव आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ ने आरामिककी स्त्रीसे कहा—"क्यों यह वच्ची रो रही है ?"

"भन्ते ! यह लळकी दूसरे लळकोंको अलंकृत मालाकृत देखकर रो रही है 'माला मुझे दो ! अलंकार मुझे दो !', हम ग़रीवोंके पास कहाँ माला है, कहाँ अलंकार है ?"

तव आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छ एक तिनकेके टुकळेको उठाकर आरामिककी स्त्रीसे वोले— अच्छा ! तो इस तिनकेके टुकळेको लळकीके सिरपर रख दे।"

तव उस आरामिककी स्त्रीने उस तिनकेके टुकळेको लेकर उस लळकीके सिरपर रख दिया, और वह सुवर्णमाला-वाली अभिरूपा—दर्शनीया—प्रासादिक हो गई। वैसी सुवर्णमाला तो राजाके अन्तःपुरमें भी नहीं थी। लोगोंने मगधराज सेनिय वि म्बि सा र से कहा—

"देव ! अमुक आरामिकके घर ऐसी सुवर्णमाला अभिरूपा—दर्शनीया—प्रासादिका है जैसी सुवर्णमाला कि देवके अन्तःपुरमें भी नहीं है। कहाँसे उस दरिद्रके (घरमें ऐसी हो सकती है), निस्संशय चोरीसे लाई गई है।"

तव मगधराज सेनिय विम्बिसारने उस आरामिकके कुटुम्बको वाँध दिया। दूसरी वार भी आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ पूर्वाह्णमें पहन पात्र-चीवर ले भिक्षाके लिये पि लि न्दि ग्रा म में प्रविष्ट हुए। पि लि न्दि ग्रा म में विना ठहरे भिक्षाचार करते जहाँ उस आरामिकका घर था वहाँ गये। जाकर पळोसियोंसे पूछा—

"इस आरामिकका कुटुम्व कहाँ चला गया ?"

"भन्ते ! उस सु व र्ण मा ला के कारण राजाने वँधवा दिया।"

तव आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ जहाँ मगधराज सेनिय विम्बिसारका घर था वहाँ गये। जाकर विछे आसनपर वैठे। तव मगधराज सेनिय विम्बिसार, जहाँ आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ थे, वहाँ गया।

जाकर...अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मगधराज सेनिय बिम्बिसारको आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छने यह कहा—

"महाराज! क्यों (तुमने) उस आरामिकके कुटुम्बको बँधवाया है?"

"भन्ते! उस आरामिकके घरमें ऐसी सु व र्ण मा ला ० थी जैसी हमारे अन्तःपुरमें भी नहीं ० निस्संशय चोरीसे लाई गई है।"

तब आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ ने मगधराज सेनिय बिम्बिसारका प्रासाद सोनेका हो जाय— यह संकल्प किया, और वह सारा सुवर्णका हो गया।—

"महाराज! यह बहुत सा सुवर्ण कहाँसे (आया)?"

"जान गया, भन्ते! आर्यकी ऋद्धिके बलसे वह आरामिक कुटुम्ब (वैसा हो गया था)।" और उस आरामिकके कुटुम्बको छुळवा दिया।

(४) भैषज्य सप्ताहभर रक्खे जासकते हैं

लोग (यह देखकर) सन्तुष्ट, अत्यन्त प्रसन्न हुए कि आर्य पि लि न्दि व च्छ ने राजा सहित सारी परिषद्को दिव्यशक्ति—ऋद्धि-प्रातिहार्य दिखलाया, और वे आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छके पास घी, मक्खन, तेल, मधु, खाँळ इन पाँच भैषज्योंको ले जाने लगे। साधारण तौरसे भी आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छ पाँच भैषज्योंके पानेवाले थे। पाने पर परिषद् (=जमात)को दे देते थे, और उनकी परिषद् बटोरू हो गई। लेकर वे कुंडेमें भी, घरमें भी रखते थे। ज ल छ क्के और थैलियोंमें भी भरकर जँगलोंमें भी टाँग देते थे। और वह तितर बितर पळे रहते थे और विहार चूहोंसे भर गया था। लोग विहार में घूमते वक्त (वह सब) देख हैरान...होते थे। 'यह शाक्यपुत्रीय श्रमण कोष्टागारवाले हो गये हैं जैसे कि मगधराज सेनिय बिम्बिसार।' भिक्षुओंने उन मनुष्योंके हैरान...होनेको सुना और जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे हैरान... होते थे—'कैसे भिक्षु इस प्रकारके बटोरू होनेके लिये चेतावेंगे!'

तब उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! भिक्षु इस प्रकारके बटोरू होनेके लिये चेताते हैं?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्!"

० फटकार करके धार्मिक कथा कह भगवानने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! जो वह रोगी भिक्षुओंके खाने लायक भैषज्य हैं, जैसे कि घी, मक्खन, मधु, तेल, खाँळ उन्हें अधिकसे अधिक सप्ताह भर पास रखकर सेवन करना चाहिये; इसका अतिक्रमण करनेपर धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये।" 73

२—राजगृह

(५) गुळ खानेका विधान

तब भगवान् श्रा व स्ती में इच्छानुसार विहारकर जिधर रा ज गृ ह है उधर चारिका [illegible] लिये चल पड़े। आयुष्मान् कं खा रे व त ने रास्तेमें गुळ बनाते वक्त उसमें आटा भी, [illegible] भी [illegible] देखकर अकप्पिय गुळ है। यह अविहित है। अकालमें भोजन करने लायक [illegible]—सोच संदेहयुक्त हो [illegible] अपनी परिषद् सहित गुळ नहीं खाते थे। जो उनके श्रोता थे वह [illegible] भगवान्से यह बात कही।—

[illegible] गुळमें आटा भी राख भी डालते हैं?"

[illegible] भगवान्!"

"यदि भिक्षुओ ! बाँधनेके लिये गुळमें आटा भी राख भी, डालते हैं तो वह भी तो गुळ ही कहा जाता है।"

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ इच्छानुसार गुळ खानेकी।" 74

(६) मूँगका विधान

आयुष्मान् कं खा रे व त ने पकी भी मूँग उगी देखी। देखकर मूँग निषिद्ध हैं, पकी भी मूँग उत्पन्न होती हैं—(सोच) संदेह-युक्त हो (वे) अपनी परिषद् सहित मूँग नहीं खाते थे। जो उनके श्रोता वह भी मूँग नहीं खाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"यदि भिक्षुओ ! पकी भी मूँगे उत्पन्न होती हैं तो अनुमति देता हूँ इच्छानुसार मूँग खानेकी।" 75

(७) छाछका विधान

उस समय एक भिक्षुको पेटमें वायगोलेकी बीमारी थी। उसने नमकीन सो वी र क (=छाछ) को पिया। वह वायगोलेका रोग शान्त हो गया। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ (इस) रोगमें सो वी र क (=छाछ)की, और नीरोगके लिये पानी मिलेको पेयके तौरपर सेवन करनेकी।" 76

(८) आरामके भीतर रखे, पकाये; और स्वयं पकायेका खाना निषिद्ध

१—तब भगवान् क्रमशः चारिका करते जहाँ राजगृह था वहाँ पहुँचे और वहाँ भगवान् रा ज गृ ह के वे णु व न क ल न्द क निवापमें विहार करते थे। उस समय भगवान्को पेटमें वायुकी पीळा हुई। तब आयुष्मान् आनन्दने—पहले भी भगवान्के पेटमें वायुकी पीळा होनेसे त्रिकटुक यवागू (=खिचळी) लाभ देती थी—(यह सोच) स्वयं तिल तंदुल और मूँगको माँगकर भीतर डालके (आरामके) भीतर स्वयं पकाकर भगवान्के पास उपस्थित किया—

"भगवान् त्रिकटुक यवागूको पियें !"

जानते हुए भी तथागत पूछते हैं ०[1]।

तब भगवान्ने आयुष्मान् आनंदको संबोधित किया—

"आनन्द ! कहाँसे यह यवागू (आई) है ?"

तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से सब बात कह दी। बुद्ध भगवान्ने फटकारा—

"आनंद ! अनुचित है, अयुक्त है, श्रमणके आचारके विरुद्ध है, अविहित है, अकरणीय है। कैसे आनंद तू ! इस प्रकारके बटोरूपनके लिये चेताता है ? आनन्द ! जो कुछ भीतर रखा गया है वह भी निषिद्ध है, जो कुछ भीतर पकाया गया है वह भी निषिद्ध है, जो स्वयं पका है वह भी निषिद्ध है। आनंद ! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

फटकारकर धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया।—

"भिक्षुओ ! (आरामके) भीतर रखे, भीतर पकाये और स्वयं पकायेको नहीं खाना चाहिये। जो खाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 77

२—"भिक्षुओ ! भीतर रखे, भीतर पकाये, स्वयं पकायेका जो सेवन करे उसे तीनों दु क्क टों का दोष हो।" 78

"यदि भिक्षुओ ! भीतर रखे, भीतर पके और दूसरे द्वारा पकायेका सेवन करे तो दो दु क्क टों-का दोष हो।" 79

---

[1] देखो पृष्ठ १०८।

"भिक्षुओ ! यदि भीतर रखे, बाहर पकाये, स्वयं पकायेका सेवन करे तो दो दुक्कटोंका दोष हो।" 80

"यदि भिक्षुओ ! बाहर रखे, भीतर पकाये स्वयं पकेका सेवन करे तो दो दुक्कटों का दोष हो। 81

"यदि भिक्षुओ ! भीतर रखे, बाहर पकाये (किन्तु) दूसरे द्वारा पकायेको भोजन करे तो (एक) दुक्कटका दोष हो। 82

"यदि भिक्षुओ ! बाहर रखे, भीतर पकाये (किन्तु) दूसरों द्वारा पकायेका भोजन करे तो एक दुक्कटका दोष हो। 83

"यदि भिक्षुओ ! बाहर रखे, बाहर पकाये और अपने (हाथसे) पकायेका भोजन करे तो (एक) दुक्कटका दोष हो। 84

"यदि भिक्षुओ ! बाहर रखे बाहर पकाये किन्तु दूसरों द्वारा पकायेका भोजन करे तो दोष नहीं।"

३—उस समय भिक्षु (यह सोचकर कि) भगवान्ने स्वयं पाकका निषेध किया है दोबारा पकानेमें संदेहमें पळे थे। भगवान्ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ फिर पाक करनेकी।" 85

(९) दुर्भिक्षमें आराममें रखे, पकाये तथा स्वयं पकायेका खाना विहित

१—उस समय राजगृहमें दुर्भिक्ष था। लोग नमक भी, तेल भी, तंडुल भी खाद्य भी आराममें लाते थे। उन्हें भिक्षु बाहर रखवा देते थे और उन्हें चूहे बिल्लियाँ आदि भी खाती थीं। चोर भी ले जाते थे, जूठा खानेवाले (=दमक) भी ले जाते थे। भगवान्ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ भीतर रखवानेकी।" 86

२—भीतर रखवाकर बाहर पकाते थे और जूठा खानेवाले घेर लेते थे। भिक्षु विश्वास पूर्वक खा नहीं सकते थे। भगवान्ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ भीतर पकानेकी।" 87

३—दुर्भिक्षमें कल्पियकारक (=भिक्षुओंके काम करनेवाले) बहुत भागको ले जाते थे और थोळासा भिक्षुओंको देते थे। भगवान्ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ स्वयं पकानेकी—भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ भीतर रखने, भीतर पकाने, और (अपने) हाथसे पकायेकी।" 88

(१०) निर्जन वन स्थानमें स्वयं फल आदिका ग्रहण करना

उस समय बहुतसे भिक्षुओंने काशी (देश)में वर्षावास कर भगवान्के दर्शनको राजगृह जाते समय रास्तेमें रूखा या अच्छा कोई भोजन आवश्यकतानुसार भरपूर नहीं पाया। खाने लायक फल बहुत था किन्तु कोई कल्पियकारक[1] नहीं था। तब वह भिक्षु तकलीफ पाते, जहाँ राजगृहमें वेणुवन कलन्दक निवाप था और जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे। बुद्ध भगवानोंका यह आचार है कि नवागन्तुक भिक्षुओंसे कुशल-समाचार पूछें। तब भगवान्ने भिक्षुओंसे यह कहा—

"भिक्षुओ ! अच्छा तो रहा ? यापन करने योग्य तो रहा ? रास्तेमें बिना तकलीफके तो आये ? और भिक्षुओ ! कहाँसे तुम आते हो ?"

[1] भोजन आदि जिन चीजोंको स्वयं उठाकर भिक्षु नहीं खा सकते उनको उठाकर देनेवाला कल्पियकारक कहलाता है।

"अच्छा रहा भगवान्! यापन योग्य रहा भगवान्! भन्ते! हम काशी (देशमें) वर्षावास कर ० मार्गमें तकलीफ़ पाते आये।"

तब भगवान्‌ने उसी संबंधमें उसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ जहाँपर खाने योग्य फलको देखो और कल्प्यकारक न हो तो स्वयं ले जाकर कल्प्यकारकको देख भूमिमें रख फिर उससे ग्रहण कर खानेकी। भिक्षुओ! लेने देनेकी अनुमति देता हूँ।" 89

(११) भोजनोपरान्त लाये भक्ष्यकी अनुमति

१—उस समय एक ब्राह्मणके पास नये तिल और नई मधु उत्पन्न हुई थी। तब उस ब्राह्मणको यह हुआ—'अच्छा हो मैं इन नये तिलों और नई मधुको बुद्ध सहित भिक्षु-संघको प्रदान करूँ।' तब वह ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। भगवान्‌के साथ कुशल-प्रश्न पूछा...एक ओर खळा हुआ। एक ओर खळे उस ब्राह्मणने भगवान्‌से यह कहा—

"आप गौतम भिक्षु-संघके साथ कलके मेरे भोजनको स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

तब वह ब्राह्मण भगवान्‌की स्वीकृतिको जान चला गया। तब उस ब्राह्मणने उस रातके बीत जानेपर उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा भगवान्‌को कालकी सूचना दी—

"भो गौतम! भोजनका समय है। भोजन तैयार है।" तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहनकर पात्र-चीवर ले जहाँ उस ब्राह्मणका घर था वहाँ गये। जाकर भिक्षु-संघके साथ बिछे आसनपर बैठे। तब वह ब्राह्मण बुद्ध प्रमुख भिक्षु-संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा संतर्पित—सम्प्रवारित कर भगवान्‌के भोजनकर हाथ हटा लेनेपर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस ब्राह्मणको भगवान् धार्मिक कथा द्वारा...समुत्तेजित, सम्प्रहर्षितकर आसनसे उठ चले गये। भगवान्‌के चले जानेके थोळी ही देर बाद उस ब्राह्मणको यह हुआ—"जिनके लिये मैंने बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको निमंत्रित किया था, उन्हीं नये तिलों और नये मधुको देना मैं भूल गया। क्यों न मैं नये तिलों और नये मधुको कूँळों और घळोंमें भर आराममें लिवा ले चलूँ।"

तब वह ब्राह्मण नये तिलों और नये मधुको कूँळों और घळोंमें भरकर आराममें लिवा, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर एक ओर खळा हुआ। एक ओर खळे उस ब्राह्मणने भगवान्‌से यह कहा—

"भो गौतम! जिनके लिये मैंने बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको निमंत्रित किया था, उन्हीं नये तिलों और नये मधुको देना मैं भूल गया। आप गौतम उन नये तिलों और नये मधुको स्वीकार करें।"

"तो ब्राह्मण! भिक्षुओंको दे"।

२—उस समय भिक्षु दुर्भिक्ष होनेसे थोळेसे भी बस कर देते थे। जानकर भी इनकार कर देते थे और सारा संघ पूर्ण कह देता था। भिक्षु संदेहमें पळ नहीं स्वीकार करते थे।

"भिक्षुओ! स्वीकार करो। भोजन करो।"

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ वहाँसे लाये हुएको भोजन पूर्त्ति हो जानेपर भी अतिरिक्त न हो तो उसे भोजन करनेकी।" 90

३—उस समय आयुष्मान् उ प नं द शाक्य-पुत्रके सेवक कुटुम्बने संघके लिये खानेकी चीज़ भेजी और कहा—'यह खानेकी चीज़ आर्य उपनंदको दिखलाकर संघको देना।' उस समय आयुष्मान् उपनंद शाक्यपुत्र गाँवमें भिक्षाके लिये गये थे। तब आदमियोंने आराममें जाकर भिक्षुओंसे पूछा—

"आर्य उ प नं द कहाँ हैं?"

"आवुसो! आयुष्मान् उ प नं द शाक्यपुत्र गाँवमें भिक्षाके लिये गये हैं।"

"भन्ते ! इस खानेकी चीजको आर्य उ प नं द को दिखला संघको देना चाहिये।"

भगवान्से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ ! लेकर रख छोळो जब तक कि उ प नं द आता है।" 91

४—तब आयुष्मान् उपनंद शाक्यपुत्र भात (खाने)से पहले (गृहस्थ) कुटुम्बोंमें बैठकीकर दिन के (मध्य)में आते थे। उस समय भिक्षु दुर्भिक्ष होनेसे थोळेसे भी ० भिक्षु संदेहमें पळ नहीं स्वीकार करते थे।

"भिक्षुओ ! स्वीकार करो, भोजन करो।"

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ भातके पहिले लियेको, भोजन पूर्त्ति हो जानेपर भी अतिरिक्त न हो तो उसे भोजन करनेकी।" 92

३—*श्रावस्ती*

५—तब भगवान् रा ज गृ ह में इच्छानुसार विहारकर जिधर श्रा व स्ती है उधर चारिकाके लिये चल पळे क्रमशः चारिका करते जहाँ श्रा व स्ती है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् श्रावस्तीमें अ ना थ पिं डि क के आराम जे त व न में विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् सारिपुत्रको काय-डाह (=शरीर जलने)का रोग था। तब आयुष्मान् म हा मौ द् ग ल्या य न जहाँ आयुष्मान् सा रि पु त्र थे वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् सारिपुत्रसे यह कहा—

"आवुस ! सारिपुत्र पहले जब तुम्हें कायडाह रोग होता था तो कैसे अच्छा होता था?"

"आवुस ! भ सी ळ (=कमलकी जळ) और कमल-नालसे।"

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन जैसे बलवान् पुरुष समेटी बाँहको पसारे, पसारी बाँहको समेटे वैसे ही (अप्रयास) जेतवनमें अन्तर्धान हो म दा कि नी पुष्करिणीके तीर जा प्रकट हुए। एक ना ग ने आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको दूरसे ही आते देखा। देख कर...यह कहा—

"आइये भन्ते ! आर्य महामौद्गल्यायन, भन्ते ! स्वागत है आर्य महामौद्गल्यायनका। भन्ते ! आर्यको किस चीजकी जरूरत है ? क्या दूँ ?"

"आवुस ! मुझे भसीळकी जरूरत है और कमल-नालकी।"

तब उस नागने दूसरे नागको आज्ञा दी—'तो भणे ! आर्यको जितनी आवश्यकता हो उतनी भसीळ और कमल-नाल दो।'

तब वह नाग मंदाकिनी पुष्करिणीमें घुसकर मुँहसे भसीळ और कमल-नालको निकाल अच्छी तरह धोकर गठरी बाँध जहाँ आयुष्मान् महामौद्गल्यायन थे वहाँ गया।

तब आयुष्मान् म हा मौ द् ग ल्या य न जे त व न में जा प्रकट हुए। और वह नाग भी मंदाकिनी पुष्करिणीके तीर अन्तर्धान हो जे त व न में जा प्रकट हुआ। तब वह नाग आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको भसीळ और कमल-नाल दे जेतवनसे अन्तर्धान हो मंदाकिनी पुष्करिणीके तीर जा प्रकट हुआ।

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने आयुष्मान् सा रि पु त्र को भसीळ और कमल-नाल दिया। ० भसीळ और कमल-नालके खानेसे आयुष्मान् सारिपुत्रकी काय-डाहकी पीळा शान्त हो गई, और [illegible] भसीळ और कमल-नाल बच रही। उस समय दुर्भिक्ष होनेसे भिक्षु संदेहमें पळ नहीं स्वीकार करते थे।

"भिक्षुओ ! स्वीकार करो, भोजन करो।"

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ वनकी और पुष्करिणीकी वस्तुको भोजन पूरा हो जानेपर भी अतिरिक्त न हो तो उसे भोजन करनेकी।" 93

(१२) स्वयं लेकर फल खाना

उस समय श्रा व स्ती में बहुतसा खाने लायक फल उत्पन्न हुआ था लेकिन कोई क ल्प्य का र क न था। भिक्षु संदेहमें पळकर फल न खाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ बिना बीजवाले तथा (बीजवाले) फलके बीजको निकालकर कल्प्य न करनेपर भी खानेकी।" 94

४—राजगृह

(१३) गुप्त स्थानमें चीरफाळ वस्तिकर्मका निषेध

१—तब भगवान् श्रा व स्ती में इच्छानुसार विहारकर ० रा ज गृ ह के वे णु व न क लं द क नि वा प में विहार करते थे। उस समय एक भिक्षुको भ गं द र का रोग था। आ का श गो त्र वैद्य शस्त्रकर्म (=चीर फाळ) करता था। तब भगवान् विहारमें घूमते हुए जहाँ उस भिक्षुका विहार (=कोठरी) था वहाँ गये। आ का श गो त्र वैद्यने भगवान्को दूरसे ही आते देखा। देखकर भगवान्से यह बोला—

"आइये आप गौतम ! इस भिक्षुके मल-मार्गको देखें। जैसे कि गोहका मुख है।"

तब भगवान्ने—'यह मोघपुरुष मुझसे ही मजाक कर रहा है'—(सोच) वहींसे लौटकर इसी सम्बन्धमें इसी प्रकरणमें भिक्षु-संघको एकत्रितकर भिक्षुओंसे पूछा—

"भिक्षुओ ! क्या अमुक विहारमें रोगी भिक्षु है ?"

"है भगवान् !"

"भिक्षुओ ! उस भिक्षुको क्या रोग है ?"

"भन्ते ! उस आयुष्मान्को भगंदरका रोग है और आ का श गो त्र वैद्य शस्त्र-कर्म कर रहा है।"

बुद्ध भगवान्ने निंदा की—

"भिक्षुओ ! अयुक्त है, उस मोघ पुरुषके लिये अनुचित है। अयोग्य है। अप्रतिरूप है। श्रमणोंके आचारके विरुद्ध है, अविहित है, अकरणीय है। कैसे भिक्षुओ ! वह मोघ पुरुष गुह्य-स्थानमें शस्त्र-कर्म कराता है ! भिक्षुओ ! (उस) गुह्य-स्थानमें चमळा कोमल होता है। घाव मुश्किलसे भरता है। शस्त्र चलाना कठिन है। भिक्षुओ ! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

निंदा करके धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! गुह्य-स्थानमें शस्त्र-कर्म नहीं करना चाहिये। जो कराये उसे थुल्लच्चयका दोष हो।" 95

२—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु—भगवान्ने शस्त्र-कर्मका निषेध किया है (यह सोच) व स्ति क र्म कराते थे। जो वह अ ल्पे च्छ भिक्षु थे हैरान. . .होते थे—'कैसे षड्वर्गीय भिक्षु वस्ति-कर्म कराते हैं !' तब उन लोगोंने यह बात भगवान्से कही।—

"सचमुच भिक्षुओ ० ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्।"

निंदा कर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! गुह्य-स्थानके चारों ओर दो अंगुल तक शस्त्रकर्म या वस्तिकर्म नहीं कराना चाहिये। जो कराये उसे थु ल्ल च्च य का दोष हो।" 96

§४–अभक्ष्य मांस

५—वाराणसी

(१) सुप्रियाका अपना मांस देना

तब भगवान् रा ज गृ ह में इच्छानुसार विहारकर जिधर वा रा ण सी है उधर चारिकाके लिये चले। क्रमशः चारिका करते जहाँ वाराणसी है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् वाराणसीके ऋ षि प त न मृ ग दा व में विहार करते थे। उस समय वाराणसीमें सुप्रिय (नामक) उपासक और सुप्रिया (नामक) उपासिका, दोनों श्रद्धालु थे। वह दाता काम करनेवाले और संघके सेवक थे। तब सुप्रिया उपासिका एक दिन आराममें जा एक विहार(=भिक्षुओंके रहनेकी कोठरी)से दूसरे विहार, एक प रि वे ण[1] से दूसरे परिवेणमें जा भिक्षुओंसे पूछती थी—

"भन्ते ! कौन रोगी है ? किसके लिये क्या लाना चाहिये ?"

उस समय एक भिक्षुने जुलाब लिया था। तब उस भिक्षुने सुप्रिया उपासिकासे यह कहा—

"भगिनी ! मैंने जुलाब लिया है। मुझे प्रतिच्छादनीय (=पथ्य)की आवश्यकता है।"

"अच्छा आर्य ! लाया जायेगा।"—(कह) घर जा नौकरको आज्ञा दी—

"जा भणे ! तैयार मांस खोज ला।"

"अच्छा आर्ये !"—(कह) उस पुरुषने सु प्रि या उपासिकाको उत्तर दे सारी वा रा ण सी को खोज डालनेपर भी तैयार मांस न देखा। तब वह जहाँ सुप्रिया उपासिका थी वहाँ गया। जाकर सुप्रिया उपासिकासे यह बोला—

"आर्ये ! तैयार मांस नहीं है। आज मारा नहीं गया।"

तब सुप्रिया उपासिकाको यह हुआ—'उस रोगी भिक्षुको प्र ति च्छा द नी य न मिलनेसे रोग बढ़ेगा, या मौत होगी। मेरे लिये यह उचित नहीं कि वचन देकर न पहुँचवाऊँ।'—(यह सोच) पोत्थनिका (=मांस काटनेका हथियार) ले जाँघके मांसको काटकर (यह कह) दासीको दे दिया—

'हन्त ! जे ! इस मांसको तैयारकर अमुक विहारमें रोगी भिक्षु है उसको दे आ। यदि मेरे बारेमें पूछे तो कहना बीमार है।' और चादरसे जाँघको बाँधकर कोठरीमें जा चारपाईपर लेट गई। तब सु प्रि य उपासकने घरमें जा दासीसे पूछा—"सुप्रिया कहाँ है ?"

"आर्य ! वह कोठरीमें लेटी हुई है।"

तब सु प्रि य उपासक जहाँ सुप्रिया उपासिका थी वहाँ गया। जाकर सुप्रिया उपासिकासे यह

गया। जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सु प्रि य उपासकने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! भिक्षु-संघके साथ कलका मेरा भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया। तब सु प्रि य उपासक भगवान्की स्वीकृतिको जान आसनसे उठ भगवान्की प्रदक्षिणाकर चला गया। तब सुप्रिय उपासकने उस रातके बीत जानेपर उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा समयकी सूचना दी—"भन्ते! (भोजनका) समय है, भात तैयार है।"

तब भगवान् पूर्वाह्णके समय पहिनकर पात्र-चीवर ले जहाँ सुप्रिय उपासकका घर था वहाँ गये। जाकर भिक्षु-संघके साथ बिछे आसनपर बैठे। तब सुप्रिय उपासक जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खळा हुआ। एक ओर खळे सुप्रिय उपासकसे भगवान्ने यह कहा—"कहाँ है सुप्रिया?"

"बीमार है भगवान्!"

"तो आवे।"

"भगवान्! नहीं आसकती।"

"तो पकळकर ले आओ!"

तब सुप्रिय उपासक सु प्रि या उपासिकाको धरकर ले आया। भगवान्के दर्शन मात्रसे (उसी समय) उसका बळा घाव भर गया। चाम ठीक हो गया और लोम भी जम गया। तब सुप्रिय उपासक और सुप्रिया उपासिकाने—"आश्चर्य है हे! अद्भुत है हे! तथागतकी महा दिव्यशक्ति, और महानुभावताको, जो कि भगवान्के दर्शन मात्रसे बळा घाव भर गया। चाम ठीक हो गया और लोम भी जम गया"—(कह) हर्षित=उदग्र हो अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा बुद्ध सहित भिक्षु-संघको संतर्पित. . .किया। भगवान्के भोजनकर हाथ हटा लेनेपर एक ओर बैठ गये। तब भगवान् सुप्रिय उपासक और सुप्रिया उपासिकाको धार्मिक कथासे. . .समुत्तेजित सम्प्रहर्षितकर आसनसे उठकर चले गये।

तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें भिक्षु-संघको एकत्रितकर भिक्षुओंसे पूछा—

"भिक्षुओ! किसने सुप्रिया उपासिकासे मांस माँगा?"—ऐसा कहनेपर उस भिक्षुने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! मैंने सुप्रिया उपासिकासे मांस माँगा।"

"लाया गया भिक्षु?"

"(हाँ) लाया गया भगवान्।"

"खाया तूने भिक्षु?"

"(हाँ) खाया मैंने भगवान्।"

"समझा बूझा तूने भिक्षु?"

"नहीं भगवान्! मैंने (नहीं) स म झा बू झा।"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—"कैसे तूने मोघपुरुष! बिना समझे बूझे मांसको खाया? मोघपुरुष! तूने मनुष्यके मांसको खाया। मोघ पुरुष! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ०।

(२) मनुष्य, हाथी आदिके मांस अभक्ष्य

१—फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! ऐसे श्रद्धालु—प्रसन्न मनुष्य हैं जो अपने मांस तकको दे देते हैं।

"भिक्षुओ! मनुष्य-मांस नहीं खाना चाहिये। जो खाये उसको थुल्लच्चयका दोष हो।" 97

२—उस समय राजाके हाथी मरते थे। दुर्भिक्षके कारण लोग हाथीका मांस खाते थे।

भिक्षाके लिये जानेपर भिक्षुओंको भी हाथीका मांस देते थे, और भिक्षु हाथीका मांस खाते थे। लोग हैरान. . .होते थे—'कैसे शा क्य पु त्री य श्रमण हाथीका मांस खाते हैं ! हाथी राजाका अंग है। यदि राजा जाने तो उनसे असंतुष्ट होगा।' भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! हाथीके मांसको नहीं खाना चाहिये। जो खाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 98

३—उस समय राजाके घोळे मरते थे ०[1]।—

"भिक्षुओ ! घोळेका मांस नहीं खाना चाहिये। जो खाये उसको दुक्कटका दोष हो।" 99

४—उस समय दुर्भिक्षके कारण लोग कुत्तेका मांस खाते थे ०[2]।—

"भिक्षुओ ! कुत्तेका मांस नहीं खाना चाहिये। जो खाये उसको दुक्कटका दोष हो।" 100

५—उस समय दुर्भिक्षके कारण लोग साँपका मांस खाते थे ०[2]। कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण साँपका मांस खाते हैं। साँप घृणित और प्रतिकूल होता है। सु फ स्स (=सुस्पर्श) नागराज भी जहाँ भगवान् थे वहाँ आकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खळा हुआ। एक ओर खळे सुफस्स नागराजने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! श्रद्धा-हीन प्रसन्नता-रहित नाग भी हैं। वह थोळीसी बातके लिये भी भिक्षुओंको तकलीफ़ दे सकते हैं। अच्छा हो भन्ते ! आर्य लोग साँपका मांस न खायें।" तब भगवान्‌ने सु फ स्स नागराजको धार्मिक कथा द्वारा. . .समुत्तेजित सम्प्रहर्षित किया। तब सुफस्स नागराज भगवान्‌की धार्मिक कथासे. . .समुत्तेजित सम्प्रहर्षित हो भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया। तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया

"भिक्षुओ ! साँपका मांस नहीं खाना चाहिये। जो खाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 101

६—उस समय शिकारी सिंहको मारकर सिंहका मांस खाते थे। भिक्षुओंके भिक्षाचार करते वक्त (उन्हें) सिंहका मांस देते थे। भिक्षु सिंहका मांस खाकर जंगलमें रहते थे। सिंह-मांसके गंधसे भिक्षुओंको मारते थे। भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! सिंहके मांसको नहीं खाना चाहिये। जो खाये उसको दुक्कटका दोष हो।" 102

७—उस समय शिकारी बाघको मारकर बाघका मांस खाते थे ०[2]।—

"भिक्षुओ ! बाघका मांस नहीं खाना चाहिये। जो खाये उसको दुक्कटका दोष हो।" 103

८—उस समय शिकारी चीते (=दीपी)को मारकर चीतेका मांस खाते थे ०[2]।—

"भिक्षुओ ! चीतेका मांस नहीं खाना चाहिये। जो खाये उसको दुक्कटका दोष हो।" 104

९—उस समय शिकारी भालूको मारकर भालूका मांस खाते थे ०[2]।—

"भिक्षुओ ! भालू (=अच्छ)का मांस नहीं खाना चाहिये। जो खाये उसको दुक्कटका दोष हो।" 105

१०—उस समय शिकारी तरच्छ (=तरक्षु, लकड़बग्घा)को मारकर तरच्छका मांस खाते थे ०[2]।

"भिक्षुओ ! तरच्छका मांस नहीं खाना चाहिये। जो खाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 106

दुर्भिक्ष भाणवार समाप्त ॥२॥

५—अंधकविन्द

(३) खिचळी और लड्डूका विधान

१—तब भगवान् वा रा ण सी में इच्छानुसार विहारकर साढ़े बारह सौ भिक्षुओंके महान् भिक्षु-संघके साथ जिधर अं ध क विं द है उधर चारिकाके लिये चले। उस समय देहात (=जनपद) के लोग बहुत सा नमक, तेल, तंडुल और खानेकी चीज़ें गाळियोंपर रख,—'जब हमारी बारी आयेगी तब भोजन करायेंगे'—यह सोच बुद्ध सहित भिक्षु-संघके पीछे पीछे चलते थे। और पाँच सौ जूठा खाने-वाले भी पीछे-पीछे चल रहे थे। तब भगवान् क्रमशः चारिका करते जहाँ अं ध क विं द था वहाँ पहुँचे। तब एक ब्राह्मणको बारी न मिलनेसे ऐसा हुआ—'बुद्ध-सहित भिक्षु-संघके पीछे-पीछे (यह सोचकर) चलते हुए दो महीनेसे अधिक हो गए कि जब बारी मिलेगी तब भोजन कराऊँगा, और मुझे बारी नहीं मिल रही है। मैं अकेला हूँ; मेरा घरका बहुत सा काम नुकसान हो रहा है। क्यों न मैं भोजन पर-सनेको देखूँ। जो परसनेमें न हो उसको मैं दूँ।'

तब ब्राह्मणने भोजन परसनेको देखते वक्त य वा गू खिचळी और लड्डू (=मधुगोलक)को न देखा। तब वह ब्राह्मण जहाँ आयुष्मान् आनंद थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनंदसे यह बोला—

"भो आनन्द ! मुझे बारी न मिलनेसे ऐसा हो—'बुद्ध-सहित संघके पीछेपीछे (यह सोचकर) चलते दो महीनेसे अधिक हो गये कि जब बारी मिलेगी तब भोजन कराऊँगा, और मुझे बारी नहीं मिल रही है। और मैं अकेला हूँ। मेरा घरका बहुत सा काम नुकसान हो रहा है। क्यों न मैं भोजन परसनेको देखूँ। जो परसनेमें न हो उसको मैं दूँ।' (फिर) भोजन परसनेको देखते वक़्त यवागू और लड्डू मैंने नहीं देखा। सो भो आनन्द ! यदि मैं यवागू और लड्डूको तैयार कराऊँ तो क्या आप गौतम उसे स्वीकार करेंगे ?"

"तो ब्राह्मण ! मैं इसे भगवान्से पूछूँगा ।"

तब आयुष्मान् आनंदने भगवान्से यह बात कही ।

"तो आनंद ! (वह ब्राह्मण) तैयार करे।"

"तो ब्राह्मण ! तैयार करो।"

तब वह ब्राह्मण उस रातके बीत जानेपर बहुत सा यवागू और लड्डू तैयार करा भगवान्के पास ले गया।—

"आप गौतम मेरे यवागू और लड्डूको स्वीकार करें।"

तब भिक्षु आगा-पीछा करते नहीं स्वीकार करते थे ।

"भिक्षुओ ! ग्रहण करो ! भोजन करो !"

तब ब्राह्मण बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको अपने हाथसे बहुतसे यवागू और लड्डूसे संतर्पित= सम्प्रवारित कर भगवान्के हाथ धो (खानेसे) हाथ हटा लेनेपर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस ब्राह्मणसे भगवान्ने यह कहा—

२—"ब्राह्मण खिचळी यवागूके यह दस गुण (=आनृसंश) हैं—(१) यवागू देनेवाला आयुका दाता होता है; (२) वर्ण (=रूप)का दाता होता है ;(३) सुखका दाता होता है; (४) बलका दाता होता है; (५) प्रतिभाका दाता होता है; (६) (उसकी दी खिचळी) पीनेपर क्षुधाको दूर करता है; (७) प्यासको दूर करता है; (८) वायुको अनुकूल करता है; (९) पेटको साफ करता है; (१०) न पचेको पचाता है। ब्राह्मण ! खिचळीके ये दस गुण हैं।"

जो संयमी, (और) दूसरेके-दिये-भोजन-करने-वालोंको—
समयपर सत्कार पूर्वक यवागू (=खिचळी) देता है,

उसको दस बातें मिलती हैं।
आयु, वर्ण, सुख, बल,—
प्रतिभा उसको उत्पन्न होती है; फिर
(यवागू) क्षुधा, पिपासा, (और) वायुको दूर करती है;
पेटको शोधती है, खायेको पचाती है।
बुद्धने इसे दवा बतलाया है।
इसलिये सुख चाहनेवाले मनुष्यको,
तथा दिव्य सुखको चाहनेवाले,
या मनुष्योंमें सुन्दर भाग्यकी इच्छा रखनेवालेको,
नित्य यवागूका दाना होना ठीक है।

तब भगवान् उस ब्राह्मण (के दान)को इन गाथाओंसे अनुमोदनकर आसनसे उठ चले गये। तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरण में धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको सम्बोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ यवागू और मधुगोलक की।" 107

(८) निमंत्रणके स्थानसे भिन्न खिचळी निषिद्ध

लोगोंने सुना कि भगवान्ने भिक्षुओंको यवागू और मधुगोलककी अनुमति दी है तब वह सवेरे ही खानेके लायक यवागू और मधुगोलकको तैयार करते थे। भिक्षु सवेरे ही यवागू और मधु-गोलकको खानेसे भोजनके समय मनसे नहीं खाते थे। उस समय एक श्रद्धालु नौजवान महामात्यने दूसरे दिनके लिये बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको निमंत्रित किया था। तब उस श्रद्धालु तरुण महामात्यको यह हुआ—'क्यों न मैं साढ़े बारहसौ भिक्षुओंके लिये साढ़े बारहसौ मांसकी थालियां तैयार कराऊँ, और एक एक भिक्षुके लिये एक एक मांसकी थाली प्रदान करूँ ?' तब उस श्रद्धालु तरुण महामात्यने उस रातके बीत जानेपर उत्तम खाद्य-भोज्य और साढ़े बारहसौ मांसकी थालियोंको तैयार करा भगवान्को कालकी सूचना दी—

"भन्ते ! भोजनका काल है, भात तैयार है।"

उठकर चले गये। तव भगवान्‌के चलेजानेके थोळीही देर वाद उस श्रद्धालु तरुण महामात्यको पछतावा होने लगा। उदासी होने लगी—"मुझे अलाभ है रे! मुझे दुर्लभ मिला है रे! मुझे सुलाभ नहीं हुआ है रे! जोकि मैं ने कुपित असंतुष्ट हो चिढ़ानेकी इच्छासे भिक्षुओंके पात्रोंको भर दिया—'खाओ! या लेजाओ!'—क्या मैंने पुण्य अधिक कमाया या अपुण्य?"

तव वह श्रद्धालु तरुण महामात्य जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर जहाँ भगवान् थे एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस ... महामात्यने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! भगवान्‌के चले आनेके थोळीही देर वाद मुझे पछतावा होने लगा० क्या मैंने पुण्य अधिक कमाया या अपुण्य?"

"आवुस! जोकि तूने दूसरे दिनके लिये बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको निमंत्रित किया इससे तूने वहुत पुण्य उपार्जित किया। जोकि तेरे यहाँ एक एक भिक्षुने एक एक दान ग्रहण किया इस वात से तूने वहुत पुण्य कमाया। स्वर्गका आराधन किया।"

तव वह महामात्य—'लाभ है मुझे, सुलाभ हुआ मुझे, मैंने वहुत पुण्य कमाया, स्वर्ग का आराधन किया—' यह सोच हर्षित=उदग्र हो, आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणा कर चला गया।

तव भगवान्‌ने इसी संवंधमें, इसी प्रकरणमें भिक्षुओंको एकत्रितकर भिक्षुओंसे पूछा—

"भिक्षुओ! सचमुच भिक्षु दूसरेके यहाँ निमंत्रितहो, दूसरेके भोज्य खिचळीको ग्रहण करते हैं?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्।"

बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—

"कैसे भिक्षुओ! वे निकम्मे आदमी दूसरी जगह निमंत्रित हो, दूसरेके भोज्य यवागूको ग्रहण करते हैं? भिक्षुओ! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्‌ने भिक्षुओंको संवोधित किया—

"भिक्षुओ! दूसरी जगह निमंत्रितहो दूसरेके भोज्य यवागूको नहीं ग्रहण करना चाहिये। जो ग्रहण करे उसे धर्मानुसार (दंड) देना चाहिये।" 108

६—राजगृह

(५) वेलट्ठ कात्यायनका गुळका व्यापार

तव भगवान् अं ध क विं द में इच्छानुसार विहारकर साढ़े वारहसौ भिक्षुओंके महान् भिक्षु संघके साथ जिधर रा ज गृ ह है उधर चारिकाकेलिये चले। उस समय वे ल ट्ठ क च्चान (=कात्यायन) सभी गुळके घळोंसे भरी पाँचसौ गाळियोंके साथ रा ज गृ ह से अं ध क विं द जाने वाले रास्तेमें जा रहा था। भगवान्‌ने दूरसे ही वे ल ट्ठ क च्चा न को आते देखा। देखकर मार्गसे हट एक वृक्षके नीचे (भगवान्) वैठ गये। तव वे ल ट्ठ क च्चान जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळे वे ल ट्ठ क च्चा न ने भगवान्‌से यह कहा—

"भंते! मैं एक एक भिक्षुको एक एक गुळका घळा देना चाहता हूँ।"

"तो कच्चान! तू एक ही गुळके घळेको ला।"

"अच्छा भंते!" (कह) वे ल ट्ठ क च्चा न एक ही गुळके घळेको ले जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌से वोला—

"भंते! मैं गुळके घळेको लाया हूँ। मुझे क्या करना चाहिये?"

"तो कच्चान! तू भिक्षुओंको गुळ दे।"

"अच्छा भंते !" (कह) वे ल ट्ठ क च्चा न ने भगवान्‌को उत्तर दे, भिक्षुओंको गुळ दे यह कहा—

"भंते ! मैंने भिक्षुओंको गुळ दे दिया, और यह बहुतसा गुळ बाक़ी है। भंते मुझे क्या करना चाहिये ?"

"तो कच्चान ! भिक्षुओंको गुळसे संतर्पित कर।"

"अच्छा भंते !" (कह) वे ल ट्ठ क च्चा न ने भगवान्‌को उत्तर दे, भिक्षुओंको गुळोंसे (=भेलियोंसे) संतर्पित किया। किन्हीं किन्हीं भिक्षुओंने पात्रोंको भर लिया, किन्हींने ज ल छ क्कों को, किन्हींने थैलोंको भर लिया। तब वे ल ट्ठ क च्चा न ने भिक्षुओंको गुळोंसे संतर्पितकर भगवान् से यह कहा—

"भन्ते ! मैंने भिक्षुओंको गुळोंसे संतर्पित कर दिया और बहुतसा गुळ बाक़ी है। भंते ! मैं (इनका) क्या करूँ ?"

"तो कच्चान ! तू गुळको शेष-भोजी (=विघासाद)को यथेच्छ दे दे।"

"अच्छा भंते !" (कह) वे ल ट्ठ क च्चा न ने भगवान्‌को उत्तर दे गुळ को यथेच्छ वि घा सा-दा न दे भगवान्‌से यह कहा—

"भंते ! गुळका यथेच्छ विघासादान मैंने दे दिया और बहुतसा यह गुळ बचा हुआ है। मुझे क्या करना चाहिये ?"

"तो क च्चा न ! जूठ खाने वालोंको इन गुळोंसे संतर्पित कर।"

"अच्छा भंते !" (कह) वे ल ट्ठ क च्चा न ने भगवान्‌को उत्तर दे जूठ खाने वालोंको गुळोंसे संतर्पित किया। किन्हीं किन्हीं जूठ खाने वालोंने कुंडोंको भी घळोंको भी भर लिया, पिटारियों और उछंगोंको भी भर लिया। तब वे ल ट्ठ क च्चा न ने जूठ खाने वालोंको गुळोंसे संतर्पितकर भगवान् से यह कहा—

उठकर चले गये। तब भगवान्‌के चलेजानेके थोळीही देर बाद उस श्रद्धालु तरुण महामात्यको पछतावा होने लगा। उदासी होने लगी—"मुझे अलाभ है रे! मुझे दुर्लभ मिला है रे! मुझे सुलभ नहीं हुआ है रे! जोकि मैं ने कुपित असंतुष्ट हो चिढ़ानेकी इच्छासे भिक्षुओंके पात्रोंको भर दिया—'खाओ! या लेजाओ!'—क्या मैंने पुण्य अधिक कमाया या अपुण्य?"

तब वह श्रद्धालु तरुण महामात्य जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर जहाँ भगवान् थे एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस ... महामात्यने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! भगवान्‌के चले आनेके थोळीही देर बाद मुझे पछतावा होने लगा० क्या मैंने पुण्य अधिक कमाया या अपुण्य?"

"आवुस! जोकि तूने दूसरे दिनके लिये बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको निमंत्रित किया इससे तूने बहुत पुण्य उपार्जित किया। जोकि तेरे यहाँ एक एक भिक्षुने एक एक दान ग्रहण किया इस दान से तूने बहुत पुण्य कमाया। स्वर्गका आराधन किया।"

तब वह महामात्य—'लाभ है मुझे, सुलाभ हुआ मुझे, मैंने बहुत पुण्य कमाया, स्वर्ग का आराधन किया—' यह सोच हर्षित=उदग्र हो, आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणा कर चला गया।

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें, इसी प्रकरणमें भिक्षुओंको एकत्रितकर भिक्षुओंसे पूछा—

"भिक्षुओ! सचमुच भिक्षु दूसरेके यहाँ निमंत्रितहो, दूसरेके भोज्य खिचळीको ग्रहण करते हैं?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्।"

बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—

"कैसे भिक्षुओ! वे निकम्मे आदमी दूसरी जगह निमंत्रित हो, दूसरेके भोज्य यवागूको ग्रहण करते हैं? भिक्षुओ! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! दूसरी जगह निमंत्रितहो दूसरेके भोज्य यवागूको नहीं ग्रहण करना चाहिये। जो ग्रहण करे उसे धर्मानुसार (दंड) देना चाहिये।" 108

६—राजगृह

(५) बेलट्ठ कात्यायनका गुळका व्यापार

तब भगवान् अंधकविंद में इच्छानुसार विहारकर साढ़े बारहसौ भिक्षुओंके महान् भिक्षु संघके साथ जिधर राजगृह है उधर चारिकाकेलिये चले। उस समय बेलट्ठकच्चान (=कात्यायन) सभी गुळके घळोंसे भरी पाँचसौ गाळियोंके साथ राजगृहसे अंधकविंद जाने वाले रास्तेमें जा रहा था। भगवान्‌ने दूरसे ही बेलट्ठकच्चानको आते देखा। देखकर मार्गसे हट एक वृक्षके नीचे (भगवान्) बैठ गये। तब बेलट्ठकच्चान जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळे बेलट्ठकच्चानने भगवान्‌से यह कहा—

"भंते! मैं एक एक भिक्षुको एक एक गुळका घळा देना चाहता हूँ।"

"तो कच्चान! तू एक ही गुळके घळेको ला।"

"अच्छा भंते!" (कह) बेलट्ठकच्चान एक ही गुळके घळेको ले जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌से बोला—

"भंते! मैं गुळके घळेको लाया हूँ। मुझे क्या करना चाहिये?"

"तो कच्चान! तू भिक्षुओंको गुळ दे।"

"अच्छा भंते !" (कह) वे ल ट्ठ क च्चा न ने भगवान्‌को उत्तर दे, भिक्षुओंको गुळ दे यह कहा—

"भंते ! मैंने भिक्षुओंको गुळ दे दिया, और यह बहुतसा गुळ बाक़ी है। भंते मुझे क्या करना चाहिये ?"

"तो कच्चान ! भिक्षुओंको गुळसे संतर्पित कर।"

"अच्छा भंते !" (कह) वे ल ट्ठ क च्चा न ने भगवान्‌को उत्तर दे, भिक्षुओंको गुळोंसे (=भेलियोंसे) संतर्पित किया। किन्हीं किन्हीं भिक्षुओंने पात्रोंको भर लिया, किन्हींने ज ल छ क्कों को, किन्हींने थैलोंको भर लिया। तब वे ल ट्ठ क च्चा न ने भिक्षुओंको गुळोंसे संतर्पितकर भगवान् से यह कहा—

"भन्ते ! मैंने भिक्षुओंको गुळोंसे संतर्पित कर दिया और बहुतसा गुळ बाक़ी है। भंते ! मैं (इनका) क्या करूँ ?"

"तो कच्चान ! तू गुळको शेष-भोजी (=विघासाद)को यथेच्छ दे दे।"

"अच्छा भंते !" (कह) वे ल ट्ठ क च्चा न ने भगवान्‌को उत्तर दे गुळ को यथेच्छ वि घा सा- दा न दे भगवान्‌से यह कहा—

"भंते ! गुळका यथेच्छ विघासादान मैंने दे दिया और बहुतसा यह गुळ बचा हुआ है। मुझे क्या करना चाहिये ?"

"तो क च्चा न ! जूठ खाने वालोंको इन गुळोंसे संतर्पित कर।"

"अच्छा भंते !" (कह) वे ल ट्ठ क च्चा न ने भगवान्‌को उत्तर दे जूठ खाने वालोंको गुळोंसे संतर्पित किया। किन्हीं किन्हीं जूठ खाने वालोंने कुंडोंको भी घळोंको भी भर लिया, पिटारियों और उछंगोंको भी भर लिया। तब वे ल ट्ठ क च्चा न ने जूठ खाने वालोंको गुळोंसे संतर्पितकर भगवान् से यह कहा—

"भंते ! मैंने जूठ खाने वालोंको गुळोंसे संतर्पित कर दिया और बहुतसा यह गुळ बचा हुआ है। मुझे क्या करना चाहिये ?"

"कच्चान ! देवों-सहित मार-सहित ब्रह्मा-सहित (सारे) लोकमें, श्रमण-ब्राह्मण-सहित देव-मनुष्य संयुक्त (सारी) प्रजामें, सिवाय तथागत या तथागतके श्रावकके ऐसे (व्यक्ति)को मैं नहीं देखता जिसके खानेपर यह गुळ अच्छी तरह हज़म हो सके। इसलिये कच्चान ! तू इस गुळको तृण-रहित भूमिमें छोळ दे, या प्राणी-रहित जलमें डालदे।"

"अच्छा भंते !" (कह) वे ल ट्ठ क च्चा न ने उस गुळको प्राणि-रहित जलमें डाल दिया। तब पानीमें डाला वह गुळ चिर्टचिटाता था, धुँधुआता था, बहुत धुँधुआता था, जैसेकि दिनकी धूपमें छोळा थाल पानीमें डालनेमें चिर्टचिटाता है, धुँधुआता है, बहुत धुँधुआता है, इसी प्रकार वह गुळ ०।

तब वे ल ट्ठ क च्चा न घबराया हुआ रोमांचित हो जहाँ भगवान्‌थे वहाँ आया। आकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे वे ल ट्ठ क च्चा न को भगवान्‌ने आ नु पू र्वी क था जैसेकि दानकथा०[1] तब वेलट्ठकच्चान विदित धर्म०[2] हो भगवान्‌से यह बोला—

"आश्चर्य भंते ! अद्भुत भंते ! ०[2] यह मै भंते ! भगवान्‌की शरण जाता हूँ; धर्म और भिक्षु-संघकी भी। आजसे भगवान् मुझे अंजलिबद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करें।"

---

[1] देखो पृष्ठ ८४। [2] देखो पृष्ठ ८५।

(६) रोगीको गुळ और नीरोगको गुळका रस

तब भगवान् क्रमशः चारिका करते जहाँ रा ज गृ ह था वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् राजगृहके वे णु व न क लं द क नि वा प में विहार करते थे । उस समय राजगृहमें गुळ बहुत था। भिक्षु हिचकिचा रहे थे कि भगवान्ने गुळकी अनुमति रोगीके लिये दी है या नीरोगके लिये, और गुळको न खाते थे। भगवान्से यह बात कही ।

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ रोगीको गुळकी, और नीरोगीको गुळके रसकी ।" 109

७—*पाटलिग्राम*

(७) पाटिलग्राममें नगर-निर्माण

तब भगवान् राजगृहमें इच्छानुसार विहारकर साढ़े बारह सौ भिक्षुओंके महान् भिक्षु-संघ के साथ जिधर पा ट लि ग्रा म है उधर चारिकाके लिये चल दिये । तब भगवान् क्रमशः चारिका करते जहाँ पाटलिग्राम है वहाँ पहुँचे ।

पाटलिग्रामके उपासकोंने सुना कि भगवान् पा ट लि ग्रा म आये हैं । तब...उपासक जहाँ भगवान् थे वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुये... उपासकोंने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! भगवान् हमारे आवसथागार[1] (=अतिथिशाला)को स्वीकार करें ।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया ।

तब...उपासक भगवान्की स्वीकृतिको जान आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर जहाँ आवसथागार था, वहाँ गये० । जाकर चारों ओर बिछौना बिछे आवसथागारको बिछवाकर, आसनोंको लगवाकर, पानीकी चाटियोंको रखवाकर तथा तेल-प्रदीप जलवा जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खळे हो गये। एक ओर खळे हुए पाटली-ग्रामके उपासकोंने भगवान्से यह कहा—

(भन्ते ! आवसथागारमें सब बिछौने बिछ गये हैं, आसन लग गये हैं, पानीकी मटकियाँ रख दी गई हैं, तेल-प्रदीप जल गये हैं। भन्ते ! भगवान् अब जिसका समय समझें) तब भगवान् पहनकर पात्र-चीवर ले भिक्षुसंघके साथ जहाँ आवसथागार था वहाँ गये । जाकर पैरोंको धो आवसथागारमें प्रविष्ट हो बीचके खंभेके पास पूर्वाभिमुख बैठे। भिक्षु-संघ भी पाँवोंको धोकर आवसथागारमें प्रविष्ट हो पश्चिम की दीवारके पास पूर्वाभिमुख बैठे। पाटली ग्रामके उपासक भी पाँवोंको धोकर आवसथागारमें प्रविष्ट हो पूर्वकी दीवालके पास पश्चिमाभिमुख हो, जिधर भगवान् थे उधर ही मुँह करके बैठे । तब भगवान्ने पाटली ग्रामके उपासकोंको आमंत्रित किया—

---

[1] उदान अ. क. ८: ६ "भगवान् कब पाटलीग्राममें गये ?...श्रावस्ती में धर्म-सेनापति (=सारिपुत्र)का चैत्य बनवा, वहाँसे निकलकर राजगृहमें वास किया । वहाँ आयुष्मान् महामौद्गल्यायनका चैत्य बनवाकर, वहाँसे निकलकर अंबलट्ठिकामें वास किया। फिर अ-त्वरित-चारिकासे जनपद-चारिका करते; वहाँ वहाँ एक रात वास करते, लोकानुग्रह करते, क्रमशः पाटलिग्राम पहुँचे ।...। पाटलिग्राममें अजातशत्रु और लिच्छवी राजाओंके आदमी समय समयपर, आकर घरके मालिकोंको घरसे निकालकर, मास भी आधामास भी बस रहते थे । इससे पाटलिग्राम-वासियोंने नित्य पीड़ित हो—उनके आनेपर यह (हमारा) वास-स्थान होगा—(सोचकर)...नगरके बीचमें महाशाला बनवाई उसीका नाम था 'आवसथागार' । वह उसी दिन समाप्त हुआ था ।"

"गृहपतियो ! दुराचार, दुःशील (=दुराचारी)के ये पाँच दुष्परिणाम हैं । कौनसे पाँच ? गृहपतियो ! दुःशील, दुराचारी (मनुष्य) आलस्यके कारण अपनी भोग सम्पत्तिको बहुत हानि करता है; दुःशीलताका तथा दुराचारका यह पहला दुष्परिणाम है।

"गृहपतियो ! और फिर दुःशील, दुराचारीकी बदनामी होती है। दुःशीलता तथा दुराचारका यह दूसरा दुष्परिणाम है।

०और गृहपतियो ! दुःशील, दुराचारी जिस किसी सभामें जाता है—चाहे वह क्षत्रियोंकी सभा हो, चाहे ब्राह्मणोंकी सभा हो, चाहे वैश्योंकी सभा हो, चाहे श्रमणोंकी सभा हो—उसमें अविशारद हो झेंपा हुआ जाता है। दुःशील, दुराचारका यह तीसरा दुष्परिणाम है।

"गृहपतियो ! और फिर दुराचारी अत्यन्त मूढ़ताको प्राप्त हो मरता है। दुःशील दुराचारीका यह चौथा दुष्परिणाम है।

"गृहपतियो ! दुःशील, दुराचारी शरीर छोळनेपर, मरनेपर नरकमें=दुर्गतिमें...=निरय में... उत्पन्न होता है । दुःशील दुराचारीका यह पाँचवाँ दुष्परिणाम है। दुःशील=दुराचारके ये पाँच दुष्परिणाम हैं।

"गृहपतियो ! सदाचारीके ये पाँच सुपरिणाम हैं। कौनसे पाँच ?

"गृहपतियो ! सदाचारी (=सदाचार-युक्त आदमी) हिम्मती होनेके कारण बहुत सी धन-सम्पत्ति प्राप्त करता है। सदाचारी (=सदाचार युक्तका) यह पहला सुपरिणाम है।

"और फिर, गृहपतियो ! सदाचारी सदाचार युक्तकी नेकनामी होती है । सदाचारी सदाचार-युक्तका यह दूसरा सुपरिणाम है ।

"और फिर गृहपतियो ! सदाचारी सदाचार-युक्त जिस जिस सभामें जाता है—चाहे क्षत्रियों की सभा हो, चाहे ब्राह्मणोंकी सभा हो, चाहे वैश्योंकी सभा हो, चाहे श्रमणोंकी सभा हो—उस सभामें वह विशारद हो निःसंकोच जाता है। सदाचारी=सदाचार-युक्तका यह तीसरा सुपरिणाम है ।

"और फिर गृहपतियो ! सदाचारी (=सदाचार-युक्त) मनुष्य विना मूढ़ताको प्राप्त हुए मरता है। सदाचारीके सदाचारका यह चौथा सुपरिणाम है ।

"और फिर गृहपतियो ! सदाचारी=सदाचार-युक्त शरीर छोळनेपर, मरनेपर सुगति=स्वर्ग-लोकमें उत्पन्न होता है। सदाचारीके सदाचारका यह पाँचवाँ सुपरिणाम है । गृहपतियो ! सदाचारीके सदाचारके यह पाँच सुपरिणाम हैं।"

तब भगवान्ने बहुत रात तक...उपासकोंको धार्मिक-कथासे संदर्शित...समुत्तेजित कर... उद्योजित किया—

"गृहपतियो ! रात बीत गई, जिसका तुम समय समझते हो (वैसा करो)।"

"अच्छा भन्ते !" (कह)...पाटलिग्राम-वासी...उपासक...आसनसे उठकर भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चले गये । तब पाटलिग्रामिक उपासकोंके चले जानेके थोळीही देर बाद भगवान् शून्यआगारमें चले गये ।

उस समय सु नी ध (=सुनीथ) और व र्ष का र म ग ध के महामात्य पा ट लि ग्रा म में वज्जियों को रोकनेके लिये नगर बसाते थे ।...। भगवान्ने रातके प्रत्यूष-समय (=भिनसार)को उठकर आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"आनन्द ! पाटलिग्राममें कौन नगर बना रहा है ?"

"भन्ते ! सुनीध और वर्षकार मगध-महामात्य, वज्जियोंके रोकनेके लिये नगर बसा रहे हैं ।"

"आनन्द ! जैसे त्रयस्त्रिंशके देवताओंके साथ मंत्रणा करके मगधके महामात्य सुनीथ, वर्ष-

कार, वज्जियोंके रोकनेके लिये नगर बना रहे हैं। यहाँ आनन्द ! मैंने दिव्य अमानुष नेत्रसे देखा—कई हजार देवता यहाँ पाटलि-ग्राममें वास्तु (=घर, निवास) ग्रहण कर रहे हैं। जिस प्रदेशमें महा-शक्ति-शाली (=महेसक्ख) देवता वास ग्रहण कर रहे हैं, वहाँ महा-शक्ति-शाली राजाओं और राज-महामात्योंका चित्त, घर बनानेको लगेगा। जिस प्रदेशमें मध्यम देवता वास ग्रहण कर रहे हैं, वहाँ मध्यम राजाओं और राज-महामात्योंका चित्त घर बनानेको लगेगा। जिस प्रदेशमें नीच देवता०, वहाँ नीच राजाओं०। आनन्द ! जितने भी आर्य-आयतन (=आर्योंके निवास) हैं, जितने (भी) वणिक्-पथ (=व्यापार-मार्ग) हैं। (उनमें) यह पा ट लि-पु त्र पुट-भेदन (=मालकी गाँठ जहाँ तोळी जाय) अग्र (=प्रधान)-नगर होगा। पाटलि-पुत्रके तीन अन्तराय (=विघ्न) होंगे, आग, पानी, और आपसकी फूट।"

तब मगध-महामात्य सु नी थ और व र्ष का र जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्के साथ संमोदनकर... एक ओर खळे हुए...भगवान्से बोले—

"भिक्षु-संघके साथ आप गौतम हमारा आजका भात स्वीकार करें।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

तब० सुनीथ और वर्षकारने भगवान्की स्वीकृति जानकर, जहाँ उनका आवसथ (=डेरा) था, वहाँ गये। जाकर अपने आवसथमें उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा (उन्होंने) भगवान्को समयकी सूचना दी...।

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर, पात्र-चीवर ले भिक्षुसंघके साथ जहाँ मगध-महामात्य सुनीथ, और वर्षकारका आवसथ था, वहाँ गये; जाकर बिछे आसनपर बैठे। तब सुनीथ, वर्षकारने बुद्ध-सहित भिक्षुसंघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्यसे संतर्पित-संप्रवारित किया। तब० सुनीथ वर्षकार, भगवान्के भोजनकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, दूसरा नीचा आसन लेकर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुये मगध-महामात्य सुनीथ, वर्षकारको भगवान्ने इन गाथाओंसे (दान-) अनु-मोदन किया—

"जिस प्रदेश (में) पंडित पुरुष, शीलवान्, संयमी।
ब्रह्मचारियोंको भोजन कराकर वास करता है ॥ १ ॥
वहाँ जो देवता हैं, उन्हें दक्षिणा (दान=)-भाग देनी चाहिये।
यह देवता पूजित हो पूजा करती हैं। मानित हो मानती हैं ॥ २ ॥
तब (वह) औरस पुत्रकी भाँति उसपर अनुकम्पा करती हैं।
देवताओंसे अनुकम्पित हो पुरुष सदा मंगल देखता है ॥ ३ ॥"

तब भगवान्०सुनीथ और वर्षकारको इन गाथाओंसे अनुमोदनकर, आसनसे उठकर चले गये।

उस समय०सुनीथ, वर्षकार भगवान्के पीछे पीछे चल रहे थे—'श्रमण गौतम आज जिस द्वारसे निकलेगा, वह गौ त म द्वा र... होगा। जिस तीर्थ (=घाट)से गंगानदी पार होगा, वह गौ त म ती र्थ...होगा। तब भगवान् जिस द्वारसे निकले, वह गौतम द्वार..हुआ।

भगवान् जहाँ गंगा-नदी है, वहाँ गये। उस समय गंगा करारों तक भरी, करारपर बैठे कौवेके पीने योग्य थी। कोई आदमी नाव खोजते थे, कोई० बेळा (=उलुम्प) खोजते थे, कोई० कूला (=कुल्ल) बाँधते थे। तब भगवान्, जैसे कि बलवान् पुरुष समेटी बाँहको (सहज ही) फैला दे, फैलाई बाँहको समेट ले, ऐसे ही भिक्षुसंघके साथ गंगानदीके इस पारसे अन्तर्धान हो, परले तीरपर जा खळे हुए। भगवान्ने उन मनुष्योंको देखा, कोई कोई नाव खोज रहे थे०। तब भगवान्ने इस

अर्थको जानकर, उसी समय यह उदान कहा—

"(पंडित) छोटे जलाशयोंको छोळ समुद्र और नदियोंको सेतुसे तरते हैं।
(जबतक) लोग कूला बाँधते रहते हैं, (तबतक) मेधावी जन पार हो गये रहते हैं।"

८—कोटिग्राम

तब भगवान् जहाँ कोटिग्राम था, वहाँ गये। वहाँ भगवान् को टि ग्रा म में विहार करते थे। भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ! चारों आर्य-सत्योंके अनुबोध (=बोध)=प्रतिबोध न होनेसे इस प्रकार दीर्घ-कालसे यह दौळना=संसरण (=आवागमन) 'मेरा और तुम्हारा' होरहा है। कौनसे चारों? भिक्षुओ! दुःख आर्य-सत्यके बोध=प्रतिबोध न होनेसे०दुःख-समुदय०। दुःख-निरोध०। दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपद्०। भिक्षुओ! सो मैंने इस दुःख आर्य-सत्यको अनुबोध=प्रतिबोध किया०, (तो) भव तृष्णा उच्छिन्न होगई, भवनेत्री (=तृष्णा) क्षीण होगई अब पुनर्जन्म नहीं है।

"चारों आर्य-सत्योंको ठीकसे न देखनेसे दीर्घकालसे आवागमनमें पळा उन उन जातियोंमें (जन्मता है)। सो मैंने उनको देख लिया, तृष्णा क्षीण होगई, दुःखकी जळ कट गई अब पुन-र्जन्म नहीं है।"

अ म्ब पा ली गणिकाने सुना—भगवान् कोटिग्राममें आ गये। अम्बपाली गणिका सुन्दर सुन्दर (=भद्र) यानोंको जुळवाकर, सुन्दर यानपर चढ़, सुन्दर यानोंके साथ वै शा ली से निकली; और जहाँ कोटिग्राम था, वहाँ चली। जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जाकर, यानसे उतर पैदल ही जहाँ भगवान् थे वहाँ गई। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठी अम्बपाली गणिकाको भगवान्‌ने धार्मिक-कथासे संदर्शित समुत्तेजित...किया। तब अम्बपाली गणिका भगवान्‌से यह बोली—

"भन्ते! भिक्षु संघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

तब अम्बपाली गणिका, भगवान्‌की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चली गई।

वै शा ली के लि च्छ वि यों ने सुना—'भगवान् वैशालीमें आये हैं ०'। तब वह लिच्छवी ० सुन्दर यानोंपर आरूढ़ हो ० वैशालीसे निकले। उनमें कोई कोई लिच्छवि नीले=नील-वर्ण नील-वस्त्र नील-अलंकारवाले थे। कोई कोई लिच्छवि पीले=पीतवर्ण ० थे। ० लोहित (=लाल) ०। ० अवदात (=सफेद) ०। अम्बपाली गणिकाने तरुण तरुण लिच्छवियोंके धुरोंसे धुरा, चक्कोंसे चक्का, जूयेसे जूआ टकराया। उन लिच्छवियोंने अम्बपाली गणिकासे कहा—

"जे! अम्बपाली! क्यों तरुण तरुण (=दहर) लिच्छवियोंके धुरोंसे धुरा टकराती है। ०"

"आर्यपुत्रो! क्योंकि मैंने भिक्षुसंघके साथ भगवान्‌को कलके भोजनके लिये निमंत्रित किया है।"

"जे अम्बपाली! सौ हजारसे भी इस भात (=भोजन)को (हमारे लिये) दे दे।"

"आर्यपुत्रो! यदि वैशाली देश (=जनपद) भी दो, तो भी इस महान् भातको न दूँगी।"

तब उन लिच्छवियोंने अँगुलियाँ फोळीं—

"अरे! हमें अ म्बि का ने जीत लिया, अरे! हमें अम्बिकाने वंचित कर दिया।"

तब वह लिच्छवी जहाँ कोटिग्राम था, वहाँ गये। भगवान्‌ने दूरसे ही लिच्छवियोंको आते देखा। देखकर भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"अवलोकन करो भिक्षुओ ! लिच्छवियोंकी परिषद्को । अवलोकन करो भिक्षुओ ! लिच्छवियों की परिषद्को । भिक्षुओ ! लिच्छवि परिषद्को त्रायस्त्रिंश (देव)-परिषद् समझो (=उप-संहरथ) ।"

तब वह लिच्छवी० रथसे उतरकर पैदल ही जहाँ भगवान् थे, वहाँ...जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे । एक ओर बैठे लिच्छवियोंको भगवान्ने धार्मिक-कथासे० समुत्तेजित० किया । तब वह लिच्छवी० भगवान्से बोले—

"भन्ते ! भिक्षु-संघके साथ भगवान् कलका हमारा भोजन स्वीकार करें ।"

"लिच्छवियो ! कलके लिये तो मैंने अम्बपाली गणिकाका भोजन स्वीकार कर लिया है ।"

तब उन लिच्छवियोंने अँगुलियाँ फोळीं—

"अरे ! हमें अम्बिकाने जीत लिया । अरे ! हमें अम्बिकाने वंचित कर लिया ।"

तब वह लिच्छवी भगवान्के भाषणको अभिनन्दितकर अनुमोदितकर, आसनसे उठकर भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चले गये ।

अम्बपाली गणिकाने उस रातके बीतनेपर उत्तम खाद्य-भोज्य तैयारकर, भगवान्को समय सूचित किया...। भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले भिक्षु-संघके साथ जहाँ अम्बपाली का परोसनेका स्थान था, वहाँ गये । जाकर प्रज्ञप्त (=बिछे) आसनपर बैठे । तब अम्बपाली गणिकाने बुद्ध-सहित भिक्षुसंघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा संतर्पित=संप्रवारित किया । तब अम्बपाली गणिका भगवान्के भोजनकर० लेनेपर, एक नीचा आसन लेकर एक ओर बैठी । एक ओर बैठी अम्बपाली गणिका भगवान्से बोली—

"भन्ते ! मैं इस आरामको बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको देती हूँ ।"

भगवान्ने आरामको स्वीकार किया । तब भगवान् अम्बपाली०को धार्मिक कथासे० समुत्तेजित०कर, आसनसे उठकर चले गये ।

९—वैशाली

तब भगवान् कोटिग्राममें इच्छानुसार विहारकर जहाँ वैशाली है; जहाँ महावन है वहाँ गये । वहाँ भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागार शालामें विहार करते थे ।

लिच्छवी भाणवार (समाप्त) ।। ३ ।।

(८) सिंह सेनापतिकी दीक्षा

उस समय बहुतसे प्रतिष्ठित लिच्छवी, संस्थागार (=प्रजातंत्र-सभागृह)में बैठे थे, एकत्रित हो, बुद्धका गुण बखानते थे, धर्मका०, संघका गुण बखानते थे । उस समय निगंठों (=जैनों)का श्रावक सिंह सेनापति उस सभामें बैठा था । तब सिंह सेनापतिके चित्तमें हुआ— 'निःसंशय वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध होंगे, तब तो यह बहुतसे प्रतिष्ठित लिच्छवि०बखान रहे हैं । क्यों न मैं उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धके दर्शनके लिये चलूँ ।'

तब सिंह सेनापति जहाँ निगंठ नाथपुत्त थे, वहाँ गया । जाकर निगंठनाथपुत्तसे बोला—

"भंते ! मैं श्रमण गौतमको देखनेके लिये जाना चाहता हूँ ।"

"सिंह ! क्रियावादी होते हुये, तू क्या अक्रिया (=अकर्म) वादी श्रमण गौतमके दर्शनको जायेगा । सिंह ! श्रमण गौतम अक्रिया-वादी है, श्रावकोंको अक्रिया-वादका उपदेश करता है...।"

तब सिंह सेनापतिकी भगवान्के दर्शनके लिये जानेकी जो इच्छा थी, वह शांत होगई ।

दूसरी बार भी बहुतसे प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित लिच्छवी० । तब सिंह सेनापति जहाँ निगंठ-नाथपुत्त थे, वहाँ गया० कहा० ।

"क्या तू सिंह ! क्रियावादी होकर, अक्रियावादी श्रमण गौतमके दर्शनको जायेगा० ।"

दूसरी वार भी सिंह सेनापतिकी० इच्छा० शांत होगई ।

तीसरी वार भी वहुतसे प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित लिच्छवी० । 'पूछूँ या न पूछूँ, निगंठनाथपुत्त मेरा क्या करेगा ? क्यों न निगंठनाथपुत्तको बिना पूछे ही, मैं उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धके दर्शनके लिये जाऊँ ?'

तब सिंह सेनापति पाँच सौ रथोंके साथ, दिन-ही-दिन (=दो पहर)को भगवान्‌के दर्शनके लिये, वैशालीसे निकला । जितना यान (=रथ)का रास्ता था, उतना यानसे जाकर, यानसे उतर, पैदल ही आराममें प्रविष्ट हुआ । सिंह सेनापति जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर वैठ गया । एक ओर बैठे हुये सिंह सेनापतिने भगवान्‌से यह कहा—

"भंते ! मैंने सुना है कि—श्रमण गौतम अक्रिया-वादी है । अक्रियाके लिये धर्म-उपदेश करता है, उसीकी ओर शिष्योंको ले जाता है । भंते ! जो ऐसा कहता है—'श्रमण गौतम अक्रिया-वादी है० ।'...क्या वह भगवान्‌के वारेमें...ठीक कहता है ? झूठसे भगवानकी निन्दा तो नहीं करता ? धर्मानुसार ही धर्मको कहता है ? कोई सह-धार्मिक वादानुवाद तो निंदित नहीं होता ? भंते ! हम भगवान्‌की निंदा करना नहीं चाहते ।"

"सिंह ! ऐसा कारण है, जिस कारणसे ठीक ठीक कहते हुये मुझे कहा जा सकता है—श्रमण गौतम [1]अक्रिया-वादी है० ।"

"सिंह ! क्या कारण है, '०श्रमण गौतम अ क्रि या-वा दी है०' सिंह ! मैं कायदुश्चरित, वचन-दुश्चरित, मन-दुश्चरितको, तथा अनेक प्रकारके पाप वुराइयोंको अ-क्रिया कहता हूँ० ।०

"सिंह ! क्या कारण है जिस कारणसे०—'श्रमण गौतम क्रिया-वादी है, क्रियाके लिये धर्म उपदेश करता है, उसीसे श्रावकोंको ले जाता है० । सिंह ! मैं का य सु च रि त (=अ-हिंसा, चोरी न करना, अ-व्यभिचार), वा क्-सु च रि त (=सच वोलना, चुगली न करना, मीठा वचन, बकवाद न करना), म न सु च रि त (=अ-लोभ, अ-द्रोह, सम्यक्-दृष्टि) अनेक प्रकारके कुश ल (=उत्तम) धर्मोको क्रिया कहता हूँ । सिंह ! यह कारण है, जिस कारणसे० मुझे 'श्रमण गौतम क्रियावादी' है०।०

"०[1] उ च्छे द वा दी० । ०जु गु प्सु० । ०वै न यि क० । ०त प स्वी० । अ प ग र्भ० ।

"सिंह ! क्या कारण है जिस कारणसे ठीक ठीक कहनेवाला मुझे कह सकता है—'श्रमण गौतम अ स्स सं त (=आश्वसंत) है, आश्वासके लिये धर्म-उपदेश करता है, उसीके द्वारा श्रावकोंको ले जाता है' । सिंह ! मैं परम आश्वाससे आश्वासित हूँ, आश्वासके लिये धर्म उपदेश करता हूँ, आश्वास (के मार्ग)से ही श्रावकोंको ले जाता हूँ । यह कारण० ।"

ऐसा कहनेपर सिंह सेनापतिने भगवान्‌से कहा—

"आश्चर्य ! भंते आश्चर्य ! भंते ! ० उपासक मुझे स्वीकार करें ।"

"सिंह ! सोच समझकर करो० । तुम्हारे जैसे संभ्रांत मनुष्योंका सोच समझकर (निश्चय) करना ही अच्छा है ।"

"भंते ! भगवान्‌के इस कथनसे मैं और भी संतुष्ट हुआ । भंते ! दूसरे तैर्थिक मुझ जैसा शिष्य पाकर, सारी वै शा ली में पताका उड़ाते—सिंह सेनापति हमारा शिष्य (=श्रा व क)हो गया । लेकिन भगवान् मुझे कहते हैं—सोच समझकर सिंह ! करो० । यह मैं भंते ! दूसरी वार भगवान्‌की

[1] अक्रियावादी, उच्छेदवादी, जुगुप्सु, तपस्वी, अप-गर्भकी व्याख्या वेरञ्जसुत्त(अ० नि०)में।

शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी० ।"

"सिंह ! तुम्हारा घर दीर्घकालसे निगंठोंके लिये प्याउकी तरह रहा है; उनके जानेपर 'पिंड न देना (चाहिये)' ऐसा मत समझना ।"

"भंते ! इससे मैं और भी प्रसन्न-मन, संतुष्ट, और अभिरत हुआ । ० । मैंने सुना था भंते ! कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है—'मुझे ही दान देना चाहिये, दूसरोंको दान न देना चाहिये०[1] । भंते ! भगवान् तो मुझे निगंठोंको भी दान देनेको कहते हैं । हम भी भंते ! इसे युक्त समझेंगे । यह भंते ! मैं तीसरी बार भगवानकी शरण जाता हूँ । ० ।

तब भगवान्‌ने सिंह सेनापतिको आनुपूर्वी कथा कही, जैसे—दान-कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा, कामभोगोंके दोष, अपकार और क्लेश; और निष्कामनाका माहात्म्य प्रकाशित किया। जब भगवान्‌ने सिंह सेनापतिको अरोग-चित्त, मृदु-चित्त, अनाच्छादित-चित्त, उदग्र-चित्त, प्रसन्न-चित्त जाना । तब वह जो बुद्धोंकी स्वयं उठानेवाली धर्म-देशना है, उसे प्रकाशित किया—दुःख, समुदय, निरोध और मार्ग । जैसे कालिमा-रहित शुद्ध वस्त्र अच्छी प्रकार रंग पकळता है । इसी प्रकार सिंह सेनापतिको उसी आसनपर वि-मल, वि-रज, धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—

'जो कुछ समुदय-धर्म है, वह सब निरोध-धर्म है'।

सिंह सेनापति दृष्ट-धर्म=प्राप्त-धर्म=विदित-धर्म=परि-अवगाढ़-धर्म, संदेह-रहित, वाद-विवाद-रहित, विशारदता-प्राप्त, शास्ताके शासनमें स्वतंत्र हो और भगवान्‌से यह बोला—

"भंते ! भिक्षु-संघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करें ।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया । तब सिंह सेनापति भगवान्‌की स्वीकृतिको जान आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया ।

तब सिंह सेनापतिने एक आदमीसे कहा—

"हे आदमी ! जा तू तैयार मांसको देख तो ।"

तब सिंह सेनापतिने उस रातके बीतनेपर अपने घरमें उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा, भगवान्‌को कालकी सूचना दी । भगवान् पूर्वाह्ण समय (चीवर) पहनकर पात्र-चीवर ले जहाँ सिंह सेनापतिका घर था, वहाँ गये । जाकर भिक्षुसंघके साथ बिछे आसनपर बैठे । उस समय बहुतसे निगंठ (=जैनसाधु) वैशालीमें एक सळकसे दूसरी सळकपर, एक चौरस्तेसे दूसरे चौरस्तेपर, बाँह उठाकर चिल्लाते थे—'आज सिंह सेनापतिने मोटे पशुको मार कर, श्रमण गौतमके लिये भोजन पकाया; श्रमण गौतम जान बूझकर (अपनेही) उद्देश्यसे किये, उस (मांस) को खाता है ।...।

तब कोई पुरुष जहाँ सिंह सेनापति था, वहाँ गया । जाकर सिंह सेनापतिके कानमें बोला—

"भंते ! जानते हैं, बहुतसे निगंठ वैशालीमें एक सळकसे दूसरी सळकपर० बाँह उठाकर चिल्ला रहे हैं—आज० ।"

"जाने दो आर्यो (=अय्या) ! चिरकालसे यह आयुष्मान् (=निगंठ) बुद्ध० धर्म० संघकी निंदा चाहने वाले हैं। यह आयुष्मान् भगवान्‌की असत्, तुच्छ, मिथ्या=अ-भूत निंदा करते नहीं शरमाते । हम तो (अपने) प्राणके लिये भी जान बूझकर प्राण न मारेंगे ।"

तब सिंह सेनापतिने बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्यसे संतर्पित (कर), परिपूर्ण किया । भगवान्‌के भोजनकर पात्रसे हाथ खींच लेनेपर, सिंह सेनापति...एक ओर

---

[1] देखो उपालि-सुत्त (मज्झिमनिकाय पृष्ठ २२२)।

बैठ गया। एक ओर बैठे हुये सिंह सेनापतिको भगवान्, धार्मिक कथासे संदर्शन करा...,आसनसे उठकर चल दिये।

(९) अपने लिये मारे मांसको जान बूझकर खाना निषिद्ध

तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक-कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! जान बूझकर (अपने) उद्देश्यसे बने मांसको नहीं खाना चाहिये। जो खाये उसे दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ (अपने लिये मारे को) देखे, सुने, संदेह-युक्त— इन तीन बातोंसे शुद्ध मछली और मांस (के खाने) की।" 110

§५–संघाराममें चीज़ोंके रखनेके स्थान

(१) दुर्भिक्षके समयके विधान सुभिक्षमें निषिद्ध

उस समय वै शा ली सुभिक्ष थी। सुंदर शस्योंवाली थी। वहाँ भिक्षा पाना सुलभ था। [1]उंछसे भी यापन करना सुकर था। तब भगवान्को एकांतमें स्थितहो विचार-मग्न होते समय भगवान्के दिलमें यह ख्याल पैदा हुआ—जो मैंने दुर्भिक्ष=दुःशस्यके समय (जबकि) भिक्षा मिलनी मुश्किल है भिक्षुओंके लिये—भीतर रक्खे भीतर पकाये[2] और अपने हाथसे पकाये, लेन-देन, वहाँसे लाये, भोजनसे पहिलेका लिया, वनका, पुष्करिणीका—की अनुमति दी है भिक्षु आजभी क्या उनका सेवन करते हैं ?' तब भगवान्ने सायंकाल एकान्त-चिंतनसे उठ आयुष्मान् आ नं द को संबोधन किया—

"आनंद ! जो मैंने भिक्षुओंको दुर्भिक्षमें अनुमति दी—०; क्या आजभी भिक्षु उनका सेवन करते हैं ?"

"(हाँ) सेवन करते हैं भन्ते !"

तब भगवान्ने इसी संबंध में इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! जो मैंने दुर्भिक्ष ० में अनुमति दी—भीतर रक्खे ० के सेवन करनेकी, उन्हें मैं आजसे निषिद्ध करता हूँ। भिक्षुओ ! भीतर रक्खे ० को नहीं सेवन करना चाहिये। जो सेवन करे उसको दुक्कटका दोष हो। और भिक्षुओ ! 'वहाँसे लाये', ० और पुष्करिणीके भोजनको कर लेनेपर ० नहीं भोजन करना चाहिये। जो भोजन करे उसे धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये।" 111

(२) चीज़ोंके रखनेका स्थान (=कल्प्यभूमि) चुनना

उस समय देहातके लोग बहुतसा नमक, तेल, तंडुल और खाद्य (-सामग्री)को गाळियोंमें रख आरामसे बाहरके हातेमें शकटको उलटकर (यह सोचकर) ठहरे रहते थे कि जब बारी मिलेगी तो भोज देंगे। और (उस समय) महामेघ उठा हुआ था। तब वह लोग जहाँ आयुष्मान् आ नं द थे। वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् आनंदसे बोले—

"भन्ते आनन्द ! हम बहुत सा नमक, तेल, तडुंल और खाद्य (सामग्री)को गाळियोंमें रख आरामसे बाहरके हातेमें शकटको उलटकर (यह सोचकर) ठहरे हैं कि जब बारी मिलेगी तो भोज देंगे। और (इस समय) महामेघ उठा हुआ है। भन्ते आनन्द ! हमें कैसा करना चाहिये ?"

तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह बात कही।—

---

[1] कण चुनचुनकर खाना। [2] देखो (६§३।९) पृष्ठ २२७।

"तो आनन्द ! संघ आख़िर वाले विहारको कल्प्य भूमि[1] होनेका ठहराव करके वहाँ रखवावे। संघ जिस विहार या अड्डयोग (=अटारी), प्रासाद या हर्म्य या गुहा को चाहे (उसे कल्प्यभूमि बनावे)।" 112

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार ठहराव करना चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क. ज्ञप्ति—"भन्ते ! संघ मेरी सुने, यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाले विहारको कल्प्यभूमि होनेका ठहराव करे—यह सूचना है।

ख. अनुश्रावण—"भन्ते ! संघ मेरी सुने, संघ इस नाम वाले विहारको कल्प्यभूमि होने का ठहराव करता है। जिस आयुष्मान्को इस नाम वाले विहारके कल्प्यभूमि होनेका ठहराव स्वीकार है वह चुप रहे, जिसको नहीं पसंद है वह बोले ०। संघको इस नाम वाले विहारका कल्प्यभूमि होना स्वीकार है।

ग. धारणा—"संघको पसंद है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ।"

(३) कल्प्य-भूमिमें भोजन नहीं पकाना

उस समय उसी ठहरावकी हुई कल्प्यभूमिमें यवागू पकाते थे, भात पकाते थे, सूप तैयार करते थे, मांस कूटते थे, काठ फाळते थे। रातके भिनसारको उठकर भगवान्ने (उस) ऊँचे शब्द, महाशब्द, कौवोंके रवके शब्दोंको सुना। सुनकर आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

"आनन्द ! क्या है यह ऊँचा शब्द, महाशब्द ०?"

"भन्ते ! इस समय लोग उसी ठहराव की हुई कल्प्यभूमिमें यवागू पका रहे हैं। उसीका भगवान् यह ऊँचा शब्द ० है।"

तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! ठहरावकी गई कल्प्यभूमिमें भोजन नहीं बनाना चाहिये। जो भोजन करे उसे दुक्कट का दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ तीन कल्प्य-भूमियों की—खंभोंपर उठाई, गाय बैठनेकी, गृहस्थोंकी।" 113

(४) चार प्रकारकी कल्प्य भूमियाँ

उस समय आयुष्यमान् यशोज बीमार थे। उनके लिये दवाइयाँ लाई गई थीं। उन्हें भिक्षु बाहर ही रखते थे और चूहे आदि भी उन्हें खा डालते थे, चोर भी चुरा ले जाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ ठहराव की हुई कल्प्यभूमिके उपयोगकी। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ चार प्रकारकी कल्प्यभूमियोंकी—खंभोंपर उठाई, गाय बैठनेकी, गृहस्थोंकी और ठहराव-की गई।" 114

सिंह भाणवार समाप्त ॥४॥

§८–गोरस और फल-रसका विधान

(१) मेंडक श्रेष्ठी और उसके परिवारकी दिव्यविभूतियाँ

१—उस समय भद्दिय (=भद्रिका) नगरमें मेंडक (नामक) गृहपति (=वैश्य) रहता

---

[1] सामान रखनेका स्थान, भंडार।

था। उसका ऐसा दिव्यबल था—सिरसे नहाकर अनाजके घरको सम्मार्जित करवा (जब वह) द्वार पर बैठता था तो आकाशसे अनाजकी धारा गिरकर अनाजके घर (=धान्यागार)को भर देती थी। और (उसकी) भार्याका यह दिव्यबल था कि एक ही आ ढ़ क[1] भर (चावलकी) हाँळी पका और एक बर्तन भर सूप (=दाल) पका दास, काम करनेवाले (सभी) पुरुषोंको भोजन परस देती थी और जब तक वह न उठती तब तक वह ख़तम नहीं होता था। (उसके) पुत्रका यह दिव्यबल था कि एक ही हज़ार (मुद्रा)की थैलीको लेकर दास और नौकर (सभी) पुरुषोंके छ मासके वेतनको देता था और वह जब तक उसके हाथमें रहती ख़तम न होती थी। (उसकी) पतोहूका यह दिव्यबल था कि एक ही चार द्रो ण[1] भरके एक टोकरेको लेकर दास और नौकर(सभी)पुरुषोंके छ मासके भोजनको दे देती थी और जब तक वह न उठती तब तक वह ख़तम न होता। (उसके) दासका इस प्रकारका दिव्यबल था कि एक हलसे जोतते वक़्त सात हराइयाँ (सीताएँ) उत्पन्न होती थीं।

(२) बिम्बिसार द्वारा परीक्षा

मगधराज सेनिय बि म्बि सा र ने सुना कि हमारे राज्यके भ द्दि य नगरमें मेंड क गृहपति रहता है। उसका ऐसा दिव्यबल है ० सात हराइयाँ उत्पन्न होती हैं। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसारने एक स र्वा र्थ क म हा मा त्य (प्राइवेट सेक्रेटरी)को संबोधित किया—

"भणे! हमारे राजके भ द्दि य नगरमें मेंडक गृहपति रहता है ०। जाओ भणे! पता लगाओ तो तुम्हारा देखा मेरा अपने देखा जैसा है।"

"अच्छा देव!"—(कह) वह महामात्य मगधराज सेनिय बिम्बिसारको उत्तर दे चतुरंगिनी सेनाके साथ जिधर भद्दिया नगर है उधरको चला। क्रमशः जहाँ भ द्दि या थी और जहाँ मेंडक गृहपति था वहाँ पहुँचा। पहुँचकर मेंडक गृहपतिसे यह बोला—

"गृहपति! मुझे राजाने आज्ञा दी है कि 'भणे! हमारे राज्यके भ द्दि य नगरमें मेंड क गृहपति रहता है ० तुम्हारा देखा मेरा अपने देखा जैसा है'। गृहपति तुम्हारे दिव्यबलको देखना चाहता हूँ।"

तब मेंडक गृहपति सिरसे नहाकर अनाजके घरको सम्मार्जित करवा द्वारपर बैठा तो आकाशसे अनाजकी धाराने गिरकर अनाजके घरको भर दिया।

"गृहपति! तेरे दिव्यबलको देख लिया। तेरी भार्याके दिव्यबलको देखना चाहता हूँ।"

तब मेंडक गृहपतिने भार्याको आज्ञा दी—

"तो तू इस चतुरंगिनी सेनाको भोजन परोस।"

तब मेंड क गृहपतिकी भार्याने एकही आढ़क भर (चावलकी) हाँळी और एक बर्तन भर सूप (दाल) पका, चतुरंगिनी सेनाको भोजन परस दिया और जब तक वह न उठी तब तक वह ख़तम न हुआ।

"गृहपति तेरी भार्याके दिव्यबलको देख लिया, (अब) तेरे पुत्रके दिव्यबलको देखना चाहता हूँ।"

तब मेंडक गृहपतिने पुत्रको आज्ञा दी—

"तो तू चतुरंगिनी सेनाको छ मासका वेतन दे।"

तब मेंडक गृहपतिके पुत्रने एक ही हज़ारके तोळेको लेकर चतुरंगिनी सेनाको छ मासका वेतन दे दिया और वह जब तक उसके हाथमें रहा ख़तम न हुआ।

---

[1] ४ कुडव=१ प्रस्थ, ४ प्रस्थ=१ आढक, ४ आढक=१ द्रोण, ४ द्रोण=१ माणी, ४ माणी=१ खारी (—अभिधानप्पदीपिका)।

"गृहपति ! तेरे पुत्रका बल देख लिया। (अब) तेरी पतोहूके दिव्यबलको देखना चाहता हूँ।"

तब मेंडक गृहपतिने पतोहूको आज्ञा दी।—

"तो तू (इस) चतुरंगिनी सेनाको छ मासका भोजन (=रसद) दे।"

तब मेंडक गृहपतिकी पतोहूने एक ही चार द्रोणके टोकरेको लेकर चतुरंगिनी सेनाको छ मासका भोजन दे दिया और जब तक न उठी तब तक वह खतम न हुआ।

"गृहपति तेरी पतोहूका दिव्यबल देख लिया। अब तेरे दासके दिव्यबलको देखना चाहता हूँ।"

"स्वामिन् ! मेरे दासके दिव्यबलको खेतमें देखना चाहिये।"

"गृहपति रहने दे ! देख लिया तेरे दासके दिव्यबलको भी।"—(कह) चतुरंगिनी सेनाके साथ फिर राजगृहको लौट गया और जहाँ मगधराज सेनिय बिम्बिसार था वहाँ पहुँचा। पहुँचकर मगध-राज सेनिय बिम्बिसारसे सारी बात कह दी।

१०—भद्दिया

(३) पाँच गो-रसोंका विधान

तब भगवान् वै शा ली में इच्छानुसार विहारकर साढ़े बारहसौ भिक्षुओंके महाभिक्षुसंघके साथ, जिधर भ द्दि या[1] थी, उधर चारिकाके लिये चल दिये। क्रमशः चारिका करते जहाँ भद्दिया थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् भद्दिया (=भद्रिका)में जा ति या (=जातिका)-व न में विहार करते थे। मेंडक गृहपतिने सुना कि—'शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम भद्दियामें आए हैं, ...जातिया वनमें विहार करते हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा कल्याण (=मंगल) कीर्ति-शब्द फैला हुआ है—'वह भगवान् अर्हत्, सम्यक्-संबुद्ध, विद्या-आचरण-संयुक्त, सुगत, लोक-विद्, अनुत्तर (=सर्वश्रेष्ठ) पुरुषोंके दम्य-सारथी (=चाबुक-सवार), देव-मनुष्योंके उपदेशक (=शास्ता), बुद्ध भगवान् हैं। वह देव-मार-ब्रह्मा सहित इस लोकको; श्रमण ब्राह्मणों सहित, देव-मनुष्यों सहित-(इस) प्रजा (=जनता)को, स्वयं (परम-तत्त्वको) जानकर साक्षात्कार कर जतलाते हैं। वह आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण, अवसान(अन्तमें)-कल्याण, अर्थ-सहित=व्यंजनसहित, धर्मको उपदेशते हैं; और केवल, परिपूर्ण, परिशुद्ध, ब्रह्मचर्यका प्रकाश करते हैं। इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन उत्तम होता है।'

तब मेंडक गृहपति भद्र (=उत्तम) भद्र यानोंको जुळवाकर, भद्र यानपर आरूढ़ हो, भद्र भद्र यानोंके साथ, भगवान्‌के दर्शनके लिये भद्रिका (=भद्दिया)सें निकला। बहुतसे तीर्थिकों (=पंथाइयों)ने दूरसे ही मेंडक-गृहपतिको आते हुए देखा। देखकर मेंडक-गृहपतिसे कहा—

"गृहपति ! तू कहाँ जाता है ?"

"भन्ते ! मैं श्रमण गौतमके दर्शनके लिये जाता हूँ।"

"क्यों गृहपति ! तू क्रियावादी होकर अ-क्रियावादी श्रमण गौतमके दर्शनको जाता है ? गृह-पति ! श्रमण गौतम अ-क्रियावादी है, अ-क्रियाके लिये धर्म-शिष्योंको उपदेश करता है, उसी (रास्ते)से श्रावकों को भी ले जाता है।"

तब मेंडक गृहपतिको हुआ—

"निःसंशय वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध होंगे, जिसलिये कि यह तीर्थिक निंदा करते हैं।"

(और) जितना रास्ता यानका था, उतना यानसे जाकर (फिर) यानसे उतर, पैदल ही जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मेंडक

---

[1] मुंगेर (बिहार)।

श्रेष्ठीको भगवान्‌ने आनुपूर्विककथा[1] कही ०।० मेंडक गृहपतिको उसी आसनपर विमल विरज धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—'जो कुछ समुदय-धर्म है, वह निरोध-धर्म है।०। तव दृष्टधर्म० मेंडक गृहपतिने भगवान्‌से कहा—"आश्चर्य! भन्ते!! आश्चर्य! भन्ते!! जैसे कि भन्ते! ०[2] मैं भगवान्‌की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। आजसे भगवान् मुझे सांजलि शरणागत उपासक जानें। भन्ते! भिक्षु-संघ-सहित भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

मेंडक गृहपति भगवान्‌की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादनकर प्रद-क्षिणाकर चला गया।

तव मेंडक गृहपतिने उस रातके बीतनेपर उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा, भगवान्‌को काल सूचित कराया०। भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, जहाँ मेंडक श्रेष्ठीका घर था, वहाँ गये। जाकर भिक्षुसंघ-सहित बिछे आसनपर बैठे। तब मेंडक गृहपतिकी भार्या, पुत्र, पुत्र-बधु (=सुणिसा) और दास जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये; जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। उनको भग-वान्‌ने आनुपूर्विक[1] कथा कही०। उनको उसी आसनपर विमल विरज धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ०। तब दृष्ट-धर्म० उन्होंने भगवान्‌को कहा—

"आश्चर्य! भन्ते!! आश्चर्य! भन्ते!! ० हम भन्ते! भगवान्‌की शरण जाते हैं, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। आजसे हमें भन्ते! ० उपासक जानें!"

तब मेंडक गृहपतिने अपने हाथसे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको उत्तम खाद्य-भोज्यसे संतर्पितकर, पूर्णकर, भगवान्‌के भोजनकर, पात्रसे हाथ हटा लेनेपर० एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मेंडक गृह-पतिने भगवान्‌से कहा—

"जब तक भन्ते! भगवान् भद्दियामें विहार करते हैं, तब तक मैं बुद्ध-सहित भिक्षु-संघकी ध्रुव-भक्त (=सर्वदाके भोजन)से (सेवा करूँगा)।"

तब भगवान् मेंडक गृहपतिको धार्मिक कथा...(कह)...आसनसे उठकर चल दिये।

तब भ द्दि या में इच्छानुसार विहारकर, मेंडक गृहपतिको विना पूछेही, साढ़े बारह सौके महान् भिक्षु-संघके साथ, भगवान् जहाँ अं गु त्त रा प[3] था, वहाँ चारिकाके लिये चल दिये। मेंडक गृहपतिने सुना, कि भगवान्० अंगुत्तरापको चारिकाके लिये चले गये। तब मेंडक गृहपतिने दासों और कमकरोंको आज्ञा दी—

"तो भणे! बहुतसा लोन, तेल, मधु, तंडुल और खाद्य गाळियोंपर लादकर आओ। साढ़े बारह सौ ग्वाले भी, साढ़े बारह सौ धेनु (=दूध देनेवाली) गायोंको लेकर आवें। जहाँ हम भगवान्‌को देखेंगे, वहां गर्मधारवाले दूधके साथ भोजन करायेंगे।"

तब मेंडक गृहपतिने रास्तेमें एक जंगल (=कांतार)में भगवान्‌को पाया। जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळे हुए, मेंडक श्रेष्ठीने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते! भिक्षु-संघ-सहित भगवान् कलका मेरा भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

[1] देखो पृष्ठ ८४। [2] देखो पृष्ठ ८५।

[3] मुंगेर और भागलपुर जिलोंका गंगाके उत्तरवाला भाग।

तब मेंडक श्रेष्ठी भगवान्‌की स्वीकृतिको जान, भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया।

मेंडक गृहपतिने उस रातके बीत जानेपर, उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा, भगवान्‌को काल सूचित कराया०। तब भगवान् पूर्वाह्ण समय, पहिनकर पात्रचीवर ले, जहाँ मेंडक गृहपतिका परोसना था, वहाँ गये। जाकर भिक्षु-संघ-सहित बिछे आसनपर बैठे। तब मेंडक गृहपतिने साढ़े बारह सौ गोपालोंको आज्ञा दी—

"तो भणे! एक एक गाय ले, एक एक भिक्षुके पास खळे हो जाओ, गर्मधारवाले दूधसे भोजन करायेंगे।" तब मेंडक गृहपतिने अपने हाथसे बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको उत्तम खाद्य-भोज्यसे संतर्पित किया, पूर्ण किया। गर्मधारके दूधसे आनाकानी करते, भिक्षु (उसे) ग्रहण न करते थे।

(तब भगवान्‌ने कहा)—"ग्रहण करो, परिभोग करो, भिक्षुओ!"

मेंडक गृहपति बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको उत्तम खाद्य-भोज्य तथा धार-उष्ण दूधसे, अपने हाथ से संतर्पितकर पूर्णकर० एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मेंडक गृहपतिने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते! जल-रहित, खाद्य-रहित, कांतार (=वीरान) मार्ग भी हैं; बिना पाथेयके (उनसे) जाना सुकर नहीं। अच्छा हो, भन्ते! भगवान् पाथेयकी अनुज्ञा दें।"

तब भगवान् मेंडक श्रेष्ठीको धर्म-उपदेश (कर)...आसनसे उठकर चल दिये। भगवान्‌ने इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह, भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पाँच गोरस—दूध, दही, तक्र (=छाछ), नवनीत (=मक्खन) और घी (=सर्पिष्) की।" 115

(४) पाथेयका विधान

"भिक्षुओ! (कोई कोई) जल-रहित, खाद्य-रहित, कांतार-मार्ग हैं; (जिनसे) बिना पाथेयके जाना सुकर नहीं। अनुज्ञा देता हूँ, भिक्षुओ! तंडुलार्थी (=तंडुल चाहनेवाला) तंडुलका, मूँग-चाहनेवाला मूँगका, उळद चाहनेवाला उड़दका, लोन चाहनेवाला लोनका, गुळ चाहनेवाला गुळका, तेल चाहनेवाला तेलका, घी चाहनेवाला घीका पाथेय ढूँढे।" 116

(५) सोने चाँदीका निषेध

"भिक्षुओ! (कोई कोई) श्रद्धालु और प्रसन्न मनुष्य होते हैं। वह क प्पि य का र क (=भिक्षुका गृहस्थ अनुचर)के हाथमें हिरण्य (=सोनेका सिक्का) देते हैं—'इससे आर्यको जो विहित है, वह ले देना।'

"भिक्षुओ! उससे जो विहित हो, उसे उपभोग करनेकी अनुज्ञा देता हूँ। किन्तु, भिक्षुओ! जा त रू प (=सोना)—रजत (=चाँदी)का उपभोग करना या संग्रह करना, मैं किसी भी हालतमें नहीं कहता।" 117

१२—आपण

क्रमशः चारिका करते हुए भगवान् जहाँ आ प ण था, वहाँ पहुँचे।

(६) आठ पानों और सभी फल-रसोंकी विकालमें भी अनुमति

केणिय जटिलने सुना—शाक्यकुलसे प्रव्रजित, शाक्यपुत्र श्रमण गौतम आपणमें आये हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगलकीर्ति शब्द फैला हुआ है—[1] इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन उत्तम है।

---

[1] देखो पृष्ठ ९७।

तब के णि य जटिलको हुआ—मैं श्रमण गौतमके लिए क्या लिवा चलूँ। फिर केणिय जटिलको हुआ—'जो कि वह ब्राह्मणोंके पूर्वके ऋषि, मंत्रोंको रचनेवाले (=कर्त्ता), मंत्रोंका प्रवचन (=वाचन) करनेवाले थे,—जिनके पुराने मंत्र-पदको, गीतको, कथितको, समीहितको, आजकल ब्राह्मण अनुगान करते हैं, अनु-भापण करते हैं; भापितको ही अनु-भापण करते हैं, वाँचेको ही अनु-वाचन करते हैं,—जैसेकि—अट्टक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, यमदग्नि, अंगिरा, भारद्वाज, वसिष्ठ, कश्यप, भृगु। (वह) रातको (भोजनसे) उपरत थे, विकाल—(मध्याह्नोत्तर) भोजनसे विरत थे। वह इस प्रकारके पान (पीनेकी चीज़) पीते थे । श्रमण गौतम भी रातको उपरत=विकाल-भोजनसे विरत हैं। श्रमण गौतम भी इस प्रकारके पान पी सकते हैं।' (यह सोच) वहुतसा पान तैयार करा, वँहगी (=काज)से उठवाकर, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्के साथ संमोदन किया...(और) एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळे हुए केणिय जटिलने भगवान्से कहा—

"भगवान् (=आप) ! गौतम यह मेरा पान ग्रहण करें।"

"केणिय ! तो भिक्षुओंको दो।"

भिक्षु आगा-पीछा करते ग्रहण नही करते थे।

"भिक्षुओ ! ग्रहण करो और खाओ।"

तब केणिय जटिल बुद्ध-सहित संघको अपने हाथसे वहुतसे पान द्वारा संतर्पित=संप्रवारित कर भगवान्के हाथ धो पात्रसे हाथ हटा लेनेपर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे केणिय जटिलको भगवान् ने धार्मिक कथा द्वारा संदर्शित=समादपित=समुत्तेजित=संप्रहर्पित किया।

भगवान्के धर्मोपदेश द्वारा० संप्रहर्पित (=हर्पित) हो केणिय जटिलने भगवान्से यह कहा—

"आप गौतम ! भिक्षुसंघ सहित कलका भोजन स्वीकार करें।" ऐसा कहनेपर भगवान्ने केणिय जटिलसे यह कहा—"केणिय ! भिक्षुसंघ बळा है। साढ़े बारह सौ भिक्षु हैं, और तुम ब्राह्मणोंमें प्रसन्न (=श्रद्धालु) हो।" दूसरी बार भी केणिय जटिलने भगवान्से यह कहा—"क्या हुआ, भो गौतम ! जो भिक्षुसंघ बळा है, साढ़े बारह सौ भिक्षु हैं, और मैं ब्राह्मणोंमें प्रसन्न हूँ ? आप गौतम भिक्षुसंघ सहित कलका मेरा भोजन स्वीकार करें।"

दूसरी बार भी भगवान्ने०। तीसरी बार भी०।०।

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया। तब केणिय जटिल भगवान्की स्वीकृति जान आसनसे उठ कर चला गया।

तब भगवान्ने इसी संबंधमें, इसी प्रकरणमें, धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, आठ पानों (=पेय वस्तुओं)की—आम्रपान, जम्बूपान, चोच-पान, मोच(=केला)-पान, मधु-पान, अंगूरका पान, सालूक (=कोईकी जळ)-पान, और फारुसक (=फालसा)-पान। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, अनाजके फलके रसको छोळ, सभी फलोंके रसकी;० एक डाकके रसको छोळ सभी पत्तोंके रसकी;० एक महुएके फूलके रसको छोळ, सभी फूलोंके रसकी। अनुज्ञा देता हूँ, ऊखके रसकी।" 118

तब केणिय जटिलने उस रातके बीतनेपर अपने आश्रममें उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा, भगवान्को कालकी सूचना दिलवाई—"भो गौतम ! (भोजनका) काल है, भोजन तय्यार है।"

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर, पात्र-चीवर ले जहाँ केणिय जटिलका आश्रम था, वहाँ गये। जाकर भिक्षु-संघके साथ बिछे आसनपर बैठे। तब केणिय जटिलने बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा संतर्पित=संप्रवारित किया। भगवान्के खाकर हाथ उठा लेनेपर

एक ओर वैठ गया। एक ओर वैठे केणिय जटिलके दानका भगवान्‌ने इन गाथाओंद्वारा (भोजन-दानका) अनुमोदन किया—

"यज्ञोंमें मुख है अग्निहोत्र, छन्दोंमें मुख (=मुख्य) है गा वि त्री। मनुष्योंमें मुख है राजा, नदियोंमें मुख है सागर॥
नक्षत्रोंमें मुख है तारा, तपन करनेवालोंमें मुख है सूर्य।
पुण्य चाहनेवाले यज्ञकर्त्ताओंके लिये संघ मुख है॥"

तब भगवान् केणिय जटिलके दानका इन गाथाओं द्वारा अनुमोदनकर, आसनसे उठकर चले गये।

१२—कुसीनारा

(७) रोजमल्लका सत्कार

तब आ प ण में इच्छानुसार विहारकर भगवान् साढ़े वारह सौ भिक्षुओंके भिक्षु-संघ-सहित जहाँ कु सी ना रा[1] थी। उधर चारिकाके लिये चल दिये। कुसीनाराके मल्लोंने सुना—साढ़े वारह सौ भिक्षुओंके महासंघके साथ भगवान् कुसीनारा आ रहे हैं। उन्होंने नियम किया—'जो भगवान्‌की अगवानीको नहीं जाये, उसको पाँच सौ दंड।' उस समय रो ज नामक मल्ल आयुष्मान् आनन्दका मित्र था। भगवान् क्रमशः चारिका करते जहाँ कुसीनारा थी, वहाँ पहुँचे।...कुसीनाराके मल्लोंने भगवान्‌की अगवानी की। रोजमल्ल भी भगवान्‌की अगवानीकर, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्दको अभिवादनकर एक ओर खळा हो गया,। एक ओर खळे हुए रोजमल्लसे आयुष्मान् आनन्दने कहा—

"आवुस रोज! यह तेरा (कृत्य) वहुत सुन्दर (=उदार) है, जो तूने भगवान्‌की अगवानी की।"

"भन्ते! आनन्द! मैंने बुद्ध, धर्म, संघका सन्मान नहीं किया; बल्कि भन्ते! आनन्द! ज्ञातिके दण्डके भयसे ही मैंने भगवान्‌की अगवानी की।"

तब आयुष्मान् आनन्द अ-सन्तुष्ट हुए—"कैसे रोजमल्ल ऐसा कहता है?"

आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर वैठ गये। एक ओर वैठे हुए, आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते! रोजमल्ल विभव-सम्पन्न अभिज्ञात=प्रसिद्ध मनुष्य है। इस प्रकारके ज्ञात मनुष्योंकी इस धर्ममें श्रद्धा होनी अच्छी है। अच्छा हो, भन्ते! भगवान् वैसा करें, जिसमें रोजमल्ल इस (बुद्ध) धर्ममें प्रसन्न होवे।" तब भगवान् रोजमल्लके प्रति मित्रता-पूर्ण (=मैत्र) चित्त उत्पन्न कर, आसनसे उठ विहारमें प्रविष्ट हुए। रोजमल्ल भगवान्‌के मैत्र-चित्तके स्पर्शसे, छोटे वछळेवाली गायकी भाँति, एक विहारसे दूसरे विहार, एक परिवेणसे दूसरे परिवेणमें जाकर भिक्षुओंसे पूछता था—

"भन्ते! इस वक्त वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध कहाँ विहार कर रहे हैं; हम उन भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्धका दर्शन करना चाहते हैं?"

"आवुस, रोज! यह वन्द दर्वाजेवाला विहार है। निःशब्द हो धीरे धीरे वहाँ जाकर आलिन्द (=ड्योढ़ी)में प्रवेशकर खाँसकर जंजीरको खटखटाओ, भगवान् तुम्हारे लिये द्वार खोल देंगे।"

---

[1] कसया (जि० गोरखपुर)।

तब रोज मल्ल ने जहाँ वह बन्द-द्वार विहार था, वहाँ निःशब्द हो धीरे धीरे जाकर, आलिन्द-में घुसकर, खाँसकर जंजीर खटखटाई। भगवान्‌ने द्वार खोल दिया। तब रोजमल्ल विहारमें प्रवेशकर भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये रोजमल्लको भगवान्‌ने आनुपूर्वी कथा०[1]—० रोजमल्लको उसी आसनपर विरज विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—'जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है, वह सब विनाश होनेवाला है।' तब रोज मल्लने दृष्टधर्म हो० भगवान् से कहा—

"अच्छा हो, भन्ते! अय्या (=आर्य-भिक्षु लोग) मेरा ही चीवर, पिंड-पात (=भिक्षा), शयनासन (=आसन), ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य-परिष्कार (=दवा-पथ्य) ग्रहण करें, औरोंका नहीं।"

"रोज तेरी तरह जिन्होंने अपूर्णज्ञान और अपूर्ण-दर्शनसे धर्मको देखा है, उनको ऐसा ही होता है—'क्या ही अच्छा हो, अय्या मेरा ही० ग्रहण करें, औरोंका नहीं। तो रोज! तेरा भी ग्रहण करेंगे, और दूसरोंका भी।"

उस समय कुसीनारामें उत्तम भोजोंका ताँता लग गया था। तब बारी न मिलनेसे रोज मल्लको यह हुआ—'क्यों न मैं परोसनेको देखूँ, जो वहाँ न हो उसे तैयार कराऊँ।' तब परोसनेको देखते समय रोजमल्लने दो चीजोंको नहीं देखा—डाक (=शाक) और खाद्य पीणको। तब रोजमल्ल जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनंदसे यह बोला—

"भन्ते! बारी न मिलनेसे मुझे यह हुआ—०। तब परोसनेको देखते समय मैंने दो चीजोंको नहीं देखा—०। यदि, भन्ते! आनन्द! मैं डाक और खाद्य पीणको तैयार कराऊँ, तो क्या भगवान् उसे स्वीकार करेंगे?"

"तो रोज! भगवान्‌से यह पूछूँगा।"

तब आयुष्मान् आनंदने भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो आनन्द! (रोज) तैयार करावे।"

"तो रोज! तैयार कराओ।"

तब रोजमल्ल उस रातके बीत जानेपर, बहुत परिमाणमें डाक और खाद्य पीण तैयार करा, भगवान्‌के पास ले गया।—

"भन्ते! भगवान् डाक और खाद्य पीणको स्वीकार करें।"

"तो रोज! भिक्षुओंको दे।"

भिक्षु लेनेमें हिचकिचा रहे थे, और न लेते थे।

"भिक्षुओ! ग्रहण करो, और खाओ।"

तब रोजमल्ल बुद्ध (-सहित) भिक्षु-संघको अपने हाथसे बहुतसे डाक और खाद्य पीण द्वारा संतर्पित=संप्रवारितकर, भगवान्‌के हाथ धो (पात्रसे) हाथ खींच लेनेपर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे रोजमल्लको भगवान् धार्मिक कथा द्वारा...समुत्तेजित=संप्रहर्षितकर आसनसे उठ चल दिये।

(८) डाक और पीणकी अनुमति

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें, इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया।—"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, सभी डाकों और सभी खाद्य पीण (के खाने)की।" 119

(९) भूत पूर्व हजाम भिक्षुको हजामतका सामान लेना निषिद्ध

तब भगवान् कुसीनारामें इच्छानुसार विहारकर०, जहाँ आतुमा थी, वहाँ चारिकाके लिये

[1] देखो पृष्ठ ८४।

चल दिये। उस समय आतुमामें बुढ़ापेमें प्रव्रजित हुआ, भूत-पूर्व हजाम (=नहापित) एक भिक्षु निवास करता था। उसके दो पुत्र थे, (जो) अपनी पंडिताई और कर्ममें सुन्दर, प्रतिभाशाली, दक्ष, शिल्पमें परिशुद्ध थे। उस वृद्ध-प्रव्रजित (= बुढ़ापेमें प्रव्रजित)ने सुना कि, भगवान्० आतुमा आ रहे हैं। तब उस वृद्ध-प्रव्रजितने दोनों पुत्रोंसे कहा—

"तातो! भगवान्० आतुमामें आ रहे हैं। तातो! हजामतका सामान लेकर नाली, झोलीके साथ घर घरमें फेरा लगाओ, (और) लोन, तेल, तंडुल और खाद्य (पदार्थ) संग्रह करो। आनेपर भगवान्‌को यवागू (= खिचळी) दान देंगे।"

"अच्छा तात!" वृद्ध-प्रव्रजितको कह, पुत्र हजामतका सामान ले० लोन, तेल, तंडुल, खाद्य संग्रह करते घूमने लगे। उन लळकोंको सुन्दर, प्रतिभा-संपन्न देखकर, जिनको (क्षौर) न कराना था, वह भी कराते थे, और अधिक देते थे। तब उन लळकोंने बहुत सा लोन भी, तेल भी, तंडुल भी, खाद्य भी संग्रह किया। भगवान् क्रमशः चारिका करते, जहाँ आतुमा थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ आ तु मा में भगवान् भु सा गा र में विहार करते थे। तब वह वृद्ध-प्रव्रजित उस रातके बीत जानेपर, बहुत सा यवागू तैयार करा, भगवान्‌के पास ले गया—"भन्ते! भगवान् मेरी खिचळी स्वीकार करें"।...। भगवान्‌ने उस वृद्ध-प्रव्रजितसे पूछा—"कहाँसे भिक्षु! यह खिचळी है?"

उस वृद्ध प्रव्रजितने भगवान्‌से (सब) बात कह दी। भगवान्‌ने धिक्कारा।

"मोघ-पुरुष (=नालायक)! (यह तेरा कहना) अनुचित=अन्-अनुलोम=अ-प्रतिरूप, श्रमण-कर्तव्यके विरुद्ध, अविहित अ-कप्पिय (= अ-करणीय) है। कैसे तू मोघ-पुरुष! अविहित (चीज)के (जमा करनेके लिये) कहेगा?..."

...भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ! भिक्षुको निषिद्ध (=अ-कप्पिय)के लिये आज्ञा (=समादपन) नहीं देनी चाहिये। जो आज्ञा दे, उसको 'दुष्कृत (=दुक्कट्ट)की आपत्ति। और भिक्षुओ! भूत-पूर्व हजामको हजामतका सामान न ग्रहण करना चाहिये। जो ग्रहण करे, उसे दुक्कट्टकी आपत्ति।" 120

१४—श्रावस्ती

तब भगवान् आ तु मा में इच्छानुसार विहारकर, जिधर श्रावस्ती थी, उधर चारिकाके लिये चल दिये। क्रमशः चारिका करते, जहाँ श्रा व स्ती थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ श्रावस्तीमें भगवान् अनाथ-पिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय श्रावस्तीमें बहुत सा खाद्य फल था। भिक्षुओंने... भगवान्‌से यह बात कही। "अनुमति देता हूँ, सब खाद्य फलोंके लिये।" 121

(१०) सांघिक खेत बीज आदिमें नियम

उस समय संघके बीजको व्यक्तिके (=पौद्गलिक) खेतमें रोपते थे, पौद्गलिक बीजको संघके खेतमें रोपते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"संघके बीजको यदि पौद्गलिक खेतमें बोया जाय, तो (दसवाँ) भाग[1] देकर भोग करना चाहिये। पौद्गलिक बीजको यदि संघके खेतमें बोया जाये, तो भाग देकर परिभोग करना चाहिये।" 122

(११) विधान या निषेध न कियेके बारेमें निश्चय

........"जो मैंने भिक्षुओ! 'यह नहीं विहित है' (कहकर) निषिद्ध नहीं किया, यदि वह

---

[1] "दसवाँ भाग देना यह जम्बूद्वीप (=भारत)में पुराना रवाज (=पोराण-चारित्तं) है। इसलिये दस भागमें एक भाग भूमिके मालिकोंको देना चाहिये।" (—अट्ठकथा)

निषिद्ध (=अ-कप्पिय=हराम)के अनुलोम हो, और विहित (=कप्पिय=हलाल)का विरोधी, (तो) वह तुम्हें हलाल नहीं है। भिक्षुओ! जिसे मैंने 'यह विहित नहीं है' (कह कर) निषिद्ध नहीं किया; यदि वह विहितके अनुलोम है, और अविहितका विरोधी, (तो) वह तुम्हें विहित है। भिक्षुओ! जिसे मैंने 'यह कप्पिय है' (कहकर) अनुज्ञा नहीं दी, वह यदि अविहितका अ-विरोधी है, और विहितका विरोधी, तो वह तुम्हें विहित नहीं है। भिक्षुओ! जिसे मैंने 'यह विहित है' (कहकर) अनुज्ञा नहीं दी, वह यदि विहितके अनुलोम है, और अविहितका विरोधी, तो वह तुम्हें विहित है।" 123

(१२) किस कालका लिया भोजन किस काल तक विहित

तब भिक्षुओंको यह हुआ—'क्या उतने कालवालेसे याम भर कालवाला विहित है, या नहीं? उतने कालवालेसे सप्ताह भर कालवाला विहित है, या नहीं? उतने कालवालेसे जीवन भर वाला विहित है या नहीं? याम (=पहर) भर कालवालेसे सप्ताह भर कालवाला० ? यामभर कालवालेसे जीवन भर वाला० ? सप्ताह भर कालवालेसे जीवन भर वाला० ?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! उतने कालवालेसे, उसी दिन ग्रहण किया पूर्वाह्णमें विहित है, अपराह्णमें नहीं। भिक्षुओ! उतने कालवालेसे सप्ताह भर कालवाला उसी दिन ग्रहण किया पूर्वाह्णमें विहित है, अपराह्ण-में नहीं। भिक्षुओ! उतने कालवाले (=यावत्कालिक)से जीवन भर वाला उसी दिन ग्रहण किया होने पर पहर भर विहित है, पहर बीत जानेपर नहीं। भिक्षुओ! सप्ताह भर कालवालेसे जीवन भर वाला उसी दिन ग्रहण किया होनेपर सप्ताह भर विहित है, सप्ताह बीत जानेपर नहीं विहित है।" 124

भेसज्जक्खन्धक समाप्त ॥६॥

७—कठिन स्कंधक

१—कठिन चीवरके नियम । २—कठिन चीवरका उद्धार । ३—कठिन चीवरके अ-विघ्न ।

§१—कठिन चीवरके नियम

१—श्रावस्ती

(१) कठिन चीवरका विधान

१—उस समय भगवान् बुद्ध श्रा व स्ती में अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय पा ठे य्य क (पाठा[1]के रहनेवाले) तीस भिक्षु जो सभी अरण्यवासी, भिक्षान्नभोजी, फेंके चीथळोंके पहननेवाले, तीनही चीवर धारण करनेवाले थे, भगवान्‌के दर्शनके लिये श्रावस्ती जाते वक्त व र्षो प ना यि का (=असाढ़-पूर्णिमा)के नज़दीक होनेमे वर्षोपनायिकाको श्रावस्ती न पहुँच सके, और उन्होंने मार्गमें सा के त (=अयोध्या) में वर्षावास किया; और (श्रावस्ती जाने)की उत्कंठाके साथ वर्षावास किया—भगवान् यहाँसे पासहीमें छ योजनपर विहार करते हैं और हमें भगवान्‌का दर्शन नहीं होरहा है।' तब वह भिक्षु तीनमास बाद वर्षावास समाप्तकर प्र वा र णा के होचुकनेपर वर्षा बरसते पानीके जमाव और पानीके कीचळ होते समय ही भीगे चीवरोंसे जहाँ श्रावस्तीमें अ ना थ-पिं डि क का आराम जेतवन था और जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे।

बुद्ध भगवानोंका यह आचार है कि नवागन्तुक भिक्षुओंके साथ कुशल समाचार पूछें। तब भगवान्‌ने भिक्षुओंसे यह कहा—

"भिक्षुओ! अच्छा तो रहा? यापन करने योग्य तो रहा? एक मत हो प्रेमके साथ विवाद-रहितहो अच्छी तरह वर्षावास तो किया? भोजनका कष्ट तो नहीं हुआ?"

"भन्ते! हम पा ठे य्य क (पाठाके रहने वाले) तीस भिक्षु० भीगे चीवरोंसे रास्ता आये।"

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें, इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ वर्षावास कर चुके भिक्षुओंको क ठि न[2] पहिनने की।" 1

(२) कठिनवाले भिक्षुके लिये विधान

"कठिनके पहिन चुकनेपर भिक्षुओ! तुम्हें पाँच बातें विहित होंगी—(१) बिना आमंत्रणके

[1] कोसल देशके पश्चिम ओर एक राष्ट्र था (—अट्ठकथा)।

[2] वर्षावासकी समाप्तिपर सारे संघकी सम्मतिसे सम्मान प्रदर्शनके लिये किसी भिक्षुको जो चीवर दिया जाता है, उसे "कठिन" चीवर कहते हैं।

विचरना; (२) विना (तीनों चीवरोंको) लिये विचरण करना; (३) गणके साथ भोजन (करना), (४) इच्छानुसार चीवर (लेना); (५) और जो वहाँ चीवर मिलते वक्त होगा वह उसका होगा। कठिनके लिये एकत्रित होजानेपर भिक्षुओ ! यह पाँच बातें तुम्हें विहित होंगी। 2

और भिक्षुओ ! कठिनके लिये इस तरह सम्मंत्रण (=ठहराव) करना चाहिये; चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे——

क. ज्ञप्ति——'भन्ते ! संघ मेरी सुने। यह संघके लिये क ठि न (बनाने)का कपळा प्राप्त हुआ है। यदि संघ उचित समझे तो इस कठिनके कपळेको इस नामवाले भिक्षुको पहिननेके लिये दे'——यह सूचना है।

ख. अनुश्रावण——'(१)भन्ते ! संघ मेरी सुने। संघको यह क ठि न का कपळा मिला है। संघ इस कठिनके कपळेको अमुक नामवाले भिक्षुको पहननेके लिये दे रहा है। जिस आयुष्मान्‌को संघका इस क ठि न के कपळेको अमुक नामवाले भिक्षुको पहिननेके लिये देना पसंद हो वह चुप रहे, जिसको पसंद न हो वह बोले। (२) दूसरी बार भी०। (३) तीसरी बार भी०।

ग. धारणा 'संघने इस कठिनके कपळेको अमुक नामवाले भिक्षुको पहननेको दे दिया। संघको पसंद है इसलिये चुप है'——ऐसा मैं इसे समझताहूँ।

(३) कठिनका प्रसारण और न प्रसारण

"भिक्षुओ ! इस प्रकार क ठि न का प्रसारण होता है। कैसे भिक्षुओ ! क ठि न का प्रसारण नही होता ? उपछने मात्रसे नही क ठि न का आच्छादन होता। धोने मात्रसे नहीं०; चीवरके फैलाने मात्र से नहीं०, छेदन मात्रसे नहीं०, बंधन मात्रसे नहीं०, लपेटने मात्रसे नहीं० कं डू स (=कुंदी) करने मात्रसे नहीं०, हवाके रुखकी ओर करने मात्रसे नहीं०, परिभंड (=आळ) करने मात्रसे नहीं०, चौपेता करने मात्रसे नहीं०, कम्बलके मर्दन मात्रसे नहीं०, चिन्ह कर चुकनेसे ही नहीं०, (उसके संबंधकी)कथा करनेसे ही नहीं०, कुक्कू (=कुछ समयका) किये होनेपर ही नहीं०, जमा किये होनेपर नहीं०, छोळने लायक होनेपर नही, अ क ल्प्य (=अ-विहित) कियेपर नहीं०, संघाटीसे अलग होनेपर नहीं०, न उत्तरासंगसे अलग होनेपर०, न अन्तरवासकसे अलग होनेपर०, न पाँच या पाँच के अधिकसे अलग होनेपर, उसी दिन कटा होनेसे तथा मंडलिकायुक्त होनेसे०, न व्यक्तिका पहना होनेसे अलग०, ठीक तरहसे क ठि न पहना गया हो और यदि उसे सीमासे वाहर स्थित हो अनुमोदन करे तो इस प्रकार भी कठिनका आच्छादन नहीं होता। भिक्षुओ ! इस प्रकार कठिनका अ-प्रसारण होता है।

"भिक्षुओ ! किस प्रकार कठिनका प्रसारण होता है ? विना पहने क ठि न का प्रसारण होता है। विना पहने वस्त्रमें०, वस्त्रमें०, रास्तेके चीथळेमें०, दुकानपर पळे पुराने कपळेमें०, न लांछन कियेमें०, जिसके वारेमें वात न चलाई गई हो वैसेमें०, न कुक्कू (=कुछ समयका) कियेमें०, न एकत्रित कियेमें०, न छोळे हुएमें०, न क ल्प्य (=विहित) कियेमें०, संघाटीसे क ठि न आच्छादित होता है, उत्तरासंगसे०, अन्तरवासकसे०, पाँचो या पांचके अतिरिक्तसे उसी दिन कटे तथा मंडलिका युक्त कियेसे क ठि न आच्छादित होता है, व्यक्तिके आच्छादित करनेसे क ठि न आच्छादित होता है, यदि वह अच्छी तरहसे आच्छादित हो और उसे सीमामें स्थित हो अनुमोदन करे तो इस प्रकार भी कठिन आच्छादित होता है। भिक्षुओ ! इस प्रकार कठिन प्रसारित (=आस्थत) होता है।"

§२–कठिन चीवरका उद्धार (=उत्पत्ति)

(१) कठिनकी उत्पत्ति

"भिक्षुओ ! कैसे कठिन उत्पन्न होता है ? भिक्षुओ ! कठिन की उत्पत्तिमें यह आठ मातृका (=उत्पादिका) हैं, प्रक्रमणान्तिका, निष्ठानान्तिका, सन्निष्ठानान्तिका, नाशनान्तिका, स्रवनान्तिका, आसावच्छेदिका, सीमातिक्कन्तिका, उत्पत्तिके साथ।"

(२) सात आदाय

(१) भिक्षुओ ! कठिनके आस्थत (=प्रसारित) हो जानेपर बने चीवरको ले चल देता है फिर नहीं लौटता। ऐसे भिक्षुको प्रक्रमणान्तिक (=चला जाना अन्त है जिसका) नामक कठिनका उद्धार होता है। (२) भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर चीवरले चला जाता है किन्तु सीमाके वाहर जानेपर उसे ऐसा होता है 'यहीं इस चीवरको बनाऊँ फिर न लौटूँगा।' और वह उस चीवरको बनवाता है। ऐसे भिक्षुको निष्ठानान्तिक (=बनवा चुकना अन्त है जिसका) नामक कठिन-उद्धार होता है।' (३) भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर चीवरको ले चल देता है और सीमाके वाहर जानेपर उसको ऐसा होता है—'न इस चीवरको बनवाऊँगा न फिर लौटूँगा।' उस भिक्षुको सन्निष्ठानान्तिक (=जिसका समाप्त करना बाकी है, यह अन्त है जिसका) कठिन–उद्धार होता है। (४)० चीवरको लेकर चल देता है और सीमाके वाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न लौटूँ।' वह उस चीवरको बनवाता है और बनवाते वक्त उसका वह चीवर नष्ट हो जाता है। उस भिक्षुका नाशनान्तिक (=नाश हो जाना ही अन्त है जिसका) कठिन-उद्धार होता है। (५)० चीवरको लेकर चल देता है (यह सोचकर कि) लौटूँगा। सीमाके वाहर जा उस चीवरको बनवाता है। चीवर बन जानेपर वह सुनता है कि उस आवासमें कठिन उत्पन्न हुआ। उस भिक्षुको श्रवणान्तिक (=सुनना है अन्त जिसका) कठिन उद्धार होता है। (६) ० चीवरको लेकर —'फिर लौटूँगा' (सोच) चल देता है और सीमाके वाहर जाकर उस चीवरको बनवाता है। वह— चीवर बंन जानेपर 'फिर आऊँगा' 'फिर आऊँगा'—(सोचते) वाहर ही कठिनके उद्धारके समयको बिता देता है। उस भिक्षुको सीमातिक्कन्तिक (=सीमा अतिक्रमण कर दिया गया है जिसमें) कठिन-उद्धार होता है० (७) चीवरको लेकर—'फिर आऊँगा' (सोच) चल देता है और सीमाके वाहर उस चीवरको बनवाता है। वह—चीवर बन जानेपर 'फिर आऊँगा फिर आऊँगा' '(सोचते) कठिन उद्धारकी प्रतीक्षा करता है। उस भिक्षुका (दूसरे) भिक्षुओंके साथ कठिन उद्धार होता है।"

आदाय सप्तक समाप्त

(३) सात समादाय सप्तक

(१) भिक्षु ! कठिनके आस्थत हो जानेपर बने चीवरको ठीकसे ले चल देता है०[1]।

समादाय सप्तक समाप्त

(४) छ आदाय

"(१) भिक्षु ! कठिनके आस्थत हो जानेपर न बने चीवरको लेकर चल देता है। सीमाके वाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यहीं चीवर बनवाऊँ और फिर न लौटूँ।' और वह उस चीवरको

[1] ऊपरकी तरह यहाँ भी सातों पाठ हैं, सिर्फ ऊपरके 'ले चल देता है' की जगह 'ठीकसे लेकर चल देता है' कहना चाहिये।

वनवाये उस भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क नामक कठिन-उद्धार होता है ।०[1]

आदाय षट्क समाप्त

(५) छ समादाय

(१) भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर न बने चीवरहीको ठीकसे लेकर (=समादाय) चला जाता है। सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यहीं चीवर बनवाऊँ और फिर न लौटूँ' और वह उस चीवरको बनवाये। उस भिक्षुको निष्ठानान्तिक नामक कठिन-उद्धार होता है।०[2]।

समादाय षट्क समाप्त

(६) आदाय कठिन-उद्धार

१—"भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर चीवरको लेकर (=आदाय) चला जाता है और सीमासे बाहर जानेपर उसको ऐसा होता है—'इस चीवरको यहीं बनवाऊँ और फिर न लौटूँ।' वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको निष्ठानान्तिक कठिन-उद्धार होता है। भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरको लेकर चल देता है और सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'न इस चीवरको बनवाऊँ, न फिर आऊँ।' उस भिक्षुको स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है।० चीवरको लेकर चल देता है और सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न आऊँ' और वह उस चीवरको बनवाये। बनवाते वक्त ही उसका वह चीवर नष्ट हो जाय। उस भिक्षुको ना श ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है।

२—"भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर चीवरको लेकर (=आदाय)—फिर नहीं आऊँगा—(सोच) चल देता है। सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ।' और वह उस चीवरको बनवाता है, उस भिक्षुको निष्ठानान्तिक कठिन-उद्धार होता है।० चीवरको लेकर—'फिर न आऊँगा'—(सोच) चल देता है। सीमाके बाहर जानेपर उसको ऐसा होता है—'इस चीवरको यहीं बनवाऊँ।' उस भिक्षुको स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिन उद्धार होता है।० चीवरको लेकर—फिर न लौटूँगा—(सोच) चल देता है। सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ'—और वह उस चीवरको बनवाता है। बनवाते समय ही वह चीवर नष्ट हो जाता है। उस भिक्षुको ना श ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है।

३—"भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर चीवरको लेकर (=आदाय), विना अधिष्ठान किये चल देता है उसको न यह होता है कि फिर आऊँगा और न यही होता है कि फिर न आऊँगा। सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—०उस भिक्षुको निष्ठानान्तिक कठिन-उद्धार होता है।० और न यही होता है कि फिर आऊँगा और न यही होता है कि फिर न आऊँगा० स न्नि ष्ठा ना-न्ति क कठिन- उद्धार होता है।०और न यही होता है कि फिर आऊँगा,० और न यही होता है कि फिर न आऊँगा० नाशनान्तिक कठिन-उद्धार होता है।

४—"भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर—'फिर आऊँगा' (सोच) चीवरको लेकर चल देता है सीमासे बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न आऊँ'; उस चीवरको बनवाता है, उस भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क कठिन-उद्धार होता।० स न्नि ष्ठा ना न्ति क

[1] ऊपर आदाय सप्तकमे प्रक्रमणान्तिकको छोड़ तथा 'बने चीवर'के स्थानपर 'न बने चीवर'के पाठके साथ दुहराना चाहिये।

[2] आदाय षट्ककी तरह यहाँ भी पाठ है सिर्फ 'आदाय'की जगह 'समादाय' पाठ रखना चाहिये।

कठिन उद्धार होता है ।०ना श ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है । भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर 'फिर आऊँगा' (सोच) चीवरको लेकर चल देता है । सीमाके बाहर जानेपर वह चीवरको बन-वाता है । चीवरके बन जानेपर वह सुनता है—'उस आवासमें कठिन उत्पन्न हुआ है;' उस भिक्षुको श्र व णा न्ति क कठिन-उद्धार होता है । भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर 'फिर आऊँगा' (सोच) चीवरको लेकर चला जाता है और सीमाके बाहर जा चीवरको बनवाता है । चीवर बन जानेपर 'लौटूँ लौटूँ' (कह) बाहर ही कठिन-उद्धार (के समय)को बिता देता है । उस भिक्षुको सी मा ति क्क न्ति क कठिन-उद्धार होता है । भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर—'फिर आऊँगा' (सोच) चीवरको लेकर चल देता है, और सीमाके बाहर जा उस चीवरको बनवाता है । चीवर बन जानेपर 'लौटूँ लौटूँ' (कह) कठिन-उद्धारकी प्रतीक्षा करता है । उस भिक्षुको (दूसरे) भिक्षुओंके साथ कठिन-उद्धार होता है ।"

(७) समादाय कठिन-उद्धार

१—"भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर चीवरको ठीकसे लेकर (=समादाय) चला जाता है०[1] ।

२—"भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरको ठीकसे लेकर (=समादाय) चला जाता है०[2] ।

३—"भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरको ठीकसे लेकर (=समादाय) चला जाता है०[3] ।

४—"भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरको ठीकसे लेकर (=समादाय) चला जाता है०[4] ।

आदाय भाणवार समाप्त

(८) अनाशापूर्वक कठिनोद्धार

१—"भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरकी आशासे चल देता है और सीमासे बाहर जा उस चीवरकी आशाका सेवन करता है । आशा न होनेपर पाता है और आशा होनेपर नहीं पाता । उसको ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न लौटूँ ।' वह उस चीवरको बनवाता है । उस भिक्षुको नि ष्ठा नां ति क कठिन-उद्धार होता है । (२) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवर की आशासे चल देता है और सीमासे बाहर जा उस चीवरकी आशाका सेवन करता है । आशा न होनेपर पाता है, और आशा होनेपर नहीं पाता । उसको ऐसा होता है—'न इस चीवरको बनवाऊँ न फिर लौटूँ ।' उस भिक्षुको स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है । (३)० और आशा होनेपर नहीं पाता ।० ना श ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है । (४) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरकी आशासे चल देता है । सीमासे बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरकी आशाका सेवन करूँ और फिर न लौटूँ ।' वह उसी चीवरकी आशाका सेवन करता है (किन्तु) उसकी वह चीवराशा

---

[1] ऊपरके स्तंभ (६)१ जैसा ही पाठ है; सिर्फ़ 'आदाय'की जगह 'समादाय' है ।

[2] ऊपरके दूसरे स्तंभ (६)२ जैसा ही पाठ है; सिर्फ़ आदायका समादाय होजाता है ।

[3] ऊपरके तीसरे स्तंभ (६)३की तरह 'आदाय'का 'समादाय' बदलकर पाठ है ।

[4] ऊपरके चौथे स्तंभ (६)४ की तरह पाठ है; सिर्फ़ 'आदाय'को 'समादाय'में परिवर्तन करदेना चाहिये ।

टूट जाती है। उस भिक्षुको आ शो प च्छे दि क (=आशा टूट जाये जिसमें) कठिन-उद्धार होता है।

२—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरकी आशासे 'लौटकर न आऊँगा' (यह सोच) चल देता है। सीमाके बाहर जा उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा न होनेपर पाता है, आशा होनेपर नहीं पाता है। उसको ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ'; और वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार होता है। (२)० 'लौटकर न आऊँगा'० स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (३)० 'लौटकर न आऊँगा'० ना श- ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (४)० 'लौटकर न आऊँगा'० आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है।

३—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरकी आशासे अधिष्ठान बिनाही चलदेता है। उसको न यह होता है कि फिर लौटूँगा, न यही होता है कि फिर न लौटूँगा। उस सीमाके बाहर जा उस चीवराशाका सेवन करता है। आशा न होनेपर पाता है, आशा होनेपर नहीं पाता। उसको ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ' और वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (२)० उसको न यह होता है कि फिर लौटूँगा, न यही होता है कि फिर न लौटूँगा।० स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (३)० उसको न यह होता है कि फिर लौटूँगा, न यही होता है कि फिर न लौटूँगा।० ना श ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (४)० उसको न यह होता है कि फिर लौटूँगा, न यही होता है कि फिर न लौटूँगा।०० आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है।"

अनाशा द्वादशक समाप्त

(९) आशापूर्वक कठिनोद्धार

१—" (१) भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर 'फिर लौटूँगा' (सोच) चीवरकी आशासे चल देता है। सीमासे बाहर जा उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा होनेपर पाता है, न आशा होने पर नहीं पाता है। उसको ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ'; और वह वहीं उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा नां ति क कठिनोद्धार होता है। (२)० 'फिर लौटूँगा'० आशा होनेपर नहीं पाता है० स न्नि ष्ठा नां ति क कठिनोद्धार होता है। (३)० 'फिर लौटूँगा'० आशा होनेपर पाता है० ना श ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (४)० 'फिर लौटूँगा'० आशा होने पर पाता है० आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है।

२—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर 'फिर लौटूँगा' (सोच) चीवरकी आशासे चल देता है। सीमासे बाहर जाकर वह सुनता है—उस आवासमें कठिन उत्पन्न हुआ है। उसको ऐसा होता है—'चूंकि उस आवासमें कठिन उत्पन्न हुआ है इसलिये यहीं इस चीवरकी आशाका सेवन करूँ। और वह उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा होनेपर पाता है, न आशा होनेपर नहीं पाता है। उसको ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ' और वह उस चीवरको बन-वाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (२)० सुनता है० आशा होनेपर पाता है० स न्नि ष्ठा ना न्ति क०। (३)० सुनता है० आशा होने पर पाता है० ना श ना न्ति क०। (४)० सुनता है—उस आवासमें कठिन उत्पन्न हुआ है। उसको ऐसा होता है—'चूंकि उस आवास में कठिन उत्पन्न हुआ है इसलिये यहीं इस चीवरकी आशाका सेवन करूँ और फिर लौटकर न जाऊँ'. और वह उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। उसकी वह चीवरकी आशा टूट जाती है। उस भिक्षुको आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है।

३—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेसे 'फिर लौटूँगा' (सोच) चीवरकी आशासे चल देता है। वह सीमाके बाहर जा उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा होनेपर पाता है न आशा होने पर नहीं पाता। वह उस चीवरको बनवाता है चीवर बन जानेपर सुनता है—'उस आवासमें कठिन उत्पन्न (? उखा) है।' उस भिक्षुको श्र व णा न्ति क कठिनोद्धार होना है। (२)०[1] 'फिर लौटूँगा'० यहीं इस चीवरकी आशाका सेवन करूँ और फिर न लौटूँ ।० आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होना है। (३)० 'फिर लौटूँगा'० सीमाके बाहर जाकर उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा होनेपर पाता है, न आशा होनेपर नहीं पाता। चीवर बन जानेपर— 'लौटूँगा, लौटूँगा' (कहता) बाहर ही कठिनोद्धार (के समय)को बिता देता है। उस भिक्षुको सी मा-ति क्रा न्ति क कठिनोद्धार होना है। (४)० 'फिर लौटूँगा'० आशा होनेपर पाता है० वह उस चीवर को बनवाता है। चीवर बन जानेपर 'लौटूँगा लौटूँगा' कह कठिनोद्धारकी प्रतीक्षा करता है। उस भिक्षुका (दूसरे) भिक्षुओंके सा थ कठिनोद्धार होना है।"

आशा द्वादशक समाप्त

(१०) करणीय-पूर्वक कठिनोद्धार

१—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर किसी काम (=करणीय)से चला जाता है। सीमासे बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है। वह उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। न आशा होनेपर पाता है, आशा होनेपर नहीं पाता है। उसको ऐसा होता है—यहीं इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न लौटूँ। वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है। (२) ० करणीयसे चला जाता है। ० सीमाके बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है। वह उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। न आशा होनेपर पाता है, आशा होनेपर नहीं पाता। उसको ऐसा होता है—'न इस चीवरको बनवाऊँ, न फिर लौटूँ;' उस भिक्षुको स न्नि ष्ठा नां ति क कठिन-उद्धार होता है। (३) ० करणीयसे चला जाता है। ० आशा होनें पर नहीं पाता। उसको ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न लौटूँ।' वह उस चीवरको बनवाता है। बनवाते समय उसका चीवर नष्ट हो जाता है। उस भिक्षुको ना श ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (४) ० करणीयसे चला जाता है। सीमाके बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है। उसको ऐसा होता है—यहीं इस चीवरकी आशाका सेवन करूँ और फिर न लौटूँ। वह उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। और उसकी वह चीवरकी आशा टूट जाती है। उस भिक्षुको आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है।

२—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर किसी काम (=करणीय)से 'फिर न लौटूँगा' (कह) चला जाता है। सीमाके बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है। वह उस चीवर की आशाका सेवन करता है। न आशा होनेपर पाता है, आशा होनेपर नहीं पाता। उसको ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ'। वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा नां ति क कठिनोद्धार होता है। (२) ० करणीयसे फिर न लौटूँगा' (कह) चला जाता है ० आशा होनेपर नहीं पाता ०। स न्नि ष्ठा नां ति क कठिन-उद्धार होता है। (३)० करणीयसे फिर न लौटूँगा (कह) चला जाता है ० आशा होनेपर नहीं पाता ० ना श ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है। (४) ० करणीयसे 'फिर न लौटूँगा' (कह) चला जाता है० सीमाके बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा

[1] सन्निष्ठानांतिककी तरह यहाँ भी समझो।

उत्पन्न होती है । ० आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है ।

३—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर अधिष्ठानके विनाही किसी काम (=करणीय) से चला जाता है । उसको न यह होता है कि फिर आऊँगा और न यही होता है कि फिर न आऊँगा । सीमाके बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है । वह उस चीवरकी आशाका सेवन करता है । न आशा होनेपर पाता है, आशा होनेपर नहीं पाता । उसको ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनाऊँ और फिर न लौटूँ ।' वह उस चीवरको बनाता है । उस भिक्षुका नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है । (२) ० करणीयसे अधिष्ठान विनाही चला जाता है । उसको न यह होता है कि फिर आऊँगा, और न यही होता है कि फिर न आऊँगा । सीमाके बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है । वह उस चीवरकी आशाको सेवन करता है । न आशा होनेपर पाता है, आशा होने-पर नहीं पाता । उसको ऐसा होता है—'न इस चीवरको बनवाऊँगा न फिर लौटूँगा' । उस भिक्षुका स न्नि ष्ठा नां ति क कठिनोद्धार होता है । (३) ०[1] आशा होनेपर नहीं पाता । उसको ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न लौटूँ । ० ना श ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है । (४) ० सीमासे बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है ० आशोपच्छेदिक कठिनोद्धार होता है ।"

करणीय द्वादशक समाप्त

(११) अप-विनय-पूर्वक कठिनोद्धार

१—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरके (अपने हिस्सेको) अ प वि न य (=हक़ छोळना) करके दिशामें जानेके लिये चल देता । दिशामें चले जानेपर भिक्षु उससे पूछते हैं—'आवुस ! तुमने वर्षावास कहाँ किया, और कहाँ है तुम्हारा चीवरका हिस्सा ?' वह ऐसा कहता है—'अमुक आवासमें मैंने वर्षावास किया और वहीं मेरा चीवरका हिस्सा है ।' वह ऐसा कहते हैं—'जाओ आवुस ! उस चीवरको ले आओ ! तुम्हारे लिये हम यहाँ चीवर बनायेंगे ।' वह उस आवासमें जाकर भिक्षुओंसे पूछता है—'आवुस ! कहाँ है मेरा चीवरका हिस्सा ?' वह ऐसा कहते हैं—आवुस ! यह है तुम्हारा चीवरका हिस्सा । (अब) तुम कहाँ जाओगे ? वह ऐसा बोलता है—'मैं अमुक आवासमें जाऊँगा । वहाँ भिक्षु मेरे लिये चीवर बनायेंगे ।' वे ऐसा बोलते हैं—'नहीं आवुस ! मत जाओ । हम तुम्हारे लिये यहीं चीवर बना देंगे ।' उसको ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ और (वहाँ) न लौटूँ ।' वह उस चीवरको बनवाता है । उस भिक्षुको नि ष्ठा नां ति क कठिन-उद्धार होता है । (२)० 'नहीं आवुस ! मत जाओ । हम तुम्हारे लिये यहीं चीवर बना देंगे ।' उसको ऐसा होता है—०[1] स न्नि ष्ठा नां ति क कठिनोद्धार होता है । (३)० 'नहीं आवुस ! मत जाओ । हम तुम्हारे लिये यहीं चीवर बना देंगे ।' उसको ऐसा होता है ०[1] ना श ना न्ति क कठिनोद्धार होता है ।

२—"(१) ० अ प वि न य करके दिशामें जानेके लिये चल देना ।० 'नहीं आवुस ! मत जाओ । हम तुम्हारे लिये यहीं चीवर बना देंगे ।' उसको ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ और (वहाँ) न लौटूँ ।' और वह उस चीवरको बनवाता है । उस भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है । (२) ० वह उस आवासमें जाकर भिक्षुओंसे पूछता है—'आवुसो ! कहाँ है, मेरा चीवरका भाग ?' वे ऐसा बोलते है—'आवुस ! यह है तेरा चीवरका भाग ।' वह उस चीवरको लेकर उस आवासमें जाता है । उसे रास्तेमें भिक्षु लोग पूछते हैं—'आवुस कहाँ जाओगे ?' वह ऐसा कहता

[1] देखो ७§१।६ (३) पृष्ठ २५९ ।

है—'अमुक आवासमें जाऊँगा। वहाँ भिक्षु मेरे लिये चीवर बना देंगे।' वह ऐसा बोलते हैं—'नहीं आवुस ! मत जाओ। हम तुम्हारे लिये यहाँ चीवर बना देंगे' उसको ऐसा होता है—'न इस चीवर को बनवाऊँ, न फिर लौटूँ।' उस भिक्षुको स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (३) ० उसको ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ, फिर न लौटूँ।' वह उस चीवरको बनवाता है। बनवाते समय उसका चीवर नष्ट (=गुम) हो जाता है। उस भिक्षुको ना श नां ति क कठिनोद्धार होता है।

३—"(१) ० अ प वि न य करते दिशामें जानेके लिये चल देता।० वह उस चीवरको लेकर उसी आवासमें जाता है। उस आवासमें जानेपर उसे ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ। फिर न लौटूँ।' वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा नां ति क कठिनोद्धार होता है। (२) ०उसको ऐसा होता है—न इस चीवरको बनवाऊँ न फिर लौटूँ।' उस भिक्षुको स न्नि ष्ठा नां ति क कठिनोद्धार होता है। (३) ० उस भिक्षुको ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न लौटूँ।' वह उस चीवरको बनवाता है। बनवाते समय उसका वह चीवर नष्ट हो जाता है। उस भिक्षुको ना श ना न्ति क कठिनोद्धार होता है।"

नव अपविनय समाप्त

(१२) सुख-पूर्वक विहारवाला कठिनोद्धार

"१—भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर सुख विहार (=प्राशुविहार)के लिये चीवर ले चला जाता है—अमुक आवासमें जाऊँगा। वहाँ मेरा सुखपूर्वक विहार होगा, वहाँ मैं वसूँगा। यदि मुझे प्रा शु (=अच्छा) न होगा तो अमुक आवासमें जाऊँगा। वहाँ मुझे प्रा शु होगा; और वसूँगा। यदि मुझे प्रा शु न होगा तो अमुक आवासमें जाऊँगा। वहाँ मुझे प्राशु होगा, वसूँगा। यदि मुझे प्राशु न होगा तो लौट आऊँगा।' सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न लौटूँ।' वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको निष्ठानांतिक कठिनोद्धार होता है।

"२—० यदि मुझे प्राशु (=अनुकूल) न होगा तो लौट आऊँगा। सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है, न इस चीवरको बनवाऊँगा और न लौटूँगा। उस भिक्षुको सं नि ष्ठा नां ति क कठिन-उद्धार होता है।

"३—० 'यदि प्राशु न होगा तो लौट आऊँगा।' सीमाके बाहर जानेपर उसको ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँगा। फिर न लौटूँगा।' वह उस चीवरको बनवाता है। बनवाते समय उसका वह चीवर नष्ट हो जाता है। उस भिक्षुको ना श नां ति क कठिनोद्धार होता है।

"४—० 'नहीं प्राशु होगा तो लौट आऊँगा।' वह सीमासे बाहर जा उस चीवरको बनवाता है। चीवरके बन जानेपर 'लौटूँगा लौटूँगा' कहता बाहरही कठिनोद्धार (के समय)को बिता देता है। उस भिक्षुको सी मा ति क्रां ति क कठिनोद्धार होता है।

"५—० 'यदि न प्राशु होगा तो लौट आऊँगा।' वह सीमासे बाहर जा उस चीवरको बनवाता है। चीवर बन जानेपर 'लौटूँगा, लौटूँगा' कह कठिनोद्धारकी प्रतीक्षा करता है। उस भिक्षुको (दूसरे) भि क्षु ओं के सा थ कठिन-उद्धार होता है।"

पाँच प्राशु-विहार समाप्त

§३–कठिन चीवरके विघ्न और अ-विघ्न

"भिक्षुओ ! कठिनके दो विघ्न हैं, और दो अविघ्न।—कौनसे भिक्षुओ ! क ठि न के दो विघ्न हैं ?—आवासका विघ्न और चीवरका विघ्न।

१—"भिक्षुओ ! कैसे आवासका विघ्न होता है ? जब भिक्षुओ ! एक भिक्षु उस आवासमें वास करता है या फिर लौटूंगा यह इच्छा रख चल देता है; भिक्षुओ ! इस प्रकार आवासका विघ्न होता है। भिक्षुओ ! किस प्रकार चीवरका विघ्न होता है ?—भिक्षुओ ! जब भिक्षुका चीवर नहीं बना होता या बेठीकसे बना होता है, या चीवरकी आशा टूट नहीं गई रहती; इस प्रकार भिक्षुओ ! चीवरका विघ्न होता है। भिक्षुओ ! ये दो कठिनके विघ्न हैं।

२—"भिक्षुओ ! कौनसे दो कठिनके अविघ्न हैं ?—आवासका अविघ्न और चीवरका अविघ्न। भिक्षुओ ! कैसे आवासका अविघ्न होता है ?—जब भिक्षुओ ! भिक्षु फिर न लौटूँगा (सोच) इच्छा-रहित हो उस आवासको त्यागकर वमनकर छोळकर चल देता है; इस प्रकार भिक्षुओ ! आवासका अविघ्न होता है। भिक्षुओ ! कैसे चीवरसे अविघ्न होता है ?—जब भिक्षुओ ! भिक्षुका चीवर बन गया होता है, या नष्ट (=गुम) हो गया होता है, या विनष्ट (=खतम) होगया होता है, या जल गया होता है, या चीवरकी आशा टूट गई होती है;— इस प्रकार भिक्षुओ ! चीवरका अविघ्न होता है। भिक्षुओ ! यह दो कठिनके अविघ्न हैं।"

कठिनक्खन्धकसमाप्त ॥७॥

८—चीवर-स्कंधक

§१—विहित चीवर और उनके भेद

१—राजगृह

(१) जीवक-चरित

उस समय बुद्ध भगवान् राजगृहमें वेणुवन कलन्दक-निवापमें विहार करते थे।

उस समय वै शा ली ऋद्ध=स्फीत (=समृद्धिशाली), बहुत जनों=मनुष्योंसे आकीर्ण, सुभिक्षा (=अन्नपान-संपन्न) थी। उसमें ७७७७ प्रासाद, ७७७७ कूटागार, ७७७७ आराम, ७७७७ पुष्करिणियाँ थीं। गणिका अ म्ब पा ली अभिरूप=दर्शनीय=प्रासादिक, परमरूपवती, नाच, गीत और वाद्यमें चतुर थी।...चाहनेवाले मनुष्योंके पास पचास कार्षापण रातपर जाया करती थी। उससे वैशाली और भी प्रसन्न शोभित थी। तब राजगृहका नै ग म किसी कामसे वैशाली गया। रा ज गृ ह के नैगमने वैशालीको देखा—ऋद्ध०। राजगृहका नै ग म वैशालीमें उस कामको खतम कर, फिर राजगृह लौट गया। लौटकर जहाँ राजा मागध श्रेणिक बि म्बि सा र था, वहाँ गया। जाकर राजा० बिम्बिसारसे बोला—

"देव! वैशाली ऋद्ध=स्फीत० और० भी शोभित है। अच्छा हो देव! हम भी गणिका रक्खें?"

"तो भणे! वैसी कुमारी ढूँढो, जिसको तुम गणिका रख सको।"

उस समय राजगृहमें सा ल व ती नामक कुमारी अभिरूप दर्शनीय० थी। तब राजगृहके नैगमने सा ल व ती कुमारीको गणिका खड़ी की। सालवती गणिका थोळे कालमें ही नाच, गीत और वाद्यमें चतुर हो गई। चाहनेवाले मनुष्योंके पास सौ (कार्षापण)में रातभर जाया करती थी। तब वह गणिका अचिरमें ही गर्भवती हो गई। तब सालवती गणिकाको यह हुआ—गर्भिणी स्त्री पुरुषोंको नापसंद (=अमनाप) होती है, यदि मुझे कोई जानेगा—सालवती गणिका गर्भिणी है, तो मेरा सब सत्कार चला जायेगा। क्यों न मैं बीमार बन जाऊँ। तब सालवती गणिकाने दौवारिक (=दर्बान)को आज्ञा दी:—

"भणे! दौवारिक!! कोई पुरुष आवे और मुझे पूछे, तो कह देना—बीमार है।"

"अच्छा आर्ये! (=अय्ये!)" उस दौवारिकने सालवती गणिकासे कहा।

"सालवती गणिकाने उस गर्भके परिपक्व होनेपर एक पुत्र जना। तब सालवती....ने दासीको हुकुम दिया:—

"हन्द! जे! इस बच्चेको कचरेके सूपमें रखकर कूड़ेके ऊपर छोळ आ।"

दासी सालवती गणिकाको "अच्छा आर्ये!" कह, उस बच्चेको कचरेके सूपमें रख, ले जाकर कूळेके ऊपर रख आई।

उस समय अ भ य - रा ज कु मा र ने सकालमें ही राजाकी हाज़िरीको जाते (समय), कौओंसे घिरे उस बच्चेको देखा। देखकर मनुष्योंसे पूछा:—

"भणे! (=रे!) यह कौओंसे घिरा क्या है।" "देव! बच्चा है।"

"भणे जीता है?" "देव जीता है।"

"तो भणे! इस बच्चेको ले जाकर, हमारे अन्तःपुरमें दासियोंको पोसनेके लिये दे आओ।"

"अच्छा देव!"...उस बच्चेको अभय-राजकुमारके अन्तःपुरमें दासियोंको पोसनेके लिये दे आये। 'जीता है (जीविति), करके उसका नाम भी जी व क रक्खा। कुमारने पोसा था, इसलिये कौ मा र-भृ त्य नाम हुआ। जीवक कौमार-भृत्य अचिरहीमें विज्ञ हो गया। तब जीवक कौमार-भृत्य जहाँ अभय-राजकुमार था, वहाँ गया; जाकर अभय-राजकुमारसे बोला—

"देव! मेरी माता कौन है, मेरा पिता कौन है?"

"भणे जीवक! मैं तेरी माँको नहीं जानता, और मैं तेरा पिता हूँ, मैंने तुझे पोसा है।"

तब जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—

"राजकुल (—राजदर्बार) मानी होता है, विना शिल्पके जीविका करना मुश्किल है। क्यों न मैं शिल्प सीखूँ।"

उस समय त क्ष शि ला में (एक) दिशा-प्रमुख (=दिगंत-प्रसिद्ध) वैद्य रहता था। तब जीवक अभय राजकुमारसे विना पूछे, जिधर तक्ष-शिला[1] थी, उधर चला। क्रमशः जहाँ तक्ष-शिला थी, जहाँ वह वैद्य था, वहाँ गया। जाकर उस वैद्यसे बोला—

"आचार्य! मैं शिल्प सीखना चाहता हूँ।"

"तो भणे[2] जीवक! सीखो।"

जीवक कौमार-भृत्य बहुत पढ़ता था, जल्दी धारण कर लेता था, अच्छी तरह समझता था, पढ़ा हुआ इसको भूलता न था। सात वर्ष बीतनेपर जीवक०को यह हुआ—'बहुत पढ़ता हूँ०, पढ़ते हुए सात वर्ष हो गये, लेकिन इस शिल्पका अन्त नहीं मालूम होता; कब इस शिल्पका अन्त जान पड़ेगा?' तब जीवक० जहाँ वह वैद्य था, वहाँ गया, जाकर उस वैद्यसे बोला—

"आचार्य! मैं बहुत पढ़ता हूँ०। कब इस शिल्पका अन्त जान पड़ेगा?"

"तो भणे जीवक! खनती (=खनित्र) लेकर त क्ष शि ला के योजन-योजन चारों ओर घूमकर जो अ-भैपज्य (=दवाके अयोग्य) देखो उसे ले आओ।"

"अच्छा आचार्य!"...जीवक...ने...कुछभी अ-भैपज्य न देखा,...(और) आकर उस वैद्यको कहा—

"आचार्य! तक्ष-शिलाके योजन-योजन चारों ओर मैं घूम आया, (किन्तु) मैंने कुछ भी अ-भैपज्य नहीं देखा।"

"सीख चुके, भणे जीवक! यह तुम्हारी जीविकाके लिये पर्याप्त है।" (कह) उसने जीवक कौमार-भृत्यको थोळा पाथेय दिया। तब जीवक उस स्वल्प-पाथेय (=राहखर्च)को ले, जिधर राज-गृह था, उधर चला। जीवक०का वह स्वल्प पाथेय रास्तेमें सा के त (=अयोध्या)में खतम होगया। तब जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—'अन्न-पान-रहित जंगली रास्ते हैं, विना पाथेयके जाना सुकर नहीं है; क्यों न मै पाथेय ढूँढूँ।"

उस समय साकेतमें श्रेष्ठि (=नगर-सेठ)की भार्याको सात वर्षसे शिर-दर्द था। बहुतसे बळे बळे दिगंत-विख्यात वैद्य आकर नहीं अ-रोग कर सके, (और) बहुत हिरण्य (=अशर्फी) सुवर्ण लेकर चले गये। तब जीवकने साकेतमें प्रवेशकर आदमियोंसे पूछा—

"भणे! कोई रोगी है, जिसकी मैं चिकित्सा करूँ?"

[1] वर्तमान शाहजीकी ढेरी, जि० रावलपिंडी। [2] छोटेके लिये सम्बोधन।

"आचार्य ! इस श्रेष्ठि-भार्याको सात वर्षका शिर-दर्द है, आचार्य ! जाओ श्रेष्ठिभार्याकी चिकित्सा करो।"

तब जीवक०ने जहाँ श्रेष्ठि गृहपतिका मकान था, वहाँ...जाकर दौवारिकको हुकुम दिया—

"भणे ! दौवारिक ! श्रेष्ठि भार्याको कह—'आर्य्ये ! वैद्य आया है, वह तुम्हें देखना चाहता है।"

"अच्छा आर्य !'...कह दौवारिक...जाकर श्रेष्ठि-भार्यासे बोला—

"आर्ये ! वैद्य आया है, वह तुम्हें देखना चाहता है।"

"भणे दौवारिक ! कैसा वैद्य है ?"

"आर्ये ! तरुण (=दहरकं) है ?"

"बस भणे दौवारिक ! तरुण वैद्य मेरा क्या करेगा ? बहुत बळे बळे दिगन्त-विख्यात वैद्य०।"

तब वह दौवारिक जहाँ जीवक कौमार-भृत्य था, वहाँ गया। जाकर.....बोला—

"आचार्य ! श्रेष्ठि-भार्या (=सेठानी) ऐसे कहती है—बस भणे दौवारिक !०।

"जा भणे दौवारिक ! सेठानीको कह—आर्ये ! वैद्य ऐसे कहता है—अर्ये ! पहिले कुछ मत दो, जब अरोग हो जाना, तो जो चाहना सो देना।"

"अच्छा आचार्य !"....दौवारिकने.....श्रेष्ठि-भार्यासे कहा—आर्ये ! वैद्य ऐसे कहता है०।"

"तो भणे ! दौवारिक ! वैद्य आवे।"

"अच्छा अय्या !"......जीवको...कहा—"आचार्य ! सेठानी तुम्हें बुलाती है।"

जीवक० सेठानीके पास जाकर,...रोगको पहिचान, सेठानीसे बोला—

"अय्या ! मुझे पसर भर घी चाहिये।"

सेठानीने जीवक०को पसर भर घी दिलवाया। जीवक०ने उस पसर भर घीको नाना दवाइयोंसे पकाकर, सेठानीको चारपाईपर उतान लेटवाकर नथनोंमें दे दिया। नाकसे दिया वह घी मुखसे निकल पळा। सेठानीने पीकदानमें थूककर, दासीको हुक्म दिया—

"हन्द जे ! इस घीको बर्तनमें रख ले।"

तब जीवक कौमार-भृत्यको हुआ—'आश्चर्य ! यह घरनी कितनी कृपण है, जो कि इस फेंकने लायक घीको बर्तनमें रखवाती है। मेरे बहुतसे महार्घ औषध इसमें पळे हैं, इसके लिये यह क्या देगी ?' तब सेठानीने जीवक०के भावको ताळकर, जीवक०को कहा :—

"आचार्य ! तू किसलिये उदास है।"

"मुझे ऐसा हुआ—आश्चर्य ! ०।"

"आचार्य ! हम गृहस्थिने (=आगारिका) हैं, इस संयमको जानती हैं। यह घी दासों कमकरोंके पैरमें मलने, और दीपकमें डालनेको अच्छा है। आचार्य तुम उदास मत होओ। तुम्हें जो देना है, उसमें कमी नहीं होगी।"

तब जीवकने सेठानीके सात वर्षके शिर-दर्दको, एक ही नाससे निकाल दिया। सेठानीने अरोग हो जीवकको० चार हजार दिया। पुत्रने 'मेरी माताको निरोग कर दिया' (सोच) चार हजार दिया। बहूने 'मेरी सासको निरोग कर दिया' (सोच) चार हजार दिया। श्रेष्ठि गृहपतिने 'मेरी भार्याको निरोग कर दिया' (सोच) चार हजार, एक दास, एक दासी, और एक घोड़ेका रथ दिया। तब जीवक उन सोलह हजार, दास, दासी और अश्वरथको ले जहाँ रा ज गृ ह था, उधर चला। क्रमशः जहाँ राजगृह, जहाँ अभय-राजकुमार था, वहाँ गया। जाकर अ भ य - राजकुमारसे बोला—

"देव ! यह—सोलह हजार, दास, दासी और अश्व-रथ मेरे प्रथम कामका फल है। इसे देव ! पोसाई (=पोसावनिक)में स्वीकार करें।"

"नहीं, भणे जीवक; (यह) तेरा ही रहे। हमारे ही अन्तःपुर (=हवेलीकी सीमा)में मकान वनवा।"

"अच्छा देव!"...कह...जीवक...ने अभय-राजकुमारके अन्तःपुरमें मकान वनवाया।"

उस समय राजा मागध श्रेणिक विं वि सा र को भगंदरका रोग था। धोतियाँ (=साटक) खूनसे सन जाती थीं। देवियाँ देखकर परिहास करती थीं—'इस समय देव ऋतुमती हैं, देवको फूल उत्पन्न हुआ है, जल्दी ही देव प्रसव करेंगे।' इससे राजा मूक होता था। तव राजा...बिंविसारने अभय-राजकुमारसे कहा—

"भणे अभय! मुझे ऐसा रोग है, जिससे धोतियाँ खूनसे सन जाती हैं। देवियाँ देखकर परिहास करती हैं०। तो भणे अभय! ऐसे वैद्यको ढूँढ़ो, जो मेरी चिकित्सा करे।"

"देव! यह हमारा तरुण वैद्य जी व क अच्छा है, वह देवकी चिकित्सा करेगा।"

"तो भणे अभय! जीवक वैद्यको आज्ञा दो, वह मेरी चिकित्सा करे।"

तव अभय-राजकुमारने जीवकको हुकुम दिया—

"भणे जीवक! जा राजाकी चिकित्सा कर।"

"अच्छा देव!" कह...जीवक कौमार-भृत्य नखमें दवा ले जहाँ राजा विंविसार था, वहाँ गया। जाकर राजा...विंविसारसे वोला—

"देव! रोगको देखें।"

तव जीवकने राजा...विंविसारके भगंदर रोगको एक ही लेपसे निकाल दिया। तव राजा... विंविसारने निरोग हो, पाँच सौ स्त्रियोंको सव अलंकारोंसे अलंकृत भूपितकर, (फिर उस आभूपण-को) छोळवा पुंज वनवा, जीवक...को कहा—

"भणे! जीवक! यह पाँच सौ स्त्रियोंका आभूपण तुम्हारा है।"

"यही वस है कि देव मेरे उपकारको स्मरण करें।"

"तो भणे जीवक! मेरा उपस्थान (=सेवा चिकित्सा द्वारा) करो, रनवास और वुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघका भी (उपस्थान करो)।"

"अच्छा, देव!" (कह) जीववने...राजा...विंविसारको उत्तर दिया।

उस समय रा ज गृ ह के श्रेप्ठीको सात वर्पका शिर दर्द था। वहुतसे वळे वळे दिगन्त-विख्यात (=दिसा-पामोक्ख) वैद्य आकर निरोग न कर सके, (और) वहुत सा हिरण्य (=अशर्फी) लेकर चले गये। वैद्योंने उसे (दवा करनेसे) जवाव दे दिया था। किन्हीं वैद्यों ने कहा—पाँचवें दिन श्रेप्ठी गृहपति मरेगा। किन्हीं वैद्योंने कहा—सातवें दिन०। तव राजगृहके नैगमको यह हुआ—'यह श्रेप्ठी गृहपति राजाका और नैगमका भी वहुत काम करनेवाला है, लेकिन वैद्योंने इसे जवाव देदिया है०। यह राजाका तरुण वैद्य जीवक अच्छा है। क्यों न हम श्रेप्ठी गृहपतिकी चिकित्साके लिये राजासे जीवक वैद्यको माँगे। तव राजगृहके नैगमने राजा...विंविसारके पास...जा...कहा—

"देव! यह श्रेप्ठी गृहपति देवका भी, नैगमका भी, वहुत काम करने वाला है। लेकिन वैद्योंने जवाव दे दिया है०। अच्छा हो, देव जीवक वैद्यको श्रेप्ठी गृहपतिकी चिकित्साके लिये आज्ञा दें।"

तव राजा...विम्बसारने जीवक कौमार-भृत्यको आज्ञा दी—

"जाओ, भणे जीवक! श्रेप्ठी गृहपतिकी चिकित्सा करो।"

"अच्छा देव!" कह, जीवक...श्रेप्ठी गृहपतिके विकारको पहिचानकर, श्रेप्ठी गृहपतिसे वोला—

"यदि मैं गृहपति ! तुझे निरोग कर दूँ, तो मुझे क्या दोगे ?"

"आचार्य ! सब धन तुम्हारा हो, और मैं तुम्हारा दास।"

"क्यों गृहपति ! तुम एक करवटसे सात मास लेटे रह सकते हो ?"

"आचार्य ! मैं एक करवटसे सातमास लेटा रह सकता हूँ।"

"क्या गृहपति ! तुम दूसरी करवटसे सात मास लेटे रह सकते हो ?"

"आचार्य !...सकता हूँ।"

"क्या...उतान सात मास लेटे रह सकते हो ?" "आचार्य !...सकता हूँ।"

तब जीवकने श्रेष्ठी गृहपतिको चारपाईपर लिटाकर, चारपाईमें बाँधकर, शिरके चमळेको फाळकर खोपळी खोल, दो जन्तु निकाल लोगोंको दिखलाये—

"देखो यह दो जन्तु हैं—एक बळा है, एक छोटा। जो वह आचार्य यह कहते थे—पाँचवें दिन श्रेष्ठी गृहपति मरेगा, उन्होंने इस बळे जन्तुको देखा था, पांच दिनमें यह श्रेष्ठी गृहपतिकी गुद्दी चाट लेता, गुद्दीके चाट लेनेपर श्रेष्ठी गृहपति मर जाता। उन आचार्योंने ठीक देखा था। जो वह आचार्य यह कहते थे—सातवें दिन श्रेष्ठी गृहपति मरेगा, उन्होंने इस छोटे जन्तुको देखा था०।"

खोपळी (=सिब्बनी) जोळकर, शिरके चमळेको सीकर, लेप कर दिया। तब श्रेष्ठी गृहपतिने सप्ताह बीतनेपर जीवक...से कहा—

"आचार्य ! मैं, एक करवटसे सात मास नहीं लेट सकता।"

"गृहपति ! तुमने मुझे क्यों कहा था—० सकता हूँ।"

"आचार्य ! यदि मैंने कहा था, तो मर भले ही जाऊँ, किंतु मैं एक करवटसे सात मास लेटा नहीं रह सकता।"

"तो गृहपति ! दूसरी करवट सात मास लेटो।"

तब श्रेष्ठी गृहपतिने सप्ताह बीतनेपर जीवक...से कहा—

"आचार्य! मैं दूसरी करवटसे सातमास नहीं लेट सकता।"०।०

"तो गृहपति! उतान सात मास लेटो।"

तब श्रेष्ठी गृहपतिने सप्ताह बीतने पर...कहा—

"आचार्य ! मैं उतान सात मास नहीं लेट सकता।"

"गृहपति! तुमने मुझे क्यों कहा था—'०सकता हूँ।"

"आचार्य ! यदि मैंने कहा था, तो मर भले ही जाऊँ, किंतु मैं उतान सात मास लेटा नहीं रह सकता।"

"गृहपति ! यदि मैंने यह न कहा होता, तो इतना भी तू न लेटता। मैं तो...जानता था, तीन सप्ताहोंमें श्रेष्ठी गृहपति निरोग हो जायेगा। उठो गृहपति ! निरोग हो गये। जानते हो, मुझे क्या देना है ?'

"आचार्य ! सब धन तुम्हारा और मैं तुम्हारा दास।"

"बस गृहपति ! सब धन मेरा मत हो, और न तुम मेरे दास। राजाको सौहज़ार देदो और सौहज़ार मुझे।"

तब गृहपतिने निरोग हो सौ हज़ार राजाको दिया, और सौ हज़ार जीवक कौमार-भृत्यको।

उस समय ब ना र स के श्रेष्ठी (=नगर-सेठ)के पुत्रको मक्खचिका (=शिरके बल घुमरी काटना) खेलते अँतळीमें गाँठ पळ जानेका रोग (होगया) था; जिससे पी हुई खिचळी (=यागु=यवागू)भी अच्छी तरह नहीं पचती थी, खाया भात भी अच्छी तरह न पचता था। पेशाब, पाखाना भी ठीकसे न होता था। वह उससे कृश, रुक्ष=दुर्वर्ण पीला ठठरी (=धमनि-सन्थत-गत्त) भर रह गया

था। तब बनारसके श्रेष्ठीको यह हुआ—'मेरे पुत्रको वैसा रोग है, जिससे जाउर भी०। क्यों न मैं रा ज-गृ ह जाकर अपने पुत्रकी चिकित्साके लिये, राजासे जीवक वैद्यको माँगूँ।' तब बनारसके श्रेष्ठीने राज-गृह जाकर...राजा...विंबिसारसे यह कहा—

"देव! मेरे पुत्रको वैसा रोग है०। अच्छा हो यदि देव मेरे पुत्रकी चिकित्साके लिये वैद्य को आज्ञा दें।"

तब राजा...विंबिसारने जीवक...को आज्ञा दी—

"भणे जीवक! बनारस जाओ, और बनारसके श्रेष्ठीके पुत्रकी चिकित्सा करो।"

"अच्छा देव!" कह....बनारस जाकर, जहाँ बनारसके श्रेष्ठीका पुत्र था, वहाँ गया। जाकर...श्रेष्ठी-पुत्रके विकारको पहिचान, लोगोंको हटाकर, कनात घेरवा, खंभोंको बँधवा, भार्या को सामने कर, पेटके चमळेको फाळ, आँतकी गाँठको निकाल, भार्याको दिखलाया—

"देखो अपने स्वामीका रोग, इसीसे जाउर पीना भी अच्छी तरह नहीं पचता था०।"

गाँठको सुलझाकर अँतळियोंको (भीतर) डालकर, पेटके चमळेको सीकर, लेप लगा दिया। बनारसके श्रेष्ठीका पुत्र थोळी ही देरमें निरोग हो गया। बनारसके श्रेष्ठीने 'मेरा पुत्र निरोग कर दिया' (सोच) जीवक कौमार-भृत्यको सोलह हज़ार दिया। तब जीवक...उन सोलह हज़ारको ले फिर राज-गृह लौट गया।

उस समय राजा प्र द्यो त को पांडु-रोगकी बीमारी थी। बहुतसे बळे बळे दिगंत-विख्यात वैद्य आकर निरोग न कर सके; बहुतसा हिरण्य (=अशर्फ़ी) लेकर चले गये। तब राजा प्रद्योतने राजा मागध श्रेणिक बिंबिसारके पास दूत भेजा—

"मुझे देव! ऐसा रोग है, अच्छा हो यदि देव जीवक-वैद्यकी आज्ञा दें, कि वह मेरी चिकित्सा करे।"

तब राजा...बिंबिसारने जीवक...को हुकुम दिया—

"जाओ भणे जीवक! उ ज्जै न (=उज्जेनी) जाकर, राजा प्रद्योतकी चिकित्सा करो।"

"अच्छा देव!"...कह...जीवक...उज्जैन जाकर, जहाँ राजा प्रद्योत (=पज्जोत) था, वहाँ गया। जाकर राजा प्रद्योतके विकारको पहिचानकर...बोला—

"देव! घी पकाता हूँ, उसे देव पीयें।"

"भणे जीवक! बस, घीके विना (और) जिससे तुम निरोग कर सको, उसे करो। घीसे मुझे घृणा=प्रतिकूलता है।"

तब जीवक...को यह हुआ—'इस राजाका रोग ऐसा है, कि घीके विना आराम नहीं किया जा सकता; क्यों न मैं घीको कषाय-वर्ण, कषाय-गंध, कषाय-रस पकाऊँ।' तब जीवक...ने नाना औषधोंसे कषाय-वर्ण, कषाय-गंध, कषाय-रस घी पकाया। तब जीवक...को यह हुआ—'राजाको घी पीकर पचते वक्त उबांत होता जान पळेगा। यह राजा चंड (क्रोधी) है, मुझे मरवा न डाले। क्यों न मैं पहिलेही ठीक कर रक्खूँ। तब जीवक...जाकर राजा प्रद्योतसे बोला—

"देव! हमलोग वैद्य हैं; वैसे वैसे (विशेष) मुहूर्तमें मूल उखाळते हैं, औषध संग्रह करते हैं। अच्छा हो, यदि देव वाहन-शालाओं और नगर-द्वारोंपर आज्ञा देदें कि जीवक जिस वाहनसे चाहे, उस वाहनसे जावे; जिस द्वारसे चाहे, उस द्वारसे जावे; जिस समय चाहे, उस समय जावे; जिस समय चाहे, उस समय (नगरके) भीतर आवे।"

तब राजा प्र द्यो त ने वाहनागारों और द्वारोंपर आज्ञा देदी—'जिस वाहनसे०।' उस समय राजा प्रद्योतकी भ द्र व ति का नामक हथिनी (दिनमें) पचास योजन (चलने)वाली थी। तब जीवक

कौमार-भृत्य राजाके पास घी ले गया—'देव ! कषाय पियें।' तब जीवक...राजाको घी पिलाकर हथि-सारमें जा भद्रवतिका हथिनीपर (सवार हो), नगरसे निकल पळा। तब राजा प्रद्योतको उस पिये घीसे उवांत हो गया। तब राजा प्रद्योतने मनुष्योंसे कहा—

"भणे ! दुष्ट जीवकने मुझे घी पिलाया है, जीवक वैद्यको ढूँढ़ो।"

"देव ! भद्रवतिका हथिनीपर नगरसे बाहर गया है।"

उस समय अमनुष्यसे उत्पन्न का क नामक राजा प्र द्यो त का दास (दिनमें) साठ योजन (चलने) वाला था। राजा प्रद्योतने काक दासको हुकुम दिया—

"भणे काक ! जा जीवक वैद्यको लौटा ला—'आचार्य ! राजा तुम्हें लौटाना चाहते हैं।' भणे काक ! यह वैद्य लोग बळे मायावी होते हैं, उस(के हाथ)का कुछ मत लेना।"

तब काकने जीवक कौमार-भृत्यको मार्गमें कौ शा म्बी में कलेवा करते देखा। दास काकने जीवक...से कहा—

"आचार्य ! राजा तुम्हें लौटवाते हैं।"

"ठहरो भणे काक ! जब तक खा लूँ। हन्त भणे काक ! (तुम भी) खाओ।"

"बस आचार्य ! राजाने आज्ञा दी है—'यह वैद्य लोग मायावी होते हैं, उस(के हाथ)का कुछ मत लेना।"

उस समय जीवक कौमार-भृत्य नखसे दवा लगा आँवला खाकर, पानी पीता था। तब जीवक ...ने काक...से कहा—

"तो भणे काक ! आँवला खाओ, और पानी पियो।"

तब काक दासने (सोचा) 'यह वैद्य आँवला खा रहा है, पानी पी रहा है, (इसमें) कुछ भी अनिष्ट नहीं हो सकता'—(और) आधा आँवला खाया, और पानी पिया। उसका खाया वह आधा आँवला वहीं (वमन हो) निकल गया। तब काक (दास) जीवक कौमार-भृत्यसे बोला—

"आचार्य ! क्या मुझे जीना है ?"

"भणे काक ! डर मत, तू भी निरोग होगा, राजा भी। वह राजा चंड है, मुझे मरवा न डाले, इसलिये मैं नहीं लौटूँगा।" (—कह) भद्रवतिका हथिनी काकको दे, जहाँ रा ज गृ ह था, वहाँको चला। क्रमशः जहाँ राजगृह था, जहाँ राजा...बिंबिसार था, वहाँ पहुँचा। पहुँचकर राजा...बिंबिसारसे वह (सब) बात कह डाली।

"भणे जीवक ! अच्छा किया, जो नहीं लौटा। वह राजा चंड है, तुझे मरवा भी डालता।"

तब राजा प्र द्यो त ने निरोग हो, जी व क कौ मा र-भृ त्य के पास दूत भेजा—'जीवक आवें, वर (=इनाम) दूँगा' 'बस आर्य ! देव मेरा उपकार (=अधिकार) याद रक्खें।' उस समय राजा प्र द्यो त को बहुत सौ हज़ार दुशालेके जोळोंमें अग्र=श्रेष्ठ=मुख्य=उत्तम=प्रवर शिवि (देश) के दुशालोंका एक जोड़ा प्राप्त हुआ था। राजा प्रद्योतने उस शिविके दुशालेको, जीवकके लिये भेजा। तब जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—

"राजा प्रद्योतने मुझे० यह शिविका दुशाला जोळा भेजा है। उन भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्धके बिना या राजा मागध श्रेणिक विं बि सा र के बिना, दूसरा कोई इसके योग्य नहीं है।"

उस समय भगवान्का शरीर दोष-ग्रस्त था। तब भगवान्ने आयुष्मान् आ न न्द को संबोधित किया—

"आनन्द तथागतका शरीर दोष-ग्रस्त है, तथागत जुलाब (=विरेचन) लेना चाहते हैं।"

आयुष्मान् आनन्द जहाँ जीवक...था, वहाँ...जाकर बोले—

"आवुस जीवक! तथागतका शरीर दोष-ग्रस्त है, जुलाब लेना चाहते हैं।"

"तो भन्ते! आनन्द! भगवान्के शरीरको कुछ दिन स्निग्ध करें (=चिकना करें)।"

तब आयुष्मान् आनन्द भगवान्के शरीरको कुछ दिन स्नेहित कर...जाकर जीवक...को बोले—

"आवुस जीवक! तथागतका शरीर अब स्निग्ध है, अब जिसका समय समझो (वैसा करो)।"

तब जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—

'यह मेरे लिये योग्य नहीं, कि मैं भगवान्को मामूली जुलाब दूँ।' (इसलिये) तीन=उत्पल-हस्तको नाना औषधोंसे भावितकर,...जाकर भगवान्को एक उत्पलहस्त (=चम्मच) दिया—

"भन्ते! इस पहिले उत्पलहस्तको भगवान् सूँघें, यह भगवान्को दस बार जुलाब लगायेगा। ...इस दूसरे उत्पलहस्तको ०सूँघें०।...इस तीसरे उत्पलहस्तको भगवान् सूँघें०। इस प्रकार भगवान्को तीस जुलाब होंगे।"

जी व क...भगवान्को तीस जुलाबके लिये औषध दे, अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चल दिया। तब जीवकको बळे दर्वाज़ेसे निकलनेपर यह हुआ—'मैंने भगवान्को तीस जुलाब दिया। तथागतका शरीर दोष-ग्रस्त है, भगवान्को तीस जुलाब न होगा, एक कम तीस जुलाब होगा। जब भगवान् जुलाब हो जानेपर नहायेंगे, तब भगवान्को एक और विरेचन होगा।' तब भगवान्ने जीवकके चित्तके वितर्कको...जानकर, आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"आनन्द! जीवकको बळे दर्वाज़ेसे निकलनेपर०। इसलिये आनन्द! गर्म जल तैयार करो।"

"अच्छा भन्ते!" कह...आयुष्मान् आनन्दने जल तैयार किया। तब जीवक...जाकर ...भगवान्से बोला—

"मुझे भन्ते! बळे दर्वाज़ेसे निकलनेपर०। भन्ते! स्नान करें सुगत! स्नान करें।"

तब भगवान्ने गर्म जलसे स्नान किया। नहानेपर भगवान्को एक (और) विरेचन हुआ। इस प्रकार भगवान्को पूरे तीस विरेचन हुए। तब जीवक...ने भगवान्से यह कहा—

"जब तक भन्ते! भगवान्का शरीर स्वस्थ नहीं होता, तब तक मैं जूस पिंड-पात (दूँगा)।"

भगवान्का शरीर थोळे समयमें ही स्वस्थ हो गया। तब जीवक...उस शिवि[1]के दुशाले...को ले, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे जीवक......ने भगवान्से यह कहा—

"मैं भन्ते! भगवान्से एक वर माँगता हूँ।"

"जीवक! तथागत वरके परे हो गये हैं।"

"भन्ते! जो युक्त है, जो निर्दोष है।"

"बोलो, जीवक!"

"भन्ते! भगवान् पांसुकूलिक[2] (=लत्ताधारी) हैं, और भिक्षु-संघ भी। भन्ते ० मुझे यह शिविका दुशाला जोळा, राजा प्र द्यो त ने भेजा है। भन्ते! भगवान् मेरे इस शिवि(=देश)के दुशाले

[1] वर्तमान सीबी (बिलोचिस्तानके आस पासका प्रदेश) या शोरकोट (पंजाब)के आस पास-का प्रदेश।

[2] अ. क. "भगवान्के बुद्धत्व-प्राप्तिसे...बीस वर्ष तक किसी (भिक्षु)ने गृह-पति-चीवर धारण नहीं किया। सब पांसुकूलिक ही रहे।" (—अट्ठकथा)।

जोळेको स्वीकार करें, और भिक्षु-संघको गृहस्थोंके दिये चीवर (=गृहपति-चीवर)की आज्ञा दें।"

भगवान्ने शिविके दुशाले. . .को स्वीकार किया।. . .भिक्षुसंघको आमंत्रित किया—

(२) नये वस्त्रके चीवरका विधान

"भिक्षुओ! गृहपति-चीवर (के उपयोगकी) अनुज्ञा देता हूँ। जो चाहे पांसुकूलिक रहे, जो चाहे गृहपति-चीवर धारण करे। (दोनोंमें) किसीसे भी मैं संतुष्टि कहता हूँ" 1

(३) ओढ़नेकी अनुमति

१—रा ज गृ ह के लोगोंने सुना कि भगवान्ने भिक्षुओंके लिये गृ ह प ति (=गृहस्थोंके दिये नये) चीवरकी अनुमति दे दी है। तब वह लोग हर्षित=उदग्र हुए—'अब हम दान देंगे, पुण्य करेंगे; क्योंकि भगवान्ने भिक्षुओंके लिये गृ ह प ति चीवरकी अनुमति दे दी है।' और एकही दिनमें रा ज-गृ ह में कई हज़ार चीवर मिल गये। देहातके (=जानपद) मनुष्योंने सुना कि भगवान्ने भिक्षुओंके लिये गृहपति चीवरकी अनुमति दे दी है। (और) देहातमें भी एकही दिनमें कई हज़ार चीवर मिल गये।

२—उस समय संघको ओढ़ना (=प्रावार) मिला था। भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ ओढ़नेकी।" 2

कौशेय (=कीड़ेसे पैदा सभी प्रकारके वस्त्र)का प्रा वा र मिला था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ कौ शे य-प्रा वा र की।" 3

को ज व (=लम्बे वालोंवाला कम्बल) मिला था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ को ज व की।" 4

प्रथम भाणवार समाप्त ॥१॥

(४) कम्बलकी अनुमति

उस समय का शि रा ज[1] ने जी व क कौमार-भृत्यके पास पाँचसौका क्षौ म (=अलसीकी छालका बना हुआ कपळा)-मिश्रित कम्बल भेजा था। तब जी व क कौमार-भृत्य उस पाँचसौका कम्बल लेकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे जी व क कौ मा र भृ त्य ने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! मुझे का शि रा ज ने यह पाँचसौका क्षौ म मिश्रित कम्बल भेजा है। भन्ते! भगवान् इस मेरे कम्बलको ग्रहण करें, स्वीकार करें; जिसमें कि यह चिरकाल तक मेरे हित और सुखके लिये हो।"

भगवान्ने कम्बलको स्वीकार किया। तब भगवान्ने जी व क कौमार-भृत्यको धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित, सम्प्रहर्षित किया। तब जी व क कौ मा र-भृ त्य भगवान्की धार्मिक कथाद्वारा... समुत्तेजित सम्प्रहर्षित हो, आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया। तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ कम्बलकी।" 5

(५) छ प्रकारके चीवरका विधान

उस समय संघको नाना प्रकारके चीवर (=वस्त्र) मिले। तब भिक्षुओंको यह हुआ—'भगवान्

---

[1] कोसलराज प्र से न जि त् का सगा भाई (—अट्ठकथा)।

ने किस चीवरकी अनुमति दी है, और किसकी नहीं?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ छ तरहके चीवरोंकी—क्षौ म, कपासवाले, कौशेय, कम्बल (-ऊनी), साण (=सनका), और भं ग[1]।" 6

(६) नये चीवरके साथ पांसुकूल भी

१—उस समय जो भिक्षु गृहस्थों(के दिये नये) चीवरको धारण करते थे वह हिचकिचाते हुए पां सु कू ल (=फेंके हुए चीथळों)को नहीं धारण करते थे—'भगवान्‌ने एकही तरहके चीवरकी अनुमति दी है, दो की नहीं।' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ गृहस्थोंके नये चीवर धारण करनेवालोंको पांसुकूल धारण करने की भी। मैं उन दोनोंहीसे भिक्षुओ! संतुष्टि (=त्यागीपन) बतलाता हूँ।" 7

२—उस समय बहुतसे भिक्षु को स ल देशमें रास्तेसे जा रहे थे। (उनमेंसे) कोई कोई भिक्षु फें के ची थ ळे के लिये स्मशान में गये और किन्हीं किन्हीं भिक्षुओंने प्रतीक्षा न की। जो भिक्षु स्मशानमें गये थे उन्हें पां सु कू ल मिले। तब न प्रतीक्षा करनेवाले भिक्षुओंने ऐसे कहा—'आवुसो! हमें भी हिस्सा दो!' दूसरेने कहा—'आवुसो! हम तुम्हें नहीं देंगे। तुम क्यों नहीं आये?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, इच्छा न होनेपर न प्रतीक्षा करनेवालोंको भाग न देनेकी।" 8

उस समय बहुतसे भिक्षु को स ल देशमें जा रहे थे। (उनमेंसे) कोई कोई भिक्षु फेंके चीथळोंके लिये स्मशानमें गये। और किन्हीं किन्हींने प्रतीक्षा की। जो भिक्षु स्मशानमें गये थे उन्हें पां सु कू ल मिले। तब प्रतीक्षा करनेवाले भिक्षुओंने ऐसा कहा—'आवुसो! हमें भी हिस्सा दो!' दूसरोंने कहा—आवुसो! हम तुम्हें नहीं देंगे। तुम क्यों नहीं आये?' भगवान्‌से यह बात कही।—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ इच्छा न होनेपर भी प्रतीक्षा करनेवालोंको भाग देनेकी।" 9

उस समय बहुतसे भिक्षु को स ल देशमें रास्तेसे जा रहे थे। कोई कोई भिक्षु पांसुकूलके लिये पहिले स्मशानमें गये और कोई कोई पीछे। जो भिक्षु पांसुकूलके लिये पहले स्मशानमें गये उनको पां सु कू ल मिला। जो पीछे गये उन्हें पां सु कू ल नहीं मिला। उन्होंने ऐसे कहा—'आवुसो! हमें भी भाग दो!' दूसरोंने उत्तर दिया—'आवुसो! हम तुम्हें नहीं देंगे! तुम क्यों पीछे आये?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पीछे आनेवालोंको इच्छा न रहनेपर भाग न देनेकी।" 10

§२–संघके कर्म-चारियोंका चुनाव

(१) चीवरका बँटवारा

१—उस समय बहुतसे भिक्षु को स ल देशमें रास्तेसे जा रहे थे। वह एक साथही पांसुकूलके लिये स्मशानमें गये। उनमेंसे किन्हीं किन्हीं भिक्षुओंने पांसुकूल पाया, किन्हीं किन्हींने नहीं पाया। न पानेवाले भिक्षुओंने ऐसे कहा—'आवुसो! हमें भी भाग दो।'—दूसरेने उत्तर दिया—'आवुसो! हम तुम्हें भाग न देंगे। तुमने क्यों नहीं प्राप्त किया?' भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ साथ रहनेवालोंको इच्छा न रहते भी भाग देने की।" 11

[1] भांगकी छालका बना, अथवा उक्त पांचों प्रकारके मिश्रणसे बना हुआ कपड़ा।

२—उस समय बहुतसे भिक्षु को स ल देशसे रास्तेसे जा रहे थे। वह पण करके श्मशानमें पांसुकूलके लिये गये। किन्हीं किन्हीं भिक्षुओंको पांसुकूल मिला, किन्हीं किन्हींने नहीं पाया। न पानेवाले भिक्षुओंने ऐसे कहा—'आवुसो! हमें भी भाग दो!'—दूसरोंने उत्तर दिया—'आवुसो! हम तुम्हें भाग न देंगे। तुमने क्यों नहीं प्राप्त किया?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पण करके जानेपर, इच्छा न रहते हुए भी भाग देनेकी।" 12

(२) चीवर प्रतिग्राहकका चुनाव

उस समय लोग चीवर लेकर आराम जाते थे। वहाँ प्र ति ग्रा ह क (=ग्रहण करनेवाले) को न पा लौटा लाते थे, और चीवर कम मिला करते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पाँच गुणोंसे युक्त भिक्षुको चीवर-प्रतिग्राहक चुनने की।"—(१) जो न स्वेच्छाचारी हो, (२) जो न द्वेषके रास्ते जानेवाला हो, (३) जो न मोहके रास्ते जानेवाला हो, (४) जो न भयके रास्ते जानेवाला हो, और (५) जो लिये-न-लियेको जानता हो। 13

और भिक्षुओ इस प्रकार चुनाव (=संमंत्रण) करना चाहिये। पहले (वैसे) भिक्षुसे पूछ लेना चाहिये। पूछ करके चतुर समर्थ भिक्षु-संघको सूचित करे—यदि संघ 'उचित समझे तो अमुक नाम-वाले भिक्षुको चीवर-प्रतिग्राहक चुने—यह सूचना है।० ऐसा मैं इसे समझता हूँ।"

(३) चीवर-निदहकका चुनाव

उस समय चीवर प्रतिग्राहक भिक्षु चीवरको लेकर वहीं छोड़कर चले जाते थे। चीवर गुम हो जाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच गुणोंसे युक्त भिक्षुको ची व र-नि द ह क (=चीवरोंको रखनेवाला) चुननेकी—(१) जो न स्वेच्छाचारी हो०[1]।" 14

(४) भंडार निश्चित करना

उस समय ची व र-नि द ह क भिक्षु मंडपमें भी, वृक्षके नीचे भी, निम्ब-कोपमें भी चीवर रख देते थे और उन्हें चूहे और दूसरे कीड़े खा जाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ भंडागार निश्चित करनेकी। संघ-विहार या अ ड्ड योग (=अटारी) या प्रासाद या हर्म्य या गुहा जिसे चाहे (उसे) भंडागार बनाये।" 15

"और भिक्षुओ! इस प्रकार ठहराव करना चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षुसंघको सूचित करे—पूज्य संघ मेरी सुने। यदि संघको पसंद हो तो इस नामवाले विहारको भंडागार (=भंडार) निश्चित करें—यह सूचना है।०।"

(५) भंडारीका चुनाव

१—उस समय संघके भंडागारमें चीवर अरक्षित रहते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच गुणोंसे युक्त भिक्षुको भां डा गा रि क (=भंडारी) चुननेकी—(१) जो न स्वेच्छाचारी हो०[2]। और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनाव करना चाहिये०[2]।" 16

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु भंडारीको उठा देते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! भंडारीको नहीं उठाना चाहिये। जो उठाये उसे दु क्क ट का दोष हो।" 17

---

[1] चीवर-प्रतिग्राहककी तरहही चीवर-निदहकके गुण और चुनावके बारेमें समझना चाहिये।

[2] चीवर-प्रतिग्राहककी तरह यहाँ भी समझना चाहिये।

(६) जमा चीवरोंका बाँटना

उस समय संघके भंडारमें चीवर जमा हो गये थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, संघके सामने बाँटनेकी।" 18

(७) चीवर-भाजकका चुनाव

उस समय सारा संघ (एकत्रित हो) बाँटता था, जिससे हल्ला होता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच गुणोंसे युक्त भिक्षुको ची व र-भा ज क (=चीवर बाँटनेवाला) चुननेकी (१) जो न स्वेच्छाचारी हो०[१]। 19

"और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनाव करना चाहिये०[१]।"

(८) चीवर बाँटनेका ढंग

तब चीवर-भाजक भिक्षुओंको ऐसा हुआ—'कैसे चीवर बाँटना चाहिये?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पहले चुनकर, तुलनाकर, रंग-रंग (को अलग)कर, भिक्षुओंकी गणनाकर, (उन्हें) वर्गमें बाँट चीवरके हिस्सेको स्थापित करनेकी।" 20

(९) भिक्षुओंसे श्रामणेरोंका हिस्सा

१—तब चीवर-भाजक भिक्षुओंको यह हुआ कैसे श्रामणेरोंको हिस्सा देना चाहिये? भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, श्रामणेरोंको उपार्ध (=दोतिहाई हिस्सा) देनेकी।" 21

२—उस समय एक भिक्षु अपने हिस्सेको छोळ देना चाहता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ छोळनेवालेको अपने भागके दे देनेकी।" 22

३—उस समय एक भिक्षु अधिक भागको छोळ देना चाहता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अनुक्षेप (=पूर्ति) दे देनेपर अधिक भागको दे देनेकी।" 23

(१०) बुरे चीवरोंपर चिट्ठी डालना

तब ची व र-भा ज क भिक्षुओंको यह हुआ—'कैसे चीवरका हिस्सा देना चाहिये?' क्या जैसा हाथमें आवे वैसाही या पुरानेके क्रमसे?" भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ खराबको जमाकर उसपर कुश डालनेकी।" 24

§३—चीवरकी रँगाई आदि

(१) चीवर रंगनेके रंग

उस समय भिक्षु गोबरसे भी, पीली मिट्टीसे भी, चीवरको रँगते थे। चीवर दुर्वर्ण होते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

[१] चीवर-प्रतिग्राहक (पृष्ठ २७६)की तरह।

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ छ रंगोंकी—(१) मूल (=जळसे निकला) रंग, (२) स्कंध-रंग, (३) त्वक् (=छालका)-रंग, (४) पत्र (=पत्तेका) रंग, (५) पुष्प-रंग, (६) फल-रंग।" 25

(२) रंग पकाना

१—उस समय भिक्षु कच्चे रंगसे रँगते थे, और चीवर दुर्गन्धयुक्त होते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ रंग पकानेकी और रंगके छोटे मटकेकी।" 26

२—रंग उतर आता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उ त्त रा लुम्प[1] बाँधनेकी।" 27

३—उस समय भिक्षु नहीं जानते थे कि रंग पका कि नहीं। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ पानीमें या नखपर बूँद डाल(कर परीक्षा ले)नेकी।" 28

(३) रंगके बर्तन

१—उस समय भिक्षु रंग उतारते समय हँळियाको खींचते थे जिससे हँळिया टूट जाती थी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ रंगके नाँदकी, और दंडसहित थालकी।"

२—उस समय भिक्षुओंके पास रँगनेका बर्तन न था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ रंगके कूँळेकी, रंगके घळेकी।" 29

३—उस समय भिक्षु थालीमें भी, पत्तेपर भी, चीवरको मलते थे। चीवर लसर जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ र ज न - द्रो णी[2]। 30

(४) चीवर सुखानेके सामान

१—उस समय भिक्षु ज़मीनपर चीवर फैला देते थे और चीवरमें धूल लग जाती थी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ तृणकी सँथरीकी।" 31

२—तृणकी सँथरीको कीड़े खा जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ चीवर (फैलाने)के बाँस और रस्सीकी।" 32

(५) रंगाईका ढंग

१—बीचमें डालते थे और रंग दोनों ओरसे बह जाता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ कोनोंके बाँधनेकी।" 33

२—कोने निर्बल हो जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ कोना बाँधनेके सूतकी।" 34

३—रंग एक ओरसे बहता था। ०।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ बराबर उलटते हुए रंगनेकी, और बूँदकी धार न टूटनेमें, न हटाने की।" 35

---

[1] पकानेके बर्तनके बीचमें रखनेका सामान।

[2] पत्थर या किसी और चीज़का रंगनेका विशाल पात्र, जिसका एक पुराना नमूना सांचीमें मौजूद है।

४—उस समय चीवर घना रँग जाता था ०—
"० अनुमति देता हूँ पानी में डालनेकी ।" 36
५—चीवर रूखा हो जाता था। ०—
"० अनुमति देता हूँ हाथसे कूटनेकी ।" 37

§४—चीवरोंकी कटाई, संख्या और मरम्मत

(१) काटकर सिले (=छिन्नक) चीवरका विधान

उस समय भिक्षु काषाय (वस्त्र)को विना काटे ही धारण करते थे।

२—दक्षिणागिरि

तब भगवान् रा ज गृ ह में इच्छानुसार विहारकर जिधर द क्षि णा गि रि है उधर चारिकाके लिये चले गये। भगवान्ने म ग ध के खेतोंको मेंळ बँधा, कतार बँधा, मर्यादा बँधा, और चौमेंळ-बँधा देखा। देखकर आयुष्मान् आनंदको संबोधित किया—

"आनंद ! देख रहा है तू मगधके खेतोंको मेंळ बँधा, कतार बँधा, मर्यादा बँधा, और चौमेंळ-बँधा ?"

"हाँ भन्ते !"

"आनन्द ! क्या तू भिक्षुओंके लिये ऐसे चीवर बना सकता है ?"

"सकता हूँ भगवान् !"

३—राजगृह

तब भगवान द क्षि णा गि रि में इच्छानुसार विहारकर फिर रा ज गृ ह चले आये। तब आयुष्मान् आनन्दने बहुतसे भिक्षुओंके चीवरोंको बनाकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्से यह बोले—

"भन्ते ! भगवान् मेरे बनाये चीवरोंको देखें।"

तब भगवान्ने इसी संबंधमें, इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! आनन्द पंडित है, आनन्द महाप्रज्ञ है जो कि उसने मेरे संक्षेपसे कहेका विस्तारसे अर्थ समझ लिया। क्यारी भी बनाई, आधी क्यारी भी बनाई, मंडल भी बनाया, अर्ध मंडल भी बनाया विवर्त (=मंडल और अर्ध मंडल दोनों मिलकर) भी बनाया, अनुविवर्त भी बनाया, ग्रै वे य क (=गर्दनकी जगह चीवरको मजबूत करनेकी दोहरी पट्टी) भी बनाया, जां घे य क (=पिंडलीकी जगह चीवरको मजबूत करनेकी दोहरी पट्टी) बा हु व न्त (=बाँहकी जगहका चीवरका भाग) भी बनाया। छि न्न क (=काटकर सिला चीवर), श स्त्र - रू क्ष (=मोटा-झोटा) और श्रमणोंके योग्य होगा और प्र त्य र्थी (=चुरानेवालों)के कामका न होगा।

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, संघाटी, उत्तरासंघ और अन्तरवासकको छि न्न क (=काट कर सिला) बनानेकी।" 38

४—वैशाली

(२) चीवरोंकी संख्या

तब भगवान् रा ज गृ ह में इच्छानुसार विहार कर जिधर वै शा ली है उधर चले गये। भगवान्ने राजगृह और वैशालीके मार्गमें बहुतसे भिक्षुओंको चीवरसे लदे देखा।—सिरपर भी चीवरकी पोटली, कंधेपर भी चीवरकी पोटली, कमरमें भी चीवरकी पोटली बाँधकर वह जा रहे थे। देखकर भगवान्को

यह हुआ—'यह मोघ पुरुष बहुत जल्दी चीवर बटोरू बनने लगे। अच्छा हो मैं चीवरकी सीमा बाँध दूँ, मर्यादा स्थापित कर दूँ। तब भगवान् क्रमशः चारिका करते जहाँ वैशाली है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् वैशालीमें गो त म क चै त्य में विहार करते थे। उस समय भगवान् हेमन्तमें अ न्त रा ष्ट क[1] की रातोंमें हिम-पातके समय रातको खुली जगहमें एक चीवर ले बैठे। भगवान्को सर्दी न मालूम हुई। प्रथम याम (=चार घंटा)के समाप्त होनेपर भगवान्को सर्दी मालूम हुई। भगवान्ने दूसरा चीवर ओढ़ लिया और भगवान्को सर्दी न मालूम हुई। बिचले याम के बीत जाने पर भगवान्को सर्दी मालूम हुई तब भगवान्ने तीसरे चीवरको पहन लिया और भगवान्को सर्दी न मालूम हुई। अन्तिम यामके बीत जाने पर अरुणके उगते रात्रिके न न्दि मु खी होने (=पौ फटने)के वक्त सर्दी मालूम हुई। तब भगवान्ने चौथा चीवर ओढ़ लिया। तब भगवान्को सर्दी न मालूम हुई। तब भगवान्को यह हुआ। जो कोई शी ता लु (=जिनको सर्दी ज़्यादा लगती है), सर्दीसे डरनेवाला कुल-पुत्र इस धर्ममें प्रव्रजित हुए हैं वह भी तीन चीवरसे गुज़ारा कर सकते हैं। अच्छा हो मैं भिक्षुओंके लिये चीवरकी सीमा बाँधू, मर्यादा स्थापित करूँ, तीन चीवरोंकी अनुमति दूँ।' तब भगवान्ने इसी प्रकरणमें, इसी संबंधमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! रा ज गृ ह और वै शा ली के मार्गमें आते वक़्त मैंने बहुतसे भिक्षुओंको चीवरसे लदे देखा ० (मैंने सोचा) अच्छा हो मैं भिक्षुओंके लिये तीन चीवरोंकी अनुमति दूँ।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ—(१) दोहरी सं घा टी, (२) एकहरे उ त्त रा सं घ (३) इकहरे अं त र वा स क; तीन चीवरोंकी।" 39

(३) फालतू चीवरोंके बारेमें नियम

१—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु—भगवान्ने तीन चीवरोंकी अनुमति दी है—(सोच), दूसरे तीन चीवरोंसे गाँवमें जाते थे, दूसरे ही तीन चीवरोंसे आराममें रहते थे और दूसरे ही तीन चीवरोंसे नहाने जाते थे। जो वह भिक्षु अल्पेच्छ थे. . ., वह हैरान. . .होते थे—'कैसे षड्वर्गीय भिक्षु फालतू चीवर धारण करते हैं।' तब उन लोगोंने भगवान्से यह बात कही। भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया।—

"भिक्षुओ! फालतू चीवर नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसको धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये।" 40

२—उस समय आयुष्मान् आ नं द को (एक) फालतू चीवर मिला था। आयुष्मान् आनंद उस चीवरको आयुष्मान् सा रि पु त्र को देना चाहते थे; और आयुष्मान् सारिपुत्र उस समय सा के त में विहार करते थे। तब आयुष्मान् आनंदको यह हुआ—'भगवान्ने विधान किया है कि फालतू चीवर नहीं धारण करना चाहिये और यह मुझे फालतू चीवर मिला है। मैं इस चीवरको आयुष्मान् सारिपुत्रको देना चाहता हूँ, और आयुष्मान् सा रि पु त्र साकेतमें विहार कर रहे हैं। मुझे कैसे करना चाहिये?'

तब आयुष्मान् आनंदने यह बात भगवान्से कही।—

"आनंद! कब तक सा रि पु त्र आयेगा?"

"नवें या दसवें दिन भगवान्।"

तब भगवान्ने इसी संबंधमें, इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ दस दिन तक फालतू चीवरको रख छोळने की।" 41

३—उस समय भिक्षुओंको फालतू चीवर मिलता था। तब भिक्षुओंको यह हुआ—'हमें इस

---

[1] माघकी अन्तिम चार और फागुनकी आरम्भिक चार रातें।

फालतू चीवरको क्या करना चाहिये ?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ फालतू चीवरके वि क ल्प करनेकी।"42

५ —वाराणसी

(४) पेवँद रफ़ू करना

तब भगवान् वै शा ली में इच्छानुसार विहारकर जिधर वा रा ण सी है उधर चारिकाके लिये चल पळे। क्रमशः चारिका करते जहाँ वाराणसी है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् वाराणसीके ऋ षि प त न मृ ग दा व में विहार करते थे। उस समय एक भिक्षुके अन्तरवासकमें छेद हो गया था। तब उस भिक्षुको यह हुआ—'भगवान्‌ने तीन चीवरोंका विधान किया है; दोहरी सं घा टी, इकहरे उ त्त रा सं घ और इकहरे अ न्त र वा स क की। और इस मेरे अन्तरवासकमें छेद हो गया है। क्यों न मैं पेवंद लगाऊँ जिससे कि (छेदके) चारों तरफ़ दोहरा हो जाये और बीचमें इकहरा ?' तब उस भिक्षुने पेवंद लगाया। आश्रममें घूमते वक़्त भगवान्‌ने उस भिक्षुको पेवंद लगाते देखा। देखकर जहाँ वह भिक्षु था वहाँ गये। जाकर उससे बोले—

"भिक्षु! तू क्या कर रहा है ?"

"भगवान्! पेवंद लगा रहा हूँ।"

"साधु! साधु! भिक्षु, तू ठीक ही पेवंद लगा रहा है।"

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, नये या नये जैसे कपळेकी दोहरी संघाटी, इकहरे उत्तरासंघ और इकहरे अन्तरवासककी; ऋतु खाये कपळेकी चौहरी, संघाटी, दोहरे उत्तरासंघ और दोहरे अन्तरवासककी; पां सु कू ल (=फेंके चीथळे) होनेपर यथेच्छ। दूकानके फेंके चीथळेको खोजना चाहिये। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पेवन्द, रफ़ू, डाँळे, टाँके, और दृढ़ी-कर्मकी।" 43

६ —श्रावस्ती

(५) विशाखाको वर

तब भगवान् वा रा ण सी में इच्छानुसार विहारकर जिधर श्रा व स्ती है उधर चले। फिर क्रमशः विहार करते जहाँ श्रावस्ती है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् श्रावस्तीमें अ ना थ पि डि क के आराम जेतवनमें विहार करते थे। तब वि शा खा मृ गा र मा ता जहाँ भगवान् थे वहाँ गई। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठी। एक ओर बैठी वि शा खा-मृगार माताको भगवान्‌ने धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित, सम्प्रहर्षित किया। तब विशाखा मृगार माता भगवान्‌की धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित, सम्प्रहर्षित हो भगवान्‌से यह बोली—

"भन्ते! भगवान् भिक्षु-संघके साथ कलका मेरा भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया। तब वि शा खा मृ गा र मा ता भगवान्‌की स्वीकृति जान भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चली गई।

उस समय इस रातके बीतनेपर चा तु र्द्वी पि क[1] महामेघ बरसने लगा। तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! जैसे यह जेतवनमें बरस रहा है वैसे ही चारों द्वीपोंमें बरस रहा है। भिक्षुओ!

[1] चारों द्वीपवाली सारी पृथ्वीपर जो एकही समय बरसता है।

वर्षामें शरीरको नहलाओ ! यह अन्तिम चा तु र्द्वी पि क महामेघ है ।"

"अच्छा भन्ते !" (कह) उन भिक्षुओंने भगवान्‌को उत्तर दे, चीवरको फेंक वर्षामें शरीरको नहलाने लगे। तब वि शा खा मृ गा र मा ता ने उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा दासीको आज्ञा दी—

"जा रे ! आराममें जाकर कालकी सूचना दे—(भोजनका) काल है। भन्ते भात तैयार है।"

"अच्छा आर्ये !" (कह) उस दासीने वि शा खा मृ गा र मा ता को उत्तर दे आराममें जा देखा कि भिक्षु चीवर फेंक शरीरको वर्षामें नहला रहे हैं। देखकर—आराममें भिक्षु नहीं हैं। आ जी व क[1] शरीरको वर्षा खिला रहे हैं—(सोच) जहां वि शा खा मृ गा र मा ता थी वहाँ गई। जाकर यह कहा—

"आर्ये आराममें भिक्षु नहीं है। आ जी व क शरीरको वर्षा खिला रहे हैं।"

तब पंडिता चतुरा मेधाविनी होनेसे वि शा खा मृ गा र मा ता को यह हुआ—

"निस्संशय आर्य लोग चीवर फेंककर शरीरको वर्षा खिला रहे हैं, और इस मूर्खाने मान लिया कि आराममें भिक्षु नहीं हैं और आ जी व क शरीरको वर्षा खिला रहे हैं।"

फिर दासीको आज्ञा दी—

"जारे ! आराममें जाकर समयकी सूचना दे—० ।"

तब वे भिक्षु शरीरको ठंढाकर शान्त शरीरवाले हो चीवरोंको ले अपने अपने विहारमें चले गये। तब वह दासी आराममें जा भिक्षुओंको न देख—आराममें भिक्षु नहीं हैं, आराम सूना है—(सोच) जहाँ वि शा खा मृ गा र मा ता थी वहाँ गई। जाकर वि शा खा मृ गा र मा ता से यह कहा—

"आर्ये ! आराममें भिक्षु नहीं है। आराम सूना है।"

तब पंडिता, चतुरा, मेधाविनी होनेसे वि शा खा मृ गा र मा ता को यह हुआ—

'निस्संशय आर्य लोग शरीरको ठंढाकर, शान्तकाय हो चीवरको लेकर अपने अपने विहारमें चले गये होंगे; और इस मूर्खाने समझा कि आराममें भिक्षु नहीं हैं, आराम सूना है।'

और फिर दासीको भेजा—'जारे ! ०'

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! पात्र-चीवर तैयार कर लो ! भोजनका समय है।"

अच्छा भन्ते ! (कह) उन भिक्षुओंने भगवान्‌को उत्तर दिया—

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर, पात्र-चीवर ले, जैसे बलवान् पुरुष (अप्रयास) समेटी बाँहको पसारे और पसारी बाँहको समेटे वैसे ही जे त व न में अन्तर्धान हो वि शा खा मृ गा र मा ता के कोठेपर प्रकट हुए और भिक्षु-संघके साथ बिछे आसनपर बैठे। तब वि शा खा मृ गा र मा ता—'आश्चर्य रे ! अद्भुत रे ! तथागतकी दिव्यशक्ति=महानुभावताको जोकि जाँघ भर, कमर भर, बाढ़के वर्तमान होनेपर भी एक भिक्षुका भी पैर, या चीवर न भीगा !—सोच हर्षित=उदग्र हो बुद्ध सहित भिक्षु-संघको उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा संतर्पित कर भगवान्‌के भोजन कर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर एक ओर बैठ गई।

(६) वर्षिकशाटी आदिका विधान

एक ओर बैठी वि शा खा मृ गा र मा ता ने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! मैं भगवान्‌से आठ वर माँगती हूँ।"

"विशाखे ! तथागत वरोंसे परे हो गये हैं।"

"भन्ते ! जो विहित हैं, जो निर्दोष हैं।"

---

[1] उस समयके नंगे साधुओंका एक संप्रदाय।

"बोल विशाखे !"

"भन्ते ! (१) मैं यावत्‌जीवन संघको वर्षाकी व र्षि क सा टि का (बरसातके लिये धोती) देना चाहती हूँ, (२) नवागन्तुकोंको भोजन देना; (३) प्रस्थान करनेवालोंको भोजन देना; (४) रोगीको भोजन देना; (५) रोगी परिचारकको भोजन देना; (६) रोगीको दवा देना; (७) सदा सबेरे यवागू (=खिचळी) देना; (८) भिक्षुणी-संघको उ द क सा टी [1] देना।"

"विशाखे ! क्या बात देख तूने तथागतसे आठ वर माँगे ?"

१—"भन्ते ! मैंने दासीको आज आज्ञा दी—'जारे ! आराममें जाकर कालकी सूचना दे—(भोजनका) काल है, भन्ते ! भोजन तैयार है—'तब उस दासीने आराममें जाकर देखा कि भिक्षु लोग कपड़े फेंक शरीरको वर्षा खिला रहे हैं, और मेरे पास. . .आकर कहा—'आर्ये ! आराममें भिक्षु नहीं हैं। आ जी व क शरीरको वर्षा खिला रहे हैं।' भन्ते ! नग्नता गंदी, घृणित, बुरी चीज है। भन्ते ! यह बात देख मैं संघको यावत् जीवन व र्षि क सा टि का देना चाहती हूँ ।

२—"और फिर भन्ते! नवागन्तुक भिक्षु गलीको नहीं जानते, रास्तेको नहीं जानते, थके हुए भिक्षाटन करते हैं। वह मेरे दिये नवागन्तुकके भोजनको खा, गली जाननेवाले, रास्ता पहिचाननेवाले हो, थकावट दूरकर भिक्षाचार करेंगे। भन्ते ! इस बातको देख मैं संघको यावत् जीवन नवागन्तुकको भोजन देना चाहती हूँ।

३—"और फिर भन्ते! प्रस्थान करनेवाले भिक्षुओंको अपना भोजन ढूँढ़ते वक़्त उनका कारवाँ छूट जाता है, या जहाँ वह निवास करनेको जाना चाहते हैं वहाँ वि का ल (=अपराह्ण)में पहुँचेंगे, थके हुए रास्ता जायँगे। मेरे प्रस्थान करनेवालोंके भोजनको खाकर उनका कारवाँ न छूटेगा और जहाँ वह जाना चाहते हैं वहाँ कालसे पहुँचेंगे। विना थकावटके रास्ता जायँगे। भन्ते इस बातको देख मैं चाहती हूँ संघको जीवन भर ग मि क - भोजन (प्रस्थान करनेवालोंको भोजन) देनेकी।

४—"और फिर भन्ते! रोगी भिक्षुको अनुकूल भोजन न मिलनेसे रोग बढ़ता है या मृत्यु होती है। भन्ते ! मेरे रोगी भोजनको खाकर उनका रोग नहीं बढ़ेगा, न मृत्यु होगी। भन्ते ! इस बातको देख मैं चाहती हूँ जीवन भर संघको रोगी-भोजन देना।

५—"और फिर भन्ते ! रोगी-परिचारक भिक्षु अपने भोजनकी खोजमें रोगीके पास चिरसे भोजन ले जायेगा या उस दिन खा न सकेगा। यदि वह रोगी-परिचारकके भोजनको खाकर रोगीके लिये कालसे भोजन ले जायेगा तो भ क्त च्छे द (=भोजन न मिलना) न होगा। भन्ते ! इस बातको देख मैं चाहती हूँ संघको जीवन भर रोगि-परिचारक-भोजन देना।

६—"और फिर भन्ते ! रोगी-भिक्षुको अनुकूल भैषज्य न मिलनेपर रोग बढ़ता है या मृत्यु होती है। मेरे रोगी-भैषज्यको ग्रहण करनेसे न उनका रोग बढ़ेगा, न मृत्यु होगी। भन्ते इस बातको देख मैं चाहती हूँ संघको यावत् जीवन रोगी-भैषज्य देना।

पर वह भिक्षुणियाँ चुप हो गईं। भन्ते ! स्त्रियोंकी नग्नता गंदी, घृणित, बुरी (चीज) है। भन्ते! इस बातको देख मैं चाहती हूँ कि भिक्षुणी संघको यावत् जीवन उदकसाटी देना।"

"विशाखे ! तूने किस गुणको देख तथागतसे आठ वर माँगे ?"

"भन्ते ! जब दिशाओंमें वर्षावासकर भिक्षु श्रावस्तीमें भगवान्‌के दर्शनके लिये आयेंगे तब भगवान्‌के पास आकर पूछेंगे—'भन्ते अमुक नामवाला भिक्षु मर गया। उसकी क्या गति है ? क्या परलोक है? उसके लिये भगवान् स्रोत-आपत्ति-फल, सकृदागामि-फल, अनागामि-फल, या अर्हत्वका व्याकरण करेंगे। उनके पास जाकर मैं पूछूँगी—'क्या भन्ते ! वह (मृत) आर्य श्रावस्तीमें कभी आये थे ?' यदि वह मुझसे कहेंगे—'वह भिक्षु पहले श्रावस्ती आया था तो मैं निश्चय कर लूँगी निस्संशय उस आर्यने ग्रहण किया होगा वर्षिकसाटिकाको या नवागन्तुक भोजनको, या गमिक-भोजनको या रोगि-भोजनको, या रोगि-परिचारक भोजनको, या रोगि-भैषज्यको या सदाके यवागूको। उसको यादकर मेरे चित्तमें प्रमोद होगा, प्रमुदित होनेसे प्रीति उत्पन्न होगी, प्रीतियुक्त होने पर काया शान्त होगी, काया शान्त होनेपर सुख-अनुभव करूँगी और सुखिनी होनेपर मेरा चित्त समाधिको प्राप्त होगा और वह होगी मेरी इन्द्रिय-भावना, बल-भावना, बोध्यंग-भावना। भन्ते ! इस गुणको देख मैंने तथागतसे आठ वर माँगे।"

"साधु ! साधु ! विशाखे, तूने इन गुणोंको ठीक ही देख तथागतसे आठ वर माँगे। विशाखे! स्वीकृति देता हूँ तुझे आठ वरोंकी।"

तब भगवान्‌ने विशाखा मृगारमाताको इन गाथाओंसे अनुमोदन किया—

"जो शीलवती, सुगतकी शिष्या प्रमुदित हो अन्न, पान देती है;
कृपणताको छोड़ शोक-हारक, सुख-दायक, स्वर्ग-प्रद दानको देती है।
वह निर्मल, निर्दोप, मार्गको या दिव्यबल और आयुको प्राप्त होगी।
पुण्यकी इच्छावाली वह सुखिनी और नीरोग हो चिरकाल तक स्वर्ग-लोकमें प्रमोद करेगी।"

तब भगवान् विशाखा मृगारमाताका इन गाथाओंसे अनुमोदनकर, आसनसे उठ चले गये।

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, वर्षिक-साटिकाकी, नवागंतुक-भोजनकी, गमिक-भोजनकी, रोगि-भोजनकी, रोगि-परिचारक-भोजनकी, रोगि-भैपज्यकी, सदाके यवागूकी, और भिक्षुणी-संघको उदक-साटीकी।" 44

विशाखा भाणवार समाप्त

(७) काया, चीवर और आसन आदिको सँभालकर बैठना

उस समय भिक्षु उत्तम भोजन खाकर स्मृति और संप्रजन्य (=जागरूकता) रहित हो नींद लेते थे। स्मृति और संप्रजन्य रहित हो नींद लेनेसे उनको स्वप्नदोप होता था और आसन वासन अशुचिसे मलिन होता था। तब आयुष्मान् आनंदको पीछे ले आश्रम घूमते वक्त भगवान्‌ने, आसन-वासनको अशुचि-पूर्ण देखा। देखकर आयुष्मान् आनंदको संबोधित किया—"आनंद क्यों ये आसन-वासन मलिन हो रहे हैं ?"

"भन्ते ! इस समय भिक्षु उत्तम भोजन खाकर स्मृति और संप्रजन्य रहित हो नींद लेते हैं। स्मृति और संप्रजन्य रहित हो नींद लेनेसे उनको स्वप्नदोप होता है और आसन-वासन अशुचिसे मलिन होता है।"

"यह ऐसा ही है आनंद ! यह ऐसा ही है आनंद ! आनंद ! स्मृति संप्रजन्य रहित हो निद्रा लेतेको स्वप्नदोप होता ही है। आनन्द ! जो भिक्षु स्मृति और संप्रजन्यसे युक्त हो निद्रा लेते हैं उनको

स्वप्नदोष नहीं होता। आनन्द! जो वह पृ थ क् ज न (=सांसारिक पुरुष) काम भोगोंमें वीतराग नहीं हैं उनको भी स्वप्नदोष नहीं होता। यह संभव नहीं आनन्द! इसकी जगह नहीं कि अर्हतोंको स्वप्न-दोष हो।"

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! आज मैंने आनंदको पीछे ले आश्रम घूमते वक्त आसन-वासनको अशुचि-पूर्ण देखा ० अर्हतोंको स्वप्नदोष हो।"

"भिक्षुओ! स्मृ ति सं प्र ज न्य रहित हो निद्रा लेनेके यह पाँच दोष है—(१) दुःखके साथ सोता है; (२) दुःखके साथ जागता है; (३) बुरे स्वप्नको देखता है; (४) देवता रक्षा नहीं करते; (५) स्वप्नदोष होता है।—भिक्षुओ! स्मृ ति सं प्र ज न्य रहित हो निद्रा लेनेके यह पाँच दोष हैं।

"भिक्षुओ! स्मृ ति सं प्र ज न्य युक्त हो निद्रा लेनेके यह पाँच गुण हैं—(१) सुखसे सोता है; (२) सुखसे जागता है; (३) बुरे स्वप्न नहीं देखता; (४) देवता रक्षा करते हैं; (५) स्वप्नदोष नहीं होता। भिक्षुओ! स्मृ ति सं प्र ज न्य युक्त हो निद्रा लेनेके यह पाँच गुण हैं।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ कायकी रक्षा करते, चीवरकी रक्षा करते, आसन-वासनकी रक्षा करते बैठनेकी।" 45

§ ५—कुछ और वस्त्रोंका विधान तथा चीवरोंके लिये नियम

(१) बिछौनेकी चादर

उस समय बिछौना बहुत छोटा होता था और वह सारे आसनको नहीं ढकता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ प्र त्य स्त र ण (=आसनकी चादर) जितना बळा चाहे उतना बळा बनानेकी।" 46

(२) रोगीकी कोपीन

"भन्ते! भगवान् इस मेरे मुख पोंछनेके वस्त्रको स्वीकार करें जिसमें कि यह मुझे चिरकाल तक हित सुखके लिये हो।"

भगवान्ने मुख पोंछनेके वस्त्रको स्वीकार किया। ० वि शा खा मृ गा र मा ता भगवान्की धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित सम्प्रहर्षित हो आसनसे उठकर चली गई। तब भगवान्ने० भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ मुख पोंछनेके वस्त्रकी।" 48

(४) पाँच बातोंसे युक्त व्यक्तिको विश्वसनीय समझना

उस समय रो ज म ल्ल आयुष्मान् आनन्दका मित्र था। रो ज म ल्ल ने क्षौ म (=अलसीकी छालका बना कपड़ा)की पि लो ति का आयुष्मान् आनन्दके हाथमें दी थी और आयुष्मान् आनन्दको क्षौम पि लो ति का की आवश्यकता थी। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच बातोंसे युक्त (=व्यक्ति)पर विश्वास करनेकी—(१) प्रसिद्ध हो; (२) संभ्रान्त हो; (३) बोलनेवाला हो; (४) जीता हो; (५) लेनेपर मुझसे संतुष्ट होगा यह जानता हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ इन पाँच बातोंसे युक्तपर विश्वास करनेकी।" 49

(५) जलछक्के आदिके लिये उपयोगी वस्त्र

उस समय भिक्षुओंके तीनों चीवर पूर्ण थे किन्तु उन्हें जलछक्के और थैलेकी आवश्यकता थी। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ प रि ष्का र (=कामकी वस्तुओं)के वस्त्रकी।" 50

(६) वस्त्रोंमें कुछका सदा और कुछका बारी बारीसे इस्तेमाल करना

तब भिक्षुओंको यह हुआ—भगवान्ने जिन चीज़ोंके लिये अनुमति दी है (-जैसे कि)—तीन चीवर, वर्षिक साटिका, आसन, प्रत्यस्तरण, कंडूक-प्रतिच्छादन, या मुख पोंछनेका वस्त्र या परिष्कार वस्त्र; उन सभीका उपयोग करना चाहिये, या उनका वि क ल्प[1] करना चाहिये। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ तीनों चीवरोंको उपयोग करनेकी। विकल्प करनेकी नहीं। वर्षिक साटिकाको वर्षाके चारों मासों तक इस्तेमाल करनेकी उसके बाद विकल्प करनेकी; आसनको इस्तेमाल करनेकी, विकल्प करनेकी नहीं; प्र त्य स्त र ण को इस्तेमाल करनेकी, विकल्प करनेकी नहीं; कं डू क प्र ति च्छा द न को जब तक रोग है इस्तेमाल करनेकी, इसके बाद विकल्प करनेकी; मुख पोंछनेके वस्त्रको इस्तेमाल करनेकी, विकल्प करनेकी नहीं; परिष्कार, वस्त्रको इस्तेमाल करनेकी, विकल्प करनेकी नहीं।" 51

(७) बारीवाले चीवरकी लम्बाई चौड़ाई

तब भिक्षुओंको यह हुआ—'कितने पीछेके चीवरका विकल्प करना चाहिये।' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, बुद्धके अंगुलसे लम्बाईमें आठ अंगुल; चौड़ाईमें चार अंगुल पीछेके चीवरको विकल्प करनेकी।" 52

---

[1] जिनको एक साथ नहीं रखा जा सकता।

(८) चीवरको हल्का, नरम आदि करनेका ढंग

१—उस समय आयुष्मान् म हा का श्य प का पांसुकूलसे बना (चीवर) भारी था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सू त्र रु क्ष[1] करनेकी।" 53

२—(चीवरका) कान लटका था। भगवान्ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ लटके कानको निकालनेकी।" 54

३—सूत बिखरे रहते थे। भगवान्ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, हवाके रुख ऊपर चढ़ा लेनेकी।" 55

४—उस समय संघाटीसे पात्र टूट जाते थे। भगवान्ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अष्टपदक[2] करनेकी।" 56

(९) कपड़ा कम होनेपर तीनों चीवरको छिन्नक नहीं बनाना

१—उस समय एक भिक्षुके लिये तीनों चीवर बनाते वक्त सारे छिन्नक (=टुकळेसिये) करके नही पूरे होते थे। भगवान्ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, दो चीवरके छिन्नक होनेकी और एकके अछिन्नक होनेकी।" 57

२—दो छिन्नक और एक अछिन्नक भी नही पूरे पळते थे। भगवान्ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ दो अछिन्नक और एक छिन्नककी।" 58

३—दो अछिन्नक और एक छिन्नक भी नही पूरा पळता था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अ न्वा धि क (=जोळ)को भी लगानेकी। किन्तु भिक्षुओ सभी (चीवर)को अछिन्नक नही धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 59

(१०) अधिक वस्त्र माता-पिताको दिया जा सकता है

उस समय एक भिक्षुको बहुत चीवर (=कपळा, वस्त्र) मिला था। वह उसे माता-पिताको देना चाहता था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! माता-पिताके देनेको मैं क्या कहूँ। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ माता-पिताको देनेकी। भिक्षुओ! श्रद्धासे दियेको नही फेंकना चाहिये। जो फेंके उसको दुक्कटका दोष हो।" 60

(११) एक चीवरसे गाँवमें नहीं जाना

उस समय एक भिक्षु अ न्ध व न में चीवरको डालकर उसके पास जो एक और (चीवर) था उसके साथ गाँवमें भिक्षाके लिये गया। चोर उस चीवरको चुरा ले गया और वह भिक्षु खराब चीवर-वाला, मैले चीवरवाला हो गया। भिक्षुओंने पूछा—"आवुस! तू क्यों खराब चीवरवाला, मैले चीवर वाला है?"

"आवुसो! मैं अन्धवनमें चीवर डालकर० भिक्षाके लिये गया। चोरोंने उस चीवरको चुरा लिया। इसीसे मैं खराब चीवरवाला, मैले चीवरवाला हूँ।" भगवान्ने यह बात कही।—

[1] चीवरकी सारी सलाइयोंको सेंककी चौहरा करना होता है। सू त्र रु क्ष करनेमें कपळेको दोहरा करनेके बजाय सूतकी सिलाईहीसे वह काम लिया जाता है।

[2] [illegible]

"भिक्षुओ ! एकही (और) बचे चीवरसे गाँवमें नहीं जाना चाहिये। जो जाये उसको दुक्कट का दोष हो।" 61

(१२) चीवरोंमेंसे किसी एकको छोळ रखनेके कारण

उस समय आयुष्मान् आ न न्द (पहने चीवरको छोळ) और दूसरे चीवरके न रहते गाँवमें भिक्षाके लिये गये। भिक्षुओंने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा—

"क्यों आवुस ! आनन्द, भगवान्‌ने एकही चीवर और रहते गाँवमें जानेको मना किया है न? आवुस ! तुम क्यों एकही चीवर और रहते गाँवमें प्रविष्ट हुए।"

"आवुसो ! यह है। भगवान्‌ने एकही चीवर और रहते गाँवमें जानेको मना किया है, किन्तु मैं न रहनेपर प्रविष्ट हुआ हूँ।"

भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! इन पाँच कारणोंसे सं घा टी रख छोळी जा सकती है—(१) रोगी होता है; (२) वर्षाका लक्षण मालूम होता है; (३) या नदी पार गया होता है; (४) या किवाळसे रक्षित विहार होता है; (५) या क ठि न आस्थत हो गया होता है। भिक्षुओ ! संघाटी छोळ रखनेके ये चार कारण (ठीक) हैं। भिक्षुओ ! इन पाँच कारणोंसे उ त्त रा सं घ रख छोळा जा सकता है— (१) रोगी होता है; (२) वर्षाका लक्षण मालूम होता है०; (५) या क ठि न आस्थत हो गया होता है; ०। भिक्षुओ ! इन पाँच कारणोंसे अ न्त र वा स क रख छोळा जा सकता है— (१) रोगी होता है; (२) वर्षाका लक्षण मालूम होता है०; (५) या कठिन आस्थत हो गया होता है; ०। भिक्षुओ ! इन पाँच कारणोंसे व र्षि क सा टि का को रख छोळा जा सकता है—(१) रोगी होता है; (२) सीमाके बाहर गया हो; (३) नदीके पार गया हो; (४) या किवाळसे रक्षित विहार हो; (५) वर्षिक साटिका न बनी या बेठीक बनी हो; भिक्षुओ ! इन पाँच कारणोंसे वर्षिक साटिका रख छोळी जा सकती है।" 62

§६—चीवरोंका बँटवारा

(१) संघके लिये दिये चीवरपर अधिकार

१—उस समय एक भिक्षुने अकेलेही वर्षावास किया। वहाँ लोगोंने—'संघको देते हैं'—(कह) चीवर दिये। तब उस भिक्षुको यह हुआ—'भगवान्‌ने विधान किया है, कमसे कम चार व्यक्तिके संघका, और मैं अकेला हूँ। इन लोगोंने—'संघको देते हैं' (कह) चीवर दिये हैं। क्यों न मैं इन सांघिक (= संघके) चीवरोंको श्रा व स्ती ले चलूँ?' तब उस भिक्षुने उन चीवरोंको ले श्रावस्ती जा भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षु ! जबतक कठिन न मिल जाय वह चीवर तेरेही हैं। भिक्षुओ ! यदि भिक्षुने अकेला वर्षावास किया है और मनुष्योंने—'संघको देते हैं'—(कह) चीवर दिये हैं। तो भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उन चीवरोंके उसीके होनेकी; जब तक कि कठिन नहीं मिल जाता।" 63

२—उस समय एक भिक्षुने एक ऋतुभर अकेले वास किया। वहाँ मनुष्योंने—'संघको देते हैं'—(कह) चीवर दिया। ०[1] ०—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ संघके सामने बाँटनेकी।" 64

---

[1]ऊपरहीकी तरह यहाँ भी दुहराना चाहिये।

३—"यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षुने एक ऋतुभर अकेले वास किया। वहाँ मनुष्योंने—'संघको देते हैं'—(कह) चीवर दिया हो; तो—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उस भिक्षुको—'यह चीवर मेरे हैं'—(कह) उन चीवरोंको इस्तेमाल करनेकी। यदि भिक्षुओ ! उन चीवरोंको इस्तेमाल करनेसे पहिले दूसरा भिक्षु आ जाय तो बराबरका हिस्सा देना चाहिये। यदि भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंके चीवर बाँटते समय किन्तु कुश पड़नेसे पहिले दूसरा भिक्षु आजाय तो उसेभी बराबरका भाग देना चाहिये। भिक्षुओ ! यदि उन भिक्षुओंके चीवर बाँटते समय और कुशके डाल देनेपर दूसरा भिक्षु आवे तो इच्छा न होनेपर भाग न देना चाहिये।" 65

४—उस समय आयुष्मान् ऋ षि दा स और आयुष्मान् ऋ षि भ द्र दो भाई स्थविर वर्षावास कर एक गाँवके आवासमें गये। लोगोंने—देरसे स्थविर लोग आये हैं—(कह) चीवर सहित भोजन तैयार किया। आवासके रहनेवाले भिक्षुओंने स्थविरोंसे पूछा—

"भन्ते ! स्थविरोंके कारण यह सांघिक चीवर मिले हैं। स्थविर (इनमें) भाग लेंगे ?"

स्थविरोंने यह कहा—"आवुसो ! जैसा कि हम भगवान्‌के उपदेशे धर्मको जानते हैं (उससे) जबतक क ठि न न मिले तबतक तुम्हारेही वे चीवर होते हैं।"

उस समय तीन भिक्षु राजगृहमें वर्षावास करते थे। वहाँ लोग—'संघको देते हैं'—(कह) चीवर देते थे। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—'भगवान्‌ने कमसे कम चार व्यक्तिका संघ कहा है, और हम तीन ही जने हैं। यह लोग—'संघको देते हैं'—(कह) चीवर दे रहे हैं। हमें कैसे करना चाहिये ?'

५—उस समय[1] आयुष्मान् नी ल वा सी आयुष्मान् साँ ण वा सी; आयुष्मान् गो प क, आयुष्मान् भृ गु, और आयुष्मान् फल्गिक सं दा न—बहुतसे स्थविर पा ट लि पु त्र के कु क्कु टा रा म में विहार करते थे। तब उन भिक्षुओंने पाटलिपुत्र जा उन स्थविरोंसे पूछा। स्थविरोंने यह कहा—

"आवुसो ! जैसा कि हम भगवान्‌के उपदेशे धर्मको जानते हैं, जब तक क ठि न न मिले तुम्हारे ही वे होते हैं।"

(२) वर्षावासके भिन्न स्थानके चीवरमें भाग नहीं

उस समय आयुष्मान् उ प नं द शाक्यपुत्र श्रा व स्ती में वर्षावासकर एक ग्रामके आवासमें गये। वहाँ चीवर बाँटनेके लिये भिक्षु जमा हुए थे। उन्होंने यह कहा—

"आवुस ! यह सांघिक चीवर बाँटे जा रहे हैं। आप इनमें हिस्सा लेंगे ?"

"हाँ आवुस ! लूँगा"—(कह) वहाँसे चीवरमें-भाग ले दूसरे आवासमें गये। वहाँ (भी) चीवर बाँटनेके लिये भिक्षु जमा हुए थे। उन्होंने यह कहा—"आवुस ! यह सांघिक चीवर बाँटे जा रहे हैं। आप (इनमें) हिस्सा लेंगे ?"

"आवुस! यह सांघिक चीवर बांटे जा रहे हैं। आप (इसमें) हिस्सा लेंगे?"

"हाँ आवुस! लूँगा"—(कह) वहाँसे चीवर-भाग ले बळा भारी चीवरका गट्ठर बाँध फिर श्रा व स्ती लौट आये। भिक्षुओंने यह कहा—

"आवुस उपनंद! तुम बळे पुण्यवान् हो। तुम्हें बहुत चीवर मिला है।"

"आवुसो! कहाँसे मैं पुण्यवान् हूँ? आवुसो! मैं यहाँ श्रावस्तीमें वर्षावासकर एक ग्रामके आवासमें गया० वहाँसे भी चीवर-भाग लिया। इस प्रकार मुझे बहुत चीवर मिल गया।"

"क्या आवुस उपनंद! दूसरी जगह वर्षावास करके तुमने दूसरी जगह चीवर-भाग लिया?"

"हाँ आवुस!"

तब वह जो भिक्षु अल्पेच्छ...थे वह हैरान...होते थे—"कैसे आयुष्मान् उ प नं द शाक्यपुत्र दूसरी जगह वर्षावासकर दूसरी जगह चीवर-भाग लेंगे!!" भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच उपनंद! तूने दूसरी जगह वर्षावासकर, दूसरी जगह चीवर-भाग लिया?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्!"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—

"कैसे तू मोघ-पुरुष! दूसरी जगह वर्षावासकर दूसरी जगह चीवर-भाग लेगा! मोघपुरुष! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है०।"

फटकारकर भगवान्ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! दूसरी जगह वर्षावास करके, दूसरी जगह चीवर-भाग नहीं लेना चाहिये। जो ले उसको दुक्कटका दोष हो।" 66

(३) दो स्थानमें वर्षावास करनेपर हिस्सेका आधा ही आधा

उस समय आयुष्मान् उ प नं द शाक्यपुत्रने—इस प्रकार मुझे बहुत चीवर मिलेगा—(सोच) अकेले दो आवासोंमें वर्षावास किया। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—'कैसे आयुष्मान् उ प नं द शाक्यपुत्रको चीवरमें हिस्सा देना चाहिये?'—भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! दे दो मोघ पुरुषको एक भाग।

"यदि भिक्षुओ! भिक्षु—'इस प्रकार मुझे बहुत चीवर मिलेगा'—सोच अकेले दो आवासोंमें वर्षावास करे और यदि एक जगह आधा और दूसरी जगह आधा बसे तो एक जगहसे आधा और दूसरी जगहसे आधा चीवर-भाग देना चाहिये। या जहाँ बहुत अधिक बसा हो वहाँसे चीवर-भाग देना चाहिये।" 67

§७–रोगीकी सेवा और मृतकका दायभागी

(१) रोगीकी सेवाका भार

उस समय एक भिक्षुको पेट विगळनेकी बीमारी थी। वह अपने मल-मूत्रमें पळा था। तब भगवान् आयुष्मान् आनंदको पीछे लिये आश्रम घूमते हुए जहाँ उस भिक्षुका विहार था वहाँ पहुँचे। भगवान्ने उस भिक्षुको अपने मल-मूत्रमें पळा देखा। देखकर जहाँ वह भिक्षु था वहाँ गये। जाकर उस भिक्षुसे यह बोले—

"भिक्षु! तुझे क्या रोग है?"

"पेटमें विकार है, भगवान्।"

"है तेरे पास भिक्षु ! कोई परिचारक ?"

"नहीं है भगवान् ।"

"क्यों भिक्षु तेरी परिचर्या नहीं करते ?"

"भन्ते ! मैं भिक्षुओंका कोई काम करनेवाला न था, इसलिये भिक्षु मेरी परिचर्या नहीं करते ।"

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

"जा आनंद ! पानी ला, इस भिक्षुको नहलायेंगे ।"

"अच्छा भन्ते !"—(कह) आयुष्मान् आनंद भगवान्‌को उत्तर दे पानी लाये। भगवान्‌ने पानी डाला। आयुष्मान् आनंदने धोया। भगवान्‌ने शिरसे पकळा तथा आयुष्मान् आनंदने पैरसे, और उठाकर चारपाई पर लिटा दिया।

तब भगवान्‌ने उसी संबंधमें उसी प्रकरणमें भिक्षु संघको एकत्रितकर पूछा—

"भिक्षुओ ! क्या अमुक विहारमें रोगी भिक्षु है ?"

"है, भगवान् ।"

"भिक्षुओ ! उस भिक्षुको क्या रोग है ?"

"भन्ते ! उस आयुष्मान्‌को पेटके विकारका रोग है ।"

"है कोई, भिक्षुओ ! उस भिक्षुका परिचारक ?"

"नहीं है भगवान् ।"

"क्यों भिक्षु उसकी सेवा नहीं करते ?"

"भन्ते ! वह भिक्षु भिक्षुओंका कोई काम करनेवाला नहीं था, इसलिये भिक्षु उसकी सेवा नहीं करते ।"

"भिक्षुओ ! न तुम्हारे माता हैं न पिता; जो कि तुम्हारी सेवा करेंगे। यदि तुम एक दूसरेकी सेवा नहीं करोगे तो कौन सेवा करेगा ?

"भिक्षुओ ! जो मेरी सेवा करना चाहे वह रोगीकी सेवा करे। यदि उपाध्याय है तो उपाध्यायको यावत् जीवन सेवा करनी चाहिये जब तक कि रोगी रोग-मुक्त न हो जाय। यदि आचार्य है ०। यदि साथ विहार करनेवाला है ०। यदि शिष्य है ०। यदि एक-उपाध्याय-का शिष्य है ०। यदि एक-आचार्य-का शिष्य है तो यावत्-जीवन सेवा करनी चाहिये जब तक कि रोगी रोग-मुक्त न हो जाय। यदि नहीं है तो उपाध्याय, आचार्य, साथ-विहरनेवाला (=चेला), शिष्य, एक-उपाध्याय-का-शिष्य, एक-आचार्य-का-शिष्य या संघको सेवा करनी चाहिये। यदि न सेवा करे तो दुक्कटका दोष हो।" 68

(२) कैसे रोगीकी सेवा दुष्कर है

"भिक्षुओ ! पांच बातोंसे युक्त रोगीकी सेवा करनी मुश्किल होती है—(१) (साथियोंके) अनुकूल न करनेवाला होता है, (२) अनुकूलकी मात्रा नहीं जानता, (३) औषध सेवन नहीं करता, (४) हित चाहनेवाले रोगि-परिचारकसे ठीक ठीक रोगकी बात नहीं प्रकट करता—बढ़ते (रोग)को बढ़ रहा है, घटतेको घट रहा है, ठहरेको ठहरा है, (५) दुःखमय, तीव्र, खर, कटु, प्रतिकूल, अप्रिय, प्राणहर, शारीरिक पीड़ाओंका सहनेवाला नहीं होता। भिक्षुओ ! पांच बातोंसे युक्त रोगीकी सेवा करनी मुश्किल होती है।"

परिचारकसे ठीक ठीक रोगकी बात प्रगट करता है—०; (५) दुःखमय ० शारीरिक पीळाओंको सहनेवाला होता है। भिक्षुओ ! इन पांच ०।"

(४) अयोग्य रोगी परिचारक

"भिक्षुओ ! पांच बातोंसे युक्त रो गी - प रि चा र क रोगीकी परिचर्या करने योग्य नहीं होता— (१) दवा नहीं ठीक कर सकता; (२) अनुकूल-प्रतिकूल (वस्तु)को नहीं जानना, प्रतिकूलको देता है, अनुकूलको हटाता है; (३) किसी लाभके ख्यालसे रोगीकी सेवा करता है मैत्री-पूर्ण चित्तसे नहीं; (४) मल-मूत्र, थूक और वमनके हटानेमें घृणा करता है; (५) रोगीको समय समय पर धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित, सम्प्रहर्षित करनेमें समर्थ नहीं होता। भिक्षुओ ! इन पांच ०।"

(५) योग्य रोगी परिचारक

"भिक्षुओ ! पांच बातोंसे युक्त रो गी - प रि चा र क रोगीकी परिचर्या करने योग्य होता है— (१) दवा ठीक करनेमें समर्थ होता है; (२) अनुकूल-प्रतिकूल (वस्तु)को जानता है—प्रतिकूलको हटाता है, अनुकूलको देता है; (३) किसी लाभके ख्यालसे नहीं, मैत्री-पूर्ण चित्तसे रोगीकी सेवा करता है; (४) मल-मूत्र, थूक और वमनके हटानेमें घृणा नहीं करता; (५) रोगीको समय समयपर धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित, सम्प्रहर्षित करनेमें समर्थ होता है। भिक्षुओ ! इन पाँच ०।"

(६) मरे भिक्षु या श्रामणेरकी चीजका मालिक संघ

१—उस समय दो भिक्षु को स ल ज न प द में रास्तेसे जा रहे थे। वह एक आवासमें गये। वहाँ एक बीमार भिक्षु था। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—'आवुस ! भगवान्ने रोगी-सेवाकी प्रशंसा की है। आओ आवुस ! हम इस रोगीकी सेवा करें।' उन्होंने उसकी सेवाकी। उनके सेवा करतेमें वह मर गया। तब उन भिक्षुओंने उस भिक्षुके पात्र-चीवरको लेकर श्रावस्ती जा भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! मरे भिक्षुके पात्र-चीवरका स्वामी संघ है; यदि रो गी - प रि चा र क ने बहुत काम किया हो तो भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ संघको तीन चीवर और पात्रको रो गी - प रि चा र क को देने की। 69

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार देना चाहिये; वह रो गी - परि चा र क भिक्षु संघके पास जाकर ऐसा कहे—'भन्ते ! अमुक नामवाला भिक्षु मर गया है। यह उसका त्रिचीवर और पात्र है।' फिर चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—'पूज्य संघ मेरी सुने। अमुक नामका भिक्षु मर गया। यह उसका त्रि-चीवर और पात्र है। यदि संघ उचित समझे तो वह त्रिचीवर और पात्रको इस रो गी - प रि चा र क को दे। यह सूचना है ०। संघको यह पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।"

२. उस समय एक श्रामणेर मर गया। भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! श्रामणेरके मरनेपर उसके पात्र-चीवरका स्वामी संघ है; यदि रोगी-परिचारकने बहुत काम किया हो तो भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ संघको तीन चीवर और पात्रको रोगी-परिचारकको देने की। 70

०[1] ऐसा मैं इसे समझता हूँ।"

(७) मरेकी संपत्तिमें सेवा करनेवाले भिक्षु और श्रामणेरका भाग

१—उस समय एक भिक्षु और एक श्रामणेरने एक रोगीकी सेवाकी । उनकी सेवा करतेमें वह

---

[1] ऊपरकी तरह यहाँ भी दुहराना चाहिये ।

मर गया। तब उस रोगी-परिचारक भिक्षुको ऐसा हुआ—'रो गी - प रि चा र क श्रामणेरको कैसे हिस्सा देना चाहिये ?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, रोगी-परिचारक श्रामणेरको बराबरका भाग देने की।" 71

२—उस समय बहुत भांड-बहुत सामानवाला एक भिक्षु मर गया। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! भिक्षुके मरनेपर उसके पात्र-चीवरका स्वामी संघ है। यदि रोगी-परिचारकने बहुत काम किया हो तो अनुमति देता हूँ संघको त्रिचीवर और पात्र रोगी-परिचारकको देनेकी। जो वहाँ छोटे छोटे भांड, छोटे छोटे सामान हों उन्हें संघके सामने बाँटने की; जो वहाँ बळे बळे भांड, बळे बळे सामान हों उन्हें बिना दिये, बिना बाँटे आगत-अनागत (=वर्तमान और भविष्यके) चातुर्दिश (=चारों दिशाओंके, सारे संसारके) संघकी (सम्पत्ति) होने की।" 72

§८—चीवरोंके वस्त्र रंग आदि

(१) नंगे रहनेका निषेध

उस समय एक भिक्षु नंगा हो जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्से यह बोला—

"भन्ते ! भगवान्ने अनेक प्रकारसे अल्पेच्छता (=त्यागी जीवन) सन्तोष, तपस्या, (अव-) धूतपन, प्रासादिकता, अ-संग्रह, और उद्योगकी प्रशंसा करते हैं। भन्ते ! यह नग्नता अनेक प्रकारसे अल्पेच्छता ०और उद्योगकी लानेवाली है। अच्छा हो भन्ते ! भगवान् भिक्षुओंको नग्न रहनेकी अनुमति दें।"

भगवान्ने फटकारा—

"अयुक्त है मोघपुरुष ! अनुचित है, अप्रतिरूप, श्रमणके आचरणके विरुद्ध, अविहित है, अकरणीय है। कैसे मोघपुरुष तूने तीर्थिकोंके आचार इस नग्नताको ग्रहण किया ! मोघपुरुष ! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! नग्नताको जो कि तीर्थिकोंका आचार है नहीं ग्रहण करनी चाहिये। जो ग्रहण करे उसको थुल्लच्चयका दोष हो।" 73

(=टाट) पहनकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया ०।—[1]

"भिक्षुओ ! पोत्थकको नहीं पहनना चाहिये। जो पहिने उसको दुक्कटका दोष हो।" 75

(३) बिल्कुल नीले पीले आदि चीवरोंका निषेध

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सारे ही नीले चीवरोंको धारण करते थे, सारे ही पीले चीवरोंको धारण करते थे, सारे ही लाल०, सारे ही मजीठ०, सारे ही काले०, सारे ही महारंगसे रंगे०, सारे ही महानाम (=हल्दी)से रंगे चीवरोंको धारण करते थे। कटी किनारीवाले चीवरोंको धारण करते थे; लंबी किनारीके चीवरोंको धारण करते थे; फूलदार किनारीवाले चीवरोंको धारण करते थे, फन (की शकलकी) किनारीवाले चीवरोंको धारण करते थे। कंचुक धारण करते थे। तिरीटक (=एक छाल)को धारण करते थे। वेठन धारण करते थे। लोग हैरान...होते थे—'कैसे० जैसे कि काम-भोगी गृहस्थ।' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! न सारे नीले चीवरोंको धारण करना चाहिये, न सारे पीले चीवरोंको धारण करना चाहिये ० न वेठन धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 76

(४) चीवर आदिके न मिलनेपर सङ्घका कर्त्तव्य

१—उस समय वर्षावासकर भिक्षु चीवर न मिलनेसे चले जाते थे, भिक्षु-आश्रम छोळकर चले जाते थे। मर भी जाते थे। श्रामणेर बन जाते थे। (भिक्षु-) शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवाले हो जाते थे। अन्तिम वस्तु (=पाराजिक)के दोषी माननेवाले भी हो जाते थे, उन्मत्त०, विक्षिप्त-चित्त०, होश न रखनेवाले०, दोष न देखनेपर भी (अपनेको) उत्क्षिप्तक माननेवाले होते थे, दोषके प्रतिकार न करनेवाले उत्क्षिप्तक भी०, बुरी धारणाको न त्यागनेसे (अपनेको) उत्क्षिप्तक माननेवाले होते थे, पंडक भी०, चोरके साथ वास करनेवाले भी०, तीर्थिकके पास चले जानेवाले भी०, तिर्यक् योनि[2]में गये भी०, मातृघातक भी०, पितृघातक भी०, अर्हत् घातक भी०, भिक्षुणीदूषक भी०, संघमें फूट डालने-वाले भी०, (बुद्धके शरीरसे) लोहू निकालनेवाले भी०, (स्त्री पुरुष) दोनोंके लिंगवाले भी (अपनेको) बतलानेवाले होते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"यदि भिक्षुओ ! वर्षावासकर भिक्षु, चीवरके न पानेसे चला जाता है तो योग्य ग्राहक[3] होते पर देना चाहिये। 77

(५) चीवरोंका सङ्घ मालिक

१—"यदि भिक्षुओ ! वर्षावासकर भिक्षु चीवरके न पानेसे भिक्षु-आश्रमको छोळ जाता है, मर जाता है, श्रामणेर०, (भिक्षु-)शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवाला०, अंतिम वस्तुका दोषी अपनेको माननेवाला होता है, तो संघ मालिक है। 78

२—"यदि ० उन्मत्त० बुरी धारणाके न त्यागनेसे उत्क्षिप्तक मानता है तो योग्य ग्राहक होने पर देना चाहिये। 79

३—"यदि०, पंडक०, दोनों लिंगोंवाला माननेवाला होता है तो संघ मालिक है।" 80

४—"यदि भिक्षुओ ! वर्षावासकर चीवरके मिलनेपर (किन्तु उसके) बाँटनेसे पहले चला जाता है तो योग्य ग्राहक होनेपर देना चाहिये। 81

---

[1] ऊपरकी तरह यहाँ भी समझना चाहिये। मिलाओ चुल्लवग्ग भिक्षुणी-स्कन्धक (पृष्ठ ५१९)।

[2] पशु और प्रेत की योनि।

[3] चीवर आदि देकर संग्रह करने योग्य।

५—"यदि भिक्षुओ! वर्षावासकर चीवर मिलनेपर (किन्तु उसके) बाँटनेसे पहले भिक्षु आश्रम छोळ चला जाता है, मर जाता है० अन्तिम वस्तुका दोषी माननेवाला होता है तो संघ स्वामी है।" 82

६—"यदि० बाँटनेसे पहिले उन्मत्त०, बुरी धारणाके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक माननेवाला होता है तो योग्य ग्राहक होनेपर देना चाहिये।" 83

७—"यदि० बाँटनेसे पहले पंडक० दोनोंके लिंगोंवाला माननेवाला होता है तो संघ मालिक है।" 84

§९—चीवर-दान और चीवर-वाहनके नियम

(१) संघ-भेद होनेपर चीवरोंके मनके अनुसार बँटवारा

१—"यदि भिक्षुओ! भिक्षुओंके वर्षावास करलेनेपर चीवर मिलनेसे पहले संघमें फूट हो जाती है और लोग—संघको देते हैं—(कह) एक पक्षको पानी देते हैं और एक पक्षको चीवर देते हैं तो वह संघका ही है।" 85

२—"यदि भिक्षुओ! भिक्षुओंके वर्षावास कर लेनेपर संघमें फूट हो जाती है और लोग—संघको देते हैं—(कह) एक पक्षको (दक्षिणाका) पानी देते हैं और उसी पक्षको चीवर देते हैं, तो वह संघका ही है।" 86

३—"यदि० चीवरके मिलनेसे पहिलेही संघमें फूट हो जाती है और लोग—इस पक्षको देते हैं—(कह) एक पक्षको पानी देते हैं और दूसरे पक्षको चीवर देते हैं तो वह पक्षका ही है।" 87

४—"यदि० संघमें फूट हो जाती है और लोग—(इस) पक्षको देते हैं—(कह) एक पक्षको पानी देते हैं और उसी पक्षको चीवर देते हैं तो वह पक्षका ही है।" 88

५—"यदि भिक्षुओ! भिक्षुओंके वर्षावास करलेनेपर चीवरके मिल जानेपर (किन्तु) बाँटनेसे पहिले संघमें फूट होती है तो सबको बराबर बराबर बाँटना चाहिये।" 89

(२) दूसरेके लिये दिये चीवरोंका चीवर-वाहक द्वारा उपयोग करनेमें नियम

१—उस समय आयुष्मान् रे व त ने एक भिक्षुके हाथमें—'यह चीवर स्थविरको देना'—(कह) आयुष्मान् सा रि पु त्र के पास एक चीवर भेजा। तब उस भिक्षुने रास्तेमें आयुष्मान् रे व त से (मांगनेपर पा जाने के) विश्वाससे उस चीवरको (अपने लिये) ले लिया। जब आयुष्मान् रे व त ने आयुष्मान् सारिपुत्रसे मिलनेपर पूछा—"भन्ते! मैंने स्थविरके लिये चीवर भेजा था, मिला वह चीवर?"

"आवुस! मैंने उस चीवरको नहीं देखा।"

तब आयुष्मान् रे व त ने उस भिक्षुसे यह कहा—

भेजता है; और वह रास्तेमें सुनता है कि भेजनेवाला मर गया और उसे मरेका चीवर समझ इस्तेमाल करता है, तो इस्तेमाल करना ठीक है। जिसके लिये भेजा गया है उसके विश्वाससे अगर लेता है, तो लेना ठीक नहीं।" 91

३—"यदि० वह रास्तेमें सुनता है कि जिसके लिये भेजा गया वह मर गया और उसे मरेका चीवर समझ इस्तेमाल करता है तो इस्तेमाल करना ठीक नहीं। यदि भेजनेवालेके विश्वाससे ले लेता है तो लेना ठीक है।" 92

४—"यदि० सुनता है कि दोनों मर गये तो भेजनेवालेका मृतक चीवर मान इस्तेमाल करे तो इस्तेमाल करना ठीक है, जिसको भेजा गया उसका मृतक चीवर मान इस्तेमाल करे तो इस्ते-माल करना ठीक नहीं।" 93

५—"यदि भिक्षुओ! कोई भिक्षु दूसरे भिक्षुके हाथसे—यह चीवर अमुकको देता हूँ—(कह) चीवर भेजता है, और वह रास्तेमें भेजनेवालेके विश्वाससे ले लेता है तो लेना ठीक नहीं; जिसको भेजा गया उसके विश्वाससे ले लेता है तो ठीक है।" 94

६—"यदि भिक्षुओ! कोई भिक्षु दूसरे भिक्षुके हाथसे—यह चीवर अमुकको देता हूँ—(कह) चीवर भेजता है, और वह रास्तेमें सुनता है कि भेजनेवाला मर गया और उसे मृतक-चीवर मान इस्तेमाल करता है तो इस्तेमाल करना ठीक नहीं है; जिसके लिये भेजा गया है उसके विश्वाससे अगर लेता है तो ठीक है।" 95

७—"यदि० सुनता है जिसको भेजा गया वह मर गया और उसका मृतक-चीवर मान इस्तेमाल करता है तो इस्तेमाल करना ठीक है। भेजनेवालेके विश्वाससे अगर ले लेता है तो ठीक नहीं है।" 96

८—"यदि० सुनता है कि दोनों मर गये, तो यदि भेजनेवालेका मृतक-चीवर (मान) इस्तेमाल करे तो इस्तेमाल करना ठीक नहीं, और जिसको भेजा गया उसका मृतक-चीवर मान इस्तेमाल करे तो ठीक है।" 97

(३) आठ प्रकारके चीवर-दान और उनका बँटवारा

"भिक्षुओ! यह आठ चीवरकी मातृकाएँ (=उत्पत्तिके कारण) हैं—(१) सीमामें देता है; (२) वचन-बद्ध होने (=कतिका)से देता है; (३) भिक्षाके स्वीकारसे देता है; (४) (अकेले भिक्षु-) संघको देता है; (५) (भिक्षु-भिक्षुणी) दोनों संघको देता है; (६) वर्षावास कर चुके संघको देता है; (७) (चीज़) कहकर देता है; (८) व्यक्तिको देता है।

(१) 'सीमामें देता है' तो सीमाके भीतर जितने भिक्षु हैं उनको बाँटना चाहिये। 98

(२) 'वचन-बद्ध होनेसे देता है' तो एक प्रकारके लाभवाले जितने आवास हैं, एक आवासको देनेपर उन सभी (आवासों)के लिये दिया होता है। 99

(३) 'भिक्षाके स्वीकारसे देता है' तो जहाँ (वह दायक) संघका काम बरावर किया करता है वहाँके लिये दिया होता है। 100

(४) '(एक) संघको देता है' तो संघके सामने बाँटना चाहिये। 101

(५) '(भिक्षु-भिक्षुणी) दोनों संघको देता है' तो चाहे भिक्षु बहुत हों और भिक्षुणी एकही हो, आधा आधा (बाँट) देना चाहिये; चाहे भिक्षुणी बहुत हों भिक्षु एकही हो आधा आधा (बाँट) देना चाहिये। 102

(६) 'वर्षावास' कर चुके संघको देता है' तो जितने भिक्षुओंने उस आवासमें वर्षावास किया उन्हें बाँटना चाहिये। 103

(७) '(चीज़) कहकर देता है' तो यवागू या भात या खाद्य (वस्तु) या चीवर या आसन या भैषज्य (जिसके लिये कहा, वह देना चाहिये)। 104

(८) 'व्यक्तिको देता है'—यह चीवर अमुकको देता हूँ (तो उसी व्यक्तिको देना चाहिये)।" 105

चीवरक्खन्धक समाप्त ॥८॥

९—चंपेय-स्कंधक

१——कर्म और अकर्म । २——पांच प्रकारके संघ (के कोरम्) और उनके अधिकार। ३——नियम-विरुद्ध और नियमानुकूल दंड । ४——नियम-विरुद्ध दंड । ५——नियम-विरुद्ध दंड-हटाव । ६—नियम-विरुद्ध दंडका संशोधन। ७——नियम-विरुद्ध दंड-हटावका संशोधन ।

§१-कर्म और अकर्म

१——चम्पा

(१) निर्दोषको उत्क्षिप्त करना अपराध है

१—उस समय बुद्ध भगवान् च म्पा में ग ग्ग रा पुष्करिणीके तीर विहार करते थे। उस समय काशी देशमें वा स भ गा म नामक (गांव) था। वहाँपर का श्य प गो त्र नामक आश्रमवासी भिक्षु रहता था। वह इसके विषयमें वरावर यत्नशील रहता था जिसमें कि न आये अच्छे भिक्षु आवें, और आये अच्छे भिक्षु सुख-पूर्वक विहार करें: और यह आवास वृद्धि=वि रू ढ़ि और वि पु ल ता को प्राप्त हो।

उस समय वहुतसे भिक्षु का शी (देश) में चारिका करते, जहाँ वा स भ गा म था वहाँ पहुँचे। का श्य प गो त्र भिक्षुने दूरसेही उन भिक्षुओंको आते देखा। देखकर आसन विछाया, पादोदक, पाद-पीठ, पादकठलिक रख दिया; और अगवानीकर (उनके) पात्र-चीवरको लिया। पानी पीनेको पूछा, नहानेके लिये प्रवन्ध किया। यवागू, खाद्य (और) भोजन (की प्राप्ति) का यत्न किया। तव उन नवा-गन्तुक भिक्षुओंको यह हुआ—'यह आश्रमवासी भिक्षु वहुत अच्छा है (हमारे) नहानेके लिये इसने प्रवन्ध किया, यवागू, खाद्य (और) भोजन (की प्राप्ति) का यत्न किया। आओ आवुसो! हम इसी वा स भ ग्रा म में वास करें।' तव उन आगन्तुक भिक्षुओंने वहीं वा स भ गा म में वास किया।

तव काश्यपगोत्र भिक्षुको यह हुआ—'इन नवागन्तुक भिक्षुओंको यात्राकी जो थकावट थी वह भी दूर हो गई, जो स्थानकी अजानकारी थी वह भी जान गये, यावत्जीवन दूसरोंके कुटुम्बमें (=खाने-पीनेकी चीजोंके लिये) यत्न करना दुष्कर है। माँगना लोगोंको अप्रिय होता है। क्यों न मैं यवागू, खाद्य और भोजनके लिये उत्सुकता करना छोळ दूँ।' तव उसने यवागू, खाद्य और भातके लिये उत्सुकता करना छोळ दिया।

तव उन नवागन्तुक भिक्षुओंको यह हुआ—'आवुसो! पहले यह आश्रमवासी भिक्षु नहानेके लिये प्रवन्ध करता, यवागू, खाद्य और भोजनके लिये उत्सुकता करता था। सो आवुसो! अव यह आश्रमवासी भिक्षु दुष्ट हो गया। आओ आवुसो! हम इस आश्रमवासी भिक्षुका उ त्क्षे प ण (=दंड) करें।' तव उन नवागन्तुक भिक्षुओंने एकत्रित हो का श्य प गो त्र भिक्षुसे यह कहा—

"आवुस! पहले तू नहानेके लिये प्रवन्ध करता, यवागू, खाद्य और भोजनके लिये उत्सुकता

करता था; सो तू आवुस ! अब न नहानेका प्रबन्ध करता है, न यवागू खाद्य भोजनके लिये उत्सुकता करता है, सो आवुस ! तूने अपराध किया। क्या तू उस अपराधको देखता है ?"

"आवुसो ! मैंने दोष नहीं किया जिसको कि मैं देखूँ।"

तब उन नवागन्तुक भिक्षुओंने अ प रा ध (=आपत्ति) न देखनेके लिये का श्य प गो त्र भिक्षुका उ त्क्षे प ण (=दंड) किया। तब का श्य प गो त्र भिक्षुको यह हुआ—'मैं नहीं जानता कि यह आ प त्ति है कि अ न् आ प त्ति है। आ प त्ति (=अपराध) मैंने की है, या नहीं की है। मैं उ त्क्षि प्त[1] हूँ या उत्क्षिप्त नहीं हूँ। (मेरा उत्क्षेपण) धर्मानुसार है या धर्मविरुद्ध। को प्य (=अयुक्त) है या अ को प्य। कारणसे है या अकारणसे। क्यों न मैं चम्पा जाकर भगवान्‌से यह पूछूँ।'

तब काश्यपगोत्र भिक्षु आसन-वासन सँभाल, पात्र-चीवर ले चम्पाकी ओर चल दिया। क्रमशः चारिका करते जहाँ च म्पा थी और जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठा।

बुद्ध भगवानोंका यह नियम है०[2] बिना तकलीफ़के रास्तेमें तो आया ? भिक्षु ! कहाँसे तू आ रहा है ?"

"ठीक है भगवान् ! यापनीय है भगवान् ! बिना तकलीफ़के भन्ते ! मैं रास्तेमें आया। भन्ते ! का शि देशमें वा स भ गा म है वहाँका मैं आश्रमनिवासी हूँ। मैं इसके विषयमें बराबर यत्नशील रहता था जिसमें कि न आये अच्छे भिक्षु आयें० और विपुलताको प्राप्त हों०[3] क्यों न मैं चम्पा जाकर भगवान्‌से यह पूछूँ। वहाँसे भगवान् मैं आ रहा हूँ।"

"भिक्षुओ ! यह अन् आपत्ति है, आपत्ति नहीं है। तू आपत्ति-रहित है, आपत्ति सहित नहीं; तू अनुत्क्षिप्त है, उत्क्षिप्त नहीं, तेरा उत्क्षेपण अधर्मसे हुआ है, कोप्यसे हुआ है, कारण बिना हुआ है, जा भिक्षु ! तू वहीं वा स भ गा म में निवासकर।"

"अच्छा भन्ते !" (कह) का श्य प भिक्षु भगवान्‌को उत्तर दे आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया। तब उन नवागन्तुक भिक्षुओंको पछतावा हुआ, अफ़सोस हुआ—'अलाभ है हमको, लाभ नहीं ! दुर्लभ हुआ हमें, सुलाभ नहीं हुआ जो कि हमने निर्दोष शुद्ध भिक्षुको अपराधी बिना, कारण बिना उत्क्षेपण किया। आओ आवुसो ! हम च म्पा में चलकर भगवान्‌के पास अपराधको (कह) क्षमा करायें।'

९—चांपेय-स्कंधक

१—कर्म और अकर्म । २—पांच प्रकारके संघ(के कोरम्) और उनके अधिकार।
३—नियम-विरुद्ध और नियमानुकूल दंड ।
४—नियम-विरुद्ध दंड । ५—नियम-विरुद्ध दंड-हटाव । ६—नियम-विरुद्ध दंडका संशोधन।
७—नियम-विरुद्ध दंड-हटावका संशोधन ।

§१-कर्म और अकर्म

१—चम्पा

(१) निर्दोषको उत्क्षिप्त करना अपराध है

१—उस समय बुद्ध भगवान् च म्पा में ग ग्ग रा पुष्करिणीके तीर विहार करते थे। उस समय का शी देशमें वा स भ गा म नामक (गांव) था। वहांपर का श्य प गो त्र नामक आश्रमवासी भिक्षु रहता था। वह इसके विषयमें बराबर यत्नशील रहता था जिसमें कि न आये अच्छे भिक्षु आवें, और आये अच्छे भिक्षु सुख-पूर्वक विहार करें; और यह आवास वृद्धि=वि रू ढ़ि और वि पु ल ता को प्राप्त हो।

उस समय बहुतसे भिक्षु का शी (देश)में चारिका करते, जहाँ वा स भ गा म था वहाँ पहुँचे। का श्य प गो त्र भिक्षुने दूरसेही उन भिक्षुओंको आते देखा। देखकर आसन बिछाया, पादोदक, पाद-पीठ, पादकठलिक रख दिया; और अगवानीकर (उनके) पात्र-चीवरको लिया। पानी पीनेको पूछा, नहानेके लिये प्रबन्ध किया। यवागू, खाद्य (और) भोजन(की प्राप्ति)का यत्न किया। तब उन नवागन्तुक भिक्षुओंको यह हुआ—'यह आश्रमवासी भिक्षु बहुत अच्छा है (हमारे) नहानेके लिये इसने प्रबन्ध किया, यवागू, खाद्य (और) भोजन (की प्राप्ति)का यत्न किया। आओ आवुसो! हम इसी वा स भ ग्रा म में वास करें।' तब उन आगन्तुक भिक्षुओंने वहीं वा स भ गा म में वास किया।

तब काश्यपगोत्र भिक्षुको यह हुआ—'इन नवागन्तुक भिक्षुओंको यात्राकी जो थकावट थी वह भी दूर हो गई, जो स्थानकी अजानकारी थी वह भी जान गये, यावत्‌जीवन दूसरोंके कुटुम्बमें (=खाने-पीनेकी चीजोंके लिये) यत्न करना दुष्कर है। माँगना लोगोंको अप्रिय होता है। क्यों न मैं यवागू, खाद्य और भोजनके लिये उत्सुकता करना छोळ दूँ।' तब उसने यवागू, खाद्य और भातके लिये उत्सुकता करना छोळ दिया।

तब उन नवागन्तुक भिक्षुओंको यह हुआ—'आवुसो! पहले यह आश्रमवासी भिक्षु नहानेके लिये प्रबन्ध करता, यवागू, खाद्य और भोजनके लिये उत्सुकता करता था। सो आवुसो! अब यह आश्रमवासी भिक्षु दुष्ट हो गया। आओ आवुसो! हम इस आश्रमवासी भिक्षुका उ त्क्षे प ण (=दंड) करें।' तब उन नवागन्तुक भिक्षुओंने एकत्रित हो का श्य प गो त्र भिक्षुसे यह कहा—

"आवुस! पहले तू नहानेके लिये प्रबन्ध करता, यवागू, खाद्य और भोजनके लिये उत्सुकता

करता था; सो तू आवुस ! अब न नहानेका प्रबन्ध करता है, न यवागू खाद्य भोजनके लिये उत्सुकता करता है, सो आवुस ! तूने अपराध किया। क्या तू उस अपराधको देखता है ?"

"आवुसो ! मैंने दोष नहीं किया जिसको कि मैं देखूँ।"

तब उन नवागन्तुक भिक्षुओंने अ प रा ध (=आपत्ति) न देखनेके लिये का श्य प गो त्र भिक्षुका उ त्क्षे प ण (=दंड) किया। तब का श्य प गो त्र भिक्षुको यह हुआ—'मैं नहीं जानता कि यह आ प त्ति है कि अ न् आ प त्ति है। आ प त्ति (=अपराध) मैंने की है, या नहीं की है। मैं उ त्क्षि प्त[1] हूँ या उत्क्षिप्त नहीं हूँ। (मेरा उत्क्षेपण) धर्मानुसार है या धर्मविरुद्ध। को प्य (=अयुक्त) है या अ को प्य। कारणसे है या अकारणसे। क्यों न मैं चम्पा जाकर भगवान्से यह पूछूँ।'

तब काश्यपगोत्र भिक्षु आसन-वासन सँभाल, पात्र-चीवर ले चम्पाकी ओर चल दिया। क्रमशः चारिका करते जहाँ च म्पा थी और जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठा।

बुद्ध भगवानोंका यह नियम है०[2] बिना तकलीफ़के रास्तेमें तो आया ? भिक्षु ! कहाँसे तू आ रहा है ?"

"ठीक है भगवान् ! यापनीय है भगवान् ! बिना तकलीफ़के भन्ते ! मैं रास्तेमें आया। भन्ते ! का शि देशमें वा स भ गा म है वहाँका मैं आश्रमनिवासी हूँ। मैं इसके विषयमें बराबर यत्नशील रहता था जिससे कि न आये अच्छे भिक्षु आयें० और विपुलताको प्राप्त हो०[3] क्यों न मैं चम्पा जाकर भगवान्से यह पूछूँ। वहींसे भगवान् मैं आ रहा हूँ।"

"भिक्षुओ ! यह अन्-आपत्ति है, आपत्ति नहीं है। तू आपत्ति-रहित है, आपत्ति सहित नहीं; तू अनुत्क्षिप्त है, उत्क्षिप्त नहीं, तेरा उत्क्षेपण अधर्मसे हुआ है, कोप्यसे हुआ है, कारण बिना हुआ है, जा भिक्षु ! तू वहीं वा स भ गा म में निवासकर।"

"अच्छा भन्ते !" (कह) का श्य प भिक्षु भगवान्को उत्तर दे आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया। तब उन नवागन्तुक भिक्षुओंको पछतावा हुआ, अफ़सोस हुआ—'अलाभ है हमको, लाभ नहीं ! दुर्लाभ हुआ हमें, सुलाभ नहीं हुआ जो कि हमने निर्दोष शुद्ध भिक्षुको अपराधी किया, कारण बिना उत्क्षेपण किया। आओ आवुसो ! हम च म्पा में चलकर भगवान्के पास अपराधको (कह) क्षमा करायें।'

"मोघपुरुषो ! अयोग्य है० श्रमणोंके आचारके विरुद्ध है०, कैसे मोघपुरुषो ! तुम, निर्दोष शुद्ध भिक्षुको, अपराध विना, कारण विना उत्क्षिप्त करोगे ! मोघपुरुषो, न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है० ।"

फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! निर्दोष शुद्ध भिक्षुको अपराध विना, कारण विना, उत्क्षिप्त नहीं करना चाहिये। जो उत्क्षिप्त करे उसे दु क्क ट का दोष हो ।" 1

तब वह भिक्षु आसनसे उठ, उत्तरासंघको एक कंधेपर रख भगवान्के चरणोंमें शिरसे पळ भगवान्से यह बोले—

"भन्ते ! हमारा अपराध है, बालककी तरह, मूढ़की तरह, अज्ञकी तरह हमने अपराध किया जो कि हमने निर्दोष शुद्ध भिक्षुको अपराधी विना, कारण बिना उत्क्षिप्त किया। सो भन्ते ! भगवान् हमारे अपराधको, अपराधके तौरपर ग्रहण करें, भविष्यमें संयमके लिये ।"

"सो भिक्षुओ ! तुमने अपराध किया० कारण विना उत्क्षिप्त किया। चूँकि भिक्षुओ! तुम अपराधको अपराधके तौरपर देख धर्मानुसार प्रतिकार करते हो (इसलिये) हम तुम्हारे उस (अपराध क्षमापन)को ग्रहण करते हैं। भिक्षुओ ! आर्य विनयमें यह वृद्धि (की बात) है जो कि (मनुष्य) अपराधको अपराधके तौरपर देख धर्मानुसार उसका प्रतिकार करता है; और भविष्यमें संयम करनेवाला होता है।"

(२) अकर्मों (=नियम-विरुद्ध फैसलों) के भेद

उस समय च म्पा में इस प्रकारके कर्म (=दंड) करते थे—अधर्मसे वर्ग (=कुछ व्यक्तियों का) कर्म करते थे, अधर्मसे समग्र कर्म करते थे, धर्मसे वर्ग कर्म करते थे, धर्म जैसेसे वर्ग कर्म करते थे, धर्म जैसेसे समग्र कर्म करते थे। अकेला एकको भी उ त्क्षि प्त करता था। अकेला दोको भी उत्क्षिप्त करता था। अकेला बहुतोंको भी उत्क्षिप्त करता था। अकेला संघको भी उत्क्षिप्त करता था। दो भी एकको०, दोको०, बहुतोंको०, ० संघको उत्क्षिप्त करते थे। बहुतसे भी एकको० दोको०, बहुतोंको०, संघको उत्क्षिप्त करते थे। (एक) संघ (दूसरे) संघको भी उत्क्षिप्त करता था। जो अल्पेच्छ...भिक्षु थे वह हैरान...होते थे—'कैसे च म्पा में भिक्षु ऐसे कर्म करते हैं!—०(एक) संघ (दूसरे) संघको भी उत्क्षिप्त करता है।' तब उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही—

"सचमुच भिक्षुओ ! च म्पा में० ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् ।"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—

"भिक्षुओ ! अयुक्त है० (एक) संघ (दूसरे) संघको भी उत्क्षिप्त करे ! न यह भिक्षुओ! अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है०। "

फटकारकर भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! (१) अधर्मसे वर्ग कर्म अकर्म है। उसे नहीं करना चाहिये। (२) धर्मसे समग्र कर्म अकर्म है उसे नहीं करना चाहिये। धर्मसे वर्ग कर्म अकर्म है उसे नहीं करना चाहिये। (४) धर्म जैसेसे वर्ग कर्म अकर्म है०। (५) ०धर्म जैसेसे समग्र कर्म अकर्म है०। (६) ०एकको उत्क्षिप्त करे अकर्म है०। ०। (७) संघ संघको भी उत्क्षिप्त करे अकर्म है; इसे नहीं करना चाहिये। 2

(३) कर्मके भेद

"भिक्षुओ ! यह चार कर्म (=दंड)हैं—(१) अधर्मसे वर्ग कर्म , (२) अधर्मसे समग्रकर्म, (३) धर्मसे वर्ग कर्म, (४) धर्मसे समग्र कर्म। भिक्षुओ! इनमें जो यह अधर्मसे वर्ग कर्म है वह अधर्मनार

कारण, वर्गताके कारण, कोप्य (=हटाने लायक) और अयोग्य है। भिक्षुओ ! ऐसे कर्मको नहीं करना चाहिये। मैंने इस प्रकारके कर्मकी अनुमति नहीं दी। भिक्षुओ ! जो यह अधर्मसे समग्र कर्म है भिक्षुओ ! यह कर्म अधर्मताके कारण कोप्य, अयोग्य है०। भिक्षुओ ! जो यह धर्मसे वर्ग कर्म है वह कर्म धर्मताके कारण कोप्य, अयोग्य है। ०। ० भिक्षुओ ! जो यह धर्मसे समग्रकर्म है यह धर्मताके कारण, सामग्रताके कारण, अकोप्य, और योग्य है। भिक्षुओ ! ऐसे कर्मको करना चाहिये। ऐसे कर्मकी मैंने अनुमति दी है। इसलिये भिक्षुओ ! सीखना चाहिये कि जो यह धर्मसे समग्र कर्म है उसे करूँगा।"

(४) अकर्मोंके भेद

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु ऐसे कर्म (=दंड) करते थे—(१) अधर्मसे वर्ग कर्म करते थे; (२) अधर्मसे समग्र कर्म०; (३) धर्मसे वर्ग कर्म०; (४) धर्म जैसेसे वर्गकर्म०; (५) धर्म जैसेसे समग्र कर्म०; (६) सू च ना[1] बिना भी अ नु श्रा व ण[1] युक्त कर्म करते थे; (७) अ नु श्रा व ण बिनाभी सूचना-युक्त कर्म करते थे; (८) सू च ना बिनाभी, अ नु श्रा व ण बिनाभी कर्म करते थे; (९) ध र्म (—बुद्धोपदेश)के विरुद्ध भी कर्म करते थे; (१०) वि न य (—भिक्षु नियम)के विरुद्ध भी कर्म करते थे; (११) बुद्धशासनके विरुद्ध भी कर्म करते थे; (१२) प टि कु ट्ठ क ट (=दूसरेके निन्दा- वाक्यके जवाबमें किया गया) धर्म-विरुद्ध कोप्य और अयोग्य कर्म करते थे। जो वह अल्पेच्छ ...भिक्षु थे वह हैरान...होतेथे—'कैसे षड्वर्गीय भिक्षु ऐसे कर्म करेंगे०।' तब उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ ! षड्वर्गीय भिक्षु ऐसे कर्म करते हैं—० ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

० फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! (१) अधर्मसे वर्ग कर्म अकर्म है; उसे नहीं करना चाहिये। (२) अधर्मसे समग्र कर्म०। (३) धर्मसे वर्ग कर्म०। (४) धर्म जैसेसे वर्ग कर्म०। (५) धर्म जैसेसे समग्र कर्म०। (६) ज्ञ प्ति बिना, अ नु श्रा व ण युक्त कर्म०। (७) अनुश्रावण बिना ज्ञप्तियुक्त कर्म०। (८) अनुश्रावण बिना भी और ज्ञप्ति बिना भी कर्म०। (९) धर्मसे विरुद्ध कर्म०। (१०) विनय-विरुद्ध कर्म०। (११) बुद्ध-शासनके विरुद्ध कर्म०। (१२) पटिकुट्ठकट धर्म विरुद्ध कोप्य और अयोग्य कर्म अकर्म्य है; उसे नहीं करना चाहिये। 3

(५) कर्म छ

"भिक्षुओ ! यह छ क र्म (=दंड) हैं—(१) अधर्म कर्म, (२) वर्ग कर्म, (३) समग्र कर्म, (४) धर्म जैसेसे वर्ग कर्म, (५) धर्म जैसेसे समग्र कर्म, (६) धर्मसे समग्र कर्म।

(६) अधर्म कर्मके भेद

"भिक्षुओ ! क्या है अधर्म कर्म ?

क. (१) "भिक्षुओ ! ज्ञ प्ति के साथ दो (वचनोंके साथ कियेजानेवाले) कर्मको केवल ज्ञप्तिसे कर्म करता है और कर्म-वाक्को नहीं अ नु श्रा व ण कराता, वह अधर्म कर्म है। (२) भिक्षुओ ! ज्ञप्तिके साथ दो (वचनोंके साथ किये जानेवाले) कर्ममें दो ज्ञप्तियोंसे कर्म करता है और कर्म-वाक्को नहीं अनुश्रावण कराता वह अधर्म कर्म है। (३) ज्ञप्ति सहित दो (वचनोंके साथ किये जानेवाले) कर्ममें एकही कर्म-वाक्से कर्म करता है, और ज्ञप्तिको नहीं स्थापित करता वह अधर्म कर्म है। (४) ज्ञप्ति

[1] देखो वोट लेनेके लिये प्रस्ताव पेश करनेका ढंग।

सहित दो (वचनोंके साथ किये जानेवाले) कर्ममें दो क र्म-वा क्से कर्म करता है और ज्ञप्तिको नहीं स्थापित करता, वह अधर्म कर्म है।

ख. (१) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें एक ज्ञप्तिसे कर्म करता है और कर्म-वाक्को नहीं अनुश्रावण कराता वह अधर्म कर्म है। (२) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें दो ज्ञप्तियोंसे कर्म करता है और कर्म-वाक्को नहीं अनुश्रावण कराता तो वह अधर्म कर्म है। (३) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें तीन ज्ञप्तियोंसे कर्म करता है०। (४) ० चार ज्ञप्तियोंसे कर्म करता है०। (५) ० एक कर्म-वाक्से कर्म करता है और ज्ञप्ति को नहीं स्थापित करता वह अधर्म कर्म है। (६) ० दो कर्म-वाक्से कर्म करता है और ज्ञप्तिको नहीं स्थापित करता वह अधर्म कर्म है। (७) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें चार कर्म-वाकोंसे कर्म करता है और ज्ञप्तिको नहीं स्थापित करता वह अधर्म कर्म है।—भिक्षुओ! यह कहा जाता है अ ध र्म क र्म (=नियम-विरुद्ध दंड)।

(७) वर्ग कर्मके भेद

"भिक्षुओ! क्या है व र्ग-क र्म?—क. (१) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित दो (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षु क र्म (=दंड)को प्राप्त हैं वह नहीं आये हों, छन्द (=वोट)देनेवालों का छन्द नहीं आया हो, और सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश (=निन्दा-वचन) करें, यह वर्ग कर्म है। (२) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित दो (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षुकर्मको प्राप्त हैं वह आये हों, किन्तु छन्द देनेवालोंका छन्द न आया हो, और सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करें, यह वर्ग कर्म है। (३) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित दो (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षु कर्म को प्राप्त हैं वह आये हों, छन्द देनेवालोंका छन्द भी आया हो, किन्तु सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करें, यह वर्ग कर्म है।

ख. (१) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हैं नहीं आये हों, छन्द देनेवालोंका छन्द नहीं आया हो, और सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करें, यह वर्ग कर्म है। (२) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हों, वह आये हों, किन्तु छन्द देनेवालोंका छन्द न आया हो, और सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करें, यह वर्ग कर्म है। (३) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हों, वह आये हों, और छन्द देनेवालोंका छन्द भी आया हो किन्तु सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करें तो यह वर्ग कर्म है।

(८) समग्र कर्म

"क्या है भिक्षुओ! समग्र-कर्म?—(१) ज्ञप्ति सहित दो (वचनों द्वारा किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हों वह आये हों, देनेवालोंका छन्द आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश न करें, यह समग्र कर्म है। (२) ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हों आये हों, छन्द देनेवालोंका छन्द आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश न करें, यह समग्र कर्म है।—भिक्षुओ! यह कहा जाता है समग्र कर्म।

(९) धर्माभाससे वर्ग-कर्म

"क्या है भिक्षुओ! धर्म जैसेसे वर्ग-कर्म?—

क. (१) ज्ञप्ति सहित दो (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें पहले कर्म वाक्को अनुश्रावण करावे, पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे, जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हों वह न आये हों, छन्द देनेवालोंका छन्द

नहीं आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करें, यह है धर्म जैसेसे वर्ग कर्म । (२) ज्ञप्ति सहित दो (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें पहले कर्मवाक्को अनुश्रावण कराये, पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे, जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हों वह आये हों किन्तु छन्द देनेवालोंका छन्द नहीं आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करें, यह है धर्म जैसेसे वर्ग-कर्म। (३) ज्ञप्ति सहित दो (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें पहले कर्मवाक्को अनुश्रावण कराये, पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे; जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हों वह आये हों, छन्द देनेवालोंका छन्द भी आया हो, किन्तु सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करें, यह है धर्म जैसेसे वर्ग कर्म।

ख. (१) "ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें पहले कर्म-वाक्को अनुश्रावण कराये, पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे; जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हों वह न आये हों, छन्द देनेवालोंका छन्द न आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करे, यह है धर्म जैसेसे वर्ग कर्म। (२) ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें पहले कर्मवाक्को अनुश्रावण कराये, पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे; जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हों आये हों (किन्तु) छन्द देनेवालोंका छन्द न आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करे, यह है धर्म जैसेसे वर्ग कर्म। (३) ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें पहले कर्म-वाक्को अनुश्रावण कराये, पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे; जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हों आये हों, छन्द देनेवालोंका छन्द भी आया हो, (किन्तु) सम्मुख आनेपर प्रतिक्रोश करें, यह है धर्म जैसेसे वर्ग-कर्म।—भिक्षुओ! यह है कहा जाता, धर्म जैसेसे वर्ग-कर्म।

(१०) धर्माभाससे समग्र कर्म

"क्या है भिक्षुओ! धर्म जैसेसे समग्रकर्म?—(१) ज्ञप्ति सहित दो (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें पहले कर्मवाक्को अनुश्रावण कराये, पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे; जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हों वह आये हों, छन्द देनेवालोंका छन्द आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश न करे, यह है धर्म जैसेसे समग्रकर्म। (२) ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें पहले कर्मवाक्को अनुश्रावण कराये, पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे; जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हों वह आये हों, छन्द देनेवालोंका छन्द आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश न करे, यह है धर्म जैसेसे समग्रकर्म।—भिक्षुओ! यह है कहा जाता, धर्म जैसेसे समग्रकर्म।

(११) धर्मसे समग्रकर्म

"क्या है भिक्षुओ! धर्मसे समग्रकर्म?—(१) ज्ञप्ति सहित दो (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें पहले एक ज्ञप्तिको स्थापित करे पीछे एक कर्मवाक्से कर्म करे; जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हैं वह आये हों, छन्द देनेवालोंका छन्द आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश न करे, यह है धर्मसे समग्रकर्म। (२) ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें पहिले एक ज्ञप्ति स्थापित करे, पीछे तीन कर्म वाकोंसे कर्म करे; जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हैं वह आये हों, छन्द देनेवालोंका छन्द आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश न करे, यह है धर्मसे समग्रकर्म।—भिक्षुओ! यह है धर्मसे समग्रकर्म।

§२—पाँच प्रकारके संघ और उनके अधिकार

(१) वर्ग (कोरम्) द्वारा संघोंके प्रकार

"संघ पाँच हैं—(१) चतुर्वर्ग (=चार व्यक्तियोंका) भिक्षु-संघ, (२) पंचवर्ग (=पाँच व्यक्तियोंका)०, (३) दशवर्ग (=दस आदमियोंका)०, (४) विंशतिवर्ग (=बीस आदमियोंका)०, (५) अतिरेक विंशतिवर्ग (=बीससे अधिक व्यक्तियोंका)०।

(२) संघोंके अधिकार

"क. (१) वहाँ भिक्षुओ! जो यह चतुर्वर्ग भिक्षु-संघ है वह—उ प सं प दा, प्र वा र णा, आ ह्वा न,—इन तीन कर्मोको छोळ धर्मसे-समग्र हो सभी कर्मोके करने योग्य है। 4

"(२) वहाँ भिक्षुओ! जो पं च व र्ग भि क्षु -सं घ है वह—आह्वान और मध्यम जनपदों[1] (=युक्तप्रान्त और विहार)में उपसम्पदा इन दो कर्मोको छोळ धर्मसे समग्र हो सभी कर्मोके करने योग्य है। 5

"(३) वहाँ भिक्षुओ! जो यह दशवर्ग भिक्षु-संघ है वह—आह्वान—एक कर्मको छोड़०।6

"(४) वहाँ भिक्षुओ! जो विं श ति व र्ग भि क्षु सं घ है वह धर्मसे समग्र हो सभी कर्मोके करने योग्य है। 7

वहाँ भिक्षुओ! जो यह अतिरेक विं श ति व र्ग भि क्षु सं घ है वह धर्मसे समग्र हो सभी कर्मोके करने योग्य है। 8

(३) वर्ग (=कोरम्) पूरा करनेका उपाय

१—"भिक्षुओ! यदि चतुर्वर्गसे करने लायक़ कर्म हो तो चौथी भिक्षुणीसे (संख्या पूरी करके) कर्मको करे; किन्तु अ क र्म (=अयुक्त रीतिसे कर्म) न करे। भिक्षुओ! यदि चतुर्वर्गसे किया जाने-वाला कर्म हो तो चौथी शिक्षमाणासे (संख्या पूरी करके) कर्मको करे; किन्तु अकर्मको न करे। ० चौथे श्रामणेर०। ० चौथी श्रामणेरी०। ० चौथे (भिक्षु-)शिक्षाको प्रत्याख्यान करनेवाले०। ० चौथे अन्तिम वस्तु (=पा रा जि क)के दोषी०। ० चौथे आपत्ति (=दोप) के न देखनेसे उत्क्षिप्तक०। ० चौथे आपत्तिके न प्रतिकार करनेसे उत्क्षिप्तक०। ० चौथे बुरी धारणाके न त्यागनेसे उत्क्षिप्तक०। ० चौथे पंडक०। ० चौथे चोरके साथ सह-वास करनेवाले०। ० चौथे तीर्थिकोंके पास चले गये०। ० चौथे तिर्यक (=नाग आदि) योनिमें गये०। ० चौथे मातृघातक०। ०चौथे पितृघातक ०। ०चौथे अर्हत्घातक०।० चौथे भिक्षुणीदूषक०। ० चौथे संघमें फूट डालनेवाले०। ० चौथे (बुद्धके शरीरसे) लोहू निकालनेवाले ०। यदि भिक्षुओ! च तु र्व र्ग से किया जानेवाला कर्म हो तो चौथे (स्त्री-पुरुष) दोनों लिंगवालेसे (संख्या पूरी करके) कर्मको करे किन्तु अकर्मको न करे। ० चौथे भिन्न संवासवाले०। ० चौथे भिन्न सीमामें रहनेवाले०। ० चौथे ऋद्धिसे आकाशमें खळे०। ० संघ जिसका कर्म (=इन्साफ़)कर रहा है उसे चौथा कर कर्म करे किन्तु अकर्म न करे।" 9

(इति) चतुर्वर्गकरण

२—"यदि भिक्षुओ! पं च व र्ग से किया जानेवाला कर्म हो तो पाँचवीं भिक्षुणीसे (संख्या पूरी करके) कर्म करे, अकर्म न करे। ०।[2] ० संघ जिसका क र्म (=इन्साफ़) कर रहा है उसे चौथा कर कर्म करे किन्तु अकर्म न करे।" 10

(इति) पंचवर्गकरण

३—"यदि भिक्षुओ! द श व र्ग से किया जानेवाला कर्म हो तो दसवीं भिक्षुणीसे (संख्या पूरी करके) कर्म करे, अकर्म न करे ०।[2] संघ जिसका क र्म कर रहा है उसे दसवाँ कर कर्म करे किन्तु अकर्म न करे।" 11

(इति) दशवर्गकरण

---

[1]मध्यम जनपदोंकी सीमाके लिये देखो ५§३।२ पृष्ठ २१३।

[2]चतुर्वर्गकीही तरह यहाँ भी समझना चाहिये।

४—"यदि भिक्षुओ ! विं श ति व र्ग से किया जानेवाला कर्म हो तो बीसवीं भिक्षुणीसे (संख्या पूरी करके) कर्म करे, अकर्म न करे ०[1]। संघ जिसका क र्म कर रहा है उसे बीसवाँ कर कर्म करे किन्तु अकर्म न करे।" 12

(इति) विंशतिवर्गकरण

५—"(१) चाहे भिक्षुओ ! पा रि वा सि क[2] को चौथा बना परिवास दे, मू ल से प्र ति क - र्ष ण करे, मा न त्व दे, बीसवाँ बना आह्वान करे, किन्तु अकर्म न करे । 13

(२) चाहे भिक्षुओ ! मूलसे प्र ति क र्ष ण करने योग्यको चौथा बना० ।

(३) चाहे भिक्षुओ ! मा न त्व देने योग्यको चौथा बना० ।

(४) चाहे भिक्षुओ ! मा न त्व चा रि क को चौथा बना० ।

(५) चाहे भिक्षुओ ! आह्वान करने योग्यको चौथा बना० ।" 14

(४) संघके बीच फटकारना किसके लिये लाभदायक और किसके लिये नहीं

१—"भिक्षुओ ! किसी किसीको संघके बीच प्र ति क्रो श न (=डाँटना) लाभदायक है और किसी किसीको संघके बीच प्रतिक्रोशन लाभदायक नहीं है। भिक्षुओ ! किसीको संघके बीच प्रतिक्रोशन लाभदायक नही है ?—भिक्षुणीको भिक्षुओ ! संघके बीच प्र ति क्रो श न करना लाभदायक नहीं है। शिक्षमाणाको०। श्रामणेरको०। श्रामणेरीको० । शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवालेको० । अन्तिम वस्तुके दोषीको०। उन्मत्तको०। विक्षिप्तचित्तको० । होश न रखनेवालेको०। आ प त्ति के न देखनेसे उ त्क्षि प्त क को०। आ प त्ति के अप्रतिकार करनेसे उत्क्षिप्त किये गयेको०। बुरी धारणा को न त्यागनेसे उत्क्षिप्त किये गयेको०। पंडकको०। चोरके साथ रहनेवालेको०। तीर्थिकोंके पास चले गयेको०। ति र्य क योनिमें गयेको०। मातृघातकको०। पितृघातकको०। अर्हत्घातकको०। भिक्षुणीदूषकको०। संघमें फूट डालनेवालेको०। ०लोहू निकालनेवालेको०। (स्त्री पुरुष) दोनों लिंग वालेको०। भिन्न सहवासवालेको०। भिन्न सीमामें रहनेवालेको० । ऋद्धिसे आकाशम खड़ेको०। जिसका संघ कर्म कर रहा हो, उसको भी भिक्षुओ ! संघके बीच प्रतिक्रोशन लाभदायक नहीं। भिक्षुओ ! इनका संघके बीच प्रतिक्रोशन लाभदायक नहीं है ।

२—"भिक्षुओ ! किसका संघके बीच प्रतिक्रोशन लाभदायक होता है ?—एक साथ रहनेवाले, एक सीमामें ठहरनेवाले प्रकृतिस्थ भिक्षुको, कमसे कम अपने पास बैठनेवाले भिक्षुको सूचित करते संघके बीच प्रतिक्रोशन लाभदायक होता है। भिक्षुओ ! इसको संघके बीच प्रतिक्रोशन लाभदायक है।"

(५) ठीक और बेठीक निस्सारण

"भिक्षुओ ! यह दो निस्सारणा हैं—कोई व्यक्ति नि स्सा र ण (=निकालने) (के दोष) को प्राप्त होता है और उसे संघ निकालता है; (तो उनमेंसे) कोई सु नि स्सा रि त होता है और कोई दु नि स्सा रि त।

१—"भिक्षुओ ! कौनसा व्यक्ति नि स्सा र ण (के दोषको अप्राप्त है और उसे संघ निकालता है, (इसलिये) दु नि स्सा रि त है ? जब भिक्षुओ ! एक भिक्षु निर्दोष, शुद्ध, होता है और उसे संघ निकालता है (इसलिये) दु नि स्सा रि त है। भिक्षुओ ! इस व्यक्तिके लिये कहा जाता है (कि वह) निस्सारण (के दोष)को अप्राप्त है, और उसे संघने निकाला; (अतः) दु नि स्सा रि त है। 15

---

[1] चतुर्वर्गकी ही तरह यहाँ भी समझना चाहिये ।

[2] चुल्ल २§१।२ (पृष्ठ ३६७) ।

२—"भिक्षुओ ! कौनसा व्यक्ति निस्सारण (के दोष)को अप्राप्त है और संघ उसे निकालता है (तो भी वह) सुनिस्सारित है ?—भिक्षुओ ! जो भिक्षु मूर्ख, नासमझ, बारबार कसूर करनेवाला, अ प दा न-(=चरित्र)-रहित, गृहस्थोंके साथ अत्यन्त संसर्ग रखकर गृहस्थोंके प्रतिकूल संसर्गसे युक्त हो विहार करता है और उसे यदि संघ निकालता है तो वह सु नि स्सा रि त है। भिक्षुओ! इस व्यक्तिके लिये कहा जाता है कि वह निस्सारण (के दोष)को अप्राप्त था (किन्तु) संघने उसे निकाला (और वह) सुनिस्सारित है।" 16

(६) ठीक और बेठीक अवसारण (=ले लेना)

"भिक्षुओ ! यह दो ओसारणा हैं—भिक्षुओ ! कोई व्यक्ति ओ सा र ण की (योग्यता कर्म) को अप्राप्त होता है और उसे संघ ओसारता (=अपनेमें मिलाता) है (तो उनमेंसे) कोई सु-ओसारित होता है और कोई दुर्-ओसारित भी। 17

१—"भिक्षुओ ! कौनसा व्यक्ति ओसारण(की योग्यता कर्म)को अप्राप्त है और उसे संघ ओसारता है, (इसलिये) दुर्-ओसारित है ? भिक्षुओ ! पंडक ओसारणा (की योग्यता)को अप्राप्त है। यदि संघ उसे ओसारण करे तो वह दुर्-ओसारित है। चोरके साथ रहनेवाला०। तीर्थिकके पास चला गया०। तिर्यक् योनिमें चला गया०। मातृघातक०। पितृघातक०। अर्हत्घातक०। भिक्षुणीदूषक०। संघमें फूट डालनेवाला०। ०लोहू निकालनेवाला०। (स्त्री-पुरुष) दोनों लिंगोंवाला ओसारणा(की योग्यता)को अप्राप्त है। यदि संघ उसे ओसारण करे तो वह दुर्-ओसारित है। भिक्षुओ ! यह कहा जाता है कि व्यक्ति ओसारणा(की योग्यता)को अप्राप्त है और उसे संघ ओसारता है, (इसलिये) दुर्-ओसारित है। भिक्षुओ ! ये व्यक्ति कहे जाते हैं ओसारणा(की योग्यता)को अप्राप्त है और उन्हें संघ ओसारता है (इसलिये) दुर्-ओसारित है। 18

२—"भिक्षुओ ! कौनसा व्यक्ति ओसारणकी योग्यताको अप्राप्त है और उसे संघ ओसारता है तो भी वह सु-ओसारित है ? हथ-कटा, भिक्षुओ ! ओसारणाकी योग्यताको अप्राप्त है। यदि उसे संघ ओसारण करे तो सु-ओसारित है। पैर-कटा०। हाथ-पैर-कटा०। कन-कटा०। नकटा०। नाक-कान-कटा०। अँगुली-कटा०। अल (=अङ्ग ?) कटा०। कंधा-कटा०। झर गई अँगुलियों के हाथवाला०। कुबळा०। बौना०। घेघेवाला०। ल क्ष णा ह त[1]०। कोळा खाये हुआ०। लि खि-त क[2] (Out-law) ०। सी पा टि क[3]०। भयंकर रोगोंवाला ०। परिषद्को बिगाळनेवाला०। काना०। लूला०। लँगळा०। पक्षाघातवाला० टूटे ऐ र्या पि थ (=शारीरिक आचार) वाला०। वुढ़ापेसे दुर्बल०। अन्धा०। गूँगा०। बहरा०। अन्धा-गूँगा०। अन्धा-बहरा०। गूँगा-बहरा०। अन्धा-गूँगा-बहरा, भिक्षुओ ! ओसारणा(की योग्यता)को अप्राप्त है; और यदि उसे संघ ओसारता है तो यह सु-ओसारित है।...भिक्षुओ ! इन्हें कहा जाता है कि व्यक्ति ओसारणा (की योग्यता)को अप्राप्त थे और यदि संघ उन्हें ओसारता है तो वे सु-ओसारित हैं।" 19

(इति) वा स भ गा म भाणवार प्रथम ॥१॥

(७) अधर्मसे उत्क्षेपणीय कर्म

क. "(१) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको कोई आपत्ति (=अपराध) नहीं हुआ होता और उसे

---

[1] जिसे पैसा लाल करके दागनेका दंड मिला है।

[2] जिसके दंडके लिये राजाके यहाँ लिखा रहता है कि जो इसे पावे मार डाले।

[3] फील-पाँव रोगवाला।

संघ या वहुतसे (भिक्षु) या एक भिक्षु प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है; क्या तू उस आपत्तिको देख रहा है।' वह ऐसा वोलता है—'आवुस ! मुझे आपत्ति (=दोष) नहीं है जिसे कि मैं देखूँ।' संघ आपत्तिके न देखनेके कारण उसका उ त्क्षे प ण करता है (तो यह) अधर्म कर्म है। 20

"(२) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको कोई आपत्ति प्रतिकारके करनेके लिये नहीं रहती; उसे संघ या वहुतसे भिक्षु या (एक) भिक्षु प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है, तू उस आपत्तिका प्रतिकार कर ! ' वह ऐसा बोलता है—'आवुस ! मुझे आपत्ति नहीं है जिसका कि मैं प्रतिकार करूँ।' तव संघ आपत्तिका प्रतिकार न करनेके कारण उसका उत्क्षेपण करता है; तो यह अधर्म कर्म है। 21

"(३) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको बुरी धारणा नहीं होती। उसे संघ या वहुतसे भिक्षु या (एक) भिक्षु प्रेरित करता है—'आवुस ! तेरी धारणा बुरी है। उस बुरी धारणाको छोळ दे ! ' वह ऐसा कहता है—'आवुस ! मुझे बुरी धारणा नहीं है जिसको कि मैं छोळूँ।' यदि संघ उसका, बुरी धारणाके न छोळनेके लिये उ त्क्षे प ण करता है तो यह अधर्म कर्म है। 22

"(४) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति नहीं होती, प्रतिकार करने लायक आपत्ति नहीं होती। उसको संघ, बहुतसे या एक भिक्षु प्रेरित करते हैं—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है। उस आ प त्ति को देखता है ? उस आपत्तिका प्रतिकार कर ! '—वह ऐसा बोलता है—'आवुस ! मुझे आपत्ति नहीं है जिसको कि मैं देखूँ; मुझे आपत्ति नहीं है जिसका कि मैं प्रतिकार करूँ।' संघ उसका, न देखने या प्रतिकार न करनेके कारण यदि उ त्क्षे प ण करता है तो यह अधर्म कर्म है। 23

"(५) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको देखनेके लिये आ प त्ति नहीं होती; और न छोळनेके लिये बुरी धारणा होती है। उसको संघ० प्रेरित करता है—"आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है। देखता है तू आपत्तिको ?' तुझे बुरी धारणा है। छोळ ! उस बुरी धारणाको।' वह ऐसा वोलता है—'आवुसो ! मुझे आ प त्ति नहीं है जिसको देखूँ; मेरे पास बुरी धारणा नहीं है जिसे छोळूँ।' तव संघ न देखने या न छोळनेके कारण उसका उत्क्षेपण करे तो यह अ ध र्म क र्म (=अन्याय, वेइंसाफ़ी) है। 24

"(६) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको प्रतिकार न करने लायक आपत्ति होती है, न छोळने लायक बुरी धारणा होती है। उसे संघ० प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझे आपत्ति है, उस आपत्तिका प्रतिकार कर। तुझे बुरी धारणा है उसको छोळ ! ' वह ऐसा वोलता है—'आवुस ! मुझे आपत्ति नहीं है जिसका कि प्रतिकार करूँ। मुझे बुरी धारणा नहीं है जिसको कि छोळूँ।' तव संघ यदि आपत्ति का प्रतिकार न करने या बुरी धारणाके न छोळनेके कारण, उसका उत्क्षेपण करता है, तो यह अधर्म कर्म है। 25

"(७) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको देखनेके लिये आपत्ति नहीं होती न प्रतिकार करनेके लिये आपत्ति होती है; न छोळनेके लिये बुरी धारणा होती है। उसको संघ० प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है, देखता है उस आपत्तिको ? उस आपत्तिका प्रतिकार कर ! तेरे पास बुरी धारणा है उस अपनी बुरी धारणाको छोळ ! ' वह ऐसा कहता है—'आवुसो ! मुझे आपत्ति नहीं जिसको कि देखूँ, जिसका प्रतिकार करूँ। मुझे बुरी धारणा नहीं जिसको कि छोळूँ।' संघ न देखने, न प्रतिकार करने, न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपण करता है तो यह अ ध र्म कर्म है। 26

ख. "(१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है, उसको संघ या वहुतसे (भिक्षु) या एक (भिक्षु) प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझे आपत्ति है। देखता है उस आपत्तिको ?' वह ऐसा वोलता है—'हाँ आवुस ! देखता हूँ।' उसका संघ आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपण करता है, (यह) अ ध र्म कर्म है। 27

"(२) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुको प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है। उसे संघ० प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आ प त्ति (=अपराध) हुई है। उस आपत्तिका प्रतिकार कर।' वह ऐसा

कहता है—'हाँ आवुस ! प्रतिकार करूँगा।' तब उसका संघ प्रतिकार न करनेके लिये उत्क्षेपण करता है। (यह) अ धर्म कर्म है। 28

"(३) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुको छोळने लायक बुरी धारणा होती है। उसे संघ० प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझे बुरी धारणा है। उस बुरी धारणाको छोळ।' वह यह कहता है—'हाँ आवुसो! छोळूँगा।' उसका संघ बुरी धारणाके न छोळनेके लिये उत्क्षेपण करता है। (यह) अ धर्म कर्म है। 29

"(४) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है, प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है०। 30

"(५) ० एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है, छोळने लायक बुरी धारणा होती है०।31

"(६) ० एक भिक्षुको प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है और छोळने लायक बुरी धारणा होती है०।32

"(७) ० एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है, प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है और छोळने लायक बुरी धारणा होती है। उसे संघ ० प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है। देखता है उस आपत्ति को ? उस आपत्तिका प्रतिकार कर ! तुझे बुरी धारणा है। उस बुरी धारणाको छोळ।' वह ऐसा कहता है—'हाँ आवुसो ! देखता हूँ। हाँ, प्रतिकार करूँगा, हाँ छोळूँगा।' उसे संघ न देखनेके लिये, प्रतिकार न करनेके लिये, न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपण करता है। (यह) अधर्म कर्म है।" 33

(८) धर्मसे उत्क्षेपणीय कर्म

क. "(१) "भिक्षुओ ! एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है। उसको संघ या बहुतसे (भिक्षु) या एक व्यक्ति प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है। देखता है तू उस आपत्तिको ?' वह ऐसा कहता है—'आवुसो ! मुझसे आपत्ति नहीं हुई है जिसे कि मैं देखूँ।' संघ आपत्तिको न देखनेके लिये उसका उत्क्षेपण करता है। (यह) धर्म-कर्म है। 34

"(२) ० भिक्षुको प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है। ०। वह ऐसा बोलता है—'आवुसो ! मुझे आपत्ति नहीं है जिसका कि मैं प्रतिकार करूँ।' संघ आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये उसका उत्क्षेपण करता है। (यह) धर्म-कर्म (=न्याय) है। 35

"(३) ० भिक्षुको छोळने लायक बुरी धारणा होती है ०। ०। वह ऐसा बोलता है—'आवुसो ! मुझे बुरी धारणा नहीं है जिसको कि मैं छोळूँ।' संघ बुरी धारणाके न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपण करता है। (यह) धर्म-कर्म है। 36

"(४) ० भिक्षुको देखने लायक आपत्ति और प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है। ०।[1] 37

"(५) ० भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है और छोळने लायक बुरी धारणा होती है।०।[1] 38

"(६) ० भिक्षुको प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है, छोळने लायक बुरी धारणा होती है।०।[1] 39

"७—० भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है, प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है, और छोळने लायक बुरी धारणा होती है। उसको संघ० प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है। देखता है तू उस आपत्तिको ? उस आपत्तिका प्रतिकार कर ! तुझे बुरी धारणा है; उस बुरी धारणाको छोळ।' वह ऐसा कहता है—'आवुसो ! मुझे आपत्ति नहीं है जिसको कि मैं देखूँ। मुझे आपत्ति नहीं है

---

[1] ऊपरकी तरह यहाँ भी मिलाकर पढ़ना चाहिये।

जिसका कि मैं प्रतिकार करूँ। मुझे बुरी धारणा नहीं है जिसको कि मैं छोळूँ।' संघ न देखने, प्रतिकार न करने, न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपण करे (यह) ध र्म - क र्म है।" 40

§३—कुछ अधर्म और धर्म-कर्म

(१) अधर्म कर्म

१—तब आयुष्मान् उ पा लि जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् उपालि ने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! समग्र संघके सामने करने लायक कर्मको जो बे-सामने करता है तो भन्ते! क्या वह ध र्म - क र्म है? वि न य - क र्म है?"

"उ पा लि! वह अ ध र्म क र्म है, अ - वि न य कर्म है।"

२—"भन्ते! समग्र संघसे पूछकर करने लायक कर्मको जो विना पूछे करे; प्रतिज्ञा करके करने लायक कर्मको बिना प्रतिज्ञाके करे; स्मृति-विनय देने लायकको अ मू ढ़ वि न य दे; अमूढ़ विनयके लायकको त त्पा पी य सि क कर्म करे; त त्पा पी य सि क कर्मके लायकका त र्ज नी य कर्म करे; तर्जनीय कर्म लायकका नि य स्स कर्म करे; नियस्स कर्म लायकका प्र व्रा ज नी य कर्म करे; प्रव्राजनीय कर्म लायकका प्रतिसारणीय कर्म करे; प्रतिसारणीय कर्म लायकका उत्क्षेपणीय कर्म करे; उत्क्षेपणीय कर्म लायकको प रि वा स दे; परिवास देने लायकको मूलसे प्रतिकर्षण करे; मूलसे प्रतिकर्षण करने लायकको मा न त्व दे; मानत्व देने लायकका आह्वान करे; आह्वान लायकका उ प स म्पा द न करे; भन्ते! क्या यह ध र्म - क र्म है। वि न य - क र्म है?"

"उपालि! वह अ ध र्म क र्म है, अविनय कर्म है जो कि वह उ पा लि! समग्र संघके सामने करने लायक कर्मको वेसामने करता है। उ पा लि! इस प्रकार अ ध र्म क र्म होता है, अ - वि न य - क र्म होता है, और इस प्रकार संघ सा ति सा र (=अतिकी धारणावाला) होता है। उ पा लि! समग्र संघसे पूछकर करने लायक कर्मको जो विना पूछे करता है० आह्वान् लायकका उपसम्पादन करता है। उपालि! इस प्रकार अधर्म कर्म अ-विनय कर्म होता है; और इस प्रकार संघ सा ति सा र होता है।"

(२) धर्म कर्म

१—"भन्ते! समग्र संघके सामने करने लायक कर्मको जो सामने करता है, भन्ते! क्या वह ध र्म - क र्म है, विनय-कर्म है?"

"उ पा लि! वह ध र्म - क र्म है, वि न य - क र्म है।"

२—"भन्ते! समग्र संघसे पूछकर करने लायक कर्मको जो पूछकर करता है, प्रतिज्ञा करके करने लायक कर्मको प्रतिज्ञा करके करता है; स्मृति-विनयके लायकको स्मृ ति - वि न य देता है; अ मू ढ़ - वि न य ०; त त्पा पी य सि क - क र्म०; त र्ज नी य - क र्म०; नि य स्स क र्म०; प्र व्रा ज नी य क र्म०; प्र ति सा र णी य कर्म०; उ त्क्षे प णी य कर्म०; प रि वा स ०; मूलसे प्रतिकर्षण०; मा न त्व०; आह्वान०; उपसम्पदाके लायकको उपसम्पादन करता है; भन्ते! क्या यह ध र्म - क र्म है, वि न य - क र्म है?"

"उपालि! वह ध र्म - क र्म है, वि न य - क र्म है। उ पा लि! समग्र संघके सामने करने लायक कर्मको जो सामने करता है इस प्रकार उ पा लि! ध र्म - क र्म, वि न य - क र्म होता है और इस प्रकार संघ अ ति सा र-रहित होता है। उपालि! समग्र संघको पूछकर करने लायक कर्मको जो पूछकर करता है; प्रतिज्ञा करके करने लायक कर्मको०; स्मृति-विनय०; अमूढ़-विनय०; तत्पापीयसिक-कर्म०;

कहता है—'हाँ आवुस ! प्रतिकार करूँगा।' तब उसका संघ प्रतिकार न करनेके लिये उत्क्षेपण करता है। (यह) अ ध र्म क र्म है। 28

"(३) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुको छोळने लायक बुरी धारणा होती है। उसे संघ० प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझे बुरी धारणा है। उस बुरी धारणाको छोळ।' वह यह कहता है—'हाँ आवुसो! छोळूँगा।' उसका संघ बुरी धारणाके न छोळनेके लिये उत्क्षेपण करता है। (यह) अ ध र्म क र्म है। 29

"(४) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है, प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है ०। 30

"(५) ० एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है, छोळने लायक बुरी धारणा होती है ०। 31

"(६) ० एक भिक्षुको प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है और छोळने लायक बुरी धारणा होती है ०। 32

"(७) ० एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है, प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है और छोळने लायक बुरी धारणा होती है। उसे संघ ० प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है। देखता है उस आपत्ति को ? उस आपत्तिका प्रतिकार कर ! तुझे बुरी धारणा है। उस बुरी धारणाको छोळ।' वह ऐसा कहता है—'हाँ आवुसो ! देखता हूँ। हाँ, प्रतिकार करूँगा, हाँ छोळूँगा।' उसे संघ न देखनेके लिये, प्रतिकार न करनेके लिये, न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपण करता है। (यह) अधर्म कर्म है।" 33

(८) धर्मसे उत्क्षेपणीय कर्म

क. "(१) "भिक्षुओ ! एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है। उसको संघ या बहुतसे (भिक्षु) या एक व्यक्ति प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है। देखता है तू उस आपत्तिको ?' वह ऐसा कहता है—'आवुसो ! मुझसे आपत्ति नहीं हुई है जिसे कि मैं देखूँ।' संघ आपत्तिको न देखनेके लिये उसका उत्क्षेपण करता है। (यह) ध र्म - क र्म है। 34

"(२) ० भिक्षुको प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है। ०। वह ऐसा बोलता है—'आवुसो ! मुझे आपत्ति नहीं है जिसका कि मैं प्रतिकार करूँ।' संघ आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये उसका उत्क्षेपण करता है। (यह) ध र्म - क र्म (=न्याय) है। 35

"(३) ० भिक्षुको छोळने लायक बुरी धारणा होती है ०। ०। वह ऐसा बोलता है—'आवुसो ! मुझे बुरी धारणा नहीं है जिसको कि मैं छोळूँ।' संघ बुरी धारणाके न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपण करता है। (यह) ध र्म - क र्म है। 36

"(४) ० भिक्षुको देखने लायक आपत्ति और प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है। ०।[1] 37

"(५) ० भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है और छोळने लायक बुरी धारणा होती है।०।[1] 38

"(६) ० भिक्षुको प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है, छोळने लायक बुरी धारणा होती है। ०।[1] 39

"७—० भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है, प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है और छोळने लायक बुरी धारणा होती है। उसको संघ० प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है। देखता है तू उस आपत्तिको ? उस आपत्तिका प्रतिकार कर ! तुझे बुरी धारणा है; उस बुरी धारणाको छोळ।' वह ऐसा कहता है—'आवुसो ! मुझे आपत्ति नहीं है जिसको कि मैं देखूँ। मुझे आपत्ति नहीं है

---

[1] ऊपरकी तरह यहाँ भी मिलाकर पढ़ना चाहिये।

जिसका कि मैं प्रतिकार करूँ। मुझे बुरी धारणा नहीं है जिसको कि मैं छोळूँ।' संघ न देखने, प्रतिकार न करने, न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपण करे (यह) धर्म-कर्म है।" 40

§२—कुछ अधर्म और धर्म-कर्म

(१) अधर्म कर्म

१—तब आयुष्मान् उपालि जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् उपालि ने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! समग्र संघके सामने करने लायक कर्मको जो बे-सामने करता है तो भन्ते! क्या वह धर्म-कर्म है? विनय-कर्म है?"

"उपालि! वह अधर्मकर्म है, अ-विनय कर्म है।"

२—"भन्ते! समग्र संघसे पूछकर करने लायक कर्मको जो विना पूछे करे; प्रतिज्ञा करके करने लायक कर्मको विना प्रतिज्ञाके करे; स्मृति-विनय देने लायकको अमूढ़ विनय दे; अमूढ़ विनयके लायकको तत्पापीयसिक कर्म करे; तत्पापीयसिक कर्मके लायकका तर्जनीय कर्म करे; तर्जनीय कर्म लायकका नियस्स कर्म करे; नियस्स कर्म लायकका प्रव्राजनीय कर्म करे; प्रव्राजनीय कर्म लायकका प्रतिसारणीय कर्म करे; प्रतिसारणीय कर्म लायकका उत्क्षेपणीय कर्म करे; उत्क्षेपणीय कर्म लायकको परिवास दे; परिवास देने लायकको मूलसे प्रतिकर्षण करे; मूलसे प्रतिकर्षण करने लायकको मानत्व दे; मानत्व देने लायकका आह्वान करे; आह्वान लायकका उपसम्पादन करे; भन्ते! क्या यह धर्म-कर्म है। विनय-कर्म है?"

"उपालि! वह अधर्मकर्म है, अविनय कर्म है जो कि वह उपालि! समग्र संघके सामने करने लायक कर्मको वेसामने करता है। उपालि! इस प्रकार अधर्मकर्म होता है, अ-विनय-कर्म होता है, और इस प्रकार संघ सातिसार (=अतिकी धारणावाला) होता है। उपालि! समग्र संघसे पूछकर करने लायक कर्मको जो विना पूछे करता है० आह्वान् लायकका उपसम्पादन करता है। उपालि! इस प्रकार अधर्म कर्म अ-विनय कर्म होता है; और इस प्रकार संघ सातिसार होता है।"

(२) धर्म कर्म

१—"भन्ते! समग्र संघके सामने करने लायक कर्मको जो सामने करता है, भन्ते! क्या वह धर्म-कर्म है, विनय-कर्म है?"

"उपालि! वह धर्म-कर्म है, विनय-कर्म है।"

२—"भन्ते! समग्र संघसे पूछकर करने लायक कर्मको जो पूछकर करता है, प्रतिज्ञा करके करने लायक कर्मको प्रतिज्ञा करके करता है; स्मृति-विनयके लायकको स्मृति-विनय देता है; अमूढ़-विनय०; तत्पापीयसिक-कर्म०; तर्जनीय-कर्म०; नियस्सकर्म०; प्रव्राजनीय कर्म०; प्रतिसारणीय कर्म०; उत्क्षेपणीय कर्म०; परिवास०; मूलसे प्रतिकर्षण०; मानत्व०; आह्वान०; उपसम्पदाके लायकको उपसम्पादन करता है; भन्ते! क्या यह धर्म-कर्म है, विनय-कर्म है?"

"उपालि! वह धर्म-कर्म है, विनय-कर्म है। उपालि! समग्र संघके सामने करने लायक कर्मको जो सामने करता है इस प्रकार उपालि! धर्म-कर्म, विनय-कर्म होता है और इस प्रकार संघ अतिसार-रहित होता है। उपालि! समग्र संघको पूछकर करने लायक कर्मको जो पूछकर करता है; प्रतिज्ञा करके करने लायक कर्मको०; स्मृति-विनय०; अमूढ़-विनय०; तत्पापीयसिक-कर्म०;

तर्जनीय कर्म०; नियस्स कर्म०; प्रव्राजनीय कर्म०; प्रतिसारणीय कर्म०; उत्क्षेपणीय कर्म०; परिवास०; मूलसे-प्रतिकर्षण०; मानत्व०; आह्वान्०; उपसम्पदाके लायकको उपसम्पदा देता है; इस प्रकार उपालि! धर्म-कर्म, विनय-कर्म होता है और इस प्रकार संघ अतिसार रहित होता है।"

(३) अधर्म कर्म

१—"भन्ते! समग्र संघ स्मृति-विनयके लायकको यदि अमूढ़-विनय दे, अमूढ़-विनयके लायकको स्मृति-विनय दे तो भन्ते! क्या यह धर्म-कर्म, विनय-कर्म है?"

"उपालि! वह अधर्म कर्म है, अ-विनय कर्म है।"

२—"यदि भन्ते! समग्र संघ अमूढ़ विनयके लायक का तत्पापीयसिक कर्म करे, और तत्पापीयसिक कर्म लायकको अमूढ़-विनय दे; तत्पापीयसिक कर्म लायकका तर्जनीय कर्म करे; तर्जनीय कर्म लायकका तत्पापीयसिक कर्म करे; तर्जनीय कर्म लायकका नियस्स कर्म करे; नियस्स-कर्म लायकका तर्जनीय कर्म करे; नियस्स कर्म लायकका प्रव्राजनीय कर्म करे; प्रव्राजनीय कर्म लायकका नियस्स कर्म करे; प्रव्राजनीय कर्म लायकका प्रतिसारणीय कर्म करे; प्रतिसारणीय कर्म लायकका प्रव्राजनीय कर्म करे; प्रतिसारणीय कर्म लायकका उत्क्षेपणीय कर्म करे; उत्क्षेपणीय कर्म लायकका प्रतिसारणीय कर्म करे; उत्क्षेपणीय कर्म लायकको परिवास दे; परिवास लायकका उत्क्षेपणीय कर्म करे; परिवास लायकका मूलसे प्रतिकर्षण करे; मूलसे प्रतिकर्षण लायकको परिवास दे; मूलसे प्रतिकर्षण लायकको मानत्व दे; मानत्व लायकका मूलसे प्रतिकर्षण करे; मानत्व लायकका आह्वान् करे; आह्वान् लायकको मानत्व दे; आह्वान् लायकको उपसम्पादन करे; उपसम्पदा लायकका आह्वान् करे; भन्ते! क्या यह धर्म-कर्म है, विनय-कर्म है?"

"उपालि वह अ-धर्म-कर्म है, अ-विनय-कर्म है। उपालि! यदि समग्र संघ, स्मृति-विनयके लायकको अमूढ़-विनय दे, अमूढ़-विनय लायकको स्मृति-विनय दे, तो उपालि यह अधर्म-कर्म, अ-विनय-कर्म होता है; और इस प्रकार संघ अतिसार युक्त होता है। ०[1]। आह्वान लायकको उपसम्पदा दे; उपसम्पदा लायकका आह्वान करे; उपालि यह अधर्म कर्म अ-विनय कर्म होता है और इस प्रकार संघ अतिसार-युक्त होता है।"

(४) धर्म कर्म

१—"भन्ते! समग्र संघ यदि स्मृति-विनय लायकको स्मृति-विनय दे; अमूढ़-विनय लायकको अमूढ़-विनय दे तो भन्ते! क्या यह धर्म-कर्म है, विनय-कर्म है?"

"उपालि! यह धर्म-कर्म है, विनय-कर्म है।"

२—"भन्ते! यदि समग्र संघ अमूढ़ विनय लायकको अमूढ़ विनय दे, तत्पापीयसिक कर्म०, तर्जनीय कर्म०; नियस्स कर्म०; प्रव्राजनीय कर्म०; प्रतिसारणीय कर्म०; उत्क्षेपणीयकर्म०; परिवास०; मूलसे प्रतिकर्षण०; मानत्व०; आह्वान०; उपसम्पदा लायकको उपसम्पदा दे, तो भन्ते! क्या यह धर्म-कर्म है! विनय-कर्म है?"

"उपालि! यह धर्म-कर्म है, विनय-कर्म है। यदि उपालि समग्र संघ स्मृति-विनय लायकको स्मृति-विनय दे; ० [2]उपसम्पदा लायकको उपसम्पदा दे, तो उपालि! यह धर्म-कर्म, विनय-कर्म होता है और इस प्रकार संघ अतिसार रहित होता है।"

---

[1] ऐसेही आगे भी उपालिके प्रश्नमें आये वाक्योंको दुहराना चाहिये।

[2] उपालिके प्रश्नमें आये वाक्योंको फिर यहाँ दुहराना चाहिये।

(५) अधर्म कर्मका रूप

तव भगवान्‌ने भिक्षुओंको संवोधित किया—

१—"भिक्षुओ ! यदि समग्र संघ स्मृति-विनय लायकको अमूढ़ विनय दे; (तो) भिक्षुओ ! यह अधर्म-कर्म अविनय-कर्म होता है; और इस प्रकार संघ अतिसार-युक्त होता है। ० स्मृति-विनय लायकका तत्पापीयसिक कर्म करे; स्मृति-विनय लायकका तर्जनीय कर्म करे; ० नियस्स कर्म करे; ० प्रव्राजनीय कर्म करे; ० प्रतिसारणीय कर्म करे; ० उत्क्षेपणीय कर्म करे०; परिवास दे; ० मूलसे प्रतिकर्पण करे; ० मानत्त्व दे; ० आह्वान करे; स्मृति-विनय लायकको उपसम्पदा दे; (तो) भिक्षुओ ! यह अधर्म कर्म, अविनय कर्म होता है; और इस प्रकार संघ अतिसार-युक्त होता है।

२—"भिक्षुओ ! यदि समग्र संघ अमूढ़-विनय लायकका तत्पापीयसिक कर्म करे; ०[1] अमूढ़-विनय लायकको उपसम्पदा दे; (तो) भिक्षुओ ! यह अधर्म-कर्म, अविनय-कर्म होता है; और इस प्रकार संघ अतिसार-युक्त होता है। 41

३—"भिक्षुओ ! यदि समग्र संघ , तत्पापीयसिक कर्म लायकको०[2]। 42

४—"भिक्षुओ ! यदि समग्र संघ तर्जनीय कर्म लायकको०[2]। 43

५—"भिक्षुओ ! यदि समग्र संघ नियस्स कर्म लायकको०[2]। 44

६—"भिक्षुओ ! यदि समग्र संघ प्रव्राजनीय कर्म लायकको०[2]। 45

७—" ० प्रतिसारणीय कर्म लायकको०[2]। 46

८—" ० उत्क्षेपणीय कर्म लायकको०[2]। 47

९—" ० परिवास लायकको०[2]। 48

१०—" ० मूलसे प्रतिकर्पण लायकको[2]। 49

११—" ० मानत्त्व लायकको०[2]। 50

१२—" ० आह्वान लायकको०[2]। 51

१३—"भिक्षुओ ! यदि समग्र संघ उपसम्पदा लायक को स्मृति विनय दे; (तो) भिक्षुओ ! यह अधर्म कर्म, अविनय-कर्म होता है; और इस प्रकार संघ अतिसार-युक्त होता है। भिक्षुओ ! यदि समग्र संघ उपसंपदा लायकको अमूढ़-विनय दे ०। ० तत्पापीयसिक कर्म करे०। ० तर्जनीय कर्म०। ० नियस्स कर्म ०।० प्रव्राजनीय कर्म ०।० प्रतिसारणीय कर्म ०।० उत्क्षेपणीय कर्म ०।० परिवास ०।० मूलसे प्रति-कर्पण ०।० मानत्त्व ०। भिक्षुओ ! यदि समग्र संघ उपसंपदा लायकको आह्वान दे; (तो) भिक्षुओ ! यह अधर्म-कर्म अविन-यकर्म होता है; और इस प्रकार संव अतिसार-युक्त है।" 52

उपालि भाणवार द्वितीय ॥२॥

§४—अधर्म कर्म

(१) तर्जनीय कर्म

"भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षु झगळालू , कलह-कारक, विवाद-कारक बकवादी, संघमें (सदा) मुकदमा करनेवाला होता है ।

१—यदि वहाँ भिक्षुओंको ऐसा हो—'आवुसो ! यह भिक्षु झगळालू ० है, आओ हम इसका

---

[1] अमूढ़-विनयके साथ वाकी सव वाक्योंको रखकर पढ़ना चाहिये ।

[2] ऊपरकी भाँति आवृत्ति ।

तर्जनीय कर्म करें।' वह अ ध र्म से व र्ग[1] द्वारा उसका त र्ज नी य क र्म (=डाँटनेका दंड) करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 53

२—"वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! इस भिक्षुका अधर्मसे वर्ग द्वारा संघने तर्जनीय कर्म किया है। आओ हम इसका तर्जनीय कर्म करें।' वह उसका अ ध र्म से स म ग्र द्वारा तर्जनीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 54

३—"वहाँ भिक्षुओंको यह होता है—'आवुसो! इस भिक्षुका संघने अधर्मसे समग्र द्वारा तर्जनीय कर्म किया है। आओ हम इसका तर्जनीय कर्म करें।' वह धर्म से वर्ग द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते है। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 55

४—"वहाँ भी भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! इस भिक्षुका संघने धर्मसे वर्ग द्वारा तर्जनीयकर्म किया है। आओ।, हम इसका तर्जनीय कर्म करें।' वह उस भिक्षुका ध र्मा भा स व र्ग द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 56

५—"वहाँ भी भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! इस भिक्षुका संघने ध र्मा भा स व र्ग द्वारा तर्जनीय कर्म किया है। आओ, हम इसका तर्जनीय कर्म करें।' वह ध र्मा भा स स म ग्र द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। 57

६—"भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु झगळालू ० होता है। यदि वहाँ भिक्षुओंको ऐसा हो—यह भिक्षु झगळालू ० है, आओ, हम इसका तर्जनीय कर्म करें।' वह अधर्मसे समग्र द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 58

७—"वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'०। वह ध र्म से व र्ग द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। ०। 59

८—"वह उस आवासको छोळ कर दूसरे आवासमें चला जाता है। वहाँ भी भिक्षुओंको ऐसा होता है—०। वह ध र्मा भा स व र्ग द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। ०। 60

९—"वहाँ भी भिक्षुओंको ऐसा होता है—०। वह ध र्मा भा स से स म ग्र द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते हैं।०। 61

१०—"वहाँ भी भिक्षुओंको ऐसा होता है—०। वह अ ध र्म से व र्ग द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। 62

११—"भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु झगळालू ० होता है। यदि वहाँ भिक्षुओंको ऐसा हो—'आवुसो! यह भिक्षु झगळालू ० है। आओ, हम इसका तर्जनीय कर्म करें।' वह धर्म से व र्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 63

१२—"वहाँ भी भिक्षुओंको ऐसा होता है— ०। वह ध र्मा भा स से व र्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं।०। 64

१३—"वहाँ भी भिक्षुओंको ऐसा होता है—०। 65

"वह ध र्मा भा स से स म ग्र हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। ०। 66

१४—"वहाँ भी भिक्षुओंको ऐसा होता है—०। वह अ ध र्म से व र्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं।०। 67

१५—"वहाँ भी भिक्षुओंको ऐसा होता है—०। वह अ ध र्म से स म ग्र हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। 68

---

[1] नियम-विरुद्ध पार्टी।

"१६—भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु झगळालू० होता है।०। वह धर्माभास वर्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं।०। 69

१७—"वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—०। वह धर्माभास समग्र हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं।०। 70

१८—"० वह अधर्मसे वर्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं।०। 71

१९—"० वह अधर्मसे वर्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं।०। 72

२०—"० वह धर्मसे वर्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं।० 73

२१—"० वह धर्माभाससे समग्र हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं।०। 74

२२—"० अधर्मसे वर्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं।०। 75

२३—"० वह अधर्मसे समग्र हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं।०। 76

२४—"० वह धर्मसे वर्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं।०। 77

२५—"० वह धर्माभाससे वर्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं।" 78

(२) नियस्स कर्म

१—भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु मूर्ख, अजान, बहुत आपत्ति (=अपराध) करनेवाला, अपदान (=आचार)-रहित, गृहस्थोंसे (अत्यधिक) संसर्ग रखनेवाला, प्रतिकूल गृहस्थ संसर्गसे युक्त होता है। यदि वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! यह भिक्षु मूर्ख० प्रतिकूल गृहस्थ संसर्गसे युक्त है, आओ! हम इसका नियस्स कर्म करें।' वह अधर्मसे वर्ग हो उसका नियस्स कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 79

२—वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! संघने अधर्मसे वर्ग हो इस भिक्षुका नियस्स कर्म किया है। आओ हम इसका नियस्स कर्म करें।' वह अधर्मसे समग्र हो उसका नियस्स कर्म करते हैं। वह उस आवाससे चला जाता है। 80

३—० धर्मसे वर्ग हो ०। 81

४—धर्माभाससे वर्ग हो ०। 82

५—धर्माभाससे समग्र हो ०।०[1]। 83

२५—० वह धर्माभाससे वर्ग हो उसका नियस्स कर्म करते हैं। 84

(३) प्रव्राजनीय कर्म

१—यहाँ एक भिक्षु कुल दूषक (और) दुराचारी होता है। वहाँ यदि भिक्षुओंको ऐसा होता है—'यह भिक्षु कुल दूषक और दुराचारी है। आओ, हम इसका प्रव्राजनीय कर्म (=वहाँसे हटा देनेका दंड) करें।' वह अधर्मसे वर्ग हो उसका प्रव्राजनीय कर्म करते हैं। वह दूसरे आवासमें चला जाता है। 85

२—"वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! संघने अधर्मसे वर्ग हो इस भिक्षुका प्रव्राजनीय कर्म किया है। आओ, हम इसका प्रव्राजनीय कर्म करें।' वह उसका अधर्मसे समग्र हो प्रव्राजनीय कर्म करते हैं। 86

३—० धर्मसे वर्ग हो ०। 87

४—"धर्माभाससे वर्ग हो ०। 88

---

[1] तर्जनीय कर्मकी तरह यहाँ भी नम्बर पच्चीस तक (पृष्ठ ३११-१३) दुहराना चाहिये।

५—"धर्माभाससे समग्र हो ० । ०[1] । 89

२५—"० वह धर्माभाससे वर्ग हो उसका प्रव्राजनीयकर्म करते हैं। 109

(४) प्रतिसारणीय कर्म

१—"भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु गृहस्थोंका आक्रोश (=गाली-गलौज), परिभाष (=बकवाद) करता है। वहाँ भिक्षुओंको यदि ऐसा होता है—'आवुसो! यह भिक्षु गृहस्थोंको आक्रोश परिभास करता है, आओ, हम इसका प्रतिसारणीय कर्म करें।' वह अधर्मसे वर्ग हो उसका प्रतिसारणीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 110

२—"वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! संघने अधर्मसे वर्ग हो इस भिक्षुका प्रतिसारणीय कर्म किया है। आओ, हम इसका प्रतिसारणीय कर्म करें।' वह अधर्मसे समग्र हो उसका प्रतिसारणीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 111

३—"० धर्मसे वर्ग हो०। 112

४—"० धर्माभाससे वर्ग हो०। 113

५—"० धर्माभाससे समग्र हो०। ०[2]। 114

२५—"० वह धर्माभाससे वर्ग हो उसका प्रतिसारणीय कर्म करते हैं।" 134

(५) उत्क्षेपणीय कर्म

क. "(१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु आपत्ति (=अपराध) करके उस आपत्तिको देखना (Realisation) नहीं चाहता। वहाँ यदि भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! यह भिक्षु आपत्ति करके उसको देखना नहीं चाहता। आपत्तिके न देखनेसे आओ, हम इसका उत्क्षेपणीय कर्म करें।' वह अधर्मसे वर्ग हो उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं। वह आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 135

"(२) वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! संघने आपत्तिके न देखनेसे इस भिक्षुका अधर्मसे वर्ग हो उत्क्षेपणीय कर्म किया है। आओ, हम आपत्तिके न देखनेसे इसका उत्क्षेपणीय कर्म करें।' वह अधर्मसे समग्र हो आपत्तिके न देखनेसे उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे चला जाता है। 136

"(३) ० धर्मसे वर्ग हो०। 137

"(४) ० धर्माभाससे वर्ग हो०। 138

"(५) ० धर्माभाससे समग्र हो०। ०[2]। 139

"(२५) ० धर्माभाससे वर्ग हो आपत्तिके न देखनेसे उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं।" 159

ख. "(१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु आपत्ति करके आपत्तिको प्रतिकार नहीं करना चाहता। वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! यह भिक्षु आपत्ति (=दोष) करके आपत्तिका प्रतिकार नहीं करना चाहता, आओ, हम आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे इसका उत्क्षेपणीय कर्म करें।' वह अधर्मसे वर्ग हो आपत्तिके प्रतिकार न करनेके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 160

"(२) वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! संघने अधर्मसे वर्ग हो आपत्तिका प्रतिकार

---

[1] तर्जनीय कर्मकी तरह यहाँ भी नम्बर पच्चीस तक दुहराना चाहिये।

[2] तर्जनीय कर्मकी तरह यहाँ भी नम्बर पच्चीस तक दुहराना चाहिये।

न करनेके लिये इस भिक्षुका उत्क्षेपणीय कर्म किया है। आओ हम आपत्तिके न प्रतिकारके लिये इसका उत्क्षेपणीय कर्म करें।' वह अ ध र्म से स म ग्र हो आपत्तिके प्रतिकार न करनेके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 161

"(३) ० धर्मसे वर्ग हो०। 162

"(४) ० धर्माभाससे वर्ग हो०। 163

"(५) ० धर्माभाससे समग्र हो०। ०[1]। 164

"(२५) ० ध र्मा भा स से व र्ग हो आपत्तिसे प्रतिकार न करनेके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं।" 184

ग. "(१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु बुरी धारणाको छोळना नहीं चाहता। वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! यह भिक्षु बुरी धारणाको नहीं छोळना चाहता। आओ, हम बुरी धारणाके न छोळनेके लिये इसका उत्क्षेपणीय कर्म करें।' वह अधर्मसे वर्ग हो बुरी धारणाके न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 185

"(२) वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! संघने अधर्मसे वर्ग हो बुरी धारणाके न छोळनेके लिये इस भिक्षुका उत्क्षेपणीय कर्म किया है। आओ, हम इसका बुरी धारणा न छोळनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म करें। वह अ ध र्म से स म ग्र हो बुरी धारणा न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 186

"(३) ० धर्मसे वर्ग हो ०। 187

"(४) ० धर्माभाससे वर्ग हो ०। 188

"(५) ० धर्माभाससे समग्र हो ०। ०[1]। 189

"(२५) ० धर्माभाससे वर्ग हो वुरी धारणा न छोळनेके लिए उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं।" 209

§५—नियम-विरुद्ध दंडकी माफ़ी

(१) तर्जनीय कर्मकी माफ़ी

१—"भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षुका संघने तर्जनीय कर्म किया है, (तव वह) ठीकसे रहता है, लोम गिराता है, निस्तारके लिये काम करता है, (और) तर्जनीय कर्मकी माफ़ी चाहता है। वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! इस भिक्षुका संघने तर्जनीय कर्म किया है। अव यह ठीकसे रहता है, लोम गिराता है, निस्तारके लिये काम करता है, (और) तर्जनीय कर्मकी माफ़ी चाहता है। आओ, हम इसके तर्जनीय कर्मको माफ़ करें (=हटा लें)।' वह अधर्मसे वर्ग हो उसको तर्जनीय कर्मको माफ़ करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 210

२—"वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! संघने अधर्मसे वर्ग हो इस भिक्षुके तर्जनीय कर्मको माफ़ किया है। आओ, हम इसके तर्जनीय कर्मको माफ़ करें। वह अ ध र्म से स म ग्र हो उसके तर्जनीय कर्मको माफ़ करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 211

३—"० धर्मसे वर्ग हो०। 212

४—"० धर्माभाससे वर्ग हो०। 213

---

[1]तर्जनीय कर्मकी तरह यहाँ भी नम्बर पच्चीस (पृष्ठ ३११-१३) तक दुहराना चाहिये।

५—"० धर्माभाससे समग्र हो० । ०[1] । 214

२५—"० धर्माभाससे वर्ग हो उसके तर्जनीय कर्मको माफ़ करते हैं।" 224

(२) नियस्स कर्मकी माफ़ी

१—"भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका संघने नियस्स कर्म किया है, (तब वह) ठीकसे रहता है, लोम गिराता है, निस्तारके लिये काम करता है और नियस्स कर्मकी माफ़ी चाहता है । वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—० नियस्स कर्मकी माफ़ी चाहता है। आओ, हम इसके नियस्स कर्मको माफ़ करदें।' वह अधर्मसे वर्ग हो उसके नियस्स कर्मको माफ़ करते हैं। वह उस आवासमे दूसरे आवासमें जाता है।" 225

२—"वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो ! संघने अधर्मसे वर्ग हो इस भिक्षुके नियस्स कर्मको माफ़ किया है। आओ, हम इसके नियस्स कर्मको माफ़ करें।' वह अधर्मसे समग्र हो उसके नियस्स कर्मको माफ़ करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 226

३—"० धर्मसे वर्ग हो ० । 227

४—"० धर्माभाससे वर्ग हो० । 228

५—"० धर्माभाससे समग्र हो० ।[1] ० । 229

२५—"० धर्माभाससे वर्ग हो उसके नियस्स कर्मको माफ़ करते हैं।" 249

(३) प्रव्राजनीय कर्मको माफ़ी

१—"भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका संघने प्रव्राजनीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है० प्रव्राजनीय कर्मकी माफ़ी चाहता है० । वह अधर्मसे वर्ग हो उसके प्रव्राजनीय कर्मको माफ़ करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 250

२—"० वह अधर्मसे समग्र हो उसके प्रव्राजनीय कर्मको माफ़ करते हैं० । 251

३—"० धर्मसे वर्ग हो० । 252

४—"० धर्माभाससे वर्ग हो० । 253

५—"० धर्माभाससे समग्र हो० । ०[2] । 254

२५—"० धर्माभाससे वर्ग हो उसके प्रव्राजनीय कर्मको माफ़ करते हैं।" 274

(४) प्रतिसारणीय कर्मकी माफ़ी

१—"भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका संघने प्रतिसारणीय कर्म किया है । (तब वह) ठीकसे रहता है० प्रतिसारणीय कर्मकी माफ़ी चाहता है० । वह अधर्मसे वर्ग हो उसके प्रतिसारणीय कर्मको माफ़ करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें जाता है। 275

२—"० वह अधर्मसे समग्र हो उसके प्रतिसारणीय कर्मको माफ़ करते हैं० । 276

३—"० धर्मसे वर्गहो० । 277

४—"० धर्माभाससे वर्ग हो० । 278

५—"० धर्माभाससे समग्र हो० । ०[2] । 279

२५—"० धर्माभाससे वर्ग हो उसके प्रतिसारणीय कर्मको माफ़ करते हैं। 299

---

[1] 'तर्जनीय कर्म'की तरह नम्बर पच्चीस तक यहाँ भी दुहराना चाहिये ।

[2] 'तर्जनीय'की तरह यहाँ 'तर्जनीय कर्मकी माफ़ीके लिये' दुहराना चाहिये ।

(५) उत्क्षेपणीय कर्मकी माफ़ी

क. "(१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका संघने आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है० आपत्तिके न देखनेसे किये गये उत्क्षेपणीय कर्मकी माफ़ी चाहता है० वह अधर्मसे वर्ग हो आपत्तिके न देखनेसे किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ़ करते हैं। वह उस आवासमेंसे दूसरे आवासमें जाता है। 300

"(२) ० अधर्मसे समग्र हो०। 301

"(३) ० धर्मसे वर्ग हो०। 302

"(४) ० धर्माभाससे वर्ग हो०। 303

"(५) ० धर्माभाससे समग्र हो०। 304 [1]

"(२५) ० धर्माभाससे वर्ग हो आपत्तिके न देखनेसे किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ़ करते हैं।" 324

ख. "(१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका संघने आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है० आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये किये गये उत्क्षेपणीय कर्मकी माफ़ी चाहता है० वह अधर्मसे वर्ग हो आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ़ करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें जाता है। 325

"(२) ० अधर्मसे समग्र हो०। 326

"(३) ० धर्मसे वर्ग हो०। 327

"(४) ० धर्माभाससे वर्ग हो०। 328

"(५) ० धर्माभाससे समग्र हो०। 329 [1]

"(२५) ० धर्माभाससे वर्ग हो आपत्तिके न प्रतिकार करनेसे किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ़ करते हैं।" 349

ग. "(१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका संघने बुरी धारणाके न छोळनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है० बुरी धारणाके न छोळनेके लिये किये गये उत्क्षेपणीय कर्मकी माफ़ी चाहता है० वह अधर्मसे वर्ग हो बुरी धारणा न छोळनेके लिये किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ़ करते हैं। वह उस आवासमेंसे दूसरे आवासमें जाता है। 350

"(२) ० अधर्मसे समग्र हो०। 351

"(३) ० धर्मसे वर्ग हो०। 352

"(४) ० धर्माभाससे वर्ग हो०। 353

"(५) ० धर्माभाससे समग्र हो०। 354 [1]

"(२५) ० धर्माभाससे वर्ग हो बुरी धारणा न छोळनेके लिये किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ़ करते हैं।" 374

§६—नियम-विरुद्ध दंड-संशोधन

(१) तर्जनीय कर्म

१—"भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षु झगळालू० होता है। वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—

---

[1] तर्जनीय कर्मकी तरह यहाँ भी दुहराना चाहिये।

"आवुसो ! यह भिक्षु झगळालू है, आओ, हम इसका तर्जनीय कर्म करें।' वह अधर्मसे वर्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। वहाँका रहनेवाला संघ विवाद करता है—(क) 'अधर्मसे वर्ग कर्म है; (ख) नहीं किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म (=न्याय) है।' भिक्षुओ! वहाँ जिन भिक्षुओंने ऐसे कहा—'यह अधर्मसे वर्ग कर्म है' (वह धर्मवादी नहीं हैं); किन्तु जिन भिक्षुओंने ऐसे कहा—'(यह) न किया कर्म है, बुरा किया है कर्म, फिर करने लायक कर्म है।' वहाँ ये भिक्षु धर्मवादी (=न्यायके पक्षपाती) हैं। 375

२—"० अधर्मसे समग्र कर्म०। 376

३—"० धर्मसे वर्ग कर्म०। 377

४—"० धर्माभाससे वर्ग कर्म०। 378

५—"० धर्माभाससे समग्र कर्म०। 379

६—"० वह अधर्मसे समग्र हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। वहाँका रहनेवाला संघ विवाद करता है—(क) 'अधर्मसे वर्ग कर्म है; (ख) नहीं किया कर्म (=न्याय) है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है। भिक्षुओ ! वहाँ जिन भिक्षुओंने ऐसे कहा—'यह अधर्मसे वर्ग कर्म है' (वह धर्मवादी नहीं हैं); (किन्तु) जिन भिक्षुओंने ऐसे कहा—'(यह) न किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है।' वहाँ ये भिक्षु धर्मवादी हैं।380 ०[1]

२५—"० वह धर्माभाससे वर्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। तब वहाँ रहनेवाला संघ विवाद करता है='(क) (यह) धर्माभाससे वर्गका कर्म है; (ख) नहीं किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है।' भिक्षुओ ! वहाँ जिन भिक्षुओंने ऐसे कहा—'(यह) धर्माभाससे वर्गका कर्म है' (वह धर्मवादी नहीं है); (किन्तु) जिन भिक्षुओंने ऐसे कहा—'(यह) नहीं किया कर्म है; फिर करने लायक कर्म है', (वहाँ ये भिक्षु धर्मवादी हैं)।" 400

(२) नियस्स कर्म

१—"भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षु मूर्ख०[2] प्रतिकूल गृहस्थ संसर्गसे युक्त होता है। यदि वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'०[2] आओ हम इसका नि य स्स कर्म करें।' वह अधर्मसे वर्ग हो उसका नियस्स कर्म करते हैं। वहाँका रहनेवाला संघ विवाद करता है—(क) 'अधर्मसे वर्ग कर्म है। (ख) नहीं किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है।" 401

०[2]। 425

(३) प्रव्राजनीय कर्म

१—"यहाँ एक भिक्षु कुलदूषक (और) दुराचारी होता है। वहाँ यदि भिक्षुओंको ऐसा होता है—'०[2] आओ हम इसका प्रव्राजनीय कर्म करें।' वह अधर्मसे वर्ग हो उसका प्रव्राजनीय कर्म करते हैं। वहाँका रहनेवाला संघ विवाद करता है—'(क) अधर्मसे वर्ग कर्म है। (ख) नहीं किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है।" 426। ०[2]। 450

(४) प्रतिसारणीय कर्म

१—"भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षु गृहस्थोंका आ क्रो श, प रि वा स करता है। वहाँ यदि भिक्षुओंको ऐसा होता है—'०[2] आओ हम इसका प्र ति सा र णी य कर्म करें।' वह अधर्मसे वर्ग हो

[1] 'तर्जनीय कर्म'की तरह यहाँ माफीके लिए भी दुहराना चाहिये।

[2] 'तर्जनीय कर्म'की तरह यहाँ भी दुहराना चाहिये।

कर्म उसका प्रतिसार करते हैं। वहाँका रहनेवाला संघ विवाद करता है—'(क) अधर्मसे वर्ग कर्म है।' (ख) नहीं किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है।"०[1] 451-475

(५) उत्क्षेपणीय कर्म

क. "(१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु आपत्ति करके उस आपत्तिको देखना नहीं चाहता। वहाँ यदि भिक्षुओंको ऐसा होता है—०[1] आओ हम आपत्ति न देखनेसे इसका उत्क्षेपणीय कर्म करें।' वह अधर्मसे वर्ग हो उसका प्रतिसारणीय कर्म करते हैं। वहाँका रहनेवाला संघ विवाद करता है—'(क) अधर्मसे वर्ग कर्म है। (ख) नहीं किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है'।"476 ०[2]।500

ख. "(१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु आपत्ति करके आपत्तिका प्रतिकार नहीं करना चाहता। वहाँ यदि भिक्षुओंको ऐसा होता है—०[3] आओ हम आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे इसका उत्क्षेपणीय कर्म करें।' वह अधर्मसे वर्ग हो आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं वहाँका रहनेवाला संघ विवाद करता है—'(क) अधर्मसे वर्ग कर्म है। (ख) नहीं किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है।' 501। ०[4]। 525

ग. "(१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु बुरी धारणाको छोळना नहीं चाहता। वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—०[5] आओ हम बुरी धारणा न छोळनेके लिये इसका उत्क्षेपणीय कर्म करें।' वह अधर्मसे वर्ग हो बुरी धारणा न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं। वहाँका रहनेवाला संघ विवाद करता है—'(क) अधर्मसे वर्ग कर्म है, (ख) नहीं किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है।' यहाँ ये भिक्षु धर्मवादी हैं। ०[6]। 526

(२५) "० वह अधर्मसे वर्ग हो उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं। तब वहाँ रहनेवाला संघ विवाद करता है—'(क) (यह) अधर्मसे वर्गका कर्म है; (ख) नहीं किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है।' भिक्षुओ! वहाँ जिन भिक्षुओंने ऐसे कहा—'अधर्मसे वर्गका कर्म है' (वह धर्मवादी नहीं है); (किन्तु) जिन भिक्षुओंने ऐसे कहा—'(यह) नहीं किया कर्म है,० फिर करने लायक कर्म है' (वहाँ ये भिक्षु धर्मवादी हैं)।" 550

§७—नियम-विरुद्ध दण्डकी माफ़ीका संशोधन

(१) तर्जनीय-कर्मकी माफ़ी

१—"भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षुका संघने तर्जनीय-कर्म किया है, (तब वह) ठीकसे रहता है०[7] तर्जनीय-कर्मकी माफ़ी चाहता है। वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'०[8] आओ हम इसके तर्जनीय-कर्मको माफ़ करें।' अधर्मसे वर्ग हो वह उसके तर्जनीय कर्मको माफ़ करते हैं। वहाँ रहनेवाला संघ विवाद करता है—'(क) अधर्मसे वर्ग कर्म है; (ख) नहीं किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक;

---

[1] 'तर्जनीय कर्म'की तरह यहाँ माफ़ीके लिये भी दुहराना चाहिये।

[2] 'तर्जनीय कर्म'की तरह ही यहाँ भी वाक्योंकी योजना समझो।

[3] देखो पृष्ठ ३१४ (ख)।

[4] 'तर्जनीय कर्मके संशोधन'की तरह (पृष्ठ ३१७) यहाँ भी नम्बर २५ तक समझना चाहिए।

[5] देखो पृष्ठ ३१४। [6] देखो पृष्ठ ३१५। [7] देखो पृष्ठ ३१५-१६।

[8] तर्जनीय कर्मके संशोधनकी तरह यहाँ भी नम्बर २ तक समझना चाहिये।

कर्म है।' भिक्षुओ ! वहाँ जिन भिक्षुओंने ऐसे कहा—'यह अधर्मसे वर्ग कर्म है', (वह धर्मवादी नहीं है); किन्तु जिन भिक्षुओंने ऐसे कहा—'(यह) नहीं किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है।' वह भिक्षु धर्मवादी हैं। 551

२—"० अधर्मसे समग्र कर्म०। 552

३—"० धर्मसे वर्ग कर्म०। 553

४—"० धर्माभाससे वर्ग कर्म०। 554

५—"०धर्माभाससे समग्र कर्म०। 554

२५—"० वह धर्माभाससे वर्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। तब वहाँ रहनेवाला संघ विवाद करता है—'(क) यह धर्माभाससे वर्गका कर्म है; (ख) नहीं किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है।' भिक्षुओ ! वहाँ जिन भिक्षुओंने ऐसे कहा—'(यह) धर्माभाससे कर्म है' (वह धर्मवादी नहीं हैं); (किन्तु) जिन भिक्षुओंने ऐसे कहा—'(यह) नहीं किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है।' (वह धर्मवादी हैं)।" 575

(२) नियस्स कर्मकी माफ़ी

"१—भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुको संघने नियस्स कर्म किया है, (तब वह) ठीकसे रहता है०[1] नियस्स कर्मकी माफ़ी चाहता है। वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—०[1] आओ हम इसके नियस्स कर्मको माफ़ करें।' वह धर्मसे वर्ग हो उसके नियस्स कर्मको माफ़ करते हैं। वहाँका रहनेवाला संघ विवाद करता है—०।" 575। ०[1]। 600

(३) प्रव्राजनीय कर्मकी माफ़ी

१—"भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका संघने प्रव्राजनीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है० प्रव्राजनीय कर्मकी माफ़ी चाहता है०। वह अधर्मसे वर्ग हो उसके प्रव्राजनीय कर्मको माफ़ करते हैं। वहाँका रहनेवाला संघ विवाद करता है—०।" 601। ०[2]। 625

(४) प्रतिसारणीय कर्मकी माफ़ी

१—"भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका संघने प्रतिसारणीय कर्म किया है। ० वह अधर्मसे वर्ग हो उसके प्रतिसारणीय कर्मको माफ़ करते हैं। वहाँका रहनेवाला संघ विवाद करता है—०। 626 [3]०।" 650

(५) उत्क्षेपणीय कर्मकी माफ़ी

क. "(१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका संघने आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया है।[4] वह अधर्मसे वर्ग हो आपत्ति न देखनेके लिये किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ़ करते हैं। वहाँका रहनेवाला संघ विवाद करता है—०। 651। ०[4]। 675

ख. "(१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका संघने आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये उत्क्षे-

---

[1] देखो पृष्ठ ३१५-१६। [2] देखो पृष्ठ ३१६।

[3] 'तर्जनीय कर्म' (पृष्ठ ३११)की तरह यहाँ भी वाक्योंकी योजना समझो।

[4] देखो पृष्ठ ३१७ तर्जनीय कर्मकी माफ़ीके संशोधनकी तरह यहाँ भी वाक्योंकी योजना समझो।

णीय कार्य किया है । ०[1] वह अधर्मसे वर्ग हो आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ़ करते हैं। वहाँका रहनेवाला संघ विवाद करता है—०। ०676। ०[1] 700

ग. "(१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका संघने बुरी धारणा न छोळनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया है। [2] वह अधर्मसे वर्ग हो बुरी धारणा न छोळनेके लिये किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ़ करते हैं। वहाँका रहनेवाला संघ विवाद करता है—०।" 700 । ०[2]। 724

चम्पेय्यक्खंधक समाप्त ॥९॥

---

[1] तर्जनीय कर्मकी माफ़ीके संशोधनकी तरह (पृष्ठ ३१७) यहाँ भी वाक्योंकी योजना समझो ।

[2] देखो पृष्ठ ३१७ (ग) ।

१०—कौशम्बक-स्कंधक

१—भिक्षु-संघ में कलह । २—कौन धर्मवादी और कौन अधर्मवादी ?
३—संघ-सामग्री (=संघका मिलकर एक होजाना) ।
४—योग्य विनयधरकी प्रशंसा ।

§१—भिक्षु-संघमें कलह

१—कौशाम्बी

(१) कौशाम्बीमें भिक्षुओंमें झगळा

[1]उस समय भगवान् कौ शा म्बी के घो पि ता रा म में विहार करते थे, (तव) किसी भिक्षुको 'आ प त्ति' (=दोष) हुई थी । वह उस आपत्तिको आपत्ति समझता था; दूसरे भिक्षु उस आपत्तिको अनापत्ति समझते थे । (फिर) दूसरे समय वह (भी) उस आपत्तिको अनापत्ति समझने लगा; और दूसरे भिक्षु उस आपत्तिको आपत्ति समझने लगे । तव उन भिक्षुओंने उस भिक्षुसे कहा—"आवुस ! तुम जो आपत्ति किये हो, उस आपत्तिको देख रहे हो ?" "आवुसो ! मुझे 'आपत्ति' ही नहीं ! किसको मैं देखूँ ?" तव उन भिक्षुओंने जमा हो, ... आपत्ति न देखनेके लिये, उस भिक्षुका 'उत्क्षेपण'[2] किया । वह भिक्षु, वहु-श्रुत, आ ग म ज्ञ,[3] ध र्म-ध र, वि न य-ध र; मा त्रि का-ध र,[4] पं डि त=व्यक्त, मेधावी, ल ज्जी, आस्थावान् सीखनेवाला था । उस भिक्षुने जानकर, संभ्रान्त भिक्षुओंके पास जाकर कहा—"हे आवुसो ! यह अनापत्ति आपत्ति नहीं । मैं आपत्ति-रहित हूँ, इसे मुझे (वह लोग)

---

[1]अट्ठकथामें है—"एक संघाराममें दो भिक्षु—एक वि न य-ध र (=विनयपिटक-पाठी), दूसरा सौ त्रा न्ति क (=सूत्रपिटक-पाठी,) वास करते थे । उनमें सौत्रान्तिक एक दिन पाखानेमें जा, शौचके वचे जलको वर्तनमें ही छोळ, चला आया । विनयधर पीछे पाखाने गया । वर्तनमें पानी देखकर, उस भिक्षुसे पूछा—'आवुस ! तुमने इस जलको छोळा है ?' 'हाँ, आवुस !' 'तुम इसमें आपत्ति (=दोष) नहीं समझते ?' । 'हाँ, नहीं समझता' । 'आवुस ! यहाँ आपत्ति होती है ।' 'यदि होती है, तो (प्र ति-) दे श ना (=क्षमापन) करूँगा ।' 'यदि तुमने विना जाने, भूलसे, किया, तो आपत्ति नहीं है' वह उस आपत्ति को अनापत्ति समझता था । विनयधरने भी अपने अनुयायियोंसे कहा—"यह सौत्रान्तिक 'आपत्ति' करके भी नहीं समझता" । वह उस (सौत्रान्तिक)के अनुयायियोंको देखकर कहते—"तुम्हारा उपाध्याय आपत्ति करके भी 'आपत्ति' हुई नहीं जानता ।" वह कहते—"यह विनयधर पहिले अनापत्तिकर, अव आपत्ति करता है, यह मिथ्या-वादी है ।" उन्होंने कहा—"तुम्हारा उपाध्याय मिथ्या-वादी है" । इस प्रकार कलह बढ़ी ।"

[2]देखो चुल्ल १§६ (पृष्ठ ३६१) ।
[3]सूत्र-पिटकके दीर्घ-निकाय आदि पाँच निकाय आ ग म कहे जाते हैं ।
[4]अति-संक्षिप्त अभिधर्म मात्रिका है ।

आपत्ति-सहित (कहते हैं)। 'उत्क्षेपण'-रहित (=अनुत्क्षिप्त) हूँ, मुझे (उन्होंने) उत्क्षिप्त किया। अधार्मिक=कोप्य, स्थानमें अनुचित निर्णय (=कर्म) द्वारा उत्क्षिप्त किया गया हूँ। आयुष्मान् (लोग) धर्मके साथ विनयके साथ मेरा पक्ष ग्रहण करें।" (तब) सभी जानकार संभ्रान्त भिक्षुओंको पक्षमें उसने पाया। जा न प द (=दीहाती) जानकार और संभ्रान्त भिक्षुओंके पास भी दूत भेजा०। जनपद जानकार और संभ्रान्त भिक्षुओंको भी पक्षमें पाया। तब वह उत्क्षिप्त भिक्षुके पक्षवाले भिक्षु, जहाँ उ त्क्षे प क थे, वहाँ गये। जाकर उत्क्षेपक भिक्षुओंसे बोले—

"यह अनापत्ति है आवुसो! आपत्ति नहीं। यह भिक्षु आपत्ति-रहित है, आपत्ति-सहित (=आ प न्न) नहीं। अनुत्क्षिप्त है.... उत्क्षिप्त नहीं। यह अ-धार्मिक० क र्म (=न्याय)से उत्क्षिप्त किया गया है।" ऐसा कहनेपर उत्क्षेपक भिक्षुओंने उत्क्षिप्त भिक्षुके पक्षवालोंसे कहा—"आवुसो! यह आपत्ति है, अनापत्ति नहीं। यह भिक्षु आपन्न है, अनापन्न नहीं। यह भिक्षु उत्क्षिप्त है, अनुत्क्षिप्त नहीं। यह धार्मिक=अ को प्य=स्था नी य, कर्म (=न्याय) द्वारा उत्क्षिप्त हुआ है। आयुष्मानो! आप लोग इस उत्क्षिप्त भिक्षुका अ नु व र्त न=अनुगमन न करें।" उत्क्षिप्तके पक्षवाले भिक्षु, उत्क्षेपक भिक्षुओं द्वारा ऐसा कहे जानेपर भी; उत्क्षिप्त भिक्षुका वैसे ही अनुवर्तन=अनुगमन करते रहे।

(२) उत्क्षिप्तकोंको उपदेश

तब भगवान्—'भिक्षु-संघमें फूट हो गई, भिक्षु-संघमें फूट हो गई'—(सोच) आसनसे उठ, जहाँ वह उत्क्षेपण करनेवाले भिक्षु थे, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। बैठकर भगवान्ने उत्क्षेपण करनेवाले भिक्षुओंसे कहा—

"मत तुम भिक्षुओ!—'हम जानते हैं, हम जानते हैं'—(सोच) जैसा-तैसा होनेपर भी (किसी) भिक्षुका उत्क्षेपण करना चाहो। यदि भिक्षुओ! (किसी) भिक्षुने आपत्ति (=अपराध) किया हो, और वह उस आपत्तिको अन्-आपत्ति (के तौरपर) देखता हो और दूसरे भिक्षु उस आपत्तिको आपत्ति (के तौरपर) देखते हों। यदि भिक्षुओ! वे भिक्षु उस भिक्षुके बारेमें ऐसा जानते हों—'यह आयुष्मान् बहु-श्रुत, आगमज्ञ, धर्म-धर, विनय-धर, मातृका-धर, पंडित (=व्यक्त), मेधावी, लज्जाशील, आस्थावान्, सीख (चाहने)वाले हैं; यदि हम इन भिक्षुका आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपण करेंगे='इन भिक्षुके साथ हम उपोसथ न करेंगे, इन भिक्षुके बिना उपोसथ करेंगे; तो इसके कारण संघमें झगळा, कलह, विग्रह, विवाद, संघमें फूट=संघराजी=संघ-व्यवस्थान=संघका बिलगाव होगा।' तो भिक्षुओ! फूटको बळा समझकर, भिक्षुओंको आपत्ति न देखनेके लिये उस भिक्षुका उत्क्षेपण नहीं करना चाहिये। यदि भिक्षुओ! भिक्षुने आपत्ति की हो और वह उस आपत्तिको अन्-आपत्तिके तौरपर देखता हो० यदि हम इन भिक्षुका आपत्तिके न देखनेके लिये उत्क्षेपण करेंगे=इन भिक्षुके साथ प्रवारणा न करेंगे, इन भिक्षुके बिना प्रवारणा करेंगे (०) इन भिक्षुओंके साथ संघ कर्म न करेंगे ०। इन भिक्षुके साथ आसनपर नहीं बैठेंगे ०। इन भिक्षुओंके साथ यवागू पीने नहीं बैठेंगे०। इन भिक्षुओंके साथ भोजन करने नहीं बैठेंगे०। इन भिक्षुओंके साथ एक छतके नीचे वास नहीं करेंगे ०। इन भिक्षुओंके साथ वृद्धत्वके अनुसार अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथ जोळना, सामीचिकर्म (=कुशल समाचार पूछना) नहीं करेंगे ०। तो इसके कारण झगळा० होगा; तो भिक्षुओ! फूटको बळा समझकर भिक्षुओंको, आपत्ति न देखनेके लिये उस भिक्षुका उत्क्षेपण नहीं करना चाहिये।" 1

(३) उत्क्षेपकोंको उपदेश

तब भगवान् उत्क्षेपण करनेवाले भिक्षुओंको यह बात कह आसनसे उठ, जहाँ उत्क्षिप्त

(=उत्क्षेपण किये गये भिक्षु)के पक्षवाले भिक्षु थे वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। बैठकर भगवान्‌ने उत्क्षिप्त (भिक्षु)के पक्षवाले भिक्षुओंसे यह कहा—

"भिक्षुओ! आपत्तिकरके—'हमने आपत्ति नहीं की, हम अन्-आपत्ति युक्त हैं' (सोच) आपत्तिका प्रतिकार न करना, मत चाहो। यदि भिक्षुओ! (किसी) भिक्षुने आपत्ति की हो और वह उस आपत्तिको अन्-आपत्ति (के तौरपर) देखताहो, और दूसरे भिक्षु उस आपत्तिको आपत्ति (के तौरपर) देखते हों। यदि वह भिक्षु उन भिक्षुओंके बारेमें ऐसा जानता है—'यह आयुष्मान् बहुश्रुत ० सीख (चाहने) वाले हैं, यह मेरे कारण, यह दूसरोंके कारण, छंद (=स्वेच्छाचार), द्वेष, मोह, भय (के रास्ते, या) अगति (=बुरे रास्ते)में नहीं जा सकते। यदि ये भिक्षु आपत्ति न देखनेके लिये मेरा उत्क्षेपण करेंगे, मेरे साथ उपोसथ न करेंगे, मेरे बिना उपोसथ करेंगे तो इसके कारण संघमें झगळा ० होगा।' 'भिक्षुओ! फूटको बळा समझकर दूसरोंके ऊपर विश्वासकर उस आपत्तिकी प्रतिदेशना (=क्षमापन) करनी चाहिये। यदि भिक्षुओ! (किसी) भिक्षुने आपत्ति की हो और वह उस आपत्तिको अन्-आपत्ति (के तौरपर) देखता हो ० भय (के रास्ते या) अगति (=बुरे रास्ते)में नहीं जा सकते। यदि ये भिक्षु आपत्तिके न देखनेके लिये मेरा उत्क्षेपण करेंगे, मेरे साथ प्रवारणा न करेंगे ०[1] सामीचि कर्म न करेंगे; तो इसके कारण झगळा ० होगा।' तो भिक्षुओ! फूटको बळा समझकर, दूसरोंके ऊपर विश्वासकर उस आपत्तिकी प्रतिदेशना (=क्षमापन) करना चाहिये।"²

तब भगवान् उत्क्षिप्त (भिक्षु)के पक्षवाले भिक्षुओंसे यह बात कह आसनसे उठकर चले गये।

(४) आवासके भीतर और बाहर उपोसथ करना

उस समय उत्क्षिप्तानुगामी (=उत्क्षिप्त भिक्षुका अनुगमन करनेवाले) भिक्षु वहीं सीमाके भीतर उपोसथ करते थे, संघकर्म करते थे; किंतु उत्क्षेपक (=उत्क्षेपण करनेवाले) भिक्षु सीमासे बाहर जा उपोसथ करते थे संघ-कर्म करते थे। तब एक उत्क्षेपक भिक्षु, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे उस भिक्षुने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! यह उत्क्षिप्तानुगामी भिक्षु वहीं सीमाके भीतर उपोसथ करते हैं, संघ-कर्म करते हैं, किंतु भन्ते! हम उत्क्षेपक भिक्षु सीमासे बाहर जाकर उपोसथ करते हैं, संघ-कर्म करते हैं।"

"भिक्षु! यदि उत्क्षिप्तानुगामी भिक्षु वहीं सीमाके भीतर उपोसथ करेंगे, संघ-कर्म करेंगे जैसाकि मैंने ज्ञप्ति, और अनुश्रावणका विधान किया है, तो उनके वे कर्म धर्मानुसार=अकोप्य और मुक्त होंगे। भिक्षु! यदि तुम उत्क्षेपक भिक्षु वहीं सीमाके भीतर जैसाकि मैंने ज्ञप्ति और अनुश्रावणका विधान किया है, उसके अनुसार उपोसथ करोगे, संघ-कर्म करोगे तो तुम्हारे भी वे कर्म धर्मानुसार, अकोप्य और मुक्त होंगे। सो किसलिये?—भिक्षु तुम्हारे लिये वे दूसरे आवासके भिक्षु हैं और उनके लिये तुम दूसरे आवासके भिक्षु हो। भिक्षु! भिन्न आवास होनेके यह दो स्थान हैं—(१) स्वयंही अपनेको भिन्न आवासवाला बनाना है; या (२) समग्र हो संघ (आपत्तिके) न देखने या न प्रतिकार करने, अथवा (बुरी धारणाके) न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपण करता है।...भिक्षु! एक आवास होनेके यह दो स्थान हैं—(१) स्वयं ही अपनेको एक आवासवाला बनाता है; या (२) संघ-समग्र हो न देखने, या न प्रतिकार करने अथवा न छोळनेके लिये उत्क्षिप्त (किये गये व्यक्ति)को ओसारण करता है।...।"³

[1] देखो पृष्ठ ३२३।

(५) कलहके कारण अनुचित कायिक वाचिककर्म नहीं करना चाहिये

उस समय भोजन करते वक्त (गृहस्थके) घरमें भिक्षुओंने झगळा, कलह, विवाद किया; और अनुचित कायिक और वाचिक कर्म दिखलाया। हाथसे इशारा किया। लोग हैरान...होते थे—'कैसे शाक्य पुत्रीय श्रमण भोजन करते वक्त (गृहस्थके घरमें) झगड़ा, कलह, विवाद करेंगे और अनुचित कायिक तथा वाचिक कर्म प्रदर्शित करेंगे; हाथका इशारा करेंगे!' भिक्षुओंने उन मनुष्यों-के हैरान होने...को सुना और जो वे अल्पेच्छ ० भिक्षु थे वे हैरान...होते थे—'कैसे भिक्षु ० हाथका इशारा करेंगे!' तब उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही—

"सचमुच भिक्षुओ! उन भिक्षुओंने ० हाथका इशारा किया?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्।"

भगवान्‌ने फटकारकर धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! संघमें फूट होनेपर, अन्याय होनेपर सम्मोदन न करनेपर—'इतनेसे एक दूसरे-को अनुचित कायिक कर्म, वाचिक कर्म न दिखलायेंगे, हाथका इशारा न करेंगे'—(सोच) आसनपर बैठे रहना चाहिये। भिक्षुओ! संघमें फूट होजानेपर, न्याय होनेपर, सम्मोदनके किये जानेपर, दूसरे आसनपर बैठना चाहिये।"4

(६) कलह करनेवालोंकी ज़िद

उस समय भिक्षु संघमें झगळा करते, कलह करते, विवाद करते, एक दूसरेको मुख (रूपी) शक्ति (=हथियार)से बेधते फिरते थे। वह झगळेको शान्त न कर सकते थे। तब एक भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खळा होगया। एक ओर खळे उस भिक्षुने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! यहाँ संघमें भिक्षु झगळा करते ० झगळेको शान्त नहीं कर सकते। अच्छा हो भन्ते! यदि भगवान् जहाँ वह भिक्षु हैं वहाँ चलें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया। तब भगवान् जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ गये। जाकर उन भिक्षुओंसे बोले—

"बस भिक्षुओ! मत झगळा, कलह, विग्रह, विवाद करो।"

ऐसा कहनेपर एक अधर्मवादी भिक्षुने भगवान् से यह कहा—

"भन्ते! भगवान्! धर्मस्वामी! रहने दें। परवाह मत करें। भन्ते! भगवान्! धर्मस्वामी! दृष्ट-धर्म (=इसी जन्म)के सुखके साथ विहार करें। हम इस झगळे, कलह, विग्रह, विवादको जान लेंगे।"

दूसरी बार भी भगवान्‌ने उन भिक्षुओंसे यह कहा—"बस ०।"

दूसरी बार भी उस अधर्मवादी भिक्षुने भगवान्‌से यह कहा—"भन्ते! ०।"

(७) दीर्घायु जातक

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ! भूतकालमें वा रा ण सी में ब्रह्मदत्त नामक का शि रा ज था। (वह) आढ्य=महाधनी=महा भोगवान=महा सैन्य युक्त=महावाहन युक्त =महाराज्य युक्त, भरे कोष्ठागार वाला था। (उस समय) दी धि ति नामक को स ल रा जा था; जोकि दरिद्र, अल्पधन, अल्पभोग अल्पसैन्य, अल्पवाहन, थोळे राज्यवाला, अपरिपूर्ण कोष, कोष्ठा-गारवाला था। तब भिक्षुओ! काशिराज ब्र ह्म द त्त ने चतुरंगिनी सेना तैयारकर को स ल रा ज दी धि ति पर चढ़ाई की। तब भिक्षुओ! कोसलराज दीधितिको ऐसा हुआ—'काशिराज ब्र ह्म द त्त

आढ्य ० है और मैं दरिद्र हूँ । मैं काशिराज ब्रह्मदत्तके साथ एक भिळन्त भी नहीं ले सकता । क्यों न मैं पहले ही नगर से चला जाऊँ ।' तब भिक्षुओ ! कोसलराज दीघिति महिषी (=पटरानी)को लेकर पहिलेही नगरसे भाग गया । तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्त कोसलराज दी घि ति की सेना, वाहन, देश, कोष, और कोष्ठागारको जीतकर अधिकारमें किया । तब भिक्षुओ ! कोसलराज दीघिति अपनी स्त्री सहित जिधर वा रा ण सी थी उधरको चला । क्रमशः जहाँ वाराणसी है वहाँ पहुँचा । तब भिक्षुओ ! कोसल-रा ज दी घि ति ने अपनी स्त्री सहित वाराणसीके एक कोनेमें कुम्हारके घरमें अज्ञात वेषसे परिव्राजकका रूप धारणकर वास किया । तब भिक्षुओ कोसलराज दी घि ति की महिषी अचिरमें ही गर्भिणी हुई । उसको ऐसा दोहद (=दोहळ) हुआ—वह सूर्यके उदयके समय क्रीडा-क्षेत्र (सुभूमि)में सन्नाह और वर्म (=कवच)से युक्त चतुरंगिनी सेनाको खळी देखना चाहती थी और खड्गकी धोवनको पीना चाहती थी । तब भिक्षुओ कोसलराज दी घि ति की महिषीने कोसल-राज दीघितिसे यह कहा—

"देव ! मैं गर्भिणी हूँ । मुझे ऐसा दो ह द उत्पन्न हुआ है—सूर्यके उदयके समय क्रीड़ा-क्षेत्रमें सन्नाह और वर्मसे युक्त चतुरंगिनी सेनाको खळी देखना चाहती हूँ और खड्गकी धोवनको पीना चाहती हूँ ।'

"देवि ! दुर्गतिमें पळे हम लोगोंको कहाँसे हम लोगोंके लिये क्रीडा क्षेत्रमें सन्नाह और वर्म से युक्त चतुरंगिनी सेना खळी (होगी), और कहाँसे खड्गकी धोवन (आयेगी) ?'

"देव ! यदि मैं न पाऊँगी तो मर जाऊँगी ।'

भिक्षुओ ! उस समय काशिराज ब्रह्मदत्तका ब्राह्मण पुरोहित कोसलराज दीघितिका मित्र था । तब भिक्षुओ । कोसलराज दीघित, जहाँ काशिराज ब्र ह्म दत्तका पुरोहित था, वहाँ गया । जाकर... पुरोहित ब्राह्मणसे यह बोला—

"सौम्य[1] ! तेरी स खि नी गर्भिणी है । उसको इस प्रकारका दो ह द उत्पन्न हुआ है—०और खड्गकी धोवनको पीना चाहती है ।'

"तो देव हम भी देवीको देखना चाहते हैं ।'

"तब भिक्षुओ ! को स ल रा ज दी घि ति की महिषी जहाँ का शि रा ज ब्रह्मदत्तका पुरोहित ब्राह्मण था वहाँ गई...पुरोहित ब्राह्मणने दूरसे ही कोसलराज दी घि त की महिषीको आते देखा । देखकर आसनसे उठ एक कंधेपर उत्तरासंघ कर जिधर को स ल रा ज दीघितिकी महिषी थी उधर हाथ जोळ तीन बार उ दा न (चित्तोल्लाससे निकला शब्द) कहा—अहो ! कोसलराज कोखमें है ! अहो ! कोसलराज कोखमें हैं । कोसलराज कोखमें हैं (और रानीसे कहा)—देवि प्रसन्न हो, तू सूर्य उदयके समय क्रीडा क्षेत्रमें सन्नाह और वर्मसे युक्त चतुरंगिनी सेनाको खळी देखेगी, और खड्गकी धोवनको पीयेगी ।"

"तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्तका पुरोहित ब्राह्मण जहाँ काशिराज ब्रह्मदत्त था वहाँ गया । जाकर यह बोला—'देव ! ऐसी साइत है इसलिये कल सूर्यके उदयके समय क्रीडा-क्षेत्रमें सन्नाह और वर्मसे युक्त चतुरंगिनी सेना खळी हो और खड्ग धोये जायें ।'

"तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्तने आदमियोंको आज्ञा दी—'भणे ! जैसा पुरोहित ब्राह्मण कहता है वैसा करो ।' "

"भिक्षुओ ! (इस प्रकार) कोसलराज दीघितिकी महिषीने सूर्यके उदयके समय क्रीडा-क्षेत्र

[1] मित्रके संबोधनमें इस शब्दका प्रयोग होता था ।

सन्नाह और वर्मसे युक्त चतुरंगिनी सेनाको खळी देख पाया तथा खड्गकी धोवनको पी पाया ।

"तब भिक्षुओ ! कोसल राज द्रीघितिकी महिषीने उस गर्भके पूर्ण होनेपर पुत्र प्रसव किया (माता-पिताने) उसका दी र्घा यु नाम रखा । तब भिक्षुओ ! बहुत काल न जाते जाते दीर्घायु कुमार विज्ञ हो गया । कोसलराज दीघितको यह हुआ—'यह काशिराज ब्र ह्म द त्त हमारे अनर्थका करने वाला है । इसने हमारी सेना, वाहन, देश, कोष, और कोष्ठागारको छीन लिया है । यदि यह जान पायेगा तो हम तीनोंको मरवा डालेगा । क्यों न मैं दी र्घा यु कुमारको नगरसे बाहर बसा दूँ ।'

"तब भिक्षुओ ! कोसलराज दी घि तिने दी र्घा यु कुमारको नगरसे बाहर बसा दिया ।... दी र्घा यु कुमार नगरसे बाहर बसते थोड़े ही समयमें सारे शिल्पोंको सीख गया ।...उस समय कोसल राज दी घि ति का हजाम काशिराज ब्र ह्म द त्त के पास रहता था । भिक्षुओ ! एक समय कोसलराज दीघितिके हजामने कोसलराज दी घि त को स्त्री सहित वा रा ण सी के एक कोनेमें कुम्हारके घरमें अज्ञात वेषसे परिव्राजकके रूपमें वास करते देखा । देखकर जहाँ काशिराज ब्र ह्म द त्त था वहाँ गया । जाकर काशिराज ब्र ह्म द त्त से यह बोला—

"देव ! कोसलराज दी घि ति स्त्री सहित वाराणसी० परिव्राजकके रूपमें वास कर रहा है ।'

"तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्तने आदमियोंको आज्ञा दी—

"तो भणे ! कोसलराज दीघितिको स्त्री सहित ले आओ !'

"अच्छा देव !' (कह) वे आदमी काशिराज ब्रह्मदत्तको उत्तर दे कोसलराज दी घि ति को स्त्री सहित ले आये ।

"तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्तने आदमियोंको आज्ञा दी—'तो भणे ! कोसलराज दी घि ति को स्त्री सहित मज़बूत रस्सीसे पीछेकी ओर बाँह करके अच्छी तरह बाँध, छुरेसे मुँळवा, ज़ोरकी आवाज़वाले नगाळेके साथ एक सळकसे दूसरी सळकपर, एक चौरस्तेसे दूसरे चौरस्तेपर घुमा दक्खिन दरवाज़ेसे नगरके दक्खिन ओर चार टुकळे कर चारों दिशाओंमें बलि फेंक दो ।'

"अच्छा देव !' कह ..वे आदमी काशिराज ब्रह्मदत्तको उत्तरदे, कोसलराज दी घि ति को स्त्री सहित ० मज़बूत रस्सीसे पीछेकी ओर बाँह बाँध, छुरेसे शिर मुँळवा ज़ोरके आवाज़वाले नगाळेके साथ एक सळकसे दूसरी सळकपर, एक चौरस्तेसे दूसरे चौरस्तेपर घुमाते थे। तब भिक्षुओ ! दी र्घा यु कुमारको यह हुआ—'मुझे माता-पिताका दर्शन किये देर हुई । चलो माता-पिताका दर्शन करूँ ।' तब भिक्षुओ ! दी र्घा यु कुमारने वाराणसीमें प्रवेशकर माता-पिताको मोटी रस्सीसे बाँहे पीछेकी ओर बँधे एक चौरस्तेसे दूसरे चौरस्तेपर घुमाते देखा । देखकर जहाँ माता-पिता थे वहाँ गया ।..को स ल रा ज दी घि ति ने दूरसे ही कुमार दी र्घा यु को आते देखा । देखकर दीर्घायु कुमारसे यह कहा—

"तात दीर्घायु ! मत तुम छोटा बळा देखो । तात दीर्घायु ! वैरसे वैर शांत नहीं होता । अवैर से ही तात दीर्घायु वैर शांत होता है ।'

"ऐसा कहनेपर भिक्षुओ ! उन आदमियोंने कोसलराज दी घि ति से यह कहा—'यह कोसलराज दी घि ति उन्मत्तहो बक-झक कर रहा है । दी र्घा यु इसका कौन है ? किसको यह ऐसे कह रहा है—तात दीर्घायु, मत तुम छोटा बळा देखो० अवैरसे ही तात दीर्घायु ! वैर शांत होता है ।'

"'भणे ! मैं उन्मत्त हो बकझक नहीं कर रहा हूँ बल्कि (मेरी बातको) जो विज्ञ है वह जानेगा ।'

"भिक्षुओ ! दूसरी बार भी ० । तीसरी बार भी कोसलराज दी घि ति ने कुमार दीर्घायुसे यह

कहा—'तात छोटा बळा मत देखो ० अवैरसे ही तात दीर्घायु ! वैर शांत होना है ।'

"तीसरी बार भिक्षुओ ! उन आदमियोंने कोसलराज दीघितिसे यह कहा—'यह कोसलराज दीघिति उन्मत्त हो ०।'

"'भणे ! मैं उन्मत्त हो बल-झक नहीं कर रहा हूँ ०।'

"तब भिक्षुओ ! वे आदमी कोसलराज दीघिति को स्त्री सहित एक सळकसे दूसरी सळकपर, एक चौरस्तेसे दूसरे चौरस्तेपर घुमा, दक्षिणद्वारसे लेजा, नगरके दक्षिण चार टुकळेकर चारों दिशाओंमें बलि डाल गुल्म (=पहरेदार) रख चले गये ।

"तब भिक्षुओ ! दीर्घायु कुमार ने वाराणसीमें जा शराब ले पहरेदारोंको पिलाया। जब वे मतवाले होकर पळ गये तब लकळी ला चिता बना, माता-पिताके शरीरको चितापर रख आगे हाथ जोळ तीन बार चिताकी प्रदक्षिणा की ।

"उस समय भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्त ऊपरके महलपर था।. . .काशिराज ब्रह्मदत्तने दीर्घायुको तीन बार चिताकी प्रदक्षिणा करते देखा । देखकर उसको ऐसा हुआ—'निस्संशय यह आदमी कोसलराज दीघिति का जातिवाला या रक्त-संबंधी है । अहो मेरे अनर्थके लिये किसीने (यह बात मुझे नहीं) बतलाई ।'

"तब भिक्षुओ ! दीर्घायु कुमार ! अरण्यमें जा पेट भर रो आँसू पोंछ वाराणसीमें प्रवेशकर अन्तःपुर (=राजाके रहनेके दुर्ग)के पासकी हथसारमें जा महावतसे यह बोला—'आचार्य मैं (आपसे) शिल्प सीखना चाहता हूँ ।'

"'तो भणे माणवक ! (=बच्चा) सीखो ।'

"तब भिक्षुओ ! दीर्घायु कुमार रातके भिनसारको दीर्घायु कुमार हथसारमें मंजु स्वरसे गाता और वीणा बजाता था । काशिराज ब्रह्मदत्त ने रातके भिनसारको उठकर हथसारमें मंजु स्वरसे गीत गाते और वीणा बजाते (किसी आदमी)को सुना । सुनकर आदमियोंसे पूछा—

"'भणे ! (यह) कौन रातके भिनसारको उठकर हथसारमें मंजु स्वरसे गाता और वीणा बजाता था ?'

"'देव ! अमुक महावतका शिष्य माणवक रातके भिनसारको उठकर मंजुस्वरसे गाता और वीणा बजाता था ।'

"'तो भणे ! उस माणवकको यहाँ ले आओ ।'

"'अच्छा देव !' (कह) . . वे आदमी काशिराज ब्रह्मदत्तको उत्तर दे दीर्घायु कुमारको ले आये ।"

"(राजाने पूछा)—'भणे माणवक! क्या तू रातके भिनसारको उठकर मंजु स्वरसे गाता और वीणा बजाता था ?'

"'हाँ देव !'

"'तो भणे माणवक ! गावो, और वीणा बजाओ ।'

"'अच्छा देव—(कह) दीर्घायु कुमार ने काशिराज ब्रह्मदत्तको संतुष्ट करनेकी इच्छासे मंजु स्वरसे गाया और वीणा बजाया ।

"'भणे माणवक ! तू मेरी सेवामें रह ।

"'अच्छा देव' (कह) . . दीर्घायु कुमार ने काशिराज ब्रह्मदत्तको उत्तर दिया ।

"तब भिक्षुओ ! दीर्घायु कुमार काशिराज ब्रह्मदत्तका पहले उठने-वाला, पीछे सोनेवाला, क्या-काम है—पूछनेवाला, प्रियचारी (और) प्रियवादी सेवक होगया । तब भिक्षुओ !

ब्रह्मदत्तने बहुत थोळेही समय बाद दीर्घायुकुमारको अपने अन्तरंगके विश्वसनीय स्थानपर स्थापित किया।

"(एक बार) ..काशिराज ब्रह्मदत्तने दीर्घायु कुमारसे यह कहा—'तो भणे! माणवक रथ जोतो शिकारके लिये चलेंगे।'

"'अच्छा, देव' (कह) .. उत्तरदे, दीर्घायु कुमारने रथ जोत, काशिराज ब्रह्मदत्तसे यह कहा—

"देव ! रथ जुत गया। अब जिसका काल समझतेहों (वैसा करें)

"तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्त रथपर चढ़ा और दीर्घायु कुमारने रथको हाँका। उसने ऐसे रथ हाँका कि सेना दूसरी ओर चली गई और रथ दूसरी ओर : तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्तने दूर जाकर दीर्घायु कुमारसे यह कहा—

"'तो भणे माणवक ! रथको छोड़ो। थक गया हूँ लेटूँगा।'

"'अच्छा देव !' (कह) दीर्घायु कुमार काशिराज ब्रह्मदत्तको उत्तर दे, रथ छोळ पृथ्वीपर पलथी मारकर बैठ गया। तब...काशिराज ब्रह्मदत्त दीर्घायु कुमारकी गोदमें सिर रख सो गया। थका होनेसे क्षणभरमें ही उसे नींद आगई। तब भिक्षुओ ! दीर्घायु कुमारको यह हुआ—'यह काशि-राज ब्रह्मदत्त हमारे बहुतसे अनर्थोंका करनेवाला है। इसने हमारी सेना, वाहन, देश, कोश और कोष्ठागारको छीन लिया। इसने मेरे माता-पिताको मारडाला। यह समय है जब कि मैं वैर साधूँ।' —(सोच)म्यानसे उसने तलवार निकाली। तब भिक्षुओ। दीर्घायु कुमारको यह हुआ—'मरनेके समय पिताने मुझे कहा था—'तात दीर्घायु ! मत तुम छोटा बळा देखो, तात दीर्घायु, वैरसे वैर शान्त नहीं होता। अवैर से ही तात दीर्घायु ! वैर शान्त होता है।' यह मेरे लिये उचित नहीं कि मैं पिताके वचनका उल्लंघन करूँ', (सोच) म्यानमें तलवार डालदी। दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी दीर्घायु कुमारको यह हुआ—'यह काशिराज० म्यानमें तलवार डालदी।

"तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्त, भयभीत, उद्विग्न, शंकायुक्त, त्रस्त हो सहसा (जाग) उठा। तब...दीर्घायु कुमारने काशिराज ब्रह्मदत्तसे यह कहा—'देव ! क्यों तुम भयभीत जाग उठे ?'

"'भणे माणवक ! मुझे स्वप्नमें कोसलराज दीघितिके पुत्र दीर्घायु कुमारने खड्गसे (मार) गिराया था, इसीसे मैं भयभीत० (जाग) उठा।'

"तब भिक्षुओ ! दीर्घायु कुमारने बाएँ हाथसे काशिराज ब्रह्मदत्तके सिरको पकळ दाहिने हाथ में खड्गले, काशिराज ब्रह्मदत्तसे यह कहा—

"'देव ! मैं हूँ कोसलराज दीघितका पुत्र दीर्घायु कुमार। तुम हमारे बहुत अनर्थ करने वाले हो। तुमने हमारी सेना, वाहन, देश, कोश, और कोष्ठागारको छीन लिया। तुमने मेरे माता पिताको मार डाला यही समय है कि मैं (पुराने) वैरको साधूँ।'

"तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्त दीर्घायु कुमारके पैरोंमें सिरसे पळ, दीर्घायु कुमारसे यह बोला—'तात दीर्घायु ! मुझे जीवन दान दो, तात दीर्घायु मुझे दान दो।'

"'देवको जीवन दान मैं दे सकता हूँ, देव भी मुझे जीवन दान दें।'

"'तो तात दीर्घायु ! तुम मुझे जीवन दान दो, मैं तुम्हें जीवन दान देता हूँ।'

"तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्त और दीर्घायु कुमारने एक दूसरेको जीवन दान दिया और (एकने दूसरे का) हाथ पकळा, और द्रोह न करनेकी शपथ की।

"तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्तने दीर्घायु कुमारसे यह कहा—

"'तो तात ! दीर्घायु ! रथ जोतो चलें।'

" 'अच्छा देव !'—(कह)...दीर्घायु कुमारने काशिराज ब्रह्मदत्तको उत्तर दे रथ जोत काशिराज ब्रह्मदत्तसे यह कहा—

" 'देव ! तुम्हारा रथ जुत गया। अब जिसका समय समझो (वैसा) करो।'

"तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्त रथपर चढ़ा और दीर्घायु कुमारने रथ हाँका। (उसने) रथको ऐसा हाँका कि थोळीही देरमें सेनासे मिलगया। तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्र ह्म द त्त ने वा रा-ण सी में प्रवेशकर अमात्यों और परिषदोंको एकत्रितकर यह कहा—

" 'भणे! यदि कोसलराज दी घी ति के पुत्र दी र्घा यु कु मा र को देखो तो उसका क्या करोगे?'

किन्हीं किन्हींने कहा—'हम देव ! हाथ काट लेंगे'; 'हम देव ! पैर काट लेंगे', 'हम देव ! हाथ पैर काट लेंगे'; 'हम देव ! कान काट लेंगे'; 'हम देव ! नाक काट लेंगे', 'हम देव नाक-कान काट लेंगे', 'हम देव ! सिर काट लेंगे।'

" 'भणे यह कोसलराज दी घी ति का पुत्र दी र्घा यु कुमार है। इसका तुम कुछ नहीं करने पाओगे इसने मुझे जीवन-दान और मैंने इसे जीवन-दान दिया।'

"तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्तने दी र्घा यु कु मा र से यह कहा—

" 'तात दीर्घायु ! पिताने मरनेके समय जो तुमसे कहा,—ता त दी र्घा यु। यह तुम छोटा वळा देखो० अवैरसे ही तात दीर्घायु ! वैर शान्त होता है—क्या सोचकर तुम्हारे पिताने ऐसा कहा?'

"मत वळा='मत चिरकाल तक वैर करो' यह सोच देव ! मेरे पिताने मरनेके समय 'मत वळा' कहा। और जो देव ! मेरे पिताने मरनेके समय कहा—'मत छोटा'—(सो) मत जल्दी मित्रो से विगाळ करो यह सोच मेरे पिताने मरने के समय कहा—मत छोटा। और जो देव ! मेरे पिताने मरनेके समय कहा—'वैरसे वैर नहीं शान्त होता; अवैरसे ही वैर शान्त होता है'—(सो) देवने मेरे माता-पिताको मारा यह (सोच) यदि मैं देवको प्राणसे मारता तो जो देवके हित चाहनेवाले हैं वे मुझे प्राणसे मार देते। और (फिर) जो मेरे हित चाहनेवाले हैं वे उनको प्राणसे मारते इस प्राकर वह वैर वैरसे शान्त न होता। किन्तु इस वक्त देवने मुझे जीवन-दान दिया और मैंने देवको जीवन-दान दिया। इस प्रकार अवैरसे वह वैर शान्त होता था। देव ! यह समझ मेरे पिताने मरने के समय कहा—तात दीर्घायु ! ०अवैरसे ही वैर शान्त होता है।'

"तब भिक्षुओ काशिराज ब्रह्मदत्तने—'आश्चर्य है रे ! अद्भुत है रे ! कितना पंडित यह दी र्घा यु कुमार है जो कि पिताके संक्षेपसे कहेका (इतना) विस्तारसे अर्थ जानता है !'—(कह उसके) पिताकी सेना, वाहन, देश, कोश, कोष्ठागारको लौटा दिया (और अपनी) कन्याको प्रदान किया।

"भिक्षुओ ! दंड ग्रहण करनेवाले, शस्त्र ग्रहण करनेवाले उन क्षत्रिय राजाओंका भी ऐसे आपसमें मेल हो (तो) क्या भिक्षुओ यह शोभा देता है कि ऐसे स्वाख्यात (=अच्छी तरह व्याख्यात) धर्ममें प्रव्रजित हुए तुम्हारा मेल (न) हो।"

"दूसरी बार भी ०।

"तीसरी बार भी भगवान्‌ने उन भिक्षुओंसे यह कहा—

" 'बस भिक्षुओ ! मत झगळा, कलह, विग्रह, विवाद करो'।"

तीसरी बार भी उस अधर्मवादी भिक्षुने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! भगवान् ! धर्मस्वामी ! रहने दें, परवाह मत करें ! भन्ते भगवान्; धर्मस्वामी दृष्ट-धर्म (=इसी जन्म) के सुखके साथ विहार करें। हम इस झगळे, कलह, विग्रह, विवादको जान लेंगे।"

तव भगवान्—'यह मोघ पुरुष प रि या दि न्न रू प (=अत्यन्त लिप्त) हैं इनको समझाना सुकर नहीं'—(सोच) आश्रमसे उठ चल दिये।

(इति) दीर्घायु भाणवार ॥ १ ॥

(८) भिक्षु-संघका परित्याग

तव भगवान् पूर्वाह्ण समय (वस्त्र) पहनकर पात्र-चीवरले कौशाम्बीमें भिक्षाचारकर, भोजनकर पिंड-पातसे उठ, आसन समेट, पात्र चीवर ले, खळेही खळे इस गाथाको बोले—

"बळे शब्द करने वाले एक समान (यह) जन कोई भी अपनेको वाल (=अज्ञ) नहीं मानते;
संघके भंग होनेपर (और) मेरे लिये मनमें नहीं करते ॥
मूढ, पंडितसे दिखलाते, जीभपर आई वातको बोलने वाले ;
मन-चाहा मुख फैलाना चाहते हैं; जिस (कलह)से (अयोग्य मार्गपर)
ले जाये गये हैं, उसे नहीं जानते ॥
'मुझे निन्दा', 'मुझे मारा', 'मुझ जीता', 'मुझे त्यागा'।
(इस तरह) जो उसको नहीं बाँधते, उनका वैर शांत होजाता है ॥
वैरसे वैर यहाँ कभी शांत नहीं होता।
अ-वैरसे (ही) शांत होता है, यही सनातन-धर्म है ॥
दूसरे (=अपंडित) नहीं जानते, कि हम यहाँ मृत्युको प्राप्त होंगे।
जो वहाँ (मृत्युके पास) जाना जानते हैं, वे (पंडित) बुद्धिगत (कलहोंको) शमन करते हैं ॥
हड्डी तोळने वालों, प्राण हरने वालों, गाय-घोळा-धन-हरनेवालों।
राष्ट्रको विनाश करनेवालों (तक)का भी मेल होता है ॥
यदि नम्र-साधु-विहारी (पुरुष) सहचर=सहायक (=साथी) मिले।
तो सव झगळोंको छोळ प्रसन्न हो बुद्धिमान् उसके साथ विचरे ॥
यदि नम्र साधु-विहारी धीर सहचर सहायक न मिले।
तो राजाकी भाँति विजित राष्ट्रको छोळ, उत्तम मातंग-राजकी भाँति अकेला विचरे।
अकेला विचरना अच्छा है, वालसे मित्रता नहीं (अच्छी)।
वे पर्वाह हो उत्तम मातंग-(=नाग) राजकी भाँति अकेला विचरे, और पाप न करे ॥"

२—वालकलोणकार ग्राम

तव भगवान् खळे खळे इन गाथाओंको कहकर, जहाँ वा ल क-लो ण का र ग्राम था, वहाँ गये। उस समय आयुष्मान् भृ गु वालक-लोणकार ग्राममें वास करते थे। आयुष्मान् भृगुने दूरसे ही भगवान्को आते देखा। देखकर आसन विछाया, पैर धोनेको पानी भी (रक्खा)। भगवान् विछाये आसनपर वैठे। वैठकर चरण धोये। आयुष्मान् भृगु भी भगवान्को अभिवादनकर एक ओर वैठ गये। एक ओर वैठे हुये आयुष्मान् भृगुसे भगवान्ने यों कहा—"भिक्षु ! क्या खमनीय (=ठीक) तो है, क्या यापनीय (=अच्छी गुजरती) तो है ? पिंड (=भिक्षा)के लिये तो तुम तकलीफ नहीं पाते ?"

"खमनीय है भगवान् ! यापनीय है भगवान् ! मैं पिंडके लिये तकलीफ नहीं पाता।"

३—प्राचीनवंशदाव

तव भगवान् आयुष्मान् भृगुको धार्मिक कथासे० समुत्तेजितकर०, आसनसे उठकर, जहाँ प्रा ची न-वं श-दाव है, वहाँ गये। उस समय आयुष्मान् अ नु रु द्ध, आयुष्मान् न न्दि य और आयुष्मान

" 'अच्छा देव !'—(कह)...दीर्घायु कुमारने काशिराज ब्रह्मदत्तको उत्तर दे रथ जोत काशिराज ब्रह्मदत्तसे यह कहा—

" 'देव ! तुम्हारा रथ जुत गया। अब जिसका समय समझो (वैसा) करो।'

"तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्त रथपर चढ़ा और दीर्घायु कुमारने रथ हाँका। (उसने) रथको ऐसा हाँका कि थोळीही देरमें सेनासे मिलगया। तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्र ह्म द त्त ने वा रा-ण सी में प्रवेशकर अमात्यों और परिषदोंको एकत्रितकर यह कहा—

" 'भणे! यदि कोसलराज दी घी ति के पुत्र दी र्घा यु कु मा र को देखो तो उसका क्या करोगे ?'

किन्हीं किन्हींने कहा—'हम देव ! हाथ काट लेंगे'; 'हम देव ! पैर काट लेंगे', 'हम देव ! हाथ पैर काट लेंगे'; 'हम देव ! कान काट लेंगे'; ' हम देव ! नाक काट लेंगे', 'हम देव नाक-कान काट लेंगे', 'हम देव ! सिर काट लेंगे।'

" 'भणे यह कोसलराज दी घी ति का पुत्र दी र्घा यु कुमार है। इसका तुम कुछ नहीं करने पाओगे इसने मुझे जीवन-दान और मैंने इसे जीवन-दान दिया।'

"तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्तने दी र्घा यु कु मा र से यह कहा—

" 'तात दीर्घायु ! पिताने मरनेके समय जो तुमसे कहा,—ता त दी र्घा यु। यह तुम छोटा वळा देखो० अवैरसे ही तात दीर्घायु ! वैर शान्त होता है—क्या सोचकर तुम्हारे पिताने ऐसा कहा?'

"मत वळा='मत चिरकाल तक वैर करो' यह सोच देव ! मेरे पिताने मरनेके समय 'मत वळा' कहा। और जो देव ! मेरे पिताने मरनेके समय कहा—'मत छोटा'—(सो) मत जल्दी मित्रों से विगाळ करो यह सोच मेरे पिताने मरने के समय कहा—मत छोटा। और जो देव ! मेरे पिताने मरनेके समय कहा—'वैरसे वैर नहीं शान्त होता; अवैरसे ही वैर शान्त होता है'—(सो) देवने मेरे माता-पिताको मारा यह (सोच) यदि मैं देवको प्राणसे मारता तो जो देवके हित चाहनेवाले हैं वे मुझे प्राणसे मार देते। और (फिर) जो मेरे हित चाहनेवाले हैं वे उनको प्राणसे मारते इस प्राकर वह वैर वैरसे शान्त न होता। किन्तु इस वक्त देवने मुझे जीवन-दान दिया और मैंने देवको जीवन-दान दिया। इस प्रकार अवैरसे वह वैर शान्त होता था। देव ! यह समझ मेरे पिताने मरने के समय कहा—तात दीर्घायु ! ०अवैरसे ही वैर शान्त होता है।'

"तब भिक्षुओ काशिराज ब्रह्मदत्तने—'आश्चर्य है रे ! अद्भुत है रे ! कितना पंडित यह दी र्घा यु कुमार है जो कि पिताके संक्षेपसे कहेका (इतना) विस्तारसे अर्थ जानता है !' —(कह उसके) पिताकी सेना, वाहन, देश, कोश, कोष्ठागारको लौटा दिया (और अपनी) कन्याको प्रदान किया।

"भिक्षुओ ! दंड ग्रहण करनेवाले, शस्त्र ग्रहण करनेवाले उन क्षत्रिय राजाओंका भी ऐसे आपसमें मेल हो (तो) क्या भिक्षुओ यह शोभा देता है कि ऐसे स्वाख्यात (=अच्छी तरह व्या-ख्यात) धर्ममें प्रव्रजित हुए तुम्हारा मेल (न) हो।"

"दूसरी वार भी ०।

"तीसरी वार भी भगवान्‌ने उन भिक्षुओंसे यह कहा—

" 'बस भिक्षुओ ! मत झगळा, कलह, विग्रह, विवाद करो'।"

तीसरी वार भी उस अधर्मवादी भिक्षुने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! भगवान् ! धर्मस्वामी ! रहने दें, पर्वाह मत करें ! भन्ते भगवान्; धर्मस्वामी दृष्ट-धर्म (=इसी जन्म)के सुखके साथ विहार करें। हम इस झगळे, कलह, विग्रह, विवादको जान लेंगे।"

तव भगवान्—'यह मोघ पुरुष प रि या दि न्न रू प (=अत्यन्त लिप्त) हैं इनको समझाना सुकर नहीं'—(सोच) आश्रमसे उठ चल दिये ।

(इति) दीर्घायु भाणवार ॥ १ ॥

(८) भिक्षु-संघका परित्याग

तव भगवान् पूर्वाह्ण समय (वस्त्र) पहनकर पात्र-चीवरले कौशाम्बीमें भिक्षाचारकर, भोजनकर पिंड-पातसे उठ, आसन समेट, पात्र चीवर ले, खळेही खळे इस गाथाको बोले—

"बळे शब्द करने वाले एक समान (यह) जन कोई भी अपनेको वाल (=अज्ञ) नहीं मानते;
संघके भंग होनेपर (और) मेरे लिये मनमें नहीं करते ॥
मूढ, पंडितसे दिखलाते, जीभपर आई वातको बोलने वाले ;
मन-चाहा मुख फैलाना चाहते हैं; जिस (कलह)से (अयोग्य मार्गपर)
ले जाये गये हैं, उसे नहीं जानते ॥
'मुझे निन्दा', 'मुझे मारा', 'मुझ जीता', 'मुझे त्यागा' ।
(इस तरह) जो उसको नहीं वाँधते, उनका वैर शांत होजाता है ॥
वैरसे वैर यहाँ कभी शांत नहीं होता ।
अ-वैरसे (ही) शांत होता है, यही सनातन-धर्म है ॥
दूसरे (=अपंडित) नहीं जानते, कि हम यहाँ मृत्युको प्राप्त होंगे ।
जो वहाँ (मृत्युके पास) जाना जानते हैं, वे (पंडित) वृद्धिगत (कलहोंको) शमन करते हैं ॥
हड्डी तोळने वालों, प्राण हरने वालों, गाय-घोळा-धन-हरनेवालों ।
राष्ट्रको विनाश करनेवालों (तक)का भी मेल होता है ॥
यदि नम्र-साधु-विहारी (पुरुष) सहचर=सहायक (=साथी) मिले ।
तो सब झगळोंको छोळ प्रसन्न हो बुद्धिमान् उसके साथ विचरे ॥
यदि नम्र साधु-विहारी धीर सहचर सहायक न मिले ।
तो राजाकी भाँति विजित राष्ट्रको छोळ, उत्तम मातंग-राजकी भाँति अकेला विचरे ।
अकेला विचरना अच्छा है, वालसे मित्रता नहीं (अच्छी) ।
बे पर्वाह हो उत्तम मातंग-(=नाग) राजकी भाँति अकेला विचरे, और पाप न करे ॥"

२—*वालकलोणकार ग्राम*

तव भगवान् खळे खळे इन गाथाओंको कहकर, जहाँ वा ल क-लो ण का र ग्राम था, वहाँ गये । उस समय आयुष्मान् भृ गु वालक-लोणकार ग्राममें वास करते थे । आयुष्मान् भृगुने दूरसे ही भगवान्को आते देखा । देखकर आसन विछाया, पैर धोनेको पानी भी (रक्खा) । भगवान् विछाये आसनपर वैठे । वैठकर चरण धोये । आयुष्मान् भृगु भी भगवान्को अभिवादनकर एक ओर वैठ गये । एक ओर वैठे हुये आयुष्मान् भृगुसे भगवान्ने यों कहा—"भिक्षु ! क्या खमनीय (=ठीक) तो है, क्या यापनीय (=अच्छी गुजरती) तो है ? पिंड (=भिक्षा)के लिये तो तुम तकलीफ नहीं पाते ?"

"खमनीय है भगवान् ! यापनीय है भगवान् ! मैं पिंडके लिये तकलीफ नहीं पाता ।"

३—*प्राचीनवंशदाव*

तव भगवान् आयुष्मान् भृगुको धार्मिक कथासे० समुत्तेजितकर०, आसनसे उठकर, जहाँ प्रा ची न-वं श-दाव है, वहाँ गये । उस समय आयुष्मान् अ नु रु द्ध, आयुष्मान् न न्दि य और आयुष्मान

किम्बिल प्राचीन-वंश-दावमें विहार करते थे। दाव-पालक (=वन-पाल)ने दूरसे ही भगवान्को आते देखा। देखकर भगवान्से कहा—

"महाश्रमण! इस दावमें प्रवेश मत करो। यहाँपर तीन कुल-पुत्र यथाकाम (=मौजसे) विहर रहे हैं उनको तकलीफ मत दो।"

आयुष्मान् अनुरुद्धने दाव-पालको भगवान्के साथ बात करते सुना। सुनकर दाव-पालसे यह कहा—

"आवुस! दाव-पाल! भगवान्को मत मना करो। हमारे शास्ता भगवान् आये हैं।"

तब आयुष्मान् अनुरुद्ध जहाँ आयुष्मान् नन्दिय और आयु० किम्बिल थे वहाँ गये। जाकर बोले. . .—

"आयुष्मानो! चलो आयुष्मानो! हमारे शास्ता भगवान् आगये।

तब आ० अनुरुद्ध, आ० नन्दिय, आ० किम्बिल भगवान्की अगवानीकर, एकने पात्र-चीवर ग्रहण किया, एकने आसन बिछाया, एकने पादोदक रक्खा। भगवान्ने बिछाये आसनपर बैठ पैर धोये। वे भी आयुष्मान् भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् अनुरुद्धसे भगवान्ने कहा—

"अनुरुद्धो! खमनीय तो है? यापनीय तो है? पिंडके लिये तो तुम लोग तकलीफ नहीं पाते?"

"खमनीय है, भगवान्!०"

"अनुरुद्धो! क्या एकत्रित, परस्पर मोद-सहित, दूध-पानी हुए, परस्पर प्रिय-दृष्टिसे देखते, विहरते हो?"

"हाँ भन्ते! हम एकत्रित ०।"

"तो कैसे अनुरुद्धो! तुम एकत्रित० ?"

"भन्ते! मुझे, यह विचार होता है—'मेरे लिये लाभ है! मेरे लिये सुलाभ प्राप्त हुआ है, जो ऐसा स-ब्रह्मचारियों (=गुरु भाइयों)के साथ विहरता हूँ। भन्ते! इन आयुष्मानोंमें मेरा कायिक कर्म अन्दर और बाहरसे मित्रता-पूर्ण होता है; वाचिक-कर्म अन्दर और बाहरसे मित्रता-पूर्ण होता है; मानसिककर्म अन्दर और बाहर०। तब भन्ते! मुझे यह होता है—क्यों न मैं अपना मन हटा कर, इन्हीं आयुष्मानोंके चित्तके अनुसार बर्तूं। सो भन्ते! मैं अपने चित्तको हटाकर इन्हीं आयुष्मानो के चित्तोंका अनुवर्तन करता हूँ। भन्ते! हमारा शरीर नाना है, किन्तु चित्त एक. . .।"

आयुष्यमान् नन्दियने भी कहा—"भन्ते! मुझे यह होता है०।"

आयुष्मान् किम्बिलने भी कहा—भन्ते! मुझे यह०।

"साधु, साधु, अनुरुद्धो! अनुरुद्धो! क्या तुम प्रमाद-रहित, आलस्य-रहित, संयमी हो, विहरते हो?"

"भन्ते! हाँ! हम प्रमाद-रहित०।"

"अनुरुद्धो! तुम कैसे प्रमाद-रहित० ?" "भन्ते! हमारेमें जो पहिले ग्रामसे भिक्षाचार करके लौटता है, वह आसन लगाता है, पीनेका पानी रखता है, कूड़ेकी थाली रखता है। जो पीछे गाँवसे पिंडचार करके लौटता है, (वह) भोजन (बँचे जो) बँचा रहता है, यदि चाहता है, खाता है, (यदि) नहीं चाहता है, तो (ऐसे) स्थानमें, जहाँ हरियाली न हो, छोड़ देता है, या जीव-रहित पानीमें छोड़ देता है। आसनोंको समेटता है। पीनेके पानीको समेटता है। कूड़ेकी थालीको धोकर समेटता है। खानेकी जगहपर झाड़ू देता है। पानीके घड़े, पीनेके घड़े, या पाखानेके घड़े रिक्त खाली देखता है

उसे (भरकर) रख देता है। यदि वह उससे होने लायक नहीं होता तो हाथके इशारेसे, हाथके संकेत (=हत्थ-विलंघक)से दूसरोंको बुलाकर, पानीके घळे या पीनेके घळेको (भरकर) रखवाता है। भन्ते ! हम उसके लिये वाग्-युद्ध नहीं करते। भन्ते ! हम पाँचवें दिन सारी रात धर्म-सम्बन्धी कथा करते बैठते हैं। इस प्रकार भन्ते ! हम प्रमाद-रहित०।"

"साधु, साधु, अनुरुद्धो ! अनुरुद्धो ! इस प्रकार प्रमाद-रहित, निरालस, संयमी हो विहरते, क्या तुम्हें [१]उत्तर-मनुष्य-धर्म अलमार्य-ज्ञान-दर्शन-विशेष अनुकूल-विहार प्राप्त है ?"

४—पारिलेय्यक

तब भगवान् आयुष्मान् अ नु रु द्ध, आयुष्मान् नं दि य, और आयुष्मान् कि म्बि ल को धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित, सम्प्रहर्षितकर, आसनसे उठ जिधर पा रि ले य्य क है उधर चारिकाके लिये चलपळे। क्रमशः चारिका करते जहाँ पा रि ले य्य क है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् पा रि ले य्य क में र क्षि त व न-खंडके भ द्र शा ल (वृक्ष)के नीचे विहार करते थे।

(९) एकान्त निवासका-आनन्द

तब एकान्तमें स्थित हो विचारमग्न होते समय भगवान्के चित्तमें यह विचार हुआ—'मैं पहले उन झगळा, कलह, विवाद, बकवाद और संघमें अधिकरण (=मुकदमा) पैदा करनेवाले कौशाम्बीके भिक्षुओंसे आकीर्ण (=घिरा) हो अनुकूलताके साथ नहीं विहार कर सकता था। सो मैं अब उन० कौ शा म्बी के भिक्षुओंसे अलग, अकेला, अद्वितीय हो अनुकूलताके साथ विहार कर रहा हूँ। एक हस्तिनाग (=हाथीका पट्ठा) भी हाथी, हथिनी, हाथीके कलभ (=तरुण) और हाथीके छउआ (=छाप, शाव)से आकीर्ण हो विहरता था और हाथीके छउआ (=छाप=शावक)से आकीर्ण हो विहरता था। शिरकटे तृणोंको खाता था। टूटी-भाँगी . . . शाखाओं . . . को (वह) खाता था। मैले पानीको पीता था। अवगाह (=जलाशय) उतर जानेपर हथिनियाँ उसके शरीरको रगळती चलती थीं। (ऐसे) आकीर्ण (हो) (वह) दुखसे अनुकूलतासे विहार करता था। तब उस महागजको हुआ, इस वक्त मैं हाथी ०, आकीर्ण ० हूँ ०। क्यों न मैं गणसे अकेला ० ?

तब वह हस्ति-नाग यूथसे हटकर, जहाँ पारिलेय्यक-रक्षित वन-खंड भद्र-शाल-मूल था, जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया। वहाँ आकर वह नाग जो हरित स्थान होता था, उसे अहरित-करता था। भगवान्के लिये सूँळसे पानी ला, पीनेका (पानी) रखता था। तब एकान्तस्थ ध्यानस्थ भगवान्के मनमें यह वितर्क उत्पन्न हुआ—मैं पहिले भिक्षुओं०से आकीर्ण विहरता था, अनुकूलतासे न विहरता था। सो मैं अब भिक्षुओं०से अन्-आकीर्ण विहर रहा हूँ। अन्-आकीर्ण हो, सुखसे, अनुकूलतासे विहार कर रहा हूँ। उस हस्ति-नागको भी मनमें यह वितर्क उत्पन्न हुआ—मैं पहिले हाथियों० अन्-आकीर्ण सुखसे अनुकूलमें विहर रहा हूँ। तब भगवान्ने अपने प्र-विवेक (=एकान्त सुख) को जान, और (अपने) चित्तसे उस हस्ति-नागके चित्तके वितर्कको जानकर, उसी समय यह उदान कहा—

"हरीस जैसे दाँतवाले हस्ति-नागसे नाग (=बुद्ध) का चित्त समान है,
जो कि वनमें अकेला रमण करता है।"

५—श्रावस्ती

तब भगवान् पा रि ले य्य क में इच्छानुसार विहारकर, जिधर श्रा व स्ती थी, उधर चारिकाके

[१] देखो पृष्ठ ९ टि०।

लिये चल दिये। क्रमशः चारिका करते जहाँ श्रावस्ती थी, वहाँ गये। वहाँ भगवान् श्रावस्तीमें अ ना थ पिं डि क के आराम जेतवनमें विहार करते थे। तब कौ शा म्बी के उपासकोंने (विचारा)—

"यह अय्या (=भिक्षु) कौ शा म्बी के भिक्षु, हमारे बळे अनर्थ करनेवाले हैं। इनसेही पीळित हो भगवान् चले गये। हाँ! तो अब हम अय्या कोसम्बक भिक्षुओंको न अभिवादन करें, न प्रत्युत्थान करें, न हाथ जोळना=सामीची कर्म करें, न सत्कार करें, न गौरव करें, न मानें, न पूजें; आनेपर भी पिंड (=भिक्षा) न दें। इस प्रकार हम लोगों द्वारा अ-सत्कृत, अ-गुरुकृत, अ-मानित, अ-पूजित, असत्कार-वश चले जायेंगे, या गृहस्थ बन जायँगे, या भगवान्को जाकर प्रसन्न करेंगे।"

तब कौशाम्बी-वासी उपासक कौशाम्बी-वासी भिक्षुओंको न अभिवादन करते०। तब कौशाम्बीवासी भिक्षुओंने कौशाम्बीके उपासकोंसे असत्कृत हो कहा—

"अच्छा आवुसो! हमलोग श्रा व स्ती में भगवान्के पास इस झगळे (=अधिकरण) को शान्त करें।" तब कौशाम्बी-वासी भिक्षु आसन समेटकर पात्र-चीवर ले, जहाँ श्रावस्ती थी, वहाँ गये।

§ २—अधर्मवादी और धर्मवादी

आयुष्मान् सा रि पु त्र ने सुना—"वह भंडन-कारक=कलह-कारक=विवाद-कारक, भस्स (=भष)-कारक, संघमें अधिकरण (=झगळा) कारक, कौशाम्बी=वासी भिक्षु श्रावस्ती आ रहे हैं।" तब आयुष्मान् सारिपुत्र जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्से कहा—"भन्ते! वह भंडन-कारक० कौशाम्बी-वासी भिक्षु श्रावस्ती आ रहे हैं, उन भिक्षुओंके साथ मैं कैसे बर्तूं?"

"सारिपुत्र! तो तू धर्मके अनुसार बर्त्त।"

"भन्ते! मैं धर्म (=नियमानुसार) या अधर्म कैसे जानूँ?"

(१) अधर्मवादीकी पहिचान

"सारिपुत्र! अठारह बातों (=वस्तु) से अ-धर्मवादी जानना चाहिये। 'सारि-पुत्र! भिक्षु (१) अ-धर्मको धर्म (=सूत्र) कहता है। (२) धर्मको अ-धर्म कहता है। (३) अ-विनयको विनय कहता है। (४) विनयको अ-विनय कहता है। (५) तथागत-द्वारा अ-भाषित=अ-लपितको, तथागत-द्वारा भाषित=लपित कहता है। (६) ०भाषित=लपितको, ०अ-भाषित अ-लपित कहता है। (७) तथागत-द्वारा अन्-आचरितको० आचरित कहता है। (८) तथागत-द्वारा आचरितको ०अन्-आचरित कहता है। (९) तथागत-द्वारा अ-ज्ञप्त (=अ-विहित) को ०प्रज्ञप्त कहता है। (१०) ०प्रज्ञप्तको ०अ-प्रज्ञप्त०। (११) अन्-आपत्तिको आपत्ति (=दोष) कहता है। (१२) आपत्तिको अन्-आपत्ति कहता है। (१३) लघु (=छोटी)-आपत्तिको गुरु (=बळी)-आपत्ति कहता है। (१४) गुरु-आपत्तिको लघु-आपत्ति कहता है। (१५) स-अवशेष (=अपूर्ण) आपत्तिको अन्-अवशेष (=पूर्ण) आपत्ति कहता है। (१६) अन्-अवशेष आपत्तिको स-अवशेष आपत्ति कहता है। (१७) दुःस्थौल्य (=दुराचार) आपत्तिको अ-दुःस्थौल्य आपत्ति कहता (=दीपित प्रकाशित करता है)। (१८) दुःस्थौल्य आपत्ति को अ-दुःस्थौल्य आपत्ति कहता है। 5

(२) धर्मवादीकी पहिचान

"अठारह वस्तुओंसे सारि-पुत्र धर्म-वादी जानना चाहिये।—

'सारिपुत्र! भिक्षु (१) अधर्मको अधर्म कहता है। (२) धर्मको धर्म०। (३) अ-विनय को अ-विनय०। (४) विनयको विनय०। (५) ०अ-भाषित=अ-लपित०। (६) [illegible]

को ०भाषित-लपित०। (७) ०अन्-आचरितको ०अन्-आचरित०। (८) ०आचरितको ०आचरित०। (९) ०अ-प्रज्ञप्तको ०अ-प्रज्ञप्त०। (१०) ०प्रज्ञप्तको ०प्रज्ञप्त०। (११) अन्-आपत्तिको अन्-आपत्ति०। (१२) आपत्तिको आपत्ति०। (१३) लघु-आपत्तिको लघु-आपत्ति०। (१४) गुरु-आपत्तिको गुरु-आपत्ति०। (१५) स-अवशेष आपत्तिको स-अवशेष आपत्ति०। (१६) अन्-अवशेष आपत्तिको अन्-अवशेष आपत्ति०। (१७) दुःस्थौल्य आपत्तिको दुःस्थौल्य आपत्ति०। (१८) अ-दुःस्थौल्य आपत्तिको अ-दुःस्थौल्य आपत्ति०। 6

आयुष्मान् महा मौ द्ग ल्या य न ने सुना—'वह भंडनकारक ०।०।

आयुष्मान् महा का श्य प ने ०।० महा का त्या य न ने सुना—०।० महा को ट्ठि त (=कोष्ठिल) ने सुना—०।० महा क प्पि न ने सुना—०।० महा चु न्द ०।० अ नु रु द्ध ०।० रे व त ०।० उ पा ली ०।० आ न न्द ०।० रा हु ल०।

म हा प्र जा प ती गौ त मी ने सुना—'वह भंडन-कारक०।' "भन्ते ! मैं उन भिक्षुओंके साथ कैसे वर्तूं ?"

"गौतमी ! तू दोनों ओरका धर्म(=बात) सुन। दोनों ओरका धर्म सुनकर, जो भिक्षु धर्म-वादी हों, उनकी दृष्टि, शान्त, रुचि, पसन्द कर। भिक्षुनी-संघको भिक्षु-संघसे जो कुछ अपेक्षा करना है, वह सब धर्मवादीसे ही अपेक्षा करना चाहिये।"

अनाथ-पिंडिक गृह-पतिने सुना—'वह भंडनकारक०।' "भन्ते ! मैं उन भिक्षुओंके साथ कैसे वर्तूं ?"

"गृहपति ! तू दोनों ओर दान दे। दोनों ओर दान देकर दोनों ओर धर्म सुन। दोनों ओर धर्म सुनकर, जो भिक्षु धर्म-वादी हों, उनकी दृष्टि (=सिद्धान्त) क्षांति (=औचित्य), रुचिको ले, पसन्दकर।"

"विशाखा मृगार-माताने सुना—जो वह०। "भन्ते ! मैं उन भिक्षुओंके साथ कैसे वर्तूं ?"

"विशाखा ! तू दोनों ओर दान दे०। ०रुचिको ले पसन्दकर।"

तब कौशाम्बी-वासी भिक्षु क्रमशः जहाँ श्रावस्ती थी, वहाँ पहुँचे। तब आयुष्मान् सारिपुत्रने जहाँ भगवान् थे, वहाँ जा० "भन्ते ! वह भंडनकारक० कौशाम्बी-वासी भिक्षु श्रावस्ती आ गये। भन्ते ! उन भिक्षुओंको आसन आदि कैसे देना चाहिये ?"

"सारिपुत्र ! अलग आसन देना चाहिये।"

"भन्ते ! यदि अलग न हो, तो कैसे करना चाहिये ?"

"सारिपुत्र ! तो अलग बनाकर देना चाहिये। परन्तु सारिपुत्र ! वृद्धतर भिक्षुका आसन हटाने (के लिये) मैं किसी प्रकार भी नहीं कहता। जो हटाये उसको 'दुष्कृति' की आपत्ति। 6

"भन्ते ! आमिष (=भोजन आदि) के (विषयमें) कैसे करना चाहिये ?"

"सारिपुत्र ! आमिष सबको समान बाँटना चाहिये।"7

§ ३—संघ-सामग्री (=० एकता)

तब धर्म और विनयको प्रत्यवेक्षा (=मिलान, खोज) उस उत्क्षिप्त भिक्षुको (विचार) हुआ—'यह आपत्ति (=दोष) है अन्-आपत्ति नहीं है। मैं आपन्न (=आपत्ति-युक्त) हूँ, अन्-आपन्न नहीं हूँ। मैं उत्क्षिप्त (='उत्क्षेपण' दंडसे दंडित) हूँ, अन्-उत्क्षिप्त नहीं हूँ। अ-कोप्य=स्थानार्ह=धार्मिक कर्म (=न्याय)से मैं उत्क्षिप्त हूँ।' तब वह उत्क्षिप्त भिक्षु (अपने)...अनुयायियोंके पास गया,...बोला—'यह आपत्ति है आवुसो ! आओ आयुष्मानो मुझे मिला दो।०। तब वह उत्क्षिप्त

अनुयायी भिक्षु उत्क्षिप्त भिक्षुको लेकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठकर उन भिक्षुओंने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! यह उत्क्षिप्तक भिक्षु कहता है—'आवुसो ! यह आपत्ति है अन्-आपत्ति नहीं०, आओ आयुष्मानो ! मुझे (संघमें) मिलादो।' भन्ते ! तो कैसे करना चाहिये ?"

"भिक्षुओ ! यह आपत्ति है, अन्-आपत्ति नहीं। यह भिक्षु आपन्न है, अन्-आपन्न नहीं है। उत्क्षिप्त है अन्-उत्क्षिप्त नहीं है। अ-कोप्य=स्थानार्ह=धार्मिक कर्मसे उत्क्षिप्त है। भिक्षुओ ! चूँकि यह भिक्षु आपन्न है, उत्क्षिप्त है, और आपत्ति(=दोष) देखता है; अतः इस भिक्षुको मिलालो।"7

तब उत्क्षिप्तके अनुयायी भिक्षुओंने उस उत्क्षिप्त भिक्षुको मिला (=ओसारण) कर, जहाँ उत्क्षेपक भिक्षु थे, वहाँ गये। जाकर उत्क्षेपक भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो ! जिस वस्तु (=बात)में संघका भंडन=कलह, विग्रह, विवाद हुआ था, संघ (फूट) भेद=संघराजी=संघ-व्यवस्थान=संघ-नानाकरण हुआ था। सो (उस विषयमें) यह भिक्षु आपन्न है, उत्क्षिप्त है, अव-सारित (=मिला लिया गया) है। हाँ तो ! आवुसो ! हम इस वस्तु (मामला, बात)के उपशमन (=फैसला, मिटाना)के लिये संघकी सामग्री (=मेल) करें।"

तब वह उत्क्षेपक (=अलग करनेवाले) भिक्षु जहाँ भगवान् थे. . .जाकर भगवान्को अभिवादनकर. . .एक ओर बैठ. . .भगवान्से बोले—

(१) संघसामग्रीका तरीका

"भन्ते ! वह उत्क्षिप्त-अनुयायी भिक्षु ऐसा कहते हैं—'आवुसो ! जिस वस्तुमें०संघकी सामग्री करें।' भन्ते ! कैसे करना चाहिये ?"

"भिक्षुओ ! चूँकि वह भिक्षु आपन्न, उत्क्षिप्त, पश्यी (=दर्शी=आपत्ति देखने माननेवाला) और अव-सारित है। इसलिये भिक्षुओ ! उस वस्तुके उप-शमनके लिये संघ, संघकी सामग्री करे। 8

और वह इस प्रकार करनी चाहिये—रोगी निरोगी सभीको एक जगह जमा होना चाहिये किसीको (बदला) भेजकर, छन्द (=वोट) न देना चाहिये। जमा होकर, योग्य, समर्थ भिक्षु-द्वारा संघ को ज्ञापित (=सूचित=संबोधित) करना चाहिये—

ज्ञप्ति—'भन्ते ! संघ मुझे सुने। जिस वस्तुमें संघ में भंडन, कलह, विग्रह, विवाद० हुआ था; सो (उस विषयमें) यह भिक्षु आपन्न है, उत्क्षिप्त, (है) पश्यी, अव-सारित है। यदि संघ उचित (=पत्तकल्ल) समझे, तो संघ उस वस्तुके उपशमनके लिये संघ-सामग्री करे—यह ज्ञप्ति (=सूचना) है।'

ख. अनुश्रावण—(१) 'भन्ते ! संघ मुझे सुने—जिस वस्तुमें०अवसारित है। संघ उस वस्तु के उपशमनके लिये संघ-सामग्री कर रहा है। जिस आयुष्मान्को उस वस्तुके उपशमनके लिये संघ-सामग्री करना, पसन्द है, वह चुप रहे; जिसको नहीं पसन्द है, वह बोले। (२) दूसरी बार भी०। (३) तीसरी बार भी०।'

ग. धारणा—संघने उस वस्तुके उपशमनके लिये संघसामग्री (=फूटे संघको एक करना) की; संघ-राजी=०संघ-भेद निहत (=नष्ट) हो गया। 'संघको पसन्द है, इसलिये चुप है'—यह मैं समझता हूँ।

(२) नियम-विरुद्ध संघ-सामग्री

उसी समय उपोसथ करना चाहिये और प्रातिमोक्ष उद्देश (=प्रातिमोक्षका पाठ) करना चाहिये।

तब आयुष्मान् उपालि जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् उपालिने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! जिस वस्तुसे संघमें झगळा, कलह, विग्रह, विवाद, संघ-भेद (=संघमें फूट)=संघ राजी=संघ-व्यवस्थान, संघका विलगाव हो, संघ उस वस्तुको बिना विनिश्चय (=फैसला) किये अमूल (=बेजळकी बात)से मूलको पा संघ-सामग्री (=सारे संघको एक करना) करे। तो भन्ते ! क्या वह संघ-सामग्री धर्मानुसार है ?"

"उपालि ! जिस वस्तुसे संघमें० अमूलसे मूलको पा संघ-सामग्री करता है, उपालि ! वह संघ-सामग्री धर्म विरुद्ध है।"9

(३) नियमानुसार संघ-सामग्री

"भन्ते ! जिस वस्तुसे संघमें झगळा हो, संघ उस वस्तुका विनिश्चय कर मूलसे मूलको पकळ (यदि) संघ-सामग्री करे, तो भन्ते ! क्या वह संघ-सामग्री धर्मानुसार है ?"

"उपालि ! ० वह संघ-सामग्री धर्मानुसार है।" 10

(४) दो प्रकारकी संघ-सामग्री

"भन्ते ! संघ-सामग्री कितनी हैं ?"

"उपालि ! संघ-सामग्री दो हैं—(१) उपालि ! (एक) संघ-सामग्री अर्थ-रहित किन्तु व्यंजन-युक्त है; (२) उपालि (एक) संघ-सामग्री अर्थ-युक्त और व्यंजन-युक्त है। उपालि ! कौनसी संघ-सामग्री अर्थ-रहित किन्तु व्यंजन-युक्त है ? उपालि ! जिस वस्तुसे संघमें झगळा० होता है संघ उस वस्तुका विना निर्णय किये, अमूलसे मूलको पा संघ-सामग्री करता है, उपालि ! यह कही जाती है, अर्थ-रहित, व्यंजन-युक्त संघ-सामग्री। उपालि ! कौनसी सामग्री , अर्थ-युक्त और व्यंजन-युक्त है ?—उपालि ! जिस वस्तुसे संघमें झगळा० होता है, संघ उस वस्तुका निर्णय कर मूलसे मूलको पा संघ-सामग्री करता है; उपालि ! यह कही जाती है अर्थ-युक्त और व्यंजन-युक्त (भी)।—उपालि ! यह दो संघ-सामग्री हैं।" 11

§४—योग्य विनयधरकी प्रशंसा

तब आयुष्मान् उपालि आसनसे उठ, एक कंधेपर उत्तरासंगकर जिधर भगवान् थे उधर हाथ जोळ भगवान्‌से गाथामें कहा—

"संघके कर्तव्यों और मन्त्रणाओं,
उत्पन्न अर्थों और विनिश्चयों (=फ़ैसलों)के समय
किस प्रकारका पुरुष बळा उपकारक (होता है);
(और) कैसे भिक्षु विशेषतः ग्रहण करने लायक होता है ?
(जो) प्रधान शीलोंमें दोष-रहित,
अपेक्षित आचारवाला (और) इन्द्रियोंमें सुसंयमी हो,
विरोधी भी धर्मसे (जिसे) नहीं (दोषी) कह सकते,
उसमें वैसी (कोई बुराई) नहीं होती जिसको लेकर उसे बोलें॥
वह वैसे सदाचारकी विशुद्धतामें स्थित है,
विशारद है, परास्त करके बोलता है,
सभामें जानेपर न स्तब्ध (=गुम्) होता है, न विचलित होता है,
विहितोंकी गणना करते (किसी) बातको नहीं छोळता॥
वैसेही सभामें प्रश्न पूछनेपर,

न सोचने लगता है न चुप होता है।
वह पंडित कालसे प्राप्त उत्तर देने योग्य वचनको,
कह, विज्ञोंकी सभाका रंजन करता है॥
(जो) वृद्धतर भिक्षुओंमें आदर-युक्त,
अपने सिद्धान्तोंमें विशारद,
मीमांसा करनेमें समर्थ, कथन करनेमें होशियार,
और विरोधियोंके भावको जाननेवाला (होता है)॥
विरोधी जिससे निग्रह किये जाते हैं,
महाजन[1] (जिससे वातको) समझ पाते हैं,
बिना हानि किये प्रश्नका उत्तर देते वह
अपने सम्प्रदाय (और) सिद्धान्तको नहीं त्यागता॥
(संघके) दूत-कर्ममें समर्थ, अच्छी तरह सीखा हुआ,
और संघके कृत्योंमें जैसा उसको कहें,
भिक्षुगण द्वारा भेजे जानेपर (वैसा ही उस) वचनको करता है, और
'मैं करता हूँ'—वह अभिमान नहीं करता॥
जिन जिन बातोंमें आपत्ति (=अपराध)युक्त होता है,
जैसे उस आ प त्ति से मुक्ति होती है,
ये दोनों (भिक्षु-भिक्षुणी) वि भं ग[2] उसको अच्छी तरह आते हैं,
आपत्तिसे छूटनेके पदका कोविद (होता है)॥
जिनका आचरण करते निस्सारणको प्राप्त होता है,
और जैसे (दोषवाली) वस्तुसे निस्सारित होता है,
उस (आचरण)को करनेवाले प्राणीका (जैसे ओसारण होता है)
विभंगका कोविद, इसे भी जानता है॥
वृद्धतर भिक्षुओंमें आदर-युक्त,
नवों स्थविरों और मध्यमोंमें (भी);
महाजनके अर्थकी रक्षामें पंडित,
ऐसा भिक्षु यहाँ विशेषतः ग्रहण करने लायक (है)॥"

कोसम्बकक्खन्धक समाप्त ॥१०॥

महावग्ग समाप्त ॥३॥

---

[1] सर्वसाधारण।
[2] भिक्खु-भिक्खुनी पा ति मो क्ख (पृष्ठ १-३०)का ही दूसरा नाम वि भं ग है।

४—चुल्लवग्ग

४—चुल्लवग्ग

१—कर्म-स्कंधक

१—तर्जनीय कर्म। २—नियस्सकर्म। ३—प्रव्राजनीय कर्म। ४—प्रतिसारणीय कर्म। ५—आपत्ति न देखनेसे उत्क्षेपणीय कर्म। ६—आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे उत्क्षेपणीय कर्म। ७—बुरी धारणा न छोळनेसे उत्क्षेपणीय कर्म।

§१—तर्जनीय कर्म

१—श्रावस्ती

(१) तर्जनीय-कर्मके आरम्भकी कथा

उस समय बुद्ध भगवान् श्रा व स्ती में अ ना थ पि डि क के आराम जे त व न में विहार करते थे। उस समय पं डु क और लो हि त क[1] भिक्षु स्वयं झगळा, कलह, विवाद, और बकवाद, करनेवाले थे; संघमें अधिकरण (=मुकदमा) करनेवाले थे। और जो दूसरे भी झगळा० करनेवाले भिक्षु थे उनके पास जाकर ऐसा कहते थे—'आवुसो! तुम आयुष्मानोंको वह हराने न पावे। जबरदस्तको जबरदस्तसे मुकाबिला करना चाहिये। तुम उससे अधिक पंडित, अधिक चतुर, अधिक बहुश्रुत और अधिक समर्थ हो। मत उससे डरो। हम भी तुम्हारे पक्षवाले होंगे।' इससे नित्यही अनुत्पन्न झगळे उत्पन्न होते थे, उत्पन्न झगळे अधिक विस्तारको प्राप्त होते थे। जो वह अल्पेच्छ, संतुष्ट, लज्जाशील, संकोची, सीख चाहनेवाले थे वे हैरान...होते—'कैसे पं डु क और लो हि त क भिक्षु स्वयं० उत्पन्न झगळे अधिक विस्तारको प्राप्त होते हैं!' तब उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही।

तब भगवान्‌ने इसी संबन्धमें इसी प्रकरणमें भिक्षुसंघको एकत्रितकर भिक्षुओंसे पूछा—

"सचमुच भिक्षुओ! पं डु क और लो हि त क भिक्षु स्वयं झगळा करनेवाले ० उत्पन्न झगळे अधिक विस्तारको प्राप्त होते हैं?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्।"

बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—"भिक्षुओ! उन मोघपुरुषों (=फजूलके आदमियोंके लिये) यह अयुक्त है, अनुचित है, अप्रतिरूप है, श्रमणोंके आचार के विरुद्ध है, अविहित है, अकरणीय है। कैसे भिक्षुओ! वे मोघपुरुष स्वयं झगळा करनेवाले ० उत्पन्न झगळे और भी अधिक विस्तारको प्राप्त होते हैं। भिक्षुओ! न यह अप्रसन्नों–(श्रद्धा-रहितों)को प्रसन्न करनेके लिये है, या प्रसन्नोंकी (श्रद्धाको) और

---

[1] षड्वर्गीय भिक्षुओंमेंसे दोके नाम (—अट्ठकथा; देखो पृष्ठ १४ टिप्पणी २ भी)।

बढ़ानेके लिये है; बल्कि भिक्षुओ ! अप्रसन्नोंको अप्रसन्न करनेके लिये है, और प्रसन्नों (=श्रद्धालुओं)मेंसे भी किसी किसीको उल्टा करनेवाला है ।"

तब भगवान्‌ने उन भिक्षुओंको अनेक प्रकारसे फटकारकर दुर्भरता (=भरण पोषणमें कठिन) दुष्पुरुषता, म हे च्छु क ता (=बळी इच्छा) असन्तोष, सं ग णि का (=जमातमें रहनेकी प्रवृत्ति) और आलस्य (=कौसीद्य)की निन्दा करके अनेक प्रकारसे सुभरता, सुपुरुषता, अल्पेच्छता, संतोष, तप, अवधूतपन, प्रासादिकता (=मानसिक स्वच्छता), त्याग, वीर्यारंभ (=उद्योग परायणता)की प्रशंसा करके भिक्षुओंसे उसके अनुकूल, उसके योग्य, धर्म-संबंधी कथा करके भिक्षुओंको संबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! संघ पं डु क और लो हि त क भिक्षुओंका तर्जनीय कर्म करे० ।"

(२) दंड देनेकी विधि

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार करना चाहिये। पहले पं डु क और लो हि त क भिक्षुओंको प्रेरित करे; प्रेरित करके स्मरण दिलाना चाहिये । स्मरण दिलाकर आपत्ति (=अपराध)का आरोप करना चाहिये । आपत्तिका आरोप करके चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—"

क. ज्ञप्ति—'भन्ते ! संघ मेरी सुने, यह पं डु क और लो हि त क भिक्षु स्वयं झगळा करनेवाले० उत्पन्न झगळे और भी अधिक विस्तारको प्राप्त होते हैं। यदि संघ उचित समझे तो संघ पं डु क और लो हि त क भिक्षुओंका तर्जनीय कर्म करे; यह सूचना है ।

अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते ! संघ मेरी सुने । यह पंडुक और लोहितक भिक्षु स्वयं झगळने-वाले० उत्पन्न झगळे और भी अधिक विस्तारको प्राप्त होते हैं । संघ पंडुक और लोहितक भिक्षुओंका तर्जनीय कर्म करता है। जिस आयुष्मान्‌को पं डु क और लो हि त क भिक्षुओंका त र्ज नी य क र्म करना पसंद है वह चुप रहे; जिसको नहीं पसंद है, वह बोले ।

द्वि ती य अ नु श्रा व ण—'दूसरी बार भी इसी बातको कहता हूँ—भन्ते ! संघ मेरी सुने । यह पंडुक और लो हि त क भिक्षु स्वयं झगळा करनेवाले०[1]।

तृ ती य अ नु श्रा व ण—'तीसरी बार भी इसी बातको कहता हूँ—भन्ते ! संघ मेरी सुने । यह पंडुक और लोहितक भिक्षु स्वयं झगळा करनेवाले०[1]।

धा र णा—'संघने पंडुक और लोहितक भिक्षुओंका तर्जनीय कर्म कर दिया । संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ ।'

(३) नियम-विरुद्ध दंड

१—"भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त तर्जनीय कर्म, अधर्म कर्म, अविनय कर्म, और ठीकसे न संपादित (कर्म कहा जाता) है—(१) सामने नहीं किया गया होता; (२) बिना पूछे किया गया होता है; (३) बिना प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराये किया गया होता है ।......2

२—"और भी भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त तर्जनीय कर्म, अधर्म कर्म, अविनय कर्म और ठीकसे न संपादित —(१) बिना आपत्तिके किया होता है; (२) देशना (=बुद्धोपदेश)से बाहर जानेवाली आपत्तिके लिये किया गया होता है; (३) देशित (=क्षमा कराई जा चुकी) आपत्तिके लिये किया गया होता है ।...3

३—"और भी भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त तर्जनीय कर्म, अधर्म कर्म० होता है—(१) बिना प्रेरित किये किया गया होता है; (२) बिना स्मरण कराये किया गया होता है; (३) आपत्तिका आरोप बिना किये किया गया होता है ।...4

[1] पहले अनुश्रावणमें आई वाक्यावली यहाँ फिर दुहरानी चाहिये ।

४—"और भी भिक्षुओ ! तीन वातोंसे युक्त तर्जनीय कर्म अधर्म कर्म० होता है—(१) सामने नहीं किया गया होता; (२) अधर्म (=अनियम)से किया गया होता है; (३) वर्गसे किया गया होता है।..5

५—"और भी भिक्षुओ ! तीन वातोंसे युक्त तर्जनीय अधर्म कर्म ० होता है—(१) विना पूछे०, (२) अधर्मसे०; (३) वर्गसे किया गया होता है। 6

६—"०—(१) विना प्रतिज्ञा कराये०; (२) अधर्मसे०; (३) वर्गसे० । 7

७—"०—(१) आपत्तिके बिना०; (२) अधर्मसे०; (३) वर्गसे०।... 8

८—"०—(१) देशना(=क्षमा कराना)के वाहरकी आपत्तिसे०; (२) अधर्मसे०; (३) वर्गसे० । 9

९—"०—(१) क्षमा करा ली गई आपत्तिके लिये०; (२) अधर्मसे०; (३) वर्गसे०।..10

१०—"०—(१) प्रेरणा किये विना० ; (२) अधर्मसे०; (३) वर्गसे० । 11

११—"०—(१) स्मरण कराये विना०; (२) अधर्मसे०; (३) वर्गसे०।.।..12

१२—"और भी भिक्षुओ ! तीन वातोंसे युक्त तर्जनीय कर्म, अधर्म कर्म, अविनय कर्म० होता है—(१) आपत्तिका आरोप किये विना किया गया होता है; (२) अधर्मसे किया गया होता है; (३) वर्गसे किया गया होता है। भिक्षुओ ! इन तीन बातों से युक्त तर्जनीय कर्म, अधर्म कर्म, अविनय कर्म, और ठीकसे न संपादित होता है"। 13

बारह अधर्म कर्म समाप्त

(४) नियमानुसार तर्जनीय दंड

१—"भिक्षुओ ! तीन वातोंसे युक्त तर्जनीय कर्म, अधर्म कर्म, विनय कर्म, और सुसंपादित (कहा जाता) है—(१) सामने किया गया होता है; (२)पूछ-ताछ कर किया गया होता है; (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराके किया गया होता है। भिक्षुओ ! इन तीन अंगोंसे युक्त तर्जनीय कर्म, धर्म कर्म, विनय-कर्म, और सुसंपादित (कहा जाता) है। 14

२—"और भी भिक्षुओ ! तीन वातोंसे युक्त तर्जनीय कर्म, धर्म कर्म० (कहा जाता) है—(१) आपत्तिसे किया गया होता है; (२) देशना (=क्षमापन) होने लायक आपत्तिके लिये किया गया होता है, (३) न देशित (=जिसके लिये क्षमा नहीं माँगी गई है) आपत्तिके लिये किया गया होता है।०। 15

३—"०—(१) प्रेरित करके०; (२) स्मरण दिलाकर०; (३) आपत्तिका आरोप करके०।०। 16

४—"०—(१) सामने०; (२) धर्मसे०; (३) समग्र हो०। ०। 17

५—"०—(१) पूछकर०; (२) धर्मसे०; (३) समग्र हो०।०। 18

६—"०—(१) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) करके०; (२) धर्मसे०; (३) समग्र हो०।०। 19

७—"०—(१) आपत्ति (होने)से०; (२) धर्मसे०; (३) समग्र हो०।०। 20

८—"०—(१) देशना (=क्षमा-याचना) करने लायक आपत्तिके लिये०; (२) धर्मसे०; (३) समग्र हो०।०। 21

९—"०—(१) अदेशित आपत्तिके लिये०; (२) धर्मसे०; (३) समग्र हो०।०। 22

१०—"०—(१) प्रेरित करके०; (२) धर्मसे०; (३) समग्रसे०।०। 23

११—"०—(१) स्मरण कराके०; (२) धर्मसे०; (३) समग्रसे०।०। 24

१२—"०—(१) आपत्तिका आरोप करके०; (२) धर्मसे०; (३) समग्रसे ०।०।" 25

बारह धर्म कर्म समाप्त

(५) तर्जनीय दंड देने योग्य व्यक्ति

१—"भिक्षुओ ! तीन बातों से युक्त भिक्षुको, चाहनेपर (=आकंखमान) संघ तर्जनीय कर्म करे—(१) झगळा, कलह, विवाद, बकवाद करनेवाला, संघमें अ धि क र ण करनेवाला होता है; (२) बाल (=मूढ़), अचतुर, बराबर अपराध करनेवाला, अपदान (=आचार) रहित होता है; (३) प्रतिकूल गृहस्थ संसर्गोंसे संयुक्त हो विहरता है। भिक्षुओ ! इन दो बातों से युक्त भिक्षुके चाहनेपर संघ तर्जनीय कर्म करे। 26

२—"और भी भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त भिक्षुके चाहनेपर संघ तर्जनीय कर्म करे (१)शीलके विषयमें दुश्शील होता है; (२) आचारके विषयमें दुराचारी होता है; (३) दृष्टि (=धारणा) के विषयमें बुरी धारणावाला होता है।०। 27

३—"०—(१) बुद्धकी निन्दा करता है; (२) धर्मकी निंदा करता है; (३) संघकी निंदा करता है।०। 28

४—"०—(१) अकेला झगळा, कलह, विवाद, बकवाद करनेवाला, संघमें अधिकरण करनेवाला होता है; (२) अकेला, बाल, अचतुर, बराबर आपत्ति करनेवाला, अपदान रहित होता है; (३) अकेला प्रतिकूल गृहस्थ संसर्गोंसे युक्त हो विहरता है।०। 29

५—"०—(१) अकेला शीलके विषयमें दुश्शील होता है; (२) अकेला आचार के विषयमें दुराचारी होता है; (३) अकेला दृष्टि (=धारणा)के विषयमें बुरी धारणावाला होता है।०। 30

६—"०—(१)अकेला बुद्धकी निंदा करता है; (२) अकेला धर्मकी निंदा करता है; (३) अकेला संघकी निंदा करता है।०।" 31

छ आकंखमान समाप्त

(६) दंडित व्यक्तिके कर्त्तव्य

"भिक्षुओ ! जिस भिक्षुका तर्जनीय कर्म किया गया है, उसे ठीकसे बरताव करना चाहिये, और वह ठीकसे बरताव यह है—(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये; (२) निश्रय नहीं देना चाहिये; (३) श्रामणेरसे उपस्थान (=सेवा) नहीं करानी चाहिये; (४) भिक्षुणियोंके उपदेश देनेकी सम्मति नहीं लेनी चाहिये; (५) (संघकी) सम्मति मिल जानेपर भी भिक्षुणियोंको उपदेश नहीं देना चाहिये; (६) जिस आ प त्ति (=अपराध)के लिये संघने तर्जनीय कर्म किया है उस आपत्तिको नहीं करना चाहिये; (७) या वैसी दूसरी (आपत्ति)को नहीं करना चाहिये; (८) या उससे अधिक बुरी (आपत्ति) नहीं करनी चाहिये; (९) क र्म (=न्याय, फैसला)की निंदा नहीं करनी चाहिये; (१०) कर्मिकों (=फैसला करनेवालों)की निंदा नहीं करनी चाहिये; (११) प्र कृ ता त्म (=अदंडित) भिक्षुके उ पो स थ को स्थगित नहीं करना चाहिये; (१२) (०की) प्र वा र णा स्थगित नहीं करनी चाहिये; (१३) बात बोलने लायक (काम) नहीं करना चाहिये; (१४) अ नु वा द (=निन्दन)को नहीं प्रस्थापित करना चाहिये; (१५) अवकाश नहीं कराना चाहिये; (१६) प्रेरणा नहीं करनी चाहिये; (१७) स्मरण नहीं कराना चाहिये; (१८) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग (=मिश्रण) नहीं करना चाहिये।" 32

अट्ठारह तर्जनीय कर्मके व्रत समाप्त

(७) दंड न माफ़ करने लायक व्यक्ति

तव संघने पं डु क और लो हि त क भिक्षुओंका तर्जनीय कर्म किया। वे संघके तर्जनीय कर्मसे पीड़ित हो ठीकसे वर्ताव करते थे, रोवाँ गिराते थे, निस्तारके लायक (काम) करते थे। भिक्षुओंके पास जाकर ऐसा कहते थे—

"आवुसो ! संघद्वारा तर्जनीय कर्मसे दंडित हो हम ठीकसे वर्तते हैं, रोवाँ गिराते हैं, निस्तारके लायक (काम) करते हैं। कैसे हमें करना चाहिये ?"

भगवान्से यह वात कही।—

"तो भिक्षुओ ! संघ, पं डु क और लो हि त क भिक्षुओंके तर्जनीय कर्मको माफ़ (=प्रतिप्रश्रब्ध= शान्त) करे। 33

(१-५) "भिक्षुओ ! पाँच वातोंसे युक्त भिक्षुके तर्जनीय कर्मको नहीं माफ़ करना चाहिये— (१) उ प स म्प दा[1] देता है; (२) नि श्र य[2] देता है; (३) श्रामणेरसे उ प स्था न (=सेवा) कराता है; (४) भिक्षुणियोंको उपदेश देनेकी सम्मति पाना चाहता है; (५) सम्मति मिल जानेपर भी भिक्षु-णियोंको उपदेश देता है।.. 34

(६-१०) "और भी भिक्षुओ ! पाँच वातोंसे युक्त भिक्षुके तर्जनीय कर्मको नहीं माफ़ करना चाहिये—(६) जिस आपत्तिके लिये संघने तर्जनीय कर्म किया है उस आपत्तिको करता है; (७) या वैसी दूसरी आपत्ति करता है; (८) या उससे अधिक वुरी आपत्ति करता है; (९) कर्म (=फैसला, की निंदा करता है; (१०) कर्मिक (=फैसला करने वालों)की निंदा करता है। 35

(११-१८) "भिक्षुओ ! आठ वातोंसे युक्त भिक्षुका तर्जनीय कर्म न माफ़ करना चाहिये— (११) प्र कृ ता त्म भिक्षुके उपोसथको स्थगित करता है; (१२) (०की) प्र वा र णा स्थगित करता है; (१३) वात वोलने लायक काम करता है; (१४) अनुवाद (=शिकायत)को प्रस्थापित करता है; (१५) अवकाश कराता है; (१६) प्रेरणा कराता है; (१७) स्मरण कराता है; (१८) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग करता है।" 36

अट्ठारह न प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(८) दंड माफ़ करने लायक व्यक्ति

(१-५) "भिक्षुओ ! पाँच वातोंसे युक्त भिक्षुके तर्जनीय कर्मको माफ़ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा नहीं देता ; (२) निश्रय नहीं देता; (३) श्रामणेर से सेवा नहीं कराता; (४) भिक्षुणियोंके उपदेश देनेकी सम्मति पानेकी इच्छा नहीं रखता; (५) सम्मति मिल जानेपर भी भिक्षुणियोंको उपदेश नहीं देता। 37

(६-१०) "और भी भिक्षुओ ! पाँच वातोंसे युक्त भिक्षुके तर्जनीय कर्मको माफ़ करना चाहिये— (६) जिस आपत्तिके लिये संघने तर्जनीय कर्म किया है उस आपत्तिको नहीं करता; (७) या वैसी दूसरी आपत्तिको नहीं करता; (८) या उससे वुरी दूसरी आपत्तिको नहीं करता; (९) कर्म (=न्याय) की निंदा नहीं करता; (१०) कर्मिक (=फ़ैसला करनेवालों)की निंदा नहीं करता। 38

(११–१८) "और भी भिक्षुओ ! आठ वातोंसे युक्त भिक्षुके तर्जनीय कर्म को माफ़ करना

---

[1] महावग्ग १§४।६ (पृष्ठ १३२)।

[2] महावग्ग १§४।७ (पृष्ठ १३४)।

चाहिये—(११) प्रकृतात्म भिक्षुके उपोसथको स्थगित नहीं करता (१२) (०की) प्रवारणा स्थगित नहीं करता; (१३) बात बोलने लायक (काम) नहीं करता; (१४) अनुवादको नहीं प्रस्थापित करता; (१५) अवकाश नहीं कराता ; (१६) प्रेरणा नहीं कराता (१७) स्मरण नहीं कराता; (१८) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग नहीं करता।" 39

अट्ठारह प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(९) दंड माफ़ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार माफ़ी देनी चाहिये।४०वे पं डु क और लो हि त क भिक्षु संघके पास जा एक कंधेपर उत्तरासंगकर (अपनेसे) वृद्ध भिक्षुओंके चरणोंमें वंदनाकर, उकळूँ बैठ हाथ जोळ, ऐसा बोले—'भन्ते ! हम संघ द्वारा त र्ज नी य -क र्म से दंडित हो ठीकसे वर्तते हैं, लोम गिराते हैं, निस्तार (के काम)को करते हैं, त र्ज नी य - क र्म से माफ़ी चाहते हैं। दूसरी बार भी ०। तीसरी बार भी—'भन्ते !० त र्ज नी य - क र्म से माफ़ी चाहते हैं'।

"(तब) चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

"क. ज्ञप्ति—भन्ते ! संघ ! मेरी सुने, यह पं डु क (और) लो हि त क भिक्षु संघ द्वारा त र्ज नी य - क र्म से दंडित हो ठीकसे वर्तते हैं,०तर्जनीय-कर्मसे माफ़ी चाहते हैं। यदि संघ उचित समझे, तो संघ पं डु क, लो हि त क भिक्षुओंके तर्जनीय-कर्मको माफ़ करे—यह सूचना है।

"ख. अ नु श्रा व ण—(१) भन्ते ! संघ ! मेरी सुने, यह पं डु क (और) लो हि त क भिक्षु संघ द्वारा त र्ज नी य - क र्म से दंडित हो ठीकसे वर्तते हैं। तर्जनीय-कर्मसे माफ़ी चाहते हैं। संघ पं डु क (और) लोहितक भिक्षुओंके त र्ज नी य - क र्म को माफ़ कर रहा है, जिस आयुष्मान्को पं डु क (और) लो हि त क भिक्षुओंके तर्जनीय-कर्मकी माफ़ी पसंद है, वह चुप रहे, जिसको पसंद नहीं है, वह बोले।

"(२) दूसरी बार भी इसी बात को कहता हूँ—भन्ते ! मेरी सुने—०।

"(३) तीसरी बार भी इसी बात को करता हूँ—भन्ते ! संघ मेरी सुने.० जिस आयुष्मान्को पं डु क (और, लो हि त क भिक्षुओंके तर्जनीय-कर्म की माफ़ी पसंद है, वह चुप रहे, जिसको पसंद नहीं है, वह बोले। धा र णा ०—'संघने पं डु क और लो हि त क भिक्षुओंके तर्जनीय-कर्मको माफ़ कर दिया; संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।"

तर्जनीय-कर्म समाप्त

§२—नियस्स कर्म

(१) नियस्स दंडके आरम्भकी कथा

उस समय आयुष्मान् सेय्यसक (=श्रेयस्क) बाल (=मूर्ख), अचतुर, बराबर आपत्ति करनेवाले, अपदान रहित, प्रतिकूल गृहस्थ संसर्गोंसे युक्त थे, और उनको भिक्षु, प्रकृतात्मक (=दोष-रहित), परिवास देते,मूलसे प्रतिकर्षण करते (थे)मानत्व देते, आह्वान (थे)। जो वह अल्पेच्छ० भिक्षु थे वे हैरान...होते—'कैसे आयुष्मान् से य्य स क, बाल० होंगे ! और उनको भिक्षु० आह्वान करें।' तब उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही।०

"सचमुच भिक्षुओ० ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !'"

(नि य स्स क र्म की वि धि)—बुद्ध भगवान्ने फटकारा—०। फटकारकर धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! संघसे य्य स क भिक्षुका नि य स्स क र्म करे। उनका नि स्स य (=निश्रय[१]) करके रहना चाहिये।" 41

(२) दंड देनेकी विधि

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (निस्स=कर्म) करना चाहिये—पहिले से य्य स क भिक्षुको प्रेरित करना चाहिये, प्रेरित करके स्मरण दिलाना चाहिये, स्मरण दिलाकर आपत्तिका आरोप करना चाहिये। आपत्तिका आरोपकर चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

"क. ज्ञ प्ति–'भन्ते ! संघ मेरी सुने, यह से य्य स क भिक्षु बाल० आह्वान करता है, यदि संघ उचि तसमझे तो संघ सेय्यसक भिक्षुका, नियस्स कर्म करे उनका नि स्स य ले रहना चाहिये—यह सूचना है।'

"ख. अ नु श्रा व ण—'(१)पूज्य संघ मेरी सुने,०। जिस आयुष्मान्को सेय्यसक भिक्षुका नियस्स कर्म करना और निस्सय लेकर रहना पसंद हो वह चुप रहे, जिसको पसंद न हो वह बोले।

"(२) 'दूसरी बार भी०।

"(३) 'तीसरी बार भी इसी बातको कहता हूँ—पूज्यसंघ मेरी सुने—०जिसको पसंद न हो वह बोले।

"ग. धा र णा—'संघने सेय्यसक भिक्षुका नियस्स कर्म उनका निस्सय लेकर रहना किया, संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।"

(३) नियम विरुद्ध नियस्स दंड

(१)"भिक्षुओ ! तीन बातों से युक्त नि य स्स क र्म, अधर्म कर्म, अ वि न य, कर्म ठीक से न संपादित होता है—(१) सामने नहीं किया गया होता, (२) बिना पूछे किया गया होता है; (३) बिना प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराये किया गया होता है।...०[२]। 42

१२—"और भी भिक्षुओ ! तीन बातों से युक्त नियस्स कर्म, अधर्म कर्म, अविनय कर्म० होता है—(१) आपत्तिका आरोप किये बिना किया गया होता है; (२) अधर्मसे किया गया होता है; (३) वर्गसे किया गया होता है। भिक्षुओ ! इन तीन बातोंसे युक्त तर्जनीय कर्म, अधर्म कर्म, अविनय कर्म और ठीक से न संपादित होता है।" 53

बारह अधर्म कर्म समाप्त

(४) नियमानुसार नियस्स दंड

१—"भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त नियस्स कर्म धर्मकर्मक० (कहा जाता) है। —(१) सामने किया गया होता है; (२) पूछकर किया गया होता है; (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराके किया गया होता है। भिक्षुओ ! इन तीन अंगोंसे युक्त नियस्सकर्म धर्मकर्म० (कहा जाता) है। ०[३] 54

(१२)"०—(१) आपत्तिका आरोप करके०; (२) धर्मसे०; (३) समग्रसे०।०। 65

बारह अधर्म कर्म समाप्त

---

[१] महावग्ग १§४।७ (पृष्ठ १३४)। [२] देखो १§१।३ (पृष्ठ ३४२)।
[३] देखो पृष्ठ ३४३।

(५) नियस्स दंड देने योग्य व्यक्ति

१—"भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त भिक्षुको, चाहनेपर (=आकङ्खमान) संघ नियस्स कर्म करे—(१) झगळा, कलह, विवाद, बकवाद करनेवाला, संघमें अधिकरण करनेवाला होता है; ०[1] । 66

६—"०—(१) अकेला बुद्धकी निंदा करता है; (२) अकेला धर्मकी निंदा करता है; (३) अकेला संघकी निंदा करता है।०।" 71

छः आकंखमान समाप्त

(६) दंडित व्यक्तिके कर्त्तव्य

"भिक्षुओ ! जिस भिक्षुका नि य स्स क र्म किया गया है, उसे ठीकसे वर्ताव करना चाहिये, और वह ठीकसे वर्ताव यह है—(१) उपसंपदा न देनी चाहिये; ०[1] (१८) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग (मिश्रण) नहीं करना चाहिये ।" 72

अट्ठारह नियस्स कर्मके व्रत समाप्त

(७) दण्ड माफ़ करने लायक व्यक्ति

तब संघने—'तुझे निस्सय लेकर रहना चाहिये—' (कह) से य्य स क भिक्षुका नि य स्स क र्म किया। वह संघके नि य स्स क र्म से दंडित हो अच्छे मित्रोंको सेवन करते, भजन करते, उपासन करते, (उनसे) कहलवाते, (अपने) पूछते हुए बहुश्रुत, आगमन, धर्म-धर, विनय-धर, मातृका-धर, पंडित, चतुर, मेधावी, लज्जाशील, संकोची, सीखको चाहनेवाले हो गये। वह ठीकसे वर्ताव करते, रोवाँ गिराते थे, निस्तारके लायक (काम) करते थे। भिक्षुओंके पास जाकर ऐसा कहते थे—

"आवुसो ! संघ द्वारा निस्सय कर्ममे दंडित हो मैं ठीकसे वर्तता हूँ, रोवाँ गिराता हूँ, निस्तारके लायक (काम) करता हूँ। मुझे कैसा करना चाहिये ?"

भगवान्से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ ! संघ से य्य स क भिक्षुके नि य स्स कर्मको माफ़ करे।" 73

(मा फ़ न क र ने ला य क व्य क्ति)—(१-५) "भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके नि य-स्स क र्म को नहीं माफ़ करना चाहिये—(१) उ प स म्प दा देता है; ०[2] (१८) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग करता है। 76

अट्ठारह प्रतिप्रश्रब्ध न करने लायक समाप्त

(८) दंड माफ़ करने लायक व्यक्ति

(१-५) "भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके नियस्स कर्मको माफ़ करना चाहिये—(१) उ प स म्प दा नहीं देना; ०[3] (१८) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग नहीं करता। 79

अट्ठारह प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(९) दण्ड माफ़ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार माफ़ी देनी चाहिये—वह नि य स्स का भिक्षु संघके पास जा एक कंधेपर उत्तरासंगकर, वृद्ध भिक्षुओंके चरणोंमें वंदनाकर, उकळूँ बैठ ऐसा बोले—

"'भन्ते ! मैं संघ द्वारा नि य स्स क र्म से दंडित हो ठीकसे वर्तता हूँ० नियस्स कर्मकी माफ़ी

[1] देखो पृष्ठ ३४८।

[2] देखो पृष्ठ ३४५।

[3] देखो पृष्ठ ३४५-४६।

चाहता हूँ।' दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी—'भन्ते ! ० नियस्स कर्मकी माफ़ी चाहता हूँ।'

"(तब) चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—०[1]।

"—'संघने से य्य स क भिक्षुके नियस्स कर्मको माफ़ कर दिया; संघको पसंद है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।" ४०

नियस्स कर्म समाप्त ॥२॥

§३–प्रव्राजनीय कर्म

(१) प्रव्राजनीय दंडके आरम्भकी कथा

उस समय अ श्व जि त् और पु न र्व सु नामक (दो) भिक्षु की टा गि रि में आवासिक (=सदा आश्रममें रहनेवाले (भिक्षु) थे। वे इस प्रकारका अनाचार करते थे—मालाके पौदेको रोपते, रोपवाते थे, सींचते-सिंचाते थे, चुनते-चुनवाते थे, गूँथते-गुँथवाते थे। इकहरी बँटी माला[2] बनाते भी थे बनवाते भी थे। दोनों ओर से बँटी माला बनाते भी थे, बनवाते भी थे, मंजरिका (=मंजरी) बनाते भी थे बनवाते भी थे; विधूतिका बनाते भी थे बनवाते भी थे, वटंसक (=अवतंसक) बनाते थे बनवाते भी थे; आवेळ (=आपीड) बनाते भी थे, बनवाते भी थे, उरच्छद बनाते भी थे। बनवाते भी थे, वे कुलकी स्त्रियों, दुहिताओं, कुमारियो, बहुओं, दासियोंके लिये एक ओरकी वंटिक मालाको ले भी जाते थे, लिवा भी जाते थे; दोनों ओरकी वंटिकमालाको ले भी जाते थे लिवा भी जाते थे; ० उ र च्छ द ले भी जाते थे लिवा भी जाते थे। वे कुलकी स्त्रियों, दुहिताओं, कुमारियों, बहुओं और दासियोंके साथ एक वर्तनमें खाते थे, एक प्यालेमें पीते थे, एक आसनमें बैठते थे, एक चारपाईपर लेटते थे, एक बिस्तरेपर लेटते थे, एक ओढ़नेमें लेटते थे, एक ओढ़ने बिछौनेसे लेटते थे, विकाल (=दोपहरबाद) भी खाते थे, मद्य भी पीते थे, माला, गंध और उबटनको भी धारण करते थे, नाचते भी थे, गाते भी थे, बजाते भी थे, लास (=रास) भी करते थे, नाचनेवालीके साथ नाचते भी थे, नाचनेवालीके साथ गाते थे, नाचनेवालीके साथ बजाते थे, नाचनेवालीके साथ ला स करते थे। गानेवालीके साथ नाचते थे, ० गानेवालीके साथ लास करते थे, बजानेवालीके साथ नाचते थे ० बजानेवालीके साथ लास करते थे। लास करनेवालीके साथ नाचते थे ० लास करनेवालीके साथ लास करते थे। अष्टपद (=जुए)को खेलते थे, दशपद=(जुए) को खेलते थे। आकाशमें भी क्रीडा करते थे, प रि हा र प थ में भी खेलते थे। सन्तिका भी खेलते थे, खलिका भी खेलते थे, घटिका भी खेलते थे, शलाकाहस्त[3] भी खेलते थे। अक्ष (=एक प्रकारका जुआ)से भी खेलते थे। पगंचीर[3] से भी खेलते थे। वंकक[3] से भी खेलते थे। मोक्खचिक[3] से भी खेलते थे। चिंगुलक[3] से भी खेलते थे। प त्ता ळ् ह क से भी खेलते थे। रथक (=खिलौनेकी गाळी)-से भी खेलते थे, धनुहीसे भी खेलते थे। अक्षरिका[3] से भी खेलते थे। मनेसिका[3] से भी खेलते थे। यथा वज्जा[3] से भी खेलते थे। हाथी-(की विद्या)को भी सीखते थे, घोळे(की विद्या)को भी सीखते थे, रथ(की विद्या)को भी सीखते थे, धनुष(की विद्या)को भी सीखते थे। परशु(की विद्या)को भी सीखते थे। हाथीके आगे आगे भी दौळते थे, घोळेके आगे आगे भी दौळते थे, रथके आगे आगे भी दौळते थे। दौळकर चक्कर भी काटते थे, उस्सोळ्ह[4] भी कहते थे। अप्पोठ[4] भी कहते थे, निब्बुज्झ[4] भी करते थे। मुक्केबाजी भी करते थे। रंग (=थियेटर हाल)के बीचमें संघाटी फैलाकर नाचनेवाली (स्त्री)से

---

[1] देखो पृष्ठ ३४६। तर्जनीय कर्मके स्थानमें 'नियस्स कर्म' कर लेना चाहिये।
[2] मालाओंके नाम हैं। [3] जूओंके नाम। [4] दौळों और व्यायामोंके नाम।

यह कहते थे—'भगिनी यहाँ नाचो।' ललाटिका (एक ललाटका आभूपण)को भी लगाते थे। और नाना प्रकारके अनाचारको करते थे।

उस समय एक भिक्षु का शी (देश)में वर्षावास कर भगवान्‌के दर्शनके लिये (श्रावस्ती) जाते (समय) जहाँ की टा गि रि है वहाँ पहुँचा। तव वह भिक्षु पूर्वाह्णमें पहनकर पात्र-चीवर ले श्रद्धा उत्पन्न करनेवाले गमन-आगमन(के ढंग)से आलोकन-विलोकनसे (हाथके) समेटने-पसारनेसे नीची नजर करके ईर्यापथ[1]से मुक्त हो की टा गि रि में प्रविष्ट हुआ। लोग उस भिक्षुको देखकर ऐसा कहने लगे—

'यह कौन निर्बल-दुर्बल जैसा, धीरे धीरे भाकुटिक (=पाखंडी) भाकुटिक जैसा है? कौन आनेपर इसको भीख भी देगा? हमारे आर्य अ श्व जि त् और पु न र्व सु तो स्नेह युक्त सखिल (सखा-भाव युक्त) सुख-पूर्वक स=भापण करने योग्य खोजनेपर पहले जानेवाले, 'आओ! स्वागत' वोलनेवाले, भौंह न चढ़ानेवाले, खुले मुँहवाले, पहले बोलनेवाले हैं। उन्हें भिक्षा देनी चाहिये।'

एक उपासक उस भिक्षुको की टा गि रि में भिक्षाटन करते देख जहाँ वह भिक्षु था वहाँ गया। जाकर उस भिक्षुको अभिवादन कर यह बोला—

"क्या भन्ते! भिक्षा मिली?"

"आवुस! भिक्षा नहीं मिलती।"

"आओ भन्ते! घर चलें।"

तव वह उपासक उस भिक्षुको (अपने) घर लेजा, भोजन करा यह बोला—

"भन्ते! आर्य कहाँ जायँगे?"

"आवुस मैं भगवान्‌के दर्शनके लिये श्रावस्ती जाऊँगा।"

"तो भन्ते! मेरे वचनसे भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दना करना और यह कहना—'भन्ते! की टा गि रि का आवास दूपित हो गया है। अ श्व जि त् और पु न र्व सु नामक (दो) निर्लज्ज, पापी भिक्षु की टा गि रि में आवासिक (=सदा आश्रममें रहनेवाले भिक्षु) हैं।०[1] और नाना प्रकारके अनाचार करते हैं। भन्ते! जो मनुप्य पहले श्रद्धालु=प्रसन्न थे वह भी अव अश्रद्धालु—अप्रसन्न हैं। जो कोई पहले संघके लिये दानके रास्ते थे वे भी टूट गये। अच्छे भिक्षु छोळ जाते हैं। पापी भिक्षु वास करते हैं। अच्छा हो भन्ते! भगवान् कीटागिरिमें (ऐसे) भिक्षु भेजे जिसमें यह आवास ठीक हो जाय'।"

"अच्छा आवुस!"—(कह) वह भिक्षु उस उपासकको उत्तर दे आसनसे उठ जिधर श्रा व स्ती है उधर चल दिया। क्रमशः जहाँ श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकका आराम जे त व न था, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। बुद्ध भगवानोंका यह आचार है कि नवागन्तुक भिक्षुओंके साथ प्रति सम्मोदन (=कुशल-प्रश्न पूछना) करें। तव भगवान्‌ने उस भिक्षुसे कहा—

"भिक्षु! अच्छा तो रहा, यापनीय तो रहा, तकलीफ़के विना रास्तेमें तो आया. और भिक्षु! तू कहाँसे आता है?"

"अच्छा रहा भगवान्! यापनीय रहा भगवान्! तकलीफ़के विना भन्ते! मैं रास्तेमें आया। भन्ते! मैं का शी (देश)में वर्षावास करके भगवान्‌के दर्शनको श्रावस्ती जाते की टा गि रि में पहुँचा। तव मैं भन्ते! पूर्वाह्ण समय पहिन कर, पात्र-चीवर ले, ० ईर्यापथसे युक्त हो की टा गि रि में प्रविष्ट हुआ। ०[1] अच्छा हो भन्ते! भगवान् कीटागिरिमें (ऐसे) भिक्षु भेजें जिसमें यह आवास ठीक हो जाय।'

[1] देखो पृष्ठ ३४९।

वहाँसे मैं भगवान् ! आ रहा हूँ।"

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें भिक्षु संघको एकत्रित कर भिक्षुओंसे पूछा—

"सचमुच भिक्षुओ ! अ श्व जि त् और पु न र्व सु (दो) निर्लज्ज, पापी भिक्षु ० ? नाना प्रकारके अनाचारको करते हैं ? और जो मनुष्य पहले श्रद्धालु=प्रसन्न थे वह भी अब अश्रद्धालु=अप्रसन्न हैं ० अच्छे भिक्षु छोळ जाते हैं, पापी भिक्षु वास करते हैं।"

बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—० नाना प्रकारके अनाचार करते हैं ! ! भिक्षुओ ! यह न अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

फटकारकर भगवान्‌ने धार्मिक कथा कह सा रि पु त्र और मो ग्ग ला न को संबोधित किया—

"जाओ सा रि पु त्र ! तुम (और मो ग्ग ला न) । की टा गि रि में जा अ श्व जि त् और पु न र्व सु भिक्षुओंका की टा गि रि से प्र व्रा ज नी य कर्म (=निकालनेका दंड) करो। वे तुम्हारे स द्धि वि हा री (=शिष्य) थे।" 81

"भन्ते ! कैसे हम अ श्व जि त् और पु न र्व सु भिक्षुओंका की टा गि रि से प्रव्रजित कर्म करें ? वे भिक्षु चंड हैं, परुष (=कठोर) हैं।"

"तो सारिपुत्र (मोग्गलान) तुम बहुतसे भिक्षुओंके साथ जाओ !"

"अच्छा भन्ते !" (कह) सारिपुत्रने भगवान्‌का उत्तर दिया।

(२) दण्ड देनेकी विधि

"और भिक्षुओ ! ऐसे प्रव्राजनीय कर्म करना चाहिये—पहले अ श्व जि त् पु न र्व सु भिक्षुओंको प्रेरित करना चाहिये; प्रेरित करके स्मरण दिलाना चाहिये; स्मरण दिलाकर आ प त्ति का आरोप करना चाहिये। आपत्तिका आरोप कर चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

"क. ज्ञ प्ति—'भन्ते ! संघ मेरी सुने ! ये अ श्व जि त् और पु न र्व सु भिक्षु कुल-दूषक (और) पापाचारी हैं। इनके पापाचार देखे भी जाते हैं, सुने भी जाते हैं, और इनके द्वारा कुल दूषित हुए देखे भी जाते हैं, सुने भी जाते हैं। यदि संघ उचित समझे तो संघ—'अ श्व जि त् और पु न र्व सु भिक्षुओंको की टा गि रि में नहीं वास करना चाहिये'—(कह) अ श्व जि त् और पु न र्व सु भिक्षुओंका की टा गि रि-से प्रव्राजनीय कर्म करे।—यह सूचना है।

"ख. अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते ; संघ मेरी सुने ! यह अ श्व जि त् और पु न र्व सु भिक्षु कुलदूषक और पापाचारी हैं। संघ—'अश्वजित् और पुनर्वसु भिक्षुओंको कीटागिरिमें नहीं वास करना चाहिये' (कह) अश्वजित् और पु न र्व सु का प्रव्राजनीय कर्म करता है। जिस आयुष्मान्‌को ० अश्वजित् और पुनर्वसु भिक्षुओंका प्रव्राजनीय कर्म करना पसंद है वह चुप रहे, जिसको ० नहीं पसंद है वह बोले।

"(२) 'दूसरी बार भी ०।

"(३) 'तीसरी बार भी ०।

"ग. धा र णा—संघने—'अश्वजित् और पुनर्वसु भिक्षुओंको कीटागिरिमें नहीं वास करना चाहिये' (कह) अश्वजित् और पुनर्वसुका कीटागिरिसे प्रव्राजनीय कर्म कर दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।" 82

(३) नियम-विरुद्ध प्रव्राजनीय दण्ड

१—"भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त प्रव्राजनीय कर्म, अधर्म कर्म (कहा जाता) है—(१) सामने नहीं किया गया होता; (२) बिना पूछे किया गया होता है; (३) बिना प्रतिज्ञा (=स्वीकृति)

कराये किया गया होता है।...०[1]।" 94

बारह अधर्म कर्म समाप्त

(४) नियमानुसार प्रव्राजनीय दण्ड

१—"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त प्रव्राजनीय कर्म, धर्म कर्म ० (कहा जाता) है—(१) सामने किया गया होता है; (२) पूछ कर किया गया होता है; (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराके किया गया होता है। ०[2]।" 106

बारह धर्म-कर्म समाप्त

(५) प्रव्राजनीय दण्ड देने योग्य व्यक्ति

१—"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त भिक्षुको, चाहनेपर (=आकंखमान) संघ तर्जनीय कर्म करे—०[3]।" ४२

छ आकंखमान समाप्त

(६) दंडित व्यक्तिके कर्त्तव्य

"भिक्षुओ! जिस भिक्षुका प्र व्रा ज नी य कर्म किया गया है उसे ठीकसे बरताव करना चाहिये, और वह ठीकसे बरताव यह हैं—(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये; ०[3]।" 113

तब सा रि पु त्र और मोग्गलानकी प्रधानतामें भिक्षु संघने कीटागिरिमें जा—'अश्वजित् और पुनर्वसु भिक्षुओंको कीटागिरिमें नहीं वास करना चाहिये' (कह), अ श्व जि त् और पु न र्व सु भिक्षुओंका की टा गि रि से प्रव्राजनीय कर्म किया। वे संघ द्वारा प्रव्राजनीय कर्म किये जानेपर ठीकसे बरताव नहीं करते थे, रोवाँ नहीं गिराते थे, निस्तारके लायक (काम) नहीं करते थे, भिक्षुओंसे माफ़ी नहीं माँगते थे; (बल्कि भिक्षुओंकी) निंदा करते थे, परिहास करते थे,—भिक्षु छन्द (=स्वेच्छाचार), द्वेष, मोह, भय (के रास्तेपर) जानेवाले हैं, रहते भी हैं, चले जाते भी हैं। (भिक्षु-वेष) भी छोळ जाते हैं।' कहते थे। जो वह अल्पेच्छ ० भिक्षु थे, वे हैरान...होते थे—कैसे अश्वजित् और पुनर्वसु भिक्षु संघ द्वारा प्रव्राजनीय कर्म किये जानेपर ठीकसे बरताव नहीं करते, ० (भिक्षु वेष) भी छोळ जाते हैं!' तब उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्।"

० फटकार कर धार्मिक कथा कह भगवान्‌ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—

"तो भिक्षुओ! संघ प्रव्राजनीय कर्मको माफ़ न करे।"

(७) दंड न माफ़ करने लायक व्यक्ति

(१-५) "भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षु प्रव्राजनीय कर्मको नहीं माफ़ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा देता है; ०[4]।" 116

प्रव्राजनीय कर्ममें अट्ठारह न प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(८) दंड माफ़ करने लायक व्यक्ति

(१-५) "भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके प्रव्राजनीय कर्मको माफ़ करना चाहिये—(१),

---

[1] देखो पृष्ठ ३४२। [2] देखो पृष्ठ ३४३। [3] देखो पृष्ठ ३४४।
[4] देखो पृष्ठ ३४५।

उपसम्पदा नहीं देता; ०[1]।" 119

प्रव्राजनीय कर्ममें अट्ठारह प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(९) दंड माफ़ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ! इस प्रकार माफ़ी देनी चाहिये—जिस भिक्षुका प्रव्राजनीय कर्म किया गया है वह संघके पास जाकर ० उकळूँ बैठ हाथ जोड़ ऐसा बोले—

" 'भन्ते ! हम संघ द्वारा प्रव्राजनीय कर्मसे दंडित हो ठीकसे वर्तते हैं ० प्रव्राजनीय कर्मकी माफ़ी चाहते हैं।' दूसरी बार भी ०। तीसरी बार भी ०।

"(तब) चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—०[2]।" 120

प्रव्राजनीय कर्म समाप्त ॥३॥

§४–प्रतिसारणीय कर्म

(१) प्रव्राजनीय दंडके आरम्भकी कथा

उस समय आयुष्मान् सुधर्म मच्छिकासंड[3]में चित्र गृहपतिके आवासिक (=आश्रम बनानेवाले) हो नवकर्मिक (=नई इमारतकेतत्वावधान करनेवाले) ध्रुव भक्तक (=सदा वहीं भोजन करनेवाले) थे। जब चित्र गृहपति संघ, या गण या व्यक्तिका निमंत्रण करना चाहता था तो आयुष्मान् सुधर्मको बिना पूछे...नहीं करता था। उस समय, आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् महामौद्गल्यायनआयुष्मान् महाकात्यायन, आयुष्मान् महाकोट्ठित (=कोष्टिल), आयुष्मान् महाकप्पिन्, आयुष्मान् महाचुन्द, आयुष्मान अनुरुद्ध, आयुष्मान् रेवत, आयुष्मान् उपालि आयुष्मान् आनंद, और आयुष्मान राहुल (आदि) बहुतसे स्थविर काशी (देश)में चारिका करते, जहाँ मच्छिकासंड था वहाँ पहुँचे।

चित्र गृहपतिने सुना कि स्थविर भिक्षु मच्छिकासंडमें पहुँचे हैं। तब चित्र गृहपति जहाँ वे स्थविर भिक्षु थे वहाँ पहुँचा। पहुँच कर स्थविर भिक्षुओंको अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे चित्र गृहपतिको आयुष्मान सारिपुत्रने धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित, सम्प्रहर्षित किया। तब आयुष्मान् सारिपुत्रकी धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित सम्प्रहर्षित हो चित्र गृहपतिने स्थविर भिक्षुओंसे यह कहा—

"भन्ते ! कलका नवागन्तुकका भोजन मेरा स्वीकार करें।"

स्थविर भिक्षुओंने मौन रह स्वीकार किया। तब चित्र गृहपति स्थविर भिक्षुओंकी स्वीकृति जान, आसनसे उठ, स्थविर भिक्षुओंको अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर जहाँ आयुष्मान् सुधर्म थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् सुधर्मको अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खळे चित्र गृहपतिने आयुष्मान् सुधर्मसे यह कहा—

"भन्ते ! आर्य सुधर्म (भी) स्थविरोंके साथ कलका मेरा भोजन स्वीकार करें।"

---

[1] देखो पृष्ठ ३४६।

[2] देखो पृष्ठ ३४६, 'तर्जनीय कर्म'के स्थानपर 'प्रव्राजनीय कर्म' और 'पण्डुक' तथा 'लोहितक'के स्थानपर 'वह भिक्षु' करके पढ़ना चाहिये।

[3] संभवतः जौनपुर ज़िलेका 'मछली शहर' क़स्बा।

तब आयुष्मान् सुधर्म—'पहले यह चित्र गृहपति संघ-गण या व्यक्तिको निमंत्रित करनेकी इच्छा होनेपर बिना मुझसे पूछे. . .नहीं निमंत्रित करता था, सो आज (मुझे) बिना पूछे (इसने) स्थविर भिक्षुओंको निमंत्रित किया। अब यह चित्र गृहपति मेरे प्रति विकार युक्त बे परवाह (और) विरक्त सा है'—(सोच) चित्र गृहपतिसे यह कहा—

"नहीं गृहपति ! मैं नहीं स्वीकार करता।"

दूसरी बार भी०

तीसरी बार भी चित्र गृहपतिने आयुष्मान् सुधर्मसे यह कहा—०।

तब चित्र गृहपति—'आयुष्मान् सुधर्म स्वीकार करके या न स्वीकार करके मेरा क्या करेंगे' (सोच) आयुष्मान् सुधर्मको अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया।

तब चित्र गृहपतिने उस रातके बीत जानेपर स्थविर भिक्षुओंके लिये उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार किया। तब आयुष्मान् सुधर्म—'आओ ! स्थविर भिक्षुओंके लिये चित्र गृहपतिकी तैयारी देखें', (सोच) पूर्वाह्णमें (वस्त्र) पहिन, पात्र-चीवर ले, जहाँ चित्र गृहपतिका घर था वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। तब चित्र गृहपति जहाँ आयुष्मान् सुधर्म थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् सुधर्मको अभिवादन कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे चित्र गृहपतिको आयुष्मान् सुधर्मने यह कहा—

"गृहपति ! तूने यह बहुत सा खाद्य-भोज्य तैयार किया है, किन्तु एक तिल-संगुलिका (=तिलवा) नहीं है।"

"भन्ते ! बुद्ध-वचनमें बहुत रत्नोंके रहते हुए भी आर्य सुधर्मको यह तिल-संगुलिका ही भाषण करनेको मिली। भन्ते ! पूर्वकालमें दक्षिणापथ (=Deccan) के व्यापारी पूर्वदेशमें व्यापारके लिये गये। वे वहाँसे (एक) मुर्गी लाये। तब भन्ते ! उस मुर्गीने कौएके साथ सहवास किया। और बच्चा पैदा किया। जब भन्ते ! वह मुर्गीका बच्चा कौएकी बोली बोलना चाहता था तो 'काक-कक्कुट' बोलता था; जब मुर्गेकी बोली बोलना चाहता था तो 'कुक्कुट-काक' बोलता था। ऐसे ही भन्ते ! बुद्ध-वचनमें बहुत रत्नोंके रहते हुए भी आर्य सुधर्मको यह तिल-संगुलिका ही भाषण करनेको मिली !"

"गृहपति ! तू मेरी निंदा करता है, मेरा परिहास करता है।' गृहपति ! (ले) यह तेरा आवास है मैं जाता हूँ।"

"भन्ते ! मैं आर्य सुधर्मकी निंदा नहीं करता, परिहास नहीं करता। भन्ते ! आर्य सुधर्म मच्छिकासंडमें वास करें, अम्बाटक वन सुन्दर है। मैं आर्य सुधर्मके चीवर, भोजन, आसन, रोगि-पथ्य, रोगि-औषध-सामानका प्रबन्ध करूँगा।"

दूसरी बार भी आयुष्मान् सुधर्मने ०।

तीसरी बार भी आयुष्मान् सुधर्मने चित्र गृहपतिसे यह कहा—

"गृहपति ! तू मेरी निंदा करता है ०।"

"भन्ते ! आर्य सुधर्म कहाँ जायेंगे ?"

"गृहपति ! भगवान्के दर्शनके लिये श्रावस्ती जाऊँगा।"

"तो भन्ते ! जो आपने कहा, और जो मैंने कहा वह सब भगवान्से कहना। आश्चर्य नहीं भन्ते ! कि आर्य सुधर्म फिर मच्छिकासंडमें वापस आयें।"

तब आयुष्मान् सुधर्म आसन-बासन सँभाल पात्र-चीवर ले जिधर श्रावस्ती है उधर चल दिये। क्रमशः जहाँ श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकका आराम जेतवन था और जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् सुधर्मने जो कुछ अपने कहा था और कुछ चित्र गृहपतिने कहा था वह सब भगवान्से कह दिया।

बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—"० कैसे तू मोघपुरुप चित्र-गृहपति (जैसे) श्रद्धालु=प्रसन्न, दायक, कारक, संघ-सेवकको छोटी (वात)से खुनसायेगा! छोटी (वात)से नाराज़ करेगा। मोघ पुरुप! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

फटकार कर धार्मिक कथा कह भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

(२) दण्ड देनेकी विधि

"तो भिक्षुओ! 'चित्र गृहपतिसे जा क्षमा माँगो' (कह) संघ सु ध र्म भिक्षुका प्रतिसारणीय कर्म करे। 121

"और भिक्षुओ! इस प्रकार (प्रतिसारणीय कर्म) करना चाहिये; पहले सुधर्म भिक्षुको प्रेरित करना चाहिये, प्रेरित करके स्मरण दिलाना चाहिये, स्मरण दिला कर आपत्तिका आरोप करना चाहिये, आपत्तिका आरोप करके चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

"क. ज्ञ प्ति—'भन्ते! संघ मेरी सुने—इस सुधर्म भिक्षुने चित्र गृहपति जैसे श्रद्धालु ० को छोटी (वात)से खुनसाया ०; यदि संघ उचित समझे तो संघ—'चित्र गृहपतिसे जा क्षमा माँगो' (कह) सुधर्म भिक्षुका प्रतिसारणीय कर्म करे—यह सूचना है।

"ख. अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते! संघ मेरी सुने—इस सुधर्म भिक्षुने चि त्र गृहपति जैसे श्रद्धालु० को छोटी (वात)से खुनसाया ०, संघ 'चित्र गृहपतिसे जा क्षमा माँगो'—(कह) सु ध र्म भिक्षुका प्रतिसारणीय कर्म करता है। जिस आयुष्मान्‌को सुधर्म भिक्षुका प्र ति सा र णी य कर्म पसंद है वह चुप रहे; जिसको नहीं पसंद है वह बोले।

"(२) 'दूसरी वार भी ०[1]।

"(३) 'तीसरी वार भी ०।

"ग. धा र णा—'संघने सुधर्म भिक्षुका प्रतिसारणीय कर्म कर दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।" 122

(३) नियम विरुद्ध प्रतिसारणीय दंड

१—"भिक्षुओ! तीन वातोंसे युक्त प्रतिसारणीय कर्म, अधर्म कर्म ० (कहा जाता) है—(१) सामने नहीं किया गया होता; (२) विना पूछे किया गया होता है; (३) विना प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराये किया गया होता है।...०[1]।" 134

वारह अधर्म कर्म समाप्त

(४) नियमानुसार प्रतिसारणीय दंड

१—"भिक्षुओ! तीन वातोंसे युक्त प्रतिसारणीय कर्म, धर्मकर्म ० (कहा जाता) है—(१) सामने किया गया होता है; (२) पूछ कर किया गया होता है; (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराके किया गया होता है। ०[2]।" 146

वारह धर्म कर्म समाप्त

(५) प्रतिसारणीय दंड देने योग्य व्यक्ति

१—"भिक्षुओ! पाँच वातोंसे युक्त भिक्षुको चाहनेपर (आकंखमान) प्रतिसारणीय कर्म

---

[1] देखो पृष्ठ ३४२। [2] देखो पृष्ठ ३४३।

करे—(१) गृहस्थोंके अलाभ (=हानि)का प्रयत्न करता है; (२) गृहस्थोंके अनर्थके लिये प्रयत्न करता है; (३) गृहस्थोंके अवास (=निर्वासन)के लिये प्रयत्न करता है; (४) गृहस्थोंकी निन्दा करता है, परिहास करता है; (५) गृहस्थ गृहस्थमें फूट डालता है। भिक्षुओ! इन पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको इच्छा होनेपर संघ प्रतिसारणीय कर्म करे। 147

२—"भिक्षुओ! और भी पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुका इच्छा होनेपर संघ प्रतिसारणीय कर्म करे—(१) गृहस्थोंसे बुद्धकी निन्दा करता है; (२) गृहस्थोंसे धर्मकी निन्दा करता है; (३) गृहस्थोंमें संघकी निन्दा करता है; (४) गृहस्थोंको नीच (बात)से खुनसाता है, और नीच (बात)से नाराज़ करता है; (५) गृहस्थोंसे धार्मिक प्रतिश्रव (=आज्ञा पालन)को नहीं सच कराता। भिक्षुओ! इन पाँच ०। 148

३—"भिक्षुओ! पाँच भिक्षुओंका इच्छा होनेपर संघ प्रतिसारणीय कर्म करे—(१) अकेला गृहस्थोंके अलाभ (=हानि)का प्रयत्न करता है; ० (५) अकेला गृहस्थ गृहस्थमें फूट डालना है। भिक्षुओ! इन पाँच ०। 149

४—"भिक्षुओ! और भी पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुका इच्छा होनेपर संघ प्रतिसारणीय कर्म करे—(१) अकेला गृहस्थोंसे बुद्धकी निन्दा करता है; ० (५) अकेला गृहस्थोंसे धार्मिक प्रतिश्रव (=शिक्षा ?) को नहीं सच कराता। भिक्षुओ! इन पाँच०।" 150

आकंखमान चार पंचक समाप्त

(६) दंडित व्यक्तिके कर्त्तव्य

भिक्षुओ! जिस भिक्षुका प्रतिसारणीय कर्म किया गया है उसे ठीकसे वर्ताव करना चाहिये और वह ठीकसे वर्ताव यह है—(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये; ०[1]। 151

अट्ठारह प्रतिसारणीय कर्मके व्रत समाप्त

(७) अनुदूत देनेकी विधि

तो संघने—तुम चित्र गृहपतिसे जा क्षमा माँगो'—(कह) सुधर्म भिक्षुका प्रतिसारणीय कर्म किया। संघ द्वारा प्रतिसारणीय कर्मसे दंडित हो मच्छिकासंडमें जा मूक हो चित्र गृहपतिसे क्षमा न माँग सके। वे फिर श्रावस्ती लौट गये। भिक्षुओंने पूछा—

"आवुस सुधर्म! चित्र गृहपतिसे तुमने क्षमा माँग ली ?"

"आवुसो! मैं मच्छिकासंड जा, मूक हो चित्र गृहपतिसे क्षमा न माँग सका।"

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ! संघ चित्र गृहपतिसे क्षमा माँगनेके लिये सुधर्म भिक्षुको (एक) अनुदूत (=साथी) दे। 152

"और इस प्रकार देना चाहिये—पहिले (जानेवाले) भिक्षुसे पूछना चाहिये। पूछकर चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

"क. ज्ञ प्ति—'भन्ते! संघ मेरी सुने। यदि संघ उचित समझे तो संघ अमुक नामवाले भिक्षुको चित्र गृहपतिसे क्षमा माँगनेके लिये सुधर्म भिक्षुको अनुदूत दे—यह सूचना है।

"ख. अनुश्रावण—(१) 'भन्ते! संघ मेरी सुने। संघ इस नामवाले भिक्षुको० अनुदूत दे

[1] देखो पृष्ठ ३४४।

रहा है। जिस आयुष्मान्‌को इस नामवाले भिक्षुका अनुदूत किया जाना पसन्द हो वह चुप रहे; जिसको पसन्द न हो वह बोले।

"'दूसरी बार भी०।

"'तीसरी बार भी०।

"—'संघने इस नामवाले भिक्षुको० अनुदूत दिया; संघको पसन्द है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।'

"भिक्षुओ! सु ध र्म भिक्षुको उस अनुदूतके साथ म च्छि का सं ड जा चि त्र गृहपतिसे—'गृहपति! क्षमा करो, विनती करता हूँ' (कह) क्षमा माँगनी चाहिये। ऐसा कहनेपर यदि क्षमा करे तो ठीक यदि न क्षमा करे तो अनुदूत भिक्षुको कहना चाहिये—'गृहपति! इस भिक्षुको क्षमा करो। तुमसे विनती करता हूँ।' ऐसे कहनेपर यदि क्षमा करे तो ठीक, यदि न क्षमा करे तो अनुदूत भिक्षुको कहना चाहिये—'गृहपति! इस भिक्षुको क्षमा करो, मैं तुमसे विनती करता हूँ।'—ऐसा कहनेपर यदि क्षमा करे तो ठीक, न क्षमा करे तो अनुदूत भिक्षुको कहना चाहिये—'गृहपति! संघके वचनसे इस भिक्षुको क्षमा करो।' ऐसा कहनेपर यदि क्षमा करे तो ठीक; यदि न क्षमा करे तो अनुदूत भिक्षु सुधर्म भिक्षुको चि त्र गृहपतिके देखने सुनने भरके स्थानमें एक कंधेपर उत्तरासंघ करा, उकळूँ बैठा, हाथ जोळवा उस आपत्ति (=अपराध)की देशना (Confession) कराये।"

तब आयुष्मान् सु ध र्म ने अनुदूत भिक्षुके साथ म च्छि का सं ड जा चि त्र गृहपतिसे (अपनेको) क्षमा करवाया। (तब) वह ठीक तरहसे बरताव करते थे० भिक्षुओंके पास जा ऐसा कहते थे—'आवुसो! संघ द्वारा दंडित हो मैं अब ठीकसे वर्तता हूँ, रोवाँ गिराता हूँ, निस्तारके लायक (काम) करता हूँ। मुझे कैसे करना चाहिये?'

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ! संघ सु ध र्म भिक्षुके प्रतिसारणीय कर्मको माफ़ करे।" 153

(८) दंड न माफ़ करने लायक व्यक्ति

(१-५) "भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके प्रतिसारणीय कर्मको नहीं माफ़ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा देता है; ०[1]।" 158

प्रतिसारणीय कर्ममें अट्‌ठारह न प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(९) दंड माफ़ करने लायक व्यक्ति

(१-५ "भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके प्रतिसारणीय कर्मको माफ़ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा नहीं देता; ।०[1]।" 173

प्रतिसारणीय कर्ममें अट्‌ठारह प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(१०) दंड माफ़ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ! इस प्रकार माफ़ी देनी चाहिये—वह सुधर्म भिक्षु, भिक्षु-संघके पास जा० उकळूँ बैठ, हाथ जोळ ऐसा बोले—०[2]।"

---

[1]देखो पृष्ठ ३४५।

[2]देखो पृष्ठ ३४६ तर्जनीय कर्मके स्थानमें, प्रतिसारणीय कर्म, तथा 'पंडुक' और 'लोहितक' भिक्षुके स्थानमें 'सुधर्म' भिक्षुकरके पढ़ना चाहिये।

"—संघने सुधर्म भिक्षुके प्रतिसारणीय कर्मको माफ़ कर दिया। संघको पसन्द है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।" 174

प्रतिसारणीय कर्म समाप्त ॥४॥

§५—आपत्तिके न देखनेसे उत्क्षेपणीयकर्म

२—कौशाम्बी

(१) आपत्तिके न देखनेसे उत्क्षेपणीय दंडके आरम्भकी कथा

उस समय बुद्ध भगवान् कौशाम्बीके घो षि ता रा म में विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् छ न्न आपत्ति (=अपराध) करके उस आ प त्ति को दे ख ना (Realisation) नहीं चाहते थे। जो वह अल्पेच्छ भिक्षु० थे वे हैरान...होते थे—'कैसे आयुष्मान् छंद आपत्ति करके उसको देखना नहीं चाहते !'

तब उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही०।

फटकार कर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! संघ छन्न भिक्षुका आपत्तिके न देखनेसे संघके साथ सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म करे।" 175

(२) दंडके देनेकी विधि

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (उत्क्षेपणीय कर्म) करना चाहिये। पहले छन्न भिक्षुको प्रेरित करना चाहिये०, आपत्तिका आरोप करके चतुर समर्थ भिक्षु-संघको सूचित करे—

"क. ज्ञ प्ति—'भन्ते ! संघ मेरी सुने। यह छ न्न भिक्षु आपत्तिको करके उस आपत्तिको देखना नहीं चाहता। यदि संघ उचित समझे तो आपत्तिके न देखनेके लिये संघ छ न्न भिक्षुका संघके साथ सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्मको करे—यह सूचना है।

"ख. अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते ! संघ मेरी सुने। संघ आपत्तिके न देखनेके लिये छ न्न भिक्षुका० उत्क्षेपणीय कर्म करता है। जिस आयुष्मान्‌को० पसन्द है वह चुप रहे; जिसको नहीं पसन्द है वह बोले।'

"(२) 'दूसरी बार भी०[1]।

"(३) 'तीसरी बार भी०[1]।

"ग. धा र णा—'संघने० छ न्न भिक्षुका० उत्क्षेपणीय कर्म किया। संघको पसन्द है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।'

"भिक्षुओ ! सारे आवासोंमें कह दो कि आपत्तिके न देखनेके लिये छन्न भिक्षुका संघके साथ सहयोग न होने लायक उत्क्षेपणीय कर्म हुआ है।"

(३) नियम विरुद्ध ०उत्क्षेपणीय कर्म

१—"भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त० उत्क्षेपणीय कर्म, अधर्म कर्म० (कहा जाता) है—(१) सामने नहीं किया गया होना; (२) बिना पूछे किये गया होना है; (३) बिना प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराये किया गया होना है।...०[1]।" 187

बारह अधर्म कर्म समाप्त

---

[1]देखो पृष्ठ ३४२।

(४) नियमानुसार ०उत्क्षेपणीय कर्म

१—"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त ०उत्क्षेपणीय कर्म, धर्मकर्म० (कहा जाता) है—(१) सामने किया गया होता है; (२) पूछकर किया गया होता है; (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति कराके किया गया होता है। ०[1]।" 199

बारह धर्म कर्म समाप्त

(५) उत्क्षेपणीय दंड देने योग्य व्यक्ति

१—"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त भिक्षुको चाहनेपर (=आकंखमान) संघ आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म करे—०[2]।" 205

छः आकंखमान समाप्त

(६) दंडित व्यक्तिके कर्त्तव्य

"भिक्षुओ! जिस भिक्षुका आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया गया है, उसे ठीकसे वर्ताव करना चाहिये। और वह ठीकसे वर्ताव यह है—(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये; ०[2] (१०) कर्मिक (=फ़ैसला करनेवालों)की निन्दा नहीं करनी चाहिये; (११) प्रकृतात्म (=अदंडित) भिक्षुसे अभिवादन; (१२) प्रत्युत्थान; (१३) हाथ जोळना; (१४) सामीचि कर्म (=यथायोग्य वर्तना); (१५) आसन ले आना; (१६) शय्या ले आना; (१७) पादोदक; (१८) पादपीठ; (१९) पादकठलिक; (२०) पात्र-चीवर ले आना; (२१) स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामों को लेना) चाहिये; (२२) प्रकृतात्म भिक्षुको शील-भ्रष्ट होनेका दोष नहीं लगाना चाहिये; (२३) आचार-भ्रष्ट होनेका दोष नहीं लगाना चाहिये; (२४) बुरी-जीविका-होने-वालेका दोष नहीं लगाना चाहिये; (२५) भिक्षु-भिक्षुमें फूट नहीं डालनी चाहिये; (२६) न गृहस्थोंकी ध्वजा (=वेष) धारण करनी चाहिये; (२७) न तीर्थिकोंकी ध्वजा (=वेष) धारण करनी चाहिये; (२८) न तीर्थिकोंका सेवन करना चाहिये; (२९) भिक्षुओंका सेवन करना चाहिये; (३०) भिक्षुओंकी शिक्षा (=नियम) सीखनी चाहिये; (३१) प्रकृतात्म (=अदंडित) भिक्षुके साथ एक छतवाले आवासमें नहीं वास करना चाहिये; (३२) एक छतवाले अनावास (=भिक्षुओंके निवास-स्थान से भिन्न घर) में नहीं रहना चाहिये; (३३) एक छतवाले आवास या अनावासमें नहीं रहना चाहिये; (३४) प्रकृतात्म भिक्षुको देखकर आसनसे उठ जाना चाहिये'; (३५) प्रकृतात्म भिक्षुको भीतर या वाहरसे नाराज़ न करना चाहिये; (३६) प्रकृतात्म भिक्षुके उपोसथको स्थगित नहीं करना चाहिये; (३७) प्रवारणा स्थगित नहीं करनी चाहिये; (३८) वात बोलने लायक (काम) नहीं करना चाहिये; (३९) अनुवाद (=शिकायत)को नहीं प्रस्थापित करना चाहिये; (४०) अवकाश नहीं कराना चाहिये; (४१) प्रेरणा नहीं करनी चाहिये; (४२) स्मरण नहीं कराना चाहिये; (४३) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग (=मिश्रण) नहीं करना चाहिये।" 206

तव संघने आपत्ति न देखनेके लिये छन्न भिक्षुका संघके साथ सहभोग न होने लायक उत्क्षेपणीय कर्म किया। वह संघ द्वारा आपत्ति न देखनेके लिये० उत्क्षेपणीय कर्म किये जानेपर उस आवासको छोळ दूसरे आवासमें चला गया। वहाँ भिक्षुओंने न उसका अभिवादन किया, न प्रत्युत्थान किया, न हाथ जोळा, न सामीचि कर्म (=कुशल-प्रश्न पूछना) किया, न सत्कार = गुरुकार किया, न सम्मान

[1] देखो पृष्ठ ३४३।
[2] देखो पृष्ठ ३४४।

किया, न पूजन किया। भिक्षुओंके सत्कार, गुरुकार, सम्मान, पूजा न करनेसे...उस आवासमे भी दूसरे आवासमें चला गया। वहाँ भी भिक्षुओंने न उसका अभिवादन किया० उस आवाससे भी दूसरे आवासमें चला गया। वहाँ भी भिक्षुओंने न उसका अभिवादन किया०। भिक्षुओंके सत्कार० न करने से...वह फिर कौशाम्बी लौट आया। (तब) वह ठीकसे वर्तता था, रोवाँ गिराता था, निस्तारके लायक (काम) करता था, भिक्षुओंके पास जाकर ऐसा बोलता था—आवुसो ! संघ द्वारा आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्मसे दंडित हो अब मैं ठीकसे वर्तता हूँ, रोवाँ गिराता हूँ, निस्तारके लायक काम करता हूँ, मुझे कैसे करना चाहिये।'

भगवान्‌से यह बात कही—

"तो भिक्षुओ ! संघ छन्न भिक्षुके आपत्ति न देखनेके लिए किये गये ० उत्क्षेपणीय कर्मको माफ़ करे।" 207

(७) दण्ड न माफ़ करने लायक व्यक्ति

१–५—"भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके० उत्क्षेपणीय कर्मको नहीं माफ़ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा देता है; (२) निश्रय देता है; (३) श्रामणेरसे उपस्थान (=सेवा) कराता है; (४) भिक्षुणियोंको उपदेश देनेकी सम्मति पाना चाहता है; (५) सम्मति मिल जानेपर भी भिक्षुणियोंको उपदेश देता है।...208

६–१०—"और भी भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके० उत्क्षेपणीय कर्मको नहीं माफ़ करना चाहिये—(६) जिस आपत्तिके लिये संघने उत्क्षेपणीय कर्म किया है उस आपत्तिको करता है; (७) या उस जैसी दूसरी आपत्तिको करता है; (८) या उससे अधिक बुरी आ प त्ति करता है; (९) कर्म (=फ़ैसला)की निन्दा करता है; (१०) कर्मिक (=फ़ैसला करनेवालों)की निन्दा करता है। 209

११–१५—"और भी भिक्षुओ ! पाँच०—(११) प्र कृ ता त्म (=दंडरहित) भिक्षुओंसे अभिवादन; (१२) प्र त्यु त्था न; (१३) हाथ जोड़ना; (१४) सामीचि-कर्म (=कुशल-प्रश्न पूछना); (१५) आसन ले आना (इन कामोंके लेने)की इच्छा रखता है।...210

(१६–२०) "और भी भिक्षुओ ! पाँच०—प्रकृतात्म भिक्षुसे,—(१६) शय्या ले आना; (१७) पादोदक; (१८) पादपीठ; (१९) पा द-क ठ लि क; (२०) पात्र-चीवर लाना, (इन कामोंके लेने)की इच्छा रखता है। ...211

२१–२५—"और भी भिक्षुओ ! पाँच०—(२१) प्रकृतात्म भिक्षुसे स्नान करते वक्त पीठ मलने (का काम लेने)की इच्छा रखता है; (२२) प्रकृतात्म भिक्षुको शील-भ्रष्ट होनेका दोष लगाता है; (२३) आचार-भ्रष्ट होनेका दोष लगाता है; (२४) बुरी-जीविका रखनेका दोष लगाता है; (२५) भिक्षु-भिक्षुओंमें फूट डालता है।...212

२६–३०—"और भी भिक्षुओ ! पाँच०—(२६) गृहस्थोंकी ध्वजा (=वेष) धारण करता है; (२७) ती र्थि कों की ध्वजा धारण करता है; (२८) तीर्थिकोंका सेवन करता है; (२९) भिक्षुओंका सेवन नहीं करता; (३०) भिक्षुओंकी शिक्षा (=नियम) नहीं सीखता।...

(३१–३५) "और भी भिक्षुओ ! पाँच०—(३१) प्रकृतात्म भिक्षुके साथ एक छतवाले आवासमें रहता है; (३२) एक छतवाले अनावासमें रहता है; (३३) एक छतवाले आवास या अनावासमें रहता है; (३४) प्रकृतात्म भिक्षुको देखकर आसनसे नहीं उठता; (३५) प्रकृतात्म भिक्षुको भीतर या बाहरसे नाराज करता है।...213

३६–४३—"भिक्षुओ ! आठ०—(३६) प्रकृतात्म भिक्षुके उ पो स थ को स्थगित करता

है; (३७) प्र वा र णा को स्थगित करता है; (३८) बात बोलने लायक (काम) करता है; (३९) अनुवाद (=शिकायत)को प्रस्थापित करता है; (४०) अवकाश कराता है; (४१) प्रेरणा करता है; (४२) स्मरण कराता है; (४३) भिक्षुओंके साथ संप्रयोग करता है। 214

तैंतालिस न प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(८) दंड माफ़ करने लायक व्यक्ति

१–५—"भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ़ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा नहीं देता; ०[1] (४३) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग नहीं करता।···" 222

तैंतालिस जिसका प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(९) दंड माफ़ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ! इस प्रकार माफ़ी देनी चाहिये—वह छन्न भिक्षु-संघके पास जा० उकळूं बैठ, हाथ जोळ ऐसा बोले—०[2]।" 223

आपत्ति न देखनेसे उत्क्षेपणीय कर्म समाप्त ॥५॥

§६—आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे उत्क्षेपणीय कर्म

(१) आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे उत्क्षेपणीय दंडके आरम्भकी कथा

उस समय बुद्ध भगवान् कौ शा म्बी के घो षि ता रा म में विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् छ न्न आपत्ति करके उस आपत्तिका प्रतिकार करना नहीं चाहते थे। ०[3]।

फटकारकर धार्मिक कथा कहकर भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

(२) दंड देनेकी विधि

"तो भिक्षुओ! संघ छ न्न भिक्षुका आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे संघके साथ सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म करे; और भिक्षुओ! इस प्रकार उत्क्षेपणीय कर्म करना चाहिये०[4]। 224

"भिक्षुओ! सारे आवासोंमें कह दो कि आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे छन्न भिक्षुका संघके साथ सहयोग न होने लायक उत्क्षेपणीय कर्म हुआ है।"

(३) नियम-विरुद्ध ०उत्क्षेपणीय दंड

१—"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे किया गया संघमें सहयोग न होने लायक उत्क्षेपणीय कर्म, अधर्म कर्म० (कहा जाता) है—(१) सामने नहीं किया गया होता; (२) बिना पूछे किया गया होता है; (३) बिना प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराये किया गया होता है। ···०[5]।" 236

बारह अधर्म कर्म समाप्त

---

[1] देखो चुल्ल १§१।८ पृष्ठ ३४५।

[2] देखो चुल्ल १§१।९ पृष्ठ ३४६; 'तर्जनीय कर्म'के स्थानमें 'आपत्ति न देखनेसे उत्क्षेपणीय कर्म' तथा 'पं डु क' और 'लो हि त क' भिक्षुओंके स्थानमें 'छन्न' भिक्षु करके पढ़ना चाहिये।

[3] देखो चुल्ल १§५।१ पृष्ठ ३५८।

[4] देखो चुल्ल १§५।२ पृष्ठ ३५८।

[5] देखो चुल्ल १§५।३ पृष्ठ ३५८।

(४) नियमानुसार ०उत्क्षेपणीय दंड

१—"भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे किया गया संघमें सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म, धर्म कर्म० (कहा जाता) है—(१) सामने किया गया होता है; (२) पूछकर किया गया होता है; (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराके किया गया होता है। ०[१]।" 248

बारह धर्म कर्म समाप्त

(५) ०उत्क्षेपणीय दंड देने योग्य व्यक्ति

१—"भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त भिक्षुको चाहनेपर (=आकंखमान) संघ आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म करे—०[२]।" 254

छ आकंखमान समाप्त

(६) दंडित व्यक्तिके कर्त्तव्य

"भिक्षुओ ! जिस भिक्षुका आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे संघमें सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म किया गया है, उसे ठीकसे बर्ताव करना चाहिये; और वह ठीकसे बर्ताव यह है—उपसम्पदा न देनी चाहिये०[३] (४३) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग नहीं करना चाहिये।" 297

तेंतालिस ०उत्क्षेपणीय कर्मके व्रत समाप्त

तब संघने आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे छन्न भिक्षुका संघके साथ सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म किया। वह संघ द्वारा आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे० उत्क्षेपणीय कर्म किये जानेपर उस आवासको छोड़ दूसरे आवासमें चला गया। ०[४] मुझे कैसे करना चाहिये ?

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ ! संघ छन्न भिक्षुके आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये संघके साथ सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्मको माफ़ करे।"

(७) दंड न माफ़ करने लायक व्यक्ति

१–५—"भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके ० उत्क्षेपणीय कर्मको नहीं माफ़ करना चाहिये—०[५]।" 302

तेंतालिस प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(८) दंड माफ़ करने लायक व्यक्ति

(१–५) "भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके ० उत्क्षेपणीय कर्मको माफ़ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा नहीं देता; ०[६]; (४३) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग नहीं करता।···" 307

तेंतालिस प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

---

[१] देखो चुल्ल १§१।३ पृष्ठ ३४२। [२] देखो चुल्ल १§१।४ पृष्ठ ३४३-४६। [३] देखो चुल्ल १§१।५ पृष्ठ ३४४। [४] बाकी २से ४२के लिये देखो चुल्ल १§५।६ पृष्ठ ३५१। [५] देखो चुल्ल १§५।७ पृष्ठ ३६०। [६] देखो चुल्ल १§५।८ पृष्ठ ३६१।

(९) दंड माफ़ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार माफ़ी देनी चाहिये—वह छ न्न भिक्षु संघके पास जा० उकळूं बैठ, हाथ जोळ ऐसा बोले—०।"[1] ३०४

आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे० उत्क्षेपणीय कर्म समाप्त ।। ६ ।।

§७–बुरी धारणा न छोळनेसे उत्क्षेपणीय कर्म

३—श्रावस्ती

(१) पूर्व-कथा

उस समय बुद्ध भगवान् श्रा व स्ती में अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय गन्धबाधि-पुब्ब (=भूतपूर्व गन्धबाधि गिद्ध मारनेवाले) अ रि ष्ट भिक्षुको ऐसी बुरी दृ ष्टि[2] (=धारणा, मत) उत्पन्न हुई थी—'मैं भगवान्के उद्देश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ जैसे कि जो (निर्वाण आदिके) अन्तरायिक (=विघ्नकारक) धर्म (=कार्य) भगवान्ने कहे हैं, सेवन करनेपर भी वह अन्तराय (=विघ्न) नहीं कर सकते।' तब वे भिक्षु जहाँ० अ रि ष्ट भिक्षु था वहाँ गये। जाकर अ रि ष्ट भिक्षुसे यह बोले—

"आवुस अरिष्ट ! सचमुच ही तुम्हें इस प्रकारकी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई है—'० अन्तराय नहीं कर सकते' ?"

"आवुसो ! मैं भगवान्के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ० अन्तराय नहीं कर सकते ।"

तब वह भिक्षु ० अरिष्ट भिक्षुको उस बुरी दृष्टिसे हटानेके लिये कहते, समझाते-बुझाते थे—"आवुस अरिष्ट ! मत ऐसा कहो ! मत आवुस अरिष्ट ! ऐसा कहो ! मत भगवान्पर झूठ लगाओ। भगवान्पर झूठ लगाना अच्छा नहीं है। भगवान् ऐसा नहीं कह सकते। अनेक प्रकारसे भगवान्ने आवुस अ रि ष्ट ! अन्तरायिक धर्मोको अन्तरायिक कहा है। 'सेवन करनेपर वे अन्तराय करते हैं'—कहा है। भगवान्ने कामों (=भोगों)को बहुत दुःखदायक, बहुत परेशान करनेवाले कहा है। उनमें बहुत दुष्परिणाम बतलाये हैं। भगवान्ने कामोंको अ स्थि कं का ल[3] समान कहा है, मां स-पे शी समान०, तृ ण-उ ल्का समान०, अं गा र क[4] (और) समान०, स्व प्न-स मा न०, या चि त को प म (=मँगनीके आभूषण)के समान०, वृ क्ष-फ ल[4] समान०, अ सि सू ना समान०, श क्ति-शू ल समान०, स र्प-शि र समान कहा है। भगवान्ने कामोंको बहुत दुख-दायक, बहुत परेशान करनेवाले, बहुत दुष्परिणामवाले कहा है।"

उन भिक्षुओं द्वारा ऐसा कहे जाने, समझाये बुझाये जानेपर भी० अरिष्ट भिक्षु उसी बुरी दृष्टिको दृढ़तासे पकळ, ज़िद करके (उसका) व्यवहार करता था—"मैं भगवान्के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ० अन्तराय नहीं कर सकते।"

जब वह भिक्षु० अरिष्ट भिक्षुको उस बुरी दृष्टिसे नहीं हटा सके तब उन्होंने भगवान्के पास

---

[1] देखो चुल्ल १§५।६ पृष्ठ ३५९ ।

[2] देखो चुल्ल १§१।९ पृष्ठ ३४६; 'तर्जनीय कर्मके स्थानमें' आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे उत्क्षेपणीय कर्म' तथा 'पंडुक' और 'लोहितक' भिक्षुओंके स्थानमें अमुक नाम ।

[3] मिलाओ अलगद्दूपम-सुत्तन्त (मज्झिम-निकाय २२, पृष्ठ ८४) ।

[4] इन उपमाओंके लिये देखो 'पोतलिय-सुत्तन्त' (मज्झिम-निकाय ५४, पृष्ठ २१६-२१८) ।

...जाकर अभिवादनकर एक ओर... बैठ...भगवान्‌से यह बात कही।

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें भिक्षुओंको एकत्रितकर० अरिष्ट भिक्षुसे पूछा—

"सचमुच अरिष्ट ! तुझे इस प्रकारकी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई है—'मैं भगवान्‌के० अन्तराय नहीं कर सकते' ?"

"हाँ भन्ते ! मैं भगवान्‌के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ, जैसे कि जो अन्तरायिक धर्म भगवान्‌ने कहे हैं, सेवन करनेपर भी वह अन्तराय नहीं कर सकते।"

"मोघपुरुष (=निकम्मा आदमी) ! किसको मैंने ऐसा धर्म उपदेश किया जिसे तू ऐसा जानता है—'मैं भगवान्०'। क्यों मोघपुरुष ! मैंने तो अनेक प्रकारसे अ न्त रा यि क ध र्मों को अन्तरायिक कहा है०[1] बहुत दुष्परिणाम बतलाये हैं ! और तू मोघपुरुष ! अपनी उल्टी धारणासे हमें झूठ लगा रहा है, अपनी भी हानि कर रहा है, बहुत अपुण्य (=पाप) कमा रहा है। मोघपुरुष ! यह चिरकाल तक तेरे लिये अहित और दुःखके लिये होगा। मोघपुरुष ! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है०।"

फटकारकर भगवान्‌ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! संघ अ रि ष्ट भिक्षुका बुरी धारणा न छोळनेसे संघमें सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म करे।"

(२) दंड देनेकी विधि

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार उत्क्षेपणीय कर्म करना चाहिये०।[2] 309-389

"भिक्षुओ ! सारे आवासोंमें कह दो कि बुरी दृष्टि न छोळनेके लिये अरिष्ट भिक्षुका० उत्क्षेपणीय कर्म हुआ है।"

(३) नियम-विरुद्ध ०उत्क्षेपणीय दंड

१—"भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त बुरी धारणाके लिये किया गया० उत्क्षेपणीय कर्म, अधर्म कर्म० (कहा जाता) है—(१) सामने नहीं किया गया होता; (२) बिना पूछे किया गया होता है; (३) बिना प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराये किया गया होता है।...०[3]।" 400

बारह अधर्म कर्म समाप्त

(४) नियमानुसार ०उत्क्षेपणीय दंड

१—"भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त बुरी धारणा न छोळनेसे किया गया संघमें सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म , धर्म कर्म (कहा जाता) है—(१) सामने किया गया होता है; (२) पूछकर किया गया होता है; (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराके किया गया होता है। ०[3]।" 413

बारह धर्म कर्म समाप्त

(५) ०उत्क्षेपणीय दंड देने योग्य व्यक्ति

१—"भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त भिक्षुको चाहनेपर (=आकांक्षमान) संघ बुरी धारणा

---

[1] पृष्ठ ३६३।

[2] देखो चुल्ल १।५।२ पृष्ठ ३५८; "आपत्तिको न देखने"के स्थानमें "बुरी दृष्टि न छोळनेके लिये" पढ़ना चाहिये।

[3] देखो चुल्ल १।१।२ पृष्ठ ३४२-४३।

न छोळनेसे० उत्क्षेपणीय कर्म करे—०[1]।" 419

छः आकंखमान समाप्त

(६) दंडित व्यक्तिके कर्त्तव्य

"भिक्षुओ ! जिस भिक्षुका बुरी धारणा न छोळनेसे ० उत्क्षेपणीय कर्म किया गया है, उसे ठीकसे वर्ताव करना चाहिये; और वह ठीकसे बर्ताव यह हैं—(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये; ०[2] (१८) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग (=मिश्रण) नहीं करना चाहिये।" 420

तब संघने० अ रि ष्ट भिक्षुका बुरी धारणा न छोळनेके लिये, संघके साथ सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म किया। संघ द्वारा ० उत्क्षेपणीय कर्म किये जानेपर वह भिक्षु-वेष छोळकर चला गया। तब जो वे अल्पेच्छ० भिक्षु थे—वे हैरान. . होते थे—'कैसे० अरिष्ट भिक्षु संघ द्वारा उत्क्षेपणीय कर्म किये जानेपर भिक्षु-वेष छोळकर चला जायगा !' तब उन भिक्षुओंने यह बात भगवान्से कही। तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें भिक्षु-संघको एकत्रितकर भिक्षुओंसे पूछा—

"सचमुच भिक्षुओ ! ० अरिष्ट भिक्षु संघ द्वारा० उत्क्षेपणीय कर्म किये जानेपर भिक्षु-वेप छोळ कर चला गया ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्।"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—

"कैसे भिक्षुओ ! वह मोघपुरुष संघ द्वारा० उत्क्षेपणीय कर्म किये जानेपर भिक्षु-वेष छोळ चला जायगा ! भिक्षुओ ! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है०।"

फटकारकर भगवान्ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! संघ बुरी धारणाके न छोड़नेके लिये किये गये० उत्क्षेपणीय कर्मको माफ़ करे।" 421

(७) दंड न माफ़ करने लायक व्यक्ति

१–५—"भिक्षुओ ! पाँच वातोंसे युक्त भिक्षुके तर्जनीय कर्मको नहीं माफ़ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा देता है०[3]।" 426

अट्ठारह न प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(८) दंड माफ़ करने लायक व्यक्ति

१–५—"भिक्षुओ ! पाँच वातोंसे युक्त भिक्षुके० उत्क्षेपणीय कर्मको माफ़ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा नहीं देता०[4]।" 431

अट्ठारह प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(९) दंड माफ़ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार माफ़ी देनी चाहिये—वह अमुक भिक्षु संघके पास जा एक कंधे पर उत्तरासंघकर (अपनेसे) वृद्ध भिक्षुओंके चरणोंमें वन्दनाकर, उकळूँ बैठ, हाथ जोळ ऐसा कहे—

---

[1]देखो चुल्ल १§१।४ पृष्ठ ३४३-४४। देखो चुल्ल १§१।५ पृष्ठ ३४४।
[2]देखो चुल्ल १§१।६ पृष्ठ ३४४।
[3]देखो चुल्ल १§१।७ पृष्ठ ३४५।
[4]देखो चुल्ल १§१।८ पृष्ठ ३४५-४६।

भन्ते ! मैं संघ द्वारा० उ त्क्षे प णी य क र्म से दंडित हो ठीकसे बर्तता हूँ, लोम गिराता हूँ, निस्तारके (कामको) करता हूँ, ० उत्क्षेपणीय कर्मसे माफ़ी माँगता हूँ। दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी—भन्ते ! ० उत्क्षेपणीय कर्मसे माफ़ी चाहता हूँ।'

"(तब) चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

"क. ज्ञ प्ति—'भन्ते ! संघ मेरी सुने, यह अमुक भिक्षु संघ द्वारा ० उत्क्षेपणीय-कर्मसे दंडित हो ठीकसे बर्तता है० उत्क्षेपणीय-कर्मसे माफ़ी चाहता है। यदि संघ उचित समझे तो, संघ अरिष्ट भिक्षुके ०उत्क्षेपणीय - कर्मको माफ़ करे—यह सू च ना है।'

"ख. अ नु श्रा व ण—(१) 'पूज्यसंघ मेरी सुने०[1] ।'

"ग. धा र णा—'संघने इस नामवाले भिक्षुके बुरी धारणा न छोड़नेसे किये गये० उत्क्षेपणीय कर्मको माफ़ कर दिया। संघको पसन्द है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।" 432

बुरी धारणा न छोळनेसे उत्क्षेपणीय कर्म समाप्त

कम्मक्खन्धक समाप्त ॥१॥

---

[1] देखो चुल्ल १§१।९ पृष्ठ ३४६ "तर्जनीय कर्म" के स्थानमें "बुरीधारणा न छोळनेसे उत्क्षेपणीय कर्म" तथा "पं डु क" और "लो हि त क" भिक्षुओंके स्थानमें "अमुक" नाम वाला भिक्षु करके पढ़ना चाहिये।

२—पारिवासिक-स्कंधक

१—परिवास दण्ड पाये भिक्षुके कर्त्तव्य । २—मूलसे-प्रतिकर्षण दंड पायेके कर्त्तव्य । ३—मानत्त्व दंड पायेके कर्त्तव्य । ४—मानत्त्व चार दंड पायेके कर्त्तव्य । ५—आह्वान पायेके कर्त्तव्य ।

§१—परिवास दण्ड पाये भिक्षुके कर्त्तव्य

१—*श्रावस्ती*

(१) पूर्व-कथा

उस समय वुद्ध भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे । उस समय पारिवासिक (=जिनको परिवास का दंड दिया गया है) भिक्षु प्रकृतात्म (=अदंडित) भिक्षुओंके अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथ जोड़ने, सामीचिकर्म (=कुशल-प्रश्न पूछने), आसन ले आना, शय्या ले आना, पादोदक, पाद-पीठ, पाद-कठलिक, पात्र-चीवर ले आना, स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामों)को लेते थे। जो वह अल्पेच्छ० भिक्षु थे, वे हैरान. . .होते थे—कैसे ये पारिवासिक भिक्षु अदंडित भिक्षुओंके अभिवादन० को लेते हैं !' तव भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही ।

तव भगवान्‌ने इसी संवंधमें, इसी प्रकरणमें भिक्षु-संघको एकत्रित कर भिक्षुओंसे पूछा ।—

"सचमुच भिक्षुओ ! ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् ।"

वुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—"कैसे पारिवासिक भिक्षु० !"

फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्‌ने भिक्षुओंको संवोधित किया—

(२) अदंडितके अभिवादन आदिको ग्रहण न करना चाहिये

"भिक्षुओ ! पारिवासिक भिक्षुको अदंडित भिक्षुओंसे अभिवादन० स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामों)को नहीं लेना चाहिये । जो ले उसको दुक्कटका दोष हो । भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ पारिवासिक भिक्षुओंको अपने भीतर वृद्धताके अनुसार अभिवादन० स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामों)को लेनेकी। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ पारिवासिक भिक्षुओंको पाँच (वातों) की—वृद्धताके अनुसार (१) उपोसथ, (२) प्रवारणा, (३) वार्षिक साटिका, (४) विसर्जन (=ओणोजना) और (५) (=भोजन भात) ।'

"तो भिक्षुओ ! पारिवासिक भिक्षुओंके, जैसे उन्हें वर्तना चाहिये (वह) व्रत विधान करता हूँ—

(३) पारिवासिकके व्रत

"भिक्षुओ ! पारिवासिक भिक्षुको ठीकसे वर्तना चाहिये । और वे ठीकसे वर्ताव यह हैं—

(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये; (२) निश्रय नहीं देना चाहिये; (३) श्रामणेरसे उपस्थान

(=सेवा) नहीं करानी चाहिये; (४) भिक्षुओ! भिक्षुणियोंका उपदेशक बनानेके प्रस्तावकी सम्मति नहीं स्वीकार करनी चाहिये (५) संघकी सम्मति मिल जानेपर भी भिक्षुणिओंको उपदेश नहीं देना चाहिये; (६) जिस आपत्ति (=अपराध)के लिये संघने परिवास दिया है, उस आपत्तिको नहीं करनी चाहिये; (७) या वैसी दूसरी (आपत्ति)को नहीं करना चाहिये; (८) या उससे बुरी (आपत्ति)को नहीं करना चाहिये; (९) कर्म=न्याय, फैसला')की निंदा नहीं करनी चाहिये (१०) कर्मिकों (=फ़ैसला करनेवालों)की निंदा नहीं करनी चाहिये; (११) प्रकृतात्म (=अदंडित) भिक्षुके उपोसथको स्थगित नहीं करना चाहिये; (१२) (०) की प्रवारणा स्थगित नहीं करनी चाहिये; (१३) बात बोलने लायक (काम) नहीं करना चाहिये; (१४) अनुवाद (=शिकायत) को नहीं प्रस्थापित करना चाहिये; (१५) अवकाश नहीं कराना चाहिये; (१६) दोषारोपण (=चोदना) नहीं करनी चाहिये; (१७)स्मरण नहीं कराना चाहिये; (१८)भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग(=मिश्रण)नहीं करना चाहिये।

"भिक्षुओ! पारिवासिक भिक्षुको अदंडित भिक्षुके सामने (१९) नहीं जाना चाहिये; (२०) न सामने बैठना चाहिये; (२१) संघका जो आसनका सामान; शय्याका सामान, विहारका सामान है, उसे देना चाहिये; और उसे इस्तेमाल करना चाहिये; (२२) भिक्षुओ! पारिवासिक भिक्षु अदंडित भिक्षुको आगे चलनेवाला या पीछे चलनेवाला भिक्षु बना, गृहस्थोंके घरमें नहीं जाना चाहिये; (२३) और न आरण्यकके काम (=नियम)को लेना चाहिये; (२४) न पिंडपातिक (=केवल भिक्षा माँगकर ही गुजारा करनेवाले)का ही नियम लेना चाहिये; (२५) न उसके लिये पिडपाँत (=भिक्षा) मँगवानी चाहिये; जिसमें कि वह उसके (=परिवास दिये जानेकी बातको) जान जायँ; (२६) भिक्षुओ। पारिवासिक भिक्षुको नई जगह जानेपर (अपने परिवासकी बातको) बतलाना चाहिये; (२७) नवागन्तुक(भिक्षु)को बतलाना चाहिये; (२८) उपोसथमें बतलाना चाहिये; (२९) प्रवारणमें बतलाना चाहिये; (३०) यदि रोगी है तो दूत-द्वारा कहलाना चाहिये।

"भिक्षुओ! अदंडित भिक्षुके साथ होने या बिना होनेके अतिरिक्त (३१) पारिवासिक भिक्षुको भिक्षु सहित आवाससे भिक्षु रहित आवास में नहीं जाना चाहिये; (३२)० भिक्षु सहित आवासमे भिक्षु-रहित अन्-आ वा स (=जो आश्रम भिक्षुओंके रहनेका नहीं है), में नहीं जाना चाहिये; (३३) ० भिक्षु सहित आवाससे भिक्षु रहित आवास या अन्-आवास में नहीं जाना चाहिये; (३४) ० भिक्षु सहित अनावाससे भिक्षु रहित आवासमें नहीं जाना चाहिये; (३५) ० भिक्षु सहित अन्-आवाससे भिक्षु रहित अन्-आवास में नहीं जाना चाहिये; (३६) ० भिक्षु सहित अन्-आवाससे भिक्षु रहित आवास या अन्-आवासमें नहीं जाना चाहिये; (३७)० भिक्षुसहित आवास या अन्-आवाससे भिक्षु रहित आवासमें नहीं जाना चाहिये; (३८)० भिक्षु सहित आवास या अन्-आवाससे भिक्षु-रहित अनावासमें नहीं जाना चाहिये;० (३९)भिक्षु सहित आवास या अनावाससे भिक्षु रहित आवास या अन्-आवासमें नहीं जाना चाहिये।

"भिक्षुओ! अदंडित भिक्षुके साथ होने या विघ्न होनेके अतिरिक्त पारिवासिक भिक्षुको (४०) भिक्षु सहित आवाससे जहाँ नाना आवासवाले भिक्षु रहते हैं उस भिक्षु सहित आवासमें नहीं जाना चाहिये; (४१) ० भिक्षु सहित आवाससे जहाँ नाना आवासवाले भिक्षु रहते हैं उस अन्-आवासमें नहीं जाना चाहिये; (४२)० भिक्षु सहित आवाससे,०[1] भिक्षु सहित आवास या अन्-आवासमें नहीं जाना चाहिये; (४३) भिक्षु सहित अन्-आवाससे ० भिक्षु सहित आवासमें नहीं जाना चाहिये। (४४) भिक्षु सहित अन्=आवाससे ० भिक्षु सहित आवासमें भिक्षु सहित अन्-आवासमें नहीं जाना चाहिये; (४५)० भिक्षु

[1]"जहाँ नाना आवास वाले भिक्षु रहते हैं" यह इस पैरामें हर जगह जोड़ना चाहिये।

सहित अन्-आवासमे,० भिक्षु-सहित आवास या अन्-आवासमें नहीं जाना चाहिये; (४६) ० भिक्षु-सहित आवास या अन्-आवाससे,० भिक्षु-सहित आवासमें नहीं जाना चाहिये; (४७) ० भिक्षु-सहित आवास या अन्आवाससे भिक्षु-सहित अनावासमें नहीं जाना चाहिये; (४८) ० भिक्षु-सहित आवास या अन्आवाससे, जहाँ अनेक आवासवाले भिक्षु हों वैसे भिक्षु-सहित आवास या अन्-आवासमें नहीं जाना चाहिये।

"भिक्षुओ! (४९) पारिवासिक भिक्षुको भिक्षु-सहित आवासमे, जहाँ एक आवासवाले भिक्षु हों और जिसके लिये जानता हो कि वहाँ आज ही पहुँच सकता हूँ वैसे भिक्षु-सहित आवासमें जाना चाहिये; (५०) ० भिक्षु-सहित आवासमे ०, भिक्षु-सहित अन्-आवासमें जाना चाहिये; (५१) ० भिक्षु-सहित आवासमे० भिक्षु-सहित आवास या अन्-आवासमें जाना चाहिये; (५२) ० भिक्षु-सहित अन्-आवासमे,० भिक्षु-सहित आवासमें जाना चाहिये; (५३) ० भिक्षु-सहित अन्-आवाससे,० भिक्षु-सहित अन्-आवासमें जाना चाहिये; (५४) ० भिक्षु-सहित अन्-आवाससे,० भिक्षु-सहित आवास या अन्-आवासमें जाना चाहिये; (५५) ० भिक्षु-सहित आवास या अन्-आवाससे,० भिक्षु-सहित आवासमें जाना चाहिये; (५६) ० भिक्षु-सहित आवास या अन्-आवाससे,० भिक्षु-सहित अनावासमें जाना चाहिये; (५७) ० भिक्षु-सहित आवास या अनावासमे,० भिक्षु-सहित आवास या अन्-आवासमें जाना चाहिये।

"भिक्षुओ! (५८) पारिवासिक भिक्षुको अदंडित भिक्षुके साथ, एक छतवाले आवासमें नहीं रहना चाहिये; (५९) ० एक छतवाले अन्-आवासमें नहीं रहना चाहिये; (६०) ० एक छतवाले आवास या अन्-आवासमें नहीं रहना चाहिये; (६१) अदंडित भिक्षुको देखकर आसनसे उठना चाहिये; आसनके लिये निमंत्रण देना चाहिये; एक साथ एक आसनपर नहीं बैठना चाहिये; (६२) अदंडित भिक्षुके नीचे आसनपर बैठे होनेसे ऊँचे आसनपर नहीं बैठना चाहिये; (०) पृथ्वीपर बैठा होनेपर आसनपर नहीं बैठना चाहिये; (६३) एक चंक्रमण (-टहलनेकी जगह)पर नहीं टहलना चाहिये; (०) नीचेके चंक्रमपर टहलते वक्त (स्वयं) ऊँचे चंक्रमपर नहीं टहलना चाहिये; (०) पृथ्वीपर टहलते वक्त (स्वयं) चंक्रमपर नहीं टहलना चाहिये।

"भिक्षुओ! (६४) पारिवासिक भिक्षुको अपनेसे वृद्ध पारिवासिक भिक्षुके साथ एक छत-वाले आवासमें नहीं रहना चाहिये; ० (६९) पारिवासिक भिक्षुको अपनेसे वृद्ध पारिवासिक भिक्षुके पृथ्वीपर टहलते वक्त (स्वयं) चंक्रमपर नहीं टहलना चाहिये।

"भिक्षुओ! (७०) पारिवासिक भिक्षुको अपनेसे वृद्ध मूलसेप्रतिकर्षणार्ह भिक्षुके साथ एक छतवाले आवासमें नहीं रहना चाहिये; ०।

"भिक्षुओ! (७६) पारिवासिक भिक्षुको अपनेसे वृद्ध मानत्वार्ह भिक्षुके साथ एक छतवाले आवासमें नहीं रहना चाहिये; ०[1]।

"भिक्षुओ! (८२) पारिवासिक भिक्षुको अपनेसे वृद्ध मानत्वचारिक भिक्षुके साथ एक छतवाले आवासमें नहीं रहना चाहिये; ०।

"भिक्षुओ! (८८) पारिवासिक भिक्षुको अपनेसे वृद्ध आह्वानार्ह भिक्षुके साथ एक छत-वाले आवासमें नहीं रहना चाहिये; ०[1] (९३) पारिवासिक भिक्षुको अपनेसे वृद्ध आह्वानार्ह भिक्षुके भूमिपर टहलते वक्त (स्वयं) चंक्रमपर नहीं टहलना चाहिये।

---

[1] इस पैरामें "जहाँ एक आवासवाले भिक्षु हों, और जिसके लिए जानता हो कि वहाँ आज ही पहुँच सकते हैं" सबमें दोहराना चाहिए।

"(९४) यदि भिक्षुओ ! पारिवासिकको चौथा बना (भिक्षु-संघ) परिवास दे, मूलसे-प्रतिकर्षण करे, मानत्व दे, या बीसवाँ (बना) आह्वान करे तो वह अकर्म (=अन्याय) है, करणीय नहीं है ।"[1]

पारिवासिकके चौरानबे व्रत समाप्त

(४) परिवासमें गिनी और न गिनी जानेवाली रातें

उस समय आयुष्मान् उ पा लि जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। एक ओर जा अभिवादन कर. . .एक ओर बैठ आयुष्मान् उपालिने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते पारिवासिक भिक्षुकी कौनसी रातें कट जाती हैं (=गिनतीमें नहीं आतीं) ?"

"उपालि ! पारिवासिक भिक्षुकी तीन रातें कट जाती हैं—(१) साथ वास[1] करना, (२) विप्र-वास (=अकेला निवास) ; (३) न बतलाना[2] —उपालि ! पारिवासिक भिक्षुकी ये तीन रातें कट [2]जाती हैं ।"

(५) परिवासका निक्षेप (=मुल्तबी रखना)

उस समय श्रा व स्ती में बळा भारी भिक्षु-संघ एकत्रित हुआ था (अपने पारिवासिकके कर्तव्योंको पालन करके) पारिवासिक भिक्षु परिवासको शुद्ध नहीं कर सकते थे। भगवान्से यह बात कही।

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ परिवासके निक्षेप (=स्थगित) करनेकी ।"4

और भिक्षुओ ! इस प्रकार निक्षेप करना चाहिये —वह पारिवासिक भिक्षु एक भिक्षुके पास जाकर एक कंधेपर उत्तरा-संगकर उकळूँ बैठ हाथ जोळ ऐसा कहे—

"परिवासका मैं निक्षेप करता हूँ, (तो) परिवासका निक्षेप हो जाता है। 'व्रतके (कर्तव्यका) निक्षेप करता हूँ ।'—(तो) परिवासका निक्षेप होता है ।"

(६) परिवासका समादान

उस समय भिक्षु श्रावस्तीसे जहाँ तहाँ चले गये। पारिवासिक भिक्षु परिवासको शुद्ध नहीं कर पाते थे। भगवान्से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, परिवासके समादान (=ग्रहण) की। और भिक्षुओ ! इस प्रकार समादान करना चाहिये—वह पारिवासिक भिक्षु एक भिक्षुके पास जाकर हाथ जोळ ऐसा कहे— 'परिवासका समादान करता हूँ;' (तो) परिवासका समादान हो जाता है। व्रतका समादान करता हूँ; (तो) परिवासका समादान हो जाता है ।" 5

पारिवासिक व्रत समाप्त

§२—मूलसे-प्रतिकर्षण दण्ड पाये भिक्षुके कर्त्तव्य

उस समय मूल से प्र ति क र्ष णा र्ह भिक्षु अर्दोत्त भिक्षुओंसे अभिवादन० स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामोंको) लेते थे ।०[3]

"भिक्षुओ ! प्रतिकर्षणार्ह भिक्षुको ठीकसे बर्तना चाहिये; और ये ठीकसे बर्ताव यह है—

"१—उपसम्पदा न देनी चाहिये; ०[3] (९४) यदि भिक्षुओ ! मूलसे प्र ति क र्ष णा र्ह

---

[1]देखो चुल्ल २§१।१ पृष्ठ ३६७। [2] चुल्ल २§१।३ (१) पृष्ठ ३६७-६८ "पारिवासिक"के स्थानपर "मूलसे-प्रतिकर्षणार्ह"—इस परिवर्तनके साथ। [3] देखो चुल्ल २§१ पृष्ठ ३६७-७०; "पारिवासिकके स्थानपर" मूलसे-प्रतिकर्षणार्ह," इस परिवर्तनके साथ।

भिक्षुको चौथा वना परिवास दे , मूलसे प्रतिकर्षण करे, मानत्व दे या बीसवाँ (वना) आह्वान करे, तो वह अकर्म है (=अन्याय)है, करणीय नहीं है ।" 6

मूलसे प्रतिकर्षणार्हके (चौरानबे) व्रत समाप्त

§३–मानत्त्व दण्ड पाये भिक्षुके कर्त्तव्य

उस समय मानत्वार्ह (=मानत्व दंड देने योग्य) भिक्षु अदंडित भिक्षुओंके अभिवादन० स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामोंको) लेते थे।०[1]।

"भिक्षुओ ! मानत्वार्ह भिक्षुको ठीकसे बर्तना चाहिये; और वे ठीकसे बर्ताव यह हैं—

"(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये; ० (९४) यदि भिक्षुओ ! मानत्वार्ह भिक्षुको चौथा वना परिवास दे, मानत्वार्ह करे, मानत्व दे या बीसवाँ (वन) आह्वान, करे, तो वह अकर्म (=न्याय-विरुद्ध) है करणीय नही है।" 7

मानत्त्वार्हके (चौरानबे) व्रत समाप्त

§४–मानत्त्वचार दण्ड पाये भिक्षुके कर्त्तव्य

उस समय मानत्वचारिक (=जिसको मानत्व चारका दंड दिया गया हो) भिक्षु अदंडित भिक्षुओंके अभिवादन० स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामोंको) लेते थे।०[2]।

"भिक्षुओ ! मानत्व-चारिक भिक्षुको ठीकसे बर्तना चाहिये और वे ठीकसे बर्ताव यह हैं—

"(१) उपसम्पदा देनी चाहिये;०[2] (९४) यदि भिक्षुओ ! मानत्व-चरिक भिक्षुको चौथा वना परिवास दे, मानत्व-चारिक करे, मानत्वदे, या बीसवाँ वना आह्वान करे, तो वह अकर्म है, करणीय नहीं है।" 8

मानत्त्वचारिकके (चौरानवे) व्रत समाप्त

§५–आह्वान पाये भिक्षुके कर्त्तव्य

उस समय आह्वानार्ह भिक्षु अदंडित भिक्षुओंके अभिवादन ०[3] स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामोंको) लेते थे। ०।

"भिक्षुओ ! आह्वानार्ह भिक्षुको ठीकसे वरतना चाहिये और वे ठीकसे बर्ताव यह हैं—

"१—उपसंपदा न देनी चाहिये; ०[4] (९४) यदि भिक्षुओ ! आह्वानार्ह भिक्षुको चौथा वना परिवास दे, मानत्वार्ह करे, मानत्व दे या वीसवाँ (वना) आह्वान् करे, तो वह अकर्म है, करणीय नहीं है।" 9

आह्वानार्हके (चौरानवे) व्रत समाप्त

पारिवासिक-स्कन्धक समाप्त ॥२॥

---

[1] देखो चुल्ल २§१।१ पृष्ठ ३६७।

[2] देखो चुल्ल २§१।१ पृष्ठ ३६७-७० 'पारिवासिक'के स्थानपर "मानत्व"के परिवर्तनके साथ।

[3] देखो चुल्ल २§१।१ पृष्ठ ३६७।

[4] देखो चुल्ल २§१।१ पृष्ठ ३६७-७० "पारिवासिक"के स्थानपर "आह्वानार्ह"के परिवर्तनके साथ।

३—समुच्चय-स्कंधक

१—शुक्र-त्यागके दण्ड। २—परिवास-दण्ड। ३—दुबारा उपसम्पदा लेनेपर पहिलेके बचे परिवास आदि दण्ड। ४—दण्ड भोगते समय नये अपराध करनेपर दण्ड। ५—मूलसे-प्रतिकर्षणमें शुद्धि। ६—अशुद्ध मूलसे-प्रतिकर्षण। ७—शुद्ध मूलसे-प्रतिकर्षण।

§१—शुक्र-त्यागके दण्ड

१—श्रावस्ती

क—(१) छ रातका मानत्व

१—उस समय बुद्ध भगवान् श्रा व स्ती में अ ना थ पिं डि क के आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् उ दा यी ने बे-ढँका (=अ प्र ति च्छ न्न) जान बूझ कर शुक्र-त्यागका दोष (=आपत्ति) किया था। उन्होंने भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो ! मैंने जान बूझकर शुक्र-त्याग की एक बे-ढँकी आपत्ति की है। मुझे कैसा करना चाहिये ?"

भगवान्‌से यह बात कही—

"तो भिक्षुओ ! संघ उदायीभिक्षुको० जान बूझ कर शुक्र-त्यागकी आपत्तिके लिये छ रातवाला मा न त्व दे।

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार देना चाहिये—उस उ दा यी भिक्षुको संघके पास जा एक कंधे पर उत्तरासंघ कर वृद्ध भिक्षुओंके चरणोंमें वंदना कर, उकळूँ बैठ हाथ जोळ यह कहना चाहिये—

'भन्ते ! मैंने बे-ढँकी जान बूझकर शुक्र-त्यागकी एक आ प त्ति की है। सो भन्ते ! मैं संघसे० बे-ढँकी जान बूझकर शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति के लिये छ रातवाला मानत्व मांगता हूँ। दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी०।'

"(२) 'दूसरी बार भी०।

"(३) 'तीसरी बार भी०।

"ग. धा र णा—'संघने उ दा यी भिक्षुको ० आपत्तिके लिये छ रातवाला मानत्व दिया। संघको पसंद है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।"

वह मानत्व[1] पूरा करके भिक्षुओंसे बोले—

"आवुसो! मैंने० शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की। तब मैंने संघसे० आपत्तिके लिये छ रातवाला मानत्व माँगा। तब संघने मुझे० आपत्तिके लिये छ रातवाला मानत्व दिया। अब मैंने मानत्वको पूरा कर दिया। अब मुझे कैसे करना चाहिये?"

क (२) मानत्त्वके बाद आह्वान

भगवान्से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ! संघ उदायी भिक्षुका आह्वान् करे।

"और भिक्षुओ! आह्वान इस प्रकार करना चाहिये—उस उ दा यी भिक्षुको संघके पास जा० ऐसा कहना चाहिये—भन्ते! मैंने० आपत्तिकी।० तब मैंने संघसे ० आपत्तिके लिये छ रातवाला मानत्व माँगा। तब संघने मुझे ० आपत्तिके लिये छ रातवाला मानत्व दिया। सो मैं भन्ते! मानत्वको पूराकर संघसे आह्वान माँगता हूँ। (दूसरी बार भी) भन्ते! मैंने० आपत्ति की।० आह्वान माँगता हूँ। (तीसरी बार भी) भन्ते! मैंने० आपत्ति की।० आह्वान मागता हूँ।'

"तब चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

"क. ज्ञ प्ति—'भन्ते! संघ मेरी सुने।० इस उदायी भिक्षुने० शुक्र-त्यागकी एक आपत्तिकी है०। वह संघसे० शुक्र-त्यागकी एक आपत्तिके लिये आह्वान माँगता है। यदि संघ उचित समझे तो संघ उदायी भिक्षुको० आह्वान—यह सूचना है।"

"ख. अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते! संघ मेरी सुने। इस उदायी भिक्षुने शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की है०। वह संघसे० आपत्तिके लिये आह्वान चाहता है। संघ उदायी भिक्षुको० आपत्तिके लिये आह्वान देता है। जिस आयुष्मान्‌को उदायी भिक्षुको० आपत्तिके लिये आह्वान देना पसंद है वह चुप रहे, जिसको नहीं पसंद है, वह बोले०।

"(२) 'दूसरी बार भी०।

"(३) 'तीसरी बार भी०।

"ग. धा र णा—'संघने उदायी भिक्षुको आह्वान कर दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।"

ख (१) एक दिनवाला परिवास

उस समय आयुष्मान् उदायीने जान बूझ कर एक दिन शुक्र-त्यागकी एक प्रतिच्छन्न (=छिपा रक्खी) आपत्ति की थी। उन्होंने भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो! मैंने जान बूझ कर एक दिन शुक्र-त्यागकी एक प्रतिच्छन्न आपत्ति की है। मुझे कैसे करना चाहिये?"

भगवान्‌ने यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ! संघ उदायी भिक्षुको० एक आपत्तिके लिये एक दिनवाला है परिवास दे।

[1] मानत्व पानेवालेके कर्तव्यके विषयमें देखो चुल्ल २§३ पृष्ठ ३७१।

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (परिवास) देना चाहिये—वह उदायी भिक्षु संघके पास जा० ऐसा बोले—

"'भन्ते ! मैंने० एक आपत्ति की है; सो मैं भन्ते ! संघसे० एक आपत्तिके लिये एकदिन वाला परिवास चाहता हूँ। (दूसरी बार भी)०। (तीसरी बार भी)०।'

"तब चतुर समर्थ भिक्षु-संघको सूचित करे—०।[1]

"ग. धा र णा—'संघने उदायि भिक्षुको० आपत्तिके लिये एकदिन वाला परिवास दिया। संघको पसंद है इसलिये चुप है, ऐसा मैं इसे समझता हूँ।"

(२) परिवासके बाद छ रातवाला मानत्त्व

तब उन्होंने परिवास पूरा करके भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो ! मैंने० एक आपत्तिकी।० संघसे० एक दिनका परिवास माँगा। संघने ० दिया। सो मैंने परिवास पूरा कर लिया। अब मुझे कैसा करना चाहिये ?"

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ ! संघ उ दा यी भिक्षुको जान बूझकर एकदिनवाले प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागके लिये छ रातवाला मानत्व दे।

"'और भिक्षुओ ! इस प्रकार छ रातवाला मानत्व देना चाहिये—उस उदायी भिक्षुको संघके पास जा०।'[1]

"ग. धा र णा—'संघने उ दा यी भिक्षुको० आपत्तिके लिये छ रातवाला मानत्व दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।"

(३) मानत्त्वके बाद आह्वान

वह मानत्व पूरा करके भिक्षुओंसे बोले—०।[2]

"तो भिक्षुओ ! संघ उ दा यी भिक्षुका आह्वान करे।०[2]। 5

"ग. धा र णा—'संघने उदायि भिक्षुको० आवाहन दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।"

ग (१) दो···पाँच दिनके छिपायेके लिये पाँच दिनका परिवास

'१—उस समय उदायी भिक्षुने जान बूझकर दो दिन वालेप्रतिच्छन्न (= छिपाया) शुक्र-त्यागकी आपत्ति की थी०।'[3]

२—उस समय उदायी भिक्षुने जान बूझकर तीन दिनवाले प्रतिच्छन्न०।[3]

३—उस समय उदायी भिक्षुने जान बूझकर चार दिनवाले प्रतिच्छन्न०।[3]

४—उस समय उदायी भिक्षुने जान बूझकर पाँच दिनवाले प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी आपत्ति की थी ०।

उन्होंने भिक्षुओंसे कहा—०।[4]

"तो भिक्षुओ ! संघ उदायी भिक्षुको० पाँच दिनवाला परिवास दे०[5]।" 6

---

[1] देखो चुल्ल ३§१।क पृष्ठ ३७२-३। [2] देखो चुल्ल ३§१।ख पृष्ठ ३७३।
[3] देखो एक दिनवाले प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी आपत्ति चुल्ल ३§१।ख१ पृष्ठ ३७३।
[4] देखो चुल्ल ३§१।ख पृष्ठ ३७३। [5] देखो चुल्ल ३§१।ख पृष्ठ ३७३-४८३।

"ग. धा र णा—'संघने उदायी भिक्षुको ० पाँच दिनवाला परिवास दिया। संघको पसंद है इसलिये चुप है— ऐसा मैं इसे समझता हूँ' ।"

(२) बीचमें फिर उसी दोषके लिये मूलसे-प्रतिकर्षण

उन्होंने परिवासके बीचमें जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी आपत्ति की। उन्होंने भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो ! मैंने ० पाँच दिनवाले प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी आपत्ति की थी ।० संघने० पाँच दिनवाला परिवास दिया। सो मैंने परिवासके बीचमें जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी आपत्तिकी है; मुझे कैसा करना चाहिये ?"

भगवान्‌से यह बात कही ।—

"तो भिक्षुओ ! संघ उदायी भिक्षुको एक आपत्तिके बीचमें जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण करे । 7

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार मूलसे-प्रतिकर्षण करना चाहिये ।—वह उदायी भिक्षु संघके पास जा० यह कहे—

" 'मैंने भन्ते ! ० पाँच दिनवाले प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की ।० संघने पाँच दिन वाला परिवास दिया। परिवासके बीचमें मैंने ० अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्तिकी। सो मैं भन्ते ! संघसे एक आपत्तिके बीच जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी आपत्तिके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण (दंड) माँगता हूँ। (दूसरी वार भी)०। (तीसरी वार भी) ०।० ।

"धारणा—'संघने उदायी भिक्षुको० एक आपत्तिके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण (दंड) दे दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ ।"

(३) फिर उसी दोषके लिये मूलसे-प्रतिकर्षण

उसने परिवास समाप्त कर मानत्वके योग्य होते हुए बीचमें जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की । उसने भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो ! मैंने० पाँच दिनवाले प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की ।० संघने ० पाँच दिनवाला परिवास दिया। मैंने परिवासके बीचमें० अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की ।० संघने० मूलसे-प्रतिकर्षण (दंड) दिया। सो परिवास पूरा करके मा न त्व के योग्य हो बीचमें मैंने जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की । मुझे कैसे करना चाहिये ?"

भगवान्‌से यह बात कही—

"तो भिक्षुओ ! उदायी भिक्षुको बीचमें जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्तिके लिये संघ मूलसे-प्रतिकर्षण दंड करे । 8

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार मू ल से प्र ति क र्ष ण (दंड) करना चाहिये—०[1]

"ग. धा र णा—'संघने उदायी भिक्षुको० एक आपत्तिके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण दंड दे दिया। संघको पसंद है, इस लिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ ।"

(४) तीनों दोषोंके लिये छ दिन-रातका मानत्त्व

उसने परिवास पूराकर ० भिक्षुओंसे कहा—

---

[1] मानत्व देनेकी तरह यहाँ भी सू च ना और अ नु श्रा व ण पढ़ना चाहिये; "छ रातका मानत्त्व"की जगह "मूलसे-प्रतिकर्षण" पढ़ना चाहिये। चुल्ल ३§१। क, पृष्ठ ३७२-३ ।

"आवुसो ! मैंने० पाँच दिनवाले शुक्र-त्यागका एक अपराध किया ।० संघने० (क) पाँच दिन का परिवास दिया ।० (ख) मूलसे प्रतिकर्षण (दंड) किया ।० (ग) मूलसे प्रतिकर्षण (दंड) किया । सो मैंने आवुसो ! परिवास पूरा कर लिया । मुझे कैसा करना चाहिये ।"

भगवान्से यह बात कही—

"तो भिक्षुओ ! उदायी भिक्षुको संघ तीनों आपत्तियोंके लिये छ रात का मानत्व दे । और इस प्रकार देना चाहिये—०[1] । 9

"ग. धारणा—'संघने उदायी भिक्षुको तीनों आपत्तियोंके लिये छ रातवाला मानत्व दिया । संघको पसंद है, इस लिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।"

(५) मानत्त्व पूरा करते फिर उसी दोषके करनेके लिये मूलसे-प्रतिकर्षणकर छ रातका मानत्त्व

उसने मानत्व पूरा करते बीचमें जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की ।०।—

"तो भिक्षुओ ! संघ उदायी भिक्षुको बीचमें० अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्तिके लिये मूलसे-प्रतिकर्षण कर छ रातका मानत्व दे; और भिक्षुओ ! इस प्रकार मूलसे-प्रतिकर्षण करे—०[2] । 10

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार छ रातवाला मानत्व देना चाहिये—०[3] ।"

(६) फिर वही करनेके लिये मूलसे-प्रतिकर्षण कर छ रातका मानत्त्व

उसने मानत्व पूराकर आह्वानके योग्य हो बीचमें जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की ।०।—

"तो भिक्षुओ ! संघ उदायी भिक्षुको बीचमें० अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्तिके लिये मूलसे प्रतिकर्षण कर, छ रातका मानत्व दे । और भिक्षुओ ! इस प्रकार मूलसे प्रतिकर्षण करे—०[2] ।" 11

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार छ रातका मानत्व दे—०[3] ।"

(७) दण्ड पूरा कर लेनेपर आह्वान

उन्होंने मानत्व पूराकर भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो ! मैंने० पाँच दिनके प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की ।० संघने० (क) पाँच दिनवाला परिवास दिया ।० (ख) मूलसे प्रतिकर्षण किया ।० (ग) मूलसे प्रतिकर्षण किया ।० (घ) मूलसे प्रतिकर्षण कर छ रातवाला मानत्व दिया । सो मैंने मानत्व पूरा कर लिया, अब मुझे कैसे करना चाहिये ?"

भगवान्से यह बात कही ।—

---

[1] देखो चुल्ल ३§१। क, पृष्ठ ३७२-३ ।

[2] याचनाके वक्त अबतककी आपत्तियोंको जोळ मानत्व देनेकी तरह यहाँ भी 'सूचना' और 'अनुश्रावण' पढ़ना चाहिये । "छ रातवाला मानत्व"की जगह "मूलसे-प्रतिकर्षण" पढ़ना चाहिये; वही पृष्ठ ३७२-३ ।

[3] याचनाके वक्त अबतककी आपत्तियोंको जोळ मानत्व देनेकी तरह यहाँ भी 'सूचना' और 'अनुश्रावण' पढ़ना चाहिए । वही पृष्ठ ३७२-३ ।

"तो भिक्षुओ ! संघ उदायी भिक्षुका आ ह्वा न करे। और भिक्षुओ ! इस प्रकार आह्वान करना चाहिये। 12

"उस उदायी भिक्षुको संघके पास जाकर ० यह कहना चाहिये—'भन्ते ! मैंने ० पाँच दिनके प्रतिच्छन्न शुक्रत्यागकी एक आपत्ति की। ० संघने (क) पाँच दिनवाला परिवास दिया। ० (ख) मूलसे-प्रतिकर्पण किया। ० (ग) मूलसे-प्रतिकर्षण किया। ० (घ) मूलसे-प्रतिकर्पण कर छ रातवाला मानत्त्व दिया। ० (ङ) मूलसे-प्रतिकर्पण कर छ रातवाला मानत्त्व दिया। सो भन्ते ! मैं मानत्त्व पूरा कर संघसे आ ह्वा न की याचना करता हूँ।'

"तब चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—०[1]

"ग. धा र णा—'संघने उ दा यी भिक्षुको आह्वान दे दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।"

घ (१) पक्षभर छिपायेके लिये पक्ष भरका परिवास

उस समय आयुष्मान् उदायीने जानबूझकर शुक्रत्यागकी एक प क्ष प्र ति च्छ न्न[2] आपत्ति की। उन्होंने भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो ! मैंने ० शुक्रत्यागकी एक पक्ष प्रतिच्छन्न आपत्ति की है। मुझे कैसे करना चाहिये ?"

भगवान्से यह बात कही—

"तो भिक्षुओ ! संघ उदायी भिक्षुको ० आपत्तिके लिये पक्षभरका परिवास दे। 13

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (परिवास) देना चाहिये—वह उदायी भिक्षु संघके पास जाकर ० ऐसा कहे—'० संघसे पक्षभरका परिवास माँगता हूँ।' तब चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—०[3]।

"ग. धा र णा—'संघने उदायी भिक्षुको ० आपत्तिके लिये पक्षभरका परिवास दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।"

(२) फिर पाँच दिन छिपाये उसी दोषके लिये मूलसे-प्रतिकर्षण कर समवधान-परिवास

उसने परिवास करते हुए बीचमें ० पाँच दिनकी प्रतिच्छन्न शुक्रत्यागकी एक आपत्ति की। भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो ! मैंने शुक्रत्यागकी एक प्रतिच्छन्न आपत्ति की। ० संघने पक्षभरका परिवास दिया। परिवास करते हुए मैंने बीचमें ० पाँच दिनकी शुक्रत्यागकी एक प्रतिच्छन्न आपत्ति की, अब मुझे कैसे करना चाहिये ?" ०।—

"तो भिक्षुओ ! संघ उदायी भिक्षुको पाँच दिनकी शुक्रत्यागकी एक प्रतिच्छन्न आपत्तिके लिये मूलसे प्रतिकर्पणकर प्रथमकी आपत्तिके लिये समवधान[4] परिवास दे। 14

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार मूलसे प्रतिकर्पण करना चाहिये—०[5]।

---

[1] देखो चुल्ल ३§१। ख, पृष्ठ ३७३-७५ (याचनामें ङ तककी बातोंका समावेश करके)।

[2] दोष करके पक्ष भर छिपा रखना।

[3] सूचना और अनुश्रावणके लिये देखो चुल्ल ३§१। क, पृष्ठ ३७२-३ ("छ रातवाला मानत्व"की जगह 'पक्ष भरका परिवास' पढ़ना चाहिये)।

[4] देखो पृष्ठ ३७८, ३७९, ३८५, ३८८, ३९१, ३९२।

[5] देखो चुल्ल ३§१। क, पृष्ठ ३७२-३ ('छ रातवाला मानत्त्व'के स्थानपर 'मूलसे-प्रतिकर्पण, रखकर)।

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार प्रथमकी आपत्तिके लिये समवधान परिवास देना चाहिये—०।"[1]

(३) फिर उसी आपत्तिके लिये मूलसे-प्रतिकर्षण दे समवधान-परिवास

उसने परिवास पूरा कर मानत्त्वके योग्य होनेपर बीचमें ० पाँच दिनकी शुक्रत्यागकी एक प्रतिच्छन्न आपत्ति की। भिक्षुओंसे कहा—

"० संघने (क) ० पक्षभरका परिवास दिया। ० (ख) मूलसे प्रतिकर्षणकर प्रथमकी आपत्तिके लिये समवधान-परिवास दिया। परिवास पूराकर मानत्त्वके योग्य होनेपर बीचमें मैंने पाँच दिनकी शुक्रत्यागकी एक प्रतिच्छन्न आपत्ति की। अब मुझे क्या करना चाहिये ?" ०।—

"तो भिक्षुओ ! संघ उदायी भिक्षुको, बीचकी ० पाँच दिनकी प्रतिच्छन्न शुक्रत्यागकी आपत्तिके लिये मूलसे प्रतिकर्षणकर प्रथमकी आपत्तिके लिये समवधान-परिवास दे। और इस प्रकार ० मूलसे प्रतिकर्षण करना चाहिये—०[2]। और इस प्रकार समवधान-परिवास देना चाहिये—०[2]।" 15

(४) फिर वही दोषकरनेके लिये समवधान-परिवास दे··रातका मानत्त्व

उसने मानत्त्वको पूरा करते समय बीचमें ०पाँच दिनके प्रतिच्छन्न शुक्रत्यागकी आपत्ति की।०।—

"तो भिक्षुओ ! संघ उदायी भिक्षुको ० मूलसे प्रतिकर्षणकर, प्रथमकी आपत्तिके लिये समवधान-परिवास दे, छ रातका मानत्त्व ०। 16

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार ० मूलसे प्रतिकर्षण करना चाहिये—०[2]। ० इस प्रकार समवधान-परिवास देना चाहिये—०[2]। ० इस प्रकार छः रातका मानत्त्व देना चाहिये—०[3]।"

(५) फिर वही दोष न करनेके लिये मूलसे-प्रतिकर्षणकर, समवधान-परिवास दे छ रातका मानत्त्व

उसने मानत्त्व पूराकर आह्वानके योग्य होनेपर बीचमें ० पाँच दिनकी प्रतिच्छन्न शुक्रत्यागकी आपत्ति की। ०।—

"तो भिक्षुओ ! संघ उदायी भिक्षुको ० मूलसे प्रतिकर्षणकर, प्रथमकी आपत्तिके लिये समवधान परिवास दे, छ रातका मानत्त्व दे। 17

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार ० मूलसे प्रतिकर्षण करना चाहिये—०[3]। ० इस प्रकार समवधान-परिवास देना चाहिये—०[3]। ० इस प्रकार छ रातका मानत्त्व देना चाहिये—०[3]।"

उसने मानत्त्व पूराकर भिक्षुओंसे कहा—

(६) मानत्त्व पूरा करनेपर आह्वान

"मैंने आवुसो ! ० एक आपत्ति की। ० संघने (क) पक्षभरका परिवास दिया। ० संघने (ख) मूलसे प्रतिकर्षणकर समवधान-परिवास दिया। ० संघने (ग) मूलसे प्रतिकर्षणकर समवधान-परिवास दिया। ० संघने (घ) मूलसे प्रतिकर्षणकर, ० समवधान-परिवास दे, ० छ रातका मानत्त्व दिया। ० संघने (ङ) मूलसे प्रतिकर्षणकर, ० समवधान-परिवास दे, ० छ रातका मानत्त्व दिया। सो मैंने मानत्त्व पूरा कर लिया, (अब) मुझे क्या करना चाहिये ?"

भगवान्‌से यह बात कही।—

---

[1]देखो चुल्ल ३§१।क, पृष्ठ ३७२-३ ('छ रातवाला मानत्व'के स्थानपर 'समवधान परिवास' रखकर)।

[2]देखो चुल्ल ३§१।क-ग, ८ पृष्ठ ३७३-७ (याचनामें पाँचों बारकी आपत्तियोंको जोड़कर)।

[3]देखो ऊपर।

"तो भिक्षुओ ! संघ उदायी भिक्षुका आह्वान करे। 18

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार आह्वान करना चाहिये—०[1] ।

"ग. धा र णा—'संघने उदायी भिक्षुका ० आह्वान कर दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ' ।"

शुक्र-त्याग समाप्त

§ २—परिवास दंड

(१) अनेक दिनोंके छिपानेसे बहुतसे संघादिसेसके दोषोंमें, छिपाये दिनके अनुसार-परिवास

क. १—उस समय एक भिक्षुने सं घा दि से सों की बहुतसी आपत्तियाँ की थीं—(जिनमेंसे) एक आपत्ति एक दिनकी प्रतिच्छन्न थी, एक आपत्ति दो दिनकी०, एक आपत्ति तीन दिनकी०, एक आपत्ति चार दिनकी०, एक आपत्ति पाँच दिनकी०, एक आपत्ति छ दिनकी०, ० सात दिनकी०, ० आठ दिनकी०, ० नौ दिनकी०, (और) एक आपत्ति दस दिनकी प्रतिच्छन्न थी। उसने भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो ! मैंने बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियाँ की हैं—(जिनमेंसे) एक आपत्ति एक दिनकी प्रतिच्छन्न है, ०, (और) एक आपत्ति दस-दस दिनकी प्रतिच्छन्न है। मुझे कैसा करना चाहिये ?"

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ ! संघ उस भिक्षुको, उन आपत्तियोंमें जो आपत्ति दस दिनकी प्रतिच्छन्न है, उसके योग्य स म व धा न - प रि वा स दे। 19

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (परिवास) देना चाहिये—उस भिक्षुको संघके पास जा ० ऐसा 'कहना चाहिये—० जो आपत्ति दस दिनकी प्रतिच्छन्न है, उसके योग्य समवधान-परिवास माँगता हूँ। दूसरी बार भी ०। तीसरी बार भी०। (तब) चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—०[2]

"धा र णा—'संघने अमुक नामवाले भिक्षुको, उन आपत्तियोंमें जो दस दिनकी प्रतिच्छन्न आपत्ति है, उसके योग्य समवधान-परिवास दे दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं (इसे) समझता हूँ' ।"

२—उस समय एक भिक्षुने सं घा दि से सों की बहुतसी आपत्तियाँ की थीं—(जिनमेंसे) एक आपत्ति एक दिनकी प्रतिच्छन्न थी, दो आपत्तियाँ दो दिनकी प्रतिच्छन्न थीं, तीन आपत्तियाँ तीन दिनकी०, चार आपत्तियाँ चार दिनकी०, पाँच आपत्तियाँ पाँच दिनकी०, छ आपत्तियाँ छ दिनकी०, सात आपत्तियाँ सात दिनकी०, आठ आपत्तियाँ आठ दिनकी०, नौ आपत्तियाँ नौ दिनकी०, (और) दस आपत्तियाँ दस दिनकी प्रतिच्छन्न थीं। उसने भिक्षुओंसे कहा—०।

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ ! संघ, उस (भिक्षुकी) आपत्तियोंमें जो सबसे अधिक देर तक प्रतिच्छन्न रही है, उसके योग्य समवधान-परिवास दे। 20

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (परिवास) देना चाहिये—० समवधान-परिवास माँगता हूँ।०।० संघको सूचित करे—०[2] ।"

---

[1] देखो चुल्ल ३§१। क, पृष्ठ ३७२-३।

[2] देखो चुल्ल ३§१। क, पृष्ठ ३७२-३ ('रातवाला मानत्त्व'की जगहपर 'समवधान-परिवास' पढ़ना चाहिये)।

३––उस समय एक भिक्षुने दो संघादिसेसोंकी दो मास तक चुप रक्खी गई (=प्रतिच्छन्न) दो आपत्तियाँ की थीं। उसको यह हुआ––'मैंने दो (तरहके) संघादिसेसोंकी दो मास तक प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की हैं। चलूँ, संघसे, ० दो मास प्रतिच्छन्न एक आपत्तिके लिये दो मासका परिवास माँगूँ। उसने संघसे दो मास प्रतिच्छन्न एक आपत्तिके लिये दो मासका परिवास माँगा। संघने उसे ० एक आपत्तिके लिये दो मासका परिवास दे दिया। परिवास करते वक्त उसे लज्जा आई––'मैंने ० दो आपत्तियाँ की हैं, और (पहिले) मुझे यह हुआ––० चलो संघसे दो मास प्रतिच्छन्न एक आपत्तिके लिये दो मासका परिवास माँगूँ। ० संघने मुझे ० एक आपत्तिके लिये दो मासका परिवास दे दिया। तब परिवास करने वक्त मुझे शरम मालूम हुई। चलूँ, संघसे दो मास प्रतिच्छन्न दूसरी आपत्तिके लिये भी दो मासका परिवास माँगूँ। उसने भिक्षुओंसे कहा––० ।

भगवान्‌से यह बात कही ।––

"तो भिक्षुओ! संघ उस भिक्षुको दो मास प्रतिच्छन्न दूसरी आपत्तिके लिये भी दो मासका परिवास दे। 21

"और भिक्षुओ! इस प्रकार (परिवास) देना चाहिये––० दो मासका परिवास माँगता हूँ।०।० संघको सूचित करे––०[1] ।

"ग. धा र णा––'० संघने अमुक नामवाले भिक्षुको ० दूसरी आपत्तिके लिये भी दो मासका परिवास दे दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है––ऐसा मैं इसे समझता हूँ' ।

"भिक्षुओ! उस भिक्षुको तबसे लेकर दो मास तक परिवास[2] करना चाहिये।" 22

४––"यदि भिक्षुओ! एक भिक्षुने दो संघादिसेसोंकी दो मास तक प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की हों। ०[3] । संघने उसे ० दोनों आपत्तिके लिये दो मासका परिवास दे दिया। ०[1] । संघने उस भिक्षुको ० दूसरी आपत्ति के लिये भी दो मासका परिवास दे दिया। तो भिक्षुओ! उस भिक्षको तबसे लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये। 23

५––"यदि भिक्षुओ! एक भिक्षुने दो संघादिसेसोंकी दो मास तक प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की हों। (वह उनमेंसे) एक आपत्तिको जानता है, दूसरीको नहीं जानता। वह जिस आपत्तिको जानता है उसके लिये...संघसे दो मासका परिवास माँगता है। संघ उस भिक्षुको ० दो मासका परिवास देता है। परिवास करते वक्त उसे दूसरी आपत्ति भी मालूम होती है। उसको ऐसा होता है––'मैंने ० दो आपत्तियाँ की हैं। (वह उनमेंसे) एक आपत्तिको मैंने जाना, दूसरीको नहीं जाना। मैंने जिस आपत्तिको जाना, उसके लिये...संघसे दो मासका परिवास माँगा। संघने मुझे ० दो मासका परिवास दे दिया। ० । परिवास करते वक्त (अब) मुझे दूसरी आपत्ति भी मालूम होती है। चलूँ, संघसे दो मास प्रतिच्छन्न दूसरी आपत्तिके लिये भी दो मासका परिवास माँगूँ।' वह संघसे ० दूसरी आपत्तिके लिये भी दो मासका परिवास माँगता है। उसे संघ ० दूसरी आपत्तिके लिये भी दो मासका परिवास देता है। तो भिक्षुओ! उस भिक्षुको तबसे लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये। 24

६––"यदि भिक्षुओ! एक भिक्षुने दो संघादिसेसोंकी दो मास तक प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की हैं। (उसे उनमेंसे) एक आपत्ति याद है, दूसरी याद नहीं है। उसे जो आपत्ति याद है, उसके लिये...

---

[1]देखो चुल्ल ३§१ पृष्ठ ३७२-३ ('छ रातवाला मानत्त्व'की जगहपर 'दो मासका परिवास' रखकर)।

[2]परिवास पानेवाले भिक्षुके कर्त्तव्यके लिये देखो चुल्ल ३§१ पृष्ठ ३७२-८० ।

[3]देखो चुल्ल ३§२।१ (३) पृष्ठ ३८० (३)।

संघसे दो मासका परिवास माँगता है। संघ ० दो मासका परिवास देता है। परिवास करते वक्त उसे दूसरी आपत्ति याद आती है। ०[१] । संघ उसे ० दूसरी आपत्तिके लिये भी दो मासका परिवास देता है। तो भिक्षुओ! उस भिक्षुको तबसे लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये। 25

७—"यदि भिक्षुओ! एक भिक्षुने दो संघादिसेसोंकी दो मास तक प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की हैं। उसे (उनमेंसे) एकके बारेमें सन्देह नहीं है, दूसरेके बारेमें सन्देह है। ०[२]। ० तबसे लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये। 26

८—"यदि भिक्षुओ! एक भिक्षुने दो संघादिसेसोंकी दो मास तक प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँकी हैं। (उनमेंसे) एकको जानबूझकर प्रतिच्छन्न (=चुप) रक्खी, दूसरीको अनजानसे। ०[२]। संघ ० दोनों आपत्तियोंके लिये दो मासका परिवास देता है। परिवास करते वक्त दूसरा बहुश्रुत, आगमज्ञ०[२] सीख चाहनेवाला भिक्षु आवे। वह ऐसा पूछे—'आवुसो! इस भिक्षुने क्या आपत्ति की, किसके लिये यह प रि वा स कर रहा है? वह ऐसा कहे—'आवुस! इस भिक्षुने ० दो आपत्तियाँ कीं। एकको जानबूझ-कर प्रतिच्छन्न रक्खा, दूसरीको अनजानसे। ०[२]। संघने ० दोनों आपत्तियोंके लिये दो मासका परिवास दिया है। आवुस! उन दो आपत्तियोंको इस भिक्षुने किया है उन्हींके लिये यह परिवास कर रहा है।' वह ऐसा कहे—'आवुसो! जो आपत्ति कि जानकर प्रतिच्छन्न रक्खी गई, उसके लिये परिवास देना धा र्मि क (=न्याय युक्त) है; (किन्तु) जो आपत्ति अनजाने प्रतिच्छन्न रक्खी गई, उसके लिये परिवास देना अ-धार्मिक (=अन्याय) है। अधार्मिक होनेसे (परिवास देना) उचित नहीं, आवुसो! (यह) भिक्षु एक आपत्तिके लिये मानत्त्व देने लायक (=मानत्त्वार्ह) है। 27

९—"यदि भिक्षुओ! ० एक आपत्ति याद रहते प्रतिच्छन्न रक्खी गई, दूसरी न याद रहते। वह संघसे ० दोनों आपत्तियोंके लिये दो मासका परिवास माँगता है। संघ ० देता है। परिवास करते वक्त दूसरा बहुश्रुत ० भिक्षु आता है। ०,[३] आवुसो! (यह) भिक्षु एक आपत्तिके लिये मा न त्त्व देने लायक है। 28

१०—"यदि भिक्षुओ! ० एक आपत्तिको संदेह न रहते प्रतिच्छन्न रक्खा, दूसरीको संदेहमें। वह संघसे ० दोनों आपत्तियोंके लिये दो मासका परिवास माँगता है। संघ ० देता है। परिवास करते वक्त दूसरा बहुश्रुत ० भिक्षु आता है। ०[३] आवुसो! यह भिक्षु एक आपत्तिके लिये मा न त्त्व देने लायक है।" 29

ख. १—उस समय एक भिक्षुने दो संघादिसेसोंकी दो मास प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की थीं। उसको ऐसा हुआ—० मैंने ० दो मास प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की हैं। चलूँ संघसे ० एक मास प्रतिच्छन्न एक आपत्तिके लिये एक मासका परिवास माँगूँ।' उसने संघसे ० दो मास प्रतिच्छन्न एक आपत्तिके लिये एक मासका परिवास माँगा। संघने उसे ० एक मासका परिवास दे दिया। परिवास करते वक्त उसे लज्जा आई—'०[४]। चलूँ संघसे मैं दूसरे मासका भी परिवास माँगूँ।' उसने भिक्षुओंसे कहा—०।

भगवान्‌ने यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ! संघ उस भिक्षुको दो मास प्रतिच्छन्न दोनों आपत्तियोंके लिये बाकी दूसरे मासका भी परिवास दे। 30

"और भिक्षुओ! इस प्रकार (परिवास) देना चाहिये—०[५]।

---

[१] ऊपर (४) की बात यहाँ भी समझो। [२] देखो पृष्ठ ३८०। [३] ऊपर (८) जैसा पाठ।
[४] देखो ऊपर पृष्ठ ३८० (३) की तरह।
[५] देखो पृष्ठ ३७२-३ ('छ रात वाला मानत्त्व' की जगह 'एक मासका परिवास' रखकर)।

"ग. धा र णा—संघने अमुक नामवाले भिक्षुको ० दूसरे मासका भी परिवास दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।'

"तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिले (मास)को लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये।" 31

२—"यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षुने दो संघादिसेसोंकी दो मास प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की हों। उसको ऐसा हो—'० चलूँ संघसे दोनों आपत्तियोंके लिये दूसरे मासका भी परिवास माँगूँ।०।—

"तो भिक्षुओ ! संघ उस भिक्षुको दो मास प्रतिच्छन्न दोनों आपत्तियोंके लिये बाकी दूसरे मासका भी परिवास दे। और ० भिक्षुको पहिले (परिवास दिये मास)को लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये।" 32

३—"० एक मासको जानता हो, दूसरे मासको नहीं ०[1]। परिवास करते वक्त उसे दूसरा मास भी मालूम हो। '० चलूँ संघसे ० दूसरे मासका भी परिवास माँगूँ।०।०।० पहिलेको लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये। 33

४—"० एक मासको याद रखता हो, दूसरे मासके बारेमें नहीं ०[2]। परिवास करते वक्त उसे दूसरा मास भी याद आये।—० चलूँ संघसे ० दूसरे मासका भी परिवास माँगूँ।०।०।० पहिलेको लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये। 34

५—"० एक मासके बारेमें सन्देह हो, दूसरे मासके बारेमें नहीं ०।[3] परिवास करते वक्त वह दूसरे मासके बारेमें भी सन्देह-रहित हो जाये।—० चलूँ, संघसे ० दूसरे मासका भी परिवास माँगूँ।०।०।० पहिलेको लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये। 35

६—"० एक मासको जानबूझकर प्रतिच्छन्न रक्खा गया हो, दूसरेको अनजानसे। वह संघसे ० दोनों आपत्तियोंके लिये दो मासका परिवास माँगे। संघ उसे दो मास प्रतिच्छन्न दोनों आपत्तियोंके लिये दो मासका परिवास दे। परिवास करते वक्त दूसरा बहुश्रुत ०[4] भिक्षु आवे। वह ऐसा पूछे—'आवुसो ! इस भिक्षुने क्या आपत्ति की, किसके लिये यह परिवास कर रहा है ?' वह ऐसा कहे—'आवुस ! इस भिक्षुने ० दो मास प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ कीं। इसने एक मासको जानबूझकर प्रतिच्छन्न (=छिपा) रक्खा, दूसरेको अनजान से। ०[4] संघने दो मासका परिवास दिया है। आवुस ! उन आपत्तियोंको इस भिक्षुने किया है, उन्हींके लिये यह परिवास कर रहा है।' वह ऐसा कहे—'आवुसो ! जिस मासको जान कर इसने प्रतिच्छन्न किया, उसके लिये परिवास देना धार्मिक है; (किन्तु) जिस मासको अनजाने प्रतिच्छन्न किया, उसके लिये परिवास देना अधार्मिक है। अधार्मिक होनेसे (परिवास देना) उचित नहीं, आवुसो ! (यह) भिक्षु एक मासके लिये मा न त्व देने लायक है।' 36

७—"० एक मासके याद रहते प्रतिच्छन्न रक्खा गया हो, दूसरेको न याद रहनेसे। वह संघसे दोनों आपत्तियोंके लिये दो मासका परिवास माँगे। ०[5]। परिवास करते वक्त दूसरा बहुश्रुत ० भिक्षु आवे। ०[5], आवुसो ! (यह) भिक्षु एक आपत्तिके लिये मा न त्व देने लायक है। 37

८—"० एक मासको सन्देह न रहते प्रतिच्छन्न रक्खा गया हो, दूसरेको सन्देह रहते। वह संघसे दोनों आपत्तियोंके लिये दो मासका परिवास माँगे। ०[6]। परिवास करते वक्त दूसरा बहुश्रुत ० भिक्षु आवे। ०[6], आवुसो ! (यह) भिक्षु एक आपत्तिके लिये मानत्त्व देने लायक है।" 38

---

[1] देखो ऊपर (२) और पृष्ठ ३८० (५)।
[2] देखो ऊपर (३) और पृष्ठ ३८०-१ (६)। [3] देखो ऊपर (३) और पृष्ठ ३८१।
[4] देखो पृष्ठ ३८१ (८)। [5] देखो ऊपर (६) और पृष्ठ ३८१ (९)।
[6] देखो ऊपर और पृष्ठ ३८१ (१०)।

(२) शुद्धान्त-परिवास

उस समय एक भिक्षुने बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियाँ की थीं। वह आपत्तिके पर्यन्त (=परिमाण, संख्या)को नहीं जानता था, रातके परिमाणको नहीं जानता था। आपत्तिके परिमाणको याद न रखता था, रातके परिमाणको याद न रखता था। आपत्तिके परिमाणमें सन्देह रखता था, रातके परिमाणमें सन्देह रखता था। उसने भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो ! मैंने बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियाँ की हैं।० आपत्तिके परिमाणमें सन्देह रखता हूँ, रातके परिमाणमें सन्देह रखता हूँ। मुझे कैसे करना चाहिये।"

भगवान्से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ ! संघ उस भिक्षुको शुद्धान्त परिवास दे। 39

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (शुद्धान्त-परिवास) देना चाहिये। वह भिक्षु संघके पास जा ०[1] ऐसा कहे—० मैं संघसे उन आपत्तियोंके लिये शुद्धान्त-परिवास माँगता हूँ। दूसरी वार भी ०। तीसरी वार भी०। (तब) चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—०[1]।

"ग. धा र णा—'संघने अमुक नामवाले भिक्षुको उन आपत्तियोंके लिये शु द्धा न्त - प रि वा स दे दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।"

(३) शुद्धान्त-परिवास देने योग्य

"भिक्षुओ ! इस प्रकार शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये। भिक्षुओ ! किसको शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये ?—(१) आपत्तिके परिमाणको नहीं जानता, (जिन रातोंमें उससे आपत्ति हुई उन) रातोंके परिमाण (=संख्या)को नहीं जानता।० नही याद रखता ०। आपत्तिके परिमाणमें सन्देह रखता है, रातके परिमाणमें सन्देह रखता है। (ऐसेको) शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये। (२) आपत्तिके परिमाणको जानता है, रातके परिमाणको नहीं जानता। आपत्तिके परिमाणको याद रखता है, रातके परिमाणको याद नहीं रखता। आपत्तिके परिमाणमें सन्देह नहीं रखता, रातके परिमाणमें सन्देह रखता है। (ऐसेको) शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये। (३) आपत्तिके परिमाणको नहीं जानता, रातोंमें किसी किसीको जानता है किसी किसीको नहीं जानता।० नहीं याद रखता, ० किसी किसीको नहीं याद रखता।० सन्देह रखता है, रातोंमें किसी किसीके बारेमें सन्देह रहित है, किसी किसीमें सन्देह रखता है। ऐसेको शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये। (४) आपत्तिके परिमाणको जानता है रातोंमें किसीको जानता है, किसी किसीको नहीं।० याद रखता है, ० किसी किसीको नहीं।० सन्देह नहीं रखता, ० किसी किसीके बारेमें सन्देह रखता है। (ऐसेको) शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये। (५) आपत्तियोंमेंसे किसी किसीको जानता है, किसी किसीको नहीं जानता, रातोंमें किसी किसीको जानता है, किसी किसीको नहीं। आपत्तियोंमेंसे किसी किसीको याद रखता ०। आपत्तियोंमेंसे किसी किसीके बारेमें सन्देह रखता है किसी किसीके बारेमें सन्देह नहीं रखता, रातोंमें किसी किसीके बारेमें सन्देह रखता है, किसी किसीके बारेमें सन्देह नहीं रखता। (ऐसेको) शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये। भिक्षुओ ! ऐसे शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये।" 40

(४) परिवास देने योग्य व्यक्ति

"भिक्षुओ ! कैसे प रि वा स देना चाहिये ?—(१) आपत्तियोंके परिमाणको जानता है, रातके परिमाणको जानता है।० याद रखता है ०।०सन्देह-रहित होता है। (२) आपत्तिके परिमाणको नहीं

[1]देखो चुल्ल ३§१।८ पृष्ठ ३७२-३ ('छ रातवाला मानत्त्व'की जगह 'शुद्धान्त-परिवास' रखकर)।

जानता, रातके परिमाणको जानता है। ० नहीं याद रखता, ० याद रखता है। ० निस्सन्देह होना है, ० सन्देह-युक्त होता है। (३) आपत्तिके परिमाणमें कुछ जानता है कुछ नहीं जानना; रातके परिमाणको जानता हैं। ० कुछ नहीं याद रखता; ० याद रखता है। ० कुछ सन्देह रखना है; ० सन्देह नहीं रखना। (ऐसेको) परिवास देना चाहिये। भिक्षुओ। इस प्रकार परिवास देना चाहिये।" 41

परिवास-समाप्त

§३—दुबारा उपसम्पदा लेनेपर पहिलेके बचे परिवास आदि दंड

(१) शेष परिवास

(१) उस समय एक भिक्षु परिवास करते वक्त भिक्षु वेष छोड़ चला गया। उसने फिर आकर भिक्षुओंसे उपसम्पदा माँगी। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! यदि कोई भिक्षु परिवास करते वक्त भिक्षु वेष छोड़ चला गया हो, और वह फिर आकर भिक्षुओंसे उपसम्पदा माँगे। भिक्षु वेष छोड़ गये के लिये भिक्षुओ! परिवास नहीं रहता। यदि वह फिर उपसम्पदा लेना चाहे, तो उसे वही पहिला परिवास देना चाहिये। पहिलेका दिया परिवास ठीक है, जितना परिवास पूरा हो गया, वह (भी) ठीक; बाकी (समय)के लिये परिवास करना चाहिये। 42

(२) "० परिवास करते वक्त (भिक्षुपन छोड़) श्रामणेर बन जाये। श्रामणेरके लिये भिक्षुओ! परिवास नहीं रहता। यदि वह फिर उपसम्पदा लेना चाहे, तो उसे वही पहिला परिवास देना चाहिये।०[1]। 43

(३) "० परिवास करते पागल हो जाये। पागलको ० परिवास नहीं रहता। यदि फिर उसका पागलपन हट जाये, तो उसे वही पहिला परिवास देना चाहिये।०[1]। 44

(४) "० परिवास करते विक्षिप्त हो जाये। विक्षिप्त-चित्तको परिवास नहीं रहता। यदि वह फिर अविक्षिप्त चित्त हो, तो उसे वही पहिला परिवास देना चाहिये।०[1]। 45

(५) "० परिवास करते वे द न ट्ट (=वदहवास) हो जाये।०[1]। 46

(६) "० परिवास करते आपत्तिके न देखनेसे उ त्क्षि प्त क[2] हो जाये।०[1]।" 47

(७) "० परिवास करते आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये।०[1]। 48

(८) "० परिवास करते बुरी दृष्टिके न छोड़नेसे उत्क्षिप्तक[2] हो जाये।०[1]।" 49

(२) मूलसे-प्रतिकर्षण

(९) भिक्षुओ! कोई भिक्षु मूलसे-प्रतिकर्षणके योग्य हो भिक्षु-वेष छोड़ चला जाये, और वह फिर आकर उपसम्पदा लेना चाहे। भिक्षु-वेष छोड़कर चले गयेको मूलसे-प्रतिकर्षण नहीं रहता। यदि वह फिर उपसम्पदा लेना चाहे, तो उसे वही परिवास देना चाहिये। पहिलेका दिया परिवास ठीक है, जितना परिवास पूरा हो गया वह (भी) ठीक है, उस भिक्षुको मूलसे प्रतिकर्षण करना चाहिये। 50

(१०) "० श्रामणेर हो जाये, ०[3]। 51

(११) "० पागल हो जाये०[3]। 52

(१२) " विक्षिप्त-चित्त हो जाये०[3]। 53

(१३) "० वेदनट्ट हो जाये०[3]। 54

(१४) "० आपत्तिके न देखनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये०[3]। 55

[1] ऊपर (१) जैसा। [2] देखो महावग्ग ९§४।५ पृष्ठ ३१८। [3] ऊपर (१) की भाँति।

(१५) "० आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये०[1] । 56

(१६) "० बुरी दृष्टिके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये०[1] ।" 57

(३) मानत्त्व

(१७) "भिक्षुओ ! यदि कोई भिक्षु मानत्त्वके योग्य हो भिक्षु-वेष छोळ चला जाये और वह फिर आकर उपसम्पदा लेना चाहे ।० भिक्षु-वेष छोळ गयेको मानत्त्व नहीं। यदि वह फिर उपसम्पदा लेना चाहे, तो उसके लिये वही पहिला परिवास हो। पहिलेका दिया परिवास ठीक है, जितना परिवास पूरा हो गया वह (भी) ठीक है। उस भिक्षुको मानत्त्व देना चाहिये । 59

(२४) "० बुरी दृष्टिके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये०[2] ।" 60

(४) मानत्त्वचरण

(२५) "भिक्षुओ ! यदि कोई भिक्षु मा न त्त्व का आचरण करते भिक्षु-वेप छोळ चला जाये; ०[2] । 67

(३२) "० बुरी दृष्टिके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये० ।" 68

(५) आह्वान

(३३) "भिक्षुओ ! यदि कोई भिक्षु आह्वानके योग्य हो भिक्षु-वेष छोळ चला जाये; ०[2] । 69

(४०) "० बुरी दृष्टिके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये०[3] ।" 76

चौवालीस समाप्त

§४—दंड भोगते समय नये अपराध करनेपर दंड

क. परिवास—

(१) मूलसे-प्रतिकर्षण

(१) "यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षु परिवास करते समय बीचमें अ-प्रतिच्छन्न[4] परिमाण-वाली बहुतसी सं घा दि से स की आपत्तियाँ करे, तो उस भिक्षुका मूलसे-प्रतिकर्षण करना चाहिये ।" 77

(२) "० प्रतिच्छन्न (और) परिमाणवाली बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियाँ करे, तो उस भिक्षुका मूलसे प्रतिकर्षण करना चाहिये, प्रतिच्छन्नोंके आपत्तियोंके अनुसार प्रथम आपत्तिके लिये स म व धा न प रि वा स देना चाहिये । 78

(३) "० प्रतिच्छन्न या अ-प्रतिच्छन्न (किन्तु) परिमाणवाली बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियाँ करे, तो उस भिक्षुका मूलसे-प्रतिकर्षण करना चाहिये, ०[4] । 79

(४) "० अ-प्रतिच्छन्न (और) अ-परिमाण०[5] । 80

(५) "० अपरिमाण (और) प्रतिच्छन्न०[5] । 81

(६) "० अपरिमाण, प्रतिच्छन्न भी अ-प्रतिच्छन्न भी०[5] । 82

(७) "० परिमाणवाली भी अ-परिमाण भी (किन्तु) अप्रतिच्छन्न०[5] । 83

(८) "० परिमाणवाली भी अ-परिमाण भी (किन्तु) प्रतिच्छन्न०[5] । 84

(९) "० परिमाणवाली भी, अ-परिमाण भी, प्रतिच्छन्न भी, अप्रतिच्छन्न भी०[5] ।" 85

---

[1] ऊपर (१) की भाँति । [2] ऊपर आये मूलसे-प्रतिकर्षणकी भाँति । [3] देखो ऊपर (३) मानत्त्व । [4] दोपको छिपाना । [5] देखो ऊपर (१) ।

जानता, रातके परिमाणको जानता है। ० नहीं याद रखता, ० याद रखता है। ० निस्सन्देह होता है, ० सन्देह-युक्त होता है। (३) आपत्तिके परिमाणमें कुछ जानता है कुछ नहीं जानता; रातके परिमाणको जानता है। ० कुछ नहीं याद रखता; ० याद रखता है। ० कुछ सन्देह रखता है; ० सन्देह नहीं रखता। (ऐसेको) परिवास देना चाहिये। भिक्षुओ! इस प्रकार परिवास देना चाहिये।" 41

परिवास-समाप्त

§३—दुबारा उपसम्पदा लेनेपर पहिलेके बचे परिवास आदि दंड

(१) शेष परिवास

(१) उस समय एक भिक्षु परिवास करते वक्त भिक्षु वेष छोड़ चला गया। उसने फिर आकर भिक्षुओंसे उपसम्पदा माँगी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! यदि कोई भिक्षु परिवास करते वक्त भिक्षु वेष छोड़ चला गया हो, और वह फिर आकर भिक्षुओंसे उपसम्पदा माँगे। भिक्षु वेष छोड़ गये के लिये भिक्षुओ! परिवास नहीं रहता। यदि वह फिर उपसम्पदा लेना चाहे, तो उसे वही पहिला परिवास देना चाहिये। पहिलेका दिया परिवास ठीक है, जितना परिवास पूरा हो गया, वह (भी) ठीक; बाकी (समय)के लिये परिवास करना चाहिये। 42

(२) "० परिवास करते वक्त (भिक्षुपन छोड़) श्रामणेर बन जाये। श्रामणेरके लिये भिक्षुओ! परिवास नहीं रहता। यदि वह फिर उपसम्पदा लेना चाहे, तो उसे वही पहिला परिवास देना चाहिये।०[1]। 43

(३) "० परिवास करते पागल हो जाये। पागलको ० परिवास नहीं रहता। यदि फिर उसका पागलपन हट जाये, तो उसे वही पहिला परिवास देना चाहिये। ०[1]। 44

(४) "० परिवास करते विक्षिप्त हो जाये। विक्षिप्त-चित्तको परिवास नहीं रहता। यदि वह फिर अविक्षिप्त चित्त हो, तो उसे वही पहिला परिवास देना चाहिये। ०[1]। 45

(५) "० परिवास करते वे द न ट्ट (=वदहवास) हो जाये। ०[1]। 46

(६) "० परिवास करते आपत्तिके न देखनेसे उ त्क्षि प्त क[2] हो जाये। ०[1]।" 47

(७) "० परिवास करते आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये। ०[1]। 48

(८) "० परिवास करते बुरी दृष्टिके न छोड़नेसे उत्क्षिप्तक[2] हो जाये। ०[1]।" 49

(२) मूलसे-प्रतिकर्षण

(९) भिक्षुओ! कोई भिक्षु मूलसे-प्रतिकर्षणके योग्य हो भिक्षु-वेष छोड़ चला जाये, और वह फिर आकर उपसम्पदा लेना चाहे। भिक्षु-वेष छोड़कर चले गयेको मूलसे-प्रतिकर्षण नहीं रहता। यदि वह फिर उपसम्पदा लेना चाहे, तो उसे वही परिवास देना चाहिये। पहिलेका दिया परिवास ठीक है, जितना परिवास पूरा हो गया वह (भी) ठीक है, उस भिक्षुको मूलसे प्रतिकर्षण करना चाहिये। 50

(१०) "० श्रामणेर हो जाये, ०[3]। 51

(११) "० पागल हो जाये०[3]। 52

(१२) " विक्षिप्त-चित्त हो जाये०[3]। 53

(१३) "० वेदनट्ट हो जाये०[3]। 54

(१४) "० आपत्तिके न देखनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये०[3]। 55

---

[1] ऊपर (१) जैसा। [2] देखो महावग्ग ९§४।५ पृष्ठ ३१९। [3] ऊपर (१) की भाँति।

(१५) "० आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये०[1] । 56

(१६) "० बुरी दृष्टिके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये०[1] ।" 57

(३) मानत्त्व

(१७) "भिक्षुओ ! यदि कोई भिक्षु मानत्त्वके योग्य हो भिक्षु-वेष छोळ चला जाये और वह फिर आकर उपसम्पदा लेना चाहे ।० भिक्षु-वेष छोळ गयेको मानत्त्व नहीं। यदि वह फिर उपसम्पदा लेना चाहे, तो उसके लिये वही पहिला परिवास हो। पहिलेका दिया परिवास ठीक है, जितना परिवास पूरा हो गया वह (भी) ठीक है। उस भिक्षुको मानत्त्व देना चाहिये । 59

(२४) "० बुरी दृष्टिके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये०[2] ।" 60

(४) मानत्त्वचरण

(२५) "भिक्षुओ ! यदि कोई भिक्षु मा न त्त्व का आचरण करते भिक्षु-वेष छोळ चला जाये; ०[2] । 67

(३२) "० बुरी दृष्टिके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये० ।" 68

(५) आह्वान

(३३) "भिक्षुओ ! यदि कोई भिक्षु आह्वानके योग्य हो भिक्षु-वेष छोळ चला जाये; ०[2] । 69

(४०) "० बुरी दृष्टिके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये०[3] ।" 76

चौवालीस समाप्त

§४—दंड भोगते समय नये अपराध करनेपर दंड

क. परिवास—

(१) मूलसे-प्रतिकर्षण

(१) "यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षु परिवास करते समय बीचमें अ-प्रतिच्छन्न[4] परिमाण-वाली बहुतसी सं घा दि से स की आपत्तियाँ करे, तो उस भिक्षुका मूलसे-प्रतिकर्षण करना चाहिये।" 77

(२) "० प्रतिच्छन्न (और) परिमाणवाली बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियाँ करे, तो उस भिक्षुका मूलसे प्रतिकर्षण करना चाहिये, प्रतिच्छन्नोंके आपत्तियोंके अनुसार प्रथम आपत्तिके लिये स म व धा न प रि वा स देना चाहिये । 78

(३) "० प्रतिच्छन्न या अ-प्रतिच्छन्न (किन्तु) परिमाणवाली बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियाँ करे, तो उस भिक्षुका मूलसे-प्रतिकर्षण करना चाहिये, ०[4] । 79

(४) "० अ-प्रतिच्छन्न (और) अ-परिमाण०[5] । 80

(५) "० अपरिमाण (और) प्रतिच्छन्न०[5] । 81

(६) "० अपरिमाण, प्रतिच्छन्न भी अ-प्रतिच्छन्न भी०[5] । 82

(७) "० परिमाणवाली भी अ-परिमाण भी (किन्तु) अप्रतिच्छन्न०[5] । 83

(८) "० परिमाणवाली भी अ-परिमाण भी (किन्तु) प्रतिच्छन्न०[5] । 84

(९) "० परिमाणवाली भी, अ-परिमाण भी, प्रतिच्छन्न भी, अप्रतिच्छन्न भी०[5] ।" 85

---

[1] ऊपर (१) की भाँति । [2] ऊपर आये मूलसे-प्रतिकर्षणकी भाँति । [3] देखो ऊपर (३) मानत्त्व । [4] दोषको छिपाना । [5] देखो ऊपर (१) ।

(२) मानत्त्वार्ह

(१०) "यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षु मानत्त्वके योग्य होते समय वीचमें अप्रतिच्छन्न (=प्रकट), परिमाणवाली वहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियाँ करे, तो उस भिक्षुका मूलसे-प्रतिकर्पण करना चाहिये ०[१] । 99

(१६) "० परिमाणवाली भी, अपरिमाणवाली भी, प्रतिच्छन्न भी, अप्रतिच्छन्न भी०[१] ।" 103

(३) मानत्त्वचारिक

(१७) "० एक भिक्षु मानत्त्वका आचरण करते समय वीचमें०[१] । 112

(२८) "० परिमाणवाली भी, अपरिमाणवाली भी, प्रतिच्छन्न भी, अप्रतिच्छन्न भी०[२] ।" 121

(४) आह्वानार्ह

(२९) "० एक भिक्षु आह्वानके योग्य होते (=आह्वानार्ह) समय वीचमें०[२] । 130

(३७) "० परिमाणवाली भी, अपरिमाणवाली भी, प्रतिच्छन्न भी, अप्रतिच्छन्न भी०[२] ।" 139

छत्तीस समाप्त

ख. मानत्त्व—

(१) गृहस्थ वन जाना

क. (१) "भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षु वहुतसी सं घा दि से स की आपत्तियोंको करके (उन्हें) न छिपा गृहस्थ वन जाता है। वह फिर उ प स म्प दा पाकर उन आपत्तियोंका प्रतिच्छादन नहीं करता, तो भिक्षुओ! उस भिक्षुको मानत्त्व देना चाहिये । 140

(२) "० प्रतिच्छादन न कर भिक्षु-वेप छोळ चला जाता है । वह फिर उपसम्पदा पाकर उन आपत्तियोंका प्रतिच्छादन करता है, तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिलेके आपत्तिसमुदायमें प्रतिच्छन्न (आपत्तियों)की भाँति परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये । 141

(३) "० प्रतिच्छादनकर० । ० उन आपत्तियोंको नहीं प्रतिच्छादन करता; ० परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये । 142

(४) "० प्रतिच्छादन कर० । ० उन आपत्तियोंको प्रतिच्छादन करता है; ० उस भिक्षुको पहिलेके भी और पीछेके भी आपत्ति-स्कंधमें प्रतिच्छन्नकी भाँति परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये। 143

(५) "० प्रतिच्छादन कर भी, अ-प्रतिच्छादन कर भी० । पहिले प्रतिच्छादित की गई आपत्तियोंका फिर प्रतिच्छादन नहीं करता, पहिले अ-प्रतिच्छादित की गई आपत्तियोंका अ-प्रतिच्छादन करता है; तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिलेके आपत्ति-स्कंधमें प्रतिच्छन्नकी भाँति परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये । 144

(६) "० प्रतिच्छादन कर भी, अप्रतिच्छादन कर भी० । पहिले प्रतिच्छादित की गई आपत्तियोंका फिर प्रतिच्छादन नहीं करता, पहिले प्रतिच्छादित न की गई आपत्तियोंका अव प्रतिच्छादन करता है, तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिलेके भी और अवके भी आपत्ति-समूहमें प्रतिच्छन्नकी भाँति परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये। 145

---

[१] परिवासकी तरह यहाँ भी समझो ।

[२] पृष्ठ ३८५ में परिवास (१-९) की भाँति यहाँ भी समझो ।

(७) "० प्रतिच्छादन कर भी, अ-प्रतिच्छानद कर भी० । पहिले प्रतिच्छादित की गई आपत्तियों का अब भी प्रतिच्छादन करता है, पहिले अ-प्रतिच्छादित आपत्तियोंका अब भी प्रतिच्छादन नहीं करता । तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिलेके भी और अबके भी आपत्ति-स्कंधमें प्रतिच्छादनकी भाँति परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये । 146

(८) "० छिपाकर भी, न छिपाकर भी० । पहिले छिपाई गई आपत्तियोंको भी अब छिपाता है, पहिले वे-छिपाई० को अब छिपाता है । ०[1] परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये । 147

ख. (९) "० भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षुने बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियाँ की हैं । (उनमें) किन्हीं किन्हीं आपत्तियोंको जानता है, किन्हीं किन्हींको नहीं जानता । जिन आपत्तियोंको जानता है, उनको छिपाता है, जिन आपत्तियोंको नहीं जानता, उन्हें नहीं छिपाता । गृहस्थ बन फिर भिक्षु हो जिन आपत्तियोंको उसने पहिले जानकर छिपाया था, उन्हें अब वह जानकर नहीं छिपाता; जिन आपत्तियोंको पहिले न जान नहीं छिपाया था, उन्हें अब जानकर (भी) नहीं छिपाता । तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिलेके दोषसमूह (=आपत्ति-स्कंध)में छिपाईकी भाँतिके लिये परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये । 148

(१०) "०[2] जिन आपत्तियोंको जानता है, उनको छिपाता है, जिन आपत्तियोंको नहीं जानता, उनका छादन नहीं करता । ०[2] फिर उपसम्पदा पा जिन आपत्तियोंको पहिले जानकर छादन करता था, अब जानकर उनका छादन नहीं करता; जिन आपत्तियोंको पहिले नहीं जानकर उनको नहीं छिपाता था, उन आपत्तियोंको अब जानकर छिपाता है । तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिलेके भी अबके भी आपत्ति-स्कंधोंमें प्रतिच्छन्न (=छिपाई)की भाँति परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये । 149

(११) "०[2] जिन आपत्तियोंको जानता है उन्हें छिपाता है, जिन आपत्तियोंको नहीं जानता उन्हें नहीं छिपाता । ०[2] फिर उपसम्पदा पा जिन आपत्तियोंको पहिले जानकर छिपाता था, उन्हें अब (भी) जानकर छिपाता है, जिन आपत्तियोंको पहिले नहीं जान नहीं छिपाता था, उन्हें अब जानकर नहीं छिपाता । ०[2] परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये । 150

(१२) "०[2] जिन आपत्तियोंको जानता है, उन्हें छिपाता है, जिन आपत्तियोंको नहीं जानता उन्हें नहीं छिपाता । ०[2] फिर उपसम्पदा पा जिन आपत्तियोंको पहिले जानकर छिपाता था, उन्हें अब भी जानकर छिपाता है, जिन आपत्तियोंको पहिले न जानकर नहीं छिपाता था, उन्हें अब जानकर छिपाता है । ०[2] परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये । 151

ग. (१३) "०[2] (उनमें) किन्हीं किन्हीं आपत्तियोंको याद रखता है, और किन्हीं किन्हीं आपत्तियोंको याद नहीं रखता । जिन आपत्तियोंको याद रखता है उनका छादन करता है, जिन आपत्तियोंको नहीं याद रखता, उनका छादन नहीं करता । वह भिक्षु-वेष छोळ फिर भिक्षु बन, जिन आपत्तियोंको उसने पहिले यादकर छिपाया था, उन्हें अब यादकर नहीं छिपाता; जिन आपत्तियोंको पहिले याद न होनेसे नहीं छिपाता था उन्हें अब यादकर भी नहीं छिपाता । तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिले के आपत्ति-स्कंध (=आपत्ति-पुंज)में छिपाईकी भाँति के लिये परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये । ०[3] 154

(१६) "०[3] जिन आपत्तियोंको याद रखता है, उन्हें छिपाता है०[4] । 157

---

[1] ऊपर जैसा पाठ । [2] देखो ऊपर (९) ।

[3] ऊपर (१०), (११) की भाँति ("जानने"के स्थानमें "याद करना" रखकर) ।

[4] देखो ऊपर (१२) ।

घ. (१७) "०[1] उनमें किन्हीं किन्हीं आपत्तियोंमें सन्देह नहीं रखता है, किन्हीं किन्हीं आपत्तियोंमें सन्देह रखता है०[1]। 158

(२०) "०[1] जिन आपत्तियोंमें सन्देह नहीं रखता, उन्हें छिपाता है०[1]।" 161

(२) श्रामणेर बन जाना

क. (२१) "०[2] श्रामणेर बन जाता है०[2] (४०) "०[2] जिन आपत्तियोंमें सन्देह नहीं रखता, उन्हें छिपाता है०[2]।" 181

(३) पागल हो जाना

क. (४१) "०[2] पागल हो जाता है०[2]।" 101

(४) विक्षिप्त-चित्त होना

क. (६१) "०[2] विक्षिप्त-चित्त हो जाता है०[2]।" 121

(५) वेदनट्ट (=बदहवास) हो जाना

क. (८१) "०[2] वेदनट्ट हो जाता है०[2]। 141

(१००) "०[2] जिन आपत्तियोंमें सन्देह नहीं रखता, उन्हें छिपाता है०[2]।" 161

सौ मानत्त्व समाप्त

§ ५—मूलसे-प्रतिकर्षण दण्डमें शुद्धि

क. परिवास—

(१) गृहस्थ होना

क. (१) "भिक्षुओ! यदि एक भिक्षु परिवास करते समय वीचमें बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियोंको कर विना छिपाये, गृहस्थ हो जाता है । वह फिर भिक्षु बन (यदि) उन आपत्तियोंको नहीं छिपाता, तो उस भिक्षुको मूलसे प्रतिकर्षण करना चाहिये। 162

(२) "०[3] विना छिपाये गृहस्थ हो जाता है। वह फिर भिक्षु बन (यदि) उन आपत्तियोंको छिपाता है, तो उस भिक्षुको मूलसे प्रतिकर्षण करना चाहिये। इसकी छिपाई आपत्तियोंकी भाँति पहिलेकी आपत्तिके लिये समवधान-परिवास देना चाहिये। 163

(३) "०[3] छिपाकर गृहस्थ हो जाता है। वह फिर भिक्षु बन (यदि) उन आपत्तियोंको नहीं छिपाता, तो ०[4]। 164

(४) "०[4] छिपाकर गृहस्थ हो जाता है। वह फिर भिक्षु बन (यदि) उन आपत्तियोंको छिपाता है, तो०[4]। 165

ख. (५) "०[5] छिपाकर भी, विना छिपाये भी गृहस्थ हो जाता है। वह फिर भिक्षु बन, पहिले छिपाई आपत्तियोंको अब नहीं छिपाता; पहिले नहीं छिपाई आपत्तियोंको अब नहीं छिपाता, तो०[5]। 166

---

[1]ऊपर पृष्ठ ३८७ (९-१२) की भाँति "जानने न जानने" के स्थानमें "न सन्देह करना, सन्देह करना" रख। [2]देखो ऊपर पृष्ठ ३८७-८८ (१-२०) की भाँति। [3]ऊपरकी तरह पाठ। [4]देखो ऊपर (२)। [5]देखो ऊपर २ (५)।

(६) "०[1] भिक्षु वन पहिले छिपाई आपत्तियोंको अब नहीं छिपाता, पहिले न छिपाई आपत्तियोंको अब छिपाता है, तो०[2] । 167

(७) "०[1] भिक्षु वन, पहिले छिपाई आपत्तियोंको अब (भी) छिपाता है, पहिले न छिपाई आपत्तियोंको अब (भी) नहीं छिपाता, तो०[2]। 168

(८) "०[2] भिक्षु वन, पहिले छिपाई आपत्तियोंको अब (भी) छिपाता है, पहिले न छिपाई अपात्तियोंको अब छिपाता है, तो०[2] ०। 169

ग. (९) "भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षु परिवास करते समय बीचमें बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियोंको करता है। (उनमें) किन्हीं किन्हीं आपत्तियोंको जानता है किन्हीं किन्हीं आपत्तियोंको नहीं जानता। जिन आपत्तियोंको जानता है उन्हें छिपाता है, जिन आपत्तियोंको नहीं जानता उन्हें छिपाता है। वह गृहस्थ वन फिर भिक्षु हो,जिन आपत्तियोंको वह पहिले जानकर छिपाता था,०[3] । तो०[2]। 170

(१०) "०[3] परिवास करते समय०[4] जिन आपत्तियोंको जानता है०[4] ।० फिर भिक्षु हो, जिन आपत्तियोंको वह पहिले जानकर छिपाता था, ०[2] । तो०[4] । 171

(११) "०[3] परिवास करते समय०[3] जिन आपत्तियोंको जानता है०[4] । ० फिर भिक्षु हो जिन आपत्तियोंको वह पहिले जानकर छिपाता था, ०[5] । तो०५ । 172

(१२) "०[3] परिवास करते समय०[3] जिन आपत्तियोंको जानता है०[5] । ० फिर भिक्षु हो जिन आपत्तियोंको वह पहिले जानकर छिपाता था, ०[6] । तो० [3] । 173

घ. (१३) "०[7] उनमें किन्हीं किन्हीं आपत्तियोंको याद रखता है, ०[8] । 174

ङ (१७–२०) "०[10] उनमें किन्हीं किन्हीं आपत्तियोंमें सन्देह नहीं रखता,०[10] ।" 175

(२) श्रामणेर होना

क. (१) "भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षु परिवास करते समय वीचमें बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियोंको कर विना छिपाये गृहस्थ हो जाता है, ०[10] ।" 192

(३) पागल होना

क. (१–२०) "० पागल हो जाता है, ०[10] ।" 209

(४) विक्षिप्त होना

क. (१–२०) "० विक्षिप्त हो जाता है, ०[10] ।" 226

(५) वेदनट्ट होना

क. (१–२०) "० वेदनट्ट हो जाता है, ०[10] ।" 243

ख. मानत्त्व (१-१००)—

(१) गृहस्थ होना

(क) (१–१००) "भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षु मानत्त्वके योग्य हो वीचमें वहुतसी संघादि-

[1] देखो ऊपर पृष्ठ ३८८ (२) । [2] देखो पृष्ठ ३८२ (९) । [3] देखो पृष्ठ ३८७ (१०) ।
[4] देखो ऊपर (९) । [5] देखो पृष्ठ ३८७ (१०) । [6] देखो पृष्ठ ३८८ (१८) ।
[7] देखो पृष्ठ ३८७ (१२) । [8] ऊपर (९-१२) की भाँति ("जानने"की जगह "याद करके" रखकर) ।
[9] देखो ऊपर (९) । [10] ऊपर (९-१२) की भाँति ("जानने"की जगह सन्देह न करना" रखकर) ।

सेसकी आपत्तियोंको कर, बिना छिपाये गृहस्थ हो जाता है। वह फिर भिक्षु बन यदि उन आपत्तियोंको नहीं छिपाता, तो उस भिक्षुका मूलसे-प्रतिकर्षण करना चाहिये।०[1]।" 343

ग. मानत्त्व-चारिक (१-१००)—

(१) गृहस्थ होना

(क) (१—२००) "भिक्षुओ! यदि एक भिक्षु मानत्त्वका आचरण करते बीचमें०[1]।" 443

घ. आह्वानार्ह १-१००—

(१) गृहस्थ होना

(क) (१—२०) "भिक्षुओ! यदि एक भिक्षु आह्वानके योग्य हो बीचमें०[2]।" 543

ङ. परिमाण, अपरिमाण—

१—(क) (१—२०) "भिक्षुओ! यदि एक भिक्षुने बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियाँ की हैं जिनमें परिमाणवालीको छिपा और परिमाण रहितको बिना छिपाये, एक नामवालीको बिना छिपाये, नामवालीको बिना छिपाये, सभागको बिना छिपाये, विसभाग (=अ-समना)को बिना छिपाये, व्यवस्थित (=अलगवाली)को बिना छिपाये, सम्भिन्न (=मिश्रित)को बिना छिपाये, गृहस्थ हो जाता है।०। 643

२—(क. १—२०) "०[2] श्रामणेर हो जाता है०। 743

३—(क १—२०) "० पागल हो जाता है०। 843

४—(क १—२०) "० विक्षिप्त हो जाता है०। 943

५—(क १—२०) "० वेदनट्ट हो जाता है०। 1043

च. दो भिक्षुओंके दोष—

(१) "दो भिक्षुओंने संघादिसेसकी आपत्तियाँ की हैं। वह संघादिसेसको संघादिसेस करके देखते हैं। (उनमें) एक (आपत्तिको) छिपाता है, दूसरा नहीं छिपाता। जो छिपाता है, उसे दुक्कटकी देशना (=Confession) करवानी चाहिये, फिर छिपायेकी भाँति परिवास दे, दोनोंको मानत्त्व देना चाहिये। 1044

(२) "दो भिक्षुओंने संघादिसेसकी आपत्तियाँ की हैं। वह संघादिसेसमें सन्देहयुक्त होते हैं। (उनमें) एक छिपाता है, दूसरा नहीं छिपाता। जो छिपाता है, उससे दुक्कटकी देशना करवानी चाहिये, फिर छिपायेके अनुसार परिवास दे, दोनोंको मानत्त्व देना चाहिये। 1045

(३) "०[2] संघादिसेसमें मिश्रित (=मिश्रक) दृष्टि रखनेवाले होते हैं०[2]। 1046

(४) "दो भिक्षुओंने मिश्रक आपत्तियाँ की हैं, वह मिश्रकको संघादिसेसके तौरपर देखते हैं।०। 1047

(५) "दो भिक्षुओंने मिश्रक आपत्तियाँ की हैं। वह मिश्रकको मिश्रकके तौरपर देखते हैं। ०[3]। 1048

(६) "दो भिक्षुओंने शुद्धक आपत्तियाँ की हैं। वह शुद्धकको संघादिसेसके तौरपर देखते हैं।०[4]। 1049

---

[1]ऊपर (९-१२)की भाँति ("जानने"की जगह "याद करके" रखकर)।

[2]देखो पृष्ठ ३८८-८९ (१-२०) गृहस्थ होनाकी भाँति।

[3]देखो पृष्ठ ३८८-८९ परिवासकी भाँति (१०० भेद)। [4]देखो ऊपर (२)।

(७) "दो भिक्षुओंने शुद्धक आपत्तियाँ की हैं। वह शुद्धकके तौरपर देखते हैं। ०[1] दोनोंको धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये।। 1050

छ. दो भिक्षुओंकी धारणा—

(१) "दो भिक्षुओंने संघादिसेसका अपराध किया है। वह (उस) संघादिसेसको संघादिसेसके तौरपर देखते हैं। एक कह देना चाहता है, दूसरा नहीं कहना चाहता। वह पहिले याम (=४ घंटा)में भी छिपाता है, दूसरे याम भी छिपाता, तीसरे याम भी छिपाता है; तो लाली (=अरुण) उग आनेपर आपत्ति छिपाई कही जायेगी। जो छिपाता है, उससे दुक्कटकी दे श ना करवानी चाहिये, फिर छिपायेके अनुसार परिवास दे, दोनोंको मानत्त्व देना चाहिये। 1051

(२) "०[2] संघादिसेसके तौरपर देखते हैं। वह प्रकट करनेके लिये जाते हैं। एकको रास्तेमें न प्रकट करनेका अमरख(=म्रक्षधर्म) उत्पन्न हो जाता है। वह पहिले याम भी छिपाता है, दूसरे याम भी०, तीसरे याम भी०। (तो) लाली उग आनेपर आपत्ति छिपाई कही जायेगी। ०[3] 1052

(३) "० संघादिसेसके तौरपर देखते हैं। वह दोनों पागल हो जाते हैं। पीछे भिक्षुपन छोळ एक (अपने अपराधको) छिपाता है, दूसरा नहीं छिपाता। जो छिपाता है, ०[3] । 1053

(४) "० वह दोनों प्रातिमोक्ष-पाठके वक़्त ऐसा कहते हैं—'इसी वक़्त हमें मालूम हुआ, कि यह धर्म (=काम) भी सुत्त (=बुद्धोपदेश, विनय)में आया है, सुत्तसे मिला है, प्रति आधे मास (प्रातिमोक्ष-पाठके वक़्त) पाठ (=उद्देश) किया जाता है। (तब) वह संघादिसेसको संघादिसेसके तौरपर देखते हैं। (उनमें) एक छिपाता है, दूसरा नहीं छिपाता। ०[4]।" 1054

§६—अशुद्ध मूलसे-प्रतिकर्षण

क. (१) "भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षुने परिमाणवाली, अपरिमाणवाली, एक नामवाली, अनेक नामवाली भी, सभागवाली (=समान) भी वि-सभागवाली भी, व्यवस्थित (=अलगवाली) भी, सम्भिन्न (=मिलीजुली) भी बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियाँ की हैं। वह संघसे उन आपत्तियोंके लिये स म-व धा न परिवास माँगता है। संघ उसे० समवधान-परिवास देता है। वह परिवास करते समय बीचमें बहुतसी परिमाणवाली न-छिपाई संघादिसेसकी आपत्तियाँ करता है। वह संघसे बीचकी (की गई) आपत्तियोंके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण माँगता है। संघ उसे धार्मिक(=न्याययुक्त)=अ-कोप्य, स्थानके योग्य कर्म (=फ़ैसले)से बीचकी आपत्तियोंके लिये मूलसे-प्रतिकर्षण करता है, धर्म (=नियम) से समवधान-परिवास देता है, अ-धर्म (=नियमविरुद्धसे) मानत्त्व देता है, अधर्मसे आह्वान करता है। तो भिक्षुओ ! वह भिक्षु उन आपत्तियों (=अपराधों)से शुद्ध नहीं है। 1055

(२) "भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षुने ०[5] बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियाँ की हैं। वह संघसे उन आपत्तियोंके लिये समवधान-परिवास माँगता है। ०[5] वह संघसे बीचकी (की गई) आपत्तियोंके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण माँगता है। संघ उसे धार्मिक=अकोप्य, स्थानके योग्य कर्मसे बीचकी आपत्तियोंके लिये मूलसे प्रतिकर्षण करता है, धर्मसे समवधान-परिवास होता है, अधर्मसे मानत्त्व देता है, अधर्मसे आह्वान करता है। तो भिक्षुओ ! वह भिक्षु उन आपत्तियोंसे शुद्ध नहीं है। 1056

(३) "०[5] बीचमें बहुतसी परिमाणवाली छिपाई भी न छिपाई भी संघादिसेसकी आपत्तियाँ करता है। ०[5] । 1057

---

[1]देखो ऊपर (१)।　　[2]ऊपर (१) की भाँति।　　[3]देखो ऊपर(१)।
[4]देखो ऊपर (७ और १)।　　[5]देखो ऊपर (१)।

(४) "०[1] बीचमें बहुतसी परिमाण-रहित न छिपाई आपत्तियाँ करता है।०[1]। 1058

(५) "०[1] बीचमें बहुतसी परिमाण-रहित छिपाई आपत्तियाँ करता है।०[1]। 1059

(६) "०[1] बीचमें बहुतसी परिमाण-रहित, छिपाई भी न छिपाई भी आपत्तियाँ करता है०[1]। 1060

(७) "०[2] बीचमें बहुतसी परिमाणवाली भी अ-परिमाणवाली भी न छिपाई आपत्तियाँ करता है०[2]। 1061

(८) "०[2] बीचमें बहुतसी परिमाणवाली भी अ-परिमाणवाली भी, छिपाई आपत्तियाँ करता है०[2]। 1062

(९) "०[2] बीचमें बहुतसी परिमाणवाली भी परिमाण-रहित भी, छिपाई भी, न छिपाई भी आपत्तियाँ करता है।०[2]। 1063

(क) नौ मूलसे-प्रतिकर्षणमें अशुद्धियाँ समाप्त

ख. (१) "भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षुने परिमाणवाली, अपरिमाणवाली०[3] बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियाँ की हैं। वह संघसे उन आपत्तियोंके लिये समवधान-परिवास माँगता है। संघ उसे० समवधान-परिवास देता है। वह परिवास करते बीचमें बहुतसी परिमाणवाली, न छिपाई संघादिसेस की आपत्तियाँ करता है।०[3]। 1064

(२) "०[3] बीचमें बहुतसी परिमाणवाली छिपाई०।[3] 1065

(३) "०[3] बीचमें बहुतसी परिमाणवाली छिपाई भी, न छिपाई भी०[3]। 1066

(४) "०[3] बीचमें बहुतसी परिमाण-रहित, छिपाई०[3]। 1067

(५) "०[3] बीचमें बहुतसी परिमाण-रहित छिपाई०[3]। 1068

(६) "०[3] बीचमें बहुतसी परिमाण-रहित छिपाई भी, न छिपाई भी,०[3]। 1069

(७) "०[3] बीचमें बहुतसी परिमाणवाली भी , परिमाण-रहित भी, न छिपाई०[3]। 1070

(८) "०[3] बीचमें बहुतसी परिमाणवाली भी परिमाण-रहित भी, छिपाई०[3]। 1071

(९) "०[3] बीचमें बहुतसी परिमाणवाली भी परिमाण-रहित भी, छिपाई भी, न छिपाई भी०[3]।" 1072

(ख) नौ मूलसे-प्रतिकर्षणमें अशुद्धियाँ समाप्त

§७–शुद्ध मूलसे-प्रतिकर्षण

(१) "भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षुने परिमाणवाली अपरिमाणवाली०[3] बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियाँ की हैं। वह संघसे उन आपत्तियोंके लिये समवधान-परिवास माँगता है। संघ उसे० समवधान-परिवास देता है, वह परिवास करते बीचमें बहुतसी परिमाणवाली न छिपाई संघादिसेसकी आपत्तियाँ करता है। वह संघसे बीचकी (की गई) आपत्तियोंके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण माँगता है। संघ उसे अ ध र्म से (=नियम-विरुद्ध)=कोप्य, स्थानके अयोग्य कर्म (=फ़ैसले)से बीचकी आपत्तियोंके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण करता है, अधर्मसे समवधान-परिवास देता है। वह 'यह परिवास है'—जानते हुए (भी) बीचमें परिणामवाली और न छिपाई बहुतसी संघादिसेस की आपत्तियाँ

---

[1] देखो ऊपर (१)।
[2] देखो पृष्ठ ३९१ (१ और ९)। देखो ऊपर (१)।
[3] देखो पृष्ठ ३९१ (१ और ९)।

करता है। वह उसी स्थिति (=भूमि)में रहते पहिलेकी आपत्तियोंके बीचकी आपत्तियोंको याद करता है। बादवाली आपत्तियोंके बीचकी आपत्तियोंको याद करता है। उसको ऐसा होता है—'मैंने परिमाणवाली० बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियाँ कीं। ० संघने मुझे० समवधान-परिवास दिया। मैंने परिवास करते बीचमें बहुतसी परिमाणवाली० आपत्तियाँ कीं। ० संघने अधर्म० बीचकी आपत्तियोंके लिये मूलसे-प्रतिकर्षण किया, अधर्मसे समवधान परिवास दिया। (तब) मैंने 'यह परिवास है'—जानते हुए बीचमें परिमाणवाली और न छिपाई बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियाँ कीं। सो मुझे उसी भूमिमें रहते पहिलेकी आपत्तियोंके बीचकी आपत्तियाँ याद हैं, बादवाली आपत्तियोंके बीचकी आपत्तियाँ याद हैं। चलूं संघसे पहिलेकी आपत्तियोंके बीचकी आपत्तियोंके लिये, और बाद वाली आपत्तियोंके बीचकी आपत्तियोंके लिये भी, धार्मिक=अकोप्य स्थानके योग्य कर्मद्वारा मू ल से प्र ति क र्ष ण, धर्मसे समवधान-परिवास, धर्मसे मानत्त्व और धर्मसे आह्वान माँगूं।' वह संघसे० माँगता है। संघ उसे ० देता है। भिक्षुओ! वह भिक्षु उन आपत्तियोंसे शुद्ध है। 1073

(२) "०[1] बीचमें बहुतसी परिमाणवाली छिपाई संघादिसेसकी आपत्तियाँ करता है ०। । 1074

(३) "०[1] बीचमें बहुतसी परिमाणवाली छिपाई भी, न छिपाई भी ०[1] । 1075

(४) "०[1] बीचमें बहुतसी परिमाण-रहित, न छिपाई ०[1] । 1076

(५) "०[1] बीचमें बहुतसी परिमाण-रहित, छिपाई ०[1] । 1077

(६) "०[1] बीचमें बहुतसी परिमाण-रहित छिपाई भी न छिपाई भी ०[1] । 1078

(७) "०[1] बीचमें बहुतसी परिमाणवाली भी परिमाण-रहित भी छिपाई ०[1] । 1079

(८) "०[1] बीचमें बहुतसी परिमाणवाली भी परिमाण-रहित भी न छिपाई भी, छिपाई भी ०[1] ।" 1080

नौ मूलसे-प्रतिकर्षणमें शुद्धियाँ समाप्त

समुच्चयक्खन्धक समाप्त[2] ॥३॥

---

[1] देखो ऊपर (१)।

[2] इस स्कन्धकमें आये प्रकरणोंका नाम गिनाते वक्त अन्तमें यह भी लिखा है—"ताम्रपर्णीद्वीप (=लंका)को अनुरक्त (=बौद्ध) बनानेवाले महाविहारवासी विभज्यवादी आचार्योंका सद्धर्मकी स्थितिके लिए (यह) पाठ है।"

४—शमथ-स्कन्धक

१—धर्मवाद-अधर्मवाद। २—स्मृति-विनय आदि छ विनय। ३—चार अधिकरण उनके मूल, भेद, नामकरण और शमन।

§१—धर्मवाद-अधर्मवाद

१—श्रावस्ती

(१) उस समय बुद्ध भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय षड्वर्गीय भिक्षु अनुपस्थित भिक्षुओंका भी तर्जनीय कर्म, नियस्स कर्म, प्रव्राजनीय कर्म, प्रतिसारणीय कर्म—(यह) कर्म (=फैसला) करते थे। जो वह भिक्षु अल्पेच्छ (=निर्लोभ) ०थे, वह हैरान..होते थे—०। तब उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्!"

० भगवान्ने फटकार कर धर्म-संबंधी कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुपस्थित भिक्षुओंका तर्जनीय कर्म ०—(यह) कर्म नहीं करना चाहिये, जो करे उसे दुक्कटका दोष हो।"

(२) अधर्मवादी व्यक्ति, अधर्मवादी बहुतसे व्यक्ति, अधर्मवादी संघ। धर्मवादी एक व्यक्ति, धर्मवादी बहुतसे व्यक्ति, धर्मवादी संघ।

क. (१) (एक) अधर्मवादी (=नियमोंसे अनभिज्ञ) व्यक्ति (दूसरे) धर्मवादी व्यक्तिको समझावें, सुझावें, प्रेम करावें, अनुप्रेम करावें, दिखलावें, फिर दिखलावें—यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ता (=बुद्ध)का शासन (=उपदेश) है। इसे ग्रहण करो, इसे (दूसरोंको) बतलाओ।' इस प्रकार यदि अधिकरण (=मुकदमा) शांत होवे, तो वह अधर्मसे, संमुखके विनयाभाससे शांत होगा। 2

(२) अधर्मवादी व्यक्ति बहुतसे धर्मवादियोंको समझावें ०[1]। 3

(३) अधर्मवादी व्यक्ति धर्मवादी संघको समझावें ०[1]। 4

(४) बहुतसे अधर्मवादी धर्मवादी व्यक्तिको समझावें ०[1]। 5

(५) बहुतसे अधर्मवादी बहुतसे धर्मवादियोंको समझावें ०[1]। 6

(६) बहुतसे अधर्मवादी धर्मवादी संघको समझावें ०[1]। 7

(७) अधर्मवादी संघ धर्मवादी व्यक्तिको समझावें ०[1]। 8

---

[1]देखो ऊपर (१)।

(८) अधर्मवादी संघ बहुतसे धर्मवादियोंको समझावें ०[1] । 9

(९) अधर्मवादी संघ धर्मवादी संघको समझावें ०[1] । 10

नौ कृष्णपक्ष समाप्त

ख. (१) धर्मवादी व्यक्ति अधर्मवादी व्यक्तिको समझावें ०[1] । इस प्रकार यदि अधिकरण शांत होवे, तो वह धर्मसे, संमुख विनयसे शांत होगा । 11

(२) धर्मवादी व्यक्ति बहुतसे अधर्मवादियोंको समझावे ०[2] । 12

(३) धर्मवादी व्यक्ति अधर्मवादी संघको समझावे ०[2] । 13

(४) बहुतसे धर्मवादी अधर्मवादी व्यक्तिको समझावें ०[2] । 14

(५) बहुतसे धर्मवादी बहुतसे अधर्मवादियोंको समझावें ०[2] । 15

(६) बहुतसे अधर्मवादी अधर्मवादी संघको समझावें ०[2] । 16

(७) धर्मवादी संघ अधर्मवादी व्यक्तिको समझावें ०[2] । 17

(८) धर्मवादी संघ बहुतसे अधर्मवादियोंको समझावें ०[2] । 18

(९) धर्मवादी संघ अधर्मवादी संघको समझावें ०[2] । 19

नौ शुक्लपक्ष समाप्त

§२—स्मृति विनय-आदि छ विनय

१—*राजगृह*

(१) स्मृति-विनय

क. पूर्वकथा—उस समय बुद्ध भगवान् राजगृहके वेणुवन कलन्दकनिवापमें विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रने जन्मसे सात वर्ष(की अवस्था)में अर्हत्त्व प्राप्त किया था; जो कुछ (बुद्धके) श्रावक (=शिष्य)को प्राप्त करना है, सभी उन्हें मिल गया था, और कुछ करनेको न था, न कियेको मिटाना (बाकी) था ।

तब एकान्तमें स्थित हो विचार-मग्न होते समय आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रके चित्तमें यह विचार उत्पन्न हुआ—मैंने जन्मसे सात वर्ष(की अवस्था)में अर्हत्त्व प्राप्त किया है; जो कुछ श्रावकको प्राप्त करना है, सभी मुझे मिल गया। (अब) और कुछ करनेको नहीं है, न कियेको मिटाना (बाकी) है। मुझे संघकी क्या सेवा करनी चाहिये ?' तब आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रको यह हुआ—'क्यों न मैं संघके शयन-आसनका प्रबंध करूँ, और भोजनका नियमन (=उद्देश) करूँ ।

तब आयुष्मान् दर्भ (=दब्ब) मल्लपुत्र सायंकाल एकान्त-चिन्तनसे उठ जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! आज एकान्तमें विचार-मग्न होते समय मेरे चित्तमें ऐसा विचार उत्पन्न हुआ—'मैंने जन्मसे सात वर्ष(की अवस्था)में अर्हत्त्व प्राप्त किया है; ० । क्यों न मैं संघके शयनासनका प्रबंध करूँ ० ।"

---

[1] देखो पृष्ठ ३९४ (१) ।

[2] देखो ऊपर (१) ।

"साधु, साधु दर्भ ! तो दर्भ ! तू संघके शयन-आसनका प्रबंध कर, और भोजनका उद्देश कर।"

"अच्छा, भन्ते !"—(कह) आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रने भगवान्‌को उत्तर दिया।

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धर्म संबंधी कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! संघ दर्भ मल्लपुत्रको संघके शयन-आयसनका प्रबंधक और भोजनका नियामक (=उद्देशक) चुने। 20

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार चुनाव करना चाहिये—पहिले दर्भ मल्लपुत्रसे जाँचकर चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

"क. ज्ञ प्ति—'भन्ते ! संघ मेरी सुने, यदि संघको पसन्द हो, तो संघ आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रको शयन-आसनका प्रज्ञापक (=प्रबंधक) और भोजनका उद्देशक चुने—यह सूचना है।

"ख. अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते ! संघ मेरी सुने, संघ आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रको शयन-आसनका प्रज्ञापक और भोजनका उद्देशक चुन रहा है, जिस आयुष्मान्‌को आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रका शयन-आसन-प्रज्ञापक चुना जाना पसन्द है, वह चुप रहे, जिसको पसन्द नहीं है वह बोले।

"(२) भन्ते ! संघ मेरी सुने ०।

"(३) 'भन्ते ! संघ मेरी सुने ०।

"ग. धा र णा—'संघने आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रको शयन-आसन-प्रज्ञापक (और) भोजन-उद्देशक चुन लिया। संघको पसन्द है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।"

संघ द्वारा चुन लिये जाने पर आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र हिस्सा हिस्सा करके भिक्षुओंका एक एक स्थानपर शयन-आसन प्रज्ञापित करते थे। (१) जो भिक्षु सू त्रा न्ति क (=बुद्ध द्वारा उपदिष्ट सूत्रोंको कंठ रखनेवाले) थे, (यह सोचकर कि) वह एक दूसरेसे मिलकर सूत्रोंका संगायन करेंगे, उनका शयन-आसन एक जगह प्रज्ञापित करते थे। (२) जो भिक्षु वि न य - ध र (=भिक्षु नियमोंको कंठ रखनेवाले) थे, (यह सोचकर कि) वह एक दूसरेके साथ वि न य का निश्चय करेंगे, उनका शयन-आसन एक जगह प्रज्ञापित करते थे। (३) जो ध र्म क थि क (=बुद्धके उपदेशोंकी कथा कहनेवाले) थे, (यह सोच-कर कि) वह एक दूसरेके साथ ध र्म-विषयक संवाद करेंगे, उनका शयन-आसन एक जगह प्रज्ञापित करते थे। (४) जो भिक्षु ध्यानी (=योगी) थे, (यह सोचकर कि) वह एक दूसरेके (=ध्यानमें) बाधा न देंगे, ०। (५) जो भिक्षु फ़जूलकी बातें करनेवाले, बहुत कायिक कर्म (=दंड)वाले थे, (यह सोचकर कि) यह आयुष्मान् रातको यहाँ रहेंगे, ०। (६) जो भिक्षु विकाल (=अपराह्ण)में आया करते थे, (यह सोचकर कि) यह आयुष्मान् यह जान विकालमें आते हैं, कि हम आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रकी दिव्यशक्ति (=ऋद्धिप्रातिहार्य)को देखेंगे, ते जो धा तु की स मा प त्ति (=एक प्रकारका ध्यान) करके उसीके प्रकाशमें उनका भी शयन-आसन प्रज्ञापित करते थे। वह आकर आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रसे कहते थे—'आवुस द्रव्य ! हमारा भी शयन-आसन प्रज्ञापित करो।' उन्हें आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र, यह कहते थे—'कहाँ आयुष्मान् चाहते हैं, कहाँ प्रज्ञापित करूँ ?' वह जानबूझ कर बतलाते थे—'आवुस द्रव्य ! हमारा गृ ध्र कू ट पर शयन-आसन प्रज्ञापित करो।' '० हमारा चौ र प्र पा त पर ०।' '० हमारा ऋ षि गि रि की का ल शि ला पर ०। '० हमारा वै भा र (पर्वत)के पास सा त प र्णि गु हा में ०'। '० हमारा सी त व न के स र्प शौं डि क प्रा ग्भा र (=सप्पसोंडिक पब्भार) पर ०'। '० गो त म-क न्द रा में ०'। '० हमारा क पो त क न्द रा में ०'। '० त पो दा रा म में ०'। '० जी व क के आम्रवन-में ०'। '० म द्र कु क्षि मृ ग दा व में ०'। आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र ते जो धा तु की स मा प त्ति से जान, अंगुलीमें आग लगी जैसे उनके आगे आगे जाते थे। वह उसी (तेजो धातुकी समापत्तिके) प्रकाशमें आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रके पीछे पीछे जाते थे। आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र इस प्रकार उनका शयन-आसन

प्रज्ञापित करते थे—'यह चारपाई (=मंच) है, यह चौकी (=पीठ) है, यह तकिया (=भिसि) है, यह बिम्बोहन (=मसनद) है, यह पाखाना है, यह पेशावखाना है, यह पीनेका पानी है, यह इस्तेमाल करनेका (पानी) है, यह कत्तरदंड (=डंडा) है, यह संघका क ति क - स न्था न (=स्थानीय रवाज) है। अमुक समय प्रवेश करना चाहिये, अमुक समय निकलना चाहिये।' आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र इस प्रकार उनके लिये शयन-आसन प्रज्ञापित करते थे।

उस समय मे त्ति य और भु म्म ज क भिक्षु नये और भाग्यहीन थे। संघके जो खराबसे खराब शयन-आसन (=निवास-स्थान) थे, वह उन्हें मिलते थे, और वैसे ही खराबसे खराब भोजन भी! उस समय रा ज गृ ह के लोग संघको घी, तेल, उत्तरिभंग (=भोजनके बादका खाद्य)=अभिसंस्कार देना चाहते थे; (किन्तु) मे त्ति य और भुम्मजकको सदाका पका कणाजक (=बुरा अन्न)को विलंगक (=विडंग अनाज)के साथ देते थे। वह भोजन समाप्त करनेपर स्थविर भिक्षुओंसे पूछते थे—'आवुसो! तुम्हारे भोजनमें आज क्या था? तुम्हारे क्या था?' कोई कोई स्थविर बोलते थे—'आवुसो! हमारे भोजनमें घी था, तेल था, उ त्त रि भं ग था।' मे त्ति य भु म्म ज क भिक्षु ऐसा कहते थे—'आवुसो! हमारे (भोजन)में जैसा-तैसा पका विलंगके साथ कणाजक था।'

उस समय क ल्या ण भ क्ति क गृहपति संघको नित्य चारों प्रकारका भोजन देता था। वह भोजनके समय (स्वयं) पुत्र-स्त्री सहित उपस्थित हो परोसता था—कोई भातके लिये पूछता, कोई सूप (=दाल आदि)के लिये पूछता, कोई तेलके लिये पूछता, कोई उत्तरिभंगके लिये पूछता।

एक समय क ल्या ण भ त्ति क गृहपतिके (घर) दूसरे दिन के भोजनके लिये मे त्ति य भु म्म ज क भिक्षुओंका नाम था। तब कल्याणभक्तिक गृहपति किसी कामसे आराममें गया। (और) वह जहाँ आयुष्मान् दर्भ म ल्ल पुत्र थे, वहाँ...जा...अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे कल्याण भक्तिक गृहपतिको आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रने धार्मिक कथा द्वारा...समुत्तेजित संप्रहर्षित किया। तब कल्याण-भक्तिक गृहपतिने ० प्रहर्षित हो आयुष्मान दर्भ मल्लपुत्रसे यह कहा—

"भन्ते! किसका हमारे घर कलका भोजन है?"

"गृहपति! मेत्तिय भुम्मजक भिक्षुओंका...।"

तब कल्याण-भक्तिक गृहपति असन्तुष्ट हो गया—'कैसे पापभिक्षु (=अभागे भिक्षु) हमारे घर भोजन करेंगे!' (और) घर जा (उसने) दासीको आज्ञा दी—

"रे! जो कल भोजन करेंगे, उन्हें कोठरीमें विलंग सहित कणाजक परोसना।"

"अच्छा, आर्य!"—(कह) उस दासीने कल्याण-भक्तिक गृहपतिको उत्तर दिया।

तब मे त्ति य भु म्म ज क भिक्षु—'कल हमारा भोजन कल्याण भक्तिकके गृहपतिके घर बतलाया गया है। कल कल्याण-भक्तिक गृहपति पुत्र-भार्या सहित उपस्थित हो हमारे लिये (भोजन) परोसेगा। कोई भातके लिये पूछेंगे, कोई सूपके लिये०, कोई तेलके लिये०, (और) कोई उत्तरिभंगके लिये पूछेंगे,—(सोच) इसी खुशीमें मन भरकर नहीं सोये।

तब मेत्तियभुम्मजक भिक्षु पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले जहाँ कल्याण भक्तिक गृहपतिका घर था, वहाँ गये। उस दासीने मेत्तियभुम्मजक भिक्षुओंको दूरसे ही आते देखा। देखकर उसने कोठरीमें आसन दिया मेत्तियभुम्मजक भिक्षुओंने यह कहा—

"बैठिये भन्ते!"

तब मेत्तियभुम्मजक भिक्षुओंको यह हुआ—"निःसंशय अभी भोजन तैयार न हुआ होगा, जिसके लिये हम कोठरीमें बैठाये जा रहे हैं।' तब वह दासी विलंगके साथ कणाजक लाई—

"भन्ते! खाइये।"

"भगिनी ! हम वंधान (=नित्य)के भोजनवाले हैं।"

"जानती हूँ, आर्य लोग वंधानके भोजन वाले हैं; और मुझे गृहपतिने खासतौरसे आज्ञा दी है—'रे ! जो कल भोजन करेंगे उन्हें कोठरीमें विलंग-सहित कणाजक परोसना।' खाइये भन्ते !"

तव मे त्ति य भु म्म ज क भिक्षुओंने—'आवुसो ! कल क ल्या ण भ क्ति क गृहपति आराममें द र्भ मल्लपुत्रके पास गया था। निःसंशय आवुसो ! द र्भ मल्लपुत्रने हमारे प्रति गृहपतिके भीतर दुर्भाव पैदा कर दिया;' (सोच) उसी चित्त-विकारसे मन भरकर नहीं खाया।

तव मेत्तियभुम्मजक भिक्षु भोजन करनेके पश्चात् आराममें जा पात्र-चीवर सँभाल वाहर आरामके कोठेमें संघाटी बिछा, चुपचाप, मूक, कंधागिरा, अधोमुख सोचकरते प्रतिभाहीन हो बैठे। तव मे त्ति या भिक्षुणी जहाँ मेत्तियभुम्मजक भिक्षु थे, वहाँ गई। जाकर मेत्तियभुम्मजक भिक्षुओंसे यह बोली—

"आर्यो ! वन्दना करती हूँ।"

ऐसा कहनेपर मेत्तिय भुम्मजक भिक्षु न बोले। दूसरी बार भी ०। तीसरी वार भी मेत्तिया भिक्षुणीने मेत्तिय भुम्मजक भिक्षुओंसे यह कहा—

"आर्यो ! वन्दना करती हूँ।"

तीसरी वार भी मेत्तिय भुम्मजक भिक्षु नहीं बोले।

"क्या मैंने आर्योंका अपराध किया ? क्यों आर्य मुझसे नहीं बोल रहे हैं ?"

"क्योंकि भगिनी ! दर्भ मल्लपुत्र द्वारा हमें सताये जाते देखकर भी तू पर्वाह नही करती।"

"(तो) आर्यो ! मैं क्या करूँ ?"

"भगिनी ! यदि तू चाहे, तो आज ही भगवान् दर्भ मल्लपुत्रको नष्टकर देंगे (=भिक्षु संघसे निकाल देंगे)।"

"आर्यो ! मैं क्या करूँ ? मैं क्या कर सकती हूँ।"

"आ, भगिनी ! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जाकर भगवान्से यह कह—

" 'भन्ते ! यह योग्य नहीं है, उचित नहीं है। भन्ते ! जो दिशा पहिले ईति-रहित (=उपद्रवरहित), भय रहित, निरुपद्रव थी; वह दिशा (आज) सहसा ईति-सहित, भय-सहित, उपद्रव-सहित (हो गई); जहाँ वायु न डोलती थी, वहाँ आँधी (=प्रवात) (आ गई)। पानी जलता सा मालूम पळता है। आर्य दर्भ मल्लपुत्रने मुझे दूपित किया है'।"

"अच्छा, आर्यो !"—(कह) मेत्तिया भिक्षुणीने उत्तर दे जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई। जाकर भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर...खळी हो...भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! यह योग्य नहीं है, ०।"

तव भगवान्ने इसी संवंधमें इसी प्रकरणमें भिक्षु-संघको एकत्रितकर आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रसे पूछा—

"दर्भ ! इस तरहका काम करना तुझे याद है, जैसा कि यह भिक्षुणी कहती है ?"

"भन्ते ! भगवान् जैसा मुझे जानते हैं।"

दूसरी वार भी, भगवान्ने ० पूछा—०।

तीसरी वार भी भगवान्ने ० पूछा—

"दर्भ ! उस तरहका काम करना तुझे याद है, जैसा कि यह भिक्षुणी कहती है ?"

"भन्ते ! भगवान् जैसा मुझे जानते हैं।"

"दर्भ ! दर्भ (=कुश) ऐसे नहीं खुला करते। यदि तूने किया हो, तो 'किया' कह; यदि तूने नहीं किया, तो 'नहीं किया' कह।"

"भन्ते ! जन्मसे लेकर स्वप्नमें भी मैथुन-सेवन करनेको मैं नहीं जानता, जागतेकी बात ही क्या ?"

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! मेत्तिया भिक्षुणीको नष्ट कर दो (=भिक्षुणी-वेषसे निकाल दो), और इन भिक्षुओंपर अभियोग लगाओ ।" 21

—यह कह भगवान् आसनसे उठ विहारमें चले गये ।

तब उन भिक्षुओंने मेत्तिया भिक्षुणीको नाश (=निकाल) दिया । तब मेत्तिय भुम्मजक भिक्षुओंने उन भिक्षुओंसे यह कहा—

"आवुसो ! मत मेत्तिया भिक्षुणीको निकालो, उसका कोई अपराध नहीं है ! कुपित असन्तुष्ट हो (दर्भ भिक्षुको) च्युत करानेके अभिप्रायसे हमने इसे उत्साहित किया।"

"क्या आवुसो ! तुमने आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रपर निर्मूल ही दुराचारके दोषको लगाया ?"

"हाँ, आवुसो !"

जो वह भिक्षु अल्पेच्छ ० थे, वह हैरान ० होते थे—'कैसे मेत्तिय भुम्मजक भिक्षु आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रपर निर्मूल ही दुराचारके दोषको लगायेंगे !'

तब उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही ।

"सचमुच भिक्षुओ ! ० ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

० फटकारकर भगवान्‌ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—"तो भिक्षुओ ! संघ दर्भ मल्लपुत्रको स्मृतिकी विपुलताको प्राप्त होनेसे स्मृ ति - वि न य दे । 22

ख. स्मृ ति - वि न य—"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (स्मृतिविनय) देना चाहिये—द र्भ मल्लपुत्र संघके पास जा एक कंधे पर उत्तरा संगकर वृद्ध भिक्षुओंके चरणोंमें वन्दनाकर उकळूँ बैठ हाथ जोळ ऐसा कहे—

"'भन्ते ! यह मेत्तिय भुम्मजक भिक्षु मुझे निर्मूल दुराचारका दोष लगा रहे हैं । सो मैं भन्ते ! स्मृतिकी विपुलतासे युक्त (हूँ, और) संघसे स्मृ ति वि न य माँगता हूँ । दूसरी बार भी ० । तीसरी बार भी—'भन्ते ! ० संघसे स्मृति विनय माँगता हूँ ।'

"तब चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

"क. सू च ना—'भन्ते ! संघ मेरी सुने—० ।

"ख. अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते ! संघ मेरी सुने—० ।

"(२) दूसरी बार भी 'भन्ते ! संघ मेरी सुने—० ।

"(३) तीसरी बार भी, 'भन्ते ! संघ मेरी सुने—० ।

"ग. धा र णा—'संघने विपुल स्मृतिसे युक्त आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रको स्मृ ति वि न य दे दिया । संघको पसन्द है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ ।'

"भिक्षुओ ! यह पाँच धार्मिक (=नियमानुकूल) स्मृ ति वि न य के दान हैं—(१) भिक्षु निर्दोष शुद्ध होता है; (२) उसके अनुवाद (=बातकी पुष्टि) करनेवाले भी होते हैं; (३) वह (स्मृति-विनय) माँगता है; (४) उसे संघ स्मृति-विनय देता है; (और) (५) ध र्म से स म ग्र[1] हो (देता है) ।" 23

---

[1] महावग्ग ९§१।११ (पृष्ठ ३०३) ।

(२) अमूढ़-विनय

क. पूर्व क था—उस समय ग र्ग भिक्षु पागल हो गया था, वह विपर्यस्त (=विक्षिप्त) चित्त हो गया था। उसने पागल, चित्त विपर्यस्त हो बहुतसा श्रमणोंके आचरणके विरुद्ध भाषित परिकृन्त (=चुभती बात) काम किया। भिक्षु (लोग) पागल ० हो किये गये बहुतसे श्रमण-विरुद्ध कामोंके लिये ग र्ग भिक्षुपर दोषारोपण कर प्रेरित करते थे—"याद करो, आयुष्मान् इस प्रकारकी आपत्तिकी।"

वह ऐसा बोलता—"आवुसो! मैं पागल ० हो गया था, पागल ० हो मैंने बहुतसे श्रमण-विरुद्ध काम किये...। मुझे वह याद नहीं, मैंने मूढ़ (=होशमें न हो) वह (काम) किये।"

ऐसा कहनेपर भी चोदित करते ही थे—'याद करो ०।' (तब) जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे—०। उन्होंने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्!"

० फटकारकर भगवान्ने ० भिक्षुओंको संबोधित किया—

"तो भिक्षुओ! संघ अ मू ढ़ (=पागलपनसे छूटा) होनेसे गर्ग भिक्षुको अमूढविनय दे। 24

"और भिक्षुओ! ऐसे देना चाहिये—

"या च ना—वह गर्ग भिक्षु संघके पास जा०—'मैंने भन्ते! पागल ० हो बहुत सा श्रमण-विरुद्ध काम किया। मुझे भिक्षु चोदित करते हैं—याद करो ०। मैं ऐसा बोलता हूँ—'आवुसो! मैं पागल ० हो गया था० कहनेपर भी चोदित करते ही हैं—'याद करो०; सो मैं भन्ते! अमूढ़ हूँ, संघसे अमूढ़-विनय माँगता हूँ।'

"दूसरी बार भी—०माँगता हूँ।

"तीसरी बार भी—०माँगता हूँ।

"तब चतुर समर्थ भिक्षु-संघको सूचित करे—

"क. ज्ञ प्ति—'भन्ते! संघ मेरी सुने—०।

"(१) दूसरी बार भी 'भन्ते! संघ मेरी सुने—०।

"ख (२) 'भन्ते! संघ मेरी सुने—०।

"(३) 'तीसरी बार भी, पूज्यसंघ मेरी सुने—०।

"ग. धा र णा—'संघने अमूढ़ होनेसे गर्ग भिक्षुको अमूढ़-विनय दे दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ।'

"भिक्षुओ! तीन अमूढ़-विनयके दान-अधार्मिक हैं, और यह तीन धार्मिक।

"भिक्षुओ! कौनसे तीन अमूढ़-विनयके दान अधार्मिक है?—

"ख. नियम-विरुद्ध अमूढ़-विनय। (१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षुने आपत्ति की होती थी। उसे संघ या बहुतसे व्यक्ति या एक व्यक्ति चोदित करता है—'याद करो, आयुष्मान्ने इस प्रकारकी आपत्ति की।' वह याद होनेपर भी यह कहे आवुसो! मुझे याद नहीं है कि मैंने इस प्रकार की आपत्तिकी।' उसे संघ यदि अमूढ़-विनय दे; तो यह अमूढ़-विनयका दान अधार्मिक है। (२) ०, वह याद होनेपर भी यह कहे—याद है मुझे आवुसो! जैसेकि स्वप्नके बाद (स्वप्न देखनेवालेको स्वप्नकी बात याद आती है)।' उसे संघ (यदि) अमूढ़-विनय दे, तो यह ० दान अधार्मिक है। (३) ० वह यह बोले—'बिना पागलपनका (आदमी) पागलपनके समयमें जो करता है, मैंने भी वैसा

किया। तुम भी वैसा करो। मुझे भी यह विहित है, तुम्हें भी यह विहित है।' उसे संघ (यदि) अमूढ़-विनय दे, तो वह ० दान अधार्मिक है। यह तीन अमूढ़-विनयके दान अधार्मिक हैं। 25

(ग) नियमानुकूल अमूढ़-विनय (१) भिक्षुओ! कौनसे अमूढ़-विनयके दान धार्मिक हैं?—"(१) यहाँ भिक्षुओ! एक भिक्षु पागल० होता है। पागल हो० उसने बहुतसे श्रमण-विरुद्ध. . .आचरण किये होते हैं। उसे संघ या बहुतसे व्यक्ति या एक व्यक्ति चोदित करता है—'याद करो आयुष्मान्‌ने इस प्रकारकी आपत्ति की?' वह याद न रहनेसे ऐसा कहता है—'आवुसो मुझे याद नहीं है, कि मैंने इस प्रकारकी आपत्ति की'। उसे संघ (यदि) अमूढ़-विनय दे; तो यह अमूढ़-विनय का दान धार्मिक है। (२) ० वह याद न रहनेसे ऐसा कहता है—'याद है मुझे आवुसो! जैसे कि स्वप्नके बाद। उसे संघ (यदि) अमूढ़-विनय दे, तो यह दान ० धार्मिक है। (३) ० वह (कहे)—'पागल पागलपनके समय जो करना है, वही मैंने किया, तुम भी वैसा करते। मुझे भी वह विहित था, तुम्हें भी वह विहित है।' उसे संघ (यदि) अमूढ़-विनय दे तो यह अमूढ़-विनयका दान धार्मिक है।—यह तीन अमूढ़-विनयके दान धार्मिक हैं।" 26

(३) प्रतिज्ञातकरण

(क) पूर्वकथा—उस समय षड्‌वर्गीय भिक्षु बिना प्रतिज्ञात (=स्वीकृति) कराये भिक्षुओंके तर्जनीय, नियस्स, प्रव्राजनीय, प्रतिसारणीय, उत्क्षेपणीय —कर्म (=दंड) भी करते थे। जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे—०। उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही।

"सचमुच भिक्षुओ! ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्!"

०फटकारकर भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! बिना प्रतिज्ञात कराये भिक्षुओंके तर्जनीय० उत्क्षेपणीय-कर्म नहीं करने चाहिये, जो करे उसे दुक्कटकी आपत्ति हो।" 27

"भिक्षुओ! इस प्रकार प्रतिज्ञातकरण अधार्मिक होता है, और इस प्रकार धार्मिक।

(ख) नियम विरुद्ध प्रतिज्ञातकरण—"कैसे भिक्षुओ! प्रतिज्ञातकरण अधार्मिक होता है?—(क) (१) एक भिक्षुने पाराजिक अपराध किया होता है; उसे संघ, बहुतसे या एक व्यक्ति चोदित करते हैं—'आयुष्मान्‌ने पाराजिक अपराध किया है?' वह ऐसा कहता है—'आवुसो! मैंने पाराजिक अपराध नहीं किया संघादिसेसका अपराध किया है।' उसे (यदि) संघादिसेसका (दंड) करे, तो यह प्रतिज्ञातकरण अधार्मिक है। 28

(२) "० संघादिसेस किया है० [१] । 29

(३) "० थुल्लच्चय किया है ०। 30

(४) "० पाचित्तिय किया है'०। 31

(५) "० प्रतिदेसनीय किया है'०। 32

(६) "० दुक्कट (=दुक्कट) किया है'०। 33

(७) "० दुर्भाषित किया है'०। 34

[१] पाराजिककी भाँति यहाँ छ कोटि तक पाठ है। सम्मति उस समय रंगीन लकड़ीकी शलाकाओंसे की जाती थी। शलाका वितरण करनेवालेको शलाका-ग्रहापक कहते थे।

२—(१) "एक भिक्षुने संघादिसेस अपराध-किया होता है; उसे संघ० चोदित करता है—'आयुष्मान्‌ने संघादिसेसका अपराध किया है?' वह ऐसा कहता है—'आवुसो ! मैंने० पाराजिक अपराध किया है।' उसे (यदि) संघ पाराजिकका (दंड) करे, तो यह प्रतिज्ञातकरण अधार्मिक है।०[1]।41

३—(१) "० थुल्लच्चयका अपराध किया है,०[1]। 48

४—(१) "० पाचित्तिय०[1]। 55

५—(१) "० प्रतिदेशनीय०[1]। 62

६—(१) "० दुक्कट०[1]। 69

७—(१) "० दुर्भाषित०[1]। 76

"—भिक्षुओ ! इस प्रकार अधार्मिक प्रतिज्ञातकरण होता है।"

(ग) नियमानुसार प्रतिज्ञातकरण—कैसे भिक्षुओ ! प्रतिज्ञातकरण धार्मिक होता है?—

(क) (१) "एक भिक्षु पाराजिक अपराध किया होता है, उसे संघ० चोदित करता है—'आयुष्मान्‌ने पाराजिक अपराध किया है?' वह ऐसा कहता है—'हाँ आवुसो ! मैंने पाराजिक अपराध किया है। उसे (यदि) संघ पाराजिकका (दंड) करे, तो यह प्रतिज्ञातकरण धार्मिक है। 77

(२) "० संघादिसेस०। 78

(३) "० थुल्लच्चय०। 79

(४) "० पाचित्तिय०। 80

(५) "० प्रतिदेशनीय०। 81

(६) "० दुक्कट०। 82

(७) "० दुर्भाषित०। 83

"—भिक्षुओ ! इस प्रकार प्रतिज्ञातकरण धार्मिक होता है।"

(४) यद्भूयसिक

उस समय भिक्षु संघके बीच भंडन-कलह, विवाद करते एक दूसरेको मुखरूपी शक्तिसे पीड़ित कर रहे थे। उस अधिकरण (=झगड़े)को शान्त न कर सकते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, ऐसे अधिकरणको यद्भूयसिका (=बहुमत)से शान्त करने की।" 84

(क) शलाकाग्रहापककी योग्यता और चुनाव—"भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको शलाकाग्रहापक[2] चुनना (=सम्मंत्रण=मिलकर राय देना) चाहिये—(१) जो न छन्द (=स्वेच्छाचार)के रास्ते जानेवाला होता है; (२) न द्वेष०; (३) न मोह०; (४) न भय०; (५) जो गृहीत-अगृहीत (=लिये-बेलिये)को जानता है। 85

"भिक्षुओ ! इस प्रकार सम्मंत्रण (=चुनाव) करना चाहिये—पहिले उस भिक्षुसे पूछकर चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

---

[1]पाराजिककी भाँति यहाँ छ कोटि तक पाठ है। सम्मति उस समय रंगीन लकड़ीकी शलाकाओंमें ली जाती थी। शलाका वितरण करनेवालेको शलाकाग्रहापक कहते थे।

[2]देखो महावग्ग ९§१ पृष्ठ २९८।

"क. ज्ञ प्ति—'भन्ते! संघ मेरी सुने, यदि संघ उचित समझे, तो संघ अमुक नामवाले भिक्षुको श ला का ग्र हा प क चुने—यह सूचना है।

"ख. अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते! संघ मेरी सुने, संघ अमुक नामवाले भिक्षुको श ला-का ग्र हा प क चुन रहा है, जिस आयुष्मान्‌को अमुक नामवाले भिक्षुके लिये शलाकाग्रहापक होनेकी सम्मति पसंद है, वह चुप रहे, जिसे पसंद न हो वह बोले।

"(२) दूसरी बार भी, 'भन्ते! संघ मेरी सुने०।'

"(३) 'तीसरी बार भी, 'भन्ते! संघ मेरी सुने०।'

"ग. धा र णा—'संघने अमुक नामवाले भिक्षुको शलाकाग्रहापक चुन लिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।'

३—"भिक्षुओ! दस अधार्मिक श ला का ग्र ह ण (=वोट देना) हैं, दस धार्मिक।"

(ख) न्या य वि रु द्ध स म्म ति दा ता—"कैसे दस अधार्मिक शलाकाग्राह हैं?—(१)अवेर-मत्तक अधिकरण(=झगळा) होता है; (२) नहीं गतिमें गया होता है; (३) और नहीं याद कराया करवाया होता है; (४) जानता है कि अधर्मवादी वहुतर (=अधिक संख्या बहुमत) हैं; (५) शायद अधर्मवादी वहुतर हों; (६) जानता है, संघ फूट जायेगा; (७) शायद संघ फूट जाये; (८) अ ध र्म[1]से (शलाका) ग्रहण करते हैं; (९) व र्ग[1]से ग्रहण करते हैं; (१०) अपनी दृष्टि (=मत)के अनुसार (शलाका) ग्रहण करते हैं। यह दस अधार्मिक शलाकाग्राह हैं। 86

(ग) न्या या नु सा र स म्म ति दा न—"कौनसे दस धार्मिक शलाकाग्राह हैं?—(१) अधिकरण अ वे र म त्त क नही होता; (२) गतिमें गया होता राहसे है; (३) याद करा कर-वाया होता है; (४) जानता है, कि धर्मवादी बहुत हैं; (५) शायद धर्मवादी बहुत हैं; (६) जानता है, संघ नहीं फूटेगा; (७) शायद संघ नहीं फूटेगा; (८) ध र्म से (शलाका) ग्रहण करते हैं; (९) स म ग्र[1] हो (शलाका) ग्रहण करते हैं; (१०) अपनी दृष्टि (=मत)के अनुसार ग्रहण करते हैं।—यह दस धार्मिक शलाकाग्राह हैं। 87

(५) तत्पापीयसिक

(क) पू र्व क था—उस समय उ वा ळ भिक्षु संघके वीच आपत्तिके विषयमें जिरह (=उद्योग) करनेपर इन्कारकर स्वीकार करता था, स्वीकार करके इन्कार करता था। दूसरे (प्रकरण) में दूसरी (वात) चला देता था। जानबूझकर झूठ वोलता था। जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे,०। उन्होंने भगवान्‌से यह वात कही।०—

"तो भिक्षुओ! संघ उ वा ळ भिक्षुका त त्पा पी य सि क कर्म (=दंड) करे। 88

"और भिक्षुओ! इस प्रकार करना चाहिये—पहिले उवाळ भिक्षुको चोदित करना चाहिये, चोदितकर स्मरण दिलाना चाहिये, स्मरण दिला आपत्तिका आरोप करना चाहिये। आपत्ति आरोप-कर चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—०[2]।

ग. धा र णा—"संघने उवाळ भिक्षुका तत्पापीयसिक कर्म कर दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।

(ख) नि य मा नु सा र—"भिक्षुओ! तत्पापीयसिक कर्मका करना इन पाँच (प्रकार)

[1]देखो महावग्ग ९§१ पृष्ठ २९८।

[2]सूचना, तीन अनुश्रावण चुल्ल ४§२१४ (ख) ऊपर जैसा।

से धार्मिक होता है––(१) (दोषी व्यक्ति) अशुचि होता है; (२) लज्जाहीन होता है; (३) अनुवाद (=निन्दा)-सहित होता है; (४) उस व्यक्तिका तत्पापीयसिक कर्म संघ ध र्म से करता है; (५) स म ग्र हो करता है।०।89

(ग) नि य म-वि रु द्ध––"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त तत्पापीयसिक कर्म अधर्म कर्म, अविनय कर्म ठीकसे न सम्पादित किया (कहा जाता) है––(१) अनुपस्थितिमें (=अ-संमुख) किया गया होता है; विना पूछे किया गया होता है; प्रतिज्ञा कराये विना किया गया होता है; (२) अ ध र्म. . .से किया गया होता है; (और) (३) व र्ग[1]से किया गया होता है।. . .०[2]। 90

(घ) नि य मा नु सा र––"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त तत्पापीयसिक कर्म धर्मकर्म, विनय-कर्म० (कहा जाता) है––(१) उपस्थितिमें०, (२) पूछकर०, (३) प्रतिज्ञा करा०।०[3]। 91

(ङ) नि य म-वि रु द्ध––"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त तत्पापीयसिक कर्म धर्मकर्म, विनय-कर्म, और सुसंपादित (कहा जाता) है––

"१––(१) सामने किया गया होता है, (२) पूछताँछकर किया गया होता है; (३) प्रतिज्ञात कराकर किया गया होता है।०[4]। 92

(च) दं ड नी य व्य क्ति––"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त भिक्षुको चाहनेपर (=आ कं ख मा न) संघ तत्पापीयसिक कर्म करे। ०[5]।" 93

छ आकंखमान समाप्त

(छ) दं डि त व्य क्ति के क र्त्त व्य––"भिक्षुओ! जिस भिक्षुका तत्पापीयसिक कर्म किया गया है, उसे ठीकसे वर्ताव करना चाहिये, और वह ठीक वर्ताव यह है––(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये; ०[6] (१८) भिक्षुओंके साथ सम्मिश्रण नहीं करना चाहिये।" 94

अट्ठारह तत्पापीयसिक कर्मके व्रत समाप्त

तब संघने उवाळ भिक्षुका तत्पापीयसिक कर्म किया।

(६) तिणवत्थारक

उस समय भंडन, कलह, विवाद करते भिक्षुओंने वहुतसे श्रमण-विरोधी भा सि त प रि क न्त (=कळी चुभती वात)अपराध किये थे। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ––'भंडन० करते हमने बहुतसे श्रमण विरोधी ०अपराध किये हैं। यदि हम इन आपत्तियोंको एक दूसरेके साथ प्रतिकार करायें, तो शायद यह अधिकरण (=झगळा)और भी कठोरता, प्रवलताको प्राप्त हो और फूटका कारण बन जाये। (अव) हमें कैसे करना चाहिये?'

भगवान्से यह बात कही।––

"यदि भिक्षुओ! ०विवाद करते भिक्षुओंने वहुतसे श्रमणविरोधी० अपराध किये हैं, और यदि वहाँ भिक्षुओंको यह हो––यदि हम इन आपत्तियोंको एक दूसरेके साथ प्रतिकार करायें, तो शायद

---

[1]देखो महावग्ग ९§१ पृष्ठ २९८।
[2]तर्जनीय-कर्म महावग्ग ९§४।१ (पृष्ठ ३११)की भाँति विस्तार करना चाहिये।
[3]देखो चुल्ल १§१।३ पृष्ठ ३४२।
[4]देखो चुल्ल १§१।४ पृष्ठ ३४३।
[5]देखो चुल्ल १§१।४-६ पृष्ठ ३४३–४।
[6]देखो चुल्ल १§१।६ पृष्ठ ३४४।

यह ० और भी० फूटका कारण बन जाये; तो भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, ऐसे अ धि क र ण को ति ण-व त्था र क (=तृणसे ढांकने जैसा)से शान्त करनेकी। ९५

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (तिणवत्थारकसे) शान्त करना चाहिये—सबको एक जगह जमा होना चाहिये, जमा हो चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

" 'भन्ते ! संघ मेरी सुने, ०विवाद करते हमने बहुतसे श्रमणविरोधी० अपराध किये हैं,० एक दूसरेके साथ प्रतिकार करायें, तो शायद यह० और भी० फूटका कारण बन जाये। यदि संघको पसंद हो, तो थु ल्ल च्च य और गृहस्थसे संबद्ध (अपराधों)को छोळ, संघ इस अधिकरणको तिणवत्थारकसे शान्त करे।'

"(फिर) एक पक्षवालोंमेंसे चतुर समर्थ भिक्षु अपने संघको सूचित करे—'भन्ते! संघ मेरी सुने. हमने०। यदि संघको पसंदहो, जो (आप) आयुष्मानोंके अपराध (=आपत्ति) हैं, और जो मेरे अपराध हैं, थुल्लच्चय और गृहस्थसे संबद्धको छोळ, आयुष्मानोंके लिये और अपने लिये भी संघके बीच ति ण व त्था र क से उनकी दे श ना (=confession) करूँ।'

"फिर दूसरे पक्षवालोंमेंसे चतुर समर्थ भिक्षु अपने संघको सूचित करे—

" 'भन्ते ! संघ मेरी सुने, ०संघके बीच तिणवत्थारकसे उनकी दे श ना करूँ।'

क. ज प्ति—"एक (पहिले) पक्षवालोंमेंसे चतुर समर्थ भिक्षु ((सारे संघको सूचित करे—

"भन्ते ! संघ मेरी सुने, ०विवाद करते हमने बहुतसे श्रमण-विरोधी० अपराध किये हैं०। यदि संघको पसंद हो, तो थुल्लच्चय और गृहस्थसे संबद्ध (अपराधों)को छोड़, जो इन आयुष्मानोंके अपराध हैं, और जो मेरे अपराध हैं, इन आयुष्मानोंके लिये और अपने लिये भी संघके बीच उनकी ति ण-व त्था र क से दे श ना करूँ—यह सूचना है।

"ख. अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते ! संघ मेरी सुने, ०। थुल्लच्चय और गृहस्थसे संबद्ध अपराधोंको छोड़, जो इन आयुष्मानोंके अपराध हैं और जो मेरे अपराध हैं,० संघके बीच ति ण व त्था-र क से उनकी देशना कर रहा हूँ। जिस आयुष्मान्‌को, हमारा० इन आपत्तियोंकी संघके बीच तिणव-त्थारक देशना पसंद है, वह चुप रहे जिसको पसंद न हो वह बोले।

"(२) 'दूसरी बार भी०।

"(३) 'तीसरी बार भी०।

"ग. धा र णा—'हमने ० इन आपत्तियोंकी संघके बीच तिणवत्थारक देशना कर दी। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।'

"तब दूसरे पक्षवाले भिक्षुओंमेंसे एक चतुर समर्थ भिक्षु (सारे) संघको सूचित करे—

"क. ज प्ति—'भन्ते ! संघ मेरी सुने—०[1]

"ग. धा र णा—'हमने ० इन आपत्तियोंकी संघके बीच तिणवत्थारक देशना कर दी। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।'

"भिक्षुओ ! इस प्रकार वह भिक्षु, थुल्लच्चय और गृहस्थसे संबद्ध आपत्तियोंको छोड़, उन आपत्तियोंसे छूटते हैं।"

§३—चार अधिकरण, उनके मूल, भेद, नाम-करण और शमन

उस समय भी भिक्षु भिक्षुणियोंके साथ विवाद करते थे, भिक्षुणियाँ भी भिक्षुओंके साथ विवाद

[1] पहिले पक्षकी भाँति ही यहाँ भी सूचना (=ज्ञप्ति) और अनुश्रावण समझना चाहिए।

करती थीं। छन्न भिक्षु भिक्षुणियोंकी ओर हो भिक्षुणियोंके साथ विवाद करता, भिक्षुणियोंका पक्ष ग्रहण करता था। जो वह अल्पेच्छ० भिक्षु थे; वह हैरान० होते थे—०।

"सचमुच भिक्षुओ! ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्!"

०फटकारकर भगवान्ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

(१) अधिकरणोंके भेद

"भिक्षुओ! यह चार अधिकरण हैं—(क) विवाद-अधिकरण; (ख) अनुवाद-अधिकरण; (ग) आपत्ति-अधिकरण; (घ) कृत्य-अधिकरण। 96

(क). वि वा द-अ धि क र ण—"क्या है विवाद-अधिकरण?—जब भिक्षुओ! भिक्षु यह धर्म है या अधर्म है।' 'यह विनय है या अविनय।' 'यह तथागतका लपित=भाषित है, तथागतका लपित =भाषित नहीं है', 'तथागतने ऐसा आचरण किया है, आचरण नहीं किया', 'तथागतने विधान किया है, तथागतने विधान नहीं किया है', 'आपत्ति (=अपराध) है, आपत्ति नहीं है', 'लघुक (=छोटी) आपत्ति है, गुरुक (बड़ी) आपत्ति है', 'सावशेष (=कुछ ही) आपत्ति है, निरवशेष (=संपूर्ण) आपत्ति है', दुट्ठुल्ल (=दुःस्थौल्य=पाराजिक, संघादिसेस)आपत्ति है, अदुट्ठुल्ल आपत्ति है'—वहाँ जो भंडन= कलह=विग्रह=विवाद, नानावाद (=विरुद्धवाद), अन्यथावाद (=उल्टावाद) नाराज़गीका व्यवहार, मेधक (=कटुभाषी) है; यह कहा जाता है वि वा द-अ धि क र ण। 97

(ख) अ नु वा द - अ धि क र ण—"क्या है अनुवाद-अधिकरण?—जब भिक्षुओ! भिक्षु (दूसरे) भिक्षुको शीलभ्रष्ट होने, आचारभ्रष्ट होने, दृष्टि (=सिद्धान्त)-भ्रष्ट होने, बुरी आजीव (=रोजी)वाला होनेको अनुवाद (=दोषारोपण) करते हैं, वहाँ जो अनुवाद=अनुवदन=अनु- ल्लपन=अनुभणन, अनुसंप्रवंकन[1],=अभ्युत्सहनता[2], अनुबलप्रदान[3] होता है; यह कहा जाता है अ नु वा द - अ धि क र ण। 98

(ग). आ प त्ति - अ धि क र ण—"क्या कहा जाता है, आपत्ति-अधिकरण?—पाँचों आपत्ति-स्कंध (=दोषोंके समुदाय)) आपत्ति - अधिकरण हैं, सातों आपत्ति-स्कंध आ प त्ति-अ धि- क र ण हैं। 99

(घ). कृ त्य-अ धि क र ण—"क्या है आपत्ति-अधिकरण?—जो संघके कृत्य=करणीय, अवलोकनकर्म, ज्ञ प्ति-कर्म[4], ज्ञ प्ति-द्वि ती य क र्म[5], ज्ञ प्ति-च तु र्थ क र्म[6] हैं; यह कहा जाता है, कृ त्य - अ धि क र ण।" 100

(२) अधिकरणोंके मूल

क. वि वा द-अ धि क र णों के मूल="विवाद-अधिकरणका क्या मूल है? (क) छ

---

[1]काय, वचन, चित्तसे उसीमें झुंक रहना।

[2]दोषारोपणमें उत्साह।

[3]पहिली बातको कारण बता पिछली बातके लिये बल देना।

[4]संघकी सम्मति लेते वक्त, प्रस्तावकी सूचनाको ज्ञप्ति कहते हैं।

[5]किसी असाधारण परिस्थितिमें एक ज्ञप्ति और एक अनुश्रावणके बादही संघकी सम्मति लेली जाती है, उसे ज्ञप्ति-द्वितीयकर्म कहते हैं।

[6]साधारण परिस्थितिमें पहिले एक ज्ञप्ति फिर तीन अनुश्रावण करके संघकी सम्मति ली जाती है, इसे ज्ञप्ति-चतुर्थ कर्म कहते हैं।

विवाद करनेके मूल भी हैं; (ख) (लोभ-द्वेष-मोह=) तीन अकुशल-मूल (=बुराइयोंकी जळ) विवाद-अधिकरणके मूल हैं; (ग) (=अलोभ-अद्वेष-अमोह)—तीन कुशल-मूल (=भलाइयोंकी जळ) भी विवाद-अधिकरणके मूल हैं। 101

(क) "कौनसे छ विवादमूल विवाद-अधिकरणके मूल हैं?—(१) जब भिक्षुओ! भिक्षु क्रोधी, उपनाही (=पाखंडी) होता है। जो कि भिक्षुओ! वह भिक्षु क्रोधी, उपनाही होता है, (उससे) वह शास्ता (=बुद्ध)में श्रद्धा-सत्कार-रहित हो विहरता है, धर्ममें भी०, संघमें भी०। शिक्षा (=भिक्षुओंके नियम)को भी पूर्ण करनेवाला नहीं होता। जो कि भिक्षुओ! वह भिक्षु शास्तामें श्रद्धा-सत्कार रहित हो विहरता है० शिक्षाको भी पूर्ण करनेवाला नहीं होता, वह संघमें वि वा द उत्पन्न करता है। और वह विवाद बहुत लोगोंके अहित, असुखके लिये होता है, बहुतसे लोगोंके अनर्थके लिये (होता है), देव-मनुष्योंके अहित और दुःखके लिये होता है। भिक्षुओ! यदि इस प्रकारके विवाद-मूलको तुम अपने भीतर या बाहर देखना; तो भिक्षुओ! तुम उस पापी विवाद-मूलके प्रहाण (=विनाश, त्याग) के लिये उद्योग करना। यदि भिक्षुओ! तुम इस प्रकारके विवाद-मूलको अपने भीतर या बाहर न देखना; तो भिक्षुओ! तुम उस पापी विवाद-मूलके भविष्यमें न उत्पन्न होने देनेके लिये प्रयत्न करना। इस प्रकार इस पापी विवाद-मूलका विनाश होता है; इस प्रकार इस पापी विवाद-मूलका भविष्यमें न उत्पन्न होना होता है। जब भिक्षुओ! भिक्षु (२) म्रक्षी (=अमरखी), पलासी (=प्रदासी—निष्ठुर) होता है,०।०(३) ईर्ष्यालु, मत्सरी होता है,०।०(४) शठ, मायावी होता है,०। (५) ०पापेच्छ (=बदनीयत), मिथ्यादृष्टि (=बुरी धारणावाला) होता है०। ०(६) संदृष्टि-परामर्शी (=वर्तमानका देखनेवाला), आधान-ग्राही (=डाह रखनेवाला), छोळनेमें मुश्किल करनेवाला होता है। जो भिक्षुओ! भिक्षु संदृष्टिपरामर्शी० होता है, वह शास्तामें भी श्रद्धा सत्कार रहित होता है०।' यह छ विवादमूल विवाद-अधिकरणके मूल हैं। 102

(ख) "कौनसे तीन अकुशल-मूल (=बुराइयोंकी जळ) विवाद-अधिकरणके मूल हैं? जब भिक्षु लोभ-युक्त चित्तसे विवाद करते हैं, द्वेष-युक्त चित्तसे०, मोह-युक्त चित्तसे विवाद करते हैं—'धर्म है या अधर्म'०[1] अट्टुट्ठुल्ल आपत्ति है'। यह तीन कुशल-मूल विवाद-अधिकरणके मूल हैं। 101

(ग) कौन से तीन कुशल-मूल विवाद-अधिकरणके मूल हैं?—"जब भिक्षु लोभरहित चित्तवाले हो विवाद करते हैं, द्वेषरहित०, मोहरहित० चित्तवाले हो विवाद करते हैं—'धर्म है या अधर्म',०। यह तीन कुशल-विवाद-अधिकरणके मूल हैं। 103

ख. अ नु वा द - अ धि क र ण के मू ल—क. "अनुवाद-अधिकरणका क्या मूल है?—(क) छ अनुवाद करनेके मूल भी हैं; (ख) तीनों अकुशल-मूल (=लोभ, द्वेष, मोह) अनुवाद-अधिकरणके मूल हैं; (ग) तीनों कुशल-मूल (=अलोभ, अद्वेष, अमोह) अनुवाद-अधिकरणके मूल हैं; (घ) काया भी अनुवाद-अधिकरणका मूल है; (ङ) वचन भी अनुवाद-अधिकरणका मूल है। 104

(क) "कौनसे अनुवाद-मूल अनुवाद-अधिकरण-मूल हैं?—जब भिक्षुओ! भिक्षु (१) क्रोधी, उपनाही (=पाखंडी) होता है०[1] शिक्षाको भी पूर्ण करनेवाला नहीं होता। वह संघमें अ नु वा द उत्पन्न करता है। और वह अनुवाद बहुत लोगोंके अहित, असुखके लिये होता है।०[1] (६) संदृष्टि-परामर्श, आधानग्राही (=हठी) होता है०[1]। भिक्षुओ! यदि इस प्रकारके अनुवादमूल-को तुम अपने भीतर या बाहर देखना; तो भिक्षुओ! तुम उस पापी अनुवाद-मूलके प्रहाणके लिये उद्योग

[1]गणना उस समय रंगीन लकळीकी शलाकाओंसे ली जाती थी। शलाका वितरण करनेवालेको शलाकाग्राहापक कहते थे।

करना ।०[1]। भिक्षुओ ! यह छ अनुवाद-मूल अ नु वा द-अ धि क र णके मूल हैं। 105

(ख) "कौनसे तीन अकुशल-मूल अनुवाद-अधिकरणके मूल हैं ? जब०लोभयुक्त चित्तसे०, द्वेषयुक्त चित्तसे०, मोहयुक्त चित्तसे० अनुवाद करते हैं—'धर्म[1] या अधर्म' ०। 106

(ग) "कौनसे तीन कुशल-मूल अनुवाद-अधिकरणके मूल हैं ? जब भिक्षु लोभ-रहित चित्त हो अ नु वा द करते हैं०, द्वेपरहित०, मोह-रहित०। 107

(घ) "कौनसा काम अनुवाद अधिकरण का मूल है ?—जब कोई (व्यक्ति) कुरूप, दुर्दर्शन—ओकोटिमक (=नाटा), बहुरोगी, काना, लूला, लंगड़ा, पक्षाघात (=लकवे) वाला होता है, और उसे लेकर (दूसरे) उसका अ नु वा द करते हैं; ऐसी काया अनुवाद-अधिकरणका मूल होती है। 108

(ङ) "कौनसी वाणी अनुवाद-अधिकरणका मूल है ?—जब दुर्वचन (बोलनेवाला), दुर्मन, हकलाकर बोलनेवाला, होता है, जिसे लेकर उसका अनुवाद करते हैं; यह वाणी अनुवाद-अधिकरणका मूल है। 109

ग. "आ प त्ति-अ धि क र ण के मू ल,—क्या है आपत्ति-अधिकरण का मूल ?—आपत्तियाँ (=दोप) जिनसे उठते हैं वह० छ (आपत्ति-समुत्थान) आपत्ति-अधिकरणके मूल हैं। (१) (कोई) आपत्ति-कायासे उठती है, वचन और चित्तसे नहीं; (२) कोई आपत्ति वचनसे उठती है, काया और चित्तसे नहीं; (३) कोई आपत्ति काया और वचन (दोनों)से उठती है, चित्तसे नहीं; (४) कोई आपत्ति काया और चित्त (दोनों)से उठती है, वचनसे नहीं; (५) कोई आपत्ति चित्त और वचन (दोनों)से उठती है, कायासे नहीं; (६) कोई आपत्ति काय, वचन और चित्त (तीनों)से उठती है। यह छ आपत्ति-समुत्थान 'आपत्ति-अधिकरणके मूल हैं।' 110

घ. कृ त्य-अ धिक र ण—"कृत्य-अधिकरणका क्या मूल है ?—कृत्य-अधिकरणका एक मूल है संघ।" 111

(३) अधिकरणोंके भेद

(क) विवाद-अधिकरणके भे द—"(क्या) विवाद-अधिकरण कुशल (=अच्छा), अकुशल (=बुरा), अव्याकृत (=न अच्छा न बुरा) होता है?—विवाद-अधिकरण (१) कुशल भी हो सकता है, (२) अकुशल भी०; (३) अव्याकृत भी हो सकता है ?

"(१) कौनसा विवाद-अधिकरण कुशल है ?—जब भिक्षुओ ! भिक्षु अच्छे (=कुशल) चित्त से विवाद करते हैं—'धर्म है, अधर्म है'०[2] नाराजगीका व्यवहार. . . .है। यह कहा जाता है, कुशल विवाद-अधिकरण।

"(२) कौनसा० अकुशल है ?—० बुरे (=अकुशल) चित्तसे विवाद करते हैं—०।

"(३) कौनसा० अव्याकृत है ?—० अव्याकृत (न अच्छे ही न बुरे ही) चित्तसे विवाद करते हैं। 112

(ख) अ नु वा द अ धि क र ण के भेद—"(क्या) अनुवाद-अधिकरण कुशल, अकुशल, अव्याकृत होता है ?—अनुवाद-अधिकरण (१) कुशल भी हो सकता है; (२) अकुशल भी०; (३) अव्याकृत भी हो सकता है।

---

[1]सम्मति उस समय रंगीन लकळीकी शलाकाओंसे ली जाती थी। शलाका वितरण करनेवालेको शलाकाग्रहापक कहते थे। [2]देखो चुल्ल ४§३।१ पृष्ठ ४०६।

"(१) ०?—जब० अच्छे चित्तसे शील भ्रष्ट होने० का अनुवाद करते हैं। (२) ० बुरे चित्तसे०[1]। (३)० न अच्छे-न बुरे चित्तसे०। 113

(ग) आ प त्ति-अ धि क र ण के भेद—"(क्या) आपत्ति-अधिकरण कुशल, अकुशल, अव्याकृत होता है?—आपत्ति-अधिकरण (१) अकुशल भी हो सकता है; (२) अव्याकृत भी०; किन्तु० कुशल नहीं हो सकता।

"(१) कौनसा० अकुशल है?—जो जान, समझ, सोच, निश्चय करके वीतिक्कम (=व्यतिक्रम) है; यह कहा जाता है अकुशल आपत्ति-अधिकरण।

"(२) कौनसा० अव्याकृत है?—जो विना जाने विना समझे, विना सोचे, विना निश्चय किये व्यति-क्रम है; यह कहा जाता है अव्याकृत आपत्ति-अधिकरण। 114

(घ) कृ त्य - अ धि क र ण —"(क्या) कृत्य-अधिकरण कुशल, अकुशल, अव्याकृत होता है?—कृत्य-अधिकरण (१) कुशल भी हो सकता है; (२) अकुशल०; (३) अव्याकृत०।

"(१) कौनसा० कुशल है? संघ कुशल (=अच्छे) चित्तसे जो क र्म=अवलोकन कर्म, ज्ञप्ति-कर्म, ज्ञप्ति-द्वितीय-कर्म, ज्ञप्ति-चतुर्थ-कर्म करता है; यह कहा जाता है कुशल कृत्य-अधिकरण।

"(२)०?—संघ अकुशल चित्तसे जो क र्म ० करता है; ०।

"(३)०?—संघ अव्याकृत चित्तसे जो क र्म ० करता है; ०।" 115

(४) विवाद आदि और उनका अधिकरणसे संबंध

(क)—वि वा द और अ धि क र ण—"(क्या) विवाद विवाद-अधिकरण, विवाद विना अधिकरण, अधिकरण विना विवाद, और अधिकरण और विवाद (दोनों) (होते हैं?)—(१) विवाद विवाद-अधिकरण हो सकता है; (२) विवाद विना अधिकरणके हो सकता है; (३) अधिकरण विना विवादके हो सकता है; (४) अधिकरण और विवाद (दोनों साथ साथ) हो सकते हैं।

"(१) कौनसा विवाद विवाद-अधिकरण होता है? —जब भिक्षु विवाद करते हैं—'धर्म है०[2]। वहाँ जो भंडन-कलह ०[3] है; यह विवाद विवाद-अधिकरण है। 116

"(२) कौनसा विवाद विना अधिकरणका है?—माताभी पुत्रके साथ विवाद करती है, पुत्र भी माताके साथ०, पिता भी पुत्रके साथ०, पुत्रभी पिताके साथ०, भाई भी भाईके साथ ०, भाई भी बहिनके साथ०, बहिन भी भाईके साथ०, मित्रभी मित्रके साथ०। यह विवाद विना अधिकरणके है। 117

"(३) कौनसा अधिकरण विना विवादका है? अनुवाद-अधिकरण, आपत्ति-अधिकरण और कृत्य-अधिकरण यह अधिकरण विना विवादके हैं। 118

"(४) कौनसे अधिकरण और विवाद (दोनों साथ साथ) होते हैं?—विवाद-अधिकरणमें अधिकरण और विवाद (दोनों साथ साथ) होते हैं। 119

(ख)—अ नु वा द औ र अ धि क र ण—"०?—(१) अनुवाद-अधिकरण हो सकता है; (२) अनुवाद विना अधिकरण०; (३) अधिकरण विना अनुवाद०; (४) अधिकरण और अनुवाद (दोनों साथ साथ) हो सकते हैं।

"(१) कौनसा अनुवाद अनुवाद-अधिकरण है?—जब भिक्षु (दूसरे) भिक्षुका शील भ्रष्ट ०

[1] देखो चुल्ल ४§३।२ पृष्ठ ४०६-७।
[2] देखो चुल्ल ४§३।१ पृष्ठ ४०६।
[3] देखो ऊपर (विवाद-मूल ८ जैसा)।

होनेका अनुवाद करते हैं। जो वहाँ अनुवाद० होता है, वह अनुवाद अनुवाद-अधिकरण है। 120

"(२)०?—माताभी पुत्रका अनुवाद (=शिकायत) करती है०। 121

"(३)०?—आपत्ति-अधिकरण, कृत्य-अधिकरण, विवाद-अधिकरण यह बिना अनुवादके अधिकरण हैं। 122

"(४)०?—अनुवाद-अधिकरणमें अधिकरण और अनुवाद (दोनों साथ साथ) होते हैं। 123

(ग) आपत्ति और अधिकरण के—"०?—(१) आपत्ति आपत्ति-अधिकरण हो सकती है; (२) आपत्ति बिना अधिकरण०; (३) अधिकरण बिना आपत्ति०; (४) अधिकरण और आपत्ति (दोनों साथ साथ) हो सकती हैं।

"(१) कौनसी आपत्ति आपत्ति अधिकरण है?—पाँच आपत्ति स्कंध (=दोषोंके समूह) आपत्ति-अधिकरण हैं, सातों आपत्ति-स्कंध आपत्ति-अधिकरण हैं—यह आपत्ति आपत्ति-अधिकरण है। 124

"(२) ०?—स्रोत-आपत्ति, समापत्ति[1] की यह आपत्ति है, किन्तु अधिकरण नहीं।' 125

"(३) कौन अधिकरण बिना आपत्तिका है?—कृत्य-अधिकरण, विवाद-अधिकरण, अनुवाद-अधिकरण; यह अधिकरण हैं किन्तु आपत्ति नहीं। 126

"(४)०?—आपत्ति-अधिकरण, अधिकरण और आपत्ति (दोनों) साथ साथ हैं। 127

(घ) ४—कृत्य-अधिकरण—"०?—(१) कृत्य कृत्य-अधिकरण हो सकता है; (२) कृत्य बिना अधिकरण०; (३) अधिकरण बिना कृत्य०; (४) अधिकरण और कृत्य (दोनों साथ साथ) हो सकते हैं।

"(१)०?—जो संघका कृत्य करना, करणीय करना, अवलोकन कर्म, ज्ञप्ति-कर्म, ज्ञप्ति-द्वितीय-कर्म, ज्ञप्ति चतुर्थ-कर्म, यह कृत्य कृत्य-अधिकरण है। 128

"(२)०?—आचार्यका काम (=कृत्य), उपाध्यायका कृत्य, एक उपाध्यायवाले (गुरु भाई) का कृत्य, एक आचार्यवाले (गुरुभाई) का कृत्य—यह कृत्य हैं, (किन्तु) अधिकरण नहीं। 129

"(३)०?—विवाद-अधिकरण, अनुवाद अधिकरण आपत्ति-अधिकरण यह अधिकरण हैं, किन्तु कृत्य नहीं। 130

"(४)०?—कृत्य-अधिकरण (ही) अधिकरण और कृत्य (दोनों) साथ साथ हैं।" 131

(५) अधिकरणोंका शमन

१—विवाद-अधिकरण—"विवाद-अधिकरण कितने शमथों (=शांतिके उपाय मिटानेके उपाय) से शान्त होता है? विवाद-अधिकरण दो शमथोंसे शांत होता है—(क)—संमुख (=उप-स्थितिमें)-विनयसे; और (ख) यद्भूयसिकसे भी क्या ऐसा भी। विवाद-अधिकरण हो सकता है, जो यद्भूयसिकके विना (सिर्फ) एक संमुख-विनयसे ही शान्त हो ? हो सकता है—कहना चाहिये। 132

I—संमुख विनयसे—"किस तरह ? जब भिक्षु (आपसमें) विवाद करते हैं—'धर्म है० [2]। यदि भिक्षुओ! वह भिक्षु उस अधिकरणको (आपसमें) शान्त कर सकते हैं; तो भिक्षुओ!

---

[1] यहाँ आपत्तिका अर्थ प्राप्ति है। निर्वाणगामी स्रोतमें प्राप्त होनेको स्रोतआपत्ति कहते हैं। समाधिकी आपत्ति (=प्राप्ति)को समापत्ति कहते हैं।

[2] देखो चुल्ल० ४§३।१ पृष्ठ ४०६।

यह अधिकरण उपशान्त (=शान्त) कहा जाता है। किसके द्वारा उपशान्त ?—संमुख-विनय द्वारा। क्या है वहाँ संमुख-विनय ?—(१) संघके संमुख होना; (२) धर्मके संमुख होना; विनय (=नियम)के संमुख होना; (३) व्यक्तिके संमुख होना।

"(१) क्या है संघके संमुख होना ?—जितने भिक्षु कर्म-प्राप्त (=जिनका न्याय होनेवाला है) हैं वह आगये हों; (अनुपस्थित) छन्द (=vote) देने लायक भिक्षुओंका वोट लाया गया हो; संमुख (=उपस्थित) हुए (भिक्षु) प्रतिक्रोश (=कोसना) न करते हों; यह है वहाँ संघका संमुख होना। (२) क्या है संमुख-विनय होना ?—जिस विनय (=भिक्षु-नियम), जिस धर्म (=बुद्धके उपदेश)=जिस शास्ताके शासनसे वह अधिकरण शान्त होता है, वह विनयका संमुख होना है। (३) क्या है व्यक्तिका संमुख होना ?—जो विवाद करता है, और जिसके साथ विवाद करता है, दोनों अर्थी-प्रत्यर्थी (=वादी-प्रतिवादी) उपस्थित (=संमुखीभूत) रहते हैं; यह है वहाँ व्यक्तिका संमुख होना। भिक्षुओ! इस प्रकार शान्त हो गये अधिकरणको यदि कारक (=करनेवाला कोई पुरुष) फिरसे उभाळे (=उत्कोटन करे)तो (उसे); उत्कोटनक-पाचित्तिय (=०प्रायश्चित्तीय) हो; छन्द (=vote) देनेवाला यदि (पीछेसे) पछतावे (=खीयति), तो खीयनक-पाचित्तिय हो। 133

२—"यदि भिक्षुओ! वह भिक्षु उस अधिकरण(=मुकदमे)को उसी आवासमें नहीं शान्त कर सकते; तो.....उन भिक्षुओंको जिस आवास (=मठ)में अधिक भिक्षु हों वहाँ जाना चाहिये। वह भिक्षु.. यदि उस आवासमें जाते वक्त रास्तेमें उस अधिकरणको शान्त कर सकें, तो भिक्षुओ! वह अधिकरण शान्त कहा जाता है। किसके द्वारा शान्त कहा जाता है?—संमुख-विनयसे। क्या है वहाँ संमुख विनय?—० तो खीयनक-पाचित्तिय हो। 134

३—"यदि भिक्षुओ! वह भिक्षु उस आवासमें जाते वक्त रास्तेमें उस अधिकरणको नहीं शान्त कर सकते; तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको उस आवासमें जा आवासिक (=मठ-निवासी) भिक्षुओंसे यह कहना चाहिये—आवुसो! यह अधिकरण इस प्रकार पैदा हुआ, इस प्रकार उत्पन्न हुआ; अच्छा हो (आप) आयुष्मान् इस अधिकरणको धर्म विनय-शास्ताके शासनसे जैसे यह अधिकरण शान्त हो, वैसे इसे शान्त कर दें। यदि भिक्षुओ! आवासिक भिक्षु अधिक वृद्ध हों, और नवागन्तुक (विवाद करनेवाले) भिक्षु अधिक नये; तो आवासिक भिक्षुओंको नवागन्तुक भिक्षुओंसे यह कहना चाहिये—जब तक मुहूर्त भर (आप) आयुष्मान् एक ओर रहें, तब तक हम (आपसमें) सलाह (=मंत्रणा) करें। यदि भिक्षुओ! आवासिक भिक्षु अधिक नये हों, और नवागन्तुक भिक्षु अधिक वृद्ध; तो आवासिक भिक्षुओंको नवागन्तुक भिक्षुओंसे यह कहना चाहिये—'तो (आप) आयुष्मान् मुहूर्तभर यहीं रहें, जब तक कि हम सलाह कर आयें।' यदि भिक्षुओ! (आपसमें) सलाह करते आवासिक भिक्षुओंको ऐसा हो—'हम इस अधिकरणको धर्म, विनय, शास्ताके शासन (=बुद्ध-उपदेश)के अनुसार शान्त नहीं कर सकते; तो भिक्षुओ! उन आवासिक भिक्षुओंको उस अधिकरणको फैसला करनेके लिये नहीं स्वीकार करना चाहिये। यदि भिक्षुओ! (आपसमें) सलाह करते आवासिक भिक्षुओंको ऐसा हो—'हम इस अधिकरणको धर्म, विनय, शास्ताके शासनके अनुसार शान्त कर सकते हैं'; तो भिक्षुओ! उन आवासिक भिक्षुओंको नवागन्तुक भिक्षुओंसे यह कहना चाहिये—[illegible] आयुष्मान् यह अधिकरण कैसे पैदा हुआ, कैसे उत्पन्न हुआ—यह हमसे कहो, तो हम ऐसे [illegible] धर्म, विनय, शास्ताके शासनके अनुसार शान्त करेंगे, उससे यह अच्छी तरह शान्त [illegible] होनेपर हम इस अधिकरणको (फैसलेके लिये) स्वीकार करेंगे, यदि तुम आयुष्मान् [illegible] कैसे पैदा हुआ, कैसे उत्पन्न हुआ,—यह हमसे न कहोगे, तो हम जैसे इस अधिकरणको [illegible] शास्ताके शासनके अनुसार शान्त करेंगे, उससे यह अच्छी तरह शान्त न होगा। (तब)

हम इस अधिकरणको फैसला करनेके लिये, नहीं स्वीकार करेंगे।' भिक्षुओ! इस प्रकार अच्छी तरह समझ, आवासिक भिक्षुओंको वह अधिकरण लेना चाहिये। भिक्षुओ! उन नवागन्तुक भिक्षुओंको आवासिक भिक्षुओंसे ऐसा कहना चाहिये—'यह अधिकरण जैसे उत्पन्न हुआ, जैसे पैदा हुआ वैसे हम आयुष्मानोंको बतलायेंगे; यदि (आप) आयुष्मान् इतने बीचमें इस अधिकरणको धर्म०से ऐसे शान्त कर सकें, कि यह अधिकरण अच्छी तरह शान्त हो जाये; तो हम इस अधिकरणको आयुष्मानोंको दे दें। यदि आयुष्मान्० नहीं कर सकते०, तो हम इस अधिकरणको आयुष्मानोंको न देंगे, हम ही इस अधिकरणके स्वामी होंगे। भिक्षुओ! इस प्रकार अच्छी तरह समझ नवागन्तुक भिक्षुओंको वह अधिकरण आवासिक भिक्षुओंको देना चाहिये। भिक्षुओ! यदि वह भिक्षु उस अधिकरणको शान्त कर सकते हैं, तो यह अधिकरण अच्छी तरह शान्त कहा जाता है। किसके द्वारा शान्त?—संमुख-विनयसे।० खी य न क पा चि त्ति य हो। 135

"भिक्षुओ! यदि उस अधिकरणके विचार करते वक्त उन भिक्षुओंमें अनर्गल बातें होने लगती हैं, भाषणका अर्थ नहीं समझ पळता, तो भिक्षुओ! अ नु म ति दे ता हूँ ऐ से अ धि क र ण को उ द्वा हि का (=Select Committee)से श म न क र ने की। 136

II—उद्‌वाहिका, "भिक्षुओ! दस बातोंसे युक्त भिक्षुको उद्‌वाहिकाके लिये चुनना चाहिये—(१) सदाचारी (=शीलवान्) होता है; प्रा ति मो क्ष (=भिक्षु नियमों)के संवर (=संयम)से रक्षित आचार-गोचरसे युक्त, छोटे दोषोंमें भी भयखानेवाला हो विहरता है। शिक्षापदों (=आचार-नियमों)को ग्रहणकर अभ्यास करता है। (२) बहुश्रुत—श्रुतधर, (उपदेशोंको अच्छी तरह संचय करनेवाला) हो, जो वह धर्म आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण, और अन्त-कल्याण है सार्थक, संव्यंजन केवल (=विशुद्ध)–परिपूर्ण–परिशुद्ध-ब्रह्मचर्यको बतलाते हैं, वह ध र्म, उसने बहुत सुने हैं, वचनमें धारण किये मनसे परिचित, दृ ष्टि (=सिद्धान्त)से परीक्षित होते हैं। (३) भिक्षु-भिक्षुणी, दोनों ही प्रा ति मो क्षको विस्तार-पूर्वक याद किये अच्छी तरह विभाजित (=समझे), सुप्रवर्त्ति (=सुव्याख्यात) सूत्र और अनुव्यंजन (=विस्तार)से सुविनिश्चित =सुमीमांसित होते हैं। (४) और दृढ हो विनयमें स्थित हो, (५) दोनों हो वादी-प्रतिवादी दोनों हीको समझाने, बुझाने, जतलाने, दिखलाने, मानने मनवानेमें समर्थ हो। (६) अधिकरणकी उत्पत्तिके शान्त करनेमें चतुर जतलाने, दिखवाने, मानने मनवानेमें समर्थ हो। (६) अधिकरणकी उत्पत्तिके शान्त करनेमें चतुर हो। (७) अधिकरणको जानता हो। (८) अधिकरणके कारण (= समुदय)०। (९) अधिकरणके नाश (=०निरोध); (१०) अधिकरणके नाशकी ओर ले जानेवाले मार्ग (=प्रतिपद्)को जानता हो। भिक्षुओ! इन दस बातोंसे युक्त भिक्षुओंके उ द्वा हि का के लिये चुननेकी मैं अनुमति देता हूँ। 137

"और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनाव करना चाहिये।

"(१) या च ना—पहिले उस भिक्षुसे पूछना चाहिये।

"फिर चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क. ज्ञ प्ति—"भन्ते! संघ मेरी सुने—हमारे इस अधिकरणपर विचार करते समय अनर्गल बातें होने लगती हैं, भाषणका अर्थ नहीं समझ पळता, यदि संघ उचित समझे तो संघ, इस अधिकरणको उद्वाहिकासे शमन करनेके लिये अमुक अमुक भिक्षुओंको चुने—यह सूचना है।

ख. अ नु श्रा व ण—(१) "'भन्ते! संघ मेरी सुने,० संघ इस अधिकरणको उद्वाहिकासे शमन करनेके लिये अमुक अमुक भिक्षुओंको चुन रहा है; जिस आयुष्मान्‌को पसंद हो वह चुप रहे, जिसको पसंद न हो वह बोले।

(२) "'दूसरी बार भी, भन्ते! संघ०।

(३) "'तीसरी बार भी, भन्ते! सं०।

ग. धा र णा—"'संघने इस अधिकरणको उद्वाहिकासे शमन करनेके लिये अमुक अमुक भिक्षुको चुन लिया। संघको पसंद है, इस लिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।'

"भिक्षुओ! यदि वह भिक्षु उद्वाहिका (=उब्बाहिका)से उस अधिकरणको शान्त कर सकते हैं, तो भिक्षुओ! यह अधिकरण शान्त कहा जाता है। किसके द्वारा शान्त? सं मु ख - वि न न य से।० उक्कोटनिक-पा चि त्ति य हो। 138

"भिक्षुओ! यदि उस अधिकरणपर विचार करते समय वहाँ कोई (ऐसा) धर्म-कथिक (=धर्मका व्याख्याता) हो, जिसे न सूत्र ही आता हो न सू त्र वि भं ग[1] (=सुत्तविभंग विनय) ही; वह अर्थको विना समझे व्यंजन (=अक्षर)की छाया पकळ अर्थका अनर्थ करता हो; तो भिक्षुओ! चतुर समर्थ भिक्षु उन भिक्षुओंको सूचित करे—

क. ज्ञ प्ति—"आयुष्मानो! मेरी सुनो, यह अमुक नामवाला धर्म कथिक भिक्षु है,० अर्थका अनर्थ कर रहा है; यदि आयुष्मानोंको पसंद हो तो अमुक नामवाले भिक्षुको उठाकर हम बाकी इस अधिकरणको शान्त करें—यह सूचना है।०[2] 139

"यदि भिक्षुओ! वह भिक्षु उस भिक्षुको उठाकर उस अधिकरणको शान्त कर सके, तो... वह अधिकरण शान्त कहा जाता है। किसके द्वारा शान्त? सं मु ख-वि न य द्वारा।०[3] उक्कोटनिक पाचित्तिय हो।

"भिक्षुओ! यदि उस अधिकरणका विचार करते समय वहाँ कोई (ऐसा) धर्मकथिक हो, जिसे सू त्र आता हो, किन्तु सू त्र-वि भं ग नहीं। वह अर्थको विना समझे व्यंजनकी छाया पकड़ अर्थका अनर्थ करता हो; तो भिक्षुओ! चतुर समर्थ भिक्षु उन भिक्षुओंको सूचित करे—

क. ज्ञ प्ति "० आयुष्मानो! मेरी सुनो।० यदि आयुष्मानोंको पसंद हो, तो अमुक भिक्षुको उठ कर बाकी इस अधिकरणको शान्त करें—यह सूचना है ०।०।

"यदि भिक्षुओ! वह भिक्षु उस भिक्षुको उठाकर उस अधिकरणको शान्त कर सकें, तो... वह अधिकरण शान्त कहा जाता है। किसके द्वारा शान्त? सं मु ख-वि न य द्वारा।० उक्कोटनिक-पाचित्तिय हो। 140

III. य द् भू य सि का से नि र्ण य—"भिक्षुओ! यदि वह भिक्षु उद्वाहिकासे उस अधिकरणको शान्त न कर सकते हों, तो भिक्षुओ! वह (उद्वाहिकावाले) भिक्षु उस अधिकरणको संघके सुपुर्द कर दें—'भन्ते! हम इस अधिकरणको उद्वाहिकासे नहीं शान्त कर सकते, संघ इस अधिकरणको शान्त करे।'

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ ऐसे दस प्रकारके अधिकरणको यद्भूयसिकासे शान्त करनेकी। 141

(1) शलाकाग्रहापकका चुनाव—"भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको श ला का ग्र हा प क चुनना चाहिये—(१) जो न छन्दके रास्ते जाता हो;०[4]। 142

क. ज्ञ प्ति०। (अनुश्रावण)०।

ग. धा र णा—"संघने अमुक नामवाले भिक्षुको शलाका-ग्रहापक चुन लिया। संघको पसंद

---

[1] विनयके मूल-नियम या प्रातिमोक्ष (पृष्ठ ५–७०)। [2] देखो चुल्ल ४§३।५ पृष्ठ ४१२। [3] देखो ऊपर। [4] चुल्ल ४§२।४ (क) पृष्ठ ४०२।

है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।'

"भिक्षुओ! शलाकाग्रहापक भिक्षुको श ला का (=वोटदेनेकी लकड़ी) बाँटनी चाहिये।' वहुमतवाले धर्मवादी भिक्षु जैसा कहें, वैसे उस अधिकरणको शांत करना चाहिये। भिक्षुओ! वह अधिकरण शांत कहा जाता है। किससे शांत?—सं मु ख वि न य से भी, और य द्भू य सि क से भी। क्या है वहाँ संमुख० विनय?—०[1]। (क्या है वहाँ यद्भूयसिका?)—जो कि वहुमत (=यद्भूयसिक)से कर्म (=मुकदमे)का करना, निर्धारण करना, प्राप्त करना,...स्वीकार करना, न परित्याग करना, यह वहाँ य द्भू य सि का है। भिक्षुओ! इस प्रकार शांत हो गये अधिकरणको (जो) कारकसे उभाळे उसे दु क्को ट नि क-पा चि त्ति य हो।" 143

उस समय श्रा व स्ती में इस प्रकार उत्पन्न...(एक) अधिकरण था। तव श्रावस्तीके संघके अधिकरण-शमन (=फैसले)से असन्तुष्ट हुये उन भिक्षुओंने सुना—'अमुक आवास (=मठ)में वहुतसे वहुश्रुत०[2] शिक्षाकाम स्थविर विहार करते हैं, यदि वह स्थविर ध र्म, वि न य, शास्ताके शासनके अनुसार इस अधिकरणको शान्त करें, तो इस प्रकार यह अधिकरण अच्छी प्रकार शांत हो जायेगा। तव वह भिक्षु उस आवासमें जा उन स्थविरों (=बृद्धों)से यह बोले—

"भन्ते! यह अधिकरण इस प्रकार...उत्पन्न हुआ; अच्छा हो भन्ते! (आप सव) स्थविर इस अधिकरणको धर्म ० से ऐसे शांत कर दें, जिसमें कि यह अधिकरण अच्छी प्रकार शांत हो जाये।"

तव उन स्थविरोंने जैसा श्रावस्तीके संघने उस अधिकरणको शांत किया था, और जैसा कि अच्छी तरह फैसला होता; उसी तरह उस अधिकरणको शांत किया (=फैसला दिया)।

तव श्रावस्तीके संघके फैसलेसे भी असन्तुष्ट, वहुतसे स्थविरोंके फैसलेसे भी असन्तुष्ट हुये उन भिक्षुओंने सुना—'अमुक आवासमें तीन वहुश्रुत० स्थविर विहार करते हैं०।०।

तव श्रावस्तीके संघ०, वहुतसे स्थविरों०, (और) तीन स्थविरोंके फैसलेसे भी असन्तुष्ट हुये उन भिक्षुओंने सुना—'अमुक आवासमें दो वहुश्रुत ० स्थविर विहार करते हैं। ०।

० एक वहुश्रुत ० स्थविर विहार करते हैं। ०।

तव श्रावस्तीके संघ०, वहुतसे स्थविरों०, तीन०, दो०, (और) एक० स्थविरके फैसलेसे भी असंतुष्ट हो वह भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! यह अधिकरण निहत (=खतम) हो गया, शांत हो गया, अच्छी प्रकार शांत हो गया।

"भि क्षु ओ! अ नु म ति दे ता हूँ उ न भि क्षु ओं की सं ज्ञ प्ति (=आगाही)से ती न (त र ह की) श ला का ओं की—(१) गू ढ क (=छिपी), (२) का न में क ह ने के स हि त (=स क र्ण ज ल्प क), और (३) वि वृ त क (=खुली)। 144

I १—गू ढ क श ला का ग्रा ह—"भिक्षुओ! कैसे गूढक-शलाकाग्राह होता है? उस श ला का ग्र हा प क भिक्षुको शलाकाएँ भिन्न रंगोंकी वना एक, एक भिक्षुके पास जाकर ऐसे कहना चाहिये—'यह इस पक्षवालेकी शलाका है, यह इस पक्षकी शलाका है, जिसे चाहते हो उसे ग्रहण करो।' (उसके शलाका) ग्रहण कर लेनेपर कहना चाहिये—'मत किसीको दिखलाना'। यदि (वह) जाने कि अ ध र्म-वा दी[2] वहुतर हैं, तो—'ठीकसे नहीं ग्रहण की गई'—(कह)लौटा लेना चाहिये। यदि जाने ध र्म वा दी वहुतर हैं, तो—ठीकसे ग्रहण की गई—कहना (=अनुश्रावण करना) चाहिये। भिक्षुओ! इस प्रकार गू ढ क शलाका-ग्रा ह होता है। 145

---

[1] चुल्ल ४§३।५ पृष्ठ ४०३। [2] चुल्ल पृष्ठ ३१०।

२—स क र्ण ज ल्प क श ला का ग्रा ह—"कैसे भिक्षुओ ! सकर्ण जल्पक-शलाकाग्राह होता है?—उस शलाकाग्रहापकको एक एक भिक्षुके कानके पास जाकर कहना चाहिये—'यह इस पक्षवालेकी शलाका है, यह इस पक्षवालेकी शलाका है, जिसे चाहते हो उसे ग्रहण करो।' (उसके शलाका) ग्रहण कर लेनेपर कहना चाहिये—'मत किसीसे कहना।' यदि (वह) जाने कि अ ध र्म वा दी बहुत हैं, ०। भिक्षुओ ! इस प्रकार गूढक शलाकाग्राह होता है। 146

३—वि वृ त क श ला का ग्रा ह—"कैसे भिक्षुओ ! विवृतक शलाकाग्राह होता है?—यदि (वह) जाने कि धर्मवादी[1] बहुतर (=बहुमतमें) हैं, तो बेफिक्र हो खुली (=विवृतक) शलाकायें ग्रहण कराये। भिक्षुओ ! इस प्रकार विवृतक शलाकाग्राह होता है।" 147

ख. अ नु वा द - अ धि क र ण—अनुवाद-अधिकरण कितने (प्रकारके) शमथोंसे शांत होता है?—चार शमथोंसे शांत होता है; (१) संमुख-विनय; (२) स्मृति-विनय; (३) अमूढ विनय; और (४) तत्पापीयसिक। 148

(क्या कोई) अनुवाद-अधिकरण अमूढ-विनय और तत्पापीयसिकाको छोळ, (सिर्फ) संमुख-विनय और स्मृति-विनय दो ही शमथोंसे शांत होनेवाला हो सकता है?—हो सकता है—कहना चाहिये। किस तरह?—जब भिक्षु (एक) भिक्षुको निर्मूल ही शीलभ्रष्ट होनेका लांछन लगाते हैं; तो भिक्षुओ ! पूरी स्मृति रखनेवाला होनेपर उस भिक्षुको स्मृ ति - वि न य देना चाहिये। 149

i a. स्मृ ति - वि न य दे ने का ढं ग—"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (स्मृति-विनय) देना चाहिये—उस भिक्षुको संघके पास जा ०[2] ऐसा कहना चाहिये—'भन्ते ! भिक्षु मुझे निर्मूल ही शीलभ्रष्ट होनेका लांछन लगाते हैं, सो मैं पूरी स्मृति रखनेवाला हो संघसे स्मृति-विनयकी या च ना करता हूँ। दूसरी बार भी ०। तीसरी बार भी 'भन्ते ! ०।'

"तब चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—०[3]।

"ग. धा र णा—'संघने इस नामवाले पूरी स्मृति रखनेवाले भिक्षुको स्मृति-विनय दे दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।

"भिक्षुओ ! यह अधिकरण शांत (=फैसलाशुदा) कहा जाता है। किससे शांत?—संमुख विनयसे भी, स्मृति-विनयसे भी। क्या है यहाँ संमुख विनय?—०[3]।

b. स्मृ ति वि न य—"क्या है वहाँ स्मृति विनय?—जो कि स्मृतिविनयवाले कर्मकी क्रिया—करना, उपगमन—अभ्युपगमन, स्वीकार, अपरित्याग है, यह है उसका स्मृतिविनय। भिक्षुओ ! इस प्रकार शांत हुये अधिकरणको यदि कारक (=लगानेवाला) फिरसे उभाड़े (=उत्कोटन करे), तो उ त्को ट न क - पा चि त्ति य हो। छ न्द देनेवाला यदि पछतावे, तो खी य न क-पा चि त्ति य हो। 150

"(क्या किसी) अनुवाद अधिकरणमें स्मृ ति वि न य और त त्पा पी य सि का को छोळ (सिर्फ) संमुख-विनय और अमूढ-विनय दो ही शमथ हो सकते हैं?—हो सकते हैं—कहना चाहिये। किस प्रकार?—जब भिक्षु उन्मत्त (=पागल), चित्त-विपर्यास (=विक्षिप्त चित्तता)को प्राप्त होता है; उस उन्मत्त ० भिक्षुने बहुत श्रमण विरुद्ध (आचरण) ० किया होता है। उसे भिक्षु उन्मत्त ० हो किये गये बहुतसे श्रमण-विरुद्ध कर्मोंके लिये दोषारोपण कर चोदित करते हैं—याद है आयुष्मान्ने इस प्रकारकी आपत्ति की?' वह ऐसा बोलता है—'आवुसो ! मैं उन्मत्त ० हो गया था, उन्मत्त ० हो

[1] देखो महावग्ग १०§२।१ पृष्ठ ३३४।
[2] ज्ञप्ति, और तीन अनुश्रावण करने चाहिये।
[3] देखो चुल्ल० ४§३।५ पृष्ठ ४१०-११।

मैंने बहुतसे श्रमण-विरुद्ध कर्म किये...। मुझे वह याद नहीं, मैंने मूढ़ (=होशमें न हो) वह (काम) किये।' ऐसा कहनेपर भी चोदित करते ही थे—'याद है०।' भिक्षुओ! ऐसे आमूढ़ भिक्षुको अमूढ़-विनय देना चाहिये।०[1]। 151

"घ. धा र णा—'संघने अमूढ़ होनेसे इस नामके भिक्षुको अ मू ढ़ - वि न य दे दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं धारणा करता हूँ।'

"भिक्षुओ! यह अधिकरण शांत कहा जाता है। किससे शांत कहा जाता है?—संमुख-विनयसे और अमूढ़-विनयसे। क्या है वहाँ संमुख-विनयमें? ०[2]। क्या है वहाँ अमूढ़-विनयमें? —जो अमूढ़-विनयवाले कर्मकी क्रिया—करना ०, यह है वहाँ अमूढ़-विनयमें।०[3] खी य न - पा त्ति ति य हो। 152

"(क्या किसी) अनुवाद-अधिकरणमें स्मृति-विनय और अमूढ़-विनयको छोळ (सिर्फ़) संमुख-विनय और तत्पापीयसिक-विनय दो ही शमथ हो सकते हैं?—हो सकते हैं—कहना चाहिये। किस प्रकार?—जब भिक्षु (एक) भिक्षुपर संघके बीच गु रु क - आ प त्ति (=भारी अपराध)का आरोप कर चोदित करते हैं—'याद है, आयुष्मान्! तुमने इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति की है,जैसे कि—पा रा जि क और पाराजिकके समीपकी?' फिर छुळानेका प्रयास करते उसको उनसे फिर घेरते पूछते हैं—'जरूर आवुस! तुम ठीकसे ख्याल करो कि इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति तुमने की है ०?' वह ऐसा कहता है—'आवुसो! मुझे नहीं याद है, कि मैंने इस प्रकारकी गुरुक-आपत्तिकी है ०? हाँ आवुसो! मुझे याद है, कि मैंने छोटी सी आपत्तिकी।' छुळानेका प्रयास करते उसको फिर घेरते हैं—'जरूर! आवुस! तुम ठीकसे ख्याल करो, कि इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति तुमने की है०?' वह ऐसा कहता है—'आवुसो! इस छोटी आपत्तिको मैंने करके इसे विना पूछे भी मैं (जब) स्वीकार करता हूँ, तो क्या इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति, जैसे कि पाराजिक या पाराजिकके समीपकी, करके पूछनेपर मैं स्वीकार न करूँगा?' वह ऐसा कहते हैं—'आवुस! इस छोटी आपत्तिको तुमने करके, उसे विना पूछे ही स्वीकार कर लिया, तो भला इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति ० करके पूछनेपर तुम स्वीकार न करोगे? जरूर! आवुस! तुम ठीकसे ख्याल करो, कि इस प्रकारकी गुरुक-आपत्तिको तुमने की है ०?' वह ऐसा कहता है—'आवुसो! मुझे याद है, मैंने इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति ० की है। दव (=मस्ती)से मैंने यह कहा, रव (=गफलत)से मैंने यह कहा—'आवुसो! मुझे नहीं याद है ०।' तो भिक्षुओ! उस भिक्षुका तत्पापीयसिक कर्म करना चाहिये। 153

II त त्पा पी य सि क—"और भिक्षुओ! इस प्रकार (उसे) करना चाहिये। चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

"क. ज्ञ प्ति—'भन्ते! संघ मेरी सुने, इस नामके इस भिक्षुने संघके बीच गुरुक-आपत्तिके बारेमें पूछनेपर, इनकार करके स्वीकार किया, स्वीकार करके इन्कार किया, दूसरा इसका वहाना किया, जान बूझकर झूठ कहा। यदि संघ उचित समझे, तो संघ इस नामके भिक्षुका तत्पापीयसिक-कर्म करे—यह सूचना है।०[4]।

ग. धा र णा—'संघने इस नामवाले भिक्षुका तत्पापीयसिक कर्म किया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ।'

"भिक्षुओ! यह अधिकरण शांत कहा जाता है। किससे शांत?—संमुख-विनय और तत्पापीय

---

[1] देखो चुल्ल० ४§२।२ पृष्ठ ४००। [2] देखो चुल्ल० ४§३।५ (I) पृष्ठ ४१०–११।
[3] देखो ऊपर। [4] तीन अनुश्रावण भी पढ़ना चाहिये।

सिकासे। क्या है वहाँ संमुख-विनयमें ? ०[1]। क्या है वहाँ तत्पापीयसिकामें ? जो वह पापीयसिका-कर्मकी क्रिया=करना ०। खी य न - पा चि त्ति य हो। 153

(ग) आ प त्ति - अ धि क र ण का श म न—"आपत्ति-अधिकरण कितने शमथोंसे शांत होता है ?—संमुख-विनय, प्रतिज्ञातकरण, और तिणवत्थारकसे ।

"(क्या कोई ऐसा) आपत्ति-अधिकरण है जो एक ति ण व त्था र क शमथको छोळ (वाकी) संमुख-विनय और प्रतिज्ञातकरण दो शमथोंसे शांत हो सके ?—हो सकता है—कहना चाहिये। किस प्रकार ?—यहाँ एक भिक्षुने लघुक-आपत्ति (=छोटे अपराध)की होती है। तब भिक्षुओ ! वह भिक्षु एक भिक्षुके पास जा एक कंधेपर उत्तरासंग कर (अपनेसे) वृद्ध भिक्षुओंके चरणोंमें वन्दना कर, उँकळू बैठ हाथ जोळ ऐसा कहे—'आवुस ! मैंने इस नामके भिक्षुने आपत्ति की है, उस आपत्तिकी प्रतिदेशना (=Confession) करताहूँ।'

"उस भिक्षुको कहना चाहिये—'देखते (=दिलसे अनुभव करते) हो (उस आपत्तिको)' ?"

'हाँ देखता हूँ।'

'भविष्यमें संयम करना।'

"भिक्षुओ ! यह अधिकरण शांत कहा जाता है। किससे शांत ? संमुख-विनयसे और प्र ति ज्ञा त-क र ण (=स्वीकार)से। क्या है वहाँ संमुख-विनयमें ? ०[1]। क्या है वहाँ प्रतिज्ञातकरणमें ?—जो (यह) प्रतिज्ञातकरण-कर्मकी क्रिया—करना ० दुक्को ट क-पा चि त्ति य हो।

"ऐसा कर पाये, तो ठीक; न कर पाये तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको बहुतसे भिक्षुओंके पास जा ० ऐसा कहना चाहिये— ०— उस आपत्तिकी प्रतिदेशना करता हूँ।'

"उन भिक्षुओंको कहना चाहिये—'देखते हो' ?"

'हाँ, देखता हूँ।'

'भविष्यमें संयम करना।'

" ० दु क्को टि क - पा चि त्ति य हो।

"ऐसा कर पाये तो ठीक; न कर पाये तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको संघके पास जा ० ऐसे कहना चाहिये—०[1] खी य न क - पा चि त्ति य हो।" 154

(क्या कोई ऐसा) आपत्ति-अधिकरण है जो एक प्रतिज्ञातकरण शमथको छोळ (बाकी) संमुख-विनय और तिणवत्थारक दो शमथोंसे शान्त हो सके ?—हो सकता है—कहना चाहिये। किस प्रकार ?—यहाँ भंडन, कलह, ०[2] करते भिक्षुओंने बहुतसे श्रमण-विरोधी—अपराध किये हैं ०[2]।

ग. धा र णा—'हमने ० इन आपत्तियोंकी संघके बीच ति ण व त्था र क देशना कर दी। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।'

"भिक्षुओ ! यह अधिकरण शांत कहा जाता है। किससे शांत ?—सं मु ख - वि न य और ति ण व त्था र क से। क्या है वहाँ संमुख-विनयमें ?—०[3]। क्या है वहाँ तिणवत्थारकमें ?—जो कि तिणवत्थारक-कर्मकी क्रिया=करना ० खी य न क - पा चि त्ति य हो। 155

(घ) कृ त्य - अ धि क र ण—"कृत्य-अधिकरण कितने शमथोंसे शांत होता है ?—कृत्य-अधिकरण संमुख-विनय एक शमथसे शांत होता है।" 156

चतुर्थ समथक्खंधक समाप्त ॥४॥

[1] ऊपर ही जैसा।

[2] देखो चुल्ल० ४§३।६ पृष्ठ ४०४-५।

[3] देखो चुल्ल० ४§३।५ पृष्ठ ४१०-११।

५—क्षुद्रकवस्तु-स्कन्धक

१—स्नान, लेप, गीत, आम-खाना, सर्प-रक्षा, लिंगच्छेद, पात्र-चीवर थैली आदि। २—विहारमें चबूतरे, शाला, कोठरी, आसन आदि। ३—पंखा, छात्ता, छींका, दण्ड, नख-केश-कनखोदनी, अंजनदानी। ४—संघाटी, कमरबन्द, घुण्डी मुद्धी, वस्त्र पहिननेका ढंग। ५—बोझ ढोना, दतवन, आग-पशुसे रक्षा। ६—बुद्ध-वचनकी भाषा अपनी-अपनी, व्यर्थकी विद्याका न पढ़ना, सभामें बैठनेके नियम, लहसुनका निषेध। ७—पाखाना, वृक्ष-रोपण, वर्तन-चारपाई आदि सामान।

§१—स्नान, लेप, गीत, आम-खाना, सर्प-रक्षा, लिंगच्छेद पात्र-चीवर, थैली आदि

१—राजगृह

(१) स्नान

१—उस समय बुद्ध भगवान्[1] राजगृहमें विहार करते थे। उस समय षड्वर्गीय भिक्षु नहाते हुए वृक्षसे शरीरको रगळते थे, जंघाको, वाहुको, छातीको, पेटको, भी। लोग खिन्न होते, धिक्कारते थे—'कैसे यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण नहाते हुए वृक्षसे०, जैसे कि मल्ल (=पहलवान्) और मालिश करनेवाले'।...। भगवान्‌नें भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! नहाते हुए भिक्षुको वृक्षसे शरीर न रगळना चाहिये, जो रगळे उसको 'दुष्कृत'की आपत्ति है।" 1

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु नहाते समय खम्भेसे शरीरको भी रगळते थे०।—

"भिक्षुओ! नहाते समय भिक्षुको खम्भेसे शरीरको न रगळना चाहिये, जो रगड़े उसको दुक्कट (दुष्कृति)की आपत्ति है।" 2

३—० षड्वर्गीय भिक्षु ० दीवारसे शरीरको भी रगळते थे ०।—

"भिक्षुओ! ० दीवारसे शरीरको न रगळना चाहिये, ० दुक्कटकी आपत्ति है।" 3

४—० षड्वर्गीय भिक्षु अस्थान (=अट्टान)[2] पर नहाते थे। लोग हैरान ० होते थे—(०) जैसे कि काम भोगी गृहस्थ। ० भगवान्‌से यह बात कही ०।—

"भिक्षुओ! अट्टान पर नहीं नहाना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 4

---

[1] छोटे दोषोंकी बातोंका अध्याय।

[2] काष्ठके चार पावोंवाली बळी-बळी चौकियाँ घाटपर रक्खी रहती थीं, जिनपर नहानेके सुगंधित चूर्णको बिखेरकर उनपर लेटकर शरीर रगळते थे (—अट्ठकथा)।

५—० षड्वर्गीय भिक्षु गंधर्व-हस्त (=गन्धब्बहत्थ)से नहाते थे । ० जैसे काम भोगी गृहस्थ । ० भगवान्‌से यह बात कही ० ।—

"भिक्षुओ ! गंधब्बहत्थसे नहीं नहाना चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 5

६—० षड्वर्गीय ० । ० जैसे काम भोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

"भिक्षुओ ! कुरुविन्दकसुत्ति (=कुरुविन्दक शुक्ति)[1]से नहीं नहाना चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 6

७—० षड्वर्गीय ० । ० जैसे काम भोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

"भिक्षुओ ! एक दूसरेके शरीरसे रगळकर नहीं नहाना चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 7

८—० षड्वर्गीय भिक्षु मल्लक[2]से नहाते थे । ० जैसे काम भोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

"भिक्षुओ ! मल्लकसे नहीं नहाना चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 8

९—०उससमय एक भिक्षुको दाद (=कच्छुरोग)की बीमारी थी; मल्लक बिना उसे अच्छा न होता था। भगवान्‌से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ रोगीको बिना गढे मल्लककी ।" 9

१०—उस समय बुढ़ापेसे कमजोर एक भिक्षु नहाते वक्त स्वयं अपने शरीरको नहीं रगळ सकता था। भगवान्‌से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ दुक्कासिका (=कपळा ऐंठकर बनाया रगळनेका कोळा)-की ।" 10

११—उस समय भिक्षु पीठ रगळनेमें हिचकिचाते थे ।०।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ हाथसे रगळनेकी ।" 11

(२) आभूषण

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु बाली, पामंग (=लटकन), कर्णसूत्र, कटिसूत्र, खडुआ, केयूर, हस्ताभरण, अंगूठी धारण करते थे । ० काम भोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

"भिक्षुओ ! बाली, लटकन, कर्णसूत्र, कटिसूत्र, खडुआ, केयूर, हस्ताभरण, अंगूठीको नहीं धारण करना चाहिये, दुक्कट ० ।" 12

० षड्वर्गीय लंबे केश रखते थे । ० कामभोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

(३) केश, कंघी दर्पण आदि

१—"भिक्षुओ ! लम्बे केश नहीं रखना चाहिये, जो रक्खे उसे दुक्कटका दोष है। दो मासके या दो अंगुल (लम्बे केशों)की अनुमति देता हूँ ।" 13

२—० षड्वर्गीय भिक्षु कोच्छ (=थकरी)से केशोंको सँवारते थे, फण (=कंघी)से०, हाथकी कंघीसे०, खली (मिले) तेलसे०, पानी (मिले) तेलसे केशोंको चिकनाते थे । ० कामभोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

"भिक्षुओ ! कोच्छ०, कंघी०, हाथकी कंघी०, खली-तेल०, पानी-तेलसे केशोंको नहीं सँवारना

[1] चूर्ण लगाकर शरीर घिसनेका लकळीका हाथ ।

[2] कुरुविन्दक पत्थरके चूर्णको लाखसे पिण्डी बाँध गुलियाँ बनाई जाती थीं, जिससे नहाते वक्त शरीरको रगळा जाता था ।

[3] मकरकी दाढ़को फाड़कर बनाया ।

चाहिये, ० दुक्कट ०।" 14

३—० षड्वर्गीय भिक्षु दर्पणमें भी, जल भरे पानीमें भी मुखके प्रतिबिम्बको देखते थे।० कामभोगी गृहस्थ। ० भगवान् ०।—

"भिक्षुओ ! दर्पण या जलपात्रमें मुखके प्रतिबिम्बको नहीं देखना चाहिये, ० दुक्कट।" 15

४—उस समय एक भिक्षुके मुखमें घाव था। उसने भिक्षुओंसे पूछा—'आवुसो ! मेरा घाव कैसा है ?' भिक्षुओंने कहा—'आवुस ! ऐसा है।' वह नहीं विश्वास करता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति दे देता हूँ, रोग होनेपर दर्पण या जलपात्रमें मुँहकी छायाको देखनेकी।" 16

(४) लेप, मालिश आदि

१—० षड्वर्गीय भिक्षु मुखपर लेप करते थे, मुखपर मालिश करते थे, मुखपर चूर्ण डालते थे, मैनसिलसे मुखको अंकित करते थे, अंगराग (=शरीरमें लगानेका रंग) लगाते थे, मुखराग लगाते थे, अंगराग और मुखराग (दोनों) लगाते थे। ०जैसे कामभोगी गृहस्थ। ० भगवान् ०।—

"भिक्षुओ ! मुखपर लेप, ० मालिश नहीं करनी चाहिये, मुखपर चूर्ण नहीं डालना चाहिये, मैनसिल (=मनःशिला)से मुखको अंकित नहीं करना चाहिये; अंगराग०, मुखराग०, अंगराग और मुख-राग नहीं लगाना चाहिये; जो लगाये उसे दुक्कटका दोष है।" 17

२—उस समय एक भिक्षुको आँखका रोग था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ रोग होनेपर मुखपर लेप करनेकी।" 18

(५) नाच-तमाशा

१—उस समय राजगृहमें गिरग्ग-समज्ज (=पहाड़के पास मेला) था। षड्वर्गीय भिक्षु गिरग्ग-समज्ज देखने गये। ० जैसे कामभोगी गृहस्थ ०। ० भगवान् ०।—

"भिक्षुओ ! नाच, गीत, बाजेको देखने नहीं जाना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 19

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु लम्बे गानेके स्वरसे धर्म (=बुद्धके उपदेश-सूत्र)को गाते थे। लोग हैरान०होते थे—जैसे हम गाते हैं, वैसे ही लम्बे गानेके स्वरसे यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण (=साधु) भी धर्मको गाते हैं। ० सचमुच ०। ० भगवान् ०।—

"भिक्षुओ लम्बे गानेके स्वरसे धर्मके गानेमें यह पाँच दोष हैं—(१) अपने भी उस स्वरमें रागयुक्त होता है; (२) दूसरे भी उस स्वरमें रागयुक्त होते हैं; (३) गृहस्थ लोग भी होते हैं; (४) अलाप लेनेकी कोशिश करनेमें समाधि-भंग होती है; (५) आनेवाली जनता उनका अनुसरण करती है।—भिक्षुओ ! यह पाँच दोष ०।

"भिक्षुओ ! लम्बे गानेके स्वरसे धर्मको नहीं गाना चाहिये, जो गाये उसे दुक्कटका दोष है।" 20

३—उस समय भिक्षु स्वरभण्यके[1] (साथ सूत्र पढ़ने)में हिचकिचाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ स्वरभण्यकी।" 21

---

[1] वेदपाठियोंकी भाँति स्वरसहित पाठ।

(६) शौकके वस्त्र

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु बा हि र लो मी (=बाहर रोम निकला ओढ़ना) । ऊनी (चद्दर)को धारण करते थे । ० कामभोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

"भिक्षुओ ! बाहिर लोमी ऊनीको नहीं धारण करना चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 22

(७) आम खाना

१—उस समय म ग ध रा ज सेनिय बिम्बिसारके बागमें आम फले हुए थे। मगधराज सेनिय बिम्बिसारने अनुमति दे रक्खी थी—'आर्य (लोग) इच्छानुसार आम खावें।' षड्वर्गीय भिक्षुओंने कच्चे आमोंहीको तुळवाकर खा डाला। मगधराज ०को आमकी जरूरत हुई, उसने आदमियोंसे कहा—

"जाओ, भणे ! आरामसे आम लाओ !"

"अच्छा देव !"—(कह) मगधराज० को उत्तर दे, आराममें जा उन्होंने बागवानोंसे यह कहा—

"भणे ! देवको आमोंकी जरूरत है, आम दो !"

"आर्यो ! आम नही है, कच्चे ही आमोंको तुळवाकर भिक्षुओंने आम खा डाले।"

तब उन मनुष्योंने जाकर मगधराज०से वह बात कह दी ।—

"भणे ! अच्छा हुआ, आर्योंने खा लिया। और भगवान्ने (खानेकी) मात्रा भी कही है।"

लोग हैरान० होते थे—'कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण मात्राको विना जाने राजाके आम खाते हैं !'

०भगवान्से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! आम नही खाना चाहिये, जो खाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 23

२—उस समय एक पू ग[1] ने संघको भोज दिया था, दालमें आमकी फारियाँ (=पेशिका) भी डाली हुई थीं। भिक्षु हिचकिचाते उसे नही ग्रहण करते थे ।—

"भिक्षुओ ! ग्रहण करो, खाओ; अनुमति देता हूँ, आमकी फारियोंकी।" 24

३—उस समय एक पू ग ने संघको भोज दिया था। वह आमोंकी फारी नहीं बना सके, इसलिये परोसनेके वक्त पूरे आमको ले पाँतीमें फिरते थे। भिक्षु हिचकिचाते न ग्रहण करते थे ।—

"भिक्षुओ ! ग्रहण करो, खाओ। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ पाँच श्रमणोंके योग्य फलको खानेकी आगसे छिलका उतारे, हथियारसे छिले, नखसे छिले, बेगुठलीके, और पाँचवें निब्बट्ट बीज (=बीजवाला फल)को। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ इन पाँच श्रमणोंके योग्य फलको खानेकी।" 25

(८) सर्पसे रक्षा

गुप्ती=अपनी रक्षाके लिये आत्म-प रि त्र (=०रक्षावाक्य) करनेकी। 26

२—"और भिक्षुओ! इस प्रकार (परित्र=प रि त्त) करनी चाहिये—
वि रु पा क्ष से मेरी मित्रता (है), ए रा प थ से मेरी मित्रता,
छ ब्या पु त्त से मेरी मित्रता, क ण्हा-गो त म क से मेरी मित्रता॥(१)॥
अपादकों[1]से मेरी मित्रता (है), द्विपादकों[2]से मेरी मित्रता।
चौपायोंसे मेरी मित्रता, बहुपदों[3]से मेरी मित्रता ॥(२)॥
मुझे अपादक पीळा न दें, मुझे द्विपादक पीळा न दें।
चतुष्पद मुझे पीळा न दे, मुझे बहुष्पद पीळा न दें ॥(३)॥
सभी सत्त्व=सभी प्राणी और सभी केवल भूत।
सभी कल्याणको देखें, किसीके पास बुराई न जावे ॥(४)॥

"बुद्ध अप्रमाण (=जिनका परिमाण नहीं कहा जा सकता) है, धर्म अप्रमाण है, संघ अप्रमाण है; साँप, बिच्छू, कनखजूरा, मकळी, छिपकली, चूहे—(आदि) सभी सरीसृप (=रेंगनेवाले प्राणी) प्रमाणवाले (=परिमित) हैं। मैंने रक्षा कर ली, मैंने प रि त्त कर लिया; भूत (=प्राणी) चले जावें। सो मैं भगवान्‌को नमस्कार करता हूँ, सातों[3] सम्यक् संबुद्धोंको नमस्कार करता हूँ।"

(९) लिंगच्छेदन

उस समय एक भिक्षुने वासनासे पीड़ित हो अपने लिंगको काट दिया। भगवान्‌से यह बात कही।—
"भिक्षुओ! दूसरेको काटना था, उस मोघपुरुष (=निकम्मे आदमी)ने दूसरेको काट दिया।
"भिक्षुओ! अपने लिंगको न काटना चाहिये, जो काटे उसे थु ल्ल च्च य का दोष हो।" 27

(१०) पात्र

(क) पू र्व क था—उस समय रा ज गृ ह के श्रेष्ठीको एक महार्घ चन्दन-सारकी चन्दन गाँठ मिली थी। तब राजगृहके श्रेष्ठीके मनमें हुआ—'क्यों न मैं इस चन्दनगाँठका, पात्र खरदवाऊँ; चूरा मेरे कामका होगा, और पात्र दान दूँगा।' तब राजगृहके श्रेष्ठीने उस चन्दन-गाँठका पात्र खरदवाकर, सींकेमें रख, बाँसके सिरेपर लगा, एकके ऊपर एक बाँसोंको बँधवाकर कहा—"जो श्रमण ब्राह्मण अर्हत् या ऋद्धिमान् हो (वह इस दान) दिये हुए पात्रको उतार ले।"

पूर्ण काश्यप जहाँ राजगृहका श्रेष्ठी रहता था, वहाँ गये। और जाकर राजगृहके श्रेष्ठीसे बोले—"गृहपति! मैं अर्हत् हूँ, ऋद्धिमान् भी हूँ। मुझे पात्र दो।"

"भन्ते! यदि आयुष्मान् अर्हत् और ऋद्धिमान् हैं, तो दिया ही हुआ है, पात्रको उतार लें।"

तब म क्ख ली गो सा ल (=मस्करी गोशाल)०। अ जि त के श-क म्ब ली०। प्र कु ध का त्या य न०। सं ज य बे ल्ल ट्ठि-पुत्त०। नि गं ठ ना थ-पु त्त०। जहाँ राजगृहका श्रेष्ठी था, वहाँ गये। जाकर राजगृहके श्रेष्ठीसे बोले—"गृह-पति! मैं अर्हत् हूँ, और ऋद्धिमान् भी, मुझे पात्र दो।"

"भन्ते! यदि आयुष्मान् अर्हत्०।"

उस समय आयुष्मान् मौ द् ग ल्या य न और आयुष्मान् पिं डो ल भा र द्वा ज, पूर्वाह्ण समय सु-आच्छादित हो, पात्र चीवर ले राज-गृहमें पिंड (=भिक्षा)के लिये प्रविष्ट हुए। तब आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजने आयुष्मान् मौद्गल्यायनसे कहा—

---

[1]बिना रीढ़वाले=सर्प। [2]दो पैरवाले=मनुष्य। [3]कनखजूरा आदि।

"आयुष्मान् महामौद्गल्यायन अर्हत् हैं, और ऋद्धिमान् भी जाइये आयुष्मान् मौद्गल्यायन ! इस पात्रको उतार लाइये। आपके लिये ही यह पात्र है।"

"आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाज अर्हत् हैं, और ऋद्धिमान् भी०।"

तब आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजने आकाशमें उळकर, उस पात्रको ले, तीन बार राजगृहका चक्कर दिया। उस समय राजगृहके श्रेष्ठीने पुत्र-दारा-सहित हाथ जोळ, नमस्कार करते हुए अपने घरपर खळे हो—

"भन्ते ! आर्य-भारद्वाज ! यहीं हमारे घरपर उतरें।"

आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाज राजगृहके श्रेष्ठीके मकानपर उतरे (=प्रतिष्ठित हुए)। तब राजगृहके श्रेष्ठीने आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजके हाथसे पात्र लेकर, महार्घ खाद्यसे भरकर उन्हें दिया। आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाज पात्र-सहित आराम (=निवास-स्थान)को गये। मनुष्योंने सुना—आर्य-पिंडोल भारद्वाजने राजगृहके श्रेष्ठीके पात्रको उतार लिया। वह मनुष्य हल्ला मचाते आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजके पीछे पीछे लगे। भगवान्‌ने हल्लेको सुना, सुनकर आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—"आनन्द ! यह क्या हल्ला-गुल्ला है ?"

"आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजने भन्ते ! राजगृहके श्रेष्ठीके पात्रको उतार लिया। लोगोंने (इसे) सुना०। भन्ते ! इसीसे लोग हल्ला करते आयुष्मान् पिंडोल-भारद्वाजके पीछे पीछे लगे हैं। भगवान् वही यह हल्ला है।"

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें, भिक्षु-संघको जमा करवा, आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजसे पूछा—

"भारद्वाज ! क्या तूने सचमुच राजगृहके श्रेष्ठीका पात्र उतारा ?"

"सचमुच भगवान् !"

भगवान्‌ने धिक्कारते हुए कहा—

"भारद्वाज ! यह अनुचित है प्रतिकूल=अ-प्रतिरूप, श्रमणके अयोग्य, अविधेय=अकरणीय है। भारद्वाज ! मुर्दे लकळीके वर्तनके लिये कैसे तू गृहस्थोंको उत्तर-मनुष्य-धर्म ऋद्धि-प्रातिहार्य दिखायेगा।...। भारद्वाज ! यह न अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है०।" (इस प्रकार) धिक्कारते (हुए) धार्मिक कथा कह, भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! गृहस्थोंको उत्तर-मनुष्य-धर्म ऋद्धि-प्रातिहार्य न दिखाना चाहिये, जो दिखाये उसको 'दुष्कृत'की आपत्ति। भिक्षुओ ! इस पात्रको तोळ, टुकळा-टुकळाकर, भिक्षुओंको अंजन पीसनेके लिये दे दो। भिक्षुओ ! लकळीका बर्तन न धारण करना चाहिये। ०'दुष्कृत'।"

"भिक्षुओ ! सुवर्णमय पात्र न धारण करना चाहिये, रौप्यमय०, मणि-मय०, वैदुर्यमय०, स्फटिकमय०, कंसमय, कांचमय, रांगेका० सीसेका०, ताम्रलोह (=तांबा) का०,...'दुष्कृत'...। भिक्षुओ ! लोहेके और मिट्टीके—दो पात्रोंकी अनुज्ञा देता हूँ।" 28

उस समय पात्र (=भिक्षापात्र)की पेंदी घिस जाती थी। भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, पात्रमंडल (=पात्रके नीचे रखनेकी गेडुरी)की।" 29

(ख) नियम—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सुनहले, रुपहले नाना प्रकारके पात्र-मंडलको धारण करते थे। ०जैसे कामभोगी गृहस्थ। भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! सुनहले, रुपहले नाना प्रकारके पात्र-मंडलको नहीं धारण करना चाहिये, जो धारण करे उसे दुष्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ रांगे और सीसे इन दो प्रकारके पात्रमंडलकी।" 30

१—अधिक मंडल ठीक न आते थे।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ रेखा डालनेकी।" 31

४—शिकन (=वलि) पळ जाती थी।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ म क र दं त (=मगरदन्ती खूँटी) काटनेकी।" 32

५—उस समय षड्वर्गीय रूप (=मूर्ति) खींचे हुए, भित्तिकर्म किये (=रंगसे चित्र खींचे) चित्र (विचित्र) पा त्र-मं ड ल को धारणकर सळकपर घूमते थे। लोग हैरान० होते थे०। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! रूप खींचे हुए, रंगसे चित्र खींचे पात्र-मंडलको न धारण करना चाहिये, जो धारण करे उसे दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ प्र कृ ति मं ड ल की।" 33

६—उस समय भिक्षु पानीसहित पात्रको सँभाल रखतेथे, पात्रमें दुर्गन्ध आने लगती थी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! पानीसहित पात्रको नहीं रख छोड़ना चाहिये, जो रख छोळे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, धूप दिखलाकर पात्रको रखनेकी। 34

७—पानी सहित पात्रको तपाते थे, पात्रमें दुर्गन्ध आती थी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"०पानीसहित पात्रको न तपाना चाहिये, ०दुक्कट०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पानी खाली कर धूप दिखला पात्रको रखनेकी। 35

८—०धूपमें पात्रको डाहते थे, पात्रका रंग विकृत होता है। ०—

"०धूपमें पात्रको नहीं डाहना चाहिये, ०दुक्कट०। अनुमति देता हूँ, मूहूर्तभर धूपमें रख पात्रको रख देनेकी।" 36

९—०उस समय बहुतसे पात्र खुली जगहमें आधारके बिना रक्खे थे, बवंडरने आकर पात्रोंको तोळ दिया। भगवान्‌से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ, पात्रके आधारकी।" 37

१०—०उस समय भिक्षु वारीपर पात्रको रखते थे, गिरकर पात्र टूट जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! वारीपर पात्रको न रखना चाहिये, ०दुक्कट०।" 38

११—उस समय भूमिपर पात्रको औंधा देते थे, पात्रोंकी वारी घिस जाती थी। ०भगवान्०।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, (नीचे) तृण बिछानेकी।" 39

१२—तृणके बिछौनेको कीळे खा जाते थे। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, चो ल क (=पोतन)की।" 40

१३—चो ल क को कीळे खा जाते थे। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, पा त्र-मा ल क (=घिडौंची? घळथही)की।" 41

१४—पात्र-मालकसे गिरकर पात्र टूट जाते थे। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, पा त्र-कंडोलिका (=गेंळुल)की।" 42

१५—पात्र-कंडोलिकासे पात्र घिस जाते थे। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, पात्रके थैले (=स्थविका)की।" 43

१६—संबंधक (=गर्दन बाँधनेका बंधन) न था। ०भगवान्०।—

"०अनुमति देना हूँ संबंधककी, और बाँधनेकी सुतलीकी।" 44

१७—उस समय भिक्षु भीतकी खूँटीपर, ना ग द न्त क (=हथिदन्ती खूँटी)पर भी पात्रको लटका देते थे, गिरकर पात्र टूट जाता था। ०।—

"०पात्रको नहीं लटकाना चाहिये; ०दुक्कट०।" 45

१८—उस समय भिक्षु चारपाईपर पात्र रख देते थे, याद न रहनेसे चारपाईपर बैठते समय उतरकर पात्र टूट जाता था। ०।—

"०पात्रको चारपाईपर न रखना चाहिये, ०दुक्कट०।" 46

१९—०चौकीपर पात्र रख देते थे, याद न रहनेसे०।०।—

"०पात्रको चौकीपर न रखना चाहिये, ०दुक्कट०।" 47

२०—उस समय भिक्षु पात्रको अंक (=गोद)में ले रखते थे, याद न रहने ०। ०।—

"०अंकमें पात्र नहीं रखना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 48

२१—० छत्तेपर पात्रको रख देते थे, आँधी आनेपर छत्ते के उठ जानेसे पात्र गिरकर टूट जाता था। ०।—

" ० छत्तेपर पात्रको न रखना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 49

२२—उस समय भिक्षु पात्रको हाथमें लिये किवाळको खोलते थे, किवाळसे लगकर पात्र टूट जाता था। ०।—

" ० पात्रको हाथमें ले किवाळ न खोलना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 50

२३—उस समय भिक्षु तूँबेके खप्परको ले भिक्षा माँगने जाते थे। लोग हैरान ० होते थे—जैसे कि तीर्थिक। ०।—

" ० तूँबेके खप्परमें भिक्षा माँगने नहीं जाना चाहिये; ० दुक्कट ०। 51

२४—० घळेके खप्परमें ०। ० जैसे तीर्थिक। ०।—

" ० घळेके खप्परमें भिक्षा माँगने नहीं जाना चाहिये; ० दुक्कट ०।" 52

(११) चीवर

१—उस समय एक भिक्षु सर्वपांसुकूलिक (=जिसके सभी कपळे रास्तेके फेंके चीथळोंको सीकर बने हों)था, उसने मुर्देकी खोपळीका पात्र धारण किया। एक स्त्री देख डरके मारे चिल्ला उठी—'अब्भुं[1] मे! अब्भुं मे!! यह पिशाच है रे!!!' लोग हैरान ० होते थे—कैसे शाक्य-पुत्रीय श्रमण मुर्देकी खोपळीके पात्रको धारण करेंगे, जैसेकि पिशाचिल्लकामें। भगवान्‌से यह बात कही।—

" ० मुर्देकी खोपळीका पात्र नहीं धारण करना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 53

भिक्षुओ! सर्व पांसुकूलिक नहीं होना चाहिये, ० दुक्कट ०। 54

२—उस समय भिक्षु चलकों (=चाभ कर फेंकी चीज़ों को भी) (खाकर फेंकदी गई) हड्डियोंको भी, जूठे पानीको भी पात्रमें ले जाते थे। लोग हैरान ० होते थे—यह शाक्यपुत्रीय श्रमण जिसमें खाते हैं, वही इनका प्रतिग्रह (=दान) है। ०।—

" ० पात्रमें चलक, हड्डी (और) जूठे पानीको नहीं ले जाना चाहिये, ० दुक्कट ०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, प्रतिग्रहकी।" 55

३—उस समय भिक्षु हाथसे फाळकर चीवरको सीते थे, चीवर ठीक नहीं (=विलोम) होता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

" ० अनुमति देता हूँ सत्थक (=कैंची) और नमतक (=वस्त्र-खंड) की।" 56

[1] डरसे वक्त निकला शब्द (—अट्ठकथा)।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ रेखा डालनेकी।" 31

४—शिकन (=वलि) पळ जाती थी।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ मकरदंत (=मगरदन्ती खूँटी) काटनेकी।" 32

५—उस समय षड्वर्गीय रूप (=मूर्ति) खींचे हुए, भित्तिकर्म किये (=रंगसे चित्र खींचे) चित्र (विचित्र) पात्र-मंडलको धारणकर सळकपर घूमते थे। लोग हैरान० होते थे०। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! रूप खींचे हुए, रंगसे चित्र खींचे पात्र-मंडलको न धारण करना चाहिये, जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ प्रकृतिमंडलकी।" 33

६—उस समय भिक्षु पानीसहित पात्रको सँभाल रखतेथे, पात्रमें दुर्गन्ध आने लगती थी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! पानीसहित पात्रको नहीं रख छोड़ना चाहिये, जो रख छोळे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, धूप दिखलाकर पात्रको रखनेकी। 34

७—पानी सहित पात्रको तपाते थे, पात्रमें दुर्गन्ध आती थी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"०पानीसहित पात्रको न तपाना चाहिये, ०दुक्कट०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पानी खाली कर धूप दिखला पात्रको रखनेकी। 35

८—०धूपमें पात्रको डाहते थे, पात्रका रंग विकृत होता है।०—

"०धूपमें पात्रको नहीं डाहना चाहिये, ०दुक्कट०। अनुमति देता हूँ, मूहूर्तभर धूपमें रख पात्रको रख देनेकी।" 36

९—०उस समय बहुतसे पात्र खुली जगहमें आधारके विना रक्खे थे, बवंडरने आकर पात्रोंको तोळ दिया। भगवान्‌से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ, पात्रके आधारकी।" 37

१०—०उस समय भिक्षु वारीपर पात्रको रखते थे, गिरकर पात्र टूट जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! वारीपर पात्रको न रखना चाहिये, ०दुक्कट०।" 38

११—उस समय भूमिपर पात्रको औंधा देते थे, पात्रोंकी वारी घिस जाती थी। ०भगवान्०।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, (नीचे) तृण बिछानेकी।" 39

१२—तृणके बिछौनेको कीळे खा जाते थे।०।—

"०अनुमति देता हूँ, चोलक (=पोतन)की।" 40

१३—चोलकको कीळे खा जाते थे।०।—

"०अनुमति देता हूँ, पात्र-मालक (=घिडोंची? घळथही)की।" 41

१४—पात्र-मालकमें गिरकर पात्र टूट जाते थे।०।—

"०अनुमति देता हूँ, पात्र-कंडोलिका (=गेंळुल)की।" 42

१५—पात्र-कंडोलिकामें पात्र घिस जाते थे।०।—

"०अनुमति देता हूँ, पात्रके थैले (=स्थविका)की।" 43

१६—अंसबंधक (=गर्दन बाँधनेका बंधन) न था। ०भगवान्०।—

"०अनुमति देता हूँ अंसबंधककी, और बाँधनेकी सुतलीकी।" 44

१७—उस समय भिक्षु भीतकी खूँटीपर, नागदन्तक (=हथिदन्ती खूँटी)पर भी पात्रको लटका देते थे, गिरकर पात्र टूट जाता था।०।—

"०पात्रको नहीं लटकाना चाहिये; ०दुक्कट०।" 45

१८—उस समय भिक्षु चारपाईपर पात्र रख देते थे, याद न रहनेसे चारपाईपर बैठते समय उनपरकर पात्र टूट जाता था। ०।—

"०पात्रको चारपाईपर न रखना चाहिये, ०दुक्कट०।" 46

१९—०चौकीपर पात्र रख देते थे, याद न रहनेसे०।०।—

"०पात्रको चौकीपर न रखना चाहिये, ०दुक्कट०।" 47

२०—उस समय भिक्षु पात्रको अंक (=गोद)में ले रखते थे, याद न रहने ०।०।—

"०अंकमें पात्र नहीं रखना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 48

२१—० छत्तेपर पात्रको रख देते थे, आँधी आनेपर छत्ते के उठ जानेसे पात्र गिरकर टूट जाता था। ०।—

"० छत्तेपर पात्रको न रखना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 49

२२—उस समय भिक्षु पात्रको हाथमें लिये किवाळको खोलते थे, किवाळसे लगकर पात्र टूट जाता था। ०।—

"० पात्रको हाथमें ले किवाळ न खोलना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 50

२३—उस समय भिक्षु तूँबेके खप्परको ले भिक्षा माँगने जाते थे। लोग हैरान ० होते थे—जैसे कि तीर्थिक। ०।—

"० तूँबेके खप्परमें भिक्षा माँगने नहीं जाना चाहिये; ० दुक्कट ०। 51

२४—० घळेके खप्परमें ०। ० जैसे तीर्थिक। ०।—

"० घळेके खप्परमें भिक्षा माँगने नहीं जाना चाहिये; ० दुक्कट ०।" 52

(११) चीवर

१—उस समय एक भिक्षु सर्वपांसुकूलिक (=जिसके सभी कपळे रास्तेके फेंके चीथळोंको सीकर बने हों)था, उसने मुर्देकी खोपळीका पात्र धारण किया। एक स्त्री देख डरके मारे चिल्ला उठी—'अब्भुं[1] मे! अब्भुं मे!! यह पिशाच है रे!!!' लोग हैरान ० होते थे—कैसे शाक्य-पुत्रीय श्रमण मुर्देकी खोपळीके पात्रको धारण करेंगे, जैसेकि पिशाचिल्लकामें। भगवान्से यह बात कही।—

"० मुर्देकी खोपळीका पात्र नही धारण करना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 53

भिक्षुओ! सर्व पांसुकूलिक नही होना चाहिये, ० दुक्कट ०। 54

२—उस समय भिक्षु चलकों (=चाभ कर फेंकी चीज़ों को भी) (खाकर फेंकदी गई) हड्डियोंको भी, जूठे पानीको भी पात्रमें ले जाते थे। लोग हैरान ० होते थे—यह शाक्यपुत्रीय श्रमण जिसमें खाते हैं, वही इनका प्रतिग्रह (=दान) है। ०।—

"० पात्रमें चलक, हड्डी (और) जूठे पानीको नहीं ले जाना चाहिये, ० दुक्कट ०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, प्रतिग्रहकी।" 55

३—उस समय भिक्षु हाथसे फाड़कर चीवरको सीते थे, चीवर ठीक नहीं (=विलोम) होता था। भगवान्से यह बात कही।—

"० अनुमति देता हूँ सत्थक (=कैंची) और नमतक (=वस्त्र-खंड) की।" 56

[1] इसके ऊपर निकला शब्द (—अनुकरण)।

(१२) शस्त्र आदि

१—उस समय संघको दं ड-स त्थ क (=भुजाली) मिला था।०।—

"०अनुमति देता हूँ, दंड-सत्थककी।" 57

२—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु सोने-रूपे (आदि) तरह तरहके स त्थ क - दं ड (=हथियार) को धारण करते थे।० जैसे कामभोगी गृहस्थ। ०भगवान्०।—

"भिक्षुओ! सोने-रूपे (आदि) तरह तरहके सत्थक-दंडोंको नहीं धारण करना चाहिये, ०दुक्कट०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ हड्डी, दाँत, सींग, नल (=नरकट), बाँस, काठ, लाख, फल, लोह (=ताँब), शंखनाभि (=शंख)के शस्त्रके दंडोंकी।" 58

३—उस समय भिक्षु मुर्गेकी पाँखसे भी, बाँसकी खपीचसे भी चीवरको सीते थे, चीवर ठीकसे न सिलता था।०।—

"अनुमति देता हूँ, सूईकी।" 59

४—सूइयाँ मूर्चा खा जाती थीं।—

"०अनुमति देता हूँ, सूई (रखनेके लिये) नालीनालिका की।" 60

नालिकामें होनेपर भी मुर्चा खा जाती थीं।—

"०अनुमति देता हूँ किण्ण (=चूर्ण)से भरनेकी।" 61

५—किण्ण होनेपर भी मुर्चा खा जाती थीं।

"०अनुमति देता हूँ सत्तूसे भरनेकी।" 62

६—सत्तूसे भी मुर्चा खा जाती थीं।—

"०अनुमति देता हूँ, स रि त क (=पाषाण-चूर्ण)की।" 63

७—सरितकसे भी मुर्चा खा जाती थीं।—

"०अनुमति देता हूँ, मोमसे लपेटनेकी।" 64

८—सरितक टूट जाता था।—

"०अनुमति देता हूँ सरितककी, सि पा टि का (=गोंदकी)की।" 65

(१३) कठिन-चीवर

(क). क ठि न का फै ला ना—उस समय वहाँ कील गाळकर (उससे) बाँध चीवरको सीते थे, चीवर बेढंगे कोनोंवाला हो जाता था।०।—

"०अनुमति देता हूँ कठिन[1], कठिनकी रस्सीकी, उसमें बाँधकर चीवर सीना चाहिये। 66

ऊभळ-खाभळ (भूमि)पर क ठि न को फैलाते थे, कठिन टूट जाता था।०।—

"ऊभळ-खाभळ (भूमि)पर कठिनको नहीं फैलाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 67

भूमिपर क ठि न को फैलाते थे, कठिनमें धूल लग जाती थी।०।—

"०अनुमति देता हूँ, तृणके बिछौनेकी।" 68

कठिनका छोर निर्बल हो जाता था।०।—

"०अनुमति देता हूँ, हवा आनेके रुख प रि भं ड (=ओट)के रखनेकी।" 69

(ख). क ठि न की सि ला ई—कठिन पूरा न हो सकता था।—

"०अनुमति देता हूँ, दं ड क ठि न की (=चौखटा), बि द ल क (=खपाच), शलाका

[1] सीनेका फट्टा।

बाँधनेकी रस्सी, बाँधनेके सूतसे बाँधकर चीवरके सीनेकी।" 70

मुत्तान्तरिकायें (=टाँके) बराबर न होती थी।—

"०अनुमति देता हूँ, कलम्बक (=पटियाना)की।" 71

सूत टेढ़े हो जाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ मोघसुत्तक (=लंगर)की।" 72

उस समय भिक्षु बिना पैर धोये कठिनपर चढ़ते थे, कठिन मैला हो जाता था। ० ।—

"०बिना पैर धोये कठिनपर नहीं जाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 73

उस समय भिक्षु गीले पैरों कठिनपर चढ़ जाते थे, कठिन मैला हो जाता था। ० ।—

"०गीले पैरों कठिनपर नहीं चढ़ना चाहिये, ०दुक्कट०।" 74

उस समय भिक्षु पैरमें जूता पहिने कठिनपर चढ़ जाते थे, कठिन मैला हो जाता था। ० ।—

"०पैरमें जूता पहिने कठिनपर न चढ़ना चाहिये, ०दुक्कट०।" 75

(ग). मिज्राव कैंची आदि—उस समय भिक्षु चीवर सीते वक्त अँगुलीसे पकळते थे, अँगुलियाँ रुक्ष (=खुर्दरी) हो जाती थीं। ० ।—

"०अनुमति देता हूँ, प्रतिग्रह (=मिज्राव)की।" 76

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सोना, रूपा (आदि) नाना प्रकारके प्रतिग्रहको धारण करते थे। ० जैसे कामभोगी गृहस्थ। ० ।—

"० सोना, रूपा (आदि) नाना प्रकारके परिग्रहको नहीं धारण करना चाहिये, ०दुक्कट०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ हड्डी,०[1] शंखके (प्रतिग्रह)की।" 77

उस समय सत्थक (=कैंची) और प्रतिग्रह (=मिज्राव) दोनों खो जाते थे। ० ।—

"०अनुमति देता हूँ, आवेसन-वित्थक (=सियनी)की।" 78

आवेसन-वित्थक उलझ जाता था। ० ।—

"०अनुमति देता हूँ, प्रतिग्रहकी थैलीकी।" 79

कंधे (पर थैलीको लटकाने)का बंधन न था। ० ।—

"०अनुमति देता हूँ, कंधेपर बाँधनेके सूतकी।" 80

(घ). कठिनशाला—उस समय भिक्षु खुली जगहमें चीवर सीते थे। भिक्षु सर्दीमें भी तकलीफ पाते थे, गर्मीसे भी। ० ।—

"०अनुमति देता हूँ कठिनशालाकी, कठिन-मंडपकी।" 81

कठिनशाला नीची कुर्सीकी थी, पानी भर जाता था। ० ।—

"०अनुमति देता हूँ, कुर्सीके ऊँची बनानेकी।" 82

चुनावट गिर जाती थी।—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर और लकड़ी इन तीनकी चुनाईकी।" 83

चढ़नेमें दुःख पाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर और लकड़ी इन तीन प्रकारकी सीढ़ीकी।" 84

चढ़ते समय गिर जाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ आलम्बन-बाहुकी।" 85

[1] देखो चुल्ल० ५§१।१२ [illegible] पृष्ठ ४२६।

(१२) शस्त्र आदि

१—उस समय संघको दं ड-स त्थ क (=भुजाली) मिला था। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, दंड-सत्थककी।" 57

२—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु सोने-रूपे (आदि) तरह तरहके स त्थ क - दं ड (=हथियार) को धारण करते थे।० जैसे कामभोगी गृहस्थ। ०भगवान्० ।—

"भिक्षुओ! सोने-रूपे (आदि) तरह तरहके सत्थक-दंडोंको नहीं धारण करना चाहिये, ०दुक्कट०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ हड्डी, दाँत, सींग, नल (=नरकट), बाँस, काठ, लाख, फल, लोह (=ताँब), शंखनाभि (=शंख)के शस्त्रके दंडोंकी।" 58

३—उस समय भिक्षु मुर्गेकी पाँखसे भी, बाँसकी खपीचसे भी चीवरको सीते थे, चीवर ठीकसे न सिलता था। ०।—

"अनुमति देता हूँ, सूईकी।" 59

४—सूइयाँ मूर्चा खा जाती थीं।—

"०अनुमति देता हूँ, सूई (रखनेके लिये) नालीनालिका की।" 60

नालिकामें होनेपर भी मुर्चा खा जाती थीं।—

"०अनुमति देता हूँ किण्ण (=चूर्ण)से भरनेकी।" 61

५—किण्ण होनेपर भी मुर्चा खा जाती थीं।

"०अनुमति देता हूँ सत्तूसे भरनेकी।" 62

६—सत्तूसे भी मुर्चा खा जाती थीं।—

"०अनुमति देता हूँ, स रि त क (=पाषाण-चूर्ण)की।" 63

७—सरितकसे भी मुर्चा खा जाती थीं।—

"०अनुमति देता हूँ, मोमसे लपेटनेकी।" 64

८—सरितक टूट जाता था।—

"०अनुमति देता हूँ सरितककी, सि पा टि का (=गोंदकी)की।" 65

(१३) कठिन-चीवर

(क). क ठि न का फै ला ना—उस समय वहाँ कील गाळकर (उससे) बाँध चीवरको सीते थे, चीवर बेढंगे कोनोंवाला हो जाता था। ०।—

"०अनुमति देता हूँ कठिन[1], कठिनकी रस्सीकी, उसमें बाँधकर चीवर सीना चाहिये।66

ऊभळ-खाभळ (भूमि)पर क ठि न को फैलाते थे, कठिन टूट जाता था। ०।—

"ऊभळ-खाभळ (भूमि)पर कठिनको नहीं फैलाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 67

भूमिपर क ठि न को फैलाते थे, कठिनमें धूल लग जाती थी। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, तृणके बिछौनेकी।" 68

कठिनका छोर निर्बल हो जाता था। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, हवा आनेके रुख़ प रि भं ड (=ओट)के रखनेकी।"69

(ख). क ठि न की सि ला ई—कठिन पूरा न हो सकता था।—

"०अनुमति देता हूँ, दं ड क ठि न की (=चौखटा), पि द ल क (=खपाच), शलाका,

[1]सीनेका फट्ठा।

बाँधनेकी रस्सी, बाँधनेके सूतसे बाँधकर चीवरके सीनेकी।" 70

सु त्ता न्त रि का यें (=टाँके) बराबर न होती थी।—

"०अनुमति देता हूँ, कलम्बक (=पटियाना)की।" 71

सूत टेढ़े हो जाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ मो घ सु त्त क (=लंगर)की।" 72

उस समय भिक्षु बिना पैर धोये क ठि न पर च ढ़ ते थे, कठिन मैला हो जाता था। ०।—

"०बिना पैर धोये कठिनपर नहीं जाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 73

उस समय भिक्षु गीले पैरों कठिनपर चढ़ जाते थे, कठिन मैला हो जाता था। ०।—

"०गीले पैरों कठिनपर नहीं चढ़ना चाहिये, ०दुक्कट०।" 74

उस समय भिक्षु पैरमें जूता पहिने कठिनपर चढ़ जाते थे, कठिन मैला हो जाता था। ०।—

"०पैरमें जूता पहिने कठिनपर न चढ़ना चाहिये, ०दुक्कट०।" 75

(ग). मि ज्रा व कैं ची आ दि—उस समय भिक्षु चीवर सीते वक़्त अँगुलीसे पकळते थे, अँगुलियाँ रुक्ष (=खुर्दरी) हो जाती थीं। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, प्र ति ग्र ह (=मिज्राब)की।" 76

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सोना, रूपा (आदि) नाना प्रकारके प्र ति ग्र ह को धारण करते थे।० जैसे कामभोगी गृहस्थ। ०।—

"० सोना, रूपा (आदि) नाना प्रकारके परिग्रहको नहीं धारण करना चाहिये, ०दुक्कट०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ हड्डी,०[1] शंखके (प्रतिग्रह)की।" 77

उस समय स त्थ क (=कैंची) और प्र ति ग्र ह (=मिज्राब) दोनों खो जाते थे। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, आवेसन-वित्थक (=सियनी)की।" 78

आवेसन-वित्थक उलझ जाता था। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, प्र ति ग्र ह की थैलीकी।" 79

कंधे (पर थैलीको लटकाने)का बंधन न था। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, कंधेपर बाँधनेके सूतकी।" 80

(घ). क ठि न शा ला—उस समय भिक्षु खुली जगहमें चीवर सीते थे। भिक्षु सर्दीसे भी तकलीफ़ पाते थे, गर्मीसे भी। ०।—

"०अनुमति देता हूँ कठिनशालाकी, कठिन-मंडपकी।" 81

कठिनशाला नीची कुर्सीकी थी, पानी भर जाता था। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, कुर्सीके ऊँची बनानेकी।" 82

चुनावट गिर जाती थी।—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर और लकळी इन तीनकी चुनाईकी।" 83

चढ़नेमें दुःख पाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर और लकळी इन तीन प्रकारकी सीढ़ीकी।" 84

चढ़ते वक़्त गिर जाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ आलम्बन-बाहकी।" 85

---

[1] देखो चुल्ल० ५§१।१२ (२) पृष्ठ ४२६।

कठिनशालामें तृण-चूर्ण गिर जाता था।—

"०अनुमति देता हूँ, ओगुम्बन (=लेवारना) करके सफ़ेद, काला, गेरूसे रँगने, माला, लता, मकरदन्त, पाँच पाटीके चीवरके बाँस, चीवरकी रस्सीकी।" 86

उस समय भिक्षु चीवर सीकर क ठि न (=फट्टा) को वहीं छोळ चले जाते थे, गिरकर कठिन टूट जाता था। ०।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भीतकी खूँटीपर नागदन्त(=हथिदन्ती खूँटी)पर लटकानेकी।" 87

२—वैशाली

तव भगवान् रा ज गृ ह में इच्छानुसार विहारकर जिधर वै शा ली है, उधर चारिकाके लिये चल पळे। उस समय भिक्षु सूई भी, सत्थक (=कैंची) भी, भैपज्य भी पात्रमें लेकर जाते थे। ०।—

(१४) थैली

"०अनुमति देता हूँ, भैषज्यकी थैली (=स्थविका)की।" 88

कंधे (पर लटकानेका)का बंधन न होता था।—

"०अनुमति देता हूँ, कंधेके बंधनकी, बंधनके सूतकी।" 89

उस समय एक भिक्षु कायबंधन (=कमरबंद)से जूतेको बाँध गाँवमें भिक्षाके लिये गया। एक उपासकका शिर वंदना करते वक़्त जूतेसे लग गया। वह भिक्षु गुम हो गया। तब उस भिक्षुने आराममें जा भिक्षुओंसे यह बात कही। भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ, जूता (रखने)की थैलीकी।" 90

कंधे (पर लटकानेका) बंधन न होता था।—

"०अनुमति देता हूँ, कंधेके बंधनकी, बंधनके सूतकी।" 91

(१५) जलछक्का

उस समय रास्तेमें (चलते) पानी अकल्प्य (=व्यवहारके अयोग्य था, और) जलछक्का (=परिस्रावण) न था। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, जलछक्केकी।" 92

चोलक (=कपळा) ठीक न आता था।—

"०अनुमति देता हूँ (लकळीके मेखलेमें मढ़कर बने) कलछी जैसे जलछक्केकी।" 93

चोळकसे काम न चलता था।—

"०अनुमति देता हूँ धर्मकरक (=गळुए)की।" 94

उस समय दो भिक्षु को स ल देशमें रास्तेमें जा रहे थे। एक भिक्षु अनाचार (=ठीक आचार न) करता था, दूसरे भिक्षुने उस भिक्षुसे यह कहा—

"आवुस! मत ऐसा कर, यह विहित नहीं है।"

उसने उसके प्रति गाँठ बाँध ली। तब प्याससे पीळित हो उस भिक्षुने गाँठ बाँध लिये भिक्षुसे यह कहा—

"आवुस! मुझे जलछक्का दो, पानी पिऊँगा।"

गाँठ बाँधे भिक्षुने न दिया। वह भिक्षु प्यासके मारे मर गया। तब उस भिक्षुने आराममें जा भिक्षुओंसे वह बात कही।—

"क्या आवुस! माँगनेपर तूने जलछक्का नहीं दिया?"

"हाँ, आवुसो!"

जो वह अल्पेच्छ० भिक्षु थे, वह हैरान० होते थे—०। —सचमुच०" ।०—

"भिक्षुओ! रास्तेमें जाते जलछक्का माँगनेपर देनेसे इन्कार नहीं करना चाहिये, जो न दे उसे दुक्कट का दोष हो। 95

"भिक्षुओ! बिना जलछक्केके रास्तेमें नहीं जाना चाहिये, ०दुक्कट०। 96

"यदि जलछक्का न हो, तो संघाटीके कोनेसे ही छानकर पीनेका इरादा रखना चाहिये।"

§२—बिहार-निर्माण

(१) नवकर्म (=इमारत बनानेका काम)

तब भगवान् क्रमशः चारिका करते जहाँ वैशाली थी वहाँ गये। वहाँ भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागारशालामें विहार करते थे। उस समय भिक्षु नवकर्म (=नई इमारत बनवाना) करते थे, जलछक्का काम न दे सकता था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, डंडेमें लगे जलछक्केकी।" 97

डंडेमें लगा जलछक्का भी काम न दे सकता था।०।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ ओत्थरक (=छन्ना)की।" 98

उस समय भिक्षु मच्छरोंसे सताये जाते थे।०।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, मसहरीकी।" 99

उस समय वैशालीमें अच्छे अच्छे भोजोंका सिलसिला लगा हुआ था। भिक्षु अच्छे अच्छे भोजोंको खाकर शरीरके अभिसन्न (=सन्न) होनेसे बहुत बीमार रहा करते थे। तब जीवक कौमारभृत्य किसी कामसे वैशाली गया। जीवक कौमारभृत्यने...—होनेसे बीमार पळे देखा। देखकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्से अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे जीवक कौमारभृत्यने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! इस समय वैशालीमें अच्छे अच्छे भोजोंका सिलसिला लगा हुआ है। भिक्षु० बहुत बीमार पळे हुए हैं। अच्छा हो, भन्ते! भगवान् भिक्षुओंके लिये चंक्रम (=टहलनेकी जगह) और जन्ताघर (=स्नानगृह)की अनुमति दें, इस प्रकार भिक्षु बीमार न पळेंगे।"

तब भगवान्ने जीवक कौमारभृत्यको धार्मिक कथा द्वारा... समुत्तेजित=संप्रहर्षित किया। तब जीवक कौमारभृत्य० प्रहर्षित हो आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया। तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओं को संबोधित किया—

(२) चंक्रम, जन्ताघर

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, चंक्रम और जंताघरकी।" 100

उस समय भिक्षु ऊभळ खाभळ चंक्रमपर टहलते थे, पैर दर्द करते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, समतल करनेकी।" 101

चंक्रम नीची कुर्सीका था, पानी लग जाता था।—

"०अनुमति देता हूँ, ऊँची कुर्सीके करनेकी।" 102

चिनाई गिर पळती थी।—

"०अनुमति देता हूँ ईंट, पत्थर और लकळी—तीन प्रकारकी चुनाईकी।" 103

चढ़नेमें तकलीफ़ होती थी।—

"०अनुमति देता हूँ तीन प्रकारकी सीढ़ियोंकी—ईटकी सीढ़ी, पत्थरकी सीढ़ी, लकळीकी सीढ़ीकी।" 104

चढ़ते समय गिर पळते थे।—

"०अनुमति देता हूँ बाहीं (=आलम्बन बाह)की।" 105

उस समय भिक्षु टहलते वक़्त गिर पळते थे। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, चंक्रमकी वेदीकी।" 106

उस समय भिक्षु चौळेमें टहलते सर्दी गर्मीसे तकलीफ़ पाते थे। ०।—

"०अनुमति देता हूँ घेरकर (ओगुम्वेत्त्वा) लीपने पोतनेकी,सफ़ेद, काला, (या) गेरूसे रँगनेकी; माला, लता, मकरदन्त, पंचपटिका (=पाँच पाटीके चीवरके पाँस), चीवर टाँगनेके अर्गन (=बाँस-रस्सी)के बनानेकी।" 107

जन्ताघर नीची कुर्सीका होता था, (बरसातमें) पानी लग जाता था। ०।—

"०अनुमति देता हूँ ऊँची कुर्सीका करनेकी।" 108

चिनाई गिर पळती थी।—

"०अनुमति देता हूँ, ईट, पत्थर, और लकळी—तीन प्रकारकी चिनाईकी।" 109

चढ़नेमें तकलीफ़ होती थी।—

"०अनुमति देता हूँ तीन प्रकारकी सीढ़ियोंकी—ईटकी सीढ़ी, पत्थरकी सीढ़ी (और) लकळी की सीढ़ीकी।" 110

चढ़ते समय गिर पळते थे।—

"०अनुमति देता हूँ बाँहींकी।" 111

जन्ताघरमें किवाळ न होता था।—

"०अनुमति देता हूँ किवाळ, पृष्ठ-संघाट (=बिलाई), उलूखल (=देहरी), उत्तरपाशक (=सद्दल), अर्गलवर्त्तिक (=कपाट), कपिसीसक (=खूँटी), सूची (=कुंजी), घटिक (=ताला), ताल-छिद्र (=तालेका छिद्र), आविञ्जनच्छिद्द (=रस्सीका छिद्र), आविञ्जनरज्जु (=लटकन रस्सी)की।" 112

जन्ताघरकी भीतकी जळ खियाती (=घिसती) थी।०—

"०अनुमति देता हूँ मेंडरी बनानेकी।" 113

जन्ताघरमें धूमनेत्र (=धुँआ निकालनेकी चिमनी) न था। ०।—

"०अनुमति देता हूँ धूमनेत्रकी।" 114

उस समय भिक्षु छोटे जन्ताघरके बीचमें आगका स्थान भी बनाते थे। आने-जानेका अवकाश न रहता था।—

"०अनुमति देता हूँ, छोटे जन्ताघरमें एक ओर आगका स्थान बनानेकी, और बळे जन्ताघरमें बीचमें।" 115

जन्ताघरमें अग्निमुख (=मुन्ना) जल जाता था।—

"०अनुमति देता हूँ, मुँहपर मिट्टी देनेकी।" 116

हाथमें मिट्टी भिगाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ मिट्टीके (भिगानेके लिये) दोनकी।" 117

मिट्टीमें दुर्गन्ध आती थी।—

"०अनुमति देता हूँ मिट्टीको वासनेकी ।" 118
जन्ताघरमें आग कायाको जलाती थी ।—
"०अनुमति देता हूँ पानी लाकर रखनेकी।" 119
थालीमें भी पात्रमें भी पानी लाते थे ।—
"०अनुमति देता हूँ, पानीके स्थान (=उदकाधान)की, शराव (=पुरवे)की।" 120
तृणसे छाया जन्ताघर क़ूळेसे भर जाता था ।—
"०अनुमति देता हूँ घेरकर लीपने-पोतनेकी ।" 121
जन्ताघरमें कीचळ हो जाती थी—
"०अनुमति देता हूँ ईट, पत्थर और लकळी—(इन) तीन प्रकारके विछावकी।" 122
"०अनुमति देता हूँ, धोनेकी।" 123
पानी लग जाता था—
"०अनुमति देता हूँ, पानीकी नालीकी ।" 124
उस समय भिक्षु जन्ताघरमें ज़मीनपर बैठते थे, शरीरमें खुजली होती थी ।—
"०अनूमति देता हूँ, जन्ताघरकी चौकीकी।" 125
उस समय जन्ताघर घिरा न होता था।—

"०अनुमति देता हूँ, ईट, पत्थर और लकळी (इन) तीनके प्राकारोंसे (जन्ताघरको) घेरने की ।" 126

(३) कोष्ठक

कोष्ठक (=द्वारका कोठा) न होता था ।—
"०अनुमति देता हूँ कोष्ठककी ।"...127
"०अनुमति देता हूँ ऊँची कुर्सीके (कोष्ठक)की ।"...128
"०अनुमति देता हूँ, ईट, पत्थर और लकळी तीन प्रकारकी चिनाईकी ।"... 129

"०अनुमति देता हूँ तीन प्रकारकी सीढ़ियोंकी—ईंटकी सीढ़ी, पत्थरकी सीढ़ी और लकळीकी सीढ़ीकी।"...130

"०अनुमति देता हूँ वाँहींकी ।"...131
"०अनुमति देता हूँ किवाळ०[1] आविञ्जनरज्जुकी ।"...132
"०अनुमति देता हूँ मेंडरी बनानेकी ।" 133
उस समय कोष्ठकमें तिनकोंका चूरा गिरता था ।—
"०अनुमति देता हूँ, ओगुम्बनकर०[2] पंचपटिकाकी ।" 134
कीचळ होता था ।—
"०अनुमति देता हूँ, मरुम्ब (=चूर्ण) फैलानेकी ।" 135
नहीं पूरा पड़ता था—
"०अनुमति देता हूँ पदरसिला (=गिट्टी) विछानेकी ।" 136
पानी पळा रहता था—
"०अनुमति देता हूँ, पानीकी नालीकी ।" 137

---

[1] चुल्ल० ५§२।२ पृष्ठ ४३० (112) । [2] चुल्ल० ५§२।२ पृष्ठ ४३० (107) ।

उस समय भिक्षु नंगे होते एक दूसरेकी वंदना करते कराते थे। एक दूसरेकी मालिश करते थे; एक दूसरे को (चीजें) देते थे, ग्रहण करते थे, खाते थे, आस्वादन करते थे, पीते थे। ०।—

"भिक्षुओ! नंगा होते एक दूसरेकी वंदना न करनी करानी चाहिये। एक दूसरेकी मालिश न करनी चाहिये, एक दूसरेको देना न चाहिये, ग्रहण न करना चाहिये; न खाना आस्वादन करना, (और) पीना चाहिये। जो वंदना करे० पीये उसे दुक्कटका दोष हो।" 138

उस समय भिक्षु जन्ताघरमें जमीनपर चीवर रखते थे, चीवरमें धूल लग जाती थी।०—

"०अनुमति देता हूँ, जन्ताघरमें चीवर (टाँगनेके) बाँस और रस्सीकी।" 139

वर्षा होनेपर चीवर भीग जाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ जन्ताघर-शालाकी।"........140

"०अनुमति देता हूँ ऊँची कुरसीकी करनेकी।" 141

"०अनुमति देता हूँ, ०[1] चिननेकी।" 142

"०अनुमति देता हूँ, ०[2] सीढीकी।"..........143

"०अनुमति देता हूँ, बाहींकी।" 144

जन्ताघरकी शालामें तिनकेका चूरा पळता था—

"०अनुमति देता हूँ, ओगुम्बनकर०[3] चीवर (टाँगने)के बाँस-रस्सीके बनानेकी। 145

उस समय भिक्षु जंताघरमें और पानीमें नंगे हो मालिश करनेमें हिचकिचाते थे।०।—

"०अनुमति देता हूँ, तीन प्रकारके पर्दे (में नंगे होने)की—जन्ताघरका पर्दा, पानीका पर्दा, (और) वस्त्रका पर्दा।" 146

(४) पानीके स्थान

उस समय जन्ताघरमें पानी नहीं रहता था।—

"०अनुमति देता हूँ उ द पा न (=खिळौची)की।" 147

उदपानका कूल (=बारी) टूटता था।—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट पत्थर और लकळीकी चिनाईकी।"........148

"०अनुमति देता हूँ, ऊँची कुरसी बनानेकी।"......149

"०अनुमति देता हूँ, तीन प्रकारकी सीढ़ियोंकी०।" 150

"०अनुमति देता हूँ, बाँहींकी।" 151

उस समय भिक्षु वल्लीसे भी, कमरबंदसे भी पानी निकालते थे—

"०अनुमति देता हूँ, पानी निकालनेके (=कूँएँ)की रस्सीकी।" 152

हाथमें दर्द होने लगता था—

"०अनुमति देता हूँ, तुला (=ढेंकली), करकटक (=पुर) और चक्कवट्टक (=रहट)की।" 153

बर्तन बहुत टूटते थे—

"०अनुमति देता हूँ, तीन वारकों (=रक्षकों)की—लोहवारक, दारु-वारक और धर्म-खंडकी।" 154

उस समय भिक्षु खुली जगहमें पानी निकालते वक्त सर्दीसे भी गर्मीसे भी कष्ट पाते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, भिक्षुओ उदपान-शाला (=कूँएँ परकी छाजन)की।" 155

---

[1]देखो पृष्ठ ४३०-३१ (107,127)। [2]देखो पृष्ठ ४३१ (129)।

[3]देखो पृष्ठ ४३१ (130)।

उदपान-शालामें तिनकेका चूरा गिरता था।—

"०अनुमति देता हूँ, ओगुम्बनकर०[१] पंचपटिका, चीवर (टाँगने)के बाँस रस्सीकी।" 156

उदपान (=कुआँ) ढँका न होता था, तिनकेका चूरा गिरता था।—

"०अनुमति देता हूँ, पिहान (पिधान, ढक्कन)की।" 157

पानीका वर्तन न था—

"०अनुमति देता हूँ, पानीके दोनके, पानीके कड़ारकी।" 158

उस समय भिक्षु आराममें जहाँ तहाँ नहाते थे, उन्हें उससे आराममें कीचळ (=चिक्खल्ल) हो जाता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, च न्द नि का (=हौज)की।" 159

चन्दनिका ढँकी न होती थी।, भिक्षु नहानेमें लजाते थे—

"०अनुमति देता हूँ, ईट, पत्थर या लकळी—तीन प्रकारके प्राकारोंसे घेरनेकी।" 160

चन्दनिकामें कीचळ हो जाता था।—

"०अनुमति देता हूँ, ईट, पत्थर या लकळी इन तीन प्रकारके बिछावकी।" 161

पानी लग जाता था।—

"०अनुमति देता हूँ, पानीकी नालीकी।" 162

उस समय भिक्षुओंके शरीर भीगे रहते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ अंगोछे (=उदकपुंछन चोलक)से सुखानेकी।" 163

उस समय एक उपासक संघके लिये पुष्करिणी बनवाना चाहता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, पुष्करिणीकी।" 164

पुष्करिणीका कूल (=किनारा) गिर जाता था—

"०अनुमति देता हूँ, ईट, पत्थर या लकळीकी चिनाईकी।"........165

"०अनुमति देता हूँ, सीढ़ीकी—०।"........166

"०अनुमति देता हूँ, वाहींकी।" 167

पानी पुराना हो जाता था।—

"०अनुमति देता हूँ, पानीकी नालीकी, पानीकी नहरकी।" 168

उस समय एक भिक्षु संघके लिये निल्लेख (=मुँडेरेवाला) जन्ताघर बनाना चाहता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, निल्लेख जन्ताघरकी।" 169

(५) आसन, शय्या

उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु चौमासे भर आसनी (=निषीदन)ले प्रवास करते थे।०—

"०भिक्षुओ! चौमासे भर आसनी ले प्रवास न करना चाहिये, जो प्रवास करे, उसे दुक्कटका दोष हो।" 170

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु फूल विखेरी शय्यापर सोते थे। लोग विहारमें घूमते वक्त (उसे) देखकर हैरान० होते थे—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"०भिक्षुओ! फूल विखेरी शय्यापर न सोना चाहिये,० दुक्कट०।" 171

उस समय लोग गंधकी माला भी लेकर आराममें आते थे। भिक्षु संदेहमें पळ नहीं लेते थे।०—

---

[१] देखो पृष्ठ ४३० (107)।

"०अनुमति देता हूँ, गंधको ग्रहणकर किवाळमें पाँच अँगुलियोंके छाप (=पंचाँगुलिक) देनेकी, और फूलोंको ग्रहण कर विहारके एक ओर रख देनेकी।" 172

उस समय संघको न म त क (=वस्त्र-खंड) मिला था।०—

"०अनुमति देता हूँ, नमतककी।" 173

तब भिक्षुओंको यह हुआ—'क्या नमतकका इस्तेमाल (=अधिष्ठान) करना चाहिये, या विकल्प (=बारीसे इस्तेमाल) करना चाहिये ?'—

"भिक्षुओ ! नमतकका न अधिष्ठान करना चाहिये, न विकल्प करना चाहिये।" 174

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु आसिक्तकोपधान (=ताँबे चाँदीके तारोंसे खचित तकिये) को इस्तेमाल करते थे ०—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ ! आसिक्त-उपधानको नहीं इस्तेमाल करना चाहिये,० दुक्कट०।" 175

उस समय एक भिक्षु रोगी था, वह भोजन करते वक्त हाथमें पात्र न रख सकता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, म लो रि क (=आधार-डंडेके आधार)की।" 176

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु एक बर्तनमें खाते थे, एक प्यालेमें भी पीते थे, एक चारपाईपर भी लेटते थे, एक बिछौनेपर भी लेटते थे, एक ओढ़नेमें भी लेटते थे। एक ओढ़ने-बिछौनेमें भी लेटते थे। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ ! एक बर्तनमें नहीं खाना चाहिये, एक प्याले में नहीं पीना चाहिये, एक चारपाई पर नहीं लेटना चाहिये, एक बिछौनेपर नहीं लेटना चाहिये, एक ओढ़नेमें नहीं लेटना चाहिये, एक ओढ़ने-बिछौनेमें नहीं लेटना चाहिये। जो खाये० लेटे, उसे दुक्कटका दोष हो।" 177

(६) वड्ढ लिच्छवीके लिये पात्र ढाँकना

उस समय व ड्ढ लि च्छ वी मे त्ति य औ र भु म्म ज क भिक्षुओंका मित्र था। तब वड्ढ लिच्छवी जहाँ मेत्तिय भुम्मजक भिक्षु थे, वहाँ गया। जाकर मेत्तिय भुम्मजक भिक्षुओंसे यह बोला—

"आर्यो ! वन्दना करता हूँ।"

ऐसा कहनेपर मेत्तिय भुम्मजक भिक्षु नहीं बोले।

दूसरी बार भी वड्ढ लिच्छवी०।

तीसरी बार भी वड्ढ लिच्छवी० यह बोला—

"आर्यो ! वन्दना करता हूँ।"

तीसरी बार भी मेत्तिय और भुम्मजक भिक्षु नहीं बोले।

"क्या मैंने आर्योंका अपराध किया ? क्यों आर्य मुझसे नहीं बोल रहे हैं ?"

"क्योंकि आवुस वड्ढ ! द र्भ म ल्ल पु त्र[1] द्वारा हमें सताये जाते देखकर भी तुम पर्वाह नहीं करते।"

"(तो) आर्यो ! मैं क्या करूँ ?"

"आवुस वड्ढ ! यदि तुम चाहो, तो आजही भगवान् आयुष्मान् दर्भमल्लपुत्रको नाश (निकाल) देंगे।"

"आर्यो ! मैं क्या करूँ ? मैं क्या कर सकता हूँ ?"

"आओ आवुस वड्ढ ! जहाँ भगवान् हैं वहाँ जाकर भगवान्से यह कहो—

'भन्ते ! यह योग्य नहीं०[१] पानी जलतासा मालूम पळता है। आर्य दर्भमल्लपुत्रने मेरी स्त्री को दूषित किया।'

"अच्छा आर्यो !"—०[१] ।

"भन्ते ! जन्मसे लेकर स्वप्नमें भी मैथुन सेवन करनेको मैं नहीं जानता, जागतेकी तो वात ही क्या ?"

तव भगवान्ने भिक्षुओंको संवोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! संघ वड्ढ लिच्छवी पुत्रका पत्त-निकुज्जन करे।

"भिक्षुओ ! आठ वातोंसे युक्त उपासकके लिये, पत्तनिकुज्जन (=उसकी भिक्षा आनेपर उसे न लेनेपर पात्रको मूँद दिया जाय) करना चाहिये—(१) भिक्षुओंके अलाभ (=हानि)के लिये प्रयत्न करता है; (२) भिक्षुओंके अनर्थके लिये प्रयत्न करता है; (३) भिक्षुओंके अवास (=न रहने)के लिये प्रयत्न करता है; (४) भिक्षुओंका आक्रोश (=निंदा) परिहास करता है; (५) भिक्षुओंकी आपसमें फूट कराता है; (६) वुद्धकी निंदा करता है; (७) धर्मकी निन्दा करता है; (८) संघकी निन्दा करता है।—भिक्षुओ ! इन पाँच० । 178

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार पत्त-निक्कुज्जन करना चाहिये—चतुर समर्थ भि क्षु संघको सूचित करे।—

"क. ज्ञ प्ति ० । ख. अ नु श्रा व ण ०।

"ग. धा र णा—'संघने व ड्ढ लिच्छवीके लिये पात्र ढाँक दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।"

तव आयुष्मान् आनन्द पूर्वाह्न समय पहिन कर पात्र चीवर ले जहाँ वड्ढ लिच्छवीका घर था, वहाँ गये। जाकर वड्ढ लिच्छवीसे यह वोले—

"आवुस वड्ढ ! संघने तेरे लिये पात्र ढाँक दिया, संघके उपयोगके तुम अयोग्य हो।"

तव वड्ढ लिच्छवी—'संघने मेरे लिये पात्र ढाँक दिया, मैं संघके उपयोगके अयोग्य हूँ'—(सोच) वहीं मूर्छित हो गिर पळा। तव वड्ढ लिच्छवी मित्र-अमात्य, जाति-विरादरीवाले वड्ढ लिच्छवीसे यह वोले—

"वस आवुस वड्ढ ! मत शोक करो, मत खेद करो। हम भगवान् और भिक्षु-संघको मनावेंगे।"

तव वड्ढ लिच्छवी स्त्री-पुत्र सहित, मित्र-अमात्य जाति-विरादरीवालों सहित भीगे वस्त्रों भीगे केशों सहित, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्के पैरोंमें शिरसे पळकर भगवान्से यह वोला—

"भन्ते ? वाल (=मूर्ख)सा, मूढ़सा, अचतुरसा हो मैंने जो अपराध किया ; जोकि मैंने आर्य दर्भ, मल्लपुत्रको निर्मूल शील-भ्रष्टताका दोष लगाया; सो भन्ते ! भगवान् भविष्यमें संवर (=रोक करने) के लिये मेरे उस अपराधको अत्ययके तौरपर स्वीकार करें।"

"आवुस ! जो तूने वालसा हो अपराध किया०। चूँकि आवुस ! तू अपराधको अपराधके तौर पर देखकर धर्मानुसार प्रतीकार करता है, इसलिये हम उसे स्वीकार करते हैं। आवुस ! वड्ढ आर्य विनयमें यह वृद्धि (की वात) है, जो कि (किये) अपराधको अपराधके तौरपर देखकर धर्मानुसार (उसका) प्रतीकार करना, और भविष्यके संवरके लिये प्रयत्नशील होना।"

तव भगवान्ने भिक्षुओंको संवोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! संघ वड्ढ लिच्छवीके लिये पात्रको उघाळ दे।

---

[१] देखो चुल्ल० ४§२।१ पृष्ठ ३९५-६ ।

"भिक्षुओ ! आठ बातोंसे युक्त उपासकके लिये संघ पत्त-उक्कुज्जन (=पात्र उघाळना) करे—(१) भिक्षुओंके अलाभके लिये०, (२)० अनर्थके लिये०; (३)० अवासके लिये प्रयत्न नहीं करता; (४) भिक्षुओंकी आक्रोश परिहास नहीं करता; (५) भिक्षुओंकी आपसमें फूट नहीं करता; (६) बुद्धकी निन्दा नहीं करता; (७) धर्मकी निन्दा नहीं करता; (८) संघकी निन्दा नहीं करता।—इन पाँच०। 179

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार पत्त-उक्कुज्जन करना चाहिये—चतुर समर्थ संघको सूचित करे—

"क. ज्ञ प्ति०। ख. अ नु श्रा व ण ०।

"ग. धा र णा—'संघने वड्ढ लिच्छवीके लिये पात्र उघाळ दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।"

३—सुंसुमारगिरि

तब भगवान् वैशालीमें इच्छानुसार विहारकर जिधर भ र्ग है उधर चारिकाके लिये चल पळे क्रमशः चारिका करते जहाँ भर्ग था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् भ र्ग (देश)के सं सु मा र गि रि के भेस क ला व न के मृ ग दा व में विहार करते थे।

(७) बोधिराजकुमारका सत्कार

उस समय बोधि राजकुमारने श्रमण या ब्राह्मण या किसी भी मनुष्यसे न भोगे को क न द नामक प्रासादको हालहीमें बनवाया था। तब बोधि-राजकुमारने सं जि का पु त्र माणवकको संबोधित किया—

"आओ तुम सौम्य ! संजिकापुत्र ! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जाओ। जाकर मेरे वचन से, भगवान्के चरणोंमें शिरसे वन्दनाकर, आरोग्य, अन-आतंक, लघु-उत्थान (=शरीरकी कार्यक्षमता) बल, अनुकूल विहार, पूछो—'भन्ते ! बोधि-राजकुमार भगवान्के चरणोंमें शिरसे वन्दनाकर आरोग्य० पूछता है, और यह भी कहो—'भन्ते ! भिक्षु-संघसहित भगवान् बोधि-राजकुमारका कलका भोजन स्वीकार करें'।"

"अच्छा हो (=भो), कह संजिका-पुत्र माणवक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्से ......(कुशल प्रश्न)......पूछ, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठकर संजिका-पुत्र माणवकने भगवान्से कहा—"हे गौतम ! बोधि-राजकुमार आपके चरणोंमें०। बोधिराज-कुमारका कलका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्ने मौनद्वारा स्वीकार किया। तब संजिका-पुत्र माणवक भगवान्की स्वीकृति जान, आसनसे उठ जहाँ बोधि-राजकुमार था, वहाँ गया। जाकर बो धि राजकुमारसे बोला—

"आपके वचनसे मैंने उस गौतमको कहा—'हे गौतम ! बोधि-राजकुमार०। श्रमण गौतमने स्वीकार किया।"

तब बोधि राजकुमारने उस रातके बीतनेपर अपने घरमें उत्तम खादनीय भोजनीय (पदार्थ) तैयार करवा, को क न द-प्रासादको सफेद (=अवदात) धुस्सोंसे सीढ़ीके नीचे तक बिछवा, संजिकापुत्र माणवकको संबोधित किया—

"आओ सौम्य ! संजिकापुत्र ! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जाकर भगवान्को काल कहो—'भन्ते ! काल है, भात (=भोजन) तैयार हो गया।"

"अच्छा भो !"........काल कह.......।

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्रचीवर ले, जहाँ बोधि-राजकुमारका घर(=निवेसन) था, वहाँ गये। उस समय बोधि-राजकुमार भगवान्की प्रतीक्षा करता हुआ, द्वारकोष्ठक (=नौबत-खाना)के बाहर खड़ा था। बोधि-राजकुमारने दूरसे भगवान्को आते देखा। देखते ही अगवानीकर भगवान्की वन्दनाकर, आगे आगे करके जहाँ कोकनद-प्रासाद था, वहाँ ले गया। तब भगवान् निचली सीढ़ीके पास खळे हो गये। बोधि-राजकुमारने भगवान्से कहा—"भन्ते ! भगवान् धुस्सोंपर चलें। सुगत ! धुस्सोंपर चलें, ताकि (यह) चिरकाल तक मेरे हित और सुखके लिये हो।"

(८) पाँवळेका निषेध

१—ऐसा कहनेपर भगवान् चुप रहे।

दूसरी बार भी बोधि-राजकुमारने०। तीसरी बार भी०।

तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दकी ओर देखा। आयुष्मान् आनन्दने बोधि-राजकुमारको कहा—

"राजकुमार ! धुस्सोंको समेट लो। भगवान् पाँवळे (=चैल-पंक्ति)पर न चढ़ेंगे। तथागत आनेवाली जनताका ख्याल कर रहे हैं।"

बोधि-राजकुमारने धुस्सोंको समेटवाकर, कोकनद-प्रासादके ऊपर आसन बिछवाये। भगवान् कोकनद-प्रासादपर चढ़, संघके साथ बिछे आसनपर बैठे। तब बोधि-राजकुमारने बुद्धसहित भिक्षुसंघको अपने हाथसे उत्तम खादनीय भोजनीय(पदार्थों)से संतर्पित किया, संतुष्ट किया। भगवान्के भोजनकर पात्रसे हाथ खींच लेनेपर, बोधिराजकुमार एक नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे बोधिराजकुमारको भगवान् धार्मिक कथासे...समुत्तेजित संप्रहर्षितकर आसनसे उठकर चले गये।

तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! पाँवळेपर नहीं चलना चाहिये, जो चले, उसे दुक्कटका दोष हो।" 180

२—उस समय एक अपगतगर्भा (=लळायन) स्त्रीने भिक्षुओंको निमंत्रित कर कपळा (=दुस्स) बिछा यह कहा—

"भन्ते ! कपड़ेपर चलें।"

भिक्षु हिचकिचाकर नहीं चल रहे थे।

"भन्ते ! मंगलके लिये कपड़ेपर चलें।"

भिक्षु हिचकिचाकर कपड़ेपर न चले। तब वह स्त्री हैरान ० होती थी—'कैसे आर्य लोग मंगलके लिये याचना करनेपर भी पाँवड़ेपर नहीं चलते !' भिक्षुओंने उस स्त्रीके हैरान ० होनेको सुना। तब उन भिक्षुओंने यह बात भगवान्से कही।०—

"भिक्षुओ ! गृहस्थ लोग (मंगल। होनेवाले कामोंके) करनेवाले होते हैं। 181

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ गृहस्थोंके मंगलके लिये याचना करनेपर पाँवळेपर चलनेकी।" 182

§२—पंखा, छींका, छत्ता, दण्ड, नख-केश, कन-खोदनी, अंजन-दानी

४—श्रावस्ती

(१) घळा, झाळू

तब भगवान्ने भर्ग (देश)में इच्छानुसार विहारकर जिधर श्रावस्ती है, उधर चारिकाके

"भिक्षुओ ! आठ बातोंसे युक्त उपासकके लिये संघ पत्त-उक्कुज्जन (=पात्र उघाळना) करे—(१) भिक्षुओंके अलाभके लिये०, (२)० अनर्थके लिये०; (३)० अवासके लिये प्रयत्न नहीं करता; (४) भिक्षुओंकी आक्रोश परिहास नहीं करता; (५) भिक्षुओंकी आपसमें फूट नहीं करता; (६) बुद्धकी निन्दा नहीं करता; (७) धर्मकी निन्दा नहीं करता; (८) संघकी निन्दा नहीं करता।—इन पाँच०। 179

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार पत्त-उक्कुज्जन करना चाहिये—चतुर समर्थ संघको सूचित करे—

"क. ज्ञ प्ति०। ख. अ नु श्रा व ण ०।

"ग. धा र णा—'संघने वड्ढ लिच्छवीके लिये पात्र उघाळ दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।"

३—सुंसुमारगिरि

तब भगवान् वैशालीमें इच्छानुसार विहारकर जिधर भ र्ग है उधर चारिकाके लिये चल पळे क्रमशः चारिका करते जहाँ भर्ग था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् भ र्ग (देश)के सं सु मा र गि रि के भेस क ला व न के मृ ग दा व में विहार करते थे।

(७) बोधिराजकुमारका सत्कार

उस समय बोधि राजकुमारने श्रमण या ब्राह्मण या किसी भी मनुष्यसे न भोगे को क न द नामक प्रासादको हालहीमें बनवाया था। तब बोधि-राजकुमारने सं जि का पु त्र माणवकको संबोधित किया—

"आओ तुम सौम्य ! संजिकापुत्र ! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जाओ। जाकर मेरे वचन से, भगवान्के चरणोंमें शिरसे वन्दनाकर, आरोग्य, अन-आतंक, लघु-उत्थान (=शरीरकी कार्यक्षमता) बल, अनुकूल विहार, पूछो—'भन्ते ! बोधि-राजकुमार भगवान्के चरणोंमें शिरसे वन्दनाकर आरोग्य० पूछता है, और यह भी कहो—'भन्ते ! भिक्षु-संघसहित भगवान् बोधि-राजकुमारका कलका भोजन स्वीकार करें'।"

"अच्छा हो (=भो), कह संजिका-पुत्र माणवक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्से ......(कुशल प्रश्न).......पूछ, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठकर संजिका-पुत्र माणवकने भगवान्से कहा—"हे गौतम ! बोधि-राजकुमार आपके चरणोंमें०। बोधिराज-कुमारका कलका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्ने मौनद्वारा स्वीकार किया। तब संजिका-पुत्र माणवक भगवान्की स्वीकृति जान, आसनसे उठ जहाँ बोधि-राजकुमार था, वहाँ गया। जाकर बो धि राजकुमारसे बोला—

"आपके वचनसे मैंने उन गौतमको कहा—'हे गौतम ! बोधि-राजकुमार०। श्रमण गौतमने स्वीकार किया।"

तब बोधि राजकुमारने उस रातके बीतनेपर अपने घरमें उत्तम खादनीय भोजनीय (पदार्थ) तैयार करवा, को क न द-प्रासादको सफेद (=अवदात) धुस्सोंसे सीढ़ीके नीचे तक बिछवा, संजिकापुत्र माणवकको संबोधित किया—

"आओ सौम्य ! संजिकापुत्र ! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जाकर भगवान्को काल कहो—'भन्ते ! काल है, भात (=भोजन) तैयार हो गया।"

"अच्छा भो !"........काल कह......।

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्रचीवर ले, जहाँ बोधि-राजकुमारका घर(=निवेसन) था, वहाँ गये। उस समय बोधि-राजकुमार भगवान्‌की प्रतीक्षा करता हुआ, द्वारकोष्ठक (=नौबत-खाना)के बाहर खड़ा था। बोधि-राजकुमारने दूरसे भगवान्‌को आते देखा। देखते ही अगवानीकर भगवान्‌की वन्दनाकर, आगे आगे करके जहाँ कोकनद-प्रासाद था, वहाँ ले गया। तब भगवान् निचली सीढ़ीके पास खळे हो गये। बोधि-राजकुमारने भगवान्‌से कहा—"भन्ते ! भगवान् धुस्सोंपर चलें। सुगत ! धुस्सोंपर चलें, ताकि (यह) चिरकाल तक मेरे हित और सुखके लिये हो।"

(८) पाँवळेका निषेध

१—ऐसा कहनेपर भगवान् चुप रहे।

दूसरी बार भी बोधि-राजकुमारने०। तीसरी बार भी०।

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दकी ओर देखा। आयुष्मान् आनन्दने बोधि-राजकुमारको कहा—

"राजकुमार ! धुस्सोंको समेट लो। भगवान् पाँवळे (=चैल-पंक्ति)पर न चढ़ेंगे। तथागत आनेवाली जनताका ख्याल कर रहे हैं।"

बोधि-राजकुमारने धुस्सोंको समेटवाकर, कोकनद-प्रासादके ऊपर आसन बिछवाये। भगवान् कोकनद-प्रासादपर चढ़, संघके साथ बिछे आसनपर बैठे। तब बोधि-राजकुमारने बुद्धसहित भिक्षुसंघको अपने हाथसे उत्तम खादनीय भोजनीय(पदार्थों)से संतर्पित किया, संतुष्ट किया। भगवान्‌के भोजनकर पात्रसे हाथ खींच लेनेपर, बोधिराजकुमार एक नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे बोधिराजकुमारको भगवान् धार्मिक कथासे...समुत्तेजित संप्रहर्षितकर आसनसे उठकर चले गये।

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! पाँवळेपर नहीं चलना चाहिये, जो चले, उसे दुक्कटका दोष हो।" 180

२—उस समय एक अपगतगर्भा (=ळळायन) स्त्रीने भिक्षुओंको निर्मंत्रित कर कपळा (=दुस्स) बिछा यह कहा—

"भन्ते ! कपड़ेपर चलें।"

भिक्षु हिचकिचाकर नहीं चल रहे थे।

"भन्ते ! मंगलके लिये कपड़ेपर चलें।"

भिक्षु हिचकिचाकर कपड़ेपर न चले। तब वह स्त्री हैरान० होती थी—'कैसे आर्य लोग मंगलके लिये याचना करनेपर भी पाँवड़ेपर नहीं चलते !' भिक्षुओंने उस स्त्रीके हैरान० होनेको सुना। तब उन भिक्षुओंने यह बात भगवान्‌से कही।०—

"भिक्षुओ ! गृहस्थ लोग (मंगल। होनेवाले कामोंके) करनेवाले होते हैं। 181

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ गृहस्थोंके मंगलके लिये याचना करनेपर पाँवळेपर चलनेकी।" 182

§२—पंखा, छींका, छत्ता, दण्ड, नख-केश, कन-खोदनी, अंजन-दानी

४—श्रावस्ती

(१) घळा, झाळू

तब भगवान्‌ने भर्ग (देश)में इच्छानुसार विहारकर जिधर श्रावस्ती है, उधर चारिकाके

लिये चल दिये। क्रमशः चारिका करते जहाँ श्रावस्ती है, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जे त व न में विहार करते थे। तब वि शा खा - मृ गा र मा ता घळे, कतक (=झाँवाँ) और झाळू लिवा जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई; जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठी विशाखा मृगारमाताने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! भगवान् मेरे घळे, कतक और झाळूको स्वीकार करें, जो कि चिरकाल तक मेरे हित-सुखके लिये हो।"

भगवान्ने घळे और झाळूको ग्रहण किया, किंतु कतकको नहीं ग्रहण किया। भगवान्ने विशाखा मृगारमाताको धार्मिक कथा द्वारा...समुत्तेजित संप्रहर्षित किया। ० भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणा कर चली गई। तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह, भिक्षुओंको संबोधित किया।—

"० अनुमति देता हूँ घळे और झाळूकी। भिक्षुओ! कतकका इस्तेमाल न करना चाहिये, ०दुक्कट ०। 183

"० अनुमति देता हूँ, (पत्थरके) डले, कठल (=काठ) और समुद्रफेन=इन तीन प्रकारके पैर-घिसनाकी।" 184

(२) पंखा

तब विशाखा मृगारमाता वेने और ताळके पंखेको ले जहाँ भगवान् थे वहाँ गई। ०।—

"भन्ते! भगवान् मेरे वेने और ताळके पंखेको स्वीकार करें; जो कि चिरकाल तक मेरे हित-सुखके लिये हो।"

भगवान्ने वेने और ताळके पंखेको स्वीकार किया। ०।—

"० अनुमति देता हूँ वेने और ताड़के पंखेकी।" 185

उस समय संघको मच्छर हाँकनेकी विजनी मिली थी। भगवान्से यह बात कही।—

"० अनुमति देता हूँ, मच्छरकी विजनीकी।" 186

चँवरकी विजनी (=चमरीकी विजनी) मिली थी।०—

"भिक्षुओ! चँवरकी विजनी नहीं धारण करनी चाहिये, ० दुक्कट ०। 187

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ तीन प्रकारकी विजनियोंकी—छालकी, खसकी और मोरपंख-की।" 188

(३) छत्ता

उस समय संघको छत्ता मिला था।०—

"० अनुमति देता हूँ छत्तेकी।" 189

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु छत्ता लेकर टहलते थे। उस समय एक (बौद्ध) उपासक बहुतसे यात्री आ जी व कों के अनुयायियोंके साथ बागमें गया था। उन आजीवक-अनुयायियोंने दूसरे षड्वर्गीय भिक्षुओंको छत्ता धारण किये आते देखा। देखकर उस उपासकसे यह कहा—

"आवुसो! यह तुम्हारे भदन्त हैं छता धारण करके आ रहे हैं, जैसे कि ग ण क म हा मा त्य (=हिसाब निरीक्षक)!!"

"आर्यो! यह भिक्षु नहीं हैं, यह परिव्राजक हैं।"

'भिक्षु हैं, भिक्षु नहीं हैं'—इसके लिये उन्होंने बाजी (=अद्भुत) लगाई। तब पासमें आनेपर परिव्राजक पहिचानकर वह उपासक हैरान ० होता था—'कैसे भदन्त छता धारण कर टहलते हैं!'

भिक्षुओंने उस उपासकके हैरान होने ० को सुना। तव उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह वात कही।—
"सचमुच ०।—

"भिक्षुओ! छत्ता न धारण करना चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 190

उस समय भिक्षु रोगी था, छत्तेके विना उसे अच्छा न होता था ।०—

"० अनुमति देता हूँ रोगीको छत्तेकी।" 191

उस समय भिक्षु—भगवान्‌ने रोगीको ही छत्ता धारण करनेके लिये यही विधान किया है, अरोगीको नहीं—(सोच) आराममें और आरामके वासमें (भी) छत्ता धारण करनेमें हिचकिचाते थे ।०—

"० अनुमति देता हूँ अरोगीको आराममें और आरामके पास छत्ता धारण करनेकी।" 192

(४) छींका, दंड

उस समय एक भिक्षु सींके (=सिक्का)में पात्रको डाल डंडेसे लटका अपराह्णमें एक गाँवके द्वारसे जा रहा था।—लोग—यह आर्यो! चोर है, तलवार इसकी दीख रही है—कह दौळे, (पीछे) पहिचानकर (उन्होंने) छोळ दिया। तव भिक्षुने आराममें जा भिक्षुओंसे यह वात कही।—

"क्या आवुस! तूने सींका-डंडा धारण किया था?"

"हाँ, आवुसो!"

०अल्पेच्छ० हैरान होते थे ।० सचमुच०।०—

"भिक्षुओ! सींका-डंडा न धारण करना चाहिये,० दुक्कट०।" 193

उस समय एक भिक्षु वीमार था, डंडे विना चल न सकता था।०—

"भिक्षुओ! रोगी भिक्षुको डंड रखनेकी संमति देनेकी अनुमति देता हूँ। 194

"और भिक्षुओ! इस प्रकार देना चाहिये—या च ना—(१) "वह रोगी भिक्षु संघके पास जा[1]० याचना करे—'भन्ते! मैं रोगी हूँ विना डंडेके चल नहीं सकता। सो मैं भन्ते! संघसे डंडेकी स म्म ति माँगता हूँ।

"तव चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

"क. ज्ञ प्ति०।

"ख. अनुश्रावण०।

"ग. धा र णा—'संघने इस नामवाले भिक्षुको डंडा (रखने)की सम्मति दे दी। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।"

उस समय एक भिक्षु रोगी था, विना सींकेके पात्र नहीं ले चल सकता था ।०—

"०अनुमति देता हूँ, रोगी भिक्षुको सींकेके लिये स म्म ति देनेकी।" 195

"और भिक्षुओ! इस प्रकार देनी चाहिये ०[2]।"

उस समय एक भिक्षु वीमार था, विना डंडेके चल नहीं सकता था, विना सींकेके पात्र नहीं ले चल सकता था ।०—

"०अनुमति देता हूँ रोगी भिक्षुको सींका-डंडाके लिये स म्म ति देनेकी।" 196

"और भिक्षुओ! इस प्रकार देनी चाहिये ०[2]।"

---

[1] ऊपर दण्डकी सम्मतिकी भाँति ही।

[2] ऊपरकी तरह।

उस समय भिक्षुओ ! एक जुगाली करनेवाला भिक्षु था, वह जुगाली कर करके खाता था। भिक्षु हैरान० होते थे—'यह भिक्षु दोपहर बाद (=विकाल)में भोजन करता है !! भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! यह भिक्षु हालहीमें गायकी योनिसे (यहाँ) पैदा हुआ है।

"०अनुमति देता हूँ रोमन्थक (=जुगाली करनेवाले)को जुगाली करनेकी। किन्तु, भिक्षुओ ! मुखके द्वारपर लाकर नहीं खाना चाहिये, जो खाये उसे धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये।"। 197

उस समय एक पू ग (=बनियोंका संघ)ने संघको भोज दिया था। (भिक्षुओंने) चौकेमें बहुत जूठ बिखेर दिया। लोग हैरान० होते थे—कैसे शाक्य-पुत्रीय श्रमण ओदन देनेपर सत्कारपूर्वक नहीं ग्रहण करते ! एक एक कनिका सौ कामोंसे बनता है।' भिक्षुओंने सुना।०।—

"०अनुमति देता हूँ, देते वक्त जो गिरे, उसे स्वयं लेकर खानेकी। भिक्षुओ ! उसे दायकोंने प्रदान किया है।" 198

(५) नख काटना

उस समय एक भिक्षु लंबा नख (बढ़ाये) भिक्षाचार करता था। एक स्त्रीने देखकर उस भिक्षुसे यह कहा—

"आओ, भन्ते ! मैथुन सेवन करो।"

"नहीं भगिनी ! यह (हमारे लिये) विहित नहीं है।"

"भन्ते ! यदि तुम न सेवन करोगे, इसी समय मैं अपने नखोंसे शरीरको नोचकर (तुम्हें) चिल्लाऊँगी—यह भिक्षु मुझे दूषित कर रहा है।"

"जैसा समझो भगिनी !"

तब वह स्त्री अपने नखोंसे अपने शरीरको नोचकर चिल्लाई—'यह भिक्षु मुझे दूषित कर रहा है।' लोगोंने दौड़कर उस भिक्षुको पकड़ लिया। (तब) उन मनुष्योंने उस स्त्रीके नखोंमें खून भी, चमड़ा भी लगा देखा। देखकर—इसी स्त्रीका यह कर्म है, भिक्षुने कुछ नहीं किया—(सोच) उस भिक्षुको छोड़ दिया। तब उस भिक्षुने आराममें जा भिक्षुओंसे यह बात कही।—

"क्या आवुस ! तूने लम्बा नख बढ़ाया है ?"

"हाँ, आवुसो !"

० अल्पेच्छ ०।०—

"भिक्षुओ ! लम्बे नख नहीं धारण करने चाहिये, ० दुक्कट ०।" 199

उस समय भिक्षु नखसे भी नखको काटते थे, मुखसे भी नखको काटते थे, दीवारसे भी नखको घिसते थे—अंगुलियाँ पीड़ा देती थीं।०—

"०अनुमति देता हूँ, नहन्नी (=नखच्छेदन)की।" 200

खून सहित नखको काटते थे, अंगुलियोंमें दर्द होता था—

"०अनुमति देता हूँ, मांसके बराबर तक नख काटनेकी।" 201

उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु बीसनिमट्ठ कटाते (बीसों नखोंमें लिखाते) थे। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ ! बीसनिमट्ठ नहीं कटाने चाहिये, ० दुक्कट ०। ० अनुमति देता हूँ, मैल मात्रको० निकालनेकी।" 202

(६) केश काटना

उस समय भिक्षुओंके केश लम्बे होते थे।०—

"भिक्षुओ ! क्या भिक्षु एक दूसरेके केशको काट सकते हैं ?"

"हाँ काट सकते हैं, भन्ते !"

तब भगवान्ने इसी संबंधमें० भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ छुरे, छुरेकी सिल, छुरेकी सिपाटिका (=चमोटी) न म त क (=नहन्नी ?) सभी छुरेके सामानकी।" 203

उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु मूँछ कटवाते थे, मूँछ बढ़ाते थे, गोलोमिका (=बकरे जैसी दाढ़ी करवाते थे, चौकोर (=चतुरस्रक) कराते थे, परिमुख (=छातीका बाल कटवाना) कराते थे, अड्डुरक (=पेटके बालोंमें रोम पंक्ति छोड़ना) कराते थे, दाढ़ी (=दाठिका) रखते थे, गुह्य स्थानके रोम कटवाते थे। लोग हैरान ० होते थे—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ ! मूँछ नहीं कटवानी चाहिये, मूँछ बढ़ानी न चाहिये; गोलोमिका०, चतुरस्रकमें, परिमुख, अड्डुरक, नहीं कटवाना चाहिये, दाढ़ी नहीं रखनी चाहिये, गुह्य स्थानके रोमको नहीं कटवाना चाहिये, जो ० कटवाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 204

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु कर्तरिका (=कैंची)से बाल कटाते थे।० जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ ! कैंचीसे बाल नही कटाना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 205

उस समय एक भिक्षुके शिरमें घाव था, छुरेसे बाल मुँळवा न, सकता था।०—

" ० अनुमति देता हूँ, रोगके कारण कैंचीसे बाल कटवानेकी।" 206

उस समय भिक्षु नाकमें लम्बे लम्बे केश धारण करते थे।०—जैसे कि पिशाच (=पिशाचिल्लिका)।०—

"भिक्षुओ ! नाकमें लम्बे लम्बे केश न धारण करना चाहिये, ।० दुक्कट ०।" 207

उस समय भिक्षु ठीकरीसे भी मोमसे भी, नाकके केशोंको उखळवाते थे, नाक दर्द करती थी।०—

" ० अनुमति देता हूँ, चिमटी (=संडास)की।" 208

उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु पके बालोंको निकलवाते थे।०—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ ! पके बालोंको न निकलवाना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 209

(७) कन-खोदनी

उस समय एक भिक्षुका कान मैलसे भरा हुआ था।०—

" ० अनुमति देता हूँ कर्णमल-हरणीकी।" 210

उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु नानाप्रकारकी कर्णमलहरणियाँ रखते थे सुनहली भी, रुपहली भी। लोग हैरान ० होते थे—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ ! सुनहली रुपहली (आदि) नाना प्रकारकी कर्णमलहरणियाँ नहीं रखनी चाहिये, ० दुक्कट ०। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ हड्डी, दाँत, सींग, नरकट, बाँस, काठ, लाख, फल, ताँबे और शंखकी (कर्णमलहरणियोंकी)।" 211

(८) ताँबे काँसेके वर्तन

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु बहुतसे ताँबे (=लोह) काँसेके भाँडोंका संचय करते थे। लोग विहारमें घूमने वक्त देखकर हैरान होते थे—कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण बहुतसे ताँबे, काँसेके भाँडोंको संचय करते हैं, जैसे कि कंसपत्थरिका (=कसेरा)। भगवानसे यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! ताँबे, काँसेके भाँडोंका संचय नहीं करना चाहिये, ० दुक्कट ०। 212

(९) अंजनदानी

उस समय भिक्षु अंजनदानीको भी, अंजन सलाईको भी, कर्णमलहरणीको भी, बंधनको भी रखनेमें हिचकिचाते थे ।०—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ अंजनदानीकी, अंजन सलाईकी, कर्णमलहरणीकी, बंधन माला-की।" 213

§४–संघाटी, आयोग-पट्ट, घुंडी, मुद्धी, वस्त्र पहिननेके ढंग

(१) संघाटी

उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु संघाटी (के सहित) पलथी मार बैठते थे, संघाटीमें पात्र रगड़ खाते थे।०—

"भिक्षुओ ! संघाटी पलथीसे नहीं बैठना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 214

(२) आयोग-पट्ट

उस समय एक भिक्षु रोगी था, वह विना आ यो ग[1] उसे ठीक न होता था ।०—

"० अनुमति देता हूँ आ यो ग की।" 215

(क) आ यो ग बु न ने का सा मा न—तब भिक्षुओंको यह हुआ—कैसे आयोगको बुनना चाहिये। भगवान्से यह बात कही।—

"० अनुमति देता हूँ, ताँत (=तन्तक), वेमक (=वैं), वट्ट (=झांप) शलाका और सभी ताँत (=कर्घे)के सामानकी।" 216

(३) कमरबंद

१—उस समय एक भिक्षु विना कमरबंद (=कायबंधन) बाँधे ही गाँवमें भिक्षाके लिये गया, मळकपर उसका अन्तरवासक खिसककर गिर गया। लोगोंने ताली पीटी। वह भिक्षु मूक हो गया। उसने आराममें जाकर भिक्षुओंसे यह बात कही।०—

"० विना कमरबंदके गाँवमें भिक्षाके लिये नहीं प्रवेश करना चाहिये, ० दुक्कट ० । ० अनुमति देता हूँ, कमरबंदकी ।" 217

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु कलाबुक[2], देड्डुभक,[3] मुरज,[4] मद्दवीण[5] नाना प्रकारके कमरबंद धारण करते थे ।०—जैसे कामभोगी गृहस्थ ।०—

"भिक्षुओ ! कलाबुक, देड्डुभक, मुरज, मद्दवीण—नाना प्रकारके कमरबंदोंको नहीं धारण करना चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 218

भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, दो प्रकारके कमरबन्दोंकी—पट्टीकी[6] और सूकरके आँत जैसेकी।"

३—कमरबंदके किनारे छिन जाते थे ।—

"० अनुमति देता हूँ मुरज और मद्दवीणकी ।" 219

४—कमरबंदके छोर छिन जाते थे।—

[1] उकळूँ बैठे पीठ-पैरमें बाँधनेका अँगोछा। [2] गोल। [3] पानीके साँपके फन जैसा।
[4] मृदंग जैसा। [5] पासंगके आकारका।
[6] साधारणतया बुनी, या मछलीके काँटे जैसी बुनी (—अट्ठकथा)।

" ० अनुमति देता हूँ शो भ क (=लपेटकर सिलाई), और गु ण क (=मृदंगकी भाँति सिलाई) की।" 220

५—कमरबंदका फंदा छिन जाता था।—

" ० अनुमति देता हूँ वीठ (=बिठई) की।" 221

६—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु, सोनेकी भी रूपेकी भी नाना प्रकारकी वी ठ धारण करते थे।०—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ ! सोने रूपे नाना प्रकारकी वीठ नहीं धारण करनी चाहिये, ० दुक्कट ०। अनुमति देता हूँ हड्डी०[1] शंख और सूतकी।" 222

(४) घुण्डी, मुद्धी

१—उस समय आयुष्मान् आ नं द हल्की संघाटी पहिन गाँवमें भिक्षाके लिये गये। हवाके झोंकेने संघाटीको उळा दिया। आयुष्मान् आनंदने आराममें जा भिक्षुओंसे यह बात कही। भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही—

" ० अनुमति देता हूँ घुंडी, मुद्धीकी।" 223

२—० षड्वर्गीय भिक्षु सोनेकी भी रूपेकी भी नाना प्रकारकी घुंडियाँ धारण करते थे। ०—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ ! सोने रूपे नाना प्रकारकी घुंडीको नहीं धारण करना चाहिये, जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ हड्डी०[1] शंख और सूतकी (घुंडीकी)।" 224

३—उस समय भिक्षु घुंडी भी मुद्धी भी चीवरमें ही लगाते थे, चीवर जीर्ण हो जाता था।०—

" ० अनुमति देता हूँ, (चीवरमें) घुंडी और मुद्धीके चकत्तेको लगानेकी।" 225

४—घुंडी और मुद्धीके चकत्तेको (चीवरके) छोरपर लगाते थे, कोना खुल जाता था।०—

" ० अनुमति देता हूँ घुंडीके चकत्तेको अंतमें लगानेकी, मुद्धीके चकत्तेको सात आठ अंगुल भीतर हटकर।" 226

(५) वस्त्र पहिननेके ढंग

१—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु गृहस्थों जैसे वस्त्र पहिनते थे—ह स्ति शौं डि क[2] भी, म त्स्य वा ल क[3] भी, च तु ष्क र्ण क[4], ता ल वृ न्त क[5], श त व ल्लि क[6] भी। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगी गृहस्थ ०।०—

"भिक्षुओ ! गृहस्थोंकी भाँति—हस्तिशौंडिक, मत्स्यवालक, चतुष्कर्णक, तालवृन्तक,शतवल्लिक-वस्त्र नहीं पहिनना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 227

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु कछनी काछते थे।०—जैसे कि राजाकी मुँडवट्टी (=वाहक)। ०—

---

[1] पृष्ठ ४४१ (211)।

[2] चोल (देश)की स्त्रीकी भाँति नाभीसे नीचे तक लटकाना (—अट्ठकथा)।

[3] किनारी और छोरको चुनकर मछलीकी पूँछकी भाँति पहिनना।

[4] ऊपर दो, नीचे दो इस प्रकार चारों कोनोंको दिखाते कपळोंका पहिनना।

[5] तालके पत्तेकी भाँति चुनकर लटकाना।

[6] सैकळों चुनावोंको दिखाते पहिनना।

"भिक्षुओ! कच्छनी नहीं काछनी चाहिये, ० दुक्कट ०।" 228

३—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु गृहस्थोंकी भाँति कपळा ओढ़ते थे।०—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ! गृहस्थोंकी भाँति कपळा नहीं ओढ़ना चाहिये ० दुक्कट ०।" 229

§५—बोझ ढोना, दतवन, आग-पशुसे रक्षा

(१) बँहगी

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु (कंधेके) दोनों ओर बहँगी (=काज) ले जाते थे।०—जैसे राजाकी मुँडवट्टी।०—

"भिक्षुओ! दोनों ओर बहँगी नहीं ले जाना चाहिये, ० दुक्कट ०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ एक ओर बहँगीकी, बीचमें का ज की, सिरके भारकी, कंधके भारकी, कमरके भारकी, लटका कर (भार ले जानेकी)।" 230

(२) दतवन

१—उस समय भिक्षु दतवन नहीं करते थे, मुँहसे दुर्गन्ध आती थी।०—

"भिक्षुओ! यह पाँच दतवन न करनेके दोष हैं—(१) आँखको नुकसान होता है; (२) मुखमें दुर्गन्ध आती है; (३) रस ले जानेवाली नाळियाँ शुद्ध नहीं होतीं; (४) कफ और पित्त भोजनसे लिपट जाते हैं; (५) भोजनमें रुचि नही होती। भिक्षुओ! यह पाँच दोष है दतवन न करनेमें। भिक्षुओ! यह पांच गुण हैं दतवन करनेमें—(१) आँखको लाभ होता है; (२) मुखमें दुर्गन्ध नहीं होती; (३) रसवाहिनी नाळियाँ शुद्ध होती हैं; (४) कफ और पित्त भोजनसे नहीं लिपटते; (५) भोजनमें रुचि होती है। भिक्षुओ! यह पाँच गुण हैं दतवन करनेमें।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, दतवनकी।" 231

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु लम्बी दतवन करते थे, और उसीसे श्रामणेरोंको पीटते थे।०—

"भिक्षुओ! लम्बी दतवन नहीं करनी चाहिये; ०दुक्कट०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ आठ अंगुल तककी दतवनकी। उससे श्रामणेरको नहीं पीटना चाहिये, ०दुक्कट०।" 232

३—उस समय एक भिक्षुको अ ति म टा ह क (=बहुत छोटी) दतवन करनेसे कंठमें विलग्ग (=अँटक) हो गया।०—

"०अनिमटाहक दतवन न करनी चाहिये, ०दुक्कट०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, कमसे कम चार अंगुलकी दतवनकी।" 233

(३) आगसे रक्षा

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु दाव (=वन)को लीपते थे।०—जैसे दावदाहक (=वन जलानेवाले)।०—

"भिक्षुओ! दावको नहीं लीपना चाहिये, ०दुक्कट०।" 234

२—उस समय विहार तृणोंसे भर गया था। जंगल जलाते वक्त विहार भी जल जाता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, जंगलके जलाये जाते वक्त अग्निसे रोक और रक्षा करनेकी।" 235

(४) वृक्षपर चढ़ना

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु वृक्षपर चढ़ते थे।०—जैसे वानर।०—

"भिक्षुओ ! वृक्षपर न चढ़ना चाहिये, दुक्कट० ।" 236

२—उस समय एक भिक्षुके को स ल देशमें श्रावस्ती जाते समय रास्तेमें एक हाथी निकला। तब वह भिक्षु दौळकर वृक्षके नीचे गया, किन्तु सन्देहमें पळकर पेळपर न चढ़ सका। वह हाथी दूसरी ओर चला गया। तब उस भिक्षुने श्रावस्तीमें जा यह बात भिक्षुओंसे कही। ०—

"०अनुमति देता हूँ, काम होनेपर पोरिसाभर और आपत्कालमें यथेच्छ वृक्षपर चढ़नेकी।"237

§६—बुद्धवचनको अपनी अपनी भाषामें, झूठी विद्या न पढ़ना, सभामें बैठनेका नियम, लहसुनका निषेध

(१) बुद्धवचनको अपनी अपनी भाषामें

उस समय यमेळ य मे ळ ते कु ल नामक ब्राह्मण जातिके सुन्दर (=कल्याण) वचनवाले, सुन्दर वचन बोलनेवाले दो भाई भिक्षु थे। वह जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे उन भिक्षुओंने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! इस समय नाना नाम, गोत्र, जाति कुल, के (पुरुष) प्रव्रजित होते हैं, वह अपनी भाषामें बु द्ध व च न को (कहकर उसे) दूषित करते हैं । अच्छा हो भन्ते ! हम बुद्धवचनको छ न्द[1] में बना दें।"

भगवान्ने फटकारा—०। फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! बुद्ध-वचनको छ न्द में न करना चाहिये, ०दुक्कट० ।" 238

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ अपनी भाषामें[2] बुद्धवचनके सीखनेकी।" 239

(२) झूठी विद्याओंका न पढ़ना

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु लो का य त(-शास्त्र)[3] सीखते थे। लोग हैरान० होते थे—०जैसे कामभोगी गृहस्थ। ०।—

"भिक्षुओ ! लो का य त नहीं सीखना चाहिये, ०दुक्कट० ।" 240

२—उस समय षड्वर्गीय लो का य त को पढ़ाते थे। ०—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ ! लो का य त नहीं पढ़ाना चाहिये, ०दुक्कट० ।" 241

३—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु ति र च्छा न - वि द्या[4] पढ़ते थे ।०—कामभोगी गृहस्थ। ०—

"भिक्षुओ ! तिरच्छान-विद्या नहीं सीखना चाहिये, ०दुक्कट० ।"...242

४—"भिक्षुओ ! तिरच्छान-विद्या नहीं पढ़ानी चाहिये, ०दुक्कट० ।" 243

---

[1] वेदकी भाँति संस्कृतमें (—अट्ठकथा) ।

[2] अपनी भाषासे यहाँ मगधकी भाषासे मतलब है (—अट्ठकथा) ।

[3] सामुद्रिक आदि ।

(३) छींक आदिके मिथ्या-विश्वास

१—उस समय बड़ी भारी परिषद्से घिरे धर्मोपदेश करते भगवान्ने छींका। भिक्षुओंने—भन्ते ! भगवान् जीते रहें, सुगत जीते रहें'—(कह) ऊँचा शब्द (=आवाज) महान् शब्द किया। उस शब्दसे धर्मकथामें विक्षेप हुआ। तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! छींकनेपर 'जीते रहें' कहनेसे क्या उसके कारण (पुरुष) जीयेगा, मरेगा ?"

"नहीं, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! छींकनेपर 'जीते रहें' नहीं कहना चाहिये, ०दुक्कट०।" 244

२—उस समय भिक्षुओंके छींकनेपर लोग 'जीते रहें भन्ते !' कहते थे। भिक्षु संदेहयुक्त हो नहीं बोलते थे। लोग हैरान० होते थे—"कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण छींकनेपर 'जीते रहें भन्ते !' कहनेपर नहीं बोलते !" भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! गृहस्थ मांगलिक होते हैं, भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, गृहस्थोंके 'जीते रहें भन्ते !' कहनेपर, 'चिरंजीव' कहनेकी।" 245

(४) लहसुन खानेका निषेध

१—उस समय भगवान् बड़ी परिषद्के बीच बैठे धर्मोपदेश करते थे। एक भिक्षुने लहसुन खाया था। भिक्षु न टोकें, इस (विचार)से वह एक ओर (अलग) बैठा था। भगवान्ने उस भिक्षुको अलग बैठे देखा। देखकर भिक्षुओंसे कहा—

"भिक्षुओ ! क्यों वह भिक्षु अलग बैठा है ?"

"भन्ते ! इस भिक्षुने लहसुन खाया है। भिक्षु न टोकें इस (विचार)से यह अलग बैठा हुआ है।"

"भिक्षुओ ! क्या वह खाने लायक (चीज़) है, जिसे खाकर इस प्रकारकी परिषद्से बाहर रहना पड़े ?"

"नहीं, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! लहसुन नहीं खाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 246

२—उस समय आयुष्मान् सा रि पु त्र के पेटमें दर्द था। तब आयुष्मान् म हा मो ग्ग ला न जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् सारिपुत्रसे यह बोले—

"आवुस सारिपुत्र ! तुम्हारा पेटका दर्द किससे अच्छा होता है ?"

"लहसुनसे आवुस !"

भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ रोग होनेपर लहसुन खानेकी।" 247

§७—पेशाबखाना, पाखाना, वृक्षरोपण, बर्तन-चारपाई आदि सामान

(१) पेशाबखाना

१—उस समय भिक्षु आराममें जहाँ तहाँ पेसाब (=पस्साव) कर देते थे, आराम गंदा होता था।०—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, एक ओर पेसाब करनेकी।" 248

२—आराममें दुर्गंध फैलती थी।—

"०अनुमति देता हूँ, पेसाबदानकी।" 249
३—तकलीफ़के साथ पेसाब करते थे।—
"०अनुमति देता हूँ, पेसावके पावदान (=पस्साव-पादुका)की।" 250
४—पेसाबका पावदान खुली (जगहमें) था। भिक्षु पेसाब करनेमें लजाते थे। ०—
"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळीकी चहारदीवारी (=प्राकार)से घेरनेकी।" 251
५—पेसाबदान खुला रहनेसे दुर्गंध करता था।—
"०अनुमति देता हूँ, पिहानकी।" 252

(२) पाखाना

१—उस समय भिक्षु आराममें जहाँ तहाँ पाखाना करते थे, आराम गंदा होता था। ०—
"०अनुमति देता हूँ, एक ओर पाखाना करनेकी।"...253
२—"०अनुमति देता हूँ, संडास (=वच्चकूप)की।" 254
३—संडासका किनारा टूटता था। ०—
"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळीसे चिननेकी।" 255
४—संडास नीची मनका था, पानी भर जाता था।—
"०अनुमति देता हूँ, मनको ऊँची करनेकी।" 256
५—चिनाई गिर जाती थी।—
"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळीसे चिननेकी।" 257
६—चढ़नेमें तकलीफ़ पाते थे।—
"अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळीकी सीढ़ी बनानेकी।" 258
७—चढ़ते वक़्त गिर जाते थे।—
"०अनुमति देता हूँ, बाँहीं लगानेकी।" 259
८—भीतर बैठकर पाखाना होते गिर जाते थे।—
"०अनुमति देता हूँ, फ़र्श बनाकर बीचमें छेद रख पाखाना होनेकी।" 260
९—तकलीफ़के साथ बैठे पाखाना होते थे।—
"०अनुमति देता हूँ, पाखानेके पायदानकी।" 261
बाहर पेसाब करते थे।—
"०अनुमति देता हूँ, पेसावकी नाली बनानेकी।" 262
१०—अवलेखण (=पोंछनेका) काष्ठ न था।—
"०अनुमति देता हूँ, अवलेखण काष्ठकी।" 263
११—अवलेखण-पिठर (=०ढेला) न था।—
"०अनुमति देता हूँ, अवलेखण-पिठरकी।" 264
१२—संडास खुला रहनेसे दुर्गंध देता था।—
"०अनुमति देता हूँ, पिहान (=ढक्कन)की।" 265
१३—खुली जगहमें पाखाना होते सर्दीसे भी गर्मीसे भी पीळित होते थे।—
"०अनुमति देता हूँ, व च्च - कु टी (=पायखानेके घर)की।" 266
१४—वच्चकुटीमें किवाळ न था।—
"०अनुमति देता हूँ, किवाळ, पिट्ठिसंघाट (=बिलाई), उदुक्खलिक (=मलइ), उत्तर-पासक (=पटदेहर), अग्गलवट्टि (=पटदेहरका छेद), कपिसीसक (=वनरमूळीखूंटी), सूचिक

(=झिटकिनी), घटिक (=बिलाई), तालच्छिद्द (=तालेका छेद), आविञ्जनच्छिद्द अविञ्जनरज्जु (=रस्सीकी सिकड़ी)की।" 267

१५—वच्चकुटीमें तिनकेका चूरा पळता था।—

"०अनुमति देता हूँ, ओगुम्बन करके०[1] चीवर (टाँगने)के बाँस और रस्सीकी।" 268

१६—उस समय एक भिक्षु बुढ़ापेकी अति दुर्बलताके कारण पाखाना हो उठते समय गिर पळा। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, अवलम्बनकी।" 269

१७—वच्चकुटी घिरी न थी।—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या काष्ठके प्राकारसे घेरनेकी।" 270

१८—कोष्ठक (=बरांडा) न था।—

"०अनुमति देता हूँ, कोष्ठककी।" 271

१९—कोष्ठकमें किवाळ न था।—

"०अनुमति देता हूँ, किवाळ०[2] अविञ्जनरज्जुकी।" 272

२०—कोष्ठकमें तृणका चूरा गिरता था।—

"०अनुमति देता हूँ, ओगुम्बन करके०[2] पंचपटिकाकी।" 273

२१—परिवेणमें (=पाखानेके आँगन)में कीचळ होता था।—

"०अनुमति देता हूँ, मरुम्ब (=चूर्ण)के बिखेरनेकी।" 274

२२—पानी लगता था।—

"०अनुमति देता हूँ, पानीकी नालीकी।" 275

२३—(पाखानेके) पानीका घळा न था।—

"०अनुमति देता हूँ, पाखानेके पानीके घळेकी।" 276

२४—पाखानेका शराव (=मे[3]टिया) न थी।—

"०अनुमति देता हूँ, पाखानेके शरावकी।" 277

२५—तकलीफ़के साथ बैठकर पानी लेते थे।—

"०अनुमति देता हूँ, पानी लेनेके पायदानकी।" 278

२६—पानी लेनेके पायदान बेपर्द थे, भिक्षु पानी लेनेमें लजाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळीके प्राकारसे घेरनेकी।" 279

पाखानेका गढ़ा बिना ढक्कनका था, तिनकेका चूरा भीतर पळता था।—

"०अनुमनि देता हूँ, ढक्कनकी।" 280

(३) वृक्षका रोपना आदि

उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु इस प्रकारके अनाचार करते थे—मालावच्छ (=फूलके पौधे) को रोपते रोपाते थे, सींचते सिंचाते थे, चुनते चुनाते थे, गूँथते गुँथवाते थे। एक ओर की वेंटी माला करते कराते थे। दोनों ओरसे वेंटी माला०। मंजरीक[4] बनाते बनवाते थे। विधू-तिक बनाते बनवाते थे। वटंक बनाते बनवाते थे। अचेलक बनाते बनवाते थे। उरच्छद बनाते बनवाते थे।० और

[1]देखो ऊपर पृष्ठ ४३० (107)।
[2]देखो पृष्ठ ४३० (107)।
[3]देखो चुल्ल० ५§३।१ पृष्ठ ३४९-५०।
[4]मालाओंके भेद।

नाना प्रकारके अ ना चा र को करते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! नाना प्रकारके अनाचार नहीं करने चाहियें। जो करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 281

(४) ताँबे, लकळी, मट्टीके भाँडे

उस समय आयुष्मान् उ रु वे ल का श्य प के प्रव्रजित होनेपर संघको बहुतसे ताँबे (=लोह), लकळी, मिट्टीके भाँडे मिले थे। तब भिक्षुओंको यह हुआ—'क्या भगवान्ने ताँबेके बर्तनकी अनुमति दी है या नहीं दी है? लकळीके बर्तनकी० ? मिट्टीके बर्तनकी० ?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पहरणी (=मारनेके हथियार)को छोळ सभी लोहेके भाँडोंकी, आसन्दी (=कुर्सी) पलँग, लकळीके पात्र, और लकळीके खळाऊँको छोळ सभी लकळीके भाँडोंकी, कतक (=झाँवा) और कुम्भकारिका (=मिट्टीके पकाये घळे)को छोळ सभी मिट्टीके भाँडोंकी।" 282

खुद्दकवत्थुक्खन्धक समाप्त ॥५॥

६—शयन-आसन स्कन्धक

१—विहार और उसका सामान। २—विहारके रंगादि और नाना प्रकारके घर। ३—नया मकान बनवाना, अग्रासन अग्रपिंडके योग्य व्यक्ति जेतवन-स्वीकार। ४—विहारकी चीजोंके उपयोग अधिकार, आसनग्रहणके नियम। ५—विहार और उसके लिये सामानका बनवाना, न बाँटनेकी वस्तुएँ, वस्तुओंका हटाना या परिवर्तन, सफ़ाई। ६—संघके बारह कर्मचारियोंका चुनाव।

§१—विहार और उसका सामान

१—राजगृह

(१) राजगृह श्रेष्ठीका विहार बनवाना

१—उस समय बुद्ध भगवान् रा ज गृ ह के वे णु व न कलन्दकनिवापमें विहार करते थे। उस समय (तक) भगवान्ने भिक्षुओंके लिये शयन-आसनका विधान न किया था, और वह भिक्षु जहाँ तहाँ—जंगल, वृक्षके नीचे, पर्वत, कंदरा, गिरिगुहा, श्मशान, वनप्रस्थ (=जंगल), चौळे (मैदान) पुआलके गंजमें विहार करते थे। वह समयपर जंगल० पुआलके पुंज वहाँसे, सुन्दर गमन-आगमन, अवलोकन-विलोकन, (अंगोंके) समेटने-पसारनेके साथ नीचे नज़र करके ई र्या प थ[१] से युक्त हो निकलते थे।

तब रा ज गृ ह क श्रे ष्ठी[२] पूर्वाह्णमें बागको गया। राजगृहक श्रेष्ठीने पूर्वाह्णमें उन भिक्षुओं को जंगलसे० ईर्यापथसे युक्त हो निकलते देखा। देखकर उसका चित्त प्रसन्न हो गया। तब राजगृहक श्रेष्ठी जहाँ वह भिक्षु थे, वहाँ गया। जाकर उन भिक्षुओंसे यह बोला—

"भन्ते! यदि मैं विहार बनवाऊँ, तो क्या मेरे विहारमें (आप सब) वास करेंगे?"

"गृहपति! भगवान्ने विहारोंका विधान नहीं किया है।"

"तो भन्ते! भगवान्से पूछकर मुझसे कहना।"

"अच्छा, गृहपति!"—(कह) राजगृहक श्रेष्ठीको उत्तर दे वह भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे उन भिक्षुओंने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! राजगृहक श्रेष्ठी विहार बनवाना चाहता है, भन्ते! कैसे करना चाहिये?"

भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच (प्रकारकी) लेनो (=लयनों=निवास-स्थानों) की—(१) विहार, (२) अड्ढयोग, (=गरुळकी तरह टेढ़ामकान), (३) प्रासाद, (४) हर्म्य (ऊपरका कोठा)

---

[१]अच्छी रहन-सहन।

[२]नागरिक राजकीय पदाधिकारी, *Sheriff.*

और (५) गुहा[1]।"

तब वह भिक्षु जहाँ राजगृहक श्रेष्ठी था, वहाँ गये; जाकर राजगृहक श्रेष्ठीसे बोले—

"गृहपति ! भगवान्‌ने विहारकी आज्ञा दे दी, अब जिसका तुम काल समझो (वैसा करो)।"

तब राजगृहक श्रेष्ठीने एकही दिनमें साठ विहार बनवाये। तब राजगृहक श्रेष्ठीने विहारोंको तैयार करा जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठा । एक ओर बैठे राजगृहक श्रेष्ठीने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! भगवान् भिक्षु. . .संघसहित कलका मेरा भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

तब राजगृहक श्रेष्ठी भगवान्‌की स्वीकृति जान आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया। तब राजगृहके श्रेष्ठीने उस रातके बीत जानेपर उत्तम खाद्य भोज्य तैयार करा भगवान्‌को कालकी सूचना दी—

"भन्ते ! (भोजनका) समय है, भात तैयार है।"

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले जहाँ राजगृहक श्रेष्ठीका घर था, वहाँ गये, जाकर भिक्षु-संघके साथ बिछे आसनपर बैठे। तब राजगृहका श्रेष्ठी बुद्धप्रमुख भिक्षु-संघको अपने हाथ से उत्तम खाद्य भोज्य द्वारा संतर्पित=संप्रवारितकर, भगवान्‌के भोजनकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे राजगृहके श्रेष्ठीने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! पुण्यकी इच्छासे स्वर्गकी इच्छासे मैंने यह साठ विहार बनवाये हैं, भन्ते ! मुझे उन विहारोंके बारेमें कैसे करना चाहिये ?"

(२) तीनों काल और चारों दिशाओंके संघको विहारका दान

"तो गृहपति ! तू उन साठ विहारोंको आगत-अनागत (=तीनों कालके) चातुर्दिश (=चारों दिशाओं अर्थात् सारी दुनियाके) भिक्षु-संघके लिये प्रतिष्ठापित कर।"

"अच्छा, भन्ते !" (कह) राजगृहके श्रेष्ठीने भगवान्‌को उत्तर दे उन साठ विहारोंको आगत-अनागत चातुर्दिश संघको प्रदान कर दिया। तब भगवान्‌ने इन गाथाओंसे राजगृहके श्रेष्ठी (के दान) को अनुमोदित किया—

"सर्दी गर्मीको रोकता है, और क्रूर जानवरोंको भी,
सरीसृप और मच्छरोंको, और शिशिरमें वर्षाको भी ॥(१)॥
जब घोर हवा पानी आनेपर रोकता है,
ल्यन (=आश्रय)के लिये, सुखके लिये ध्यान और विपश्यन (=ज्ञान)के लिये ॥(२)॥
संघके लिये विहारका दान बुद्धने श्रेष्ठ कहा है,
इसलिये पंडित पुरुष अपने हितको देखते ॥(३)॥
रमणीय विहारोंको बनवाये, और वहाँ बहुश्रुतोंका वास कराये,
और उन्हें सरलचित्त (भिक्षुओं)को अन्न-पान, वस्त्र और शयन-आसन
प्रसन्न चित्तसे प्रदान करे ॥(४)॥
(तब) वह उसे सारे दुःखोंके दूर करनेवाले धर्मको उपदेशते हैं,
जिस धर्मको यहाँ जानकर (पुरुष) मलरहित हो निर्वाणको प्राप्त होता है" ॥(५)॥

[1] चार प्रकारकी गुहायें होती हैं—ईंटकी गुहा, पत्थरकी गुहा, लकड़ीकी गुहा, मिट्टीकी गुहा।

तब भगवान् राजगृहके श्रेष्ठीको इन गाथाओंसे अनुमोदनकर आसनसे उठ चले गये।

लोगोंने सुना—भगवान्ने विहारकी अनुमति दे दी है, और (वह) सत्कारसहित विहार बनवाने लगे। (उस समय) वह विहार बिना किवाळके थे। साँप भी, बिच्छू भी, कनखजूरे भी घुस जाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

(३) किवाळ और किवाळके सामान

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ किवाळकी।" 2

भीतमें छेदकर बल्लीसे या रस्सीसे किवाळको बाँधते थे, उन्हें चूहे भी, दीमक भी खा जाते थे, बंधनोंके खाये जानेपर किवाळ गिर पळता था। ०—

"०अनुमति देता हूँ, पिट्ठि-संघाट (=चौकठे), उदुक्खलिक (=मलई) और उत्तर पाशक (=दासो)की।" 3

किवाळ नहीं जुळते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, आविञ्जन-छिद्र और आविञ्जनकी रस्सीकी।" 4

किवाळ भेळे न जा सकते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, अग्गलवट्टिक (=अर्गल फलाक), कपिसीस (=झिटकिनी लगाने का छिद्र), सूचिक और घटिक (=बेला)की।" 5

उस समय भिक्षु किवाळको बन्द न कर सकते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ तालेके छिद्रकी; लोहे (=ताँबे)के ताले, काठके ताले और सींकके ताले इन तीन तालोंकी।" 6

जो कोई भी खोलकर घुस जाते थे, विहार अरक्षित रहता था।०—

"०अनुमति देता हूँ सूचिका (=कुंजी) और यंत्रक (—ताले)की।" 7

उस समय विहार तृणसे छाये होते थे; (जिससे) शीतकालमें शीतल और उष्णकालमें उष्ण (होते थे)।०—

"०अनुमति देता हूँ ओगुम्बन कर लीपने-पोतनेकी।" 8

(४) जँगला

उस समय विहार बिना जँगले (=वातायन)के थे, (जिससे) देखनेके अयोग्य तथा दुर्गंधयुक्त (होते थे)।०—

"०अनुमति देता हूँ, तीन (प्रकारके) जँगलों (=वातायन)की—(१) वेदिका—वातायन, जालीदार वातायन, और (३) छळोंवाले वातायनकी।" 9

जँगलेके भीतरसे काळक (=पक्षी विशेष) भी वगुलियाँ (—वगुले) भी घुस जाती थीं।०—

"०अनुमति देता हूँ जँगलोंके पर्दे (=चक्कलिका)की।" 10

चक्कलिकाके बीचसे भी काळक और वगुलियाँ घुस जाती थीं।०—

"०अनुमति देता हूँ, जँगलेके किवाळकी, जँगलेकी भिसिका (=छज्जा)की।" 11

(५) चारपाई, चौकी आदि

उस समय भिक्षु भूमिपर सोते थे, देह भी, वस्त्र भी धूसर होते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ तृणके बिछौनेकी।" 12

तृणके बिछौनेको कीळे (=दीमक) खा जाते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, मीढ (=चटाई?)की।" 13

मीडीसे देह दुखने लगती थी।०—

"०अनुमति देता हूँ बेंतकी चारपाईकी।" 14

उस समय संघको स्मशान में फेंकी म सा र क (=गद्दीदार बेंच) चारपाई मिली थी। ०—

"०अनुमति देता हूँ, मसारक मंचे (=चारपाई)की।" . . . 15

"०अनुमति देता हूँ, मसारक चौकी (=पीठ)की।" 16

उस समय संघको स्मशानवाली बुन्दिका (=चादर)से बँधी चारपाई मिली थी।०—

"०अनुमति देता हूँ, बुन्दिकाबद्ध चारपाईकी।"...17

"०अनुमति देता हूँ, बुन्दिकाबद्ध चौकीकी।"...18

"०अनुमति देता हूँ, कुलीरपादक[1] चारपाईकी।"... 19

"०अनुमति देता हूँ, कुलीरपादक चौकीकी।"...20

"०अनुमति देता हूँ, आहच्च-पादक[2] मंचेकी।"...21

"०अनुमति देता हूँ, आहच्चपादक पीठकी।" 22

उस समय संघको आसन्दिका (=चौकोर पीठ) मिली थी।०—

"०अनुमति देता हूँ, आसन्दिकाकी।"...23

"०अनुमति देता हूँ, ऊँची आसन्दिकाकी।"...24

"०अनुमति देता हूँ, सप्तांग (=कुर्सी ?)की।"...25

"०अनुमति देता हूँ, ऊँचे सप्तांगकी।"...26

"०अनुमति देता हूँ, भद्रपीठ (=वेंतकी चौकी)की।"...27

"०अनुमति देता हूँ, पी ठि का[1] की।"...28

"०अनुमति देता हूँ, एलकपादक[2]की।"...29

"०अनुमति देता हूँ, आमलकवण्टिक[3]की।"...30

"०अनुमति देता हूँ, फलक (=तख्त)की।"...31

"०अनुमति देता हूँ, कोच्छक (=खस या मूँज)की।"...32

"०अनुमति देता हूँ, पुआलके पीढ़ेकी।" 33

उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु ऊँची चारपाईपर सोते थे। लोग विहारमें घूमते समय देखकर हैरान० होते थे—०जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ! ऊँची चारपाईपर न सोना चाहिये, जो सोये उसे दुक्कटका दोष हो।"34

उस समय एक भिक्षुको नीची चारपाईपर सोते वक्त साँपने काट खाया। भगवान्से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ, चारपाईमें ओट (देने)की।"35

उस समय पड्वर्गीय भिक्षु ऊँचे चारपाईके ओट रखते थे, और चारपाईके ओटोंके साथ सोते थे।०—

"भिक्षुओ! ऊँचे चारपाईके ओटोंको नहीं रखना चाहिये, जो रक्खे उसे दुक्कटका दोष हो। ०अनुमति देता हूँ, आठ अंगुल तकके चारपाईके ओटकी।"36

---

[1]वेदी और चौकोर वेदीकी भाँति।

[2]गद्दीदार चौकी।

[3]आँवलेके आकारकी बहुतसे पैरोंवाली चौकी।

(६) सूत, विस्तरा आदि

उस समय संघको सूत मिला था ।०—

"०अनुमति देता हूँ (सूतसे) चारपाई बुननेकी ।" 37

अंगोंमें बहुतसा सूत लग जाता था ।—

"०अनुमति देता हूँ, अंगोंको बींधकर अष्टपदक (=शतरंजी) बुननेकी ।" 38

चोलक (=कपळा) मिला था ।—

"०अनुमति देता हूँ, चिलिमिका (=ताळके छालका बना कपळा) बनानेकी ।" 39

तूलिक (=कपास) मिली थी ।—

"०अनुमति देता हूँ, जटा सुलझा तकिया (=बिम्बोहन) बनानेकी । तूल (=कपास तीन हैं—वृक्षतूल (=सेमल आदिका), लतातूल (=मदार आदिका), पोटकी-तूल (=कपास)।" 40

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु अर्धकायिक(=आधा शरीर लम्बी) तकिया धारण करते थे। लोग विहारमें घूमते देखकर हैरान० होते थे—जैसे कामभोगी गृहस्थ । ०—

"भिक्षुओ ! अर्धकायिक तकियेको नहीं धारण करना चाहिये, जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। अनुमति देता हूँ, सिरके बराबरके तकियेकी ।" 41

उस समय रा ज गृ ह में गिरग्गसमज्जा (=०मेला) था; लोग महामात्यों (=राजमंत्रियों) के लिये ऊन, (लत्ते), छाल, तृण, पत्तेके गद्दे (=भिसि) तय्यार कराते थे। समज्जा (=मेले)के ख़तम हो जानेपर वह खोल उतारकर ले जाते थे । भिक्षुओंने समज्जाके स्थानपर बहुतसे ऊन, लत्ते, छाल, तृण और पत्तोंको फेंका देखा। देखकर भगवान्‌से यह बात कही ।—

"०अनुमति देता हूँ, ऊन, लत्ता, छाल, तृण और पत्ता इन पाँचके गद्देकी ।" 42

उस समय संघको शयन-आसनके उपयोगी दुस्स (=थान) मिला था ।०—

"०अनुमति देता हूँ, (उससे) गद्दा सीनेकी ।" 43

उस समय भिक्षु चारपाईके गद्देको चौकीपर बिछाते थे, चौकीके गद्देको चारपाईपर बिछाते थे। गद्दे टूट जाते थे। ०—

"०अनुमति देता हूँ, गद्दीदार चारपाई और गद्दीदार चौकीकी ।" 44

अस्तर (=उल्लोक) बिना दिये बिछाते थे, नीचेसे गिरने लगता था ।०—

"०अनुमति देता हूँ, अस्तर देकर, बिछाकर गद्देको (चारपाईपर) सीनेकी ।" 45

खोल खींचकर ले जाते थे ।—

"०अनुमति देता हूँ (रंग) छिळकनेकी ।" 46

(फिर) भी ले जाते थे ।—

"०अनुमति देता हूँ, भत्तिकम्म (=तागना)की ।" 47

(फिर) भी ले जाते थे ।—

"०अनुमति देता हूँ हत्थ-भत्ति (=सी देना)की ।" 48

§२—विहारकी रंगाई, और नाना प्रकारके घर

(१) भीतके रंग

उस समय तीर्थिकों (=अन्य मतके साधुओं)की शय्या सफ़ेद होती थी, ज़मीन काली, और भीतपर गेरुका काम किया होता था। बहुतसे लोग शय्या देखने जाया करते थे ।०—

"०अनुमति देता हूँ, विहारमें सफ़ेद, काला और गेरूका काम करनेकी।" 49
उस समय कळी भूमिपर श्वेत रंग नहीं चढ़ता था।०—
"०अनुमति देता हूँ भूसीके पिंडको देकर, हाथसे चिकनाकर सफ़ेद रंग करनेकी।" 50
सफ़ेद रंग रुकता न था।०—
"०अनुमति देता हूँ, चिकनी मिट्टी दे हाथसे चिकनाकर सफ़ेद रंग करनेकी।" 51
सफ़ेद रंग न रुकता था।—
"०अनुमति देता हूँ, गोंद और खली (देने)की।" 52
उस समय कहीं कहीं भीतपर गेरू नहीं चढ़ता था।—
"०अनुमति देता हूँ, भूसीके पिंडको देकर, हाथसे चिकनाकर गेरू रंगनेकी।"...53
"० ०, खली मिट्टी दे, हाथसे चिकनाकर गेरू करनेकी।"...54
"० ०, सरसोंकी खली और मोमके तेलकी।" 55
उस समय कळी (=परुष) भीतपर काला रंग नहीं चढ़ता था।—
"० ०, भूसीके पिंडको देकर, हाथसे चिकनाकर काला रंग करनेकी।" 56
"० ०, कॅंचुयेकी मिट्टी दे, हाथसे चिकनाकर काला रंग करनेकी।"...57
"० ०, गोंद और (हर्रा आदिके) कषायकी।" 58

(२) भीतमें चित्र

उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु विहारमें स्त्री, पुरुष आदिके चित्र अंकित करते थे। लोग विहार में घूमते समय देखकर हैरान होते थे०—जैसे कामभोगी गृहस्थ। ०—

"भिक्षुओ! स्त्री, पुरुषके चित्र[1] नहीं बनवाना चाहिये, जो बनवावे उसे दुक्कटका दोष हो। अनुमति देता हूँ, माला, लता, मकरदन्त (=त्रिकोणोंकी झालर), पंचपट्टिका (=फर्शकी पटिया) की।" 60

(३) सीढ़ी आदि

उस समय विहारोंकी कुर्सी नीची होती थी, पानी भरता था।०—
"०अनुमति देता हूँ, कुर्सी ऊँची बनानेकी।" 61
चिनाई गिर जाती थी।—
"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळीकी चिनाईकी।" 62
चढ़नेमें तकलीफ़ होती थी।—
"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळीकी सीढ़ीकी।" 63

(४) कोठरी

चढ़ते वक़्त गिर पड़ते थे।—
"०अनुमति देता हूँ, आलम्बन बाँहींकी।" 64
उस समय भिक्षुओंके विहार एक आँगनवाले थे। भिक्षु लेटनेमें लजाते थे।०—
"०अनुमति देता हूँ, पर्दे (=तिरस्करिणी)की।" 65
तिरस्करिणीको उठाकर देखते थे।—
"०अनुमति देता हूँ, आधी दीवारकी।" 66

---

[1] श्रद्धा, वैराग्य उत्पन्न करनेवाले जातकोंके चित्र बनवाये जा सकते हैं (—अट्ठकथा)।

आधी दीवारके ऊपरसे देखते थे।—

"०अनुमति देता हूँ, शिविका-गर्भ (=बराबर लम्बाई चौळाईकी कोठरी), नालिकागर्भ (=लम्बी कोठरी), और हर्म्य-गर्भ (=कोठेपरकी कोठरी)—इन तीन (प्रकारके) गर्भों (=कोठरियों)की।" 67

उस समय भिक्षु छोटे विहारके बीचमें गर्भ (=कोठरी) बनाते थे, रास्ता न रहता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, छोटे विहारमें एक ओर गर्भ बनानेकी, और बळे विहारमें बीचमें।" 68

उस समय विहारकी भीतका पाया जीर्ण हो जाता था।०—

"०अनुमति देता हूँ कुलुंक-पादक[1] की।" 69

उस समय (वर्षासे) विहारकी भीत ढहती है।०—

"अनुमति देता हूँ, रक्षा करनेकी टट्टी, और उद्दसुधा[2] की।" 70

उस समय एक तृणकी छतसे भिक्षुके कंधेपर साँप गिरता था। वह डरके मारे चिल्ला उठा। भिक्षुओंने दौळकर उस भिक्षुसे यह पूछा।—

"आवुस! क्यों तुम चिल्लाये?"

उसने भिक्षुओंसे वह बात कह दी। भिक्षुओंने भगवान्‌से वह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ वितान (=चाँदनी)की।" 71

उस समय भिक्षु चारपाईके पावोंमें भी, चौकीके पावोंमें भी थैला लटकाते थे। उन्हें चूहे भी खा जाते थे, दीमक भी खा जाते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, भीतके कीलकी, नागदन्त (=खूँटी)की।" 72

उस समय भिक्षु चारपाईपर भी, चौकीपर भी चीवर लटकाते थे, चीवर कट जाता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, चीवर (टाँगने)के बाँस और रस्सी(=अर्गनी की)।" 73

(५) आलिन्द-ओसारा

उस समय विहारोंमें आलिन्द (=डचोढी) और ओसारे न होते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, आलिन्द, प्रघण (=देहली), प्रकुडच (=कोठरीकी दीवारके भीतर) और ओसारे (=ओसरक)की।" 74

आलिन्द खुले थे, भिक्षु वहाँ लेटनेमें लजाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ, संसरण (=चिक)किटिक और उद्घाटन किटिककी।" 75

(६) उपस्थानशाला

उस समय भिक्षु खुली जगहमें भोजन करते थे, और जाळे गर्मीसे तकलीफ़ पाते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, उपस्थानशालाकी।"...76

"०अनुमति देता हूँ, कुर्सीको ऊँची करनेकी।" 77

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळीकी चिनाईकी।"...78

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळीकी सीढ़ीकी।"...79

"०अनुमति देता हूँ, आलम्बनबाहु (=कटहरा)की।"...80

---

[1] काटकर ओटके लिए वहाँ गाळी वृक्षकी पेळी।

[2] बछळेके गोबर और राखको मिलाकर बनाया प्लास्तर (—अट्ठकथा)।

"०अनुमति देता हूँ, ओगुम्बन[1] करके०[2] चीवर (टाँगने)के बाँस-रस्सीकी।" 81

उस समय भिक्षु खुली जगहमें चीवर पसारते थे। चीवर धूसर होते थे।—

"०अनुमति देता हूँ, खुली जगहमें चीवर (टाँगने)के बाँस-रस्सीकी।" 82

(७) पानी शाला

पानी तप जाता था।—

"०अनुमति देता हूँ, पानी-शाला और पानी-मंडपकी।"...83

"०अनुमति देता हूँ, कुर्सीको ऊँची करनेकी।"...84

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळीकी चिनाईकी।"...85

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळीकी सीढ़ीकी।"...86

"०अनुमति देता हूँ, आलम्बनबाहुकी।"...87

"०अनुमति देता हूँ ओगुम्बन करके०[2] चीवर (टाँगने)के बाँस-रस्सीकी।" 88

पानीका वर्तन न था।—

"०अनुमति देता हूँ, पानीके संख (=चुक्का ?) और पानीके शराव (=पुरवा)की।" 89

(८) विहार

उस समय विहार (दीवारसे) घिरा न होता था।—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळी (इन) तीन (तरह)के प्राकारोंसे।" 90

कोष्ठक (=द्वारपरका कोठा) न था।—

"०अनुमति देता हूँ, कोष्ठककी।"...91

"० ०, कुर्सी ऊँची करनेकी।"...92

कोष्ठकमें किवाळ न थे।—

"०अनुमति देता हूँ, किवाळ,० आविञ्जनच्छिद्दकी।" 93

कोष्ठकमें तिनकेका चूरा गिरता था।—

"० ०, ओगुम्बन करके०[2] पंचपट्टिकाकी।" 94

(९) परिवेण

उस समय परिवेण (=आँगन)में कीचळ होता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, मरुम्ब (=बालू) बिखेरनेकी।" 95

नहीं ठीक होता था।—

"०अनुमति देता हूँ, प्रदरशिला बिछानेकी।" 96

पानी लगता था।—

"०अनुमति देता हूँ, पानीकी नालीकी।" 97

उस समय भिक्षु परिवेणमें जहाँ तहाँ आग जलाते थे। परिवेण मैला होता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, एक ओर अग्निशाला बनानेकी।"...98

"० ०, कुर्सी ऊँची बनानेकी।" 99

"० ०, ईंट, पत्थर या लकळीकी चिनाईकी।"...100

"० ०, ईंट, पत्थर या लकळीकी सीढ़ीकी।"...101

---

[1] लम्बी लकळियोंको गाळ काँटेकी शाखा बाँधकर बनाया रुँधान। [2] पृष्ठ ४५२।

"० ०, आलम्बन-बाहुकी।" 102

अग्निशालामें किवाळ न था।—

"० ०, किवाळ, ०[1] आविञ्जन-रज्जुकी।" 103

अग्निशालामें तिनकेका चूरा गिरता था।—

"० ०, ओगुम्बन करके०[2] चीवर (टाँगने)के बाँस-रस्सीकी।" 104

(१०) आराम

आराम (=भिक्षु-आश्रम) घिरा न होता था। गोरु बकरी आकर रोपे (पौधों)को नुकसान करते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, बाँसकी बाढ़ या काँटेकी बाढ़ (=बाट), अथवा परिखा (खाई)से रोकनेकी।" 105

कोष्ठक (=फाटक) न था।—और उसी प्रकार गोरु बकरी आकर रोपे (पौधों)को नुकसान करते थे।—

"००अनुमति देता हूँ, कोष्ठक (=फाटक), आणेसी ५ जोड़े किवाळ, तोरण और परिघ (=पहियेवाली किवाळ)की।" 106

कोष्ठक (=नौबतखाना)में तिनकेका चूरा गिरता था।—

"० अनुमति देता हूँ ओगुम्बन करके०[2] पंचपटिकाकी।" 107

आराममें कीचळ होता था।—

"० अनुमति देता हूँ मरुम्ब बिखेरनेकी।" 108

नहीं ठीक होता था।—

"० अनुमति देता हूँ प्रदरशिला (=पत्थरकी पट्टी) बिछानेकी।" 109

पानी लगता था।—

"० अनुमति देता हूँ, पानीकी नालीकी।" 110

(११) प्रासाद-छत

उस समय मगधराज सेनिय बिम्बिसार संघके लिये चूना मिट्टी (=सुधामत्तिका)से लिपा प्रासाद बनाना चाहता था। तब भिक्षुओंको यह हुआ—'क्या भगवान्ने छतकी अनुमति दी है या नहीं।' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच प्रकारके छतोंकी—ईटकी छत, शिलाकी छत, चूने (=सुधा)की छत, तिनकेकी छत और पत्तेकी छत।" 111

प्रथम भाणवार समाप्त

§३–अनाथपिंडिककी दीक्षा, नवकर्म (=नया मकान बनवाना) अग्रासन अग्रपिंडके योग्य व्यक्ति, तित्तिर जातक, जेतवन-स्वीकार

(१) अनाथपिंडिककी दीक्षा

[3]उस समय अनाथ-पिंडिक गृहपति (जो) राजगृहके-श्रेष्ठीका बहनोई था; किसी काम

---

[1]देखो पृष्ठ ४५२। [2]देखो पृष्ठ ४५२।

[3]संयु० नि० ११।१।८ भी।

मे राजगृह गया। उस समय राजगृहक-श्रेष्ठीने संघ-सहित बुद्धको दूसरे दिनके लिये निमंत्रण दे रक्खा था! इसलिये उसने दासों और क म - क रों को आज्ञा दी—

"तो भणे! समयपर ही उठकर खिचळी पकाओ, भात पकाओ,। सू प (=तेमन) तैयार करो...।" तब अनाथपिंडिक गृहपतिको ऐसा हुआ—"पहिले मेरे आनेपर यह गृह-पति, सब काम छोळकर मेरेही आव-भगतमें लगा रहता था। आज विक्षिप्तसा दासों और कमकरोंको आज्ञा दे रहा है— "तो भणे! समयपर०।" क्या इस गृहपतिके (यहाँ) आ वा ह होगा, या वि वा ह होगा, या महायज्ञ उपस्थित है, या लोग-बाग-सहित मगध-राज श्रे णि क बि म्बि सा र कलके लिये निमंत्रित किये गये हैं?"

तब राज-गृहक श्रेष्ठी दासों और कमकरोंको आज्ञा देकर, जहाँ अनाथ-पिंडिक गृहपति था, वहाँ आया। आकर अनाथ-पिंडिक गृहपतिके साथ प्र ति स म्मो द न (=प्रणामापाती) कर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये, राजगृहक श्रेष्ठीको अनाथ-पिंडिक गृहपतिने कहा—"पहिले मेरे आनेपर तुम गृहपति! ०।"

"गृहपति! मेरे (यहाँ) न आवाह होगा, न विवाह होगा, न ० मगध-राज० निमंत्रित किये गये हैं। बल्कि कल मेरे यहाँ बळा यज्ञ है। संघ-सहित बुद्ध (=बुद्ध-प्रमुख संघ) कलके लिये निमंत्रित हैं।"

"गृहपति! तू 'बुद्ध' कह रहा है?"

"गृहपति! हाँ 'बुद्ध' कह रहा हूँ।"

"गृहपति! 'बुद्ध'० ?"

"गृहपति! हाँ 'बुद्ध'०।"

"गृहपति! 'बुद्ध'० ?"

"गृहपति! हाँ 'बुद्ध'०।"

"गृहपति! 'बुद्ध' यह शब्द (=घो ष) भी लोकमें दुर्लभ है। गृहपति! क्या इस समय उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धके दर्शनके लिये जाया जा सकता है?"

"गृहपति! यह समय उन भगवान् अर्हत् सम्यक्संबुद्धके दर्शनार्थ जानेका नहीं है।"

तब अनाथ-पिंडिक गृहपति—"अब कल समयपर उन भगवान्०के दर्शनार्थ जाऊँगा" इस बु द्ध - वि ष य क स्मृ ति को (मनमें) ले सो रहा। रातको सवेरा समझ तीन बार उठा। तब अनाथ-पिंडिक गृहपति जहाँ (रा ज गृ ह नगरका) शि व द्वा र था, (वहाँ) गया। अ- म नु ष्यों (=देव आदि) ने द्वार खोल दिया। तब अ ना थ - पि डि क०के नगरसे बाहर निकलते ही प्रकाश अन्तर्धान हो गया, अन्धकार प्रादुर्भूत हुआ। (उसे) भय, जळता और रोमांच उत्पन्न हुआ। वहींसे उसने लौटना चाहा। तब शिवक यक्षने अन्तर्धान होते हुये शब्द सुनाया "सौ हाथी, सौ घोळे, (और) सौ खच्चरीके रथ, मणि कुंडल पहिने सौ हजार कन्यायें एक पदके कथनके सोलहवें भागके मूल्यके बराबर भी नहीं है। चल गृहपति! चल गृहपति! चलना ही श्रेयस्कर है लौटना नहीं।"

तब अनाथ-पिंडिक गृहपतिका अंधकार नष्ट हो गया, प्रकाश उग आया। जो भय, जळता और रोमाञ्च उत्पन्न हुआ था, वह नष्ट हो गया। दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी अनाथ-पिंडिक गृहपतिको प्रकाश अन्तर्धान हो गया० रोमांच उत्पन्न हुआ था, वह नष्ट हो गया। तब अनाथ-पिंडिक गृहपति जहाँ शीत-वन (है वहाँ) गया। उस समय भगवान् रातके प्र त्यू ष (=भिनसार) कालमें उठकर चौळेमें टहल रहे थे। भगवान्ने अनाथ-पिंडिक गृहपतिको दूरसे ही आते हुये देखा। देखकर चं क्र म ण (=टहलनेकी जगह)से उतरकर, बिछे आसनपर बैठ गये। बैठकर अनाथ-पिंडिक गृहपतिसे कहा—"आ सु द त्त।"

अनाथ-पिंडिक गृहपति यह (सोच) "भगवान् मुझे नाम लेकर बुला रहे हैं" हृष्ट=उ द ग्र

(=फूला न समाता) हो, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे पळकर बोला—

"भन्ते! भगवान्‌को निद्रा सुखसे तो आई?"

"निर्वाण-प्राप्त ब्राह्मण सर्वदा सुखसे सोता है।
जोकि शीतल और दोष-रहित हो काम वासनाओंमें लिप्त नहीं होता॥
सारी आसक्तियोंको खंडितकर हृदयसे डरको हटाकर।
चित्तकी शांतिको प्राप्तकर उपशांत हो (वह) सुखसे सोता है॥"

तब भगवान्‌ने अनाथ-पिंडिक गृहपतिको आनुपूर्वी[1] कथा० कही। जैसे कालिमा-रहित शुद्ध-वस्त्र अच्छी तरह रंग पकळता है, ऐसे ही अनाथपिंडिक गृहपतिको उसी आसनपर 'जो कुछ समुदय-धर्म है वह निरोध-धर्म है', यह वि-रज=वि-मल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ। तब दृष्ट-धर्म=प्राप्त-धर्म=विदित-धर्म=पर्यवगाढ़-धर्म, संदेह-रहित, वाद-विवाद-रहित, शास्ताके-शासन (=बुद्ध-धर्म)में स्वतंत्र हो, अनाथ-पिंडिक गृहपतिने भगवान्‌से कहा—

"आश्चर्य! भन्ते! आश्चर्य! भन्ते! जैसे औंधेको सीधा कर दे, ढँकेको उघाळ दे, भूलेको रास्ता बतला दे, अंधकारमें तेलका प्रदीप रख दे जिसमें आँखवाले रूप देखें; ऐसेही भगवान्‌ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया। मैं भगवान्‌की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी (शरण जाता हूँ)। आजसे मुझे भगवान् सांजलि शरण-आया उपासक ग्रहण करें। भगवान् भिक्षु-संघके सहित कलका मेरा भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया। तब अनाथ पिंडिक० भगवान्‌की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर, चला गया। राजगृहक-श्रेष्ठीने सुना—अनाथ-पिंडिक गृह-पतिने कलको भिक्षु-संघ-सहित बुद्धको निमंत्रित किया है। तब राजगृहक-श्रेष्ठीने अनाथ-पिंडिक गृह-पतिसे कहा—

"तूने गृह-पति! कलके लिये भिक्षु-संघ-सहित बुद्धको निमंत्रित किया है, और तू आगंतुक (=पाहुना=अतिथि) है। इसलिये गृह-पति! मैं तुझे खर्च देता हूँ; जिससे तू बुद्ध-सहित भिक्षु-संघके लिये भोजन (तैयार) करे?"

"नहीं गृहपति! मेरे पास खर्च है, जिससे मैं बुद्ध-सहित भिक्षु-संघका भोजन (तैयार) करूँगा।"

राज-गृहके नैगमने[2] सुना—अनाथ पिंडिक०। तब राजगृहके नैगमने अनाथ-पिंडिक० को यों कहा—"०मैं तुझे खर्च० देता हूँ।"

"नहीं आर्य! मेरे पास खर्च है०।"

मगध-राज०ने सुना—०। तब मगध-राज०ने अनाथ-पिंडिक०को...कहा० "मैं तुझे खर्च० देता हूँ।"

"नहीं देव! मेरे पास खर्च है०।"

तब अनाथ-पिंडिक गृहपतिने उस रातके बीत जानेपर, राजगृहके श्रेष्ठीके मकानपर उत्तम खाद्य भोज्य तैयार करा, भगवान्‌को कालकी सूचना दिलवाई "काल है भन्ते! भोजन तैयार हो गया।" तब भगवान् पूर्वाह्णके समय सु-आच्छादित हो, पात्र चीवर हाथमें ले, जहाँ राजगृहके श्रेष्ठीका मकान

---

[1]पृष्ठ ८४।

[2]'श्रेष्ठी' या नगर-सेठ उस समयका एक अवैतनिक राजकीय पद था। इसी तरह 'नैगम' एक पद था; जो शायद 'श्रेष्ठी' से ऊपर था।

था, वहाँ गए। जाकर भिक्षुसंघ सहित बिछाये आसनपर बैठे। तब अनाथ-पिंडिक गृह-पति बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य भोज्यसे संर्तपित कर, पूर्णकर, भगवान्के भोजनकर, पात्रसे हाथ खींच लेनेपर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे अनाथ-पिंडिक गृह-पतिने भगवान्से कहा—

"भिक्षु-संघके साथ भगवान् श्रा व स्ती में व र्षा - वा स स्वीकार करें।"

"शून्य-आगारमें गृहपति! तथागत अ भि र म ण (=विहार) करते हैं।"

"समझ गया भगवान्! समझ गया सु ग त!"

उस समय अनाथ-पिंडिक गृह-पति बहु-मित्र=बहु-सहाय, और प्रामाणिक था। रा ज गृ ह म (अपने)...कामको खतमकर, अनाथ-पिंडिक गृह-पति श्रावस्तीको चल पळा। मार्गमें[1] उसने मनुष्योंको कहा—"आर्यो! आ रा म बनवाओ, वि हा र (=भिक्षुओंके रहनेका स्थान) प्रतिष्ठित करो। लोकमें बुद्ध उत्पन्न हो गये हैं; उन भगवान्को मैंने निमंत्रित किया है, (वह) इसी मार्गसे आवेंगे।"

तब अनाथ-पिंडिक गृह-पति-द्वारा प्रेरित हो, मनुष्योंने आराम बनवाये, विहार प्रतिष्ठित किये दा न (=सदाव्रत) रक्खे।

तब अनाथ-पिंडिक गृह-पतिने श्रावस्ती जाकर, श्रावस्तीके चारों ओर नजर दौळाई—

"भगवान् कहाँ निवास करेंगे? (ऐसी जगह) जो कि गाँवसे न बहुत दूर हो, न बहुत समीप; चाहनेवालोंके आने-जाने योग्य, इच्छुक मनुष्योंके पहुँचने लायक हो। दिनको कम भीळ, रातको अल्प-शब्द=अ ल्प - नि र्घो ष, वि - ज न-वात (=आदमियोंकी हवासे रहित), मनुष्योंसे एकान्त, ध्यानके लायक हो।" अनाथ-पिंडिक गृहपतिने (ऐसी जगह) जे त रा ज कु मा र का उद्यान देखा; (जो कि) गाँवसे न बहुत दूर था०। देखकर जहाँ जेत राजकुमार था, वहाँ गया। जाकर जेत राजकुमारसे कहा—

"आ र्य - पु त्र! मुझे आराम बनानेके लिये (अपना) उद्यान दीजिये!"

"गृहपति! 'को टि - सं था र मे भी, (वह) आराम अ-देय है।"

"आर्य-पुत्र! मैंने आराम ले लिया।"

"गृहपति! तूने आराम नहीं लिया।"

'लिया या नहीं लिया', यह उन्होंने व्य व हा र - अ मा त्यों (=न्यायाध्यक्ष)से पूछा। महामात्योंने कहा—

"आर्य-पुत्र! क्योंकि तूने मोल किया, (इसलिये) आराम ले लिया।"

तब अनाथ-पिंडिक गृहपतिने गाळियोंपर हि र ण्य (=मोहर) ढुलवाकर जेतवनको 'को टि-सन्था र' (=किनारेसे किनारा मिलाकर) बिछा दिया[2]। एक बारके लाये (हिरण्य)से (द्वारके) कोठेके चारों ओरका थोळासा (स्थान) पूरा न हुआ। तब अनाथ-पिंडिक गृहपतिने (अपने) मनुष्योंको आज्ञा दी—

"जाओ भणे! हिरण्य ले आओ, इस खाली स्थानको ढाँकेंगे।" तब जे त रा ज कु मा र को (ख्याल) हुआ—"यह (काम) कम महत्त्वका न होगा, जिसमें कि यह गृहपति बहुत हिरण्य खर्च कर रहा है।" (और) अनाथ-पिंडिक गृहपतिको कहा—

[1] जो धनी थे उन्होंने अपने बनाया, जो कम धनी या निर्धन थे, उन्हें धन दिया। इस प्रकार वह...पैंतालीस योजन रास्तेमें योजन योजनपर विहार बनवा श्रावस्ती गया (—अट्ठकथा)।

[2] इस प्रकार अठारह करोळका एक चहबच्चा खाली हो गया।......दूसरे आठ करोळसे आठ करीस भूमिमें यह विहार आदि बनवाये (—अट्ठकथा)।

"बस, गृहपति ! तू इस खाली जगहको मत ढँकवा। यह खाली-जगह (=अवकाश) मुझे दे, यह मेरा दान होगा।"

तब अनाथ-पिंडिक गृहपतिने 'यह जेत कुमार गण्य-मान्य प्रसिद्ध मनुष्य है। इस धर्म-विनय (=धर्म)में ऐसे आदमीका प्रेम होना लाभदायक है।' (सोच) वह स्थान जेत राजकुमारको दे दिया। तब जेत-कुमारने उस स्थानपर कोठा बनवाया। अनाथ-पिंडिक गृहपतिने जेतवनमें विहार (=भिक्षु-विश्राम-स्थान) बनवाये। परिवेण (=आँगन सहित घर) बनवाये। कोठरियाँ०। उपस्थान-शालायें (=सभा-गृह)०। अग्नि-शालायें (=पानी-गर्म करनेके घर)०। कल्पिक-कुटियाँ (=भंडार)०। पाखाने०। पेशावखाने०। चंक्रमण (=टहलनेके स्थान०)०। चंक्रमण-शालायें०। प्याउ०। प्याउ-घर ०। जंताघर (=स्नानागार)०। जन्ताघर-शालायें०। पुष्करिणियाँ०। मंडप०।

२—वैशाली

(२) नवकर्म

भगवान् राजगृहमें इच्छानुसार विहारकर, जिधर वैशाली थी, उधर चारिका (=रामत) को चल पळे। क्रमशः चारिका करते हुये जहाँ वैशाली थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् वैशालीमें महावन की कूटागार-शालामें विहार करते थे।

उस समय लोग सत्कार-पूर्वक नव-कर्म (=नये घरका निर्माण) कराते थे। जो भिक्षु नव-कर्मकी देख-रेख (=अधिष्ठान) करते थे, वह भी (१) चीवर (=वस्त्र), (२) पिंड-पात (=भिक्षान्न), (३) शयनासन (=घर), (४) ग्लान-प्रत्यय (=रोगि-पथ्य) भैषज्य (=औषध) इन परिष्कारोंसे सत्कृत होते थे। तब एक दरिद्र तंतुकाय (=जुलाहा)के (मनमें) हुआ—"यह छोटा काम न होगा, जो कि यह लोग सत्कार-पूर्वक नव-कर्म कराते हैं; क्यों न मैं भी नव-कर्म बनाऊँ ?" तब उस गरीब तन्तुवायने स्वयं ही कीचळ तैयारकर, ईंटें चिन, भीत खळीकी। अनजान होनेसे उसकी बनाई भीत गिर पळी। दूसरी बार भी उस गरीब०। तीसरी बार भी उस गरीब०। तब वह गरीब तन्तुवाय...खिन्न...होता था—"इन शाक्य-पुत्रीय श्रमणोंको जो चीवर० देते हैं; उन्हींके नव-कर्मकी देख-रेख करते हैं। मैं गरीब हूँ इसलिये कोई भी मुझे न उपदेश करता है, न अनुशासन करता है, और न नव-कर्मकी देख-रेख करता है।"

भिक्षुओंने उस गरीब तन्तुवायको...खिन्न...होते सुना। तब उन्होंने इस बातको भगवान्से कहा। तब भगवान्ने इसी संबंधमें, इसी प्रकरणमें, धार्मिक-कथा कहकर, भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ ! नव-कर्म देनेकी आज्ञा करता हूँ। नव-कर्मिक (=विहार बनवानेका निरीक्षक) भिक्षुको विहारकी जल्दी तैयारीका ख्याल करना चाहिये। (उसे) टूटे फूटेकी मरम्मत करानी चाहिये।

"और भिक्षुओ ! (नव-कर्मिक भिक्षु) इस प्रकार देना चाहिये। पहिले भिक्षुसे प्रार्थना करनी चाहिये। फिर एक चतुर समर्थ भिक्षु-संघको सूचित करे।

"भन्ते ! संघ मेरी सुने। यदि संघको पसन्द है, तो अमुक गृह-पतिके विहारका नव-कर्म, अमुक भिक्षुको दिया जाये। यह ज्ञप्ति (=निवेदन) है।

"भन्ते ! संघ मुझे सुने। अमुक गृह-पतिके विहारका नव-कर्म अमुक भिक्षुको दिया जाता है। जिस आयुष्मान्को मान्य है, कि अमुक-गृह-पतिके विहारका नव-कर्म अमुक भिक्षुको दिया जाय, वह चुप रहे; जिसको मान्य न हो, बोले।"

"दूसरी बार भी०।" "तीसरी बार भी०।"

"संघने० नव-कर्म अमुक भिक्षुको दे दिया, संघको मान्य है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं समझता हूँ।"

भगवान् वै शा ली में इच्छानुसार विहार करके, जहाँ श्रा व स्ती है वहाँ चारिकाके लिये चले। उस समय छ - व र्गी य भिक्षुओंके शिष्य, बुद्ध-सहित भिक्षु-संघके आगे आगे जाकर, विहारोंको दखलकर लेते थे, शय्यायें दखलकर लेते थे—"यह हमारे उपाध्यायोंके लिये होगा, यह हमारे आचार्योंके लिये होगा, यह हमारे लिये होगा।" आयुष्मान् सा रि पु त्र, बुद्ध-सहित संघके पहुँचनेपर, विहारोंके दखल हो जानेपर, शय्याओंके दखल हो जानेपर, शय्या न पा, किसी वृक्षके नीचे बैठे रहे। भगवान्‌ने रातके भिनसारको उठकर खाँसा। आयुष्मान् सा रि पु त्र ने भी खाँसा।

"कौन यहाँ है?"

"भगवान्! मैं सारिपुत्र!"

"सारि-पुत्र! तू क्यों यहाँ बैठा है?"

तब आयुष्मान् सारि-पुत्रने सारी बात भगवान्‌से कही। भगवान्‌ने इसी संबंधमें—इसी प्रकरणमें भिक्षु-संघको जमा करवा, भिक्षुओंसे पूछा—

"सचमुच भिक्षुओ! छ-वर्गीय भिक्षुओंके अ न्ते वा सी (=शिष्य) बुद्ध-सहित संघके आगे आगे जाकर० दखलकर लेते हैं?"

"सचमुच भगवान्!"

भगवान्‌ने धिक्कारा—"भिक्षुओ! कैसे वह नालायक भिक्षु बुद्ध-सहित संघके आगे०? भिक्षुओ! यह न अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है, न प्रसन्नोंको अधिक प्रसन्न करनेके लिये है; बल्कि अ-प्रसन्नोंको (और भी) अप्रसन्न करनेके लिये, तथा प्रसन्नों (=श्रद्धालुओं)मेंसे भी किसी किसीके उलटा (अप्रसन्न) हो जानेके लिये है।"

धिक्कार कर धार्मिक कथा कह, भिक्षुओंको संबोधित किया—

(३) अग्रासन अग्रपिंडके योग्य व्यक्ति

"भिक्षुओ! प्रथम आसन, प्रथम जल, और प्रथम परोसा (=अ ग्र - पिं ड)के योग्य कौन है?"

किन्ही भिक्षुओंने कहा—"भगवान्! जो क्षत्रिय कुलसे प्रव्रजित हुआ हो, वह योग्य है।"

किन्हीं०ने कहा—"भगवान् जो ब्राह्मण कुलसे प्रव्रजित हुआ है, वह०।"

किन्हीं०ने कहा—"भगवान्! जो गृ ह - प ति (=वैश्य) कुलसे।"

किन्हीं०ने कहा—"भगवान्! जो सौ त्रां ति क (=सूत्र-पाठी) हो०।"

किन्हीं०ने कहा—"भगवान्! जो वि न य - ध र (=विनय-पाठी) हो०।"

किन्ही भिक्षुओंने कहा—"भगवान् जो ध र्म - क थि क (=धर्मव्याख्याता) हो०।"

किन्हीं०—"जो प्रथम ध्यानका लाभी (=पानेवाला) हो०।"

किन्हीं०—"जो द्वितीय ध्यानका लाभी।"..."जो तृतीय ध्यानका०।"..."जो चतुर्थ ध्यान-का०।"..."जो स्रो ता प न्न (स्रोतआपन्न) हो०।"..."जो स कि दा गा मी (=सकृदागामी)०।"... "जो अ ना गा मी०।"..."जो अ र्ह त्०।"..."जो त्रै वि द्य हो०।"..."जो षड्-अ भि ज्ञ०।" ...

(४) तित्तिर जातक

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"पूर्वकालमें भिक्षुओ! हिमालयके पासमें एक बळा बर्गद था। उसको आश्रयकर, तित्तिर, वानर और हाथी तीन मित्र रहते थे। वह तीनों एक दूसरेका गौरव न करते, सहायता न करते, साथ जीविका न करते हुये, रहते थे। भिक्षुओ! उन मित्रोंको ऐसा (विचार) हुआ—'अहो! जानना चाहिये, (कि हममें कौन जेठा है), ताकि हम जिसे जन्मसे बळा जानें, उसका सत्कार करें, गौरव करें, मानें, पूजें, और उसकी सीखमें रहें।'

"तब भिक्षुओ! तित्तिर और मर्कट (=वानर)ने हस्ति-नागसे पूछा—

"'सौम्य! तुम्हें क्या पुरानी (बात) याद है?'

"'सौम्यो! जब मैं बच्चा था, तो इस न्य ग्रो ध (बर्गद) को जाँघोंके बीचमें करके लाँघ जाता था। इसकी फुनगी मेरे पेटको छूती थी। 'सौम्यो! यह पुरानी बात मुझे स्मरण है।'

"तब भिक्षुओ! तित्तिर और हस्ति-नागने वानरसे पूछा—

"'सौम्य! तुम्हें क्या पुरानी (बात) याद है?'

"'सौम्यो! जब मैं बच्चा था, भूमिमें बैठकर इस बर्गदके फुनगीके अंकुरोंको खाता था। सौम्यो! यह पुरानी०।'

"तब भिक्षुओ! वानर और हस्ति-नागने तित्तिरसे पूछा—

"'सौम्य! तुम्हें क्या पुरानी (बात) याद है?'

"'सौम्यो! उस जगहपर महान् बर्गद था, उससे फल खाकर इस जगह मैंने विष्टा की, उसीसे यह बर्गद पैदा हुआ। उस समय सौम्यो! मैं जन्मसे बहुत सयाना था।'

"तब भिक्षुओ! हाथी और वानरने तित्तिरको यों कहा—

"'सौम्य! तू जन्ममें हम सबसे बहुत बळा है। तेरा हम सत्कार करेंगे, गौरव करेंगे, मानेंगे, पूजेंगे, और तेरी सीखमें रहेंगे।'

"तब भिक्षुओ! तित्तिरने वानर और हस्ति-नागको पाँच शील[1] ग्रहण कराये, आप भी पाँच शील ग्रहण किये। वह एक दूसरेका गौरव करते, सहायता करते, साथ जीविका करते हुये विहारकर; काया छोळ मरनेके बाद, सुगति (प्राप्त कर) स्वर्ग लोकमें उत्पन्न हुये। यही भिक्षुओ! तै त्ति री य-ब्र ह्म च र्य हुआ—

"'धर्मको जानकर जो मनुष्य वृद्धका सत्कार करते हैं।
(उनके लिये) इसी जन्ममें प्रशंसा है, और परलोकमें सुगति।'

"भिक्षुओ! वह ति र्य ग् (=पशु) यो नि के प्राणी (थे, तो भी) एक दूसरेका गौरव करते, सहायता करते, साथ जीवन-यापन करते हुये, वि हा र करते थे। और भिक्षुओ! यहाँ क्या यह शोभा देगा, कि तुम ऐसे सु-व्याख्यात धर्म-विनयमें प्रव्रजित होकर भी, एक दूसरेका गौरव न करते, सहायता न करते, साथ जीवन-यापन न करते (हुये) विहार करो। भिक्षुओ! यह न अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है०।"

धिक्कारकर धार्मिक कथा कहके उन भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! वृद्ध-पनके अनुसार अभिवादन, प्रत्युत्थान, (बळेके सामने खळा होना), हाथ जोळना, कुशल-प्रश्न, प्रथम-आसन, प्रथम-जल, प्रथम-परोसा देनेकी अनुज्ञा करता हूँ। सांघिक वृद्धपनके अनुसरणको न तोळना चाहिये, जो तोळे उसको 'दु ष्क त'[2]की आपत्ति (होगी)।

"भिक्षुओ! यह दस अ-वन्दनीय हैं—

(५) वन्दनाका क्रम

"'पूर्वके उ प - स म्प न्न को पीछेका उ प स म्प न्न[3] अ-वन्दनीय है। अन्-उपसम्पन्न अवंदनीय है। नाना सह-वासी, वृद्धतर अ-धर्म-वादी०। स्त्रियाँ०। नपुंसक०। 'प रि वा स'[4] दिया गया०।

---

[1]अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, मद-वर्जन। [2]भिक्षु-नियमके अनुसार छोटा पाप है।
[3]भिक्षुकी दीक्षाको प्राप्त। [4]अपराधके कारण संघ द्वारा कुछ दिनके लिये पृथक्करण।

'मू ल से प्र ति - क र्ष णा है०। 'मा न त्वा है०[1]। 'मानत्व-चारिक०। 'आह्वा ना है०। भिक्षुओ! यह तीन वंदनीय हैं—पीछे उपसम्पन्न द्वारा पहिलेका उपसम्पन्न वन्दनीय है, नाना सहवास वाला वृद्धतर धर्मवादी०। देव-मार-ब्रह्मा सहित सारे लोकके लिये, देव-मनुष्य-श्रमण-ब्राह्मण सहित सारी प्रजाके लिये, तथागत अर्हत् सम्यक-सम्बुद्ध वन्दनीय हैं।

३—श्रावस्ती

(६) जेतवन स्वीकार

क्रमश: चारिका करते हुये, भगवान् जहाँ श्रा व स्ती है, वहाँ पहुँचे। वहाँ श्रावस्तीमें भगवान् अनाथ-पिं डि क के आराम 'जे त - व न' में विहार करते थे। तब अ ना थ - पिं डि क गृहपति जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया, आकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये, अनाथ-पिंडिक गृहपतिने भगवान्से कहा—

"भन्ते! भगवान् भिक्षु-संघ-सहित कलको मेरा भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्ने मौन रह स्वीकार किया। तब अनाथ-पिंडिक० भगवान्की स्वीकृति जान, आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया। अनाथ-पिंडिकने...उस रातके बीत जानेपर उत्तम खाद्य भोज्य तैयार करवा, भगवान्को काल सूचित कराया०। तब अनाथ-पिंडिक गृहपति अपने हाथसे बुद्ध - सहित भि क्षु - सं घ को उत्तम खाद्य भोज्यसे संतर्पितकर, पूर्णकर, भगवान्के पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, एक ओर० बैठकर भगवान्से बोला—

"भन्ते! भगवान्! मैं जेतवनके विषयमें कैसे करूँ?"

"गृहपति! जेतवन आ ग त - अ ना ग त चा तु र्दि श सं घ के लिये प्रदान कर दे?"

अनाथ-पिंडिकने 'ऐसा ही भन्ते!' उत्तर दे, जेतवनको आगत-अनागत चातुर्दिश भिक्षुसंघको प्रदान कर दिया।

तब भगवान्ने इन गाथाओंसे अ ना थ पिं डि क गृहपति(के दान)को अनुमोदित किया—

"सर्दी गर्मीको रोकता है०[2]।

"०मलरहित हो निर्वाणको प्राप्त होता है"॥(५)॥

तब भगवान् अनाथपिंडिक गृहपति (के दान)को इन गाथाओंसे अनुमोदितकर आसनसे उठ चले गये।

§४—विहारकी चीज़ोंके उपयोगका अधिकार आसन-ग्रहणके नियम

(१) विहारकी चीज़ोंके उपयोगमें क्रम

उस समय लोग संघके लिये मंडप, सन्थार (=बिछौना), अवकाश तैयार करते थे। ष ड् - व र्गी य भिक्षुओंके शिष्य—भगवान् संघ (की चीज़)के लिये ही वृद्धपनके अनुसार अनुमति दी है, (संघके) उद्देशसे कियेके लिये नहीं—(सोच) बुद्ध-सहित भिक्षु-संघके आगे आगे जा मंडपों, सन्थारों, और अवकाशोंको दखलकर लेते थे—यह हमारे उपाध्यायोंके लिये होगा, यह हमारे आचार्योंके लिये और यह हमारे लिये होगा। आयुष्मान् सा रि पु त्र बुद्ध-सहित भिक्षुसंघके पीछे पीछे जाकर, मंडपों, सन्थारों और अवकाशोंके ग्रहणकर लिये जानेपर, अवकाश न मिलनेसे एक वृक्षके नीचे बैठे। तब भगवान्ने रातके भिनसारको खाँसा, आयुष्मान् सारिपुत्रने भी खाँसा।—

"कौन है यहाँ?"

"भगवान्! मैं सारिपुत्र।"

---

[1] यह भी एक दंड है।

[2] देखो चुल्ल ६§१।२ पृष्ठ ४५१।

"सारिपुत्र ! तू क्यों यहाँ बैठा है ?"

तब आयुष्मान् सारिपुत्र ने सारी बात भगवान्से कह दी—।०[1] ।

धिक्कारकर धार्मिक कथा कह, भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! (संघके) उद्देशसे कियेमें भी वृद्धपनके अनुसार (चीज़ोंके ग्रहणकरनेके नियम)को नहीं उल्लंघन करना चाहिये जो उल्लंघनकरे उसे दुक्कटका दोष हो।" 113

(२) महार्घ शय्याका निषेध

उस समय लोग भोजनके समय अपने घरोंमें ऊँचे शयन, महाशयन बिछाते थे—जैसे कि आसन्दी, पलंग, गोनक (=रोयेंदार कम्बल) चित्रक (=नकशेदार), पटिक (=सीतलपाटी ?), पटलिक (=फूलदार), तूलिक (=रूईदार), विकतिक (=सिंह व्याघ्रादिके चित्रवाला), उद्दलोमी (=ऊनी चादर जिसके दोनों ओर झालर लगे हों), एकन्तलोमी (=ऊनी चादर जिसके एक ओर झालर लगी है), कट्ठिस्स(=कामदार रेशम), कौषेय, कम्बल, कुत्तक(=एक प्रकारका सूती कपड़ा), हाथीका बिछौना (=झूल), घोळेका बिछौना, रथका बिछौना, मृगछाला (=अजिनप्पवेनी), कादलि-मृगकाश्रेष्ठ प्रत्यस्तरण (=बिछौना), ऊपरकी चादर और (=सिरहाने पैरहाने) दोनों ओर लाल तकियोंके साथ। भिक्षु सन्देहमें पळ नहीं बैठे थे । भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! आसन्दी, पलंग और तूलिक इन तीनको छोळ, बाकी सभी गृहस्थोंके (आसनोंपर) बैठनेकी, और उनपर लेटनेकी अनुमति देता हूँ।" 114

उस समय लोग भोजनके समय अपने घरमें रूई डाले मंचको भी, पीठको भी बिछाते थे।० नहीं बैठते थे।०—

" ० अनुमति देता हूँ, गृहस्थोंके बिछौनेपर बैठने और लेटने की।" 115

(३) आसन देना लेना

उस समय एक आजीवक-अनुयायी महामात्य (=राजमंत्री)ने संघको भोज दिया था। आयुष्मान् उ प न न्द शा क्य पु त्र ने पीछे आ, भोजन करते समय पासके भिक्षुको उठा दिया। भोजन स्थानमें हल्ला हो गया। तब वह महामात्य हैरान० होता था—'कैसे शा क्य पु त्री य श्रमण पीछे आ भोजन करते समय पासके भिक्षुको उठा देते हैं, जिससे कि भोजन स्थानमें हल्ला मचता है, दूसरी जगह बैठकर भी तो यथेच्छ (भोजन) किया जा सकता है ? भिक्षुओंने उस महामात्यके हैरान होनेको सुना। ० अल्पेच्छ-भिक्षु ० भगवान्से कहा।०—

"सचमुच भिक्षुओ ! ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

० फटकारकर भगवान्ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! भोजन करते समय भिक्षुको उठाना न चाहिये, जो उठाये उसको दुक्कटका दोष हो।" 116

यदि उठाता है, और (वह भिक्षु) भोजन खतमकर चुका है, तो कहना चाहिये—जाओ पानी लाओ। यदि ऐसा (कहके अवसर) मिल सके तो ठीक; न हो तो कवलको अच्छी तरह निगलकर अपनेसे वृद्धको आसन देना चाहिये। 117

---

[1]देखो पृष्ठ ४६४ ।

"भिक्षुओ! मैं किसी प्रकारसे (अपनेसे) वृद्धके आसन हटानेके लिये नहीं कहता, जो हटाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 118

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु रोगी भिक्षुओंको उठाते थे। रोगी ऐसा कहते थे—'आवुसो! हम रोगी हैं, उठ नहीं सकते।' 'हम आयुष्मानोंको उठावेंहीगे'—(कह) पकळकर उठा खळे होनेपर छोळ देते थे। रोगी मूर्छित हो गिर पळते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! रोगीको न उठाना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 119

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु—हम रोगी हैं, उठाये नहीं जा सकते—(कह) अच्छे आसनों पर बैठते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, रोगीको (उसके योग्य) आसन देनेकी।" 120

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु ज़रासे (शिर दर्द)से भी शयन-आसन हटाते थे।०—

"०ज़रासे शयन-आसनसे नहीं हटाना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 121

(४) सांघिक विहार

उस समय सप्तदशवर्गीय भिक्षु—यहाँ हम वर्षावास करेंगे—(विचार) एक छोर वाले विहारकी मरम्मत करवा रहे थे। षड्वर्गीय भिक्षुओंने सप्तदशवर्गीय भिक्षुओंको विहारकी मरम्मत कराते देखा। देखकर ऐसा कहा—

"आवुसो! यह सप्तदश वर्गीय भिक्षु एक विहारकी मरम्मत करा रहे हैं, आओ! इन्हें हटावें।"

तब षड्वर्गीय भिक्षुओंने सप्तदशवर्गीय भिक्षुओंसे यह कहा—

"आवुसो! उठो (यहाँसे) इस विहारमें हमारा (हक) प्राप्त होता है।"

(सप्तदश)—"तो आवुसो! पहिले ही कहना चाहिए था, जिसमें कि हम दूसरे विहारकी मरम्मत करते?"

(षड्०)—"आवुसो! सांघिक (=संघका) विहार है न?"

(सप्तदश)—"हाँ, आवुसो! सांघिक विहार है।"

(षड्०)—"उठो आवुसो! इस विहारमें हमारा (हक) प्राप्त होता है।"

(सप्तदश)—"आवुसो! विहार बळा है, तुम भी वास करो, हम० भी वास करेंगे।"

(षड्०)—"उठो आवुसो! इस विहारमें हमारा (हक) प्राप्त होता है।"—(कह) कुपित असन्तुष्ट हो गर्दनसे पकळकर निकालते थे।

निकालनेपर वह रोते थे। भिक्षुओंने पूछा—

"आवुसो! किसलिये तुम रोते हो?"

"आवुसो! यह षड्वर्गीय भिक्षु कुपित असन्तुष्ट हो हमें सांघिक विहारसे निकालते हैं।"

०अल्पेच्छ भिक्षु०। भगवान्‌ने यह बात बोले।० सचमुच०।—

"भिक्षुओ! कुपित असन्तुष्ट हो (किसी) भिक्षुको सांघिक विहारसे नहीं निकालना चाहिये, जो निकाले उसे धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ शयन-आसनके ग्रहण करानेकी।" 122

तब भिक्षुओंको यह हुआ—'कैसे शयन-आसन ग्रहण कराना चाहिये?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पाँच अंगोंसे युक्त भिक्षुको शयन-आसन ग्राहापक (=शयन-आसनको ग्रहण करानेवाला अधिकारी) चुनने (=सम्मन्त्रण करने)की—(१) जो न स्वेच्छाचार

(=छन्द)के रास्ते जाये, (२) न द्वेष०, (३) न भय०, (४) न मोह०; (५) गये आयेको जाने।० 123

"और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनना चाहिये—पहिले (उस) भिक्षुसे पूछकर चतुर-समर्थ भिक्षु-संघको सूचित करे—

"क. ज्ञ प्ति ०।

"ख. अ नु श्रा व ण ० ।

"ग. धा र णा—'संघने इस नामवाले भिक्षुको शयन-आसन-ग्रहापक चुन लिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ।' "

(५) शयन-आसन-ग्रहापक

तव शयन-आसन-ग्रहापक भिक्षुओंको यह हुआ—'कैसे शयन-आसन ग्रहण कराना चाहिये?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पहिले भिक्षुओंको गिननेकी, भिक्षुओंको गिनकर, शय्या (Seats) गिननेकी, शय्या गिनकर प्रथमकी (अच्छी) शय्यासे ग्रहण करानेकी।" 124

प्रथमकी शय्यासे ग्रहण कराते हुए शय्याओंको बँचा लिया।—

"०अनुमति देता हूँ प्रथमके विहारसे ग्रहण करानेकी।" 125

प्रथमके विहारसे ग्रहण कराते हुए विहारोंको बँचा दिया।—

"०अनुमति देता हूँ प्रथमके परिवेणसे ग्रहण करानेकी।" 126 ...

"०अनुमति देता हूँ, अतिरिक्त भाग भी देनेकी, अतिरिक्त भाग दे देनेपर दूसरा भिक्षु आजाये, तो इच्छाके विना नहीं देना चाहिये।" 127

उस समय भिक्षु सीमासे वाहर ठहरेको शयन-आसन ग्रहण कराते थे।०—

"भिक्षुओ! सीमासे वाहर ठहरेको शयन-आसन नहीं ग्रहण कराना चाहिये, ०दुक्कट०।" 128

उस समय भिक्षु शयन-आसन ग्रहण करा सब समयके लिये रोक रखते थे। ०—

"०शयन-आसन ग्रहण करा, सब समयके लिये नहीं रोकना चाहिये, ०दुक्कट०। ० अनुमति देता हूँ वर्षाके तीन मासों तक रोक रखने की, और (वाकी) ऋतुओंके समय नहीं रोकने की।" 129

तव भिक्षुओंको यह हुआ—'शयन-आसनके ग्रहण कितने (प्रकारके) हैं?' भगवान्‌से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! यह तीन शयन-आसनके ग्रहण हैं—(१) पहिला; (२) पिछला; (३) वीचमें न छोळा। (१) आषाढ़ पूर्णिमाके एक दिन जानेपर प हि ला (शयन-आसन) ग्रहण कराना चाहिये; (२) आषाढ़ पूर्णिमाके मासभर वीत जानेपर पिछला०; (३) प्रवारणा (आश्विन पूर्णिमा)के एक दिन जानेपर आनेवाले वर्षावासके लिये वीचमें न छोळा ग्रहण कराना चाहिये।—भिक्षुओ! यह तीन शयन-आसन-ग्राह हैं।" 130

द्वितीय भाणवार समाप्त ॥२॥

(६) एकका दो स्थान लेना निषिद्ध

उस समय आयुष्मान् उ प नं द शाक्यपुत्र श्रावस्तीमें शयन-आसन ग्रहणकर एक गाँवके आवास में गये। वहाँ भी (उन्होंने) शयन-आसन ग्रहण किया। तव भिक्षुओंको यह हुआ—'आवुसो! यह आयुष्मान् उपनन्द शाक्यपुत्र भंडन, कलह, विवाद, वकवाद और संघमें झगळा करनेवाले हैं। यदि यह यहाँ वर्षावास करेंगे, तो हम सुखपूर्वक न वास कर सकेंगे। अच्छा हो इन्हें पूछें।' तव उन भिक्षुओंने आयुष्मान् उपनन्द शाक्यपुत्रसे यह कहा—

"आवुस उपनन्द ! आपने श्रावस्तीमें शयन-आसन ग्रहण किया है न ?"

"हाँ, आवुसो !"

"क्या आवुस उपनन्द ! आप अकेले दो (आसनों)को रखे हुए हैं ?"

"आवुसो ! मैं इसे छोळता हूँ, उसे ग्रहण करता हूँ।"

०अल्पेच्छ० भिक्षु०। भगवान्‌से यह बात कही।

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें भिक्षुसंघको जमाकर आयुष्मान् उपनन्द० से यह पूछा—

"सचमुच उपनन्द ! तू अकेले दो (आसनों)को रखे है ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—"कैसे तू मोघपुरुष ! अकेले दो (स्थानों)को रखता है। मोघपुरुष ! तूने वहाँका रखा, यहाँका छोळ दिया; यहाँका रखा, वहाँका छोळ दिया। इस प्रकार मोघपुरुष ! तू दोनों से बाहर हुआ। मोघपुरुष ! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है०।"

फटकारकर भगवान्‌ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! एकको दो (स्थान) नहीं रोक रखना चाहिये, ०दुक्कट०।" 131

(७) एक आसनपर बैठना

उस समय भगवान् अनेक प्रकारसे भिक्षुओंको विनयकी कथा कहते थे, विनयकी प्रशंसा करते थे, विनयके आचरणकी प्रशंसा करते थे...............आयुष्मान् उ पा लि की प्रशंसा करते थे। भिक्षु—भगवान् अनेक प्रकारसे विनयकी कथा कहते हैं,० आयुष्मान् उपालिकी प्रशंसा करते हैं—(सोच), आओ आवुसो ! हम आयुष्मान् उपालिसे वि न य सीखें। (और) बहुतसे वृद्ध मध्यम (वयस्क) भिक्षु आयुष्मान् उपालिके पास वि न य सीखते थे। स्थविर भिक्षुओंके गौरवके ख्यालसे आयुष्मान् उपालि खळे खळे पढ़ाते थे। स्थविर भिक्षु भी धर्मके गौरवसे खळेही खळे बँचवाते थे। उससे स्थविर भिक्षु भी तकलीफ़ पाते थे, आयुष्मान् उपालि भी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ (अपनेसे) कमके भिक्षुके पढ़ते समय बराबर या ऊँचे आसनपर बैठनेकी, स्थविर भिक्षु बँचवाते समय धर्मके गौरवसे बराबर बैठें, या धर्मके गौरवसे (उससे) निचले आसनपर।" 132

उस समय बहुतसे भिक्षु आयुष्मान् उपालिके पास खळे खळे पाठ सुनते तकलीफ़ पाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ समान आसनवालोंको एक साथ बैठनेकी।" 133

तब भिक्षुओंको यह हुआ—'कैसे समान-आसनवाला होता है ?' ०—

"०अनुमति देता हूँ, तीन वर्षके भीतर (के भिक्षुओं)को एक साथ बैठनेकी।" 134

उस समय बहुतसे समान-आसनवाले (भिक्षुओं)ने चारपाईपर एक साथ बैठ चारपाई तोळ दी, पीठपर बैठ पीठको तोळ दिया। ०—

"०अनुमति देता हूँ, त्रिवर्ग (=तीनके समुदाय)को (एक साथ) चारपाईपर (बैठनेकी), त्रिवर्गको पीठ (पर बैठनेकी)।" 135

त्रिवर्गने भी चारपाईपर बैठ चारपाई तोळ दी, पीठपर बैठ पीठ तोळ दी।—

"०अनुमति देता हूँ, द्विवर्ग (=दो आदमियों) को चारपाईकी, द्विवर्गको पीठकी।" 136

उस समय भिक्षु अ-समान-आसनवालोंके साथ लम्बे आसनपर बैठनेमें संकोच करते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, पंडक, स्त्री और (स्त्री पुरुष) दोनों लिंगवालेको छोळ, अ-समान-आसन वालोंके साथ लम्बे आसनपर बैठनेकी।" 137

तब भिक्षुओंको हुआ—'कितने तक (लम्बा) लम्बा आसन (कहा) जाता है?'—

"०अनुमति देता हूँ, जो तीनसे नहीं पूरा होता उसे लम्बा आसन (मानने) की।" 138

§५—विहार और उसके सामानका बनवाना, बाँटने योग्य वस्तुयें, वस्तुओंका हटाना या परिवर्तन, सफाई

(१) सांघिक वस्तु

उस समय विशाखा मृगार-माता संघके लिये आलिन्द (=डचोढ़ी) सहित हस्तिनख-प्रासाद बनवाना चाहती थी। तब भिक्षुओंको यह हुआ—'क्या भगवान्ने प्रासादके उपयोगकी अनुमति दी है या नहीं?'०—

"०अनुमति देता हूँ, सभी प्रासादोंके उपयोगकी।" 139

उस समय कोसलराज प्रसेनजित् की माता (=अय्यका) मरी थी। उसके मरनेसे संघको बहुतसी अ-विहित वस्तुएँ मिलीं, जैसे कि आसन्दी, पलंग, गोनक (=रोयेंदार कम्बल) ०[1] दोनों ओर लाल तकियोंके साथ० कादलीमृगका उत्तम बिछौना। भगवान्से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ, आसन्दीके पैरको काटकर इस्तेमाल करनेकी, पलंगके बालको तोळकर, इस्तेमाल करनेकी, तूल (=रूई)की गुत्थियोंको फोळकर तकिया बनानेकी, और बाकीको भूमिका बिछौना बनानेकी।" 140

(२) पाँच अ-देय

१—उस समय श्रावस्तीके पासके एक ग्रामके आवासके भिक्षु आनेवाले भिक्षुओंके लिये शयन-आसनका प्रबन्ध करते करते तंग आगये थे। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—'आवुसो! हम इस वक़्त आनेवाले भिक्षुओंके लिये शयन-आसनका प्रबन्ध करते करते तंग आ गये हैं। आओ आवुसो! हम सभी सांघिक शयन-आसनको एकको दे दें, और उस(के पास)से लेकर इस्तेमाल करेंगे।' (तब) उन्होंने सभी सांघिक शयन-आसन एकको दे दिया। नवागन्तुक भिक्षुओंने उन भिक्षुओंसे यह कहा—

"आवुसो! हमारे लिये शयन-आसन बतलाओ।"

"आवुसो! सांघिक शयन-आसन नहीं है, हमने सब (शयन-आसन) एकको दे दिये।"

"क्या आवुसो! तुमने सांघिक शयन-आसनको दे डाला?"

"हाँ, आवुसो!"

०अल्पेच्छ भिक्षु०—हैरान० होते थे—०। भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! ०?"

"(हाँ) सचमुच, भगवान्!"

भगवान्ने फटकारा—"कैसे भिक्षुओ! वह मोघपुरुष सांघिक शयन-आसनको दे डालेंगे!! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है०।"

फटकारकर भगवान्ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

[1] देखो पृष्ठ ४६६।

"भिक्षुओ ! यह पाँच अदेय हैं, इन्हें संघ, गण या व्यक्ति (किसीको) देनेका (हक) नहीं है; दे डालनेपर भी यह बिना दिये जैसे होते हैं। जो दे उसे थुल्लच्चयका दोष हो।" 141

"कौनसे पाँच ?—(१) आराम और आरामके मकान, यह पहिले अदेय हैं० जो दे उसे थुल्लच्चयका दोष हो। (२) विहार और विहारका मकान०। (३) चौपाई-चौकी गद्दा तकिया०। (४) लोह-कुंभक, लोह-भाणक, लोह-वारक, लोह-कटाह, बँसूला, फरसा, कुदाल, खनती। (५) वल्ली, वेणु, मूँज, वल्वज (=भाभळ), तृण, मिट्टी, लकळीका वर्तन, मट्टीका वर्तन—यह पाँच अदेय हैं०।"

४—कीटागिरि

तब भगवान् श्रा व स्ती में इच्छानुसार विहारकर सारिपुत्र-मौद्गल्यायन तथा पाँचसौ महान् भिक्षुसंघके साथ जिधर की टा गि रि है, उधर चारिकाके लिये चल पळे। अ श्व जि त् और पु न र्व सु भिक्षुओंने सुना—भगवान् सारिपुत्र मौद्गल्यायन तथा पाँचसौ महान् भिक्षु-संघके साथ कीटागिरि आ रहे हैं।

"तो आवुसो ! (आओ) हम सब संघके शयन-आसनको बाँट लें। सा रि पु त्र मौ द् ग ल्या य न पाप (=बुरी)-इच्छाओंसे युक्त हैं। हम उन्हें शयन-आसन न देंगे।" यह सोच उन्होंने सभी सांघिक[1] शयन-आसनोंको बाँट लिया।

तब भगवान् क्रमशः चारिका करते, जहाँ कीटागिरि है, वहाँ पहुँचे। तब भगवान्‌ने बहुतसे भिक्षुओंको कहा—

"जाओ भिक्षुओ ! अश्वजित् पुनर्वसु भिक्षुओंके पास जाकर ऐसा कहो—'आवुसो ! ० भगवान् आ रहे हैं। आवुसो ! भगवान्‌के लिये शयन-आसन ठीक करो, संघके लिये भी, और सारिपुत्र मौद्गल्यायनके लिये भी'।"

"अच्छा भन्ते !" कह...उन भिक्षुओंने जाकर अ श्व जि त्, पु न र्व सु भिक्षुओंसे यह कहा—"०"। (उन्होंने कहा)—

"आवुसो ! (यहाँ) सांघिक शयन-आसन नहीं हैं; हमने सभी बाँट लिया। स्वागत है आवुसो ! भगवान्‌का। जिस विहारमें भगवान् चाहें, उस विहारमें वास करें। (किन्तु) पापेच्छु हैं सारिपुत्र मौद्गल्यायन०, हम उन्हें शायनासन नहीं देंगे।"

"क्या आवुसो ! तुमने सांघिक शयनासन (=घर, सामान) बाँट लिया ?"

"हाँ आवुस!"

तब उन भिक्षुओंने जाकर यह बात भगवान्‌से कही। भगवान्‌ने धिक्कारकर भिक्षुओंसे कहा—

(३) पाँच अ-विभाज्य

"भिक्षुओ ! यह पाँच अ-विभाज्य हैं, संघ-गण या पुद्गल (=व्यक्ति) द्वारा न बाँटने योग्य हैं। बाँटनेपर भी यह अविभक्त (=विना बँटे) ही रहते हैं; जो बाँटता है; उसे स्थूल-अत्ययका अपराध लगता है। कौनसे पाँच ? (१) आराम या आराम-वस्तु (=आरामका घर)...। (२) विहार या विहार-वस्तु...। (३) मंच, पीठ, गद्दा, तकिया...। (४) लोह-कुंभ, लोह-भाणक, लोह-वारक, लोह-कटाह, वासी (=बँसूला), फरसा, कुदाल, निखादन (=खननेका औजार)...। (५) वल्ली, बाँस, मूँज, वल्वज, तृण, मिट्टी, लकड़ीका वर्तन, मिट्टीका वर्तन...।" 142

---

[1] सारे संघकी सम्पत्ति, एक व्यक्ति नहीं।

५—आलवी

(४) नवकर्म

तब भगवान् की टा गि रि में इच्छानुसार विहारकर जिधर आलवी[1] है उधर चारिकाके लिये चल पळे। क्रमशः चारिका करते जहाँ आलवी है, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् आलवीके अ ग्गा ल व-चैत्यमें विहार करते थे। उस समय आलवीके निवासी भिक्षु इस प्रकारके न व क र्म (=गृह निर्माण) देते थे। पिंड रखने मात्रके लिये भी नवकर्म देते थे, भीत लीपने मात्रके लिये भी०, द्वार स्थापित करने मात्रके लिये भी०, अर्गल (=बेळा)की वट्टी करने मात्रके लिये भी०, आलोक-सन्धि (=रोशनदान करने०), सफ़ेदी करने०, काला रंग करने०, गेरूसे रँगने०, छाजन करने०, बाँधने०, गण्डिका०,(=लकड़ी)रखने०, टूटे-फूटेकी मरम्मत करने०, परिभण्ड (=पेर्टी) करने मात्रके लिये भी नवकर्म देते थे। बीस वर्षके लिये भी०, तीस वर्षके लिये भी०, ज़िन्दगी भरके लिये भी नवकर्म देते थे। धूएँके कालिख लगे विहारका भी नवकर्म देते थे। ०अल्पेच्छ० भिक्षु हैरान० होते थे—०।०—

"०भिक्षुओ! पिंड रखने मात्रके लिये०[1], धूयेंके कालिख लगे विहारका नवकर्म नहीं देना चाहिये; जो दे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, न किये या वेठीकसे किये विहारका नवकर्म देनेकी। अड्ढयोग (=अटारी) में काम देखकर साढ़े नौ वर्षके लिये नवकर्म देनेकी, वळे विहार या प्रासादमें (उस भिक्षुके) कामको देखकर दस बारह वर्षके लिये नवकर्म देनेकी।" 143

उस समय भिक्षु सारे विहारका नवकर्म देते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! सारे विहारका नवकर्म नहीं देना चाहिये, ०दुक्कट०।" 144

उस समय भिक्षु एकको दो (इमारतों)का नवकर्म देते थे।०—

"भिक्षुओ! एकको दोका नवकर्म नहीं देना चाहिये, ०दुक्कट०।" 145

उस समय भिक्षु न व क र्म ग्रहणकर दूसरे को बसाते थे।०—

"भिक्षुओ! नवकर्म ग्रहणकर दूसरेको न बसाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 146

उस समय भिक्षु नवकर्म लेकर सांघिक (विहार)को रोक रखते थे।०—

"भिक्षुओ! नवकर्म ग्रहणकर सांघिकको नहीं रोक रखना चाहिये, ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूं, एक अच्छी शय्या लेनेकी।" 147

उस समय भिक्षु सीमासे बाहर ठहरनेवालेको नवकर्म देते थे।०—

"०सीमासे बाहर ठहरनेवालेको नवकर्म नहीं देना चाहिये, ०दुक्कट०।" 148

उस समय भिक्षु नवकर्म ग्रहणकर सब कालके लिये रखते थे।०—

"०नवकर्म ग्रहणकर सब कालके लिये नहीं रख लेना चाहिये, ०दुक्कट०। अनुमति देता हूँ वर्षाके तीन मासों भर रखनेकी, (बाकी) ऋतुओंके समय न रखनेकी।" 149

उस समय भिक्षु नवकर्म ग्रहणकर चले भी जाते थे, गृहस्थ भी हो जाते थे, मर भी जाते थे, श्रामणेर भी बन जाते थे, (भिक्षु-)शिक्षाको अस्वीकार करनेवाले भी बन जाते थे, अन्तिम अपराध (पाराजिक)के अपराधी भी हो जाते थे, उन्मत्त भी०, विक्षिप्त-चित्त भी०, वे द न ट्ट (=मूर्च्छा प्राप्त) भी०, आपत्ति (=अपराध)के न देखनेसे उ त्क्षि प्त क भी०, आपत्तिके न प्रतिकार करनेसे उ त्क्षि प्त क भी०, बुरी धारणाके न छोळनेसे उ त्क्षि प्त क भी०, पण्डक भी०, चोरके साथ रहनेवाले भी०, तीर्थिकों-

---

[1]अरवल (कानपुरसे कन्नौजके रास्तेपर)।

के पास चले गये भी०, तिर्यग्योनिमें चले गये भी०, मातृघातक भी०, पितृघातक भी०, अर्हद्घातक भी०, भिक्षुणी-दूषक भी०, संघमें फूट डालनेवाले भी०, (बुद्धके शरीरसे) खून निकालनेवाले भी०, (स्त्री-पुरुष) दोनोंके लिंगवाले भी बन जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! यदि (कोई) भिक्षु नवकर्म ग्रहण कर चला जाये० (स्त्री-पुरुष) दोनोंके लिंगवाला बन जाये, तो जिसमें संघ (के काम)का हर्ज न हो, (वह काम) दूसरेको देना चाहिये। यदि भिक्षुओ! नवकर्म ग्रहणकर ठीकसे (काम) न कर चला जाये० दूसरेको देना चाहिये। यदि भिक्षुओ! नवकर्म ग्रहणकर उसे पूरा करके चला जाये तो वह उसीका (काम) है। यदि भिक्षुओ! नवकर्म ग्रहणकर पूरा करके गृहस्थ हो जाये, मर जाये, श्रामणेर बन जाये, शिक्षाको अस्वीकार करनेवाला०, अन्तिम अपराध का अपराधी हो जाये तो संघ मालिक है। यदि० पूरा करके उन्मत्त०, विक्षिप्त चित्त०, वेदनट्ट०, ०उत्क्षिप्तक बन जाये, तो वह उसीका (काम) है। यदि० पूरा करके पंडक०,० (स्त्री-पुरुष) दोनोंके लिंगवाला बन जाये, तो संघ मालिक है।" 150

(५) विहारके सामानका हटाना

उस समय भिक्षु एक उपासकके विहारमें उपयुक्त होनेवाले शय्या, आसनको दूसरे स्थानपर (ले जाकर) इस्तेमाल करते थे। वह उपासक हैरान० होता था—कैसे भदन्त (लोग) दूसरे स्थानके इस्तेमाल करने (के सामान)को दूसरे स्थानपर इस्तेमाल करेंगे।०—

"भिक्षुओ! दूसरे स्थानके इस्तेमाल करने (के सामान)को दूसरे स्थानपर नहीं इस्तेमाल करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 151

उस समय भिक्षु उ पो स थ के स्थानपर भी आसन ले जानेमें संकोच करते थे, भूमिपर ही बैठते थे।०—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, कुछ समयके लिये ले जानेकी।" 152

उस समय संघका (एक) महाविहार गिर रहा था भिक्षु संकोच करते शय्या, आसनको नहीं हटाते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, रक्षाके लिये (सामानको) हटानेकी।" 153

(६) वस्तुओंका परिवर्तन

उस समय शय्या-आसनके कामका एक बहुमूल्य कम्बल संघको मिला था।०—

"०अनुमति देता हूँ, फातिकम्म (=सुभरता)के लिये (उसे) बदल लेने की।" 154

उस समय शय्या-आसनके कामका एक बहुमूल्य दुस्स (=थान) संघको मिला था।०—

"०अनुमति देता हूँ, फा ति क म्म के लिये (उसे) बदल लेनेकी।" 155

(७) आसन, भीतको साफ़ रखना

उस समय संघको भालूका चमड़ा मिला था।०—

"०अनुमति देता हूँ पापोश (=पाद-पुंछन) बनानेकी।" 156

चक्कली (=?) मिली थी।—

"०अनुमति देता हूँ, पापोश बनानेकी।" 157

चोळक (=चोलक=लत्ता) मिला था।—

"०अनुमति देता हूँ, पापोश बनानेकी।" 158

उस समय भिक्षु बिना धोये पैरोंसे शय्या-आसनपर चढ़ते थे, शय्या-आसन मैले होते थे।०—

"भिक्षुओ ! पैर धोये विना शय्या-आसनपर नहीं चढ़ना चाहिये, ०दुक्कट० ।" 159

उस समय भीगे पैरों शय्या-आसनपर चढ़ते थे, ०मलिन० ।०—

"०भीगे पैरों शय्या-आसनपर नहीं चढ़ना चाहिये, ०दुक्कट० ।" 160

०जूते सहित शय्या-आसनपर चढ़ते थे, ०मलिन० । ०—

"०जूते सहित शय्या-आसनपर नहीं चढ़ना चाहिये, ०दुक्कट० ।" 161

०काम की हुई भूमिपर थूकते थे, रंग ख़राब होता था।०—

"०काम की गई भूमिपर नहीं थूकना चाहिये, ०दुक्कट० । अनुमति देता हूँ, थूकदान (=खेळ-मल्लक)की ।" 162

०चारपाईके पाये भी चौकीके पाये भी काम की हुई भूमिको कुरेदते थे ।०—

"०अनुमति देता हूँ (पावोंको) कपळेसे लपेटनेकी।" 163

उस समय काम की हुई भीतपर ओठँगते थे, रंग ख़राब होता था।०—

"०काम की हुई भूमिपर नहीं ओठँगना चाहिये, ०दुक्कट० । अनुमति देता हूँ, ओठँगनेके तख़्तेकी।" 164

ओठँगनका तख़्ता नीचेसे भूमिको कुरेदता था, और ऊपरसे भीतको नुकसान पहुँचाता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, ऊपरसे भी नीचेसे भी कपळा लपेटनेकी ।" 165

उस समय भिक्षु पैर धो लेटनेमें संकोच करते थे ।०—

"०अनुमति देता हूँ, बिछाकर लेटनेकी ।" 166

§६—संघके बारह कर्मचारियोंका चुनाव

१—राजगृह

(१) भक्त-उद्देशक

तब भगवान् आ ल वी में इच्छानुसार विहारकर जिधर रा ज गृ ह है, उधर चारिकाके लिये चल पळे। क्रमशः चारिका करते जहाँ राजगृह है, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् राजगृहमें वे णु व न कलन्दक निवापमें विहार करते थे। उस समय राजगृहमें दुर्भिक्ष था । लोग संघको भोज नहीं दे सकते थे, उद्देश-भोज, शलाक-भोज, पाक्षिक, उपोसथिक (=पूर्णिमा अमावस्याका), प्रातिपदिक (=प्रतिपद्का) (भोज) कराना चाहते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ, संघ-भोज, उद्देश-भोज, शलाक-भोज, पाक्षिक, उपोसथिक (और), प्रातिपदिक(-भोज)की ।" 167

उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु स्वयं अच्छा अच्छा भोजन ले ख़राब ख़राब (अन्य) भिक्षुओंको देते थे।०—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको भक्त-उद्देशक (=भोजके लिए भिक्षुओंको भेजनेवाला) चुननेकी—(१) जो न स्वेच्छाचारके रास्ते जाये, (२) न द्वेष०, (३) न भय०, (४) न मोह०; (५) उद्देश किये और उद्देश न कियेको जाने।० 168

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार चुनना चाहिये—पहिले (उस) भिक्षुसे पूछकर, चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

"क. ज्ञप्ति० ।

"ख. अ नु श्रा व ण०।

"ग. धा र णा—'संघने इस नामवाले भिक्षुको भक्त-उद्देशक चुन लिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ'।"

तब भक्त-उद्देशक भिक्षुओंको यह हुआ—'कैसे भक्त (=भोज)का उद्देश (=वितरण) करना चाहिये?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ, शलाका[1] (=सलाई)से या पट्टिका (=पटिया)से उपनिबंधन (=लिख) कर, ओपुंछन (=रला)कर उद्देश करने (चिट्ठी डालने)की।" 169

(२) शयनासन-प्रज्ञापक

उस समय संघका श य न-आ स न-प्र ज्ञा प क (=आसन बाँटनेवाला) न था।०—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको शयन-आसन-प्रज्ञापक चुननेकी—०[2]।" 170

(३) भांडागारिक

उस समय संघका भं डा गा रि क (=भंडारी) न था।०—

"०अनुमति देता हूँ, पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको भंडागारिक चुननेकी।—०[2]।" 171

(४) चीवर-प्रतिग्राहक

उस समय संघका ची व र-प्र ति ग्रा ह क (=दान मिले चीवरोंका रखनेवाला) न था।०—

"०अनुमति देता हूँ, पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको चीवर-प्रतिग्राहक चुननेकी—०[2]।" 172

(५) चीवर-भाजक

उस समय संघका चीवर-भाजक (=चीवर वितरण करनेवाला) न था।०—

"०अनुमति देता हूँ, पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको चीवर-भाजक चुननेकी—०[2]।" 173

उस समय संघका यवागू-भाजक (=खिचळी बाँटनेवाला) न था।०—

(६) यवागू-भाजक

"०अनुमति देता हूँ, पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको यवागू-भाजक चुननेकी—०[2]।" 174

उस समय संघका फल-भाजक (=फल बाँटनेवाला) न था।०—

(७) फल-भाजक

"०अनुमति देता हूँ, पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको फल-भाजक चुननेकी—०[2]।" 175

उस समय संघका खाद्य-भाजक (=खानेकी चीजोंका बाँटनेवाला) न था।०—

(८) खाद्य-भाजक

"०अनुमति देता हूँ, पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको खाद्य-भाजक चुननेकी—०[2]। 176

(९) अल्पमात्रक-विसर्जक

उस समय संघके भंडारमें थोळासा (=अल्पमात्रक) सामान मिला था।०—

---

[1] वृक्षके सारकी शलाका या बांस या तालपत्रकी पट्टिकापर भोज देनेवालेका नाम लिख कर, सब शलाकाओंको ऊपर नीचे हिला एकमें मिलाकर . . . स्थविरके आसनसे ही देना शुरू करना चाहिये (—अट्ठकथा)।

[2] भक्त-उद्देशकी तरह यहां भी (पृष्ठ ४७४)।

"०अनुमति देता हूँ, पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको अल्पमात्रक-विसर्जक (=थोड़ीसी चीज़ोंका बाँटनेवाला) चुननेकी—[1]।" 177

"उस अल्पमात्रक-विसर्जक भिक्षुको एक एकके लिये सुई देनी चाहिये, शस्त्रक (=कैंची) ०, जूता०, कमरबंद०, अंसबंधक (=कंधेसे लटकानेका बंधन) ०, जलछक्का०, धर्मकरक (=गळुआ)०, कुसि (=पटिया) ०, अर्धकुसि (=बेंळी पटिया) ०, मण्डल (=गेंळुई) ०, अर्धमण्डल०, अनुवाद परिभण्ड (=पेटी) देना चाहिये। यदि संघके पास घी, तेल मधु, खाँड हो, तो खानेके लिये एक बार देना चाहिये, यदि फिर प्रयोजन हो, तो फिर देना चाहिये।"

(१०) शाटिक ग्रहापक

उस समय संघका शाटिक-ग्रहापक (=शाटक बाँटनेवाला) न था।०—

"०अनुमति देता हूँ, पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको शाटिक-ग्रहापक चुननेकी—०[1]।" 178

(११) आरामिक-प्रेषक

उस समय संघका आरामिक-प्रेषक (=आरामके नौकरोंका अफ़सर) न था।०—

"०अनुमति देता हूँ, पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको आरामिक-प्रेपक चुननेकी—०[1]।" 179

(१२) श्रामणेर-प्रेषक

उस समय संघके पास श्रामणेर-प्रेपक (=श्रामणेरोंका अफ़सर) न था।०—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको श्रामणेर-प्रेपक चुननेकी—०[1]।" 180

तृतीय भाणवार (समाप्त) ॥३॥

सेनासनक्खन्धक समाप्त ॥६॥

७—संघभेदक-स्कंधक

१——देवदत्तकी प्रव्रज्या ऋद्धि-प्राप्ति और सम्मान। २——देवदत्तका अजातशत्रुको वहकाना, वुद्धपर आक्रमण, और संघमें फूट डालना। ३——संघराजी, संघभेद और संघसामग्रीकी व्याख्या। ४——नरकगामी और अचिकित्स्य व्यक्ति।

§१—देवदत्तकी प्रव्रज्या ऋद्धि-प्राप्ति और सम्मान

१—अनूपिय

(१) अनुरुद्ध आदिके साथ देवदत्तकी प्रव्रज्या

उस समय भगवान् म ल्लों के कस्बे (=निगम) अ नू पि या में विहार करते थे। उस समय कुलीन कुलीन शा क्य - कु मा र भगवान्के प्रव्रजित होनेपर अनु-प्रव्रजित हो रहे थे। उस समय म हा ना म शाक्य और अ नु रु द्ध-शाक्य दो भाई थे। अनुरुद्ध सुकुमार था, उसके तीन महल थे—एक जाळेके लिये, एक गर्मीके लिये, एक वर्षाके लिये। वह वर्षाके चार महीनोंमें वर्षा-प्रासादके ऊपर अ-पुरुष-वाद्योंके साथ सेवित हो, प्रासादके नीचे न उतरता था। तव महानाम शाक्यके (चित्तमें) हुआ—आज-कल कुलीन कुलीन शाक्यकुमार भगवान्के प्रव्रजित होनेपर अनुप्रव्रजित हो रहे हैं। हमारे कुलसे कोई भी घर छोड़ बेघर हो प्रव्रजित नही हुआ हैं। क्यों न मैं या अनुरुद्ध प्रव्रजित हों। तव महानाम, जहाँ अनुरुद्ध शाक्य था, वहाँ गया। जाकर अनुरुद्ध शाक्यसे बोला—"तात! अनुरुद्ध! इस समय० हमारे कुलसे कोई भी० प्रव्रजित नहीं हुआ। इसलिये तुम प्रव्रजित हो या मैं प्रव्रजित होऊँ।"

"मैं सुकुमार हूँ, घर छोळ बेघर हो प्रव्रजित नहीं हो सकता, तुम्हीं प्रव्रजित होओ।"

"तात! अनुरुद्ध! आओ तुम्हें घर-गृहस्थी समझा दूँ।—पहिले खेत जोतवाना चाहिये। जोतवाकर वोवाना चाहिये। वोवाकर पानी भरना चाहिये। पानी भरकर निकालना चाहिये, निकाल कर मुखाना चाहिये, मुखवाकर कटवाना चाहिये, कटवाकर ऊपर लाना चाहिये, ऊपर ला सीधा करवाना चाहिये, सीधा करा मर्दन करवाना (=मिसवाना) चाहिये, मिसवाकर पयाल हटाना चाहिये। पयालको हटाकर भूसी हटानी चाहिये। भूसी हटाकर फटकवाना चाहिये। फटकवाकर जमा करना चाहिये। इसी प्रकार अगले वर्षोमें भी करना चाहिये। काम (=आवश्यकतायें) नाश नहीं होते, कामोंका अन्त नहीं जान पळता।"

"कव काम खतम होंगे, कव कामोंका अन्त जान पळेगा? कव हम वे-फ़िकर हो, पाँच प्रकारके कामोपभोगोंसे युक्त हो...विचरण करेंगे?"

"तात! अनुरुद्ध! काम ख़तम नहीं होते, न कामोंका अन्त ही जान पळता है। कामोंको विना खतम किये ही पिता और पितामह मर गये।"

"तुम्हीं घर गृहस्थी सँभालो, हम ही प्रव्रजित होवेंगे।"

तव अनुरुद्ध शाक्य जहाँ माता थी वहाँ गया, जाकर मातासे वोला—

"अम्मा ! मैं घरसे बेघर हो प्रव्रजित होना चाहता हूँ, मुझे...प्रव्रज्याके लिये आज्ञा दे।"

ऐसा कहनेपर अनुरुद्ध शाक्यकी माताने अनुरुद्ध शाक्यसे कहा—

"तात ! अनुरुद्ध ! तुम दोनों मेरे प्रिय=मनआप–अप्रतिकूल पुत्र हो; मरनेपर भी (तुमसे) अनिच्छुक नहीं होऊँगी, भला जीते जी...प्रव्रज्याकी स्वीकृति कैसे दूँगी ?"

दूसरी बार भी अनुरुद्ध शाक्यने मातासे यों कहा०।

तीसरी बार भी०।

उस समय भद्दिय नामक शाक्य-राजा शाक्योंपर राज्य करता था, (वह) अनुरुद्ध शाक्यका मित्र था। तब अनुरुद्ध शाक्यकी माताने (यह सोच)—यह भद्दिय (=भद्रिक) शाक्यराजा अनुरुद्धका मित्र शाक्योंपर राज्य करता है, वह घर छोळ...प्रव्रजित होना नहीं चाहेगा—और अनुरुद्ध शाक्यसे कहा—

"तात ! अनुरुद्ध यदि भ द्दि य शाक्य-राजा प्रव्रजित हो, तो तुम भी प्रव्रजित होना।"

तब अनुरुद्ध शाक्य जहाँ भद्दिय शाक्य-राजा था, वहाँ गया; जाकर भद्दिय शाक्य-राजासे बोला—

"सौम्य ! मेरी प्रव्रज्या तेरे अधीन है।"

"यदि सौम्य ! तेरी प्रव्रज्या मेरे अधीन है, तो वह अधीनता मुक्त हो।...। सुखसे प्रव्रजित होओ।"

"आ सौम्य दोनों० प्रव्रजित होवें।"

"सौम्य ! मैं प्रव्रजित होनेमें समर्थ नहीं हूँ। तेरे लिये और जो मैं कर सकता हूँ, वह करूँगा। तू प्रव्रजित हो जा।"

"सौम्य ! माताने मुझे ऐसा कहा है—यदि तात अनुरुद्ध ! भद्दिय शाक्य-राजा० प्रव्रजित हो, तो तुम भी प्रव्रजित होना। सौम्य ! तू यह बात कह चुका है—'यदि सौम्य ! तेरी प्रव्रज्या मेरे अधीन है, तो वह अधीनता मुक्त हो।...। सुखसे प्रव्रजित होओ।' आ सौम्य ! दोनों प्रव्रजित होवें।"

उस समयके लोग सत्यवादी सत्य-प्रतिज्ञ होते थे। तब भद्दिय शाक्य-राजाने अनुरुद्ध शाक्यको यों कहा—

"सौम्य ! सात वर्ष ठहर। सात वर्ष बाद दोनों० प्रव्रजित होवेंगे।"

"सौम्य ! सात वर्ष बहुत चिर है। मैं इतनी देर नहीं ठहर सकता।"

"सौम्य ! छ वर्ष ठहर०।"

"०नहीं ठहर सकता।"

"०पाँच वर्ष०"। "०चार वर्ष०"। "०तीन वर्ष०"। "०दो वर्ष०"। "०एक वर्ष०"। "०सात मास०"। "०छ मास०"। "०पाँच मास०"। "०चार मास०"। "०तीन मास०"। "०दो मास०"। "०एक मास०"। "०आध मास बाद दोनों० प्रव्रजित होंगे।"

"सौम्य ! आध मास बहुत चिर है। मैं इतनी देर नहीं ठहर सकता।"

"सौम्य ! सप्ताहभर ठहर, जिसमें कि मैं पुत्रों और भाइयोंको राज्य सौंप दूँ।"

"सौम्य ! सप्ताह अधिक नहीं है, ठहरूँगा।"

(२) उपालि भी साथ

तब भ द्दि य शाक्य-राजा, अ नु रु द्ध, आ न न्द, भृ गु, कि म्बि ल, दे व द त्त और सातवाँ उ पा लि हजाम, जैसे पहिले चतुरंगिनी-सेना-सहित बगीचे जाते थे, वैसे ही चतुरंगिनी-सेना-सहित निकले। वह दूर तक जा, सेनाको लौटा, दूसरेके राज्यमें पहुँच, आभूषण उतार, उपरनेमें गँठरी बाँध, उपालि हजामने यों बोले—

"भणे ! उपालि ! तुम लौटो। तुम्हारी जीविकाके लिये इतना काफ़ी है।" तब उपालि नाईको लौटते वक़्त यों हुआ—

"शाक्य चंड (=क्रोधी) होते हैं। 'इसने कुमार मार डाले', (समझ) मुझे मरवा डालेंगे। यह राजकुमार हो, प्रव्रजित होंगे, तो फिर मुझे क्या ?"

उसने गँठरी खोलकर, आभषणोंको वृक्षपर लटका "जो देखे, उसको दिया, ले जाय" कह, जहाँ शाक्य-कुमार थे, वहाँ गया। उन शाक्य-कुमारोंने दूरसे ही देखा कि उपालि नाई आ रहा है। देखकर उपालि नाईसे कहा—

"भणे ! उपालि ! किसलिये लौट आये ?"

"आर्य-पुत्रो ! लौटते वक़्त मुझे यों हुआ—शाक्य चंड होते हैं०। इसलिये आर्य-पुत्रो ! मैं गँठरी खोलकर, आभूषणोंको वृक्षपर लटका०, वहाँसे लौटा हूँ।"

"भणे ! उपालि ! अच्छा किया, जो लौट आये। शाक्य चंड होते हैं। 'इसने कुमार मार डाले' (कह) तुझे मरवा डालते।"

तब वह शाक्य-कुमार उपालि हजामको ले वहाँ गये, जहाँ भगवान् थे। जाकर भगवान्‌की वन्दनाकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठकर उन शाक्य-कुमारोंने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते ! हम शाक्य अभिमानी होते हैं। यह उ पा लि नाई, चिरकाल तक हमारा सेवक रहा है। इसे भगवान् पहिले प्रव्रजित करायें। (जिसमें) हम इसका अभिवादन, प्रत्युत्थान (=सम्मानार्थ खळा होना), हाथ जोळना...करें। इस प्रकार हम शाक्योंका शाक्य होनेका अभिमान मर्दित होगा।"

तब भगवान्‌ने उपालि हजामको पहिले प्रव्रजित कराया, पीछे उन शाक्य-कुमारोंको। तब आयुष्मान् भद्दियने उसी वर्षके भीतर तीनों विद्याओंको साक्षात् किया। आयुष्मान् अनुरुद्धने दिव्य-चक्षुको०। आ० आनन्दने सोतापत्ति फलको०। दे व द त्त ने पृथग्‌जनों(=अनार्यों)वाली ऋद्धिको सम्पादित किया।

उस समय आयुष्मान् भद्दिय अरण्यमें रहते हुए भी, पेळके नीचे रहते हुए भी, शून्य गृहमें रहते हुए भी, बराबर उदान कहते थे—"अहो ! सुख ! ! अहो ! सुख ! !" बहुतसे भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर० एक ओर बैठ, उन भिक्षुओंने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते ! आयुष्मान् भद्दिय अरण्यमें रहते०। निःसंशय भन्ते ! आयुष्मान् भद्दिय बे-मनसे ब्रह्मचर्य चरण कर रहे हैं। उसी पुराने राज्य-सुखको याद करते अरण्यमें रहते०।"

तब भगवान्‌ने एक भिक्षुको संबोधित किया—"आ, भिक्षु ! तू जाकर मेरे वचनसे भद्दिय भिक्षु को कह—आवुस भद्दिय ! तुमको शास्ता बुलाते हैं।"

"अच्छा" कह, वह भिक्षु जहाँ आयुष्मान् भद्दिय थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् भद्दियसे बोला—"आवुस भद्दिय ! तुम्हें शास्ता बुला रहे हैं।"

"अच्छा आवुस !" कह उस भिक्षुके साथ (आयुष्मान् भद्दिय) जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् भद्दियको भगवान्‌ने कहा—

"भद्दिय ! क्या सचमुच तुम अरण्यमें रहते हुए भी० उदान कहते हो०।"

"भन्ते ! हाँ !"

"भद्दिय ! किस बातको देख अरण्यमें रहते हुये भी०।"

"भन्ते ! पहिले राजा होते वक्त अन्तः-पुरके भीतर भी अच्छी प्रकार रक्षा होती रहती थी। नगर-भीतर भी०। नगर-बाहर भी०। देश-भीतर भी०। देश-बाहर भी०। सो मैं भन्ते ! इस प्रकार

रक्षित गोपित होते हुये भी भीत, उद्विग्न, स-शंक, त्रास-युक्त घूमता था। किन्तु आज भन्ते! अकेला अरण्यमें रहते हुये भी० शून्य-गृहमें रहते हुये भी, निडर, अनुद्विग्न, अ-शंक अ-त्रास-युक्त, बेफिकर……… विहार करता हूँ। इस बातको देख भन्ते! अरण्यमें रहते०।"

तब भगवान्‌ने इस बातको जान उसी समय यह उदान कहा—

"जिसके भीतरसे कोप भाग गया, होने न होनेसे जो दूर हो गया।
उस निर्भय, सुखी, शोक-रहित (पुरुष)का देवता भी साक्षात्कार नहीं पा सकते।"

२—कौशाम्बी

(३) देवदत्तकी लाभ-सत्कारके लिये चाह

[1]तब भगवान् अनूपियामें इच्छानुसार विहार कर जिधर कौशाम्बी है, उधर चारिकाके लिये चल पळे। क्रमशः चारिका करते जहाँ कौशाम्बी है वहाँ पहुँचे।

वहाँ भगवान् कौशाम्बीमें घोषिताराममें विहार करते थे। उस समय देवदत्तको एकान्तमें बैठे, विचारमें बैठे, चित्तमें ऐसा विचार उत्पन्न हुआ—'किसको मैं प्रसादित करूँ, जिसके प्रसन्न होनेपर मुझे बळा लाभ, सत्कार पैदा हो।' तब देवदत्तको हुआ—यह अजातशत्रु कुमार तरुण है, और भविष्यमें उत्तम (=भद्र) है; क्यों न मैं अजातशत्रु कुमारको प्रसादित करूँ, उसके प्रसन्न होनेपर मुझे बळा लाभ, सत्कार पैदा होगा।'

तब देवदत्त शयनासन सँभालकर पात्र-चीवर ले जिधर राजगृह था, उधर चला। क्रमशः जहाँ राजगृह था वहाँ पहुँचा। तब देवदत्त अपने रूप (=वर्ण)को अन्तर्धान कर कुमार (=बालक) का रूप बना, सांकली मेखला (=तगळी) पहिन, अजात-शत्रु कुमारकी गोदमें प्रादुर्भूत हुआ। अजात-शत्रु कुमार भीत—उद्विग्न, उत्शंकित=उत्-त्रस्त हो गया। तब देवदत्तने अजातशत्रु कुमारसे कहा—

"कुमार! तू मुझसे भय खाता है?"

"हाँ, भय खाता हूँ; तुम कौन हो?"

"मैं देवदत्त हूँ।"

"भन्ते! यदि तुम आर्य देवदत्त हो, तो अपने रूप (=वर्ण)से प्रकट होओ।"

तब देवदत्त कुमारका रूप छोळ, संघाटी, पात्र-चीवर धारण किये अजातशत्रु कुमारके सामने खळा हुआ। तब अजात-शत्रु कुमार, देवदत्तके इस दिव्य-चमत्कार (=ऋद्धि-प्रातिहार्य)से प्रसन्न हो पाँच सौ रथोंके साथ सायं प्रातः उपस्थान (=हाज़िरी)को जाने लगा। पाँच सौ स्थालीपाक भोजनके लिये ले जाये जाने लगे।

३—राजगृह

(४) देवदत्तकी महन्ताईकी इच्छा

तब लाभ, सत्कार, श्लोकसे अभिभूत—आदत्त-चित्त देवदत्तको इस प्रकारकी इच्छा उत्पन्न हुई—मैं भिक्षु-संघकी (महन्ताई) ग्रहण करूँ। यह (विचार) चित्तमें आते ही देवदत्तका (वह) योग-बल (=ऋद्धि) नष्ट हो गया।

तब भगवान् कौशाम्बीमें इच्छानुसार विहारकर...चारिका करते जहाँ राजगृह है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् राजगृहमें कलन्दकनिवापके वेणुवनमें विहार करते थे।

---

[1]स० नि० १६।४।६।

तब बहुतसे भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे उन भिक्षुओंने भगवान्‌को कहा—

"भन्ते! अजातशत्रु सौ रथोंके साथ० ।"

"भिक्षुओ! देवदत्तके लाभ, सत्कार श्लोक(=तारीफ़)की मत स्पृहा करो। जब तक भिक्षुओ! अजातशत्रु कुमार सायं प्रातः० उपस्थानको जायेगा; पाँच सौ स्थाली-पाक भोजनके लिये जायेंगे, देवदत्तकी (उससे) कुशल-धर्मों (=धर्मों)में हानि ही समझनी चाहिये, वृद्धि नहीं। भिक्षुओ! जैसे चंड कुक्कुरके नाकपर पित्त चढ़े,...इस प्रकार वह कुक्कुर और भी पागल हो, अधिक चंड हो।"

"भिक्षुओ! देवदत्तका लाभ सत्कार श्लोक आत्म-बधके लिये उत्पन्न हुआ है।० पराभवके लिये०; जैसे भिक्षुओ! केला आत्म-बधके लिये फल देता है, पराभवके लिये फल देता है, ऐसे ही भिक्षुओ! देवदत्तका लाभ सत्कार०। जैसे भिक्षुओ! बाँस आत्म-बधके लिये फल देता है, पराभवके लिये फल देता है; ऐसे ही भिक्षुओ! देवदत्तका लाभ-सत्कार०। जैसे भिक्षुओ! नरकट आत्म-बधके लिये०। जैसे भिक्षुओ! अश्वतरी (=खचरी) आत्म-बधके लिये गर्भ धारण करती है, पराभवके लिये गर्भ धारण करती है; ऐसे ही भिक्षुओ! देवदत्तका लाभ-सत्कार०।

"फल ही केलेको मारता है, फल बाँसको, फल नरकटको (भी)।

सत्कार कुपुरुषको (वैसे ही) मारता है, जैसे गर्भ खचरीको।"(९)॥

उस समय आयुष्मान् म हा मौ द् ग ल्या य न का सेवक क कु ध नामक कोलियपुत्र हाल ही में मरकर एक म नो म य (देव) लोकमें उत्पन्न हुआ था। उसका इतना बळा शरीर था, जितना कि दो या तीन म ग ध के गाँवोंके खेत। वह उसका (उतना बळा) शरीर न अपने न दूसरोंकी पीळाके लिये था। तब ककुध-देवपुत्र जहाँ आयुष्मान् महामौद्‌गल्यायन थे, वहाँ आया, आकर आयुष्मान् महा मौद्‌गल्यायनको अभिवादनकर एक ओर खळा हुआ। एक ओर खळे हो ककुध देवपुत्रने आयुष्मान् महा-मौद्‌गल्यान से यह कहा—

"भन्ते! लाभ, सत्कार, श्लोक (=प्रशंसा)से अभिभूत=आदत्तचित, दे व द त्त को इस प्रकारकी इच्छा उत्पन्न हुई—'मैं भिक्षु-संघ (की महंताई)को ग्रहण करूँ। यह (विचार) चित्तमें आते ही देवदत्तका (वह) योगबल (=ऋद्धि) नष्ट हो गया।"

ककुध देवपुत्रने यह कहा—यह कह आयुष्मान् महामौद्‌गल्यायन अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर वहीं अन्तर्धान हो गया।

तब आयुष्मान् महामौद्‌गल्यायन जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् महामौद्‌गल्यायनने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! मेरा उपस्थाक (=सेवक) क कु ध नामक कोलिय-पुत्र हालही में मरकर एक मनोमय (देव-)लोकमें उत्पन्न हुआ है।०। एक ओर खळे हो ककुध देवपुत्रने मुझसे यह कहा—'भन्ते! ० देव-दत्तका योगबल (=ऋद्धि) नष्ट हो गया।' वहीं अन्तर्धान हो गया।"

"क्या मौद्‌गल्यायन! तूने (योगबलसे) अपने चित्त द्वारा विचारकर.....जाना, कि जो कुछ ककुध देवपुत्रने कहा वह सब वैसा ही है, अन्यथा नहीं?"

"भन्ते! मैंने अपने चित्त द्वारा विचारकर ककुध देवपुत्रको जाना है, कि जो कुछ ककुध देव-पुत्रने कहा, वह सब वैसा ही है, अन्यथा नहीं।"

(५) पाँच प्रकारके गुरु

"मौद्‌गल्यायन ! रहने दो इस वचनको, रहने दो इस वचनको अब वह मोघपुरुष (=निकम्मा आदमी) स्वयं ही अपनेको प्रकट करेगा। मौद्‌गल्यायन लोकमें यह पाँच (प्रकारके) गुरु (शास्ता) होते हैं। कौनसे पाँच !—(१) यहाँ मौद्‌गल्यायन ! एक शास्ता अशुद्ध-शील (=आचार) वाला होने पर भी मैं शुद्ध-शीलवाला हूँ, मेरा शील शुद्ध=अवदात (=उज्ज्वल), निर्मल है—दावा करता है। उसके बारेमें (उसके) श्रावक (=शिष्य) जानते हैं—'यह आप शास्ता अशुद्ध-शीलवाले होनेपर भी० दावा करते हैं। यदि हम गृहस्थोंको (उसे) कह दें, तो यह इनके लिये अच्छा न होगा। जो इनके लिये अच्छा नहीं, उसे हम क्यों कहें । यह चीवर पिंडपात (=भिक्षान्न) शय्या-आसन, रोगीके पथ्य भैषज्यके सामानसे भी तो (हमारा) सन्मान करते हैं। जो जैसा करेगा, वैसा वह जानेगा'। मौद्‌गल्यायन ! इस प्रकारके गुरुके शील-शिष्य गोपन करते हैं। इस प्रकारका शास्ता शिष्योंसे (अपने) शीलके गोपनकी अपेक्षा रखता है। (२) और फिर मौद्‌गल्यायन ! यहाँ एक शास्ताकी आजीविका अशुद्ध होनेपर भी मैं शुद्ध आजीविका वाला हूँ०। (३) एक शास्ताका धर्म-उपदेश अशुद्ध होनेपर भी मैं शुद्ध धर्म-उपदेशवाला हूँ०। (४) एक शास्ताका व्याकरण (=भविष्य कथन) अशुद्ध होनेपर भी—मैं शुद्ध व्याकरण वाला हूँ०। (५) ० एक शास्ताका ज्ञान-दर्शन (=ज्ञानका साक्षात्कार) अशुद्ध होनेपर भी—मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शनवाला हूँ०। मौद्‌गल्यायन ! लोकमें यह पाँच (प्रकारके) गुरु होते हैं।

"(१) मौद्‌गल्यायन ! शील शुद्ध होनेपर —मैं शुद्ध शीलवाला हूँ, मेरा शील, शुद्ध=अवदात निर्मल है—यह दावा करता हूँ। मेरे शील शिष्य गोपन नहीं करते । मैं शिष्योंसे (अपने) शीलके गोपनकी अपेक्षा नहीं रखता। (२) आजीविका शुद्ध होनेपर मैं शुद्ध आजीववाला हूँ०। (३) धर्म-उपदेश शुद्ध होनेपर मैं शुद्ध धर्म-उपदेशवाला हूँ०। (४) व्याकरण शुद्ध होनेपर—मैं शुद्ध व्याकरण वाला हूँ०। (५) ज्ञान-दर्शन शुद्ध होनेपर—मैं शुद्ध ज्ञान दर्शनवाला हूँ०।"

(६) देवदत्तका प्रकाशनीय कर्म

उस समय राजासहित बळी परिषद्‌से घिरे भगवान् धर्म-उपदेश कर रहे थे । तब देवदत्त आसनसे उठ एक कंधेपर उत्तरासंग करके, जिधर भगवान् थे उधर अंजलि जोळ भगवान्‌से यह बोला—

"भन्ते ! भगवान् अब जीर्ण=वृद्ध=महल्लक=अध्वगत=वयः-अनुप्राप्त हैं। भन्ते ! अब भगवान् निश्चिन्त हो इस जन्मके सुख-विहारके साथ विहरें। भिक्षु-संघको मुझे दें, मैं भिक्षु-संघको ग्रहण करूँगा।"

"अलम् (=बस, ठीक नहीं) देवदत्त ! मत तुझे भिक्षुसंघका ग्रहण रुचे।"

दूसरी बार भी देवदत्त ने ०। ० तीसरी बार भी देवदत्तने०। ०

"देवदत्त ! सारिपुत्र मौद्‌गल्यायनको भी मैं भिक्षुसंघको नहीं देता, तुझ मुर्दे, थूकको तो क्या ?"

तब देवदत्तने—'राजासहित परिषद्‌में मुझे भगवान्‌ने फेंका थूक कहकर अपमानित किया और सारिपुत्र, मौद्‌गल्यायनको बढ़ाया' (सोच) कुपित, असंतुष्ट हो भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया। यह देवदत्तका भगवान्‌के साथ पहिला आघात (=द्रोह) हुआ।

तब भगवान्‌ने भिक्षुसंघको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ ! संघ राजगृहमें दे व द त्त का प्रकाशनीय-कर्म करे—पूर्वमें देवदत्त अन्य प्रकृतिका था, अब अन्य प्रकृतिका। (अब) देवदत्त जो (कुछ) काय वचनसे करे उसका बुद्ध, धर्म, संघ जिम्मेवार

नहीं। देवदत्त ही जिम्मेवार है। और भिक्षुओ ! इस प्रकार (प्र का श नी य कर्म) करना चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—· 1

"क. ज्ञप्ति ०। ख. अनुश्रावण ०।

"ग. धा र णा—'संघने देवदत्तका राजगृहमें प्रकाशनीय कर्म कर दिया—पूर्वमें देवदत्त अन्य प्रकृतिका था, अब अन्य प्रकृतिका। (अब) देवदत्त जो (कुछ) काय-वचनसे करे उसका बुद्ध, धर्म और संघ जिम्मेवार नहीं; देवदत्त ही ज़िम्मेवार है। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ।"

तब भगवान् ने आयुष्मान् सारिपुत्रको संबोधि किया—

"तो सारिपुत्र ! देवदत्त का तू राजगृहमें प्रकाशन कर।"

"भन्ते ! मैंने पहिले राजगृहमें देवदत्तकी प्रशंसा की—गो धि-पु त्त (=देवदत्त) महर्द्धिक (=दिव्य शक्तिधारी)=महानुभाव है गोधि-पुत्र। कैसे मैं भन्ते ! राजगृहमें देवदत्तका प्रकाशन करूँ ?"

"सारिपुत्र ! तूने तो यथार्थ ही देवदत्तकी प्रशंसा की थी न—गोधिपुत्त महर्द्धिक है ० ?"

"हाँ, भन्ते !"

"इसी प्रकार सारिपुत्र ! यथार्थ ही देवदत्तका राजगृहमें प्रकाशन कर।"

"अच्छा, भन्ते !"—कह आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्‌को उत्तर दिया।"

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! संघ सारिपुत्रको राजगृहमें देवदत्तका प्रकाशन करनेके लिये चुने—पहिले देवदत्त ०। 2

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार चुनाव करना चाहिये। पहिले सारिपुत्रको पूछना चाहिये। फिर चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

"क. ज्ञप्ति०। ख. अ नु श्रा व ण ०।

"ग. धा र णा—'संघने राजगृहमें देवदत्तका प्रकाशन करनेके लिये ० आयुष्मान् सारिपुत्रको चुन लिया। संघको पसंद है। इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ'।"

संघके द्वारा चुन लिये जानेपर, आयुष्मान् सारिपुत्रने बहुतसे भिक्षुओंके साथ राजगृहमें प्रवेश कर राजगृहमें दे व द त्त का प्रकाशन किया—'पूर्वमें देवदत्त अन्य प्रकृतिका था ०। जो मनुष्य कि श्रद्धालु अप्रसन्न, पंडित, बुद्धिमान थे वह (सोचते थे)—'जिस तरह (कि) भगवान् राजगृहमें देवदत्त का प्रकाशन करवा रहे हैं, उससे यह छोटी बात न होगी।'

§२—देवदत्तका विद्रोह

(१) अजातशत्रुको बहकाकर पितासे विद्रोह कराना

तब देवदत्त जहाँ अजात-शत्रु कुमार था, वहाँ गया। जाकर अजातशत्रु कुमारसे बोला—

"कुमार पहिले मनुष्य दीर्घायु (होते थे), अब अल्पायु। हो सकता है, कि तुम कुमार रहते ही मर जाओ। इसलिये कुमार ! तुम पिताको मारकर राजा होओ; मैं भगवान्‌को मारकर बुद्ध होऊँगा।"

शत्रु कुमारको० अन्तःपुरमें प्रविष्ट होते देखा। देखकर पकळ लिया। कुमारसे कहा—

"कुमार तुम क्या करना चाहते थे?"

"पिताको मारना चाहता था।"

"किसने उत्साहित किया?"

"आर्य देवदत्तने।"

किन्हीं किन्हीं महामात्त्योंने यह सम्मति दी—'कुमारको भी मारना चाहिये, देवदत्तको भी, भिक्षुओंको भी।'

किन्हीं किन्हीं ने०—'न कुमारको मारना चाहिये, न देवदत्तको, न भिक्षुओंको, राजाको कहना चाहिये, जैसा राजा कहें, वैसा करेंगे।'

तब वह महामात्य अजातशत्रुको ले जहाँ मगध राज श्रेणिक बिंबिसार था, वहाँ गये, जाकर ०बिंबिसारको यह बात कह सुनाई।

"भणे! महामात्त्यने क्या सम्मति दी है?"

"किन्हीं किन्हीं महामात्त्योंने देव! यह सम्मति दी—'कुमारको भी मारना चाहिये० जैसा राजा कहें, वैसा करेंगे।"

"भणे! बुद्ध, धर्म संघका क्या दोप है। भगवान्ने तो पहिले ही राजगृहमें देवदत्तका प्रकाशन करवा दिया है—०।"

तब जिन महामात्त्योंने यह सलाह दी थी—'कुमारको भी मारना चाहिये०; उन्हें पदसे पृथक् कर दिया, और जिन महामात्त्योंने यह सलाह दी थी—'न कुमारको मारना चाहिये०' उन्हें ऊँचे पदपर स्थापित किया।

तब वह महामात्य अजातशत्रुको ले जहाँ मगधराज श्रेणिक बिंबिसार था, वहाँ गये। जाकर राजा०को यह बात कह सुनाई।

तब राजा०ने अजात-शत्रु कुमारको कहा—

"कुमार! किसलिये तू मुझे मारना चाहता था?"

"देव! राज्य चाहता हूँ।"

"कुमार! यदि राज्य चाहता है तो यह तेरा राज्य है।" कह अजात-शत्रु कुमारको राज्य दे दिया।

(२) बुद्धके मारनेके लिये आदमी भेजना

तब तेवदत्त जहाँ अजात-शत्रु कुमार था, वहाँ गया। जाकर...कहा—

"महाराज! आदमियोंको हुकुम दो, कि श्रमण गौतमको जानसे मार दें।"

तब अजात-शत्रु कुमारने मनुष्योंसे कहा—

"भणे! जैसा आर्य देवदत्त कहें वैसा करो।"

तब देवदत्तने एक पुरुषको हुकुम दिया—

"जाओ आवुस! श्रमण गौतम अमुक स्थानपर विहार करता है। उसको जानसे मारकर, इस रास्तेसे आओ।"

उस रास्तेमें दो आदमियोंको बैठाया—"जो अकेला पुरुष इस रास्तेसे आवे, उसे जानसे मारकर इस मार्गसे आओ।"

उस रास्तेमें चार आदमियोंको बैठाया—"जो दो पुरुष इस रास्तेसे आवें, उन्हें जानसे मार कर, इस मार्गसे आओ।"

उस मार्गमें आठ आदमी वैठाये—"जो चार पुरुष० ।"

उस मार्गमें सोलह आदमी वैठाये—० ।

तब वह अकेला पुरुष ढाल तलवार ले तीर कमान चढ़ा, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया । जाकर भगवान्‌के अविदूरमें भयभीत, उद्विग्न० शून्य-शरीरसे खळा हुआ । भगवान्‌ने उस पुरुषको भीत० शून्य शरीर खळे हुये देखा । देखकर उस पुरुषको कहा—

"आओ, आवुस ! मत डरो ।"

तब वह पुरुष ढाल-तलवार एक ओर (रख) तीर-कमान छोळकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे पळकर भगवान्‌से बोला—

"भन्ते ! बाल (=मूर्ख)सा मूढ़सा, अकुशल (=अ-चतुर)सा मैंने जो अपराध किया है; जो कि मैं दुष्ट-चित्त हो वध-चित्त हो, यहाँ आया; उसे क्षमा करें । भन्ते ! भगवान् भविष्यमें संवर (=रोक करने)के लिये, मेरे उस अपराध (=अत्यय)को अत्यय (=बीते)के तौरपर स्वीकार करें ।"

"आवुस ! जो तूने अपराध किया,० वध-चित्त हो यहाँ आया । चूँकि आवुस ! अत्यय (=अपराध)को अत्ययके तौरपर देखकर धर्मानुसार प्रतीकार करता है । (इसलिये) उसे हम स्वीकार करते हैं ।..."

तब भगवान्‌ने उस पुरुषको आनुपूर्वी-कथा कही०[1] । (और) उस पुरुषको उसी आसनपर० धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ ।०।

तब वह पुरुष...भगवान्‌से बोला—

"आश्चर्य ! भन्ते !!० भन्ते ! आजसे भगवान् मुझे अञ्जलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करें ।"

तब भगवान्‌ने उस पुरुषसे—

"आवुस ! तुम उस मार्गसे मत जाओ; इस मार्गसे जाओ" (कह) दूसरे मार्गसे भेज दिया ।

तब उन दो पुरुषोंने—'क्यों वह पुरुष देर कर रहा है' (सोच) ऊपरकी ओर जाते, भगवान्‌को एक वृक्षके नीचे बैठे देखा । देखकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ...जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गये । उन्हें भगवान्‌ने आनुपूर्वी-कथा कही० ।० । "आवुसो ! मत तुम लोग उस मार्गसे जाओ; इस मार्गसे जाओ" ।

तब उन चार पुरुषोंने ० ।० । तब उन आठ पुरुषोंने ० ।० । तब उन सोलह पुरुषोंने ० ।० "आजसे भन्ते ! भगवान् हमें अञ्जलि-बद्ध शरणागत उपासक धारण करें ।"

तब वह अकेला पुरुष जहाँ दे व द त्त था, वहाँ गया । जाकर देवदत्तसे बोला—

"भन्ते ! मैं उन भगवान्‌को जानसे नहीं मार सकता । वह भगवान् महा-ऋद्धिक=महानुभाव हैं ।"

(३) देवदत्तका बुद्धपर पत्थर मारना

"जाने दे आवुस ! तू श्रमण गौतमको जानसे मत मार, मैं ही...जानसे मारूँगा ।"

उस समय भगवान् गृध्रकूट पर्वतकी छायामें टहलते थे । तब देवदत्तने गृध्रकूट पर्वतपर चढ़ कर—'इससे श्रमण गौतमको जानसे मारूँ'—(सोच) एक बळी शिला फेंकी । दो पर्वतकूटोंने आकर उस शिलाको रोक दिया । उससे (निकली) पपळीके उछलकर (लगनेसे) भगवान्‌के पैरसे रुधिर बह निकला ।...

[1] पृष्ठ ८४ ।

तब भगवान्‌ने ऊपर देख देवदत्तसे यह कहा—

"मोघ पुरुष ! तूने बहुत अ-पुण्य (=पाप) कमाया, जो कि तूने द्वेष-युक्त चित्तसे तथागतका रुधिर निकाला।"

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! देवदत्तने यह प्रथम आनन्तर्य (=मोक्षका बाधक) कर्म जमा किया, जोकि द्वेष-युक्त चित्तसे वधके चित्तसे तथागतका रुधिर निकाला।"

(४) तथागतकी अकाल मृत्यु नहीं

भिक्षुओंने सुना कि देवदत्तने बध करनेकी कोशिश की, तो वह भिक्षु भगवान्‌के विहार (=निवास-स्थान)के चारों ओर टहलते ऊँची आवाज़से बळी आवाज़में भगवान्‌की रक्षा=आवरण=गुप्तिके लिये स्वाध्याय (=सूत्र-पाठ) करते थे। भगवान्‌ने ऊँची आवाज बळी आवाजके स्वाध्यायके शब्दको सुना। भगवान्‌ने आयुष्मान् आनंदको संबोधित किया—

"आनन्द ! यह क्या ऊँची आवाज, बळी आवाज़, स्वाध्याय शब्द है?"

"भन्ते ! भिक्षुओंने सुना कि देवदत्तने बध करनेकी कोशिश की० स्वाध्याय कर रहे हैं। वही यह भगवान्० स्वाध्याय शब्द है।"

"तो आनन्द ! मेरे वचनसे उन भिक्षुओंको कहो— 'आयुष्मानोंको शास्ता बुला रहे हैं।"

"अच्छा भन्ते !"—(कह) भगवान्‌को उत्तर दे, आयुष्मान् आनन्द, जहाँ वह भिक्षु थे, वहाँ गये। जाकर उन भिक्षुओंसे यह बोले—

"आवुसो ! आयुष्मानोंको शास्ता बुला रहे हैं।"

"अच्छा आवुस !"—(कह) आयुष्मान् आनन्दको उत्तर दे, वह भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन भिक्षुओंसे भगवान्‌ने यह कहा—

"भिक्षुओ ! इसका स्थान नहीं, यह संभव नहीं कि दूसरेके प्रयत्नसे तथागतका जीवन छूटे; भिक्षुओ ! तथागत (दूसरेके) उपक्रमसे नहीं (अपनी मौतसे) परिनिर्वाणको प्राप्त हुआ करते हैं।

"भिक्षुओ ! लोकमें यह पाँच (प्रकारके) (गुरु) (=शास्ता) होते हैं०[1]।

"भिक्षुओ ! शील-शुद्ध होनेपर—मैं शुद्ध शीलवाला हूँ,०[1] (५) ०मैं शुद्ध ज्ञान दर्शनवाला हूँ०।

"भिक्षुओ ! इसका स्थान नहीं० तथागत (दूसरेके) उपक्रमसे नहीं (अपनी मौतसे) परिनिर्वाणको प्राप्त हुआ करते हैं। भिक्षुओ ! जाओ तुम अपने अपने विहारको, तथागतोंकी रक्षाकी आवश्यकता नहीं।"

(५) देवदत्तका बुद्धपर नालागिरि हाथीका छुळवाना

उस समय राजगृहमें ना ला-गि रि नामक मनुष्य-घातक, चंड हाथी था। देवदत्तने राजगृहमें प्रवेशकर हथसारमें जा फ़ीलवान्‌से कहा—

"...जब श्रमण गौतम इस सळकपर आये, तब तुम नाला-गिरि हाथीको खोलकर, इस सळक पर कर देना।"

"अच्छा भन्ते !"

[1]देखो ७§१।५ (पृष्ठ ४८२)।

भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, वहुतसे भिक्षुओंके साथ राजगृहमें पिंडचारके लिये प्रविष्ट हुए। तव भगवान् उसी सळकपर आये। उन फ़ीलवान्ने भगवान्को उस सळकपर आते देखा। देखकर नालागिरि हाथीको छोळकर, सळकपर कर दिया। नालागिरि हाथीने दूरसे भगवान्को आते देखा। देखकर सूँळको खळाकर, प्रहृष्ट हो, कान चलाते जहाँ भगवान् थे, उधर दौळा। उन भिक्षुओंने दूरसे नालागिरि हाथीको आते देखा। देखकर भगवान्से कहा—

"भन्ते! यह चंड, मनुष्य-घातक ना ला गि रि हाथी इस सळकपर आ रहा है, हट जायें भन्ते! भगवान्, हट जायें सुगत!"

दूसरी वार भी०। तीसरी बार भी०।

उस समय मनुष्य प्रासादोंपर, हर्म्योंपर, छतोंपर, चढ़ गये थे। उनमें जो अश्रद्धालु=अप्रसन्न, दुर्बुद्धि (=मूर्ख) मनुष्य थे, वह ऐसा कहते थे—"अहो! महाश्रमण अभिरूप (था, सो) नागसे मारा जायेगा।" और जो मनुष्य श्रद्धालु=प्रसन्न, पंडित थे, उन्होंने ऐसा कहा—"देर तक जी! नाग[1] नाग (=वृद्ध)से, संग्राम करेगा।"

तव भगवान्ने नालागिरि हाथीको मैत्री (भावना)युक्त चित्तसे आप्लावित किया। तव नालागिरि हाथी भगवान्के मैत्री (पूर्ण) चित्तसे स्पृष्ट हो, सूँडको नीचे करके, जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर खळा हुआ। तव भगवान्ने दाहिने हाथसे नालागिरिके कुम्भको स्पर्श (किया)...।

"आओ भिक्षुओ! मत डरो। भिक्षुओ! इसका स्थान नहीं० तथागत (परके) उपक्रमसे नहीं (अपनी मौतसे) परिनिर्वाणको प्राप्त हुआ करते हैं।"

दूसरी वार भी भगवान्ने नालागिरि० स्पर्श किया।

स्पर्शकर नालागिरि हाथीसे गाथाओंमें कहा—

"कुंजर! मत नाग[1]को मारो, कुंजर! नागका मारना दुःख (मय) है।
क्योंकि कुंजर! ना ग[1]को मारनेवालेकी न यहाँ सुगति होती, न परलोकमें ही॥(२)॥
मत मदको मत प्रमादको प्राप्त हो, इसके कारण प्रमादी सुगतिको नहीं प्राप्त होते।
तू ही ऐसा कर, जिससे कि तू सुगतिको प्राप्त हो"॥ (३)॥

तव ना ला गि रि हाथीने सूँडसे भगवान्की चरण-धूलिको ले शिरपर डाल, जव तक भगवान्को देखता रहा पीठकी ओरसे लौटता रहा। तव नालागिरि हाथी हथसारमें जा अपने स्थान पर खळा हुआ। इस प्रकार नालागिरि हाथीका दमन हुआ। उस समय मनुष्य यह गाथा गाते थे—

"कोई कोई दंडसे, अंकुश और कशासे दमन करते थे।
महर्षिने विना दंड विना शस्त्र नागको दमन किया"॥ (४)॥

लोग हैरान होते थे—'कैसा पापी अलक्षणी देवदत्त है, जो कि ऐसे महर्द्धिक (=तेजस्वी) ऐसे महानुभाव श्रमण गौतमके वधकी कोशिश करता है!!'

देवदत्तका लाभ-सत्कार नष्ट हो गया, भगवान्का लाभ-सत्कार बढ़ा।

(६) देवदत्तके सम्मानका ह्रास

उस समय दे व द त्त लाभ-सत्कारसे हीन होनेसे घरोंसे माँग माँगकर खाता था। लोग हैरान० होते थे—

'कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण घरोंसे माँग माँग कर खाते हैं!!'

---

[1] न+अगः=पापरहित=बुद्ध।

०अल्पेच्छ० भिक्षु० भगवान्से बोले।—

"सचमुच, भिक्षुओ ! ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

०फटकारकर भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! कुलोंमें भिक्षुओंके लिये तीन (प्रकार)के भोजनका विधान करता हूँ, तीन मतलबसे—(१) कुटिल (=दुम्मंकू) व्यक्तियोंके निग्रहके लिये; (२) अच्छे भिक्षुओं के ठीकसे विहारके लिये; (३) (और जिसमें कि)बुरी नियतवाले पक्ष या संघमें फूट न डाल दें। कुलोंके अनुदर्शनके लिये धर्मानुसार गण-भोजन (=जमातका भोज) कराना चाहिये।"

(७) संघमें फूट डालना

तब देवदत्त जहाँ कोकालिक कटमोर-तिस्सक, और खंडदेवी-पुत्र समुद्रदत्त थे, वहाँ गया। जाकर...बोला—

"आओ आवुसो ! हम श्रमण गौतमका संघ-भेद (=फूट)=चक्रभेद करें। आओ...हम श्रमण गौतमके पास चलकर पाँच वस्तुएँ माँगें।...—'अच्छा हो भन्ते ! भिक्षु (१) ज़िन्दगी भर आरण्यक रहें, जो गाँवमें वसे, उसे दोष हो। (२) ज़िन्दगी भर पिंडपातिक (=भिक्षा माँगकर खानेवाले) रहें, जो निमंत्रण खाये, उसे दोष हो। (३) ज़िन्दगी भर पांसुकूलिक (=फेंके चीथळे सीकर पहननेवाले) रहें, जो गृहस्थके (दिये) चीवरको उपभोग करे, उसे दोष हो। (४) ज़िन्दगी भर वृक्ष-मूलिक (=वृक्ष के नीचे रहनेवाले) रहें, जो छायाके नीचे जाये, वह दोषी हो। (५) ज़िन्दगी भर मछली मांस न खाये, जो मछली मांस खाये , उसे दोष हो।, श्रमण गौतम इसे नहीं स्वीकार करेगा। तब हम इन पाँच बातोंसे लोगोंको समझायेंगे।..."

तब देवदत्त परिषद्-सहित जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर बैठा। एक ओर बैठे देवदत्तने भगवान्से कहा—

"...अच्छा हो भन्ते ! भिक्षु (१) ज़िन्दगी भर आरण्यक हों० ।"

"अलम् देवदत्त ! जो चाहे आरण्यक हो, जो चाहे ग्राममें रहे। जो चाहे पिंडपातिक हो, जो चाहे निमंत्रण खाये। जो चाहे पांसुकूलिक हो, जो चाहे गृहस्थके (दिये) चीवरको पहने। देवदत्त ! आठ मास मैंने वृक्षके नीचे वास (=वृक्ष-मूल-शयनासन)की अनुज्ञा दी है। अदृष्ट[१], अ-श्रुत[२],अ-परिशंकित,[३] इस तीन कोटिसे परिशुद्ध मांसकी भी मैंने अनुज्ञा दी है ।..."

तब देवदत्त—भगवान् इन पाँच बातोंकी अनुमति नहीं देते हैं—(सोच) हर्षित=उदग्र हो परिषद्-सहित आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया ।

तब देवदत्त परिषद्-सहित राजगृहमें प्रवेशकर (उन) पाँच बातोंको ले लोगोंको समझाता था—'आवुसो ! हमने श्रमण गौतमके पास जा पाँच बातोंकी याचना की—भन्ते ! भगवान् अनेक प्रकार से अल्पेच्छ, संतुष्ट, सल्लेख (=तप), धुत (=त्यागमय रहन सहन)'; प्रासादिक, अपचय (=त्याग) वीर्यारम्भ (=उद्योग)के प्रशंसक हैं। भन्ते ! यह पाँच बातें अनेक प्रकारसे अल्पेच्छता० वीर्यारम्भता के लिये हैं। अच्छा हो भन्ते ! भिक्षु (१) ज़िन्दगी भर आरण्यक रहे० । इन पाँच बातोंकी श्रमण गौतम अनुमति नहीं देता। और हम इन पाँचों बातोंको लेकर वर्तते हैं।" वहाँ जो आदमी अश्रद्धालु=अप्रसन्न,

---

[१]'मेरे लिये मारा गया'—यह देखा न हो।　[२]'मेरे लिये मारा गया'—यह सुना न हो।
[३]'मेरे लिये मारा गया'—यह सन्देह न हो।

दुर्बुद्धि थे वह ऐसा बोलते थे—'यह शाक्यपुत्रीय श्रमण अवधूत, सल्लेखवृत्ति (=तपस्वी) हैं। श्रमण गौतम बटोरू है, बटोरने के लिये चेताता है। और जो मनुष्य श्रद्धालु=प्रसन्न, पंडित, बुद्धिमान् थे, वह हैरान ० होते थे—'कैसे देवदत्त, भगवान्के संघ भेदके लिये, चक्रभेदके लिये कोशिश कर रहा है।'

भिक्षुओंने उन मनुष्योंके हैरान० होनेको सुना—०।

तब उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्!"

"बस देवदत्त! तुझे संघमें फूट डालना मत पसंद होवे। देवदत्त! संघ-भेद भारी (अपराध) है। देवदत्त! जो एकमत संघको फोळता है, वह कल्प भर रहनेवाले पापको कमाता है, कल्प भर नरक में पकता है। देवदत्त! जो फूटे संघको मिलाता है, वह ब्राह्म (=उत्तम) पुण्यको कमाता है, कल्प भर स्वर्गमें आनन्द करता है। बस देवदत्त! तुझे संघमें फूट डालना मत पसंद होवे, देवदत्त! संघभेद भारी (अपराध) है।"

तब आयुष्मान् आनन्द पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले राजगृहमें भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुये। देवदत्तने आयुष्मान् आनन्दको राजगृहमें भिक्षाचार करते देखा। देखकर जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया, जाकर आयुष्मान् आनन्दसे यह बोला—

"आजसे आवुस आनन्द! मैं भगवान्से अलग ही भिक्षु-संघसे अलग ही उपोसथ करूँगा, अलग ही संघ-कर्म करूँगा।"

तब आयुष्मान् आनन्द भोजनकर भिक्षासे निवृत्त हो जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवानसे यह कहा—

"आज मैं भन्ते! पूर्वाह्ण समय० राजगृहमें भिक्षाके लिये प्रवृष्ट हुआ।० अलग ही संघ-कर्म करूँगा। भन्ते! आज देवदत्त संघको फोळेगा।"

तब भगवान्ने इस बातको जान उसी समय इस उदानको कहा—

"साधु (=भले मनुष्य)के साथ भलाई सुकर है, पापीके साथ भलाई दुष्कर है।
पापीके साथ पाप सुकर है, आर्योंके साथ पाप दुष्कर है" ॥(५)॥

द्वितीय भाणवार समाप्त

(८) देवदत्तका संघसे अलग होजाना

तब देवदत्तने उस दिन उपोसथ[1]को आसनसे उठकर शलाका[2] (=वोटकी लकळी) पकळवाई—"हमने आवुसो! श्रमण-गौतमको जाकर पाँच वस्तुएँ माँगीं—०। उन्हें श्रमण गौतमने नहीं स्वीकार किया। सो हम (इन) पाँच वस्तुओंको लेकर वर्तेंगे। जिस आयुष्मान्को यह पाँच बातें पसंद हों, वह शलाका ग्रहण करें।"

उस समय वैशालीके पाँच सौ वज्जिपुत्तक नये भिक्षु असली बातको न समझनेवाले थे। उन्होंने—'यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शासन (=गुरुका उपदेश) है'—(सोच) शलाका ले ली। तब देवदत्त संघको फोळ (=भेद) कर, पाँच सौ भिक्षुओंको ले, जहाँ गयासीस[3] था वहाँको चल दिया।

[1] कृष्ण चतुर्दशी या पूर्णिमा। [2] वोट (=मत पाली, छन्द) लेनेकी आसानीके लिये जैसे आजकल पर्ची (बैलट) चलती है, वैसे ही पूर्वकालमें छन्द-शलाका चलती थी। [3] ब्रह्मयोनि पर्वत (गया)।

आयुष्मान् सारिपुत्र और मौद्गल्यायन जहाँ भगवान् थे वहाँ गये ।...। आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्को कहा—

"भन्ते ! देवदत्त संघको फोळकर, पाँच सौ भिक्षुओंको लेकर जहाँ गयासीस है, वहाँ चला गया।"

"सारिपुत्र ! तुम लोगोंको उन नये भिक्षुओंपर दया भी नहीं आई ? सारिपुत्र ! तुम लोग उन भिक्षुओंके आपद्में पळनेसे पूर्वही जाओ।"

"अच्छा भन्ते !"

उस समय बळी परिषद्के बीच बैठा देवदत्त धर्म-उपदेश कर रहा था। देवदत्तने दूरसे सारिपुत्र, मौद्गल्यायनको आते देखा। देखकर भिक्षुओंको आमंत्रित किया।—

"देखो भिक्षुओ ! कितना सु-आख्यात (=सु-उपदिष्ट) मेरा धर्म है। जो श्रमण गौतमके अग्र-श्रावक सारिपुत्र, मौद्गल्यायन हैं, वह भी मेरे पास आ रहे, मेरे धर्मको मानते हैं।"

ऐसा कहनेपर कोकालिकने देवदत्तसे कहा—

"आवुस देवदत्त ! सारिपुत्र, मौद्गल्यायनका विश्वास मत करो। सारिपुत्र, मौद्गल्यायन वदनीयत (=पापेच्छ) हैं, पापक (=बुरी) इच्छाओंके वशमें हैं।"

"आवुस, नहीं, उनका स्वागत है, क्योंकि वह मेरे धर्मपर विश्वास करते हैं।"

तब देवदत्तने आयुष्मान् सारिपुत्रको आधा आसन (देनेको) निमंत्रित किया—

"आओ आवुस ! सारिपुत्र ! यहाँ बैठो।"

"आवुस ! नहीं" (कह) आयुष्मान सारिपुत्र दूसरा आसन लेकर एक ओर बैठ गये। आयुष्मान् महामौद्गल्यायन भी एक आसन लेकर० बैठ गये। तब देवदत्त बहुत रात तक भिक्षुओंको धार्मिक कथा...(कहता) आयुष्मान् सारिपुत्रसे बोला—

"आवुस ! सारिपुत्र ! (इस समय) भिक्षु आलस-प्रमाद-रहित हैं, तुम आवुस सारिपुत्र ! 'भिक्षुओंको धर्म-देशना करो, मेरी पीठ अगिया रही है, सो मैं लम्बा पळूँगा।"

"अच्छा आवुस !"...

तब देवदत्त चौपेती संघाटीको बिछवाकर दाहिनी बगलसे लेट गया। स्मृति-रहित संप्रजन्य-रहित(होनेसे) उसे मुहूर्त भरमें ही निद्रा आ गई। तब आयुष्मान् सारिपुत्रने आदेशना-प्रातिहार्य (=व्याख्यानके चमत्कार) और अनुशासनीय-प्रातिहार्यके साथ, तथा आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने ऋद्धि-प्रातिहार्य (=योग-बलके चमत्कार)के साथ भिक्षुओंको धर्म-उपदेश किया, अनुशासन किया। तब उन भिक्षुओंको ...विरज—विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—जो कुछ समुदय धर्म (=उत्पन्न होनेवाला) है, वह निरोध-धर्म (=विनाश होनेवाला) है०'।

आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओंको निमंत्रित किया—

"आवुसो ! चलो भगवान्के पास चलें, जो उस भगवान्के धर्मको पसंद करता है वह आवे।"

तब सारिपुत्र मौद्गल्यायन उन पाँच सौ भिक्षुओंको लेकर जहाँ वेणुवन था, वहाँ चले गये। तब कोकालिकने देवदत्तको उठाया—

"आवुस देवदत्त ! उठो, मैंने कहा न था—आवुस देवदत्त ! सारिपुत्र, मौद्गल्यायनका विश्वास मत करो। ०।"

तब देवदत्तको वहीं मुखसे गर्म खून निकल पळा।......

तब सारिपुत्र, और मौद्गल्यायन जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादन कर, एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्से यह कहा—

"अच्छा हो भन्ते ! फूट डालनेवाले अनुयायी भिक्षु फिर उपसंपदा पावें।"

"नहीं, सारिपुत्र ! मत तुझे रुचे फूटके अनुयायी भिक्षुओंकी उपसम्पदा। तो सारिपुत्र ! तू फूटके अनुयायी भिक्षुओंको थुल्लच्चयकी देशना (=क्षमापन) करा। सारिपुत्र ! कैसे देवदत्त तेरे साथ पेश आया ?"

"जैसे भन्ते ! भगवान् वहुत रात तक भिक्षुओंको धर्म कथा द्वारा समुत्तेजित संप्रर्हपित ० कर मुझको आज्ञा देते हैं—'सारिपुत्र ! चित्त और शरीरके आलस्यसे रहित है भिक्षुसंघ। सारिपुत्र ! तू भिक्षुओंको धार्मिक कथा कह। पीठ मेरी अगिया रही, सो मैं लम्वा पळूँगा।' ऐसे ही भन्ते ! देवदत्तने भी मेरे साथ किया।"

हाथी और गीदळकी कथा

तव भगवान्ने भिक्षुओंको संवोधित किया—

"भिक्षुओ ! पूर्वकालमें जंगलमें एक महासरोवर (था, जिसके) आश्रयसे हाथी (=नाग) रहते थे। वह महासरोवरमें घुसकर सूँळसे भसींड और मृणालको निकाल, अच्छी तरह धो, विना कीचळका कर खाते थे। वह उनके वलके लिये भी सौन्दर्यके लिये भी होता था। उनके कारण मरण या मरण-समान दुःखको न प्राप्त होते थे। भिक्षुओ ! उन्हीं हाथियोंकी नकल करते थे तरुण स्यारके वच्चे। वह उस सरोवरमें घुस सूँळसे भसींड और मृणालको निकाल। अच्छी तरह धोये विना, विना कीचळका किये विना खाते थे। वह उनके वलके लिये, सौन्दर्यके लिये नहीं होता था उनके कारण वह मरण या मरण समान दुःखको प्राप्त होते थे। ऐसे ही भिक्षुओ। देवदत्त मेरी नकल कर कृपण (हो) मरेगा।—

"धरती खोद नदीमें धो भसींड खाते महावराहकी भाँति कीचड़ खाते स्यारकी भाँति मेरी नकल कर (वह) कृपण मरेगा॥ (६)"॥

(९) दूतके लिये अपेक्षित गुण

"भिक्षुओ ! आठ वातोंसे युक्त भिक्षु दूत भेजने लायक है। कौनसे आठ ?—यहाँ भिक्षु (१) श्रोता होता है; (२) श्रावयिता (=सुनानेवाला); (३) उद्गृहीता (=ग्रहण करनेवाला); (४) धारयिता (=स्मरण रखनेवाला); (५) विज्ञाता; (६) विज्ञापयिता; (७) हित अहितमें कुशल (=चतुर); और (८) कलहकारक नहीं होता। भिक्षुओ ! इन आठ वातोंसे युक्त भिक्षु दूत भेजने लायक है।4

"भिक्षुओ ! आठ वातोंसे युक्त होनेसे सारिपुत्र दूत भेजने लायक हैं। कौनसे आठ ?—यहाँ भिक्षुओ ! सारिपुत्र (१) श्रोता हैं; ० (८) हित अहितमें कुशल है।०।

"जो उग्रवादी परिषद्को पा पीडित नहीं होता।
(किसी) वचनको न छोळता है, और न भाषणको ढाँकता है ॥ (७) ॥
विना वतलाये कहता है, पूछनेपर कोप नहीं करता।
यदि ऐसा भिक्षु है, तो वह दूत वनकर जाने लायक है" ॥(८)॥

(१०) देवदत्तके पतनके कारण

"भिक्षुओ ! आठ असद्धर्मोंसे अभिभूत=पर्यादत्त-चित्त (=लिप्त चित्त) हो देवदत्त अपायिक नारकीय कल्पस्थ (नरकमें रहनेवाला) चिकित्साके अयोग्य है। कौनसे आठ ?—(१) भिक्षुओ ! देवदत्त लाभसे अभिभूत=पर्यादत्तचित्त ० चिकित्साके अयोग्य है; (२) अलाभसे०; (३) यशसे०; (४) अयशसे०; (५) सत्कारसे०; (६) असत्कारसे०; (७) पापेच्छता (=वद-

नीयती)से०; (८) पापमित्रतासे०। भिक्षुओ! इन आठ०।

"अच्छा हो भिक्षुओ! भिक्षु प्राप्त लाभकी उपेक्षा कर करके विहार करें; ० प्राप्त अलाभ०; ० प्राप्त यश०; ० प्राप्त अयश०; ० प्राप्त सत्कार०; ० प्राप्त असत्कार०; ० प्राप्त पापेच्छता०; ० प्राप्त पापमित्रता०।

"भिक्षुओ! क्या बात देख भिक्षु प्राप्त लाभकी उपेक्षा करके विहार करें; ०; ० प्राप्त पापमित्रताकी उपेक्षा करके विहार करें?—भिक्षुओ! प्राप्त लाभकी उपेक्षा किये बिना विहार करते समय जो पीळा-दाह करनेवाले आस्रव (=चित्त-मल) उत्पन्न होते हैं; प्राप्त लाभकी उपेक्षा करके विहार करनेपर वह पीळा-दाह करनेवाले आस्रव नहीं उत्पन्न होंगे।० प्राप्त अलाभकी उपेक्षा किये बिना०; प्राप्त यशकी उपेक्षा किये बिना०; प्राप्त अयशकी उपेक्षा किये बिना०; प्राप्त सत्कारकी उपेक्षा किये बिना०; प्राप्त असत्कारकी उपेक्षा किये बिना०; प्राप्त पापेच्छताकी उपेक्षा किये बिना०; प्राप्त पापमित्रताकी उपेक्षा किये बिना०। भिक्षुओ! यह बात देख०। इसलिये भिक्षुओ! तुम्हें सीखना चाहिये—०। प्राप्त लाभकी उपेक्षा कर करके विहरूँगा; ०; प्राप्त पापमित्रताकी उपेक्षा कर करके विहरूँगा।

"भिक्षुओ! तीन असद्धर्मोमे लिप्त=पर्यादत्त चित्त हो देवदत्त अपायिक=नारकीय, कल्प भर (नरकमें रहनेवाला) चिकित्साके अयोग्य है। कौनसे तीन?—(१) पापेच्छता; (२) पापमित्रता; (३) थोळीसी विशेषता प्राप्त होनेसे अन्तराव्यवसान (=इतराना) करना।
भिक्षुओ! इन तीन असद्धर्मोंसे लिप्त ०।—

"लोकमें मत कोई पापेच्छ उत्पन्न हो,
सो इससे जानो, जैसी कि पापेच्छोंकी गति होती है ॥(९)॥
'पंडित है, ऐसा प्रसिद्ध है' 'भावितात्मा' होनेकी मान्यता है,
मैंने सुना—जलकी भाँति देवदत्तमें यश (आदि) आठ हैं ॥(१०)॥
तथागतसे द्रोह करके उसने प्रमाद किया,
चार द्वारवाले भयानक नरक अवीचिको प्राप्त हुआ ॥(११)॥
पाप कर्मको न करनेवाले द्वेषरहित (पुरुष)का जो द्रोह करता है,
आदरहीन द्वेष-युक्त उसी पापीको वह लगता है ॥(१२)॥
यदि (कोई) विषके घळेसे (सारे) समुद्रको दूषित करना चाहे,
(तो), उससे वह दूषित नहीं हो सकता, क्योंकि समुद्र महान् है ॥(१३)॥
इसी प्रकार जो तथागतको वाद (विवाद)से पीडित करना चाहे,
(तो उन) सम्यक्त्वको प्राप्त शान्त-चित्त (तथागत)को (वह) वाद नहीं लग सकता ॥(१४)॥
पंडित (जन) वैसेको मित्र करे, और वैसेका सेवन करे।
जिसके मार्गका अनुसरण करके भिक्षु दुःख-विनाशको प्राप्त कर सके" ॥(१५)॥

३—संघमें फूट (व्याख्या)

तब आयुष्मान् उपालि जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् उपालिने भगवान्से यह कहा—

(१) संघ-राजीकी व्याख्या

"भन्ते ! संघ-राजी (=संघमें पार्टी होना) संघ-राजी[1] कही जाती है; कैसे भन्ते ! संघ-राजी होती है, और संघ-भेद नहीं होता है; और कैसे भन्ते ! संघ-राजी भी होती है, संघ-भेद भी होता है ?"

"उपालि ! (१) एक ओर एक होता है, एक ओर दो, (और) चौथा (भिक्षु) अ नु श्रा व ण[2] करता है, शलाका ग्रहण कराता है—'यह ध र्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शासन (=उपदेश) है, इसे ग्रहण करो, इसका व्याख्यान करो।' इस प्रकार उपालि ! संघ-राजी होती है, किन्तु संघभेद नहीं होता। (२) एक ओर दो (भिक्षु) होते हैं, एक ओर दो, (और) पाँचवाँ (भिक्षु) अनुश्रावण करता है, शलाका ग्रहण कराता है—'यह धर्म है० इस प्रकार व्याख्यान करो'—इस प्रकार भी उपालि ! संघ-राजी होती है, किन्तु संघभेद नहीं होता। (३) एक ओर उपालि ! दो होते हैं, एक ओर तीन और छटाँ अ नु श्रा व ण करता है, शलाका ग्रहण कराता है—'यह धर्म है० इस प्रकार व्याख्यान करो'—इस प्रकार भी उपालि ! संघ-राजी होती है, किन्तु संघभेद नहीं होता। (४) एक ओर उपालि ! तीन होते हैं, एक ओर तीन, और सातवाँ अनुश्रावण करता है, ०—०—इस प्रकार भी उपालि ! संघ-राजी होती है, किन्तु संघ-भेद नहीं होता। (५) एक ओर उपालि ! तीन होते हैं, एक ओर चार, और आठवाँ अनुश्रावण करता है, ०—०—इस प्रकार भी उपालि ! संघ-राजी होती है, किन्तु संघ-भेद नहीं होता। (६) एक ओर उपालि चार होते हैं, एक ओर चार और नवाँ अनुश्रावण करता है, ०—०—इस प्रकार उपालि ! संघ-राजी भी होती है संघ-भेद भी। उपालि ! नव (भिक्षुओंके होने)से या नवसे अधिक होनेसे संघ-राजी भी होती है, संघ-भेद भी। उपालि ! न भिक्षुणी, संघमें भेद (=फूट) करती, हाँ भेदके लिये प्रयत्न कर सकती है। उपालि ! न शि क्ष मा णा, संघमें भेद करती, हाँ भेदके लिये प्रयत्न कर सकती है। ० न श्रामणेर०। ० न श्रामणेरी ०। ० न उपासक ०। ० न उपासिका ०। उपालि ! अपराध-रहित (=प्रकृतस्थ) एक आवासवाले एक सीमामें स्थित भिक्षु संघ भेद करते हैं।" 5

(२) सङ्घ-भेदकी व्याख्या

"भन्ते ! संघ-भेद संघ-भेद कहा जाता है; कैसे कितनेसे भन्ते ! संघ भि न्न (=फूटा हुआ) होता है ?"

"उपालि ! जब भिक्षु (१) अ ध र्म (=बुद्धका जो उपदेश नहीं)को धर्म कहते हैं, (२) ध र्म को अ-धर्म कहते हैं। (३) अ-विनयको वि न य कहते हैं, और (४) विनयको अ-विनय कहते हैं। (५) तथागतके अ-भाषित अ-लपितको तथागतका भाषित लपित कहते हैं; (६) तथागतके भाषित, लपितको तथागतका अ-भाषित अ-लपित कहते हैं। (७) तथागतके अन्-आचीर्ण (=आचरण न किये कामों)को ० आचीर्ण कहते हैं, (८) ० आचीर्णको ० अन्-आचीर्ण कहते हैं। (९) ० न विधान किये (=अ-प्रज्ञप्त)को ० प्रज्ञप्त ०, (१०) ० प्रज्ञप्तको ० अ-प्रज्ञप्त कहते हैं। (११) अन्-आपत्ति (=जो अपराध नहीं)को आपत्ति ० (१२) आपत्तिको अन्-आपत्ति कहते हैं। (१३) लघुक-आपत्ति (=छोटे गिने जानेवाले अपराध)को गुरुक (=बळी) आपत्ति कहते हैं, (१४) गुरुक-आपत्तिको लघुक-आपत्ति कहते हैं। (१५) सावशेष (=जिसके अतिरिक्त भी आपत्तियाँ बची हैं)-आपत्तियोंको निरवशेष-आपत्तियाँ कहते हैं, (१६) निरवशेष-आपत्तियोंको सावशेष-आपत्तियाँ कहते हैं। (१७)

---

[1] कोरम्‌के कमसे फूट होनेपर संघ-राजी और कोरम् पूरा होनेपर (उसे संघ और तबकी) फूटको संघ-भेद कहते हैं।

[2] संघकी सम्मति लेकर प्रस्ताव जिन शब्दोंमें रखा जाता है उसे अनुश्रावण कहते हैं।

नीयती)से०; (८) पापमित्रतासे०। भिक्षुओ! इन आठ०।

"अच्छा हो भिक्षुओ! भिक्षु प्राप्त लाभकी उपेक्षा कर करके विहार करें; ० प्राप्त अलाभ०; ० प्राप्त यश०; ० प्राप्त अयश०; ० प्राप्त सत्कार०; ० प्राप्त असत्कार०; ० प्राप्त पापेच्छता०; ० प्राप्त पापमित्रता०।

"भिक्षुओ! क्या बात देख भिक्षु प्राप्त लाभकी उपेक्षा करके विहार करें; ०; ० प्राप्त पापमित्रताकी उपेक्षा करके विहार करें?—भिक्षुओ! प्राप्त लाभकी उपेक्षा किये बिना विहार करते समय जो पीळा-दाह करनेवाले आस्रव (=चित्त-मल) उत्पन्न होते हैं; प्राप्त लाभकी उपेक्षा करके विहार करनेपर वह पीळा-दाह करनेवाले आस्रव नहीं उत्पन्न होंगे।० प्राप्त अलाभकी उपेक्षा किये बिना०; प्राप्त यशकी उपेक्षा किये बिना०; प्राप्त अयशकी उपेक्षा किये बिना०; प्राप्त सत्कारकी उपेक्षा किये बिना०; प्राप्त असत्कारकी उपेक्षा किये बिना०; प्राप्त पापेच्छताकी उपेक्षा किये बिना०; प्राप्त पापमित्रताकी उपेक्षा किये बिना०। भिक्षुओ! यह बात देख०। इसलिये भिक्षुओ! तुम्हें सीखना चाहिये—०। प्राप्त लाभकी उपेक्षा कर करके विहरूँगा;०; प्राप्त पापमित्रताकी उपेक्षा कर करके विहरूँगा।

"भिक्षुओ! तीन असद्धर्मोंसे लिप्त=पर्यादत्त चित्त हो देवदत्त अपायिक=नारकीय, कल्प भर (नरकमें रहनेवाला) चिकित्साके अयोग्य है। कौनसे तीन?—(१) पापेच्छता; (२) पापमित्रता; (३) थोळीसी विशेषता प्राप्त होनेसे अन्तराव्यवसान (=इतराना) करना। भिक्षुओ! इन तीन असद्धर्मोंसे लिप्त ०।—

"लोकमें मत कोई पापेच्छ उत्पन्न हो,
सो इससे जानो, जैसी कि पापेच्छोंकी गति होती है ॥(९)॥
'पंडित है, ऐसा प्रसिद्ध है' 'भावितात्मा' होनेकी मान्यता है,
मैंने सुना—जलकी भाँति देवदत्तमें यश (आदि) आठ हैं ॥(१०)॥
तथागतसे द्रोह करके उसने प्रमाद किया,
चार द्वारवाले भयानक नरक अवीचिको प्राप्त हुआ ॥(११)॥
पाप कर्मको न करनेवाले द्वेषरहित (पुरुष)का जो द्रोह करता है,
आदरहीन द्वेष-युक्त उसी पापीको वह लगता है ॥(१२)॥
यदि (कोई) विषके घळेसे (सारे) समुद्रको दूषित करना चाहे,
(तो), उससे वह दूषित नहीं हो सकता, क्योंकि समुद्र महान् है ॥(१३)॥
इसी प्रकार जो तथागतको वाद (विवाद)से पीडित करना चाहे,
(तो उन) सम्यक्त्वको प्राप्त शान्त-चित्त (तथागत)को (वह) वाद नहीं लग सकता ॥(१४)॥
पंडित (जन) वैसेको मित्र करे, और वैसेका सेवन करे।
जिसके मार्गका अनुसरण करके भिक्षु दुःख-विनाशको प्राप्त कर सके" ॥(१५)॥

३–संघमें फूट (व्याख्या)

तब आयुष्मान् उ पा लि जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् उपालिने भगवान्से यह कहा—

(१) संघ-राजीकी व्याख्या

"भन्ते ! संघ-राजी (=संघमें पार्टी होना) संघ-राजी[1] कही जाती है; कैसे भन्ते ! संघ-राजी होती है, और संघ-भेद नहीं होता है; और कैसे भन्ते ! संघ-राजी भी होती है, संघ-भेद भी होता है ?"

"उपालि ! (१) एक ओर एक होता है, एक ओर दो, (और) चौथा (भिक्षु) अनुश्रावण[2] करता है, शलाका ग्रहण कराता है—'यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शासन (=उपदेश) है, इसे ग्रहण करो, इसका व्याख्यान करो।' इस प्रकार उपालि ! संघ-राजी होती है, किन्तु संघभेद नहीं होता। (२) एक ओर दो (भिक्षु) होते हैं, एक ओर दो, (और) पाँचवाँ (भिक्षु) अनुश्रावण करता है, शलाका ग्रहण कराता है—'यह धर्म है० इस प्रकार व्याख्यान करो'—इस प्रकार भी उपालि ! संघ-राजी होती है, किन्तु संघभेद नहीं होता। (३) एक ओर उपालि ! दो होते हैं, एक ओर तीन और छटाँ अनुश्रावण करता है, शलाका ग्रहण कराता है—'यह धर्म है० इस प्रकार व्याख्यान करो'—इस प्रकार भी उपालि ! संघ-राजी होती है, किन्तु संघभेद नहीं होता। (४) एक ओर उपालि ! तीन होते हैं, एक ओर तीन, और सातवाँ अनुश्रावण करता है, ०—०—इस प्रकार भी उपालि ! संघ-राजी होती है, किन्तु संघ-भेद नहीं होता। (५) एक ओर उपालि ! तीन होते हैं, एक ओर चार, और आठवाँ अनुश्रावण करता है, ०—०—इस प्रकार भी उपालि ! संघ-राजी होती है, किन्तु संघ-भेद नहीं होता। (६) एक ओर उपालि चार होते हैं, एक ओर चार और नवाँ अनुश्रावण करता है, ०—०—इस प्रकार उपालि ! संघ-राजी भी होती है संघ-भेद भी। उपालि ! नव (भिक्षुओंके होने)से या नवसे अधिक होनेसे संघ-राजी भी होती है, संघ-भेद भी। उपालि ! न भिक्षुणी, संघमें भेद (=फूट) करती, हाँ भेदके लिये प्रयत्न कर सकती है। उपालि ! न शिक्षमाणा, संघमें भेद करती, हाँ भेदके लिये प्रयत्न कर सकती है। ०न श्रामणेर०। ०न श्रामणेरी०। ०न उपासक०। ०न उपासिका०। उपालि ! अपराध-रहित (=प्रकृतस्थ) एक आवासवाले एक सीमामें स्थित भिक्षु संघ भेद करते हैं।" ५

(२) सङ्घ-भेदकी व्याख्या

"भन्ते ! संघ-भेद संघ-भेद कहा जाता है; कैसे कितनेसे भन्ते ! संघ भिन्न (=फूटा हुआ) होता है ?"

"उपालि ! जब भिक्षु (१) अधर्म (=बुद्धका जो उपदेश नहीं)को धर्म कहते हैं, (२) धर्मको अ-धर्म कहते हैं। (३) अ-विनयको विनय कहते हैं, और (४) विनयको अ-विनय कहते हैं। (५) तथागतके अ-भाषित अ-लपितको तथागतका भाषित लपित कहते हैं; (६) तथागतके भाषित, लपितको तथागतका अ-भाषित अ-लपित कहते हैं। (७) तथागतके अन्-आचीर्ण (=आचरण न किये कामों)को ० आचीर्ण कहते हैं, (८) ० आचीर्णको ० अन्-आचीर्ण कहते हैं। (९) ० न विधान किये (=अ-प्रज्ञप्त)को ० प्रज्ञप्त ०, (१०) ० प्रज्ञप्तको ० अ-प्रज्ञप्त कहते हैं। (११) अन्-आपत्ति (=जो अपराध नहीं)को आपत्ति ० (१२) आपत्तिको अन्-आपत्ति कहते हैं। (१३) लघुक-आपत्ति (=छोटे गिने जानेवाले अपराध)को गुरुक (=बड़ी) आपत्ति कहते हैं, (१४) गुरुक-आपत्तिको लघुक-आपत्ति कहते हैं। (१५) सावशेष (=जिसके अतिरिक्त भी आपत्तियाँ बची हैं)-आपत्तियोंको निरवशेष-आपत्तियाँ कहते हैं, (१६) निरवशेष-आपत्तियोंको सावशेष-आपत्तियाँ कहते हैं। (१७)

---

[1] कोरम्से कममें फूट होनेपर संघ-राजी और कोरम् पूरा होनेपर (उसे संघ और तबकी) फूटको संघ-भेद कहते हैं।

[2] संघकी सम्मति लेकर प्रस्ताव जिन शब्दोंमें रखा जाता है उसे अनुश्रावण कहते हैं।

दुट्ठुल्ल (=दुःस्थौल्य)-आपत्तियोंको अ-दुट्ठुल्ल आपत्ति कहते हैं, (१८) अ-दुट्ठुल्ल आपत्तियोंको दुट्ठुल्ल आपत्ति कहते हैं। वह इन अठारह बातोंसे अपकासन (=अननुज्ञात)को विपकासन (=अनुज्ञात) करते हैं, आवेणि (=स्थानीय संघकी परम्परासे आया)-उपोसथ करते हैं, आवेणिप्रवारणा करते हैं, आवेणि-संघ कर्म करते हैं।—इतनेसे उपालि ! संघ भिन्न (=फूट गया) होता है।" 6

(३) सङ्घ-सामग्रीकी व्याख्या

"भन्ते ! संघ-सामग्री (=संघमें एकता) संघ-सामग्री कही जाती है, कितनेसे भन्ते ! संघ समग्र (=एकताको प्राप्त) कहा जाता है ?"

"उपालि ! जब भिक्षु (१) अधर्मको अधर्म कहते हैं; (२) धर्मको धर्म कहते हैं। (३) अविनयको अविनय०; (४) विनयको विनय०। (५) तथागतके अ-भाषित=अ-लपितको तथागतका अ-भाषित अ-लपित०; (६) ०भाषित=लपितको ० भाषित=लपित०। (७) ० अन्-आचीर्णको अन्-आचीर्ण०; (८) ०आचीर्णको ०आचीर्ण०। (९) ०अ-प्रज्ञप्तको ०अ-प्रज्ञप्त ०; (१०) ०प्रज्ञप्तको ०प्रज्ञप्त ०। (११) अन्-आपत्तिको अन्-आपत्ति; (१२) आपत्तिको आपत्ति०। (१३) लघुक-आपत्तिको लघुक-आपत्ति; (१४) गुरुक-आपत्तिको गुरुक-आपत्ति०। (१५) स-अवशेष आपत्तिको सावशेष-आपत्ति०; (१६) अन्-अवशेष-आपत्तिको अन्-अवशेष-आपत्ति०। (१७) दुट्ठुल्ल-आपत्तिको दुट्ठुल्ल-आपत्ति०; (१८) अ-दुट्ठुल्ल-आपत्तिको अ-दुट्ठुल्ल-आपत्ति कहते हैं। वह इन अठारह बातोंसे न अपकासन करते हैं, न विपकासन करते हैं, न आवेणि-उपोसथ करते हैं, न आवेणि प्रवारणा करते हैं, न आवेणि-संघ-कर्म करते हैं।—इतनेसे उपालि ! संघ समग्र होता है।" 7

§४—नरकगामी, अचिकित्स्य व्यक्ति

(१) सङ्घमें फूट डालनेका पाप

"भन्ते ! समग्र संघको भिन्न (=फूटा) करके वह क्या कमाता है ?"

"उपालि ! समग्र संघको भिन्न करके कल्पभर रहनेवाला पाप कमाता है, कल्पभर नरकमें रहता है। 8

"संघ-भेदक (पुरुष) कल्प भर अपाय=नरकमें रहनेवाला होता है।
वर्ग (पार्टीबाजी)में रत, अ-धर्ममें स्थित (अपने) योग-क्षेमका नाश करता है।
समग्र संघको भिन्न करके कल्प भर नरकमें रहता है" ॥(१६)॥

"भन्ते ! भिन्न संघको समग्र करके वह क्या कमाता है ?"

"उपालि ! भिन्न संघको समग्र करके वह ब्राह्म (=उत्तम) पुण्यको कमाता है, कल्पभर स्वर्गमें आनन्द करता है। 9—

"संघकी समग्रता (=एकता) सुखमय है, और समग्रोंका अनुग्रह (भी)।
समग्रतामें रत, धर्ममें स्थित (पुरुष अपने) योग-क्षेमका नाश नहीं कराता।
संघसे समग्र करके कल्प भर (वह) स्वर्गमें आनंद करता है" ॥(१७)॥

(२) कैसा संघमें फूट डालनेवाला नरकगामी और अचिकित्स्य होता है, और कैसा नहीं

"क्या भन्ते ! संघ-भेदक (=संघमें फूट डालनेवाला), (जोकि) कल्पभर अपाय=नरकमें रहनेवाला है, अचिकित्स्य (=जिसका इलाज नहीं हो सकता, जो सुधर नहीं सकता) है ?"

"है, उपालि ! संघ-भेदक ० अ-चिकित्स्य।"

"क्या भन्ते ! संघ भेदक (ऐसा भी) हो सकता है। (जो कि) नहीं कल्प भर अपाय=नरकमें रहनेवाला, न अ-चिकित्स्य है ?"

"हो सकता है, उपालि ! (जो कि) नहीं कल्प भर ०।"

"भन्ते ! कौनसा संघभेदक कल्प भर अपाय=नरकमें रहनेवाला, अचिकित्स्य होता है ?"

१—क. "उपालि ! जो भिक्षु (१) अ-धर्मको धर्म कहता है। उस अधर्म दृष्टि (=धारणा)की फूट (=भेद)में अधर्म-दृष्टिवाला हो, (वैसी) क्षान्ति=रुचि=भाव रखकर अनुश्रावण करता है, शलाका ग्रहण कराता है—यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका उपदेश है, इसे ग्रहण करो, इसका व्याख्यान करो। उपालि ! यह (कहनेवाला) संघभेदक कल्प भर अपाय=नरकमें रहनेवाला, अ-चिकित्स्य (=लाइलाज) है। (२) और फिर उपालि ! एक भिक्षु अधर्मको धर्म कहता है। उस अधर्म दृष्टिके भेदमें धर्म दृष्टिवाला हो, (वैसी)०। (३)० उस अधर्म दृष्टि-भेदमें संदेह युक्त हो, (वैसी)०।

ख. "(४) और फिर उपालि ! जो भिक्षु अधर्मको धर्म कहता है, उस अधर्म दृष्टिमें धर्म-दृष्टि-भेदको धारणकर दृष्टिको धारणकर, क्षान्ति=रुचि=भावको रखकर अनुश्रावण करता है, शलाका ग्रहण करता है—यह धर्म है०। (५) ०धर्म-दृष्टि-भेदमें धर्म-दृष्टि रखकर०। (६) ०उस धर्म दृष्टि-भेदमें सन्देह युक्त होकर०।

ग. "(७) ०उस संदेहवाले भेद में अधर्म दृष्टिवाला होकर०। (८) ०उस संदेहवाले भेद में धर्म दृष्टिवाला होकर०। (९) ०उस संदेहवाले भेदमें संदेह-युक्त हो०।[1]

२—क. "उपालि ! जो भिक्षु (१) धर्मको अधर्म कहता है, उस अधर्म-दृष्टिके भेद में अधर्म दृष्टिवाला हो (वैसी) क्षान्ति=रुचि=भाव रखकर अनुश्रावण करता है, शलाका ग्रहण कराता है—०[1]। (९) ०उस अधर्म-दृष्टिके भेदमें संदेह-युक्त हो०।

३—क. "०(१) अविनयको विनय कहता है, उस अविनय-दृष्टिके भेदमें अविनय दृष्टिवाला हो (वैसी)०[1]।

४—क. "०(१) विनयको अविनय कहता है०[2]।

५—क. "०(१) तथागतके अ-भाषित=अ-लपितको तथागतका भाषित=लपित कहता है, ०[3]।

६—क. "०(१) ०भाषित=लपितको ०अभाषित=अलपित कहता है, ०[3]।

७—क. "०(१) ०अन्-आचीर्णको ०आचीर्ण कहता है, ०[3]।

८—क. "०(१) ०आचीर्णको ०अन्-आचीर्ण कहता है, ०[3]।

९—क. "०(१) ०अ-प्रज्ञप्तको ०प्रज्ञप्त कहता है, ०[3]।

१०—क. "०(१) ०प्रज्ञप्तको ०अ-प्रज्ञप्त कहता है, ०[3]।

११—क. "०(१) अन्-आपत्तिको आपत्ति कहता है, ०[3]।

१२—क. "०(१) आपत्तिको अन्-आपत्ति कहता है, ०[3]।

१३—क. "०(१) लघुक-आपत्तिको गुरुक-आपत्ति कहता है, ०[3]।

१४—क. "०(१) गुरुक-आपत्तिको लघुक-आपत्ति कहता है, ०[3]।

१५—क. "०(१) स-अवशेष आपत्तियोंको निर्-अवशेष आपत्तियाँ कहता है, ०[3]।

१६—क. "०(१) निर्-अवशेष आपत्तियोंको स-अवशेष आपत्तियाँ कहता है, ०[3]।

१७—क. "०(१) दुट्ठुल्ल आपत्तियोंको, अ-दुट्ठुल्ल आपत्तियाँ कहता है, ०[3]।

[1]देखो ऊपर अठारह। [2]ऊपरकी नव कोटियोंको दुहराओ।
[3]पृष्ठ ४९३-९४ के २-१७ तकको भी ऐसेही दुहराना चाहिये।

१८—क. "और फिर उपालि जो भिक्षु (१) अदुट्ठुल्ल आपत्तियाँको दुट्ठुल्ल कहता है। उस अधर्म-दृष्टिके भेदमें अधर्म दृष्टि रख, दृष्टि, क्षान्ति=रुचि=भावको रख अनुश्रावण करता है, शलाका ग्रहण कराता है—'यह धर्म है ० इसका व्याख्यान करो।' उपालि! यह भी संघ-भेदक ० लाइलाज है।०[1]। (९) ० उस सन्देहवाले भेदमें संदेह युक्त हो०।" 10

"भन्ते! कौन सा संघ भेदक न अपायमें=न नर्कमें जानेवाला, न (उसमें) कल्प भर रहनेवाला, न अ-चिकित्स्य होता है?"

१—"उपालि! जोभिक्षु धर्मको धर्म कहता है। उस धर्म-दृष्टि-भेद (=धर्मके सिद्धान्तके मतभेद)में धर्म-दृष्टि हो, दृष्टि क्षान्ति=रुचि=भावको न पकळ, अनुश्रावण करता है, शलाका ग्रहण कराता है—'यह धर्म है० इसका व्याख्यान करो।' उपालि! यह संघ-भेदक न अपायमें न नरकमें जानेवाला, न (उसमें) कल्प भर रहनेवाला, न अ-चिकित्स्य होता है।०[1]।

१८—"उपालि! जो भिक्षु अदुट्ठुल्ल-आपत्तिको अ-दुट्ठुल्ल आपत्ति कहता है। उस धर्म-दृष्टिभेदमें धर्म-दृष्टि हो, दृष्टि=क्षान्ति=रुचि=भावको न पकळ, अनुश्रावण करता है, शलाका ग्रहण कराता है—'यह धर्म है ० इसका व्याख्यान करो।' उपालि! यह संघ-भेदक न अपायमें=न नरकमें जानेवाला, न (उसमें) कल्प भर रहनेवाला, न अ-चिकित्स्य होता है।" 11

संघभेदकक्खन्धक समाप्त ॥७॥

---

[1] पृष्ठ ४९३-९४के २-१७ तकको भी ऐसे ही दुहराना चाहिये।

८—व्रत-स्कन्धक

१—नवागन्तुक, आवासिक और गमिकके कर्त्तव्य। २—भोजन-संबंधी नियम। ३—भिक्षाचारी और आरण्यकके कर्त्तव्य। ४—आसन, स्नानगृह और पाखानेके नियम। ५—शिष्य-उपाध्याय, अन्तेवासी-आचार्यके कर्त्तव्य।

§१—नवागन्तुक, आवासिक और गमिकके कर्त्तव्य

१—श्रावस्ती

उस समय बुद्ध भगवान् श्रा व स्ती में अ ना थ पि डि क के आराम जे त व न में विहार करते थे।

(१) नवागन्तुकके व्रत

उस समय नवागन्तुक भिक्षु जूता पहिने भी आराममें घुसते थे, छत्ता लगाये भी०, शरीर ढँके (=अवगुंठित) भी०, शिरपर चीवर रक्खे भी०। पीनेके (पानी)से भी पैर धोते थे, (अपनेसे) वृद्ध भिक्षुको भी अभिवादन न करते थे, न (उनसे) शय्या-आसनके लिये पूछते थे। एक नवागन्तुक भिक्षु सूने विहार (=कोठरी)में घटिका (=सांकल) उघाळ, किवाळ खोल एक दम भीतर घुस गया। उसके ऊपर बैठा साँप (उसके) कंधेपर गिरा। वह डरके मारे चिल्ला उठा। भिक्षुओंने दौळकर उससे पूछा—

"आवुस! क्यों तू चिल्लाया?"

तब उस भिक्षुने उन भिक्षुओंसे वह बात कह दी।

जो अल्पेच्छ० भिक्षु थे, वह हैरान० होते थे—'कैसे नवागंतुक भिक्षु जूता पहिने आराममें घुस जाते हैं! ० शय्या-आसनके लिये नहीं पूछते!!'

उन्होंने यह बात भगवान्‌से कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्!"

० फटकारकर, भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"तो भिक्षुओ! नवागन्तुकोंके व्रत (=कर्तव्य)का विधान करता हूँ, जैसे कि नवागन्तुक भिक्षुओंको वर्तना चाहिये—

"भिक्षुओ! नवागन्तुक भिक्षुको आराममें प्रवेश करते वक्त जूतेको निकाल, नीचे करके फटफटाकर (हाथमें) ले; छत्तेको उतार, सिरको खोल, सिरके चीवरको कंधेपर कर ठीक तरहसे बिना जल्दी किये आराममें प्रवेश करना चाहिये।

"आराममें प्रवेश करते वक्त देखना चाहिये कि कहाँ आवासिक भिक्षु प्रतिक्रमण (=आना-

जाना) कर रहे हैं। उपस्थान-शाला, मंडप या वृक्ष-छाया जहाँ आवासिक भिक्षु प्रतिक्रमण कर रहे हों, वहाँ जाकर एक ओर पात्र रखकर, एक ओर चीवर रखकर योग्य आसन ले बैठना चाहिये। पीनेके (पानी) और इस्तेमालके (पानी)को पूछना चाहिये—कौन पीनेका (पानी) है, कौन इस्तेमालका है? यदि पीनेके (पानी)का प्रयोजन हो तो पानीय लेकर पीना चाहिये। यदि इस्तेमालके (पानी)का प्रयोजन हो तो. . .उसे लेकर पैर धोना चाहिये। पैर धोते वक्त एक हाथसे पानी डालना चाहिये, दूसरे हाथसे पैर धोना चाहिये। उसी हाथसे पानी डालना और उसी हाथसे पैर धोना न करना चाहिये। जूता पोंछनेके कपळेको माँगकर जूता पोंछना चाहिये। जूता पोंछते वक्त पहिले सूखे कपळेसे पोंछना चाहिये, पीछे गीलेसे। जूता पोंछनेके कपळेको धोकर एक ओर रख देना चाहिये। यदि आवासिक भिक्षु (अपनेसे भिक्षु होनेमें) वृद्ध हो, तो अभिवादन करना चाहिये। यदि नवक (=अपनेसे कम समयका भिक्षु) हो तो अभिवादन करवाना चाहिये। (अपने लिये) शयन-आसन (कहाँ है) पूछना चाहिये। गोचर (=भिक्षाके ग्राम) पूछना चाहिये, अ-गोचर०, शै क्ष स म्म त[1] कुलोंको०, पाखानेका स्थान (=बच्चट्ठान)०, पेसाबका स्थान (=पस्सावट्ठान)०, पीनेका (पानी)०, धोनेका पानी (=परिभोजनीय)०, कत्तरदंड (=वैशाखी)०, संघके कतिक संस्थान (=स्थानीय नियमकी बातें)०, (कतिक-संस्थानमें) किस समय प्रवेश करना चाहिये, किस समय निकलना चाहिये (—पूछना चाहिये)। यदि विहार (बहुत समयसे)खाली रहा हो, तो किवाळको खटखटाकर थोळी देर ठहरना, घटिका (=घरन्)को उघाळ, किवाळको खोल बाहर खळे ही खळे देखना चाहिये। यदि विहार साफ न हो, चारपाईपर चाँदी रक्खी हो, चौकीपर चौकी रक्खी हो; ऊपर शयनासन (=शय्या, आसन) जमा कर दिया गया हो; तो यदि कर सकता हो, तो साफ करना चाहिये।

"विहार साफ करते वक्त पहिले भूमिके फर्शको हटाकर एक ओर रखना चाहिये। (चारपाईके पाये)के ओरको हटाकर एक ओर रखना चाहिये। तकिये-गद्दे को०। आसन, बिछौनेकी चद्दरको०। चारपाईको नवाकर बिना रगळे ठीकसे बिना किवाळसे टकराये ठीकसे निकालकर एक ओर रखना चाहिये। चौकी (=पीठ)को नवाकर बिना रगळे, बिना किवाळसे टकराये, ठीकसे निकालकर एक ओर रखना चाहिये। ०[2] सिरहानेके पटरे (=ओठँगनेके पटरे)को धूपमें तपा, साफकर ले आकर उसके स्थानपर रखना चाहये। पात्र-चीवरको रखना चाहिये। पात्रको रखते वक्त एक हाथमें पात्र ले, दूसरे हाथसे नीचे चारपाई या चौकीको टटोलकर पात्र रखना चाहिये। बिना ढँकी भूमिपर पात्र नहीं रखना चाहिये। चीवरको रखते वक्त एक हाथमें चीवर ले, दूसरे हाथसे चीवर (टाँगने)के बाँस, चीवर (टाँगने)की रस्सीको झाळकर पहली ओर पिछले छोर और उरली ओर शिरको करके चीवर रखना चाहिये।

"यदि धूलि लिये पुरवा हवा चल रही हो,०[2] यदि पाखानेकी मटकीमें पानी न हो, तो पानी भर कर रखना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह नवागन्तुक भिक्षुओंका व्र त है, जैसे कि आगन्तुक भिक्षुओंको वर्तना चाहिये।" I

(२) आवासिकके व्रत

उस समय आवासिक भिक्षु आगन्तुक भिक्षुओंको देख नहीं आसन देते थे, न पैर धोनेका जल (=पादोदक), न पादपीठ, न पादकठलिक (=पैर घिसनेकी लकळी) रखते थे। न अगवानी करके

---

[1]परम श्रद्धालू किन्तु अत्यन्त दरिद्र कुल, जिनके कष्टको ख्यालकर भिक्षुको उनके घर भिक्षा माँगनेके लिये नहीं जाना चाहिये।

[2]देखो महावग्ग १§२।१ (पृष्ठ १०२)।

पात्र-चीवर ग्रहण करते थे। न पीनेके (पानी) के लिये पूछते थे। (अपनेसे) वृद्ध आगन्तुक भिक्षुका अभिवादन नहीं करते थे। न शय्या-आसन प्रज्ञापन (=बिछाना) करते थे। जो अल्पेच्छ ० भिक्षु थे, वह हैरान ० होते थे—० । ०—

"तो भिक्षुओ ! आवासिकोंके व्रतका विधान करता हूँ, जैसे कि आवासिक भिक्षुओंको वर्तना चाहिये—

"भिक्षुओ ! यदि आगन्तुक भिक्षु अपनेसे वृद्ध हो, तो आसन प्रदान करना चाहिये, पादोदक, पाद-पीठ, पाद-कठलिक पास रखना चाहिये। अगवानी करके पात्र-चीवर ग्रहण करना चाहिये। पीनेके (पानी) के लिये पूछना चाहिये। यदि सकता हो (बीमार आदि न हो) तो जूता पोंछना चाहिये। जूता पोंछते वक्त पहिले सूखे कपळेसे पोंछना चाहिये, पीछे गीलेसे। जूता पोंछनेके कपळेको धोकर एक ओर रख देना चाहिये। यदि आगन्तुक भिक्षु वृद्ध हो, तो अभिवादन करना चाहिये। शयन-आसन बतलाना चाहिये। गोचर०, अ-गोचर०, शैक्ष-सम्मत कुलोंको०, ०[1] संघका कतिक-संस्थान (=स्थानीय नियमकी बातें) बतलानी चाहिये—किस समय प्रवेश करना चाहिये, किस समय जाना चाहिये। शयन-आसन बतलाना चाहिये—यह आपके लिये शयन-आसन है। (अधिक समयसे) वास किया है या वास नहीं किया है—यह बतलाना चाहिये। यदि आगन्तुक (भिक्षु) नवक (=नवही) है, तो अभिवादन करने देना चाहिये, शयन-आसन बतलाना चाहिये—यह आपके लिये शयन-आसन है। ०[1] किस समय जाना चाहिये।

"भिक्षुओ ! यह आवासिक भिक्षुओंके व्रत हैं, ०।" 2

(३) गमिक[2] के व्रत

उस समय गमिक भिक्षु लकळी-मिट्टीके वर्तनोंको विना सँभाले, खिळकी, दर्वाज़ेको खोले ही छोळ शयन-आसनके लिये पूछे (=सँभलवाये) विना चले जाते थे। लकळी-मिट्टीका वर्तन नष्ट हो जाता था। शयन-आसन अ-रक्षित होता था। जो वह अल्पेच्छ० भिक्षु थे, वह हैरान० होते थे—० ।०।—

"तो भिक्षुओ ! गमिक[2] भिक्षुओंके व्रतको बतलाता हूँ, जैसे कि गमिक भिक्षुओंको वर्तना चाहिये। भिक्षुओ ! गमिक भिक्षुको लकळी-मिट्टीके वर्तनको सँभालकर, खिळकी दर्वाज़ोंको बन्दकर शयन-आसनके लिये पूछकर जाना चाहिये। यदि भिक्षु न हो तो श्रामणेरसे पूछना चाहिये, यदि श्रामणेर न हो तो आरामिक (=आरामके सेवक)को पूछना चाहिये। यदि भिक्षु हो, न श्रामणेर हो, न आरामिक हो; तो चार पत्थरोंपर चारपाईको बिछाकर, चारपाईपर, चारपाई, चौकीपर चौकी रखकर ऊपर शयन-आसनको जमा करे। लकळी-मिट्टीके वर्तनोंको सँभालकर, खिळकी-दर्वाज़ोंको बन्द करके जाना चाहिये। यदि विहार चूता है, तो समर्थ होनेपर छा देना चाहिये, या (उसके लिये) यत्न करना चाहिये—जिसमें विहार छा जाये। यदि ऐसा हो सके तो ठीक, यदि न हो सके, तो जिस स्थानपर न चूता हो वहाँ चार पत्थरोंपर चारपाईको बिछाकर,० खिळकी-दर्वाज़ोंको बन्द करके जाना चाहिये। यदि सारा ही विहार चूता हो, तो यदि समर्थ हो, तो शयन-आसनको गाँवमें ले जाना चाहिये, या प्रयत्न करना चाहिये, जिसमें कि शयन-आसन गाँवमें चला जाये। यदि ऐसा करनेको मिले तो ठीक, न मिले, तो चार पत्थरों पर चारपाईको बिछाकर०[3] लकळी-मिट्टीके वर्तनोंको सँभाल, घास या पत्तेसे ढाँककर जाना चाहिये, जिसमें कि कुछ भाग तो बच जाये। भिक्षुओ ! यह गमिक भिक्षुओंका व्रत है; ०।"

[1] देखो पृष्ठ ४९८।
[3] देखो ऊपर।
[2] यात्रापर जानेवाला।

§२–भोजन-सम्बन्धी नियम

(१) भोजनका अनुमोदन

उस समय भिक्षु भोजके समय (दानका) अनुमोदन न करते थे। लोग हैरान० होते थे—कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण भोजनके समय अनुमोदन नहीं करते।' भिक्षुओंने० सुना। उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही। भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक-कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भोजनके समय अनुमोदन करनेकी।"

तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—किसे भोजनके समय अनुमोदन करना चाहिये। भगवान्से यह बात कही।०—

(२) भोजनके समयके नियम

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, स्थविर (=वृद्ध) भिक्षुको अनुमोदन करनेकी।"

उस समय एक पूग (=बनियोंका समुदाय)ने संघको भोज दिया था। आयुष्मान् सारिपुत्र संघ-स्थविर (=संघमें सबसे पुराने भिक्षु) थे। भिक्षु—स्थविर भिक्षुको भगवान्ने भोजनके समय अनुमोदन करनेकी अनुमति दी है—(सोच) आयुष्मान् सारिपुत्रको अकेले छोळ चले गये। तब आयुष्मान् सारिपुत्र उन मनुष्योंसे (दानका) अनुमोदनकर पीछे अकेले ही चले। भगवान्ने आयुष्मान् सारिपुत्रको दूरसे ही आते देखा। देखकर आयुष्मान् सारिपुत्रसे यह कहा—

"सारिपुत्र! भोजन ठीक तो हुआ?"

"भोजन ठीक हुआ, भन्ते! मुझे भन्ते! अकेले छोळ भिक्षु चले आये।"

तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भोजनकी पाँतमें चार पाँच (उपसंपदाके क्रमसे) स्थविरों अनु-स्थविरोंको (अनुमोदन कर लेने तक) प्रतीक्षा करनेकी।"

उस समय एक स्थविरने शौचकी इच्छा रहते प्रतीक्षा की। शौचको वह रोकते मूर्छित हो गिर पळा। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, काम होनेपर अपने बादवाले भिक्षुको पूछकर जानेकी।"

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु बिना ठीकसे पहिने-ढँके भोजनकी पाँतमें जाते थे। स्थविर भिक्षुओंको भी धक्का देकर बैठते थे, नवक भिक्षुओंको भी आसनसे रोकते थे। संघाटीको भी बिछाकर बैठते थे।० ०अल्पेच्छ० भिक्षु०।०।—

"तो भिक्षुओ! भोजनकी पाँतके लिये भिक्षुओंके व्रतका विधान करता हूँ—जैसे कि भिक्षुओंको भोजनकी पाँतमें वर्तना चाहिये।

"यदि आराममें कालकी सूचना आई हो, तो तीनों मंडलोंको ढाँकते[1] परिमंडल[2] (चीवर) पहिन कमरबन्द (=काय-बन्धन)को बाँध, चौपेत (=सगुण)कर संघाटीको पहिन, मुद्धी दे, धोकर पात्र ले ठीकसे—बिना जल्दीके गाँवमें प्रवेश करना चाहिये। आगे बढ़कर स्थविर भिक्षुओंके आगे आगे नहीं जाना चाहिये।

"(गृहस्थोंके)[1] घरके भीतर सुप्रतिच्छन्न (=अच्छी तरह ढँके शरीरवाला) होकर जाना

---

[1] भिक्खु पातिमोक्ख §७।२ (पृष्ठ ३३)।
[2] देखो भिक्खु-पातिमोक्ख §७।३ (पृष्ठ ३४)।

चाहिये; खूब संयम (=सुसंवर)के साथ०, नीची निगाह करके०, शरीरको उतान नहीं करके घरके भीतर जाना चाहिये, उज्जग्घिका (=हँसी, मज़ाक)के साथ नहीं०, चुपचाप घरमें जाना चाहिये, देह भांजते नहीं०; बाँह भाँजते नहीं, शिर हिलाते नहीं०, खम्भेकी तरह खळे नहीं०, (देहको) अवगुंठित (किये) नहीं०, निहुरे नहीं, (गृहस्थके) घरके भीतर जाना चाहिये। सुप्रतिच्छन्न हो घरके भीतर बैठना चाहिये, खूब संयमके साथ०, नीची निगाह करके, ०, अवगुण्ठित नहीं०; पलथी मारकर नहीं०, स्थविर भिक्षुओंको धक्का देकर नहीं०, नये भिक्षुओंको आसनसे हटाकर नहीं बैठना चाहिये, संघाटी बिछाकर नहीं बैठना चाहिये, पानी लेते वक़्त दोनों हाथसे पात्र पकळ पानीको लेना चाहिये। नवाकर अच्छी तरह बिना घँसे पात्रको धोना चाहिये। यदि पानी फेंकनेका वर्तन (=उदक-प्रतिग्राहक) हो, तो नवाकर (धोये पानी)को उदक-प्रतिग्राहकमें डाल देना चाहिये, उदक-प्रतिग्राहकको नहीं भिगोना चाहिये। यदि उदक-प्रतिग्राहक नहीं हो तो नीचे करके भूमिपर पानी डालना चाहिये; जिसमें कि पासके भिक्षुओंपर पानीका छींटा न पळे, संघाटीपर पानीका छींटा न पळे। भात परोसते वक़्त दोनों हाथोंसे पात्रको पकळकर भातको लेना चाहिये, सूप (=तेमन)के लिये जगह बनानी चाहिये। यदि घी, तेल या उत्तरिभंग (=पीछेका स्वादिष्ट भोजन) हो तो स्थविरको कहना चाहिये—सबको बराबर दीजिये। सत्कारपूर्वक भिक्षान्नको ग्रहण करना चाहिये, पात्रकी ओर ख़्याल रखते भिक्षान्नको ग्रहण करना चाहिये। मात्राके अनुसार सूपके साथ भिक्षान्नको०। समतल (रक्खे) भिक्षान्नको०। जब तक सबको भात नहीं पहुँच जाये, स्थविरको नही खाना चाहिये। सत्कारके साथ भिक्षान्नको खाना चाहिये, पात्रकी ओर ख़्याल रखते०। एक ओरसे०। मात्राके अनुसार सूपके साथ०।

"पिंड[1] (=स्तूप=पुरिया)को मीज मीजकर नहीं खाना चाहिये।
अधिककी इच्छासे दाल या भाजी (=व्यंजन)को भातसे नहीं ढाँकना चाहिये।
नीरोग होते अपने लिये दाल या भातको माँगकर नहीं भोजन करना चाहिये।
न अवज्ञा (=उज्झान)के ख़्यालसे दूसरेके पात्रको देखना चाहिये।
न बहुत बळा ग्रास बनाना चाहिये।
ग्रासको गोल बनाना चाहिये।
ग्रासको बिना मुख तक लाये मुखके द्वारको नहीं खोलना चाहिये।
भोजन करते समय सारे हाथको मुँहमें नही डालना चाहिये।
ग्रास पळे मुखसे बात नहीं करनी चाहिये।
ग्रासको उछाल उछालकर नहीं खाना चाहिये।
ग्रासको काट काटकर नहीं खाना चाहिये।
गाल फुला फुलाकर नहीं खाना चाहिये।
हाथ झाळ झाळकर नहीं खाना चाहिये।
जूठ बिखेर बिखेरकर नहीं खाना चाहिये।
जीभ निकाल निकालकर नहीं खाना चाहिये।
चप चपकर नहीं खाना चाहिये।
सुर सुराकर नहीं खाना चाहिये।
हाथ चाट चाटकर नहीं खाना चाहिये।

[1] मिलाओ भिक्खु-पातिमोक्ख §७।३ (पृष्ठ ३४)।

पात्र चाट चाटकर नहीं खाना चाहिये।

ओठ चाट चाटकर नहीं खाना चाहिये।

जूठ लगे हाथसे पानीका बर्तन नहीं पकळना चाहिये।

जब तक सब न खा चुकें, (संघके) स्थविरको पानी नहीं लेना चाहिये।

पानी दिये जाते वक्त दोनों हाथोंसे पात्रको पकळकर पानी लेना चाहिये।

"नवा कर बिना घँसे पात्रको धोना चाहिये। यदि पानी फेंकनेका बर्तन हो, तो नवाकर उसे बर्तनमें डाल देना चाहिये। उदक प्रतिग्राहक (=पानी छोळनेके बर्तन)को नहीं भिगोना चाहिये। यदि उदक-प्रतिग्राहक न हो, तो नवाकर भूमिपर पानी डाल देना चाहिये; जिसमें कि पासके भिक्षुओंपर पानीका छींटा न पळे। संघाटीपर पानीका छींटा न पळे।

"जूठे सहित पात्रके धोवनको घरके भीतर नहीं फेंकना चाहिये।

लौटते वक्त नवक भिक्षुओंको पहिले लौटना चाहिये, स्थविर भिक्षुओंको पीछे।

सुप्रतिच्छन्न हो (गृहस्थके) घरमें जाना चाहिये।०[1]

निहुरे नहीं घरके भीतर जाना चाहिये।

"भिक्षुओ! भोजनकी पाँतके लिये भिक्षुओंका यह व्रत है, जैसे कि भिक्षुओंको भोजनके समय बर्तना चाहिये।"[1]

प्रथम भाणवार (समाप्त) ॥१॥

§३–भिक्षाचारी और आरण्यकके कर्त्तव्य

(१) भिक्षाचारी (=पिंडचारिक)के व्रत

उस समय पिंडचारिक[2] भिक्षु बिना ठीकसे पहिने—ढँके बुरी सूरतमें पिंडचार (=भिक्षाचार) करते थे। बिना जाने भी घरके भीतर प्रवेश करते थे। बिना जाने निकलते थे। बळी जल्दी जल्दी घरमें प्रवेश करते थे, बळी जल्दी (घरसे) निकलते थे। बहुत दूर भी खळे होते थे, बहुत समीप भी खड़े होते थे। बहुत देर तक (भिक्षाके लिये द्वारपर) खळे रहते थे, बहुत जल्दी भी लौट पळते थे। एक पिंडचारिक पुरुषने बिना जाने घरके भीतर प्रवेश किया। द्वार समझते हुए वह एक कमरे में चला गया। उस कमरेमें (कोई) स्त्री नंगी उतान लेटी हुई थी। उस भिक्षुने उस स्त्रीको नंगे उतान लेटे देखा। देखकर—यह द्वार नहीं है, कमरा है—(सोच) उस कमरेसे निकल आया। उस स्त्रीके पतिने उसे...नंगे उतान लेटी देखा। इस भिक्षुने मेरी स्त्रीको दूषित किया—(सोच) उसने उस भिक्षुको पकळकर पीटा। तब उस स्त्री ने (मारकी) आवाज़से जागकर उस पुरुषसे यह कहा—

"किसलिये आर्य! तुम इस भिक्षुको पीटते हो?"

"इस भिक्षुने तुझे दूषित किया है।"

"आर्य! इस भिक्षुने मुझे दूषित नहीं किया। इस भिक्षुने कुछ नहीं किया।"—(कह) उस भिक्षुको छुळवा दिया।

तब उस भिक्षुने आराममें जाकर यह बात भिक्षुओंसे कही।

०अल्पेच्छ० भिक्षु०।०।—

---

[1]देखो पिछले पृष्ठ (५००) पर।

[2]भिक्षाके लिये गाँवमें घूमनेवाला।

"तो भिक्षुओ ! पिंडचारिक भिक्षुओंके व्रतका विधान करता हूँ, जैसे कि पिंडचारिक भिक्षुओंको वर्तना चाहिये। भिक्षुओ ! पिंडचारिक भिक्षुको ग्राममें प्रवेश करते समय तीनों मंडलोंको ढाँकते परिमंडल (चीवर) पहिन, कमरबन्दको बाँध चौपेतकर संघाटीको पहिन मुद्धी दे, धोकर पात्र ले ठीक से—विना जल्दीके गाँवमें प्रवेश करना चाहिये०[1]।

"निहुरे नहीं घरके भीतर जाना चाहिये ।

"घरमें प्रवेश करते समय—इससे प्रवेश करूँगा, इससे निकलूँगा—यह सोच लेना चाहिये। बहुत जल्दीमें नहीं प्रवेश करना चाहिये ।

"बहुत जल्दीमें नहीं निकलना चाहिये।

न बहुत दूर खळा होना चाहिये।

न बहुत समीप खळा होना चाहिये ।

न बहुत देर तक खळा रहना चाहिये ।

न बहुत जल्द लौट जाना चाहिये ।

"खळे रहते समय जानना चाहिये, कि (घरवाली) भिक्षा देना चाहती है, या नहीं देना चाहती। यदि (हाथका) काम छोळ देती है, आसनसे उठती है, कलछी पकळती है, वर्तन पकळती या रखती है; तो देना चाहती-सी है (सोच) खळा रहना चाहिये।

"भिक्षा देते वक़्त वायें हाथसे संघाटी हटाकर, दाहिने हाथसे पात्रको निकाल, दोनों हाथोंसे पात्रको पकळ, भिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

"भिक्षा देनेवालीके मुँहकी ओर नहीं देखना चाहिये।

"ख्याल करना चाहिये, सूप (=दाल)को देना चाहती है या नहीं देना चाहती। यदि कलछी पकळती है, वर्तनको पकळती या रखती है, तो देना चाहती है, (सोच) खळा रहना चाहिये।

"भिक्षा दे दी जानेपर संघाटीसे पात्रको ढाँक, अच्छी तरह—विना जल्दीके लौटना चाहिये।

"सुप्रतिच्छन्न हो घरके भीतर जाना चाहिये।०३

निहुरे नहीं घरके भीतर जाना चाहिये।

"जो गाँवसे भिक्षा लेकर पहिले लौटे, उसे आसन विछाना चाहिये, पादोदक पाद-पीठ, पाद-कठलिका रखने चाहिये। कूळे (=अवक्कार)की थाली धोकर रखना चाहिये। पीनेके और धोनेके (पानी) को रखना चाहिये।

"जो गाँवसे भिक्षा लेकर पीछे लौटे, (वह) भोजन (मेंसे जो) वचा हो, यदि चाहे, तो खाये, यदि नहीं चाहे तो (ऐसे) स्थानमें, जहाँ हरियाली न हो छोळ दे, या प्राणीरहित पानीमें छोळ दे। (वह) आसनोंको समेटे। पीनेके पानीको समेटे। कूळेकी थाली धोकर समेटे। खानेकी जगहपर झाळू दे। पानीके घळे, पीनेके घळे, या पाखानेके घळेमें जिसे खाली देखे, उसे (भरकर) रख दे। यदि वह उससे होने लायक नहीं हो, तो हाथके इशारेसे, हाथके संकेतसे दूसरेको बुलाकर, पानीके घळेको (भरकर) रखवा दे। उसके लिये वाग्-युद्ध नहीं करना चाहिये।

"भिक्षुओ ! यह पिंडचारिक भिक्षुओंके व्रत हैं, ०।"4

(२) आरण्यकके व्रत

उस समय बहुतसे भिक्षु अरण्यमें विहार करते थे। वह न पीनेके या धोनेके (पानी)को उपस्थित रखते थे, न आगको उपस्थित रखते थे। न अरणी के साथ०। न नक्षत्रों (=तारों)के मार्गको जानते

[1]देखो पीछे ८§३।२ (पृष्ठ ५००)।

थे। न दिशाओंको जानते थे। चोरोंने जाकर उन भिक्षुओंसे यह कहा—

"भन्ते! पीनेका (पानी) है?"

"नहीं है, आवुसो!"

"भन्ते! धोनेका (पानी) है?"

"नहीं है, आवुसो!"

"भन्ते! आग है?"

"नहीं है, आवुसो!"

"भन्ते! अरणीका सामान है?"

"नहीं है, आवुसो!"

"भन्ते! नक्षत्रोंका मार्ग (मालूम) है?"

"नहीं जानते, आवुसो!"

"भन्ते! दिशा (मालूम) है?"

"नहीं जानते, आवुसो!"

भन्ते! आज किस (तारे)से युक्त (चन्द्रमा) है?"

"नहीं जानते, आवुसो!"

तब उन चोरोंने—न इनके पास पीनेका (पानी) है० न दिशाको जानते हैं—कह (सोच)—यह चोर हैं भिक्षु नहीं है—(कह) पीटकर चले गये।

तब उन भिक्षुओंने यह बात भिक्षुओंसे कही। उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही।०—

"तो भिक्षुओ! आरण्यक भिक्षुओंके व्रतका विधान करता हूँ, जैसे कि आरण्यक भिक्षुओंको वर्तना चाहिये।

"भिक्षुओ! आरण्यक भिक्षुको समयसे उठकर पात्रको थैलेमें रख कंधेपर लटका चीवरको कंधेपर रख जूता पहिन, लकळी-मिट्टीके बर्तन सँभाल, खिळकी-दर्वाज़ोंको बन्दकर, शयन-आसनसे उतरना चाहिये। अब गाँवमें प्रवेश करना है—(सोच) जूता उतार नीचेकर फटफटाकर थैलेमें रख कंधेसे लटका तीनों मंडलोंको ढाँकते परिमंडल (चीवर) पहिन कमरबन्दको बाँध चौपतकर संघाटीको पहिन मुद्धी दे, धोकर पात्र ले ठीकसे—विना जल्दीके गाँवमें प्रवेश करना चाहिये०[1]।

"निहुरे नहीं घरके भीतर जाना चाहिये।

"गाँवसे निकलकर पात्रको थैलेमें रख कंधेसे लटका, चीवरको समेट शिरपर कर, जूता पहिन चलना चाहिये।

"भिक्षुओ! आरण्यक भिक्षुको पीने धोनेके पानीको रखना चाहिये। आग रखनी चाहिये। (सामान-) सहित अरणी रखनी चाहिये। कत्तरदंड (=वैसाखी) रखना चाहिये। सभी या कुछ नक्षत्रोंके मार्ग सीखने चाहिये।०[2] दिशाओंका जाननेवाला होना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह आरण्यक भिक्षुओंके व्रत हैं, जैसे०।" 5

§४—आसन, स्नानगृह और पाखानेके नियम

(१) शयन-आसनके व्रत

उस समय बहुतसे भिक्षु खुली जगहमें चीवर (सीने)का काम कर रहे थे। षड्वर्गीय भिक्षुओं

---

[1]देखो पीछे ८§२।२ पृष्ठ ५००। [2]देखो ऊपर।

ने आँगनमें हवाके रुख शय्या-आसन फटफटाये। भिक्षु धूलसे भर गये। ०अल्पेच्छ० भिक्षु०।०।—

"तो भिक्षुओ! भिक्षुओंके लिये शयन-आसनका व्रत बतलाता हूँ, जैसेकि भिक्षुओंको शयन-आसनके संबंधमें वर्तना चाहिये।

"जिस विहारमें भिक्षु वास करता है, यदि वह विहार साफ़ न हो, और समर्थ हो तो साफ़ करना चाहिये। विहारकी सफ़ाई करते वक्त पहिले पात्र-चीवर निकालकर, एक ओर रखना चाहिये०[1] यदि पाखानेकी मटकीमें जल न हो०।

"यदि वृद्धके साथ एक विहारमें रहता हो, तो वृद्धसे बिना पूछे उद्देश नहीं (=प्रस्ताव) देना चाहिये, परिपृच्छा (=प्रश्न पूछना) नहीं देनी चाहिये, स्वाध्याय (=सूत्रोंका ऊँचे स्वर से पाठ) नहीं करना चाहिये, न धर्म-भाषण करना चाहिये, न दीपक जलाना चाहिये, न दीपक बुझाना चाहिये, न खिळकी खोलनी चाहिये, न खिळकी बन्द करनी चाहिये। यदि वृद्धके साथ एकही चंकम (=टहलनेके स्थान) पर टहलता हो, तो जिधर वृद्ध टहलता हो, उधरसे घूम जाना चाहिये। वृद्धकी संघाटीके कोनेको नहीं रगळना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह भिक्षुओंके शयन-आसनके व्रत हैं, जैसे०।" 6

(२) जन्ताघर[2]के व्रत

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु स्थविर भिक्षुओंके निवारण करनेपर भी अनादर करनेके लिये जन्ताघरमें बहुतसा काष्ठ रख आग डाल द्वार बन्दकर बाहर बैठते थे। भिक्षु गर्मीसे तप्त हो (निकलनेके लिये) द्वार न पा मूर्छित हो गिर पळते थे। ०अल्पेच्छ ०भिक्षु०।०।—

"भिक्षुओ! स्थविर भिक्षुओंके निवारण करनेपर भी अनादर करनेके लिये जन्ताघरमें बहुतसा काष्ट रखकर आग न डालनी चाहिये, जो डाले उसे दुक्कटका दोष हो।

"भिक्षुओ! द्वार बन्दकर बाहर न बैठना चाहिये, जो बैठे उसे दुक्कटका दोष हो।

"तो भिक्षुओ! भिक्षुओंको जन्ताघरका व्रत प्रज्ञापन करता हूँ, जैसे कि भिक्षुओंको जन्ताघरमें वर्तना चाहिये।

द्वार बंद कर जाना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह भिक्षुओंका जन्ताघर-व्रत है, जैसे कि०।" 7

(३) वच्चकुटी[1]का व्रत

उस समय ब्राह्मण जातिका एक ब्राह्मण शौच हो पानी नहीं लेना चाहता था (यह ख्याल कर कि) कौन इस वृपल (=नीच) दुर्गंधको छूयेगा। उसके शौच-मार्गमें कीळे रहते थे। तब उस भिक्षुने भिक्षुओंसे यह बात कही।

"क्या तू आवुस! शौच हो पानी नही लेता?"

"हाँ, आवुसो!"

०अल्पेच्छ० भिक्षु०।०।—

"भिक्षुओ! शौच हो, पानी रहते, बिना पानी छुये नहीं रहना चाहिये, जो पानी न छुये उसे दुक्कटका दोष हो।"

उस समय भिक्षु पाखानेमें वृद्धताके अनुसार शौच करते थे। नये (हुये) भिक्षु पहिले ही आकर शौचके लिये इन्तिजार करते थे। रोकनेमें मूर्छित हो गिर पळते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"सचमुच, भिक्षुओ! ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्!"

०फटकारकर भगवान्‌ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! पाखानेमें वृद्धपनके अनुसार शौच नहीं करना चाहिये, जो करे उसे दुक्कटका दोप हो। अनुमति देता हूँ भिक्षुओ! आनेके क्रमसे शौच होनेकी।"

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु बहुत शीघ्रतासे पाखानेमें जाते थे, पाखाना होते (=उब्भिज्जित्वा) भी०। गिरते पळते भी शौच होते थे। दातवन करते भी०। पाखाने के द्रोण (=गमला) के बाहर भी०। पेसाबके द्रोणक (=नाली)के बाहर भी पेशाब करते थे। पेसाबकी दोनीमें भी थूकते थे। कठोर काठसे अपलेखन (=पोंछना) करते थे। अपलेखके काष्ठको संडासमें डाल देते थे। बळी शीघ्रतासे (दौळते हुये) पाखानेसे निकलते थे। शौच होते ही निकलते थे। चपचप करते पानी छूते थे। पानी छूनेके शराव (=कुल्हिया) में भी पानी छोळ देते थे।० अल्पेच्छ० भिक्षु०।०।—

"तो भिक्षुओ! भिक्षुओंको वच्चकुटी (=पाखाने)का व्रत प्रज्ञापित करता हूँ, जैसे कि भिक्षुओं को वच्चकुटीमें वर्तना चाहिये।

"जो वच्चकुटी जाये, बाहर खळे हो उसे खाँसना चाहिये। भीतर बैठेको भी खाँसना चाहिये। चीवर (टाँगने)के बाँस या रस्सीपर चीवरको रख, अच्छी तरह—बिना त्वराके पाखानेमें जाना चाहिये। न बहुत जल्दीसे प्रवेश करना चाहिये, न शौच होते प्रवेश करना चाहिये। पाखानेके पायदान-पर बैठकर शौच करना चाहिये। हिलते हुये नहीं शौच करना चाहिये। दातवन करते नहीं०। पाखानेकी नालीके बाहर नहीं०। पेशाबकी नालीके बाहर नहीं पेसाव करना चाहिये।० पेसाबकी नालीमें थूक नहीं फेंकना चाहिये। कठोर काष्ठसे अपलेखन नहीं करना चाहिये। अपलेखनको संडासमें नहीं डालना चाहिये। पाखानेके पायदानपर खळे हो (अपने शरीरको) ढाँक लेना चाहिये। बहुत जल्दी में नहीं निकलना चाहिये। न कूद कर निकलना चाहिये। पानी छूनेके पायदानपर स्थित हो अविज्जन (=जल-सिंचन) करना चाहिये। चप-चप करते पानी नहीं छूना चाहिये।

---

[1] पाखाना।

पानी छूनेके शरावमें पानी नहीं छोळ डालना चाहिये। पानी छूनेके पायदानपर खळे हो ढाँक लेना चाहिये। यदि पाखाना गंदा हो गया हो तो धो देना चाहिये। यदि अपलेखन (काष्ठ फेंकने)की टोकरी पूरी हो गई हो, तो अपलेखन काष्ठको फेंक देना चाहिये। यदि वच्चकुटीमें उक्लाप हो, तो झाळू देना चाहिये। यदि परिभण्ड०। यदि परिवेण उक्लाप हो तो परिवेणको झाळू देना चाहिये। यदि कोष्ठक गंदा हो, तो० झाळू देना चाहिये। यदि पानी छूनेके घळे में पानी न हो, तो........(उसमें) पानी भर देना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह भिक्षुओंका वच्चकुटीका व्रत है, जैसे कि०।" 8

§५–शिष्य-उपाध्याय, अन्तेवासी-आचार्यके कर्तव्य

(१) शिष्य-व्रत[1]

उस समय शिष्य उपाध्यायके साथ ठीकसे वर्ताव न करते थे।

०अल्पेच्छ०।०।—

"तो भिक्षुओ! शिष्योंका उपाध्यायोंके प्रति व्रत प्रज्ञापित करते हैं, जैसे कि शिष्योंको उपाध्यायोंके प्रति वर्तना चाहिये।

"भिक्षुओ!—शिष्यको उपाध्यायके साथ अच्छा वर्ताव करना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह शिष्यका उपाध्यायके प्रति व्रत, जैसे कि०।" 9

(२) उपाध्याय-व्रत[2]

उस समय (१) उपाध्याय शिष्योंके साथ अच्छा वर्ताव न करते थे। [1]अल्पेच्छ०।०—

"तो भिक्षुओ! शिष्यके प्रति उपाध्यायके व्रतको प्रज्ञापित करता हूँ; जैसे कि उपाध्यायोंको शिष्योंके साथ वर्तना चाहिये। ०

"भिक्षुओ! यह उपाध्यायका शिष्यके प्रति व्रत है, जैसे कि०।" 10

द्वितीय भाणवार (समाप्त) ॥२॥

(३) अन्तेवासी-व्रत[3]

उस समय अन्तेवासी (=शिष्य) आचार्योंके साथ अच्छा वर्ताव न करते थे। [2]अल्पेच्छ० भिक्षु ०।०।—

"तो भिक्षुओ! आचार्यके प्रति अन्तेवासीके व्रतको प्रज्ञापित करता हूँ; जैसे कि अन्तेवासीको आचार्यके साथ वर्तना चाहिये।

"भिक्षुओ! अन्तेवासीको आचार्यके साथ अच्छा वर्ताव करना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह आचार्यके प्रति अन्तेवासीके व्रत हैं; जैसे कि०।" 11

(४) आचार्य-व्रत[4]

उस समय आचार्य अन्तेवासियोंके साथ अच्छा वर्ताव न करते थे।० अल्पेच्छ० भिक्षु[3]।०।—

"तो भिक्षुओ! अन्तेवासीके प्रति आचार्यके व्रतको प्रज्ञापित करता हूँ जैसे कि आचार्यको

[1]देखो महावग्ग १§२।१ (पृष्ठ १०२)।
[2]देखो महावग्ग १§२।२ (पृष्ठ १०३)।
[3]देखो महावग्ग १§२।८ (पृष्ठ १०९)।
[4]देखो महावग्ग १§२।९ (पृष्ठ ११०)।

अन्तेवासीके साथ वर्तना चाहिये।

"भिक्षुओ! आचार्यको अन्तेवासीके साथ अच्छा वर्ताव करना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह शिष्यके प्रति आचार्यका व्रत है; जैसे कि[1]।" 12

अष्टम वत्तक्खन्धक समाप्त[2] ॥८॥

---

[1]देखो महावग्ग १§२।१ (पृष्ठ१०२)।

[2]अन्तमें पाँच गाथायें हैं——जो व्रतको नहीं पूरा करता, वह शीलको नहीं पूरा करता।
अशुद्धशील दुष्प्रज्ञ (पुरुष) चित्तकी एकाग्रताको नहीं प्राप्त होता ॥(१)॥
विक्षिप्त चित्त एकाग्रता रहित (पुरुष) ठीकसे धर्मको नहीं देखता।
सद्धर्मको विना देखे दुःखसे नहीं छूट सकता ॥(२)
व्रतको पूरा करनेवाला शीलको भी पूरा करता है।
विशुद्धशील प्रज्ञावान् (पुरुष) चित्तकी एकाग्रताको प्राप्त होता है ॥(३)॥
अ-विक्षिप्त चित्त एकाग्रता युक्त (पुरुष) ठीकसे धर्मको देखता है।
सद्धर्मको देखकर वह दुःखसे छूट जाता है ॥(४)॥
इसलिये चतुर जिन-पुत्र (=बौद्ध) व्रतको पूरा करे।
(यह) श्रेष्ठ बुद्धका उपदेश है उससे निर्वाणको प्राप्त होगा ॥(५)॥

९—प्रातिमोक्ष-स्थापन स्कन्धक

१—किसका प्रातिमोक्ष स्थगित करना चाहिये ? २—नियम-विरुद्ध और नियमानुसार प्रातिमोक्ष स्थगित करना । ३—अपराध योंही स्वीकारना, और दोषारोप ।

§१—किसका प्रातिमोक्ष स्थगित करना चाहिये

१—श्रावस्ती

(१) उपोसथमें पापी भिक्षु

उस समय बुद्ध भगवान् श्रावस्तीमें मृगारमाताके प्रासाद पूर्वाराममें विहार करते थे।

उस समय भगवान् उपोसथके दिन भिक्षु-संघके साथ बैठे थे। तब आयुष्मान् आनन्द रात चली जानेपर, प्रथम याम बीत जानेपर उत्तरासंगको एक कंधेपर कर जिधर भगवान् थे, उधर हाथ जोळ भगवान्से यह बोले—

"भन्ते ! रात चली गई, पहिला याम बीत गया। भिक्षु-संघ देरसे बैठा है। भन्ते ! भगवान् भिक्षुओंके लिये प्रातिमोक्ष-उद्देश (=० पाठ) करें।"

ऐसा कहनेपर भगवान् चुप रहे। (और) रात चली जानेपर बिचले यामके भी बीत जानेपर दूसरी बार आयुष्मान् आनन्द० भगवान्से यह बोले—

"भन्ते ! रात चली गई। बिचला याम भी बीत गया। भिक्षु-संघ देरसे बैठा है। भन्ते ! भगवान् भिक्षुओंके लिये प्रातिमोक्ष-उद्देश करें।"

ऐसा कहनेपर भगवान् चुप रहे। (और भी) रात चली जानेपर अन्तिम यामके भी बीत जाने पर तीसरी बार आयुष्मान् आनन्द० भगवान्से यह बोले—

"भन्ते ! रात चली गई। अन्तिम याम भी बीत गया। अरुण निकल आया, नन्दीमुखा (=उषा) रात है। भिक्षु-संघ देरसे बैठा है। भन्ते ! भगवान् भिक्षुओंके लिये प्रातिमोक्ष-उद्देश करें।"

"आनन्द ! (यह) परिषद् शुद्ध नहीं है।"

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको यह हुआ—'किस व्यक्तिके लिये भगवान्ने यह कहा—आनन्द ! परिषद् शुद्ध नहीं है', तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने (अपने) चित्तमें ध्यान करते भिक्षु-संघको देखा; और (तब) आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने उस पापी, दुःशील, अ-शुचि, मलिन-आचारी, छिपे कर्म वाले श्रमण होनेके दावेदार अ-श्रमण होते, ब्रह्मचारी न होते ब्रह्मचारी होनेका दावा करनेवाले भीतर-सळे, (पीव) भरे, कलुष रूप उस व्यक्तिको संघके बीचमें बैठे देखा। देख कर जहाँ वह पुरुष था वहाँ गये, जाकर उस पुरुषसे यह बोले—

"आवुस ! उठ, भगवान्ने तुझे देख लिया। (अब) तेरा भिक्षुओंके साथ वास नहीं हो सकता।"

ऐसा कहनेपर वह पुरुष चुप रहा।

दूसरी वार भी आयुष्मान् महामौद्गल्यायन उस पुरुषसे यह बोले—

"आवुस! उठ, भगवान्ने तुझे देख लिया।०।"

दूसरी बार भी वह पुरुष चुप रहा।

तीसरी वार भी० वह पुरुष चुप रहा।

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन उस पुरुषको हाथसे पकळकर द्वार कोष्ठक(=प्रधान द्वार) से बाहर निकाल (किवाळमें) बिलाई(=सूची, घटिका) दे जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जा कर भगवान्से यह बोले—

"भन्ते! मैंने उस पुरुषको निकाल दिया, परिषद् शुद्ध है। भन्ते! भगवान् भिक्षुओंके लिये प्रातिमोक्ष-उद्देश करें।"

"आश्चर्य है मौद्गल्यायन! अद्भुत है मौद्गल्यायन!! जो हाथ पकळनेपर वह मोघ पुरुष गया!!!"

तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

(२) बुद्ध-धर्ममें आठ अद्भुत गुण

"भिक्षुओ! म हा स मु द्र में यह आठ आश्चर्य अद्भुत गुण (=धर्म) हैं, जिन्हें देख अ सु र (लोग) महासमुद्रमें अभिरमण करते हैं। कौनसे आठ?—(१) भिक्षुओ! महासमुद्र क्रमशः गहरा (=निम्न)=क्रमशःप्रवण (=नीच), क्रमशः प्राग्भार (=झुका) होता है, एकदम किनारेसे खळा गहरा नहीं होता। जो कि भिक्षुओ! महासमुद्र क्रमशः गहरा०, यह भिक्षुओ! महासमुद्रमें—प्रथम आश्चर्य अद्भुत गुण है, जिसे देख असुर०। (२) और फिर भिक्षुओ! महासमुद्र स्थिर-धर्म है—किनारेको नहीं छोळता। जो कि०। (३) और फिर भिक्षुओ! महासमुद्र मरे मुर्देके साथ नहीं वास करता। महासमुद्रमें जो मरा-मुर्दा होता है, उसे शीघ्र ही तीरपर बहाता है, या स्थलपर फेंक देता है। जो कि०। (४) और फिर भिक्षुओ! जो कोई महानदियाँ हैं, जैसे कि गंगा, य मु ना, अ चि र व ती (=रापती), श र भू (=सरयू, घाघरा) और म ही (=गंडक), वह सभी महासमुद्रको प्राप्त हो अपने पहिले नाम-गोत्रको छोळ देती हैं, महासमुद्रके ही (नामसे) प्रसिद्ध होती हैं। जो कि०। (५) और फिर भिक्षुओ! जो कोई भी संसारमें बहनेवाली (=पानीकी धारें) समुद्रमें जाती हैं, और जो कोई अन्तरिक्षसे (वर्षाकी) धारा गिरती है; उससे महासमुद्रकी ऊनता (=कमी) या पूर्णता नहीं दीख पळती। जो कि०। (६) और फिर भिक्षुओ! महासयमुद्र एक रस है, लवण (ही उसका) रस है। जो कि०। (७) और फिर भिक्षुओ! महासमुद्र बहुतसे रत्नों-वाला है। रत्न यह हैं जैसे कि—मोती, मणि, वैदूर्य (=हीरा), शंख, शिला, मूँगा, चाँदी, सोना, लो हि तां क (=रक्तवर्ण मणि), म सा ण ग ल्ल (=एक मणि)। जो कि०। (८) और फिर भिक्षुओ! महासमुद्र महान् प्राणियों (=भूतों) का निवास-स्थान है। प्राणी ये हैं, जैसे कि तिमि, ति मिं गि ल, ति मि र, पि ग ल, अ सु र, ना ग, गंधर्व। महासमुद्रमें सौ योजनवाले शरीरधारी भी हैं, दोसौ योजनवाले शरीरधारी भी हैं, तीन-सौ योजनवाले०, चार सौ योजनवाले०। पाँच सौ योजनवाले भी शरीरधारी हैं। जो कि०। भिक्षुओ! महासमुद्रमें यह आठ आश्चर्य-अद्भुत गुण हैं।०

"ऐसे ही भिक्षुओ! इस धर्म-विनय (=बुद्धधर्म) में आठ आश्चर्य अद्भुत धर्म (=गुण) हैं, जिन्हें देखकर भिक्षु इस धर्म-विनयमें अभिरमण करते हैं। कौनसे आठ?—(१) जैसे भिक्षुओ! महासमुद्र क्रमशः गहरा, क्रमशः प्रवण, क्रमशः प्राग्भार है, एक दम किनारेसे खळा गहरा नहीं होता; ! ऐसे ही भिक्षुओ! इस धर्म-विनयमें क्रमशः शिक्षा, क्रमशः क्रिया, क्रमशः मार्ग (=प्रतिपद्) है, एक दम (शुरूही) से आ ज्ञा (=मुक्तिपद) का प्रतिवेध (=साक्षात्कार) नहीं है। जो कि भिक्षुओ! इस

धर्म-विनयमें क्रमशः शिक्षा, क्रमशः क्रिया, क्रमशः मार्ग है, एक दम (शुरूही)से आ ज्ञा का प्रतिवेध नहीं, यह भिक्षुओ ! इस धर्म-विनयमें प्रथम आश्चर्य=अद्भुत धर्म है, जिसे देख देखकर भिक्षु इस धर्म-विनयमें अभिरमण करते हैं। (२) जैसे भिक्षुओ ! महासमुद्र स्थिर-धर्म है=किनारेको नहीं छोळता; ऐसे ही भिक्षुओ ! जो मैंने श्रावकों (=शिष्यों)के लिये शिक्षा-पद (=आचार-नियम) प्रज्ञापित (=विहित) किये, उन्हें मेरे श्रावक प्राणके लिये भी अति-क्रमण नहीं करते। जो कि०। (३) जैसे भिक्षुओ! महासमुद्र मरे मुर्देके साथ नहीं वास करता। महासमुद्रमें जो मरा मुर्दा होता है उसे शीघ्र ही तीरपर वहाता है, या स्थलपर फेंक देता है; ऐसे ही भिक्षुओ ! जो व्यक्ति (=पुद्गल) पापी, दुःशील, अ-शुचि, मलिन-आचारी, छिपे-कर्मान्त (= ० पेशे)वाला, अश्रमण होता श्रमण होनेका दावेदार, अब्रह्मचारी होते ब्रह्मचारी होनेका दावेदार, भीतर सब, (पीळा) भरा, कलुषरूप होता है, उसके साथ संघ नहीं वास करता। शीघ्र ही एकत्रित हो उसे निकालता (=उत्क्षेपण करता) है । चाहे वह भिक्षु-संघके वीचमें बैठा हो, तो भी वह संघसे दूर है, और संघ उससे (दूर है)। जो कि ०। (४) जैसे भिक्षुओ ! ० महानदियाँ ० महासमुद्रको प्राप्त हो अपने पहिले नाम-गोत्रको छोळ देती हैं, महासमुद्रके ही (नामसे) प्रसिद्ध होती हैं; ऐसे ही भिक्षुओ ! क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य (और) शूद्र—यह चारों वर्ण तथागत जतलाये धर्म-विनयमें घरसे बेघर प्रव्रजित (=संन्यासी) हो पहिलेके नाम-गोत्रको छोळते हैं, शा क्य पु त्री य श्रमणके ही (नामसे) प्रसिद्ध होते हैं। जो कि ०। (५) जैसे भिक्षुओ ! जो भी संसारमें वहनेवाली (पानीकी धारें) समुद्रमें जाती हैं, और जो अन्तरिक्ष (=आकाश)से (वर्षाकी) धारायें गिरती हैं, उससे समुद्रकी ऊनता या पूर्णता नहीं दीख पळती; ऐसे ही भिक्षुओ ! चाहे बहुतसे भिक्षु अनुपादिशेष (=उपादि जिसमें शेष नहीं रहती) निर्वाण धातु (=निर्वाणपद)को प्राप्त हों, उससे निर्वाण-धातुकी ऊनता या पूर्णता नहीं दीख पळती। जो कि०। (६) जैसे भिक्षुओ ! महासमुद्र एक-रस है, लवण (ही उसका) एक रस है; ऐसे ही भिक्षुओ ! यह धर्म-विनय एक रस है विमुक्ति (=मुक्ति ही इसका एक)रस है; जो कि ०। (७) जैसे भिक्षुओ ! महासमुद्र बहुतसे रत्नोंवाला है, ०; ऐसे ही भिक्षुओ ! यह धर्म-विनय बहुतसे रत्नोंवाला है, अनेक रत्नोंवाला है। वहाँपर रत्न है जैसे कि[1]—चार [१–४] स्मृ ति - प्र स्था न, चार [५–८] स म्य क् प्र धा न, चार [९–१२] ऋ द्धि पा द, पाँच [१३–१७] इ न्द्रि य, पाँच [१८–२२] ब ल, सात [२३–२९] बो ध्यं ग, [३०–३७] आ र्य अ ष्टां गि क मा र्ग। जो कि ०। (८) जैसे भिक्षुओ ! महासमुद्रमें महान् प्राणियोंका निवास-स्थान है०; ऐसे ही भिक्षुओ ! यह धर्म-विनय महान् प्राणियोंका निवास है। वहाँ यह प्राणी हैं जैसे कि—स्रो त - आ प न्न=(निर्वाणके) स्रोतकी प्राप्ति (रूपी) फलके साक्षात्कार करनेके मार्गको प्राप्त; स कृ दा - गा मी=एक ही वार (इस संसारमें) आकर (निर्वाण प्राप्त करना रूपी) फलके साक्षात्कार करनेके मार्गको प्राप्त; अ ना गा मी=(इस संसारमें) न आकर (दूसरे लोक हीमें निर्वाण प्राप्त करना रूपी) फलके साक्षात्कार करनेके मार्ग प्राप्त; अर्हत्—अर्हत्त्व (=मुक्तपन) फलके साक्षात्कार करनेके मार्गको प्राप्त। जो कि ०।"

तब भगवान्ने इस अर्थका ख्यालकर उसी समय यह उ दा न कहा—

"ढाँकनेकी वुद्धि रखनेवाला (फिर) दोष करता है, खुले (दिल)वाला नहीं दोष करता।
इसलिये ढँकेको खोल दे, जिसमें कि अधिक दोष न करे ॥(१)॥"

(३) बुद्धका फिर उपोसथमें नहीं शामिल होना

तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

[1] यहाँ सैंतीस बोधिपक्षीय धर्म कहे जाते हैं।

"भिक्षुओ ! अब इसके बाद मैं उपोसथ नहीं करूँगा, प्रातिमोक्षका उद्देश (=पाठ) नहीं करूँगा। इसके बाद भिक्षुओ ! तुम्हीं उपोसथ करना, प्रातिमोक्षका उद्देश करना। भिक्षुओ ! इसके लिये जगह नहीं, यह संभव नहीं कि तथागत अशुद्ध परिषद्में उपोसथ करें, प्रातिमोक्षका उद्देश करें !

"भिक्षुओ ! दोषयुक्त (भिक्षु)को प्रातिमोक्ष नहीं सुनना चाहिये, जो सुने उसे दुक्कटका दोष हो। ० अनुमति देता हूँ, जो दोषयुक्त होते प्रातिमोक्ष सुने, उसके प्रातिमोक्षको स्थगित करनेकी। 1

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार स्थगित करना चाहिये। चतुर्दशी या पूर्णमासीके जिस उपोसथके दिन वह व्यक्ति दिखाई दे, संघके बीच कहना चाहिये—'भन्ते ! संघ मेरी सुने इस नामवाला व्यक्ति दोष युक्त है, इसके प्रातिमोक्षको स्थगित करता हूँ। इसकी उपस्थितिमें प्रातिमोक्षका उद्देश नहीं होना चाहिये।' (ऐसा कहनेपर) प्रातिमोक्ष स्थगित होता है।" 2

§२—नियम-विरुद्ध और नियमानुसार प्रातिमोक्ष स्थगित करना

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु—हमें कोई नहीं जानता—(सोच) दोषयुक्त रहते भी प्रातिमोक्ष सुनते थे। दूसरेके चित्तको जाननेवाले स्थविर भिक्षु भिक्षुओंसे कहते थे—'आवुसो ! इस इस नामवाले षड्वर्गीय भिक्षु—हमें कोई नहीं जानता—(सोच) दोषयुक्त रहते भी प्रातिमोक्ष सुनते हैं। षड्वर्गीय भिक्षुओंने सुना—दूसरेके चित्तको जाननेवाले स्थविर भिक्षु भिक्षुओंसे कहते हैं—०। तब अच्छे भिक्षुओं द्वारा उनके प्रातिमोक्षके स्थगित किये जानेसे पूर्व ही वह शुद्ध दोषरहित भिक्षुओंके प्रातिमोक्षको बिना बात, बिना कारण स्थगित करते थे। ० अल्पेच्छ ० भिक्षु ०। ०।—

"भिक्षुओ ! शुद्ध, दोष-रहित भिक्षुओंके प्रातिमोक्षको बिना बात बिना कारण स्थगित नहीं करना चाहिये, ० दुक्कट ०। 3

"भिक्षुओ ! प्रातिमोक्ष स्थगित करना एक अधार्मिक (=धर्म-विरुद्ध) है, और एक धार्मिक (धर्मानुसार)। ० दो अधार्मिक हैं, दो धार्मिक। ० तीन अ-धार्मिक हैं, तीन धार्मिक। ० चार अ-धार्मिक हैं, चार धार्मिक ०। ० पाँच अधार्मिक, पाँच धार्मिक ०। ० छ अ-धार्मिक हैं, छ धार्मिक। ० सात अ-धार्मिक हैं, सात धार्मिक। ० आठ अ-धार्मिक हैं, आठ धार्मिक। ० नौ अ-धार्मिक हैं, नौ धार्मिक।० दस अ-धार्मिक हैं, दस धार्मिक। 4

(१) नियम-विरुद्ध प्रातिमोक्ष स्थगित करना

१—"कौन सा एक प्रातिमोक्ष-स्थगित-करना अधार्मिक है ?—निर्मूलक शील-भ्रष्टता (का दोष लगा) प्रातिमोक्ष स्थगित करता है। यह एक प्रातिमोक्ष स्थगित करना अ-धार्मिक है। कौन सा एक प्रातिमोक्ष-स्थगित-करना धार्मिक है ?—स-मूलक (=कारण होते) शील-भ्रष्टता (का दोष लगा) प्रातिमोक्ष स्थगित करता है। ० 5

२—"कौनसे दो प्रातिमोक्ष स्थगित-करने अ-धार्मिक हैं ?—(१) निर्मूलक शील-भ्रष्टतासे ०। (२) निर्मूलक आचार-भ्रष्टतासे०। 6

कौनसे दो ० धार्मिक हैं ?—(१) समूलक शील-भ्रष्टतासे० (२) समूलक आचार-भ्रष्टतासे ०। ०। 7

३—"कौनसे तीन ० अ-धार्मिक हैं ?—(१) निर्मूलक शील-भ्रष्टतासे०। (२) निर्मूलक आचार-भ्रष्टतासे ०। (३) निर्मूलक दृष्टि-भ्रष्टता (=अच्छी धारणासे च्युत होने)से०। कौनसे तीन धार्मिक हैं ?—(१) समूल शीलक भ्रष्टतासे०। (२) समूलक आचार-भ्रष्टतासे०। (३) समूलक

४—"कौनसे चार ० अ-धार्मिक हैं?—०[1]। (४) निर्मूलक भ्रष्ट-आजीविकता (=जीवयापनका जरिया भ्रष्ट होने)से ०। ० चार ० धार्मिक हैं?—०[1]। (४) समूलक भ्रष्ट-आजीविकता से ०।०।9

५—"कौनसे पाँच ० अ-धार्मिक हैं?—०[1]। (५) निर्मूलक दु क्क ट(का दोष लगाने)से ०। ० पाँच ० धार्मिक हैं?—०[1]। (५) समूलक दु क्क ट से ०।०।10

६—"कौनसे छ ० अ-धार्मिक हैं?—(१) अमूलक (=निर्मूलक) (और) न की हुई शील-भ्रष्टतासे ०। (२) अमूलक, (किंतु)की हुई शील-भ्रष्टतासे ०। (३) अमूलक (और) न की हुई आचार-भ्रष्टतासे०। (४) अमूलक (किन्तु)की हुई आचार-भ्रष्टतासे०। (५) अमूलक (और) न की हुई दृष्टि-भ्रष्टतासे०। (६) अमूलक (किन्तु)की हुई दृष्टि-भ्रष्टतासे०। कौनसे छ ० धार्मिक हैं?—(१) समूलक (और) न की हुई शील भ्रष्टतासे०। (२) समूलक (किन्तु)की हुई शील-भ्रष्टतासे०। (३) समूलक (और) न की हुई आचार-भ्रष्टतासे०। (४) समूलक (किंतु)की हुई आचार-भ्रष्टतासे ०। (५) समूलक (और) न की हुई दृष्टि-भ्रष्टतासे ०। (६) समूल (किंतु)की हुई दृष्टि-भ्रष्टतासे ०।०।11

७—"कौनसे सात० अ-धार्मिक हैं?—(१) अमूलक पा रा जि क(के दोष)से ०। (२) अमूलक संघादिसेससे०। (३) अमूलक थु ल्ल च्च य से०। (४) अमूलक पा चि त्ति य से०। (५) अमूलक प्रा ति दे श नी य से०। (६) अमूलक दु क्क ट से०। (७) अमूलक दु र्भा षि त से०। कौनसे सात ० धार्मिक हैं?—(१) समूलक पाराजिकसे।०। (७) समूलक दुर्भाषितसे ०।०। 12

८—"कौनसे आठ० अ-धार्मिक हैं?—(१) अमूलक, अकृत (=न की हुई) शील-भ्रष्टतासे०। (२) अमूलक, कृत (=की हुई) शील भ्रष्टतासे०। (३) अमूलक अकृत आचार-भ्रष्टतासे०। (४) अमूलक कृत आचार-भ्रष्टतासे०। (५) अमूलक अकृत दृष्टि भ्रष्टतासे०। (६) अमूलक कृत दृष्टि भ्रष्टतासे०। (७) अमूलक अकृत भ्रष्टाजीविकतासे०। (८) अमूलक कृत भ्रष्टाजीविकतासे०। कौनसे आठ० धार्मिक हैं?—(१) समूलक, अकृत शील-भ्रष्टतासे०।०। (८) समूलक कृत भ्रष्टाजीविकतासे०।०।13

९—"कौनसे नौ० अधार्मिक हैं?—(१) अमूलक अकृत शीलभ्रष्टतासे०। (२) अमूलक, कृत शील-भ्रष्टतासे०। (३) अमूलक, कृत-अकृत शील-भ्रष्टतासे०। (४) अमूलक, अकृत आचार-भ्रष्टतासे०। (५) अमूलक, कृत आचार-भ्रष्टतासे०। (६) अमूलक, कृत-अकृत आचार-भ्रष्टतासे०। (७) अमूलक, अकृत दृष्टि-भ्रष्टतासे०। (८) अमूलक, कृत दृष्टि-भ्रष्टतासे०। (९) अमूलक, कृत-अकृत दृष्टि-भ्रष्टतासे०।०। कौनसे नौ ० धार्मिक हैं?—(१) समूलक, अकृत शील-भ्रष्टतासे०।०। (९) समूलक, कृत-अकृत दृष्टि-भ्रष्टतासे०।०। 14

१०—"कौनसे दस प्रातिमोक्ष-स्थगित करने अ-धार्मिक हैं?—(१) न पाराजिक-दोषी उस परिषद्में बैठा होता है; (२) न पाराजिककी बात वहाँ चलती होती है; (३) न (भिक्षु) शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवाला उस परिषद्में बैठा होता है; (४) न शिक्षाको प्रत्याख्यानकी बात वहाँ चलती होती है; (५) न धार्मिक (संघकी) सामग्री (=एकता)में (वह भिक्षु) जाता है; (६) न धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान (=किये फैसलेका उलटाना) करता है; (७) न धार्मिक सामग्रीके प्रत्यादानकी बात वहाँ चलती होती है; (८) न (उसकी) शील-भ्रष्टता देखी, सुनी या शंकित होती है; (९) न

[1]पहिलेको लेकर।

(उसकी) आचार-भ्रष्टता देखी, सुनी या शंकित होती है; (१०) न (उसकी) दृष्टि-भ्रष्टता देखी, सुनी या शंकित होती है।—यह दस प्रातिमोक्ष-स्थगित करने अ-धार्मिक हैं।

(२) नियमानुसार प्रातिमोक्ष-स्थगित करना

"कौनसे दस प्रातिमोक्ष-स्थगितकरने धार्मिक हैं?—(१) पाराजिक-दोषी उस परिषद् (=बैठक)में बैठा होता है; (२) या पाराजिककी बात वहाँ चलती होती है; (३) शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवाला उस परिषद्में बैठा होता है; (४) या शिक्षाके प्रत्याख्यानकी बात वहाँ चलती होती है; (५) धार्मिक सामग्रीके लिये (वह भिक्षु) जानेवाला होता है; (६) धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान करता है; (७) धार्मिक सामग्रीके प्रत्यादानकी बात वहाँ चलती होती है; (८) (उसकी) शील-भ्रष्टता देखी, सुनी या शंकित होती है; (९) (उसकी) आचार-भ्रष्टता देखी, सुनी या शंकित होती है; (१०) (उसकी) दृष्टि-भ्रष्टता देखी सुनी या शंकित होती है। यह दस प्रातिमोक्ष स्थगित करने धार्मिक हैं। 15

(क) पाराजिक दोषी परिषद्में हो—

(क) "कैसे पाराजिक-दोषी उस परिषद् (=बैठक)में बैठा होता है?—(१) यहाँ भिक्षुओ! जिन आकारों=लिंगों=निमित्तोंसे पाराजिक दोष (=धर्म)का दोषी होता है, उन आकारों=लिंगों=निमित्तोंसे भिक्षुने (स्वयं) उस भिक्षुको पाराजिक दोष करते देखा। (२) भिक्षुने पाराजिक दोषको करते (स्वयं) नहीं देखा, किन्तु दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुको कहा है—'आवुस! इस नामवाले भिक्षुने पाराजिक दोषको किया'। (३) न भिक्षुने पाराजिक दोषको करते (स्वयं) देखा, नहीं दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—'आवुस! इस नामवाले भिक्षुने पाराजिक दोषको किया'; बल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा—आवुस! मैंने पाराजिक दोष किया'। तो भिक्षुओ! इच्छा होनेपर (वह) भिक्षु उस (१) देखे, (२) उस सुने, और (३) उस शंकासे चतुर्दशी या पूर्णमासीके उपोसथके दिन उस व्यक्तिके उपस्थित होनेपर संघके बीच कह दे—'भन्ते! संघ मेरी सुने, इस नामवाले भिक्षुने पाराजिक दोष किया है, उसके प्रातिमोक्षको स्थगित करता हूँ।' उसके उपस्थित न होनेपर प्रातिमोक्षका उद्देश करना चाहिये। (वह) प्रातिमोक्ष-स्थगित करना धार्मिक (=नियमानुकूल) है। 16

"भिक्षुके प्रातिमोक्ष स्थगित कर देनेपर, राजा, चोर, आग, पानी, मनुष्य, अ-मनुष्य (=भूत-प्रेत), जंगली जानवर, सरीसृप (=साँप आदि), प्राणसंकट या धर्मसंकट—इन आठ अन्तरायों (=विघ्नों)में से किसी विघ्नके कारण यदि परिषद् (=बैठक) उठ जावे; तो भिक्षुओ! इच्छा होनेपर भिक्षु उस आवासमें या दूसरे आवासमें उस व्यक्तिके उपस्थित होनेपर संघके बीच कहे—'भन्ते! संघ मेरी सुने, इस नामवाले भिक्षुके पाराजिककी बात चल रही थी, वह बात अभी तै न हो पाई है। यदि संघ उचित समझे तो संघ उस बात (=वस्तु, मुकदमे)का विनिश्चय (=फैसला) करे।' इस प्रकार यदि (अभीष्ट) प्राप्त हो सके, तो ठीक नहीं तो अमावास्या या पूर्णिमाके उपोसथके दिन उस व्यक्तिके उपस्थित होनेपर संघके बीच कहे—'भन्ते! संघ मेरी सुने—इस नामके भिक्षुके पाराजिककी कथा चल रही थी, उस बातका फैसला नहीं हुआ। उसके प्रातिमोक्षको स्थगित करता हूँ। उसकी उपस्थितिमें प्रातिमोक्षका उद्देश नहीं करना चाहिये।' (यह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 17

(ख) शि क्षा - प्र त्या ख्या न क र्त्ता प रि ष द् में हो—"कैसे शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवाला उस परिषद्में बैठा होता है?—(१) यदि भिक्षुओ! ० उन आकारों ० से भिक्षुने (स्वयं) उस भिक्षुको शिक्षाका प्रत्याख्यान करते देखा। (२) भिक्षुने (स्वयं) शिक्षाका प्रत्याख्यान करते नहीं देखा किन्तु दूसरे भिक्षुने उस भिक्षुसे कहा है—'आवुस! इस नामवाले भिक्षुने शि क्षा का प्रत्याख्यान किया है। (३) न ० स्वयं देखा, नहीं दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—०; बल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा—

'आवुस ! मैंने शिक्षाका प्रत्याख्यान कर दिया।' तो भिक्षुओ ! इच्छा होनेपर ०[1] । (वह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 18

"भिक्षुके प्रातिमोक्ष स्थगित कर देनेपर ०[1]। (यह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है।

क. "कैसे धार्मिक सामग्रीमें नहीं जाता है?—(१) यदि भिक्षुओ ! ० उन आकारों ० से भिक्षु (स्वयं) (उस) भिक्षुको धार्मिक सामग्रीमें नहीं जाते देखता है। (२) भिक्षु (स्वयं) उस भिक्षुको धार्मिक सामग्रीमें जाते नहीं देखता है, किन्तु दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा है—आवुस ! इस नाम-वाला भिक्षु धार्मिक सामग्रीमें नहीं जाता। (३) न ० स्वयं देखा, नहीं दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—०; वल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा—'आवुस ! मैं धार्मिक सामग्रीमें नहीं जाता'। तो भिक्षुओ ! इच्छा होनेपर०[2]। (वह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 19

["भिक्षुके प्रातिमोक्ष स्थगित कर देनेपर ०[1]। (यह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है।]

ख. "कैसे धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान (=किये फैसलेका उलटाना?) होता है?—(१) यदि भिक्षुओ ! ० उन आकारों० से भिक्षुने (स्वयं) (उस) भिक्षुको धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान करते देखा। (२) ० दूसरे भिक्षुने उस भिक्षुसे कहा है—'आवुस ! इस नामवाले भिक्षुने धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान किया है'। (३) न ० स्वयं देखा, नहीं दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—०; वल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा—'आवुस ! मैंने धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान किया'। तो भिक्षुओ ! इच्छा होने-पर ०[1]। (वह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 20

"भिक्षुके प्रातिमोक्ष स्थगित कर देनेपर ०[1] । (यह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है ।

ग. "कैसे शील-भ्रष्टतामें देखा (=दृष्ट) सुना (=श्रुत) शंका किया (=परिशंकित होता है?—(१) यदि भिक्षुओ ! ० उन आकारों०से भिक्षु (स्वयं) (उस) भिक्षुको शील-भ्रष्टतामें देखा-सुना-शंका किया देखता है। (२) भिक्षुने (स्वयं) ० नहीं देखा, किन्तु दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—'आवुस ! इस नामवाला भिक्षु शील भ्रष्टतामें दृष्ट-श्रुत-परिशंकित है'। (३) न ० स्वयं देखा, नहीं दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—०; वल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा है—'आवुस ! मैं शील भ्रष्टतामें दृष्ट-श्रुत-परिशंकित हूँ'। तो भिक्षुओ ! इच्छा होनेपर ०[2]। (वह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 21

घ. "कैसे आचार-भ्रष्टतामें दृष्टश्रुत-परिशंकित होता है?—०[3]। 22

ङ. "कैसे दृष्टि-भ्रष्टतामें दृष्ट-श्रुत-परिशंकित होता है?—०[3]।" 23

प्रथम भाणवार (समाप्त) ॥ १ ॥

§३–अपराधोंका यों ही स्वीकारना और दोषारोप

तब आयुष्मान् उपालि जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् उपालिने भगवान्से यह कहा—

(१) आत्मादान

"भन्ते ! आत्मादान[4] लेनेवाले भिक्षुको किन बातोंसे युक्त आत्मादानको लेना चाहिये?"

---

[1]ऊपर पृष्ठ ५१४(१७)की तरह। [2]देखो पृष्ठ ५१४(१६) (पाराजिक शब्द बदलकर)। [3]शील-भ्रष्टताकी तरह यहाँ भी समझना। [4]धर्मकी शुद्धिके विचारसे, भिक्षु जिस अधिकरण (=मुकदमे)को अपने ऊपर ले लेता है, उसे आत्मादान कहते हैं।

"उपालि ! आत्मादान लेनेवाले भिक्षुको पाँच बातोंसे युक्त आत्मादानको लेना चाहिये। (१) आत्मादान लेनेकी इच्छावाले भिक्षुको यह सोचना चाहिये—जिस आत्मादानको मैं लेना चाहता हूँ, क्या उसका काल है या नहीं। यदि उपालि ! सोचते हुए यह समझे—यह इस आत्मादानका अकाल है, काल नहीं है; तो उपालि ! वैसे आत्मादानको नहीं लेना चाहिये। (२) किन्तु यदि उपालि ! सोचते हुये यह समझे—यह इस आत्मादानका काल है, अकाल नहीं है; तो उपालि ! उस भिक्षुको आगे सोचना चाहिये—'जिस आत्मादानको मैं लेना चाहता हूँ क्या वह भूत (=यथार्थ) है या नहीं है।' यदि उपालि ! सोचते हुये यह समझे—यह आत्मादान अ-भूत है, भूत नहीं है; तो उपालि ! वैसे आत्मादानको नहीं लेना चाहिये। (३) किन्तु यदि उपालि ! सोचते हुये यह समझे—यह आत्मादान भूत है, अभूत नहीं; तो उपालि ! उस भिक्षुको आगे सोचना चाहिये—'जिस इस आत्मादानको मैं लेना चाहता हूँ, क्या यह आत्मादान अर्थ-संहित (=सार्थक) है, या नहीं।' यदि उपालि ! सोचते हुये यह समझे—यह आत्मादान अनर्थक है, सार्थक नहीं; तो उपालि ! वैसे आत्मादानको नहीं लेना चाहिये। (४) किन्तु यदि उपालि ! सोचते हुये यह समझे—यह आत्मादान सार्थक है, अनर्थक नहीं; तो उपालि ! उस भिक्षुको आगे सोचना चाहिये—'जिस इस आत्मादानको मैं लेना चाहता हूँ, क्या इस आत्मादानके लिये वर्तमानमें सम्भ्रान्त भिक्षुओंको ध र्म और वि न य के अनुसार सहायक पाऊँगा या नहीं।' यदि उपालि ! सोचते हुये यह समझे—इस आत्मादानके लिये वर्तमानमें सम्भ्रान्त भिक्षुओंको ध र्म और वि न य के अनुसार मैं सहायक न पा सकूँगा; तो उपालि ! वैसे आत्मादानको नहीं लेना चाहिये। (५) किन्तु यदि उपालि। भिक्षु सोचते हुये यह समझे—इस आत्मादानके लिये वर्तमानमें सम्भ्रान्त, भिक्षुओंको ध र्म और वि न य के अनुसार मैं सहायक पा सकूँगा; तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको आगे सोचना चाहिये—'क्या इस आत्मादानके लेनेपर, उसके कारण संघमें भंडन=कलह, विवाद, संघ-भेद, सं घ - रा जी, संघ-व्यवस्थान (=संघमें अलगा-विलगी=संघका-नानाकरण) होगा या नहीं ?' यदि उपालि ! भिक्षु सोचते हुये यह समझे—इस आत्मादानके लेनेपर, उसके कारण संघमें कलह ० होगा, तो उपालि ! वैसे आत्मादानको नहीं लेना चाहिये। किन्तु यदि उपालि ! भिक्षु सोचते हुये यह समझे—० उसके कारण संघमें कलह ० नहीं होगा, तो उपालि ! वैसे आत्मादानको लेना चाहये। उपालि ! इस प्रकार पाँच बातोंसे युक्त आत्मादानको लेनेपर पीछे भी पछतावा नहीं करना होगा।" 24

(२) दोषारोपकके लिये अपेक्षित बातें

१—"भन्ते ! दोषारोपक भिक्षुको दूसरेपर दोषारोपण करते वक्त कितनी बातोंके बारेमें अपने भीतर प्रत्यवेक्षण (=अच्छी तरह देख-भाल) कर दूसरेपर दोषारोपण करना चाहिये ?"

(१) उपालि ! दोषारोपक भिक्षुको दूसरेपर दोषारोपण करते वक्त इस प्रकार प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—मैं शुद्ध कायिक आचरणवाला हूँ न ? छिद्रादि मलरहित परिशुद्ध कायिक आचरणसे युक्त हूँ न ? यह धर्म मुझमें है या नहीं है ? यदि उपालि ! भिक्षु शुद्ध कायिक आचरणवाला नहीं है ०। तो उसके लिये कहनेवाले होंगे—'आयुष्मान् (पहिले स्वयं तो) कायिक (आचार)का अभ्यास करें।....(२) और फिर उपालि ! ० इस प्रकार प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—मैं शुद्ध वाचिक आचरण-वाला हूँ न ? ०। (३) और फिर उपालि ! ० इस प्रकार प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—सब्रह्मचारियोंमें द्रोह रहित मैत्री भाव युक्त मेरा चित्त सदा रहता है न ? यह धर्म मुझमें है या नहीं। यदि उपालि ! भिक्षुका सब्रह्मचारियोंमें द्रोह-रहित मैत्रीभावयुक्त चित्त सदा नहीं रहता तो उसके लिये कहनेवाले होंगे—'आयुष्मान् पहिले सब्रह्मचारियोंमें मैत्रीभाव तो कायम करें।...(४)और उपालि ! ० इस प्रकार प्रत्य-वेक्षण करना चाहिये—मैं बहुश्रुत, श्रुतधर, श्रुत-संचयी तो हूँ न ? जो वह धर्म आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण, पर्यवसान-कल्याण है, (जो) अर्थ, और व्यंजनके सहित केवल=परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्यको

बखानते हैं; वैसे धर्मको मैंने बहुत सुना, धारण किया, वचनसे परिचित किया (=समझा) मनसे जाँचा, दृष्टि से अच्छी तरह समझा है न? यह धर्म मुझमें है या नहीं? यदि उपालि! भिक्षु बहुश्रुत ० नहीं हैं; तो उसे कहनेवाले होंगे—पहिले आयुष्मान् आ ग म को पढ़ें...(५) और फिर उपालि! ० इस प्रकार प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—(भिक्षु भिक्षुणी) दोनोंके प्रा ति मो क्षों को मैंने विस्तारके साथ हृदयस्थ किया, सविभक्त किया, सुप्पवत्ती, सू त्रों और अनुव्यंजनोंसे अच्छी तरह विनिश्चित किया है न? यह धर्म मुझमें है या नहीं? यदि उपालि! भिक्षुने दोनों प्रातिमोक्षोंको विस्तारके साथ नहीं हृदयस्थ किया ० अच्छी तरह नहीं विनिश्चित किया है; तो—इसे भगवान् ने कहाँपर कहा?—(पूछनेपर) उत्तर न दे सकेगा। फिर उसे कहनेवाले होंगे—पहिले आयुष्मान् विनयको पढ़ें। उपालि! दोषारोपक भिक्षुको दूसरेपर दोषारोप करनेकी इच्छा होनेपर यह पाँच बातें (पहिले) अपने भीतर प्रत्यवेक्षण करके दूसरेपर दोषारोपण करना चाहिये।" 25

२—"भन्ते! दोषारोपक भिक्षुको दूसरेपर दोषारोप करनेकी इच्छा होनेपर कितनी बातों (=धर्मों)को अपने भीतर स्थापितकर दूसरेपर दोषारोप करना चाहिये?"

"उपालि! दोषारोपक भिक्षुको दूसरेपर दोषारोप करनेकी इच्छा होनेपर पाँच बातोंको अपने भीतर स्थापितकर दूसरेपर दोषारोप करना चाहिये—(१) समयपर बोलूँगा, बेसमय नहीं; (२) यथार्थ बोलूँगा, अयथार्थ नहीं; (३) मधुरताके साथ बोलूँगा, कठोरताके साथ नहीं; (४) सार्थक बोलूँगा, निरर्थक नहीं; (५) मैत्रीपूर्ण चित्तसे बोलूँगा, भीतर द्वेष रखकर नहीं। उपालि! दोषारोपक भिक्षुको० इन पाँच बातोंको अपने भीतर स्थापितकर दूसरेपर दोषारोप करना चाहिये।" 26

३—"भन्ते! अधर्मसे दोषारोप करनेवाले भिक्षुको कितने प्रकारसे (=विप्रतिसार) पछतावा लाना चाहिये?"

"उपालि! अधर्मसे दोषारोप करनेवाले भिक्षुको पाँच प्रकारसे पछतावा लाना चाहिये—(१) आयुष्मान् असमयमें दोषारोप करते हैं समयसे नहीं, आपका पछतावा व्यर्थ। (२) ०अयथार्थ बोलते हैं, यथार्थ नहीं०। (३) ० कठोरताके साथ दोषारोप करते हैं, मधुरताके साथ नहीं०। (४) ०निरर्थक दोषारोप करते हैं, सार्थक नहीं०। (५) ०भीतर द्वेष रखकर दोषारोप करते हैं, मैत्रीपूर्ण चित्तसे नहीं०। उपालि! अधर्मसे दोषारोप करनेवाले भिक्षुको पाँच प्रकारसे विप्रतिसार (=पछतावा) दिलाना चाहिये। सो क्यों? जिसमें दूसरे भिक्षु भी असत्य दोषारोप करनेकी इच्छा न करें।" 27

४—"भन्ते! अधर्मपूर्वक दोषारोप किये गये भिक्षुको कितने प्रकारसे अ-विप्रतिसार (=न पछतावा) धारण कराना चाहिये?"

"उपालि! ० पाँच प्रकारसे अ-विप्रतिसार धारण करना चाहिये—(१) बेसमय आयुष्मान् पर दोषारोप किया गया, समयसे नहीं, आपको विप्रतिसार (=पछतावा) नहीं करना चाहिये। (२) असत्यमें आयुष्मान्पर दोषारोप किया गया, सत्यसे नहीं, ०। (३) कठोरतासे०, मधुरतासे नहीं, ०। (४) ०निरर्थकसे०, सार्थकसे नहीं,०। (५) भीतर द्वेष रखकर० मैत्रीपूर्ण चित्तसे नहीं,०। ऐसे पाँच प्रकारसे अ-विप्रतिसार कराना चाहिये।" 28

५—"भन्ते! धर्मपूर्वक दोषारोप करनेवाले भिक्षुको कितने प्रकारसे अविप्रतिसार धारण करना चाहिये?"

"उपालि! ० पाँच प्रकारसे०—(१) समयसे आयुष्मान्ने दोषारोप किया, बेसमयसे नहीं, तुम्हें पछताना नहीं चाहिये। (२) सत्यसे०, अ-सत्यसे नहीं, ०। (३) मधुरतासे०, कठोरतासे नहीं, ०। (४) सार्थकसे०, निरर्थकसे नहीं, ०। (५) मैत्रीपूर्ण चित्तसे०, भीतर द्वेष रखकर नहीं, तुम्हें पछताना

नहीं चाहिये। उपालि ! ० ऐसे पाँच प्रकार अविप्रतिसार धारण करना चाहिये।" 29

६—"भन्ते ! धर्मपूर्वक दोषारोप किये गये भिक्षुको कितने प्रकारसे विप्रतिसार धारण कराना चाहिये ?"

"उपालि ! ० पाँच प्रकारसे विप्रतिसार धारण कराना चाहिये—(१) समयसे आयुष्मान् पर दोषारोप किया गया है, असमयसे नहीं, नाराज (=विप्रतिसार) नहीं होना चाहिये। (२) सत्यसे० असत्यसे नहीं०। (३) मधुरताके साथ०, कठोरताके साथ नहीं०। (४) सार्थक०, निरर्थक नहीं०। (५) मैत्रीपूर्ण चित्तसे०, भीतर द्वेष रखकर नहीं०। उपालि ! ऐसे पाँच प्रकारसे०। 30

७—"भन्ते ! दोषारोप करनेवाले भिक्षुको दूसरेपर दोषारोप करनेकी इच्छा होनेपर कितनी बातोंको अपने भीतर मनमें करके दूसरेपर दोषारोप करना चाहिये ?"

"उपालि ! ० पाँच बातोंको०—(१) कारुणिकता, (२) हितैषिता, (३) अनुकम्पकता, (४) आपत्तिसे उद्धार होना, (५) विनय पुरस्सर होना। उपालि ! ऐसे पाँच प्रकारसे०।" 31

८—"भन्ते ! दोषारोप किये गये भिक्षुको कितनी बातें (=धर्म) (अपने भीतर) स्थापित करनी चाहिये ?"

"उपालि ! दोषारोप किये गये भिक्षुको सत्य और अकोप्य (=अटलपना) ये दो बातें (अपने भीतर) स्थापित करनी चाहिये।" 32

द्वितीय भाणवार (समाप्त) ॥२॥

नवाँ पातिमोक्खट्ठपनक्खन्धक समाप्त ॥९॥

———

१०—भिक्षुणी-स्कंधक

१—भिक्षुणियोंकी प्रव्रज्या, उपसम्पदा और भिक्षुओंके साथ अभिवादन। २—प्रातिमोक्षकी आवृत्ति, आपत्ति-प्रतिकार, संघ-कर्म, अधिकरण-शमन, और विनय-वाचन। ३—अभद्र परिहास। ४—उपदेश-श्रवण, शरीरका सँवारना, मृत भिक्षुणीका दायभाग, भिक्षुको पात्र दिखाना, भिक्षुसे भोजन ग्रहण करना। ५—आसन, वसन, उपसम्पदा, भोजन, प्रवारणा, उपोसथ स्थगित करना, सवारी और दूत द्वारा उपसम्पदा। ६—अरण्य-वास-निषेध, भिक्षुणी-निवास निर्माण, गर्भिणी प्रव्रजिताकी सन्तानका पालन, दंडितको साथिन देना, दुबारा उपसम्पदा, शौच-स्नान।

§१—भिक्षुणियोंकी प्रव्रज्या-उपसम्पदा, और भिक्षुओंके साथ अभिवादन और भिक्षुणियोंके शिक्षापद

१—*कपिलवस्तु*

उस समय बुद्ध भगवान् शाक्यों(के देश)में क पि ल व स्तु के न्य ग्रो धा रा म में विहार करते थे।

तब महाप्रजापती गौतमी जहाँ भगवान् थे, वहाँ आई। आकर भगवान्‌को वन्दनाकर, एक ओर खळी हो गई। एक ओर खळी महाप्रजापती गौतमीने भगवान्‌से कहा—"भन्ते! अच्छा हो (यदि) मातृग्राम (=स्त्रियाँ) भी तथागतके दिखाये धर्म-विनय (=धर्म)में घरसे बेघर हो प्रव्रज्या पावें।"

"नहीं गौतमी! मत तुझे (यह) रुचै—स्त्रियाँ तथागतके दिखाये धर्ममें०।"

दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी०।

तब म हा प्र जा प ती गौ त मी—भगवान्, तथागत-प्रवेदित धर्म-विनय (=बुद्धके दिखलाये धर्म)में स्त्रियोंको घर छोळ बेघर हो प्रव्रज्या (लेने)की अनुज्ञा नहीं करते—जान, दुःखी=दुर्मना अश्रु-मुखी (हो) रोती, भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चली गई।

२—*वैशाली*

(१) स्त्रियोंका भिक्षुणी होना

भगवान् क पि ल-व स्तु में इच्छानुसार विहारकर (जिधर) वै शा ली थी, (उधर) चारिकाको चल दिये। क्रमशः चारिका करते हुए, जहाँ वैशाली थी, वहाँ पहुँचे। भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागारशालामें विहार करते थे। तब महाप्रजापती गौतमी, केशोंको कटाकर काषायवस्त्र पहिन, बहुतसी 'शाक्य-स्त्रियों'के साथ, जिधर वैशाली थी (उधर) चली। क्रमशः चलकर वैशालीमें जहाँ महावनकी कूटागारशाला थी (वहाँ) पहुँची। महाप्रजापती गौतमी फूले-पैरों धूल-भरे शरीरसे, दुःखी=दुर्मना अश्रु-मुखी, रोती, द्वार-कोष्ठक (=बड़ा द्वार, जिसपर कोठा होता था)के बाहर जा खळी हुई। आयुष्मान् आनन्दने महाप्रजापती०को खळा देखकर...पूछा—

"गौतमी ! तू क्यों फूले पैरों० ?"

"भन्ते ! आनन्द ! तथागत-प्रवेदित धर्म-विनयमें स्त्रियोंकी घर छोळ बेघर प्रव्रज्याकी भगवान् अनुज्ञा नहीं देते।"

"गौतमी ! तू यहीं रह; बुद्ध-धर्ममें स्त्रियोंकी० प्रव्रज्याके लिये मैं भगवान्से प्रार्थना करता हूँ।"

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर० बैठ, भगवान्से बोले—

"भन्ते ! महाप्रजापती गौतमी फूले-पैरों धूल-भरे शरीरसे दुःखी दुर्मना अश्रु-मुखी रोती हुई द्वार-कोष्ठकके बाहर खळी है (कि),—भगवान्...(बुद्ध-धर्ममें)...स्त्रियोंकी० प्रव्रज्याकी अनुज्ञा नहीं देते। भन्ते ! अच्छा हो स्त्रियोंको...(बुद्ध-धर्ममें)...०प्रव्रज्या मिले।"

"नहीं आनन्द ! मत तुझे रुचे—तथागतके जतलाये धर्ममें स्त्रियोंकी घरसे बेघर हो प्रव्रज्या।"

दूसरी बार भी आयुष्मान् आनन्द०। तीसरी बार भी०।

तब आयुष्मान् आनन्दको हुआ,—भगवान् तथागत-प्रवेदित धर्म-विनयमें स्त्रियोंकी घरसे बेघर प्रव्रज्याकी अनुज्ञा नहीं देते, क्यों न मैं दूसरे प्रकारसे ०प्रव्रज्याकी अनुज्ञा माँगूँ। तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से कहा—

"भन्ते ! क्या तथागत-प्रवेदित धर्ममें घरसे बेघर प्रव्रजित हो, स्त्रियाँ स्रोत-आपत्तिफल, सकृदागामि-फल, अनागामि-फल, अर्हत्त्व-फलको साक्षात् कर सकती हैं ?"

"साक्षात् कर सकती हैं, आनन्द ! तथागत-प्रवेदित०।"

"यदि भन्ते ! तथागत-प्रवेदित धर्म-विनयमें ०प्रव्रजित हो, स्त्रियाँ ०अर्हत्त्व-फलको साक्षात् करने योग्य हैं। जो, भन्ते ! अभिभाविका, पोषिका, क्षीर-दायिका हो, भगवान्की मौसी महाप्रजापती गौतमी बहुत उपकार करनेवाली है। जननीके मरनेपर (उसने) भगवान्को दूध पिलाया। भन्ते ! अच्छा हो स्त्रियोंको० प्रव्रज्या मिले।"

(२) भिक्षुणियोंके आठ गुरु धर्म

"आनन्द ! यदि महाप्रजापती गौतमी आठ गुरु-धर्मों (=बळी शर्तों)को स्वीकार करे, तो उसकी उपसम्पदा हो।—

(१) सौ वर्षकी उप-सम्पन्न (=उपसम्पदा पाई) भिक्षुणीको भी उसी दिनके उप-सम्पन्न भिक्षुके लिये अभिवादन प्रत्युत्थान, अंजलि जोळना, सामीची-कर्म करना चाहिये। यह भी धर्म सत्कार-पूर्वक गौरव-पूर्वक मानकर, पूजकर जीवनभर न अतिक्रमण करना चाहिये।

(२) (भिक्षुका) उपगमन (=धर्मश्रवणार्थ आगमन) करना चाहिये। यह भी धर्म०।

(३) प्रति आधेमास भिक्षुणीको भिक्षु-संघसे पर्येषण (प्रार्थना) करना चाहिये। यह०।

(४) वर्षा-वास कर चुकनेपर भिक्षुणीको (भिक्षु, भिक्षुणी) दोनों संघोंमें देखे, सुने, जाने तीनों स्थानोंसे प्रवारणा करनी चाहिये।०

(५) गुरु-धर्म स्वीकार किये भिक्षुणीको दोनों संघोंमें पक्ष-मानता करनी चा०।

(६) किसी प्रकार भी भिक्षुणी भिक्षुको गाली आदि (=आक्रोश) न दे। यह भी०।

(७) आनन्द ! आजसे भिक्षुणियोंका भिक्षुओंको (कुछ) कहनेका रास्ता बन्द हुआ०।

(८) लेकिन भिक्षुओंका भिक्षुणियोंको कहनेका रास्ता खुला है। यह०।

"यदि आनन्द ! महाप्रजापती गौतमी इन आठ गुरु-धर्मोको स्वीकार करे, तो उसकी उपसम्पदा हो।"

तब आयुष्मान् आनन्द भगवान्के पास, इन आठ गुरु-धर्मोंको समझ (=उद्ग्रहण=पढ़)कर जहाँ महाप्रजापती गौतमी थी, वहाँ गये। जाकर महाप्रजापती गौतमीसे बोले—

"यदि गौतमी! तू इन आठ गुरु-धर्मोंको स्वीकार करे, तो तेरी उपसम्पदा होगी—(१) सौ वर्षकी उपसम्पन्न० (८)०।"

"भन्ते! आनन्द! जैसे शौकीन शिरसे नहाये अल्प-वयस्क, तरुण स्त्री या पुरुष उत्पल की माला, वार्षिक (=जूही)की माला, या अतिमुक्तक (=मोतिया)की मालाको पा, दोनों हाथोंमें ले, (उसे) उत्तम-अंग शिरपर रखता है। ऐसे ही भन्ते! मैं इन आठ गुरु-धर्मोंको स्वीकार करती हूँ।"

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर ०अभिवादनकर० एक ओर बैठकर, भगवान्से बोले—

"भन्ते! प्रजापती गौतमीने यावज्जीवन अनुल्लंघनीय आठ गुरु-धर्मोंको स्वीकार किया।"

"आनन्द! यदि तथागत-प्रवेदित धर्म-विनयमें स्त्रियाँ प्रव्रज्या न पातीं, तो (यह) ब्रह्मचर्य चिर-स्थायी होता, सद्धर्म सहस्र वर्ष तक ठहरता। लेकिन चूँकि आनन्द! स्त्रियाँ० प्रव्रजित हुईं; अब ब्रह्मचर्य चिर-स्थायी न होगा, सद्धर्म पाँच ही सौ वर्ष ठहरेगा। आनन्द! जैसे बहुत स्त्रीवाले और थोळे पुरुषोंवाले कुल, चोरों द्वारा, भँडियाहों (=कुम्भ-चोरों) द्वारा आसानीसे ध्वंसनीय (=सु-प्र-ध्वंस्य) होते हैं, इसी प्रकार आनन्द! जिस धर्म-विनयमें स्त्रियाँ ०प्रव्रज्या पाती हैं, वह ब्रह्मचर्य चिर-स्थायी नहीं होता। जैसे आनन्द! सम्पन्न (=तैयार,) लहलहाते धानके खेतमें सेतट्ठिका (=सफेदा)नामक रोग-जाति पळती है, जिससे वह शालि-क्षेत्र चिर-स्थायी नहीं होता; ऐसे ही आनन्द! जिस धर्म-विनय में०। जैसे आनन्द! सम्पन्न (=तैयार) ऊखके खेतमें मांजेष्ठिका (=लाल रोग) नामक रोग-जाति पळती है, जिससे वह ऊखका खेत चिर-स्थायी नहीं होता; ऐसे ही आनन्द०। आनन्द! जैसे आदमी पानीको रोकनेके लिये, बळे तालावकी रोक-थामके लिये, मेंड (=आली) बाँधे, उसी प्रकार आनन्द! मैंने रोक-थामके लिये भिक्षुणियोंके जीवनभर अनुल्लंघनीय आठ गुरु-धर्मोंको स्थापित किया।"

भिक्षुणियोंके आठ गुरु धर्म समाप्त

तब महाप्रजापती गौतमी जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर खळी हुई। एक ओर खळी महाप्रजापती गौतमीने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! इन शाक्यनियोंके साथ मुझे कैसे करना चाहिये?"

तब भगवान्ने धार्मिक कथा द्वारा महाप्रजापती गौतमीको संदर्शित=समुत्तेजित, संप्रहर्षित किया। तब भगवान्की धार्मिक कथा द्वारा ०समुत्तेजित संप्रहर्षित हो महाप्रजापती गौतमी भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चली गई। तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

(३) भिक्षुणियोंकी उपसम्पदा

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भिक्षुओं द्वारा भिक्षुणियोंकी उपसम्पदाकी।" 2

तब भिक्षुणियोंने महाप्रजापती गौतमीसे यह कहा—

"आर्याको उपसम्पदा नहीं है, हम सबको उपसम्पदा मिली है। भगवान्ने इस प्रकार भिक्षुओं द्वारा भिक्षुणियोंकी उपसम्पदाका विधान किया है।"

तब महाप्रजापती गौतमी जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गई। जाकर आयुष्मान् आनन्दको अभिवादनकर एक ओर खळी हुई। एक ओर खळी महाप्रजापती गौतमीने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा—

"भन्ते आनन्द! यह भिक्षुणियाँ मुझसे यह कहती हैं—आर्याको उपसम्पदा नहीं है, हम सबको

उपसम्पदा मिली है। भगवान्‌ने इस प्रकार भिक्षुओं द्वारा भिक्षुणियोंकी उपसम्पदाका विधान किया है।"

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! महाप्रजापती गौतमी ऐसा कहती है—भन्ते आनन्द! यह भिक्षुणियाँ मुझसे ऐसा कहती हैं—आर्याको उपसम्पदा नहीं है, हम सबको उपसम्पदा मिली है०।"

"आनन्द! जिस समय महाप्रजापती गौतमीने आठ गुरु-धर्म ग्रहण किये, तभी उसे उपसम्पदा प्राप्त हो गई।"

(४) भिक्षुणियोंका भिक्षुओंको अभिवादन

तब महाप्रजापती गौतमी जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ जाकर० अभिवादनकर एक ओर खळी ०हो० यह बोली—

"भन्ते आनन्द! मैं भगवान्‌से एक वर माँगती हूँ, अच्छा हो भन्ते! भगवान् भिक्षुओं और भिक्षुणियोंमें (परस्पर) (उपसम्पदाके) वृद्धपनके अनुसार अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथ जोळने=सामीचि-कर्म (=यथोचित सत्कारादि) करनेकी अनुमति दे दें।"

तब आयुष्मान् आनन्द० जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर० एक ओर बैठे० भगवान्‌से यह बोले—

"भन्ते! महाप्रजापती गौतमी ऐसा कहती है—भन्ते आनन्द! मैं भगवान्‌से एक वर माँगती हूँ, ०।"

"आनन्द! इसकी जगह नहीं, इसका अवकाश नहीं, कि तथागत स्त्रियों (=मातृग्राम)को अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथजोळने, सामीचि-कर्म करनेकी अनुमति दें। आनन्द! यह तीर्थिक (=दूसरे मतवाले साधु) भी जिनका धर्म ठीकसे नहीं कहा गया है, वह भी स्त्रियोंको अभिवादन० करनेकी अनुमति नहीं देते, तो भला कैसे तथागत स्त्रियोंको अभिवादन करनेकी अनुमति दे सकते हैं?"

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह, भिक्षुओंको संबोधित किया

(१०) "भिक्षुओ! स्त्रियोंको अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथजोळना, सामीचि-कर्म (=यथोचित सत्कारादि) नहीं करना चाहिये, जो करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 3

(५) भिक्षुओं और भिक्षुणियोंके समान और भिन्न शिक्षापद

तब महाप्रजापती गौतमी० जाकर० भगवान्‌को अभिवादनकर० एक ओर खळी (हो)०भगवान्‌से यह बोली—

"भन्ते! जो शिक्षापद (=आचार-नियम) भिक्षुओं और भिक्षुणियोंके एकसे हैं, भन्ते! उनके विषयमें हमें कैसे करना चाहिये?"

"गौतमी! जो शिक्षापद० एकसे हैं, उनका जैसे भिक्षु अभ्यास करते हैं, वैसेही तुम भी अभ्यास करो।"

"भन्ते! जो शिक्षापद भिक्षुओं और भिक्षुणियोंके पृथक् हैं, भन्ते! उनके विषयमें हमें कैसे करना चाहिये?"

"गौतमी! जो शिक्षापद० पृथक् है, विधानके अनुसार उनको सीखना (=अभ्यास करना) चाहिये।"

(६) धर्मका सार

तब महाप्रजापती गौतमीने० जाकर० भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! अच्छा हो (यदि) भगवान् संक्षेपसे धर्मका उपदेश करें, जिसे भगवान्से सुनकर, एकाकी=उपकृष्टे, प्रमाद-रहित हो (मैं) आत्म-संयमकर विहार करूँ।"

"गौतमी! जिन धर्मोको तू जाने कि, वह (धर्म) स-रागके लिये हैं, विरागके लिये नहीं। संयोगके लिये हैं, वि-सं यो ग (=वियोग=अलग होना)के लिये नहीं। जमा करनेके लिये हैं, विनाशके लिये नहीं। इच्छाओंको बढ़ानेके लिये हैं, इच्छाओंको कम करनेके लिये नहीं। असन्तोपके लिये हैं, सन्तोषके लिये नहीं। भीळके लिये हैं, एकान्तके लिये नहीं। अनुद्योगिताके लिये हैं, उद्योगिता (=वीर्यारंभ)के लिये नहीं। दुर्भरता (=कठिनाई)के लिये हैं, सुभरताके लिये नहीं। तो तू गौतमी! सोलहो आने (=ए कां से न) जान, कि न वह धर्म है, न विनय है, न शास्ता (=बुद्ध)का शा स न (=उपदेश) है।

"और गौतमी! जिन धर्मोको तू जाने, कि वह विरागके लिये हैं, सरागके लिये नहीं। वियोग के लिये०। उद्योगके लिये०। विनाश०। इच्छाओंको अल्प करनेके लिये०। सन्तोप के लिये०। एकान्तके लिये०। उद्योगके लिये०। सु भ र ता (=आसानी)के लिये०। तो तू गौतमी! सोलहों आने जान, कि यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शासन है।"

§२—प्रातिमोक्षकी आवृत्ति, दोष-प्रतिकार, संघ-कर्म, अधिकरण-शमन और विनय-वाचन

(१) प्रातिमोक्ष[1]की आवृत्ति

१—उस समय भिक्षुणियोंके प्रातिमोक्षका पाठ (=उद्देश) न होता था। भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भिक्षुणी-प्रातिमोक्षके[2] उद्देश करनेकी।" 4

२—तब भिक्षुओंको यह हुआ—किसे भिक्षुणी-प्रातिमोक्षका उद्देश करना चाहिये? भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भिक्षुओंको भिक्षुणियोंके (लिये) प्रातिमोक्षके उद्देश करनेकी।" 5

३—उस समय भिक्षु भिक्षुणियोंके आश्रम (=उपश्रय)में जाकर भिक्षुणियोंके प्रातिमोक्षका उद्देश करते थे। लोग हैरान होते थे—'यह इनकी जायायें (=भार्यायें) हैं, यह इनकी जारियाँ (=रखेलियाँ) हैं। अब यह इनके साथ मौज करेंगे।' भिक्षुओंने उन मनुष्योंके हैरान० होनेको सुना। तब उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! भिक्षुओंको भिक्षुणियोंको प्रातिमोक्षका उद्देश नहीं करना चाहिये,० दुक्कट०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भिक्षुणियोंको भिक्षुणियोंके प्रातिमोक्षके उद्देश करनेकी।" 6

४—भिक्षुणियाँ न जानती थीं, कैसे प्रातिमोक्षका उद्देश करना चाहिये।०—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भिक्षुओंसे भिक्षुणियोंको सीखनेकी—ऐसे प्रातिमोक्षका उद्देश करना चाहिये।" 7

(२) दोपका प्रतिकार

१—उस समय भिक्षुणियाँ आपत्तियों(=दोपों)का प्रतिकार नहीं करती थीं।०—

"भिक्षुओ! भिक्षुणियोंको आपत्तियोंका न-प्रतिकार नहीं करना चाहिये, ०दुक्कट।"०। 8

२—भिक्षुणियाँ न जाननी थीं, कि कैसे आपत्तिका प्रतिकार करना चाहिये।०—

---

[1] देखो भिक्खुणीपातिमोक्ख (पृष्ठ ३९–७०) भी। [2] देखो वहीं पृष्ठ ३९–७०।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भिक्षुओंसे भिक्षुणियोंको सीखनेकी—इस प्रकार आपत्तिका प्रतिकार करना चाहिये।" 9

३—तब भिक्षुओंको यह हुआ—किसे भिक्षुणियोंके प्रतिकार (=Confession)को स्वीकार करना चाहिये? भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भिक्षुओंको भिक्षुणियोंके प्रतिकारको स्वीकार करनेकी।" 10

४—उस समय भिक्षुणियाँ सळकपर भी, व्यूह (=भिड़)में भी, चौरस्तेपर भी भिक्षुको देख पात्रको भूमिपर रख उत्तरासंगको एक कंधेपरकर उकळूँ बैठ, हाथ जोळ आपत्तिका प्र ति- का र करती थीं। लोग हैरान० होते थे—यह इनकी जाया हैं, यह इनकी जारियाँ (=रखेलियाँ) हैं, रातको नाराज़ करके अब क्षमा करा रही हैं। ०—

"भिक्षुओ! भिक्षुओंको भिक्षुणियोंके आपत्ति-प्रतिकारको नहीं स्वीकार करना चाहिये, ० ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ, भिक्षुणियोंको भिक्षुणियोंके आपत्ति-प्रतिकारको ग्रहण करनेकी।" 11

५—भिक्षुणियाँ न जानती थीं, कैसे आपत्तिको स्वीकार करना चाहिये। ०—

"०अनुमति देता हूँ भिक्षुओंसे, भिक्षुणियोंको सीखनेकी—इस प्रकार आपत्तिके (प्रतिकार) को स्वीकार करना चाहिये।" 12

(३) संघ-कर्म

१—उस समय भिक्षुणियोंमें क र्म (=चुनाव आदि) न होता था। ०—

"०अनुमति देता हूँ भिक्षुणियोंको, क र्म करनेकी।" 13

२—तब भिक्षुओंको यह हुआ—किसे भिक्षुणियोंका कर्म करना चाहिये। ०—

"०अनुमति देता हूँ, भिक्षुओंको भिक्षुणियोंका कर्म करनेकी।" 14

३—उस समय जिनका कर्म (=दंड) हो गया होता था, वह भिक्षुणियाँ सळकपर भी, व्यूहमें भी, चौरस्तेपर भी भिक्षुको देख पात्रको भूमिपर रख उत्तरासंगको एक कंधेपर कर, उकळूँ बैठ, हाथ जोळ—ऐसा करना चाहिये—(सोच) क्षमा कराती थीं। लोग हैरान० होते थे—'यह इनकी जाया हैं, यह इनकी जारियाँ हैं, रातको नाराज़कर अब क्षमा करा रही हैं। ०'—

"भिक्षुओ! भिक्षुओंको भिक्षुणियोंका क र्म नहीं कराना चाहिये, ०दुक्कट०।" 15

४—भिक्षुणियाँ न जानती थीं, ०। ०—

"०अनुमति देता हूँ भिक्षुओंसे, भिक्षुणियोंको सीखनेकी—इस प्रकार कर्म करना चाहिये।" 16

(४) अधिकरण-शमन

१—उस समय भिक्षुणियाँ संघके बीच भंडन=कलह, विवाद करती एक दूसरेको मुख(रूपी) शक्ति (=शस्त्र)से पीळित कर रही थीं। उस अधिकरण (=झगळे)को शान्त न कर सकती थीं। भगवान्‌से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ भिक्षुओंको, भिक्षुणियोंके अधिकरणका फ़ैसला (=शान्त) करनेकी।" 17

२—उस समय भिक्षु भिक्षुणियोंके अधिकरणका फ़ैसला करते थे। उस अधिकरणके विनिश्चय (=देखने)के समय क र्म को प्राप्त भी दोषी भी भिक्षुणियाँ देखी जाती थीं। भिक्षुणियोंने यह कहा—

"अच्छा होता, भन्ते! आर्यायें ही भिक्षुणियोंके क र्म को करतीं, आर्यायें ही भिक्षुणियोंकी आपत्तिको स्वीकार करतीं; (किन्तु) भगवान्‌ने अनुमति दी है भिक्षुओंको भिक्षुणियोंके अधिकरणको शान्त करनेकी।"

भगवान्‌से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ भिक्षुओंको भिक्षुणियोंपर कर्मका आरोपकर भिक्षुणियोंको देने की; भिक्षुणियोंको भिक्षुणियोंके कर्मके करनेकी; भिक्षुओंको भिक्षुणियोंपर आपत्तिका आरोपकर भिक्षुणियों को देनेकी, भिक्षुणियोंको भिक्षुणियोंकी आपत्तिको स्वीकार करनेकी।" 18

(५) विनय-वाचन

उस समय उत्पलवर्णा भिक्षुणीकी अन्तेवासिनी (=शिष्या) विनय सीखनेके लिये सात वर्षसे भगवान्‌का अनुबंध (=अनुगमन) कर रही थी। स्मृति न रहनेसे सीख सीखकर वह भूल जाती थी। उस भिक्षुणीने सुना कि भगवान् श्रावस्ती जाना चाहते हैं। तब उस भिक्षुणीसे यह हुआ—'मैं सात वर्षसे विनय सीखती भगवान्‌का अनुबंध कर रही हूँ, स्मृति न रहनेसे सीख सीखकर उसे भूल जाती हूँ। स्त्रीके लिये जीवनभर शास्ताका अनुबंध करना कठिन है। मुझे क्या करना चाहिये।' भगवान्‌से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ भिक्षुओंको भिक्षुणियोंके लिये विनय बाँचनेकी।" 19

प्रथम भाणवार (समाप्त) ॥१॥

§३—अभद्र परिहास

३—श्रावस्ती

(१) भिक्षुओंका भिक्षुणियोंपर कीचळ पानी डालना निषिद्ध

१—तब भगवान् वैशालीमें इच्छानुसार विहारकर जिधर श्रावस्ती है उधर चारिकाके लिये चल पळे। क्रमशः चारिका करते जहाँ श्रावस्ती है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय षड्वर्गीय भिक्षु भिक्षुणियोंपर पानी-कीचळ डालते थे, जिसमें कि वह उनकी ओर आसक्त हों। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! भिक्षुओंको भिक्षुणियोंपर कीचळ-पानी नहीं डालना चाहिये, ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ, उस भिक्षुके दंडकर्म करनेकी।" 20

२—तब भिक्षुओंको यह हुआ—क्या दंड-कर्म करना चाहिये? भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! उस भिक्षुको भिक्षुणी-संघ द्वारा न-वंदनीय कराना चाहिये।" 21

(२) भिक्षुओंका भिक्षुणियोंको नग्न शरीर दिखलाना निषिद्ध

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु शरीर खोलकर भिक्षुणियोंको दिखलाते थे, उरु०, पुरुष-इन्द्रिय०, भिक्षुणियोंसे दिल्लगी करते थे, भिक्षुणियोंके पास (पुरुषोंको बुरी इच्छासे) भेजते थे—जिसमें कि वह उनपर आसक्त हों। ०—

"भिक्षुओ! भिक्षुको शरीर०, उरु०, पुरुष-इन्द्रियको खोलकर भिक्षुणियोंको नहीं दिखलाना चाहिये, भिक्षुणियोंसे दिल्लगी नहीं करनी चाहिये, भिक्षुणियोंके पास (पुरुषोंको बुरी इच्छासे) भेजना नहीं चाहिये, ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ उस भिक्षुका दंड-कर्म करनेकी।...। उस भिक्षुको भिक्षुणी-संघ द्वारा न-वंदनीय कराना चाहिये।" 22

(३) भिक्षुणियोंका भिक्षुओंपर कीचळ-पानी डालना निषिद्ध

१—उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ भिक्षुओंपर पानी-कीचळ डालती थीं०।—

"भिक्षुओ! भिक्षुणियोंको भिक्षुओंपर कीचळ-पानी नहीं डालना चाहिये,०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ, उस भिक्षुणीका दंड-अकर्म करनेकी।" 23

२—तब भिक्षुओंको यह हुआ—क्या दंड-कर्म करना चाहिये ? भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ आवरण (=रद्दकर देना) करनेकी।" 24

३—आवरण करनेपर भी उसे ग्रहण न करती थीं। ०—

"०अनुमति देता हूँ (उस भिक्षुणीको) उपदेशसे वंचित करनेकी।" 25

(४) भिक्षुणियोंका भिक्षुओंको नग्न शरीर दिखलाना निषिद्ध

१—उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ शरीर०, स्तन०, उरू०, स्त्री-इन्द्रिय खोलकर भिक्षुओंको दिखलाती थीं, भिक्षुओंसे दिल्लगी करती थीं, भिक्षुओंके पास (स्त्रीको) भेजती थीं—जिसमें कि वह उनपर आसक्त हों। ०—

"भिक्षुओ ! भिक्षुणीको शरीर०, स्तन०, उरू०, स्त्री-इन्द्रिय खोलकर भिक्षुको नहीं दिखलाना चाहिये, भिक्षुओंसे दिल्लगी नहीं करनी चाहिये, भिक्षुओंके पास (स्त्रीको) नहीं भेजना चाहिये, ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ, उस भिक्षुणीका दंड-कर्म करनेकी।" ०। 26

२—"०अनुमति देता हूँ, आवरण करनेकी।" ०। 27

"०अनुमति देता हूँ, उपदेशसे वंचित करनेकी।" 28

तब भिक्षुओंको यह हुआ—क्या उपदेशसे वंचित की गई भिक्षुणियोंके साथ उपोसथ करना विहित है या नहीं ? ०—

"भिक्षुओ ! उपदेशसे वंचित की गई (=उपदेश स्थगित) भिक्षुणीके साथ उपोसथ नहीं करना चाहिये, जब तक कि उस अधिकरणका फैसला न हो जाये।" 29

§४—उपदेश-श्रवण, शरीर सँवारना, मृत भिक्षुणीका दायभाग, भिक्षुको पात्र दिखलाना, भिक्षुसे भोजन ग्रहण करना

(१) उपदेश स्थगित करना

१—उस समय आयुष्मान् उ दा यी उपदेश स्थगितकर चारिकाके लिये चले गये। भिक्षुणियाँ हैरान० होती थीं—'कैसे आर्य उदायी उपदेश स्थगितकर चारिकाके लिये चले गये !!' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! उपदेश स्थगितकर चारिकाके लिये नहीं जाना चाहिये, ०दुक्कट०। 30

२—उस समय मूढ अजान उपदेश स्थगित करते थे। ०—

"भिक्षुओ ! मूढ अजानको उपदेश स्थगित नहीं करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 31

३—उस समय भिक्षु विना (कोई) बातके, अकारण उपदेश स्थगित करते थे। ०—

"भिक्षुओ ! विना (कोई) बातके अकारण उपदेश स्थगित नहीं करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 32

४—उस समय भिक्षु उपदेश स्थगितकर विनिश्चय (फैसला) न देते थे। ०—

"भिक्षुओ ! उपदेश स्थगितकर न-विनिश्चय देना नहीं चाहिये, ०दुक्कट०। 33

(२) उपदेश सुनने जाना

१—उस समय भिक्षुणियाँ उपदेश (=अववाद)में न जाती थीं। ०—

"भिक्षुओ ! भिक्षुणियोंको उपदेशमें न-जाना नहीं चाहिये, जो न जाये उसे धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये।" 34

२—उस समय सारा भिक्षुणी-संघ उपदेश (सुनने)के लिये जाता था। लोग हैरान० होते थे—

यह इन (भिक्षुओं)की जाया हैं, यह इनकी जारियाँ हैं; अब यह इन (भिक्षुओं)के साथ मौज करेंगी।'०—

"भिक्षुओ! सारे भिक्षुणी-संघको उपदेशके लिये नहीं जाना चाहिये, जाये तो दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, चार पाँच भिक्षुणियोंको (एक साथ) उपदेशके लिये जानेकी।" 35

३—उस समय चार पाँच भिक्षुणियाँ (साथ) उपदेशके लिये जा रही थीं। लोग हैरान० होते थे—यह इनकी जाया हैं०।०—

"भिक्षुओ! चार पाँच भिक्षुणियोंको उपदेशके लिये नहीं जाना चाहिये, ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ, तीन भिक्षुणियोंको उपदेशके लिये जानेकी।"

"एक भिक्षुके पास जाकर एक कंधेपर उत्तरासंग करके चरणमें वंदना करके उकळूँ बैठ हाथ जोळ उनसे ऐसा कहना चाहिये—'आर्य! भिक्षुणी-संघ भिक्षु-संघके चरणोंमें वंदना करता है, उपदेशके लिये आनेकी प्रार्थना करता है। भन्ते! भिक्षुणी-संघको उपदेशके लिये आने(की स्वीकृति) मिलनी चाहिये। प्रातिमोक्ष-उपदेशक भिक्षुको पूछना चाहिये—क्या कोई भिक्षु भिक्षुणियों का उपदेशक चुना गया है? यदि कोई भिक्षु भिक्षुणियोंका उपदेशक चुना गया है, तो प्रातिमोक्ष-उद्देशक भिक्षुको कहना चाहिये—इस नामवाला भिक्षु भिक्षुणी-संघका उपदेशक चुना गया है, भिक्षुणी-संघ उसके पास जावे।' यदि कोई भिक्षुणी-संघको उपदेश नहीं देना चाहता, तो प्रातिमोक्ष-उद्देशकको कहना चाहिये—'कोई भिक्षु भिक्षुणी-संघका उपदेशक नहीं चुना गया है। अच्छी तरह (=प्रासादि-केन) भिक्षुणी-संघ (अपना काम) सम्पादित करे'।" 36

(३) भिक्षुओंका उपदेश स्वीकार करना

१—उस समय भिक्षु उपदेश(की प्रार्थना)को स्वीकार न करते थे।०—

"भिक्षुओ! भिक्षुको उपदेश अ-स्वीकार नहीं करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 37

२—उस समय एक भिक्षु अजान था, भिक्षुणियोंने उसके पास जाकर यह कहा—

"आर्य! उपदेश(की प्रार्थना)को स्वीकार करो।"

"भगिनी! मैं अजान हूँ, कैसे मैं उपदेश (की प्रार्थना)को स्वीकार करूँ।"

"स्वीकार करो आर्य! उपदेश(की प्रार्थना)को, भगवानने विधान किया है—भिक्षुको उपदेश अस्वीकार नहीं करना चाहिये।"

भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, अजानको छोळकर बाकीको उपदेश(की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।" 38

३—उस समय एक भिक्षु रोगी था, भिक्षुणियों ने उसके पास जाकर यह कहा—०।—

"भगिनी! मैं रोगी हूँ, कैसे मैं उपदेश (देनेकी प्रार्थना)को स्वीकार करूँ।"

"स्वीकार करो आर्य! भगवान्ने विधान किया है, अजानको छोळ बाकी को उपदेश (की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।"

भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अजान और रोगीको छोळ बाकीको उपदेश(की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।" 39

४—उस समय एक भिक्षु ग मि क (=यात्रापर जानेवाला)था।०।—

"०अनुमति देता हूँ, अजान, रोगी और गमिकको छोळ बाकीको उपदेश(की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।" 40

५—उस समय एक भिक्षु अरण्यमें विहार करता था।०।—

"०अनुमति देता हूँ आरण्यक भिक्षुको उपदेश (देनेकी प्रार्थना)को स्वीकार करनेकी, और दूसरे स्थानपर प्रतिहार (=प्रतीक्षा) करनेका संकेत करनेकी।" 41

६—उस समय भिक्षु उपदेश(की प्रार्थना)को स्वीकार कर नहीं उपदेश करते थे। ०—
"भिक्षुओ! उपदेश-न-करना नहीं चाहिये, ०दुक्कट०।" 42
उस समय भिक्षु उपदेशको स्वीकारकर प्रत्याहरण (=पालन करना) नहीं करते थे।०—
"भिक्षुओ! उपदेशका न-प्रत्याहार नहीं करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 43

(४) भिक्षुणियोंको उपदेश सुननेके लिए न जानेपर दण्ड

उस समय भिक्षुणियाँ (उपदेशके लिये) बतलाये स्थानपर नहीं जाती थीं।०—

"भिक्षुओ! भिक्षुणियोंको बतलाये स्थानपर न जाना नहीं चाहिये, जो न जाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 44

(५) कमरबन्द

उस समय भिक्षुणियाँ लम्बे कायबंधन (=कमरबंद)को धारण करती थीं। उन्हींकी पोंछ (=फासुका) लटकाती थीं। लोग हैरान होते० थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ-(स्त्रियाँ)! ०—

"भिक्षुओ! भिक्षुणियोंको लम्बा काय-बंधन नहीं धारण करना चाहिये, ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ भिक्षुओंको एक फेरा कायबंधनकी, उसकी पोंछ नहीं लटकानी चाहिये, जो लटकावे उसे दुक्कटका दोष हो।" 45

(६) सँवारनेके लिए कपळा लटकाना निषिद्ध

उस समय भिक्षुणियाँ वी लि व (=बाँसके बने) पट्टकी पोंछ लटकाती थीं, चर्मपट्टकी०, दुस्स (=थान) पट्ट०, दुस्स-वेणी (=कपड़ेको गूंथकर)०, दुस्स-वट्टी (=झालर०), चोल-पट्ट (=साड़ीका चुनाव)०, चोल-वेणी०, चोल-वट्टी०, सूतकी वेणी०, सूतकी वट्टी०। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)। ०—

"भिक्षुओ! भिक्षुणियोंको वीलिव-पट्ट०, चर्म-पट्ट०, दुस्स-पट्ट०, दुस्स-वेणी०, दुस्स-वट्टी०, चोल-पट्ट०, चोल-वेणी०, चोल-वट्टी०, सूतकी वेणी०, सूतकी वट्टीकी पोंछ नहीं लटकानी चाहिये, जो लटकाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 46

(७) सँवारनेके लिये मालिश करना निषिद्ध

उस समय भिक्षुणियाँ (गायकी जाँघकी) हड्डीसे जाँघको मसलवाती थीं, गायके हनुक (= (=नीचेके जबड़ेकी हड्डी)से पेंडुलीको थपकी लगवाती थीं, हाथ०, हाथकी मुसुक०, पैर०, पैरके ऊपरी भाग०, ०, जाँघ०, मुख०, दाँतके मसूळेको थपकी लगवाती थीं। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)! ०—

"०भिक्षुणियोंको हड्डीसे जाँघको नहीं मसलवाना चाहिये, गायके हनुकसे पेंडुलीको नहीं थपकी लगवानी चाहिये, हाथ०, हाथकी मुसुक०, पैरके ऊपरी भाग०, जाँघ०, मुख०, दाँतके मसूँळेमें थपकी नहीं लगवानी चाहिये; जो लगवाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 47

(८) मुखके लेप, चूर्ण आदिका निषेध

उस समय प ड् व र्गी या भिक्षुणियाँ मुखपर लेप करती थीं, मुखकी मालिश करती थीं, मुखपर चूर्ण डालती थीं, मुखको मैनसिलसे लांछित करती थीं, अंगराग (=अवटन) लगाती थीं। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)!! ०—

"०भिक्षुणियोंको मुखपर लेप नहीं करना चाहिये, मुखकी मालिश नहीं करनी चाहिये, मुख पर चूर्ण नहीं डालना चाहिये, मुखको मैनसिलसे लांछित नहीं करना चाहिये, अंगराज नहीं लगाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 48

(९) अंजन देने, नाच तमाशा, दूकान व्यापार करनेका निषेध

उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ अपांग (=आँजन) करती थीं, (कपोलपर) विशेपक (=चिह्न) करती थीं। झरोखेसे झाँकती थीं। द्वारपर शरीर दिखाती खळी होती थीं। समज्या (=नाच-नाटक) कराती थीं। वेश्या बैठाती थीं। दूकान लगाती थीं। पान-आगार (=शरावखाना) चलाती थीं। मांसकी दूकान करती थीं। सूदपर (रुपया) लगाती थीं। व्यापारमें (रुपया) लगाती थीं। दास रखती थीं। दासी रखती थीं। नौकर (=कर्मकर) रखती थीं। नौकरानी रखती थीं। तिर्यग्योनि-वालोंको रखती थीं। हर्रा पाक (पंसारीकी दूकान) पसारती थीं, नमतक (=वस्त्र-खंड) धारण करती थीं। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ) ! ०—

"०भिक्षुणियोंको आँजन नहीं करना चाहिये,० नमतक नहीं धारण करना चाहिये; ० ०दुक्कट०।" 49

(१०) बिलकुल नीले, पीले आदि चीवरोंका निषेध

उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ सारे ही नीले[1] चीवरोंको धारण करती थीं, सारे ही पीले०, सारे ही लाल०, सारे ही मजीठ०, सारे ही काले०, सारे ही महारंगसे रंगे, सारे ही हल्दीसे रँगे चीवरोंको धारण करती थीं। कटी किनारीवाले०, लम्बी किनारीवाले०, फूलदार किनारीवाले०, फण(की शकल)की किनारीवाले चीवरोंको धारण करती थीं। कंचुक धारण करती थीं, तिरीटक (=वृक्षकी छाल) धारण करती थीं। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ स्त्रियाँ!" भगवान्‌से यह बात कही।—

"०भिक्षुणियोंको सारे ही नीले चीवरोंको नहीं धारण करना चाहिये, सारे ही पीले०,०, तिरी-टक नहीं धारण करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 50

(११) भिक्षुणियोंके दायभागी

उस समय एक भिक्षुणीने मरते समय यह कहा—मेरा सामान (=परिष्कार) संघका हो। वहाँ भिक्षु और भिक्षुणियाँ दोनों विवाद करती थीं—'हमारा होता है, हमारा होताहै।' भगवान्‌से यह बात कही।—

"यदि भिक्षुओ! भिक्षुणीने मरते वक्त कहा हो—मेरा सामान संघका हो; तो भिक्षु-संघ उसका मालिक नहीं, भिक्षुणी-संघका ही वह होता है। यदि......शिक्षमाणाने ०। यदि श्रामणेरीने०। यदि भिक्षुओ! भिक्षुने मरते वक्त कहा हो—मेरा सामान संघका हो; तो भिक्षुणी-संघ उसका मालिक नहीं, भिक्षु-संघका ही वह होता है। यदि श्रामणेरने०। यदि उपासकने०। यदि उपासिकाने० भिक्षु-संघका ही वह होता है।" 51

(१२) भिक्षुको ढकेलनेका निषेध

उस समय एक भूतपूर्व पहलवान स्त्री (=मल्ली) भिक्षुणियोंमें प्रव्रजित हुई थी। वह सळकमें दुर्बल भिक्षुको देख अंसकूट (=दाहिना कंधा खुला जाकट)से प्रहार दे गिरा देती थी। भिक्षु हैरान० होते थे—कैसे भिक्षुणी भिक्षुको प्रहार देगी। भगवान्‌से यह बात कही।—

[1] मिलाओ महावग्ग, चीवरक्खंधक ८ (पृष्ठ ३५३)।

"भिक्षुओ ! भिक्षुणी भिक्षुको प्रहार न देवे,० दुक्कट०।० अनुमति देता हूँ, भिक्षुणीको भिक्षु देख दूर हट (उसे) मार्ग देना।" 52

(१३) भिक्षुको पात्र खोलकर दिखलाना चाहिये

१—उस समय एक स्त्रीका पति परदेश चला गया था, और उसे जारसे गर्भ हो गया। उसने गर्भ गिराकर (बराबर) घर आनेवाली भिक्षुणीसे यह कहा अच्छा हो आर्ये ! इस गर्भको पात्रमें बाहर ले जाओ। तब वह उस भिक्षुणीके उस गर्भको पात्रमें रख संघाटीसे ढाँक चली गई। उस समय एक पिंडचारिक (=निमंत्रण न ले सदा भिक्षा माँगकर खानेवाला) भिक्षुने प्रतिज्ञा की थी—मैं जो भिक्षा पहिले पाऊँगा, उसे भिक्षु या भिक्षुणीको बिना दिये नहीं खाऊँगा। तब उस भिक्षुने उस भिक्षुणीको देख यह कहा—

"हन्त भगिनी ! भिक्षा स्वीकार कर।"

"नहीं, आर्य !"

दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी उस भिक्षुने उस भिक्षुणीको यह कहा—

"हन्त भगिनी ! भिक्षा स्वीकार कर।"

"नहीं, आर्य !"

"भगिनी ! मैंने समारतन (=प्रतिज्ञा)की है, मैं जो भिक्षा पहिले पाऊँगा, उसे भिक्षु या भिक्षुणीको बिना दिये नहीं खाऊँगा। हन्त, भगिनी ! भिक्षा स्वीकार कर।"

तब उस भिक्षु-द्वारा अत्यन्त बाध्य किये जानेपर उस भिक्षुणीने पात्र निकालकर दिखला दिया—

"देखो आर्य ! पात्रमें गर्भ है। मत किसीसे कहना।"

तब वह भिक्षु हैरान० होता था—'कैसे भिक्षुणी पात्रमें गर्भ ले जायेगी'। तब उस भिक्षुने भिक्षुओंको यह बात कही। जो वह अल्पेच्छ० भिक्षु०।०—

"० भिक्षुणीको पात्रमें गर्भ नहीं ले जाना चाहिये,० दुक्कट ०।० अनुमति देता हूँ भिक्षुको देख कर भिक्षुणीको पात्र निकालकर दिखलानेकी।" 53

२—उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणिया भिक्षु देख उलटकर पात्रकी पेंदीको दिखलाती थीं। भिक्षु हैरान० होते थे—०।

भगवान्‌से यह बात कही—

"० भिक्षुणियोंको भिक्षु देख उलटकर पात्रकी पेंदी नहीं दिखलानी चाहिये,० दुक्कट ०।० अनुमति देता हूँ, भिक्षुणीको भिक्षु देख पात्रको उघाळकर दिखलानेकी, और जो पात्रमें भोजन हो, उसके लिये निमंत्रित करनेकी।" 54

(१४) पुरुष-व्यंजन देखनेका निषेध

उस समय श्रावस्तीमें सळकपर पुरुष व्यंजन (=लिंग)फेंका हुआ था। भिक्षुणियाँ बड़े गौरसे देखने लगीं। मनुष्योंने ताना (=उक्कुट्ठि) मारा। वह भिक्षुणियाँ (लज्जासे) चुप मूक हो गईं। तब उन भिक्षुणियोंने उपश्रय(=आश्रम) में जा भिक्षुणियोंसे यह बात कही। जो वह अल्पेच्छ० भिक्षुणियाँ थीं, वह हैरान ० होती थीं—कैसे भिक्षुणियाँ पुरुष-व्यंजनको गौरसे देखेंगी !! तब उन भिक्षुणियोंने भिक्षुओंसे यह बात कही। भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही।—

"० भिक्षुणियोंको पुरुष-व्यंजन नहीं गौरसे देखना चाहिये,० दुक्कट ०।" 55

(१५) भिक्षुओंका भिक्षुणियोंको परस्पर भोजन देनेमें नियम

१—उस समय लोग भिक्षुओंको भोजन (=आमिष) देते थे। भिक्षु (उसे), भिक्षुणियोंको दे देते थे। लोग हैरान ० होते थे—'कैसे भदन्त (लोग) अपने खानेके लिये दिये गये (भोजन)को दूसरे को देंगे!! क्या हम दान देना नहीं जानते?' ०—

"भिक्षुओ! अपने खानेके लिये दिये गये (भोजन)को दूसरेको नहीं देना चाहिये।० दुक्कट ०।" 56

२—उस समय भिक्षुओंके पास अधिक भोजन (=आमिष) जमा हो गया था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"० अनुमति देता हूँ, संघको देनेकी।" 57

३—बहुत ही अधिक जमा हो गया था।०—

"० अनुमति देता हूँ, व्यक्तिके लिये भी देनेकी।" 58

४—उस समय भिक्षुओंको जमा किया भोजन मिला था।०—

"० अनुमति देता हूँ भिक्षुणियोंके जमा किये (पदार्थ)को भिक्षुओंको दिलवाकर खाने की।" 59

५—उस समय लोग भिक्षुणियोंको भोजन देते थे ०।—

"० भिक्षुणियोंको अपने खानेके लिये दिये गये (भोजन)को दूसरेको नहीं देना चाहिये,० दुक्कट ०।"० 60

६—"० अनुमति देता हूँ संघको देनेकी।"० 61

७—"० अनुमति देता हूँ व्यक्तिके लिये भी देनेकी।"० 62

८—"० अनुमति देता हूँ भिक्षुओंके जमा किये हुये (पदार्थ)को भिक्षुणियोंको दिलवाकर खानेकी।" 63

§५—आसन-वसन, उपसम्पदा, भोजन, प्रवारणा, उपोसथ-स्थान, सवारी और दूत द्वारा उपसम्पदा

(१) भिक्षुओंका भिक्षुणियोंको आसन आदि देना

उस समय भिक्षुओंके पास शयन-आसन (=आसन-बिछौना) अधिक था, भिक्षुणियोंके पास न था। भिक्षुणियोंने भिक्षुओंके पास सन्देश भेजा—"अच्छा हो भन्ते! आर्य (लोग) हमें कुछ समयके लिये शयन-आसन दें। भगवान्‌से यह बात कही।—

"० अनुमति देता हूँ भिक्षुणियोंको कुछ समयके लिये शयन-आसन देनेकी।" 64

(२) ऋतुमती भिक्षुणीके नियम

१—उस समय ऋतुमती भिक्षुणियाँ गद्दीदार चारपाइयों गद्दीदार चौकियोंपर बैठती भी लेटती भी थीं। शयन-आसन खूनसे सन जाता था।०—

"० ऋतुमती भिक्षुणियोंको गद्दीदार चारपाइयों गद्दीदार चौकियोंपर नहीं बैठना चाहिये, लेटना चाहिये,० दुक्कट ०।"

"०अनुमति देता हूँ आवसथ-चीवर[1]की।" 65

२—(आवसथ-चीवर) खूनसे सन जाता था।०—

"० अनुमति देता हूँ आणि-चोळ (=लोहू-सोख) की।" 66

३—आणि-चोळक गिर जाता था।०—

"० अनुमति देता हूँ, सूतसे बाँधकर उसमें बाँधनेकी।" 67

४—सूत टूट जाता था।०—

"० अनुमति देता हूँ ऐंठे (=संवेल्लिय) कटि-सूत्रकी।" 68

५—उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ सर्वदा ही कटि-सूत्र धारण करती थीं। लोग हैरान ० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (-स्त्रियाँ)!! ०—

"० भिक्षुणियोंको सर्वदा कटिसूत्र नहीं धारण करना चाहिये,० दुक्कट०। अनुमति देता हूँ ऋतुमतीको कटि-सूत्रकी।" 69

द्वितीय भाणवार (समाप्त) ॥२॥

(३) उपसम्पदाके लिये शारीरिक दोषका ख्याल रखना

१—उस समय उपसंपदा प्राप्त (भिक्षुणियाँ)में देखी जाती थीं—निमित्त (=स्त्री चिन्ह) रहित भी, निमित्तमात्रा (=हिंजड़िन)भी, आलोहिता[2] भी, ध्रुवलोहिता[2] भी, ध्रुवचोळा[2] भी, परघरन्ती[2] भी, शिखरिणी भी, स्त्रीपंडक (=हिंजड़िन)भी, द्विपुरुषिका भी, सम्भिन्न भी, (स्त्री पुरुष) दोनोंके लक्षणवाली भी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"० अनुमति देता हूँ, उपसम्पदा देते वक्त चौवीस अ न्त रा यि क (=विघ्नकारक) धर्मों (=बातोंके) पूछनेकी। 70

"और ऐसे पूछना चाहिये—[3] (१) तू निमित्त-रहित तो नहीं है? (२) निमित्त-मात्र०? (३) आलोहिता०? (४) ध्रुवलोहिता०? (५) ध्रुवचोळा०? (६) परघरन्ती०? (७) शिखरिणी,०? (८) स्त्री-पंडक०? (९) द्वेपुरुषिक०? (१०) सम्भिन्ना०? (११) दोनों लक्षणवाली ०? क्या तुझे ऐसी बीमारी है,[1] जैसे कि (१२) कोढ़; (१३) गंड (=एक प्रकारका बुरा फोळा); गंड (=एक प्रकारका फोळा); (१४) किलास (=एक प्रकारका बुरा चर्म रोग); (१५) शोथ; (१६) मृगी? (१७) तू मनुष्य है? (१८) तू स्त्री है? (१९) तू स्वतंत्र (=अदासी) है; (२०) तू उऋण है? (२१)तू राज-भटी (=राजाकी सैनिक स्त्री) तो नहीं है? (२२) तुझे मात, पिता और पतिने अनुमति दी है (भिक्षुणी बननेकी)? (२३) तू पूरे बीस वर्षकी की है? (२४) तेरे पास पात्र-चीवर (संख्यामें) पूरे हैं? तेरा क्या नाम है? तेरी प्रवर्तिनी (=गुरु)का क्या नाम है?"

२—उस समय भिक्षु भिक्षुणियोंके अ न्त रा यि क धर्मोंको पूछते थे। उपसंपदा चाहनेवाली लजाती थीं, चुप हो जाती थीं, उत्तर नहीं दे सकती थीं,। भगवान्‌से यह बात कही।—

"० अनुमति देता हूँ, (पहिले) एक (भिक्षुणी-संघ)में उपसंपन्न हुई, (अन्तरायिक दोषोंसे)शुद्ध को (फिर) भिक्षु-संघमें उपसंपदा देनेकी।" 71

अ नु शा स न—उस समय अनुशासन न किये ही उपसंपदा चाहनेवालीसे भिक्षु लोग (तेरह) विघ्नकारक बातोंको पूछते थे। उपसंपदा चाहनेवाली चुप हो जाती थीं, मूक हो जाती

---

[1]ऋतुकालके उपयोगके लिये कपळा। [2]ऋतुविकारवाली स्त्रियोंकी संज्ञा।

[3]मिलाओ महावग्ग १§४।६ (पृष्ठ १३२)।

थीं, उत्तर नहीं दे सकती थीं। भगवान्‌से यह बात कही।--

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, पहले अनुशासन दे (=सिखा) करके, पीछे अन्तरायिक बाधक बातोंके पूछनेकी।"

वहीं संघके बीचमें अ नु शा स न करते। उपसंपदा चाहनेवाली (फिर) उसी तरह चुप रह जाती थीं, मूक हो जाती थीं, उत्तर न दे सकती थीं। भगवान्‌से यह बात कही।--

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, एक ओर ले जाकर विघ्नकारक बातोंके अ नु शा स न करने-की; और संघके बीचमें पूछनेकी और भिक्षुओ ! इस प्रकार अनुशासन करना चाहिये--पहले उपाध्याय ग्रहण कराना चाहिये।

उपाध्याय ग्रहण करा पा त्र - ची व र को बतलाना चाहिये--

"यह तेरा पात्र है, यह संघाटी, यह उत्तरा-संग, यह अन्तरवासक, यह संकच्चिक (=अंगरखा), यह उदक-शाटी (=ऋतु वस्त्र)है। जा उस स्थानमें खळी हो।"

तब उस उपसंपदा चाहनेवालीके पास जाकर ऐसा कहना चाहिये।

अमुक नामवाली ! सुनती हो ? यह तुम्हारा सत्यका काल=भूतका काल है। जो जानता है संघके बीच पूछनेपर है होनेपर "है" करना चाहिये, नहीं होनेपर "नहीं" कहना चाहिये। चुप मत होजाना, मूक मत हो जाना, (संघमें) इस प्रकार तुझसे पूछेंगे--

(१) तू निमित्त-रहित तो नहीं है,०, (२४) तेरे पास पात्र-चीवर (संख्यामें) पूरे तो हैं ? तेरा क्या नाम है ? तेरी प्रवर्तिनीका क्या नाम है ?

३. (उस समय अनुशासिका और उपसंपदा चाहनेवाली दोनों) एक साथ (संघमें) आती थीं। (भगवान्‌से यह बात कही)।--

"भिक्षुओ ! एक साथ नहीं आना चाहिये।" 73

उपसम्पदाकी कार्यवाही

"अनुशासिका पहले आकर संघको सूचित करे--

क. आर्यो ! संघ मेरी (बात) सुने ! यह इस नामकी इस नामवाली आर्याकी उपसंपदा चाहनेवाली शिष्या है। मैंने उसको अनुशासन किया है। यदि संघ उचित समझे तो इस नाम-वाली (उपसम्पदा चाहनेवाली) आवे। 'आओ !' कहना चाहिये। (फिर) एक कंधेपर उ त्त रा संघ को करवाकर भिक्षुणियोंके चरणोंमें वंदना करवा उकळूँ बैठवा, हाथ जोळवा, उप-संपदा के लिये याचना करवानी चाहिये--

या च ना (१) आर्ये ! संघसे उपसंपदा माँगती हूँ। आर्ये ! संघ अनुकंपा करके मेरा उद्धार करे।

(२) दूसरी बार भी०।

(३) तीसरी बार भी याचना करवानी चाहिये--आर्ये ! संघसे उपसंपदा माँगती हूँ। आर्ये ! संघ अनुकंपा करके मेरा उद्धार करे।

(फिर) चतुर समर्थ भिक्षुणी संघको ज्ञापित करे--

भन्ते ! संघ मेरी सुने--

यह इस नामवाली इस नामवाली आर्याकी उपसंपदा चाहनेवाली शिष्या है। यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाली (उम्मेदवार)से विघ्नकारक बातोंको पूछूँ।

सुनती है इस नामवाली ! यह तेरा सत्यका (भूतका) काल है। जो उसे पूछती हूँ।

होनेपर 'हैं' कहना नहीं होनेपर 'नहीं है' कहना। क्या (१) तू निमित्त-रहित तो नहीं ० तेरे पात्र-चीवर (पूर्ण-संख्यामें) हैं ? तेरा क्या नाम है ? तेरी प्रवर्तिनीका क्या नाम है ?

"(फिर) चतुर समर्थ भिक्षुणी संघको सूचित करे—

"क. ज्ञप्ति—आर्ये ! संघ मेरी (बात) सुने, यह इस नामवाली, इस नामवाली आर्याकी उपसंपदा चाहनेवाली (शिष्या), विघ्नकारक बातोंसे शुद्ध है। (इसके) पात्र-चीवर परिपूर्ण हैं। (यह) इस नामवाली (उम्मीदवार) इस नामवाली (भिक्षुणीको) प्रवर्तिनी बना संघसे उपसंपदा चाहती है। यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाली (उम्मीदवार)को इस नामवाली (आर्या)के उपाध्यायत्वमें उपसंपदा दे—यह सूचना।

"ख. अनुश्रावण—(१) आर्ये ! संघ मेरी सुने। यह इस नामवाली इस नामवाली आर्याकी उपसंपदा चाहनेवाली शिष्या अन्तरायिक बातोंसे परिशुद्ध है, (इसके) पात्र-चीवर परिपूर्ण हैं। (यह) इस नामवाली उम्मीदवार इस नामवाली (आर्या)के उपाध्यायत्वमें उपसंपदा चाहती है। संघ इस नामवाली (उम्मीदवार)को इस नामवाली (आर्या)के उपाध्यायत्वमें उपसंपदा देता है। जिस आर्याको इस नामवाली (उम्मीदवार)की इस नामवाली (आयुष्मान्)के उपाध्यायत्वमें उपसंपदा पसंद है वह चुप रहे। जिसको पसंद नहीं है वह बोले। (२) दूसरी बार भी इसी बात को कहता हूँ—आर्ये ! संघ मेरी सुने ०। (३) तीसरी बार भी इस बातको कहती हूँ—आर्ये ! संघ मेरी सुने ० जिसको पसंद नहीं है वह बोले।

ग. धारणा—"इस नामवाली (उम्मीदवार)को इस नामवाली (आर्या)के उपाध्यायत्वमें उपसंपदा संघने दी। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ।"

(४) उसी वक्त उसे लेकर भिक्षु-संघके पास जा एक कंधेपर उत्तरा-संग करवा भिक्षुओंके चरणोंमें वन्दना करवा उकळूँ बैठवा हाथ जोळवा उपसंपदा मँगवानी चाहिये—

याचना—"(१) आर्यो ! मैं इस नामवाली इस नामवाली आर्याकी उपसंपदापेक्षी (=शिष्या), एक ओर (भिक्षुणी-संघमें) उपसंपदा पाई, भिक्षुणी-संघमें (पूछे गये अन्तरायिक दोषोंसे) शुद्ध हूँ। आर्यसंघसे मैं उपसंपदा माँगती हूँ। आर्य-संघ अनुकंपा करके मेरा उद्धार करे। (२) दूसरी बार भी, आर्यो ! मैं इस नामवाली०।

"तीसरी बार भी, आर्यो ! मैं इस नामवाली०।"

तब चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

ज्ञप्ति०। प्र० द्वि० तृ० अनुश्रावण०।

फिर चतुर समर्थ भिक्षु—पसंद नहीं है वह बोले।

ग. (धारणा)—"इस नामवाली (उम्मेदवार)को इस नामवाली आर्याके प्रवर्तिनीत्वमें संघने उपसंपदा दी। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ।"

५—उसी समय (समय जाननेके लिये) छाया नापनी चाहिये। ऋतुका प्रमाण बतलाना चाहिये। दिनका भाग बतलाना चाहिये। संगीति [1]बतलानी चाहिये। भिक्षुणियोंको कहना चाहिये—'इसे तीन निश्रय[2] और आठ अकरणीय बतलाओ।'

(४) भोजनसे उठनेके नियम

१—उस समय भिक्षुणियाँ भोजनके समय आसनपर (सूत्रोंका) संगायन (=साथ

[1]छाया, ऋतु और दिनका भाग इन तीनोंको इकट्ठा करनेको संगीति कहते हैं।

[2]महावग्ग पृष्ठ १३४-३५ (वृक्षके नीचे निवासको छोळकर)।

मिलकर स्वर सहित पाठ) करती समय बिताती थीं। भगवान्‌से यह बात कही—

"० अनुमति देता हूँ आठ भिक्षुणियोंको वृद्धपनके अनुसार बाकीको आनेके क्रमके अनुसार (उठनेकी)।" 76

२—उस समय भिक्षुणियाँ —भगवान्‌ने आठ भिक्षुणियोंको वृद्धपनके अनुसार और बाकीको आनेके क्रमके अनुसार (उठनेकी) आज्ञा दी है—(सोच) सभी जगह आठ ही भिक्षुणियाँ वृद्धपनके अनुसार प्रतीक्षा करती थीं, और बाकी आनेके क्रमके अनुसार (चली जाती थीं)! भगवान्‌से यह बात कही।—

"० अनुमति देता हूँ, भोजनके समय आठ भिक्षुणियोंको वृद्धपनके अनुसार और बाकीको आनेके क्रमके अनुसार। और सब जगह वृद्धपनके अनुसार प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये,० दुक्कट ०।" 77

(५) प्रवारणाके नियम

१—उस समय भिक्षुणियां प्र वा र णा[1] नहीं करती थीं।०—

"० भिक्षुणियोंको प्रवारणा-न-करना नहीं चाहिये, जो प्रवारणा न करे उसका धर्मके अनुसार (दंड) करना चाहिये।" 78

२—० भिक्षुणियाँ अपनेमें प्रवारणा करके भिक्षु-संघमें प्रवारणा नहीं करती थीं।०—

"० भिक्षुणियोंका अपनेमें प्रवारणा करके भिक्षुसंघमें प्रवारणा न करना ठीक नहीं; जो न करे उसे धर्मके अनुसार (दंड) करना चाहिये।" 79

३—० भिक्षुणियोंने भिक्षुओंके साथ एक समय प्रवारणा करते कोलाहल किया।०—

"० भिक्षुणियोंको भिक्षुओंके साथ एक समय प्रवारणा नहीं करनी चाहिये; ० दुक्कट ०।" 80

४—० भिक्षुणियाँ भोजनसे पहिले प्रवारणा करती थीं, (उसमें उन्होंने भोजनके) कालको बिता दिया।०—

"० अनुमति देता हूँ, भोजनके बाद प्रवारणा करनेकी।" 81

५—भोजनके बाद प्रवारणा करते विकाल हो गया।०—

"० अनुमति देता हूँ, आज (अपने संघमें) प्रवारणा करके कल भिक्षु-संघमें प्रवारणा करनेकी।" 82

(६) प्रतिनिधि भेज भिक्षु-सङ्घमें प्रवारणा

उस समय सारे भिक्षुणी-संघने (भिक्षुसंघमें जा) प्रवारणा करते कोलाहल किया।०—

"० अनुमति देता हूँ, भिक्षुणी-संघकी ओरसे भिक्षु-संघमें प्रवारणा करनेके लिये एक चतुर समर्थ भिक्षुणीको चुननेकी।" 83

"और इस प्रकार चुनाव (=संमंत्रण) करना चाहिये—पहिले उस भिक्षुणीसे पूछकर चतुर समर्थ भिक्षुणी संघको सूचित करे—

"क. ज्ञ प्ति—'आर्या संघ! मेरी सुने—यदि संघ उचित समझे, तो भिक्षुणी-संघकी ओरसे भिक्षु-संघमें प्रवारणा करनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुने—यह सूचना है।

"ख. अ नु श्रा व ण—(१)'आर्या संघ! मेरी सुने—संघ भिक्षुणी-संघकी ओरसे भिक्षु-संघमें

---

[1] मिलाओ महावग्ग, प्रवारणा-स्कन्धक (पृष्ठ १८५)।

प्रवारणा करनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुन रहा है, जिस आर्याको पसंद हो, वह चुप रहे; जिस आर्याको पसंद न हो वह बोले ।'

"(२) दूसरी बार भी, आर्या संघ ! मेरी सुने—० ।

"(३) 'तीसरी बार भी, आर्या संघ ! मेरी सुने—० ।

"ग. धा र णा—'संघने भिक्षुणी-संघकी ओरसे भिक्षु-संघमें प्रवारणा करनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुन लिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ' ।"

वह चुनी गई (=सम्मत) भिक्षुणी भिक्षुणी-संघको (साथ) ले भिक्षु संघके पास जा, उत्तरा-संगको एक कंधेपर कर भिक्षुओंके चरणोंमें वन्दनाकर, उकळूँ बैठ हाथ जोळ ऐसे कहे—

(१) "आर्यो ! भिक्षुणी-संघ देखे, सुने, और शंका किये (सभी दोषोंके लिये) भिक्षु-संघके पास प्रवारणा करता है। आर्यो ! कृपा करके भिक्षु-संघ भिक्षुणी-संघको (उसके दोष) कहे, देखनेपर (वह उसका) प्रतिकार करेगा ।

"(२) दूसरी बार भी, आर्यो ! भिक्षुणी-संघ देखे० ।

"(३) तीसरी बार भी, आर्यो ! भिक्षुणी-संघ देखे० ।"

(७) उपोसथ स्थगित करना

उस समय भिक्षुणियाँ भिक्षुओंके उपोसथको स्थगित करती थीं, प्रवारणा स्थगित करती थीं, बात मारती (=सवचनीय करती) थीं, अ नु वा द (=निन्दा) प्रस्थापित करती थीं, अवकाश करवाती थीं, दोषारोप करती थीं, स्मरण दिलाती थीं ।०—

"० भिक्षुणियोंका भिक्षुओंका उपोसथ स्थगित नहीं करना चाहिये (उनका) स्थगित किया न स्थगित किया होगा, स्थगित करनेवालीको दुक्कटका दोष होगा। प्रवारणा स्थगित नहीं करनी चाहिये०, बात नहीं मारनी चाहिये०, अनुवाद प्रस्थापित नहीं करना चाहिये०, अवकाश नहीं करवाना चाहिये०, दोषरोप नहीं करना चाहिये०, स्मरण नहीं दिलाना चाहिये, स्मरण दिलाया भी न-स्मरण-दिलाया होगा, स्मरण दिलानेवालीको दुक्कटका दोष होगा।" 84

उस समय भिक्षु भिक्षुणियोंके उपोसथको स्थगित करते थे,०, स्मरण दिलाते थे ।०—

"० अनुमति देता हूँ, भिक्षुओंको भिक्षुणियोंके उपोसथको स्थगित करनेकी, स्थगित किया ठीक स्थगित किया (समझा) जायेगा, और स्थगित करनेवालेको दोष नहीं होगा; ० स्मरण दिलानेकी, स्मरण दिलाया ठीकसे स्मरण दिलाया (समझा) जायेगा, और स्मरण दिलानेवालेको दोष नहीं होगा।" 85

(८) सवारीके नियम

१—उस समय प ड् व र्गी या भिक्षुणियाँ स्त्रीयुक्त दूसरे पुरुषवाले, पुरुषयुक्त दूसरी स्त्रीवाले यान (=सवारी)से जाती थीं । लोग हैरान ० होते थे—जैसे गंगाका मेला (=गंगामहिया) । भगवान्‌से यह बात कही—

"० भिक्षुणीको यानसे नहीं जाना चाहिये, जो जाये उसे धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये।" 86

२—० एक भिक्षुणी बीमार थी, पैरसे नहीं चल सकती थी ।०—

"० अनुमति देता हूँ, बीमारको यानकी।" 87

तब भिक्षुणियोंको यह हुआ—क्या स्त्री-युक्त (यान)की या पुरुष-युक्त (यान)की ? भगवान्‌से यह बात कही ।—

"० अनुमति देता हूँ, स्त्री-युक्त, पुरुष-युक्त (और) हत्थवट्टक (=हाथसे खींचे)की।" 88

३—उस समय एक भिक्षुणीको यानके उद्घात (=झटका)से बहुत अधिक कष्ट हुआ ।०—

"० अनुमति देता हूँ, शिविका, (और) पाटंकी (=पालकी)की ।" 89

(९) दूत भेजकर उपसम्पदा

१—उस समय अ ड्ड का सी (=आढ्य-काशी, काशी देशकी धनिक) गणिका भिक्षुणियोंमें प्रव्रजित हुई थी। वह भगवान्‌के पास जा उपसम्पदा पानेकी इच्छासे श्रा व स्ती जाना चाहती थी। बदमाशों (=धूर्तो)ने सुना—आ ढ्य का शी गणिका श्रावस्ती जाना चाहती है। वह मार्गमें जा लगे। आढ्यकाशी गणिकाने सुना—मार्गमें बदमाश लगे हैं। उसने भगवान्‌के पास दूत भेजा—'मैं उपसम्पदा लेना चाहती हूँ, मुझे क्या करना चाहिये ?'

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, दूत द्वारा उपसम्पदा देनेकी ।" 90

२—भिक्षु-दूत भेजकर उपसम्पदा करते थे।०—

"भिक्षुओ ! भिक्षु-दूत भेजकर उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 91

३—शिक्षमाणा-दूत भेजकर० ।

४—श्रामणेर-दूत भेजकर ० ।

५—श्रामणेरी-दूत भेजकर ० ।

६—मूर्ख अजान दूतको भेजकर उपसम्पदा करते थे ।०—

"भिक्षुओ ! मूर्ख अजान दूतको भेजकर उपसम्पदा नहीं करनी चाहिये, ० दुक्कट ० । भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, चतुर समर्थ भिक्षुणीको दूत (बना) भेजकर उपसम्पदा देनेकी । 92

"उस भिक्षुणी-दूतको संघके पास जाकर एक कंधेपर उत्तरासंग कर भिक्षुओंके चरणोंमें वन्दना कर उकळूँ बैठ हाथ जोळ ऐसा कहना चाहिये—"(१) आर्यो ! इस नामवाली (भिक्षुणी)की इस नाम-वाली उपसम्पदा चाहनेवाली है। एक ओरसे उपसम्पदा पा चुकी, भिक्षुणी-संघमें (दोषोंसे) शुद्ध है। वह किसी अन्तराय (=विघ्न)से नहीं आ सकती। (वह) इस नामवाली संघसे उपसम्पदा माँगती है। आर्यो! कृपा करके संघ उसका उद्धार करे।

"(२) आर्यो! इस नामवाली०। दूसरी बार भी इस नामवाली संघसे उपसम्पदा माँगती है।

"(३) आर्यो! इस नामवाली०। तीसरी बार भी ०।

"तब चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

"क. ज्ञ प्ति० । ख. अ नु श्रा व ण० । ग. धा र णा० ।

"उसी समय (समय जाननेके लिये) छाया नापनी चाहिये०[1] । ०—इसे तीन निश्रय और आठ अ-करणीय बतलाओ।"

§६—अरण्यवास निषेध, भिक्षुणी-विहारका निर्माण, गर्भिणी प्रव्रजिताकी सन्तानका पालन, दण्डिताको साथिनी देना, दुबारा उपसम्पदा, शौच-स्नान

(१) अरण्यवासका निषेध

उस समय भिक्षुणियाँ अरण्य (=जंगल)में वास करती थीं ! बदमाश बलात्कार करते थे।०—

[1]देखो पृष्ठ ५३४।

"० भिक्षुणियोंको अरण्यमें नहीं वास करना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 93

(२) भिक्षुणी-विहार बनवाना

१—उस समय एक उपासकने भिक्षुणी-संघको उ द्दो सि त (=छप्पर) दिया। भगवान्‌से यह बात कही।—

"० अनुमति देता हूँ, उद्दोसितकी।" 94

२—उद्दोसित ठीक नहीं होता था।०—

"० अनुमति देता हूँ उपश्रय (=भिक्षुणी-आश्रम)की।" 95

३—उपश्रय ठीक नहीं होता था।०—

"० अनुमति देता हूँ, नवकर्म (=इमारत बनानेका काम)की।" 96

४—नवकर्म ठीक नहीं होता था।०—

"० अनुमति देता हूँ, व्यक्तिगत भी करनेकी।" 97

(३) गर्भिणी प्रव्रजिताकी सन्तानका पालन

१—उस समय एक आसन्नगर्भा स्त्री भिक्षुणियोंमें प्रव्रजित हुई थी, प्रव्रजित होनेपर उसे गर्भोत्थान (=प्रसव काल) हुआ। तब उस भिक्षुणीको यह हुआ—मुझे इस बच्चेके साथ कैसा करना चाहिये? भगवान्‌से यह बात कही।—

"० अनुमति देता हूँ, जब तक वह बच्चा सयाना हो जाये तब तक पोसनेकी।" 98

२—तब उस भिक्षुणीको यह हुआ—मैं अकेली रह नहीं सकती, और दूसरी भिक्षुणी बच्चेके साथ नहीं रह सकती, कैसे मुझे करना चाहिये?' ०—

"० अनुमति देता हूँ, उस भिक्षुणीको साथिन होनेके लिये एक भिक्षुणीको चुनकर देनेकी। 99

"और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनना (=संमंत्रण करना) चाहिये—

क. ज्ञ प्ति—"आर्या संघ मेरी सुने, यदि संघ उचित समझे, तो संघ इस नामवाली भिक्षुणीका साथी होनेके लिये इस नामकी भिक्षुणीको चुने।—यह सूचना है।

ख. अ नु श्रा व ण०।

ग. धा र णा—"संघने इस नामवाली भिक्षुणीकी साथिन होनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुन लिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारणा करती हूँ।"

३—तब उस साथिन भिक्षुणीको यह हुआ—मुझे इस बच्चेके साथ कैसे करना चाहिये।०—

"० एक घरमें रहना छोळ, अनुमति देता हूँ, जैसे दूसरे पुरुषके साथ बर्तना चाहिये, वैसे उस बच्चेके साथ बर्तनेकी।" 100

(४) मानत्त्वचारिणीको साथिन देना

उस समय एक भिक्षुणी गु रु - ध र्म[1]का दोष करके मानत्त्वचारिणी हुई थी। तब उस भिक्षुणीको यह हुआ—'मैं अकेली नहीं रह सकती, और दूसरी भिक्षुणी मेरे साथ नहीं वास कर सकती, मुझे कैसे करना चाहिये?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"० अनुमति देता हूँ, उस भिक्षुणीकी साथिन होनेके लिये एक भिक्षुणीको चुनकर देनेकी। 101

"और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनना चाहिये—०[2]।

---

[1]देखो आठ गुरु-धर्म चुल्ल १०§१।२ पृष्ठ ५२०-२१।　　[2]ऊपर जैसे ही।

ग. धा र णा—"संघने इस नामवाली भिक्षुणीकी साथिन होनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुन लिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ।"

(५) दुबारा उपसम्पदा

१—उस समय एक भिक्षुणी (भिक्षुणीकी) शिक्षाको त्याग गृहस्थ बन गई। वह फिर आकर भिक्षुणियोंसे उपसंपदा माँगने लगी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"० भिक्षुणियोंका (कोई दूसरा) शिक्षाका परित्याग नहीं, जभी उसने वेष छोळा, उसी समय वह अ-भिक्षुणी हो गई।" 102

२—उस समय एक भिक्षुणी अपने आवास (=आश्रम)को छोळ तीर्थायतन (=दूसरे मत-वालोंके स्थानपर) चली गई। उसने फिर लौट आ भिक्षुणियोंसे उपसंपदा माँगी।०—

"० जो भिक्षुणी अपने आवासको छोड़ तीर्थायतनमें चली गई, फिर आनेपर उसे उपसम्पदा न देनी चाहिये।" 103

(६) पुरुषों द्वारा अभिवादन केशच्छेदन आदि

उस समय भिक्षुणियाँ पुरुषों द्वारा अभिवादन, केशच्छेदन, नख-च्छेदन, घावकी दवा करानेमें संकोच कर नहीं सेवन करती थीं।०—

"० अनुमति देता हूँ, सेवन करनेकी।" 104

(७) बैठनेके नियम

उस समय भिक्षुणियाँ पलथी मारकर बैठे पार्ष्णि (=एळी)के स्पर्शका स्वाद लेती थीं।०—

"० भिक्षुणियोंको पलथी मारकर बैठे पार्ष्णिके स्पर्शका स्वाद नहीं लेना चाहिये, ० दुक्कट०।" 105

उस समय एक भिक्षुणी बीमार थी, पलथी मारकर बैठे बिना उसे आराम न मिलता था।०—

"० अनुमति देता हूँ, बीमार भिक्षुणीको आधी पलथीकी।" 106

(८) पाखानेके नियम

उस समय भिक्षुणियाँ पाखानेमें शौच जाती थीं, षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ वहीं गर्भ गिराती थीं।०—

"० भिक्षुणियोंको पाखानेमें शौच नहीं जाना चाहिये, ० दुक्कट ०। अनुमति देता हूँ, नीचे (भूमिपर) खुले और ऊपरसे छाये (स्थानमें) शौच जानेकी।" 107

(९) स्नानके नियम

१—उस समय भिक्षुणियाँ (स्नानके सुगंधित) चूर्णसे नहाती थी। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी स्त्रियाँ।०—

"० भिक्षुणीको चूर्णसे नहीं नहाना चाहिये, ०दुक्कट०। अनुमति देता हूँ कुक्कुस मिट्टीकी।" 108

२—उस समय भिक्षुणियाँ वासित (=सुगंधित) मिट्टीसे नहाती थीं। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ स्त्रियाँ! ०—

"० भिक्षुणीको वासित मिट्टीसे नहीं नहाना चाहिये,०दुक्कट०। अनुमति देता हूँ स्वाभाविक मिट्टीकी।" 109

३—उस समय भिक्षुणियोंने जन्ताघरमे नहाते वक्त कोलाहल किया।०—

"० भिक्षुणियोंको जन्ताघरमें नहीं नहाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 110

४—उस समय भिक्षुणियाँ उल्टी धार नहाती थीं और धाराके स्पर्शका स्वाद लेती थीं।०—

"० भिक्षुणियोंको उलटी धार नहीं नहाना चाहिये, ०दुक्कट० ।" 111

५—उस समय भिक्षुणियाँ बेघाट नहाती थीं, बदमाश बलात्कार करते थे।०—

"० भिक्षुणियोंको बेघाट नहीं नहाना चाहिये, ०दुक्कट० ।" 112

६—उस समय भिक्षुणियाँ मर्दाने घाटपर नहाती थीं, लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ) ! ०—

"० भिक्षुणियोंको मर्दाने घाटपर नहीं नहाना चाहिये, जो नहाये उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ महिलातीर्थ(=जनाने घाट)पर नहानेकी।" 113

तृतीय भाणवार समाप्त ॥ ३ ॥

दशम भिक्खुनी-क्खन्धक समाप्त ॥१०॥

११—पंचशतिका-स्कंधक

१—प्रथम संगीतिकी कार्यवाही। २—निर्वाणके समय आनंदकी भूल। ३—आयुष्मान् पुराण-का संगीति पाठकी पाबंदीसे इन्कार। ४—छन्नको ब्रह्मदंड और उदयनको उपदेश।

§१—प्रथम संगीतिकी कार्यवाही

१—राजगृह

तब आयुष्मान् म हा का श्य प ने भिक्षुओंको संबोधित किया। आवुसो ! एक समय मैं पाँच सौ भिक्षुओंके साथ पा वा और कु सी ना रा के बीच रास्तेमें था। तब आवुसो ! मार्गसे हटकर मैं एक वृक्षके नीचे बैठा। उस समय एक आ जी व क कुसीनारासे मंदारका पुष्प लेकर पावाके रास्ते में जारहा था। आवुसो ! मैंने दूरसे ही आजीवकको आते देखा। देखकर उस आजीवकसे यह कहा—"आवुस ! हमारे शास्ताको जानते हो ?"

"हाँ आवुसो ! जानता हूँ, आज सप्ताह हुआ, श्रमण गौ त म परिनिर्वाणको प्राप्त हुआ। मैंने यह मन्दारपुष्प वहींसे लिया है।" आवुसो ! वहाँ जो भिक्षु अवीत-राग (=वैराग्य वाले नहीं) थे; (उनमें) कोई-कोई बाँह पकळकर रोते थे 'कटे पेळके सदृश गिरते थे, लोटते थे—'भग-वान् बहुत जल्दी परिनिर्वाणको प्राप्त हो गये'। किन्तु जो वीतराग भिक्षु थे, वह स्मृति-सम्प्रजन्यके साथ स्वीकार (=सहन) करते थे—संस्कार (=कृत वस्तुयें) अनित्य है, वह कहाँ मिलेगा ०।'

'उस समय आवुसो ! सुभद्र नामक एक वृद्ध प्रव्रजित उस परिषद्में बैठा था। तब वृद्ध प्रव्रजित सुभद्रने उन भिक्षुओंको यह कहा—'मत आवुसो ! मत शोक करो, मत रोओ। हम सुयुक्त हो गये उस महाश्रमणसे पीळित रहा करते थे। यह तुम्हें विहित नहीं है। अब हम जो चाहेंगे सो करेंगे, जो नहीं चाहेंगे उसे न करेंगे'। "अच्छा हो आवुसो ! हम धर्म और विनय का संगान (=साथ पाठ) करें, सामने अधर्म प्रकट हो रहा है, धर्म हटाया जा रहा है, अविनय प्रकट हो रहा है, विनय हटाया जा रहा है। अधर्मवादी बलवान् हो रहे हैं,० धर्मवादी दुर्बल हो रहे हैं, ० विनय-वादी हीन हो रहे हैं।"[1]

"तो भन्ते ! (आप) स्थविर भिक्षुओंको चुनें।" तब आयुष्मान् महा का श्य प ने एक कम पाँचसौ अर्हत् चुने। भिक्षुओंने आयुष्मान् महाकाश्यपसे यह कहा—

"भन्ते ! यह आनन्द यद्यपि शैक्ष्य (अन्-अर्हत्) हैं, (तो भी) छंद (=राग) द्वेष, मोह, भय, अगति (=बुरे मार्ग) पर जानेके अयोग्य हैं। इन्होंने भगवान्के पास बहुत धर्म (=सूत्र) और विनय प्राप्त किया है, इसलिये भन्ते ! स्थविर आयुष्मान्को भी चुन लें।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् आनन्दको भी चुन लिया। तब स्थविर भिक्षुओंको यह हुआ—'कहाँ हम धर्म और विनयका संगायन करें ?' तब स्थविर भिक्षुओंको यह हुआ—

[1] मिलाओ महापरिनिब्बाणसुत्त (दीघनिकाय) भी।

(१) राजगृहमें संगीति करनेका ठहराव

"राजगृह महागोचर (=समीपमें बहुत बस्तीवाला) बहुत शयनासन (=वास-स्थान) वाला है, क्यों न राजगृहमें वर्षावास करते हम धर्म और विनयका संगायन करें। (लेकिन) दूसरे भिक्षु राजगृह मत जावें"। तब आयुष्मान् महाकाश्यपने संघको ज्ञापित किया—

ज्ञ प्ति—"आवुसो! संघ सुने, यदि संघको पसन्द है, तो संघ इन पाँचसौ भिक्षुओंको राजगृहमें वर्षा-वास करते धर्म और विनय संगायन करनेकी संमति दे। और दूसरे भिक्षुओंको राजगृहमें नहीं बसने की।" यह ज्ञप्ति (=सूचना) है।

अ नु श्रा व ण—"भन्ते! संघ सुने, यदि संघको पसन्द है०। जिस आयुष्मान्को इन पाँचसौ भिक्षुओंका, ० संगायन करना, और दूसरे भिक्षुओंका राजगृहमें वर्षावास न करना पसंदहो, वह चुप रहे; जिसको नहीं पसंदहो, वह बोले।

"दूसरी बार भी०।

"तीसरी बार भी०।

धा र णा—"संघइन पाँचसौ भिक्षुओंके० तथा दूसरे भिक्षुओंके राजगृहमें वास न करनेसे सहमत है, संघको पसंद है, इसलिये चुप है'—यह धारण करता हूँ।"

तब स्थविर भिक्षु! धर्म और विनयके संगायन करनेके लिये राजगृह गये। तब स्थविर भिक्षुओंको हुआ—

'आवुसो! भगवान्ने टूटे फूटेकी मरम्मत करनेको कहा है। अच्छा आवुसो! हम प्रथम मासमें टूटे फूटेकी मरम्मत करें, दूसरे मासमें एकत्रित हो धर्म और विनयका संगायन करें।'

तब स्थविर भिक्षुओंने प्रथम मासमें टूटे फूटेकी मरम्मत की।

आयुष्मान् आ न न्द ने—'बैठक (=सन्निपात) होगी, यह मेरे लिये उचित नहीं, कि मैं शैक्ष्य रहते ही बैठकमें जाऊँ' (सोच) बहुत रात तक काय-स्मृतिमें बिताकर, रातके भिनसारको लेटनेकी इच्छासे शरीरको फैलाया, भूमिसे पैर उठ गये, और शिर तकियापर न पहुँच सका। इसी बीचमें चित्त आस्रवों (=चित्तमलों)से अलग हो, मुक्त होगया। तब आयुष्मान् आनन्द अर्हत् होकर ही बैठकमें गये।

(२) उपालिसे विनय पूछना

आयुष्मान् म हा का श्य प ने संघको ज्ञापित किया—

"आवुसो! संघ सुने, यदि संघको पसंद है तो मै उपालिसे विनय पूछूँ?"

आयुष्मान् उपालिने भी संघको ज्ञापित किया—

"[1]भन्ते! संघ सुने यदि संघको पसंद है, तो मैं आयुष्मान् महाकाश्यपसे पूछे गये विनय-का उत्तर दूँ?"

अब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् उपालिको कहा—

"आवुस! उपालि! [2]प्रथम-पाराजिका कहाँ प्रज्ञप्त की गई?" "राजगृहमें भन्ते!"

"किसको लेकर?" "सु दि न्न कलन्द-पुत्तको लेकर।"

"किस बातमें?" "मैथुन-धर्ममें।"

---

[1]उस संघमें सभी महाकाश्यपसे पीछेके बने भिक्षु थे; इसलिये 'आवुस' कहा।

[2]यहाँ उस संघमें महाकाश्यप उपालिसे बड़े थे, इसलिये 'भन्ते' कहा।

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् उ पा लि को प्रथम पाराजिकाकी वस्तु (=कथा) भी पूछी, निदान (=कारण) भी पूछा, पुद्गल (=व्यक्ति) भी पूछा, प्रज्ञप्ति (=विधान) भी पूछी, अनुप्रज्ञप्ति (=संबोधन) भी पूछी, आपत्ति (=दोष-दंड) भी पूछी, अन्-आपत्ति भी पूछी।

"आवुस उपालि ! [1]द्वितीय-पाराजिका कहाँ प्रज्ञापित हुई ?" "राजगृहमें भन्ते !"

"किसको लेकर ?" "धनिय कुंभकार-पुत्रको ।"

"किस वस्तुमें ?" "अदत्तादान (=चोरी) में ।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् उपालिको द्वितीय पाराजिकाकी व स्तु (=कथा) भी पूछी, निदान भी० अनापत्ति भी पूछी।—

"आवुस उपाली ! [2]तृतीय पाराजिका कहाँ प्रज्ञापित हुई ?" "वैशालिमें, भन्ते ।"

"किसको लेकर ?" "बहुतसे भिक्षुओंको लेकर ।"

"किस वस्तुमें ?"

"मनुष्य-विग्रह (=नर-हत्या) के विषयमें ।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने० ।—

"आवुस उपालि ! चतुर्थ पाराजिका कहाँ प्रज्ञापित हुई ?" "वैशालीमें भन्ते !"

"किसको लेकर ?" "वग्गु-मुदा-तीरवासी भिक्षुओंको लेकर ।"

"किस वस्तुमें ?" "उत्तर-मनुष्य-धर्म (=दिव्य-शक्ति) में ।"

तब आयुष्मान् काश्यपने० । इसी प्रकारसे दोनों (भिक्षु, भिक्षुणी) के विनयोंको पूछा । आयुष्मान् उपालि पूछेका उत्तर देते थे ।

(३) आनन्दसे सूत्र पूछना

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने संघको ज्ञापित किया—

"आवुसो ! संघ मुझे सुने । यदि संघको पसन्द हो, तो मैं आयुष्मान् आनन्दको धर्म (=सूत्र) पूछूँ ?"

तब आयुष्मान् आ न न्द ने संघको ज्ञापित किया—

"भन्ते ! संघ मुझे सुने । यदि संघको पसन्द हो, तो मैं आयुष्मान् महाकाश्यपसे पूछे गये धर्मका उत्तर दूँ ?"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"आवुस आनन्द ! 'ब्र ह्म जा ल'[3] (सूत्र) को कहाँ भाषित किया ?"

"रा ज गृ ह और ना ल न्दा के बीचमें, अ म्ब ल ट्ठि का के राजागारमें ।"

"किसको लेकर ?"

"सुप्रिय परिव्राजक और ब्रह्मदत्त माणवकको लेकर ।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने 'ब्रह्मजाल' के निदानको भी पूछा, पुद्गलको भी पूछा ।

"आवुस आनन्द ! '[4]सा म ञ्ञ (=श्रामण्य) फल'को कहाँ भाषित किया ?"

"भन्ते ! राजगृहमें जी व क म्ब-वनमें ।"

"किसके साथ ?"

---

[1]देखो बुद्धचर्या पृष्ठ ३०८ । [2]देखो बुद्धचर्या पृष्ठ ३१२ ।
[3]दीघनिकायका प्रथम सूत्र । [4]देखो दीघनिकायका द्वितीय सूत्र ।

"अ जा त-श त्रु वैदेहिपुत्रके साथ।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने 'सामञ्ञ-फल'-सुत्तके निदानको भी पूछा, पुद्गलको भी पूछा। इसी प्रकारसे पाँचों निकायोंको पूछा; पूछे पूछेका आयुष्मान् आनन्दने उत्तर दिया।

§२–निर्वाणके समय आनन्दकी भूल

(१) छोटे छोटे भिक्षु-नियमोंका नाम न पूछना

तब आयुष्मान् आनन्दने स्थविर-भिक्षुओंसे कहा—

"भन्ते! भगवान्‌ने परिनिर्वाणके समय ऐसा कहा—'आनन्द! इच्छा होनेपर संघ मेरे न रहनेके बाद, क्षुद्र-अनुक्षुद्र (=छोटे छोटे) शिक्षापदों (=भिक्षु-नियमों)को हटा दे।"

"आवुस आनन्द! तूने भगवान्‌को पूछा?'—'भन्ते! किन क्षुद्र-अनुक्षुद्र शिक्षापदों को?"

"भन्ते! मैंने भगवान्‌से नहीं पूछा०।"

किन्हीं किन्हीं स्थविरोंने कहा—चार पाराजिकाओंको छोळकर बाकी शिक्षापद क्षुद्र-अनुक्षुद्र है। किन्हीं किन्हीं स्थविरोंने कहा—चार पाराजिकायें, और तेरह संघादिशेषोंको छोळकर, बाकी०। ०चार पाराजिकायें, और तेरह संघादिशेषों, और दो अनियतोंको छोळकर बाकी०। ०पाराजिका० संघादिशेष० अनियत और तीस नैसर्गिक-प्रायश्चित्तिकोंको छोळकर०। ०पाराजिका० संघादिशेष० अनियत० नैसर्गिक प्रायश्चित्तिक और बानवे प्रायश्चित्तिकोंको छोळकर०। ० ० और चार प्राति-देश-नीयोंको छोळकर०[१]।

(२) किसी भी भिक्षु-नियमको न छोळाजाय

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने संघको ज्ञापित किया—

ज्ञ प्ति—"आवुसो! संघ मुझे सुने। हमारे शिक्षापद गृही-गत भी है (=गृहस्थ भी जानते हैं)—'यह तुम शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको विहित (=कल्प्य) है, यह नहीं विहित है।' यदि हम क्षुद्र-अनुक्षुद्र शिक्षापदोंको हटायेंगे, तो कहनेवाले होंगे—'श्रमण गौतमने धूयेंके कालिख जैसा शिक्षापद प्रज्ञप्त किया, जबतक इनका शास्ता रहा, तब तक यह शिक्षापद पालते रहे, जब इनका शास्ता परिनिर्वृत्त हो गया; तब यह शिक्षापदोंको नहीं पालते।' यदि संघको पसंद हो तो संघ अ-प्रज्ञप्त (=अविहित)को न प्रज्ञापन (=विधान) करे, प्रज्ञप्तका न छेदन करे। प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंमें वर्तें—यह ज्ञप्ति (=सूचना) है—

अ नु श्रा व ण—"आवुसो! संघ सुने० प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंमें वर्तें। जिस आयुष्मान्‌को अ-प्रज्ञप्तका न प्रज्ञापन, प्रज्ञप्तका न छेदन, प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंको ग्रहणकर वर्तना पसन्द हो, वह चुप रहे, जिसको नहीं पसन्द हो वह बोले।

० धा र ण:—"संघ न अप्रज्ञप्तका प्रज्ञापन करता है, न प्रज्ञप्तका छेदन करता है०। प्रज्ञप्तिके अनुसार ही शिक्षापदोंको ग्रहणकर वर्तता है—(यह) संघको पसन्द है, इसलिये मौन है—ऐसा धारण करता हूँ।"

तब स्थविर भिक्षुओंने आयुष्मान् आ न न्द से कहा—

---

[१]देखो भिक्खुपातिमोक्ख (पृष्ठ ८-२६)।

"आवुस आनन्द ! यह तूने बुरा किया (=दुक्कट), जो भगवान्को नहीं पूछा—'भन्ते ! कौनसे हैं वह क्षुद्र-अनुक्षुद्र शिक्षापद । अतः अब तू दुक्कटकी देशनाकर' ।"

"भन्ते ! मैंने याद न होनेसे भगवान्को नहीं पूछा—'भन्ते ! कौनसे हैं० । इसे मैं दुक्कट नहीं समझता । किन्तु आयुष्मानोंके ख्यालसे देशना (=क्षमा-प्रार्थना) करता हूँ ।"

(३) आनन्दकी कुछ और भूलें

(१) "यह भी आवुस आनन्द ! तेरा दुष्कृत है, जो तूने भगवान्की वर्षाशाटी (=वर्षाऋतुमें नहानेके कपळे) को (पैरसे) दाबकर सिया, इस दुष्कृतकी देशनाकर ।"

"भन्ते ! मैंने अगौरवके ख्यालसे भगवान्की वर्षाकी लुंगीको आक्रमणकर नहीं सिया, इसे मैं दुष्कृत नहीं समझता; किन्तु आयुष्मानोंके ख्यालसे देशना (=क्षमा-प्रार्थना) करता हूँ ।"

(२) "यह भी आवुस आनन्द ! तेरा दुष्कृत है, जो तूने प्रथम भगवान्के शरीरको स्त्रीसे[1] वन्दना करवाया, रोती हुई उन स्त्रियोंके आँसुओंसे भगवान्का शरीर लिप्त होगया, इस दुष्कृतकी देशना कर ।"

"भन्ते ! वि(=अति)-कालमें न हो—इस (ख्याल)से मैंने भगवान्के शरीरको प्रथम स्त्रीसे वन्दना करवाया, मैं उसे दुष्कृत नहीं समझता० ।"

(३) "यह भी आवुस आनन्द ! तेरा दुष्कृत है, जो तूने भगवान्के उल्लसित होते समय भगवान्के उदार (=ओलारिक) अवभास करनेपर, भगवान्से नहीं प्रार्थना की—'भन्ते ! बहुजन-हितार्थ बहुजन-सुखार्थ, लोकानुकंपार्थ, देव-मनुष्योंके अर्थ=हित=सुखके लिये भगवान्-कल्पभर ठहरें, सुगत कल्पभर ठहरें ।' इस दुष्कृतकी देशना कर ।"

"मैंने भन्ते ! मारसे परि-उत्थित-चित्त (भ्रममें) होनेसे, भगवान्से प्रार्थना नहीं की० । इसे मैं दुष्कृत नहीं समझता ० ।"

(४) "यह भी आवुस आनन्द ! तेरा दुष्कृत है, जो तूने तथागतके बतलाये धर्म (=धर्म-विनय)में स्त्रियोंकी प्रव्रज्याके लिये उत्सुकता पैदा की । इस दुष्कृतकी देशना कर ।"

"भन्ते ! मैंने—'यह महाप्रजापती गौतमी भगवान्की मौसी, आपादिका=पोषिका, क्षीरदायिका है, जननीके मरनेपर स्तन पिलाया' (ख्यालकर) तथागत-प्रवेदित धर्ममें स्त्रियोंकी प्रव्रज्याके लिये उत्सुकता पैदा की । मैं इसे दुष्कृत नहीं समझता, किन्तु० ।"

§३—आयुष्मान् पुराणका संगीति-पाठकी पाबन्दीसे इन्कार

उस समय पाँच सौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ आयुष्माम् पुराण दक्षिणागिरि[2]में चारिका कर रहे थे । आयुष्मान् पुराण स्थविर-भिक्षुओंके धर्म और विनयके संगायन समाप्त होजानेपर, दक्षिणागिरिमें इच्छानुसार विहरकर, जहाँ राजगृहमें कलंदक-निवापका वेणुवन था, जहाँ पर स्थविर भिक्षु थे, वहाँ गये । जाकर स्थविर भिक्षुओंके साथ प्रतिसंमोदनकर, एक ओर बैठे । एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् पुराणको स्थविर भिक्षुओंने कहा—

"आवुस पुराण ! स्थविरोंने धर्म और विनयका संगायन किया है। आओ तुम (भी) संगीतिको (मानो) ।"

---

[1] निर्वाणके समय (देखो बुद्धचर्या पृष्ठ ५३९) । [2] राजगिरके दक्खिनवाला पहाळी प्रदेश ।

"आवुस ! स्थविरोंने धर्म और विनयको सुन्दर तौरसे संगायन किया है। तो भी जैसा मैंने भगवान्‌के मुँहसे सुना है, मुखसे ग्रहण किया है, वैसा ही मैं धारण करूँगा।"

§४–उदयनको उपदेश और छन्नको ब्रह्मदंड

तब आयुष्मान् आनन्दने स्थविर-भिक्षुओंसे यह कहा—

"भन्ते ! भगवान्‌ने परिनिर्वाणके समय यह कहा—'आनन्द ! मेरे न रहनेके बाद संघ छन्न (=छंदक) को ब्रह्मदंडकी आज्ञा दे।"

"आवुस ! पूछा तुमने ब्रह्मदंड क्या है ?"

"भन्ते ! मैंने पूछा०।—'आनन्द ! छन्न भिक्षु जैसा चाहे वैसा बोले; भिक्षु छन्नको न बोलें, न उपदेश करें, न अनुशासन करें।"

"तो आवुस आनन्द ! तू ही छन्न भिक्षुको ब्रह्मदंडकी आज्ञा दे।"

"भन्ते ! मैं छन्नको ब्रह्मदंडकी आज्ञा करूँगा, लेकिन वह भिक्षु चंड परुष (=कटुभाषी) है।"

"तो आवुस आनन्द ! तुम बहुतसे भिक्षुओंके साथ जाओ।"

"अच्छा भन्ते।"...कहकर आयुष्मान् आनन्द पाँचसौ भिक्षुओंके महाभिक्षुसंघके साथ नाव-पर कौशाम्बी गये।

(१) उदयन और उसके रनिवासको उपदेश

२—कौशाम्बी

नावसे उतरकर राजा उदयनके उद्यानके समीप एक वृक्षके नीचे बैठे। उस समय राजा उदयन रनिवास (=अवरोध)के साथ बागकी सैर कर रहा था। राजा उदयनके अवरोधने सुना—हमारे आचार्य आर्य आनन्द उद्यानके समीप एक पेळके नीचे बैठे हैं। तब अवरोधने राजा उदयनसे कहा—

"देव ! हमारे आचार्य आर्य आनन्द उद्यानके समीप एक पेळके नीचे बैठे हैं, देव ! हम आर्य आनन्दका दर्शन करना चाहती हैं।"

"तो तुम श्रमण आनन्दका दर्शन करो।"

तब ... अवरोध जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ ... जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए ... रनिवासको आयुष्मान् आनन्दने धार्मिक कथासे संदर्शित=प्रेरित=समुत्तेजित, संप्रहर्षित किया। तब राजा उदयनके अवरोधने आयुष्मान् आनन्दको पाँच सौ चादरें (=उत्तरासंग) प्रदान कीं। तब अवरोध आयुष्मान् आनन्दके भाषणको अभिनन्दित कर, अनुमोदित कर, आसनसे उठ आयुष्मान् आनन्दको अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर, जहाँ राजा उदयन था वहाँ चला गया। राजा उदयनने दूरसे ही अवरोधको आते देखा, देखकर अवरोधसे कहा—

"क्या तुमने श्रमण आनन्दका दर्शन किया ?" "दर्शन किया देव ! हमने...आनन्दका।"

"क्या तुमने श्रमण आनन्दको कुछ दिया ?" "देव ! हमने पाँच सौ...चादरें दीं।"

राजा उदयन हैरान होता था, खिन्न होता था=विपाचित होता था—'क्यों श्रमण आनन्दने इतने अधिक चीवरोंको लिया, क्या श्रमण आनन्द कपळेका व्यापार (=दुस्सवणिज्ज) करेगा, या दूकान खोलेगा।'

तब राजा उदयन जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया, जाकर आयुष्मान् आनन्दके साथ सम्मोदन कर...एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे राजा उदयनने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा—

"हे आनन्द ! क्या हमारा अवरोध यहाँ आया था ?" "आया था महाराज ! यहाँ तेरा अवरोध।"

"क्या आपने आनन्दको कुछ दिया !" "महाराज ! पाँच सौ चादरें दीं।"

"आप आनन्द ! इतने अधिक चीवर क्या करेंगे ?" "महाराज ! जो फटे चीवर वाले भिक्षु हैं, उन्हें बाँटेंगे।"

"और...जो वह पुराने चीवर हैं, उन्हें क्या करेंगे ?" "महाहाराज ! बिछौनेकी चादर बनायेंगे।"

"...जो वह पुराने बिछौनेकी चादरें हैं, उन्हें क्या करेंगे ?" "...उनसे गद्देका गिलाफ बनायेंगे।"

"...जो वह पुराने गद्देके गिलाफ हैं, उन्हें क्या करेंगे ?" "...उनका महाराज ! फर्श बनावेंगे।"

"...जो वह पुराने फर्श हैं, उनका क्या करेंगे ?" "...उनका महाराज ! पायंदाज बनावेंगे।"

"...जो वह पुराने पायंदाज हैं, उनका क्या करेंगे ?" "...उनका महाराज ! झाळन बनावेंगे।"

"...जो वह पुराने झाळन हैं०?" "...उनको...कूटकर, कीचळके साथ मर्दनकर पलस्तर करेंगे।"

तब राजा उदयनने—'यह सभी शाक्यपुत्रीय श्रमण कार्यकारण देखकर काम करते हैं, व्यर्थ नहीं जाने देते'—(कह), आयुष्मान् आनन्दको पाँच-सौ और चादरें प्रदान कीं। यह आयुष्मान् आनन्दको एक हजार चीवरोंकी प्रथम चीवर-भिक्षा प्राप्त हुई।

(२) छन्नको ब्रह्मदण्ड

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ घो पि ता रा म था, वहाँ गये, जाकर बिछे आसनपर बैठे। आयुष्मान् छन्न जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गये, जाकर आयुष्मान् आनन्दको अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् छ न्न से आयुष्मान् आनन्दने कहा—

"आवुस ! छन्न ! संघने तुम्हें, ब्रह्मदंडकी आज्ञा दी है।"

"क्या है भन्ते आनन्द ! ब्रह्मदंड ?"

"तुम आवुस छन्न ! भिक्षुओंको जो चाहना सो बोलना, किन्तु भिक्षुओंको तुमसे नहीं बोलना होगा, नहीं अनुशासन करना होगा।"

"भन्ते आनन्द ! मैं तो इतनेसे मारा गया, जो कि भिक्षुओंको मुझसे नहीं बोलना होगा०।" —(कह) वहीं मूर्छित होकर गिर पळे। तब आयुष्मान् छन्न ब्रह्मदण्डसे वेधित, पीळित, जुगुप्सित हो, एकाकी, निस्संग, अ-प्रमत्त, उद्योगी, आत्मसंयमी हो, विहार करते, जल्दी ही जिसके लिये कुल-पुत्र···प्रव्रजित होते हैं; उस सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं जानकर=साक्षात्कारकर=प्राप्तकर विहरने लगे। और आयुष्मान् छन्न अर्हतोंमें एक हुए।

तब आयुष्मान् छन्न अर्हत्-पदको प्राप्तहो जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गये, जाकर आयुष्मान् आनन्दसे बोले—

"भन्ते आनन्द ! अब मुझसे ब्रह्मदण्ड हटा लें।"

"आवुस छन्न ! जिस समय तूने अर्हत्त्वका साक्षात्कार किया, उसी समय ब्रह्म-दण्ड हट गया।"

इस विनय-संगतिमें पाँचसौ भिक्षु—न कम न वेशी थे। इसलिये यह विनय-संगीति 'पंच शतिका' कही जाती है।

ग्यारहवाँ पंचसतिकाक्खन्धक समाप्त ॥११॥

१२—सप्तशतिका-स्कंधक

१—वैशालीमें विनय-विरुद्ध आचार । २—दोनों ओरसे पक्ष-संग्रह । ३—द्वितीय संगीतिकी कार्यवाही ।

§१—वैशालीमें विनय-विरुद्ध आचार

१—*वैशाली*

(१) वैशालीमें पैसे रुपयेका चढ़ावा

उस समय भगवान्‌के परिनिर्वाणके सौ वर्ष बीतनेपर, वैशाली-निवासी वज्जिपुत्तक (=वृज्जि-पुत्र) भिक्षु दश वस्तुओंका प्रचार करते थे—

"भिक्षुओ ! (१) शृङ्गि-लवण-कल्प विहित है। (२) द्वि-अंगुल-कल्प०। (३) ग्रामान्तर-कल्प०। (४) आवास-कल्प०। (५) अनुमति-कल्प०। (६) आचीर्ण-कल्प०। (७) अमथित-कल्प०। (८) जलोगीपान०। (९) अ-दशक० (१०) जातरूप-रजत०।

उस समय आयुष्मान् यशकाकण्डक-पुत्त वज्जीमें चारिका करते जहाँ वैशाली थी वहाँ पहुँचे। आयुष्मान् यश० वैशालीमें महावनकी कूटागार-शालामें विहार करते थे। उस समय वैशालीके वज्जि-पुत्तक भिक्षु उपोसथके दिन काँसेकी थालीको पानीसे भर भिक्षु-संघके बीचमें रखकर, आने जाने वाले वैशालीके उपासकोंको कहते थे—

"आवुसो ! संघको कार्षापण[1] दो, अधेला=अर्द्ध-कार्षापण दो, पाई (=पाद-कार्षापण) दो, मासा (=माषक रूप) भी दो। संघके परिष्कार (=सामान) का काम होगा।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् यश० ने वैशालीके उपासकोंसे कहा—"मत आवुसो ! संघको कार्षापण (=पैसा)० दो, शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको जातरूप (=सोना) रजत (=चाँदी) विहित नहीं हैं, शाक्यपुत्रीय श्रमण जात-रूप रजत उपभोग नहीं कर सकते, ०जातरूप-रजत स्वीकार नहीं कर सकते। शाक्यपुत्रीय श्रमण जात-रूप-रजत त्यागे हुये हैं।...। आयुष्मान् यश०के ऐसा कहनेपर भी ० उपासकोंने संघको कार्षापण० दिया ही। तब वैशालिक वज्जि-पुत्तक भिक्षुओंने उस रातके बीतनेपर, भोजनके समय हिस्सा लगाकर बाँट दिया। तब वैशालीके वज्जि-पुत्तक भिक्षुओंने आयुष्मान् यश काकण्डपुत्तसे कहा—

"आवुस यश ! यह हिरण्य (=अशर्फी) का हिस्सा तुम्हारा है।"

"आवुसो ! मेरा हिरण्यका हिस्सा नहीं, मैं हिरण्यको उपभोग नहीं कर सकता।"

(२) पैसा न लेनेसे यशका प्रतिसारणीय कर्म

तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने—'यह यशकाकण्डकपुत्त, श्रद्धालु=प्रसन्न उपासकोंको

[1] कार्षापण अर्ध कार्षापण, पाद कार्षापण, माषक रूप—यह उस समयके ताँबेके सिक्के थे।

निन्दता है, फटकारता है, अ-प्रसन्न करता है; अच्छा हम इसका प्रतिसारणीय[1] कर्म करें।' उन्होंने उनका प्रतिसारणीय कर्म किया। तब आयुष्मान् यश०ने वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो! भगवान्ने आज्ञा दी है कि प्रतिसारणीय कर्म किये गये भिक्षुको, अनुदूत देना चाहिये। आवुसो! मुझे (एक) अनुदूत भिक्षु दो।"

तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने सलाहकर ० यशको एक अनुदूत (=साथ जानेवाला) दिया। तब आयुष्मान् यश ० ने अनुदूत भिक्षुके साथ वैशालीमें प्रविष्ट हो, वैशालिक उपासकोंसे कहा—

"आयुष्मानो! मैं श्रद्धालु=प्रसन्न, उपासकोंको निन्दता हूँ, फटकारता हूँ, अप्रसन्न करता हूँ, जो कि मैं अधर्मको अधर्म कहता हूँ, धर्मको धर्म कहता हूँ, अविनयको अविनय कहता हूँ, विनयको विनय कहता हूँ? आवुसो! एक समय भगवान् श्रा व स्ती में अ ना थ-पिं डि क के आराम जे त व न में विहार करते थे। वहाँ आवुसो! भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—'भिक्षुओ! चंद्र-सूर्यको चार उपक्लेश (=मल) हैं, जिन उपक्लेशोंसे उपक्लिष्ट (मलिन) होनेपर, चंद्र-सूर्य न तपते हैं=न भासते हैं, न प्रकाशते हैं। कौनसे चार? भिक्षुओ! बादल, चंद्र-सूर्यका उपक्लेश है, जिस उपक्लेश-से ०। भिक्षुओ! महिका (=कुहरा) ०। धूमरज (=धूमकण) ०। राहु असुरेन्द्र (=ग्रहण) ०। इसी प्रकार भिक्षुओ! श्रमण ब्राह्मणके भी चार उपक्लेश हैं, जिन उपक्लेशोंसे उपक्लिष्ट हो श्रमण ब्राह्मण नहीं तपते ०। कौनसे चार? भिक्षुओ! (१) कोई कोई श्रमण ब्राह्मण सुरा पीते हैं, मेरय (=कच्ची शराब) पीते हैं, सुरा-मेरय-पानसे विरत नहीं होते। भिक्षुओ! यह प्रथम ० उपक्लेश है ०। (२) भिक्षुओ! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण मैथुनधर्म सेवन करते हैं, मैथुन-धर्मसे विरत नहीं होते। ० यह दूसरा०। (३) ०जातरूप-रजत उपभोग करते हैं, जातरूप-रजतके ग्रहणसे विरत नहीं होते०। (४) ०मिथ्या-जीविका करते हैं, मिथ्या-आजीवसे विरत नहीं होते। भिक्षुओ! यह चार श्रमणोंके उपक्लेश हैं०। जिन उपक्लेशोंसे उपक्लिष्ट हो श्रमण ब्राह्मण नहीं तपते ०।'

"आवुसो! भगवान्ने यह कहा। यह कहकर सुगतने फिर यह और कहा—
कोई कोई श्रमण ब्राह्मण राग-द्वेषसे लिप्त हो,
अविद्यासे ढँके पुरुष, प्रिय (वस्तुओं)को पसन्द करनेवाले ॥ (१) ॥
सुरा और कच्ची शराब पीते हैं, मैथुनका सेवन करते हैं।
(वह) अज्ञानी चाँदी और सोनेको सेवन करते हैं ॥ (२) ॥
कोई कोई श्रमण ब्राह्मण झूठी आजीविकासे जीवन बिताते हैं।
आदित्य-बंधु[2] मुनिने इन्हें उपक्लेश कहे हैं ॥ (३) ॥
जिन उपक्लेशोंसे उपक्लिष्ट हो यह श्रमण ब्राह्मण,
अशुद्ध और मलिन हो न तपते न भासते न विरोचते हैं" ॥ (४) ॥
अन्धकारसे घिरे तृष्णाके दास बंधनमें बँधे,
घोर कटसी[3] को बढ़ाते हैं (और) आवागमनमें पळते हैं" ॥ (५) ॥

(३) यशका अपना पक्ष मजबूत करना

"ऐसा कहनेवाला मैं श्रद्धालु, प्रसन्न आयुष्मान् उपासकोंको निन्दता हूँ० ? सो मैं अधर्मको अधर्म कहता हूँ०। एक समय आवुसो! भगवान् रा ज गृ ह में कलन्दक-निवापके वेणुवनमें विहार करते

---

[1] देखो महावग्ग ९§४।४ (पृष्ठ ३१४)। [2] सूर्य-वंशी।
[3] श्मशानमें बार बार जलना गळना।

थे। उस समय आवुसो ! राजान्तःपुर (=राज-दर्बार)में राज-सभामें एकत्रित लोगोंमें यह बात उठी—'शाक्यपुत्रीय श्रमण सोना-चाँदी (=जातरूप-रजत) उपभोग करते हैं स्वीकार करते हैं।' उस समय म णि चू ळ क ग्रामणी उस परिषद्में बैठा था। तब मणिचूळक ग्रामणीने उस परिषद्में कहा—मत आर्यो ! ऐसा कहो, शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको जातरूप-रजत नहीं कल्पित (=विहित, हलाल) है,०। वह मणि-सुवर्ण त्यागे हुए हैं, शाक्यपुत्रीय श्रमण, जातरूप रजत छोळे हुये हैं०।' आवुसो ! मणिचूळक ग्रामणी उस परिषद्को समझा सका। तब आवुसो ! मणिचूळक ग्रामणी उस परिषद्को समझाकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर...एक ओर बैठ...भगवान्से यह बोला—

"भन्ते ! राजान्तःपुरमें राजसभामें ० बात उठी ०। मैं उस परिषद्को समझा सका। क्या भन्ते ! ऐसा कहते हुये मैं भगवान्के कथितका ही कहनेवाला होता हूँ ? असत्यसे भगवान्का अभ्याख्यान् (=निन्दा)तो नहीं करता ? धर्मानुसार कथित कोई धर्म-वाद निन्दित तो नहीं होता ?"

"निश्चय ग्रामणी ! ऐसा कहनेसे तू मेरे कथितका कहनेवाला है ०, कोई धर्मवाद निन्दित नहीं होता। ग्रामणी ! शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको जातरूप-रजत विहित नहीं है ०। ग्रामणी ! जिसको जात-रूप-रजत कल्पित है, उसे पाँच काम-गुण भी कल्पित हैं, जिसको पाँच काम-गुण (=काम-भोग) कल्पित हैं, ग्रामणी ! तुम उसको बिल्कुल ही अ-श्रमण-धर्मी, अ-शाक्यपुत्रीय-धर्मी समझना। और मैं ग्रामणी ! ऐसा कहता हूँ, तिन-का चाहनेवाले (=तृणार्थी)को तृण खोजना होता है, शकटार्थीको शकट ०, पुरुषार्थीको पुरुष ०; किन्तु ग्रामणी ! किसी प्रकार भी मैं जातरूप-रजतको स्वादितव्य, पर्येषितव्य (=अन्वेषणीय) नहीं मानता।' ऐसा कहनेवाला मैं ० आयुष्मान् उपासकोंको निन्दता हूँ ०।"

"आवुसो ! एक समय उसी रा ज गृ ह में भगवान्ने आयुष्मान् उ प न न्द शाक्यपुत्रको लेकर, जातरूप-रजतका निषेध किया, और शिक्षापद (=भिक्षु-नियम) बनाया। ऐसा कहनेवाला मैं ०।"

ऐसा कहनेपर वै शा ली के उपसकोंने आयुष्मान् यश काकंडकपुत्तसे कहा—

"भन्ते ! एक आर्य यश ही शाक्यपुत्रीय श्रमण हैं, यह सभी, अश्रमण हैं, अ-शाक्यपुत्रीय हैं। आर्य यश ० वैशालीमें वास करें। हम आर्य यश ० के लिये चीवर; पिंडपात शयनासन ग्लान-प्रत्यय भैषज्य परिष्कारोंका प्रबन्ध करेंगे।"

तब आयुष्मान् यश ० वैशालीके उपासकोंको समझाकर, अनुदूत भिक्षुके साथ आरामको गये। तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने अनुदूत भिक्षुसे पूछा—

"आवुस ! क्या यश काकण्ड-पुत्तने वैशालिक उपासकोंसे क्षमा माँगी ?"

"आवुसो ! उपासकोंने हमारी निन्दाकी—एक आर्य यश ० ही श्रमण हैं, शाक्य-पुत्रीय हैं, हम सभी अश्रमण, अशाक्य-पुत्रीय बना दिये गये।"

तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने (विचारा)—'आवुसो ! यह यश काकण्डक-पुत्त हमारी असम्मत (बात)को गृहस्थोंको प्रकाशित करता है; अच्छा तो हम इसका उ त्क्षे प णी य[1] कर्म करें।' वह उनका उत्क्षेपणीय-कर्म करनेके लिये एकत्रित हुए। तब आयुष्मान् यश आकाशमें होकर कौशाम्बी जा खळे हुए।

---

[1]देखो महावग्ग ९§४।५ (पृष्ठ ३१४)।

§२—दोनों ओरसे पक्ष-संग्रह

२—कौशाम्बी

(१) यशका अवन्ती-दक्षिणापथके भिक्षुओं और संभूत साणवासीको अपने पक्षमें करना

तब आयुष्मान् यश काण्डक-पुत्तने पा वा वासी और अ व न्ती-द क्षि णा प थ-वासी भिक्षुओंके पास दूत भेजा—'आयुष्मानो ! आओ, इस झगळेको मिटाओ, सामने अधर्म प्रकट हो रहा है, धर्म हटाया जा रहा है, ० अविनय प्रकट होरहा है ०,०[1] ।

उस समय आयुष्मान् सं भू त सा ण वा सी अ हो गं ग-प र्व त पर वास करते थे। तब आयुष्मान् यश० जहाँ अहोगंग-पर्वत था, जहाँ आ० संभूत थे, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् संभूत साणवासीको अभिवादनकर...एक ओर बैठ आयुष्मान् संभूत साणवासीसे बोले—

"भन्ते ! यह वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु वैशालीमें दश वस्तुओंका प्रचार कर रहे हैं ०। अच्छा हो भन्ते ! हम इस झगळे (=अधिकरण)को मिटावें ०।"

"अच्छा आवुस !"

तब साठ पा वे य क भिक्षु—सभी आरण्यक, सभी पिंडपातिक, सभी पाँसुकूलिक, सभी त्रिचीवरिक, सभी अर्हत्, अहोगंग-पर्वत[2] पर एकत्रित हुए। अ व न्ती-द क्षि णा प थ के अट्ठासी भिक्षु—कोई आरण्यक, कोई पिंडपातिक, कोई पाँसुकूलिक, कोई त्रिचीवरिक, सभी अर्हत्, अहोगंग-पर्वतपर एकत्रित हुये। तब मंत्रणा करते हुये स्थविर भिक्षुओंको यह हुआ—'यह झगळा (=अधिकरण) कठिन और भारी है; हम कैसे (ऐसा) पक्ष (=सहायक) पावें, जिससे कि हम इस अधिकरणमें अधिक बलवान् होवें।

उस समय बहुश्रुत, आगतागम, धर्मधर, विनयधर, मात्रिकाधर (=अभिधर्मज्ञ), पंडित, व्यक्त, मेधावी, लज्जी, कौकृत्यक (=संकोची), शिक्षाकाम आयुष्मान् रे व त सो रे य्य[3] में वास करते थे;—'यदि हम आयुष्मान् रेवतको पक्षमें पावें, तो हम...इस अधिकरणमें अधिक बलवान् होंगे।'

आयुष्मान् रेवतने अमानुष, विशुद्ध, दिव्य श्रोत्र-धातुसे स्थविर भिक्षुओंकी मंत्रणा सुन ली। सुनकर उन्हें ऐसा हुआ—'यह अधिकरण कठिन और भारी है, मेरे लिये अच्छा नहीं कि मैं ऐसे अधिकरण (=विवाद)में न फसूँ; अब वह भिक्षु आवेंगे उनसे घिरा मैं सुखसे नहीं जा सकूँगा, क्यों न मैं आगे ही जाऊँ।' तब आयुष्मान् रेवत सोरेय्यसे संकाश्य[4] गये। स्थविर भिक्षुओंने सोरेय्य जाकर पूछा— 'आयुष्मान् रेवत कहाँ है ?' उन्होंने कहा—आयुष्मान् रेवत सं का श्य गये।' तब आयुष्मान् रेवत संकाश्यसे का न्य कु ब्ज (=कान्यकुब्ज, कन्नौज) गये। स्थविर भिक्षुओंने संकाश्य जाकर पूछा—'आयुष्मान् रेवत कहाँ हैं ?' उन्होंने कहा—'आयुष्मान् रेवत कान्यकुब्ज गये।' आयुष्मान् रेवत कान्यकुब्जसे उ दु म्ब र गये।०।०उदुम्बरसे अग्गलपुर गए।०। अग्गलपुरसे स ह जा ति[5] गये।०। तब स्थविर भिक्षु आयुष्मान् रेवतसे सहजातिमें जा मिले।

३—सहजाति

(२) रेवतको पक्षमें करना

आयुष्मान् संभूत सा ण वा सी ने आयुष्मान् यश०से कहा—"आवुस ! यश ! यह आयुष्मान् रेवत बहुश्रुत०शिक्षाकामी हैं। यदि हम आयुष्मान् रेवतको प्रश्न पूछें, तो आयुष्मान् रेवत एक

---

[1] चुल्ल ११§१।१ (पृष्ठ ५४२)। [2] हरद्वारके पास कोई पर्वत (?)। [3] सोरों (जिला, एटा)। [4] संकिसा (मोटा स्टेशन E.I.R. के पास)। [5] भीटा, जि० इलाहाबाद ।

ही प्रश्नमें सारी रात बिता सकते हैं। अब आयुष्मान् रेवत अन्तेवासी स्वरभाणक (=स्वरसहित सूत्रों को पढ़नेवाले) भिक्षुको (सस्वर पाठके लिये) कहेंगे। स्वर-भणन समाप्त होनेपर, आयुष्मान् रेवतके पास जाकर इन दश वस्तुओंको पूछो।"

"अच्छा भन्ते !"

तब आयुष्मान् रेवतने अन्तेवासी (=शिष्य) स्वरभाणक भिक्षुको आज्ञा (=अध्येषणा) की। तब आयुष्मान् यश उस भिक्षुके स्वरभणन समाप्त होनेपर, जहाँ आयुष्मान् रेवत थे, वहाँ गये। जाकर०रेवतको अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठ आयुष्मान् यश०ने आयुष्मान् रेवतसे कहा—

(१) "भन्ते ! शृंगि-लवण-कल्प विहित है ?"

"क्या है आवुस ! यह शृंगि-लवण-कल्प ?"

"भन्ते ! सींगमें नमक रखकर पास रक्खा जा सकता है, कि जहाँ अलोना होगा, लेकर खायेंगे ? क्या यह विहित है ?" "आवुस ! नहीं विहित है।"

(२) "भन्ते ! द्वयंगुल-कल्प विहित है ?" "क्या है अवुस ! द्वयंगुल-कल्प ?"

"भन्ते ! (दोपहरको) दो अंगुल छायाको बिताकर भी विकालमें भोजन करना क्या विहित है ?" "आवुस नहीं विहित है।"

(३) "भन्ते ! क्या ग्रामान्तर-कल्प विहित है ?" "क्या है आवुस ! ग्रामान्तर-कल्प ?"

"भन्ते ! भोजन कर चुकनेपर, छक लेनेपर गाँवके भीतर भोजन करने जाया जा सकता है ?" "आवुस ! नहीं. . .है।"

(४) "भन्ते ! क्या आवास-कल्प विहित है ?" "क्या है आवुस ! आवास-कल्प ?"

"भन्ते ! 'एक सीमाके बहुतसे आवासोंमें उपोसथको करना' क्या विहित है ?"

"आवुस ! नहीं विहित है ॥

(५) "भन्ते ! क्या अनुमति-कल्प विहित है ?" "क्या है आवुस ! अनुमति-कल्प ?"

"भन्ते ! (एक) वर्गके संघका (विनय-)कर्म करना, 'यह ख्याल करके, कि जो भिक्षु (पीछे) आवेंगे, उनको स्वीकृति दे देंगे, क्या यह विहित है ?"

"आवुस ! नहीं विहित है।"

(६) "भन्ते ! क्या आचीर्ण-कल्प विहित है ?" "क्या है आवुस ! आचीर्ण-कल्प ?"

"भन्ते ! 'यह मेरे उपध्यायने आचरण किया है, यह मेरे आचार्यने आचरण किया है' (ऐसा समझकर) किसी बातका आचरण करना, क्या विहित है ?"

"आवुस ! कोई कोई आचीर्ण-कल्प विहित हैं, कोई कोई. . .अविहित हैं।"

(७) "भन्ते ! अमथित-कल्प विहित है ?" "क्या है आवुस ! अमथित-कल्प ?"

"भन्ते ! जो दूध दूध-पनको छोळ चुका है, दहीपनको नहीं प्राप्त हुआ है, उसे भोजन कर चुकनेपर, छक लेनेपर, अधिक पीना क्या विहित है ?" "आवुस ! नहीं विहित।"

(८) "भन्ते ! जलोगी-पान विहित है ?" "क्या है आवुस ! जलोगी ?"

"भन्ते ! जो सुरा अभी चुवाई नहीं गई है, जो सुरापनको अभी प्राप्त नहीं हुई है; उसका पीना क्या विहित है ?" "आवुस ! विहित नहीं है।"

(९) "भन्ते ! अदशक निषीदन (=बिना मगजीका आसन) विहित है ?"

"आवुस ! नहीं विहित है।"

(१०) "भन्ते ! जातरूप-रजत (=सोना चाँदी) विहित है ?" "आवुस ! नहीं विहित है।"

"भन्ते वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु वैशालीमें इन दश वस्तुओंका प्रचार कर रहे हैं। अच्छा हो भन्ते ! हम इस अधिकरणको मिटावें० ।"

"अच्छा आवुस !" (कह) आयुष्मान् रेवतने आयुष्मान् यश० को उत्तर दिया।

प्रथम भाणवार समाप्त ॥१॥

(३) वैशालोके भिक्षुओंका भी प्रयत्न

वै शा ली के व ज्जि पु त्त क भिक्षुओंने सुना, यश काकण्डकपुत्त, इस अधिकरणको मिटानेके लिये पक्ष ढूँढ रहा है। तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंको यह हुआ—'यह अधिकरण कठिन है, भारी है; कैसा पक्ष पावें कि इस अधिकरणमें हम अधिक बलवान् हों।'

तब वैशालिकवज्जिपुत्तक भिक्षुओंको यह हुआ—'यह आयुष्मान् रेवत बहुश्रुत० हैं; यदि हम आयुष्मान् रेवतको पक्ष (में) पावें, तो हम इस अधिकरणमें अधिक बलवान् हो सकेंगे। तब वैशा-लीवासी वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने श्रमणोंके योग्य बहुत सा परिष्कार (=सामान) सम्पादित किया—पात्र भी, चीवर भी, निषीदन (=आसन, बिछौना) भी, सूचीघर (=सूईकी फोंफी) भी, कायबंधन (=कमर-बंद) भी, परिस्रावण (=जलछक्का) भी, धर्मकरक (=गळुवा) भी। तब ०वज्जिपुत्तक भिक्षु उन श्रमण-योग्य परिष्कारोंको लेकर नावसे सहजातीको दौळे। नावसे उतरकर एक वृक्षके नीचे भोजन करने लगे।

तब एकान्तमें स्थित, ध्यानमें बैठे आयुष्मान् साढ़के चित्तमें इस प्रकारका वितर्क उत्पन्न हुआ—'कौन भिक्षु धर्मवादी हैं ? पावेयक (=पश्चिमवाले) या प्राचीनके (=पूर्ववाले) ?' तब धर्म और विनयकी प्रत्यवेक्षासे आयुष्मान् साढ़को ऐसा कहा—

"प्राचीनक भिक्षु अधर्मवादी हैं, पावेयक भिक्षु धर्मवादी हैं।"···।

तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु उस श्रमण-परिष्कारको लेकर, जहाँ आयुष्मान् रेवत थे, वहाँ··जाकर आयुष्मान् रेवतसे बोले—

"भन्ते ! स्थविर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें—पात्र भी० ।"

"नहीं आवुसो ! मेरे पात्र-चीवर पूरे हैं।"···।

(४) उत्तरका वैशालीवालोंके पक्षमें होजाना

उस समय बीस वर्षका उत्तर नामक भिक्षु, आयुष्मान् रे व त का उपस्थाक (=सेवक) था। तब ०व ज्जि पु त्त क भिक्षु, जहाँ आयुष्मान् उ त्त र थे, वहाँ गये, जाकर आयुष्मान् उत्तरको बोले—

"आयुष्मान् उत्तर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें—पात्र भी० ।"

"नहीं आवुसो ! मेरे पात्रचीवर पूरे हैं।"

"आवुस उत्तर ! लोग भगवान्के पास श्रमण-परिष्कार ले जाया करते थे, यदि भगवान् ग्रहण करते थे, तो उससे वह सन्तुष्ट होते थे; यदि भगवान् नहीं ग्रहण करते थे, तो आयुष्मान् आनन्दके पास ले जाते थे—'भन्ते ! स्थविर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें, जैसे भगवान्ने ग्रहण किया, वैसा ही (आपका ग्रहण) होगा।' आयुष्मान् उत्तर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें, यह स्थविर (=रेवत)के ग्रहण करने जैसा ही होगा।"

तब आयुष्मान् उत्तरने ०वज्जिपुत्तक भिक्षुओंसे दबाये जानेपर एक चीवर ग्रहण किया—

"कहो, आवुसो ! क्या काम है, कहो ?"

"आयुष्मान् उत्तर स्थविरको इतनाही कहें—'भन्ते ! स्थविर (आप) संघके बीचमें इतनाही कह दें—प्राचीन (=पूर्वीय) देशों (जनपदों)में बुद्ध भगवान् उत्पन्न होते हैं, प्राचीनक (=पूर्वीय) भिक्षु धर्मवादी हैं, पावेयक भिक्षु अधर्मवादी हैं।"

"अच्छा आवुस !" कह···आयुष्मान् उत्तर जहाँ आयुष्मान् रेवत थे, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् रेवतसे बोले—

"भन्ते ! (आप) स्थविर, संघके बीचमें इतनाही कहदें—प्राचीन देशमें बुद्ध भगवान् उत्पन्न होते है, प्राचीनक भिक्षु धर्मवादी हैं, और पावेयक भिक्षु अधर्म-वादी।"

"भिक्षु ! तू मुझे अधर्ममें नियोजित कर रहा है" (कहकर) स्थविरने आयुष्मान् उत्तरको हटा दिया। तब ०वज्जिपुत्तकोंने आयुष्मान् उत्तरसे कहा—

"आवुस उत्तर ! स्थविरने क्या कहा ?"

"आवुस ! हमने बुरा किया। 'भिक्षु ! तू मुझे अधर्ममें नियोजित कर रहा है'—(कह कर) स्थविरने मुझे हटा दिया।"

"आवुस ! क्या तुम वृद्ध, बीस-वर्ष (के भिक्षु) नहीं हो ?" "हूँ आवुस !"

"तो हम (तुम्हें) बळा मानकर ग्रहण करते हैं।"

उस अधिकरणका निर्णय करनेकी इच्छासे संघ एकत्रित हुआ। तब आयुष्मान् रेवतने संघको ज्ञापित किया—

"आवुस ! संघ मुझे सुने—यदि हम इस विवाद (=अधिकरण)को यहाँ शमन करेंगे, तो शायद प्रतिवादी (=मूलदायक) भिक्षु कर्म(=न्याय)के लिये अमान्य (=उत्कोटन) करेंगे। यदि संघको पसन्द हो, तो जहाँ यह विवाद उत्पन्न हुआ है, संघ वहीं इस विवादको शांत करें।"

तब स्थविर भिक्षु उस विवादके निर्णयके लिये वैशाली चले।

४—वैशाली

(५) सर्वकामीका यशके पक्षमें होना

उस समय पृथिवीपर आयुष्मान् आ न न्द के शिष्य स र्व का मी नामक संघ-स्थविर, उपसंपदा (=भिक्षुदीक्षा) होकर एकसौ बीस वर्षके, वै शा ली में वास करते थे। तब आयुष्मान् रेवतने आ० संभूत साणवासी (=श्मशान वासी, या सन-वस्त्र-धारी) से कहा—

"आवुस ! जिस विहारमें सर्वकामी स्थविर रहते हैं, मैं वहाँ जाऊँगा, सो तुम समयपर आयुष्मान् सर्वकामीके पास आकर इन दश वस्तुओंको पूछना।" "अच्छा, भन्ते !"

तब आयुष्मान् रेवत, जिस विहारमें आयुष्मान् सर्वकामी थे, उस विहारमें गये। कोठरी (=गर्भ)के भीतर आयुष्मान् सर्वकामीका आसन बिछा हुआ था, कोठरीके बाहर आयुष्मान् रेवतका। तब आयुष्मान् रेवत—'यह स्थविर वृद्ध (होकर भी) नहीं लेट रहे हैं'—(सोचकर) नहीं लेटे। आयुष्मान् सर्वकामी भी—यह नवागत भिक्षु थका (होनेपरभी) नहीं लेट रहा है—(सोच कर) नहीं लेटे। तब आयुष्मान् सर्वकामीने रातके प्रत्यूष (=भिनसार)के समय आयुष्मान् रेवतसे यह कहा—

"तुम आजकल किस··· विहारसे (=ध्यान) अधिक विहरते हो ?"

"भन्ते ! मैत्री विहारसे मैं इस समय अधिक विहरता हूँ।"

"कुल्लक (=बेळा) विहारसे तुम··· इस समय अधिक विहरते हो, यह जो मैत्री है, यही कुल्लक विहार है।"

"भन्ते ! पहिले गृहस्थ होनेके समय भी मैं मैत्री (भावना) करता था, इसलिये अब भी

मैं अधिकतर मैत्री विहारसे विहरता हूँ; यद्यपि मुझे अर्हत्-पद पाये चिर हुआ। भन्ते! स्थविर आजकल किस विहारसे अधिक विहरते हैं। ?"

"भुम्म! मैं इस समय अधिकतर शून्यता विहारसे विहरता हूँ।"

"भन्ते! इस समय स्थविर अधिकतर महापुरुष-विहारसे विहरते हैं। भन्ते! यह 'शून्यता' महापुरुष-विहार है।"

"भुम्म! पहिले गृही होनेके समय मैं शून्यता विहारसे विहरा करता था, इसलिये इस समय शून्यता विहारसेही अधिक विहरता हूँ; यद्यपि मुझे अर्हत्त्व पाये चिर हुआ।"

(जव) इस प्रकार स्थविरोंकी आपसमें वात हो रही थी, उस समय आयुष्मान् साणवासी पहुँच गये। तव आयुष्मान् संभूत साणवासी जहाँ आयुष्मान् सर्वकामी थे, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् सर्वकामीको अभिवादनकर···एक ओर वैठ···यह बोले—

"भन्ते! यह वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु वैशालीमें दश वस्तुका प्रचार कर रहे हैं०। स्थविरने (अपने) उपाध्याय (=आनन्द)के चरणमें वहुत धर्म और विनय सीखा है। स्थविरको धर्म और विनय देखकर कैसा मालूम होता है? कौन धर्मवादी हैं, प्राचीनक भिक्षु, या पावेयक?"

"तूने भी आवुस! उपाध्यायके चरणमें बहुत धर्म और विनय सीखा है। तुझे आवुस! धर्म और विनयको देखकर कैसा मालूम होता है? कौन धर्मवादी हैं, प्राचीनक भिक्षु या पावेयक?"

"भन्ते! मुझे धर्म और विनयको अवलोकन करनेसे ऐसा होता है—'प्राचीनक भिक्षु अधर्मवादी हैं, पावेयक[1] भिक्षु धर्मवादी हैं।···।"

"मुझे भी आवुस!० ऐसा होता है—प्राचीनक भिक्षु अधर्मवादी हैं, पावेयक धर्मवादी।"···।

§३—सङ्गीतिकी-कार्यवाही

(१) उद्वाहिकाका चुनाव

तव उस विवादके निर्णय करनेके लिये संघ एकत्रित हुआ। उस अधिकरणके विनिश्चय (=फैसला) करते समय अनर्गल वकवाद उत्पन्न होते थे, एक भी कथनका अर्थ मालूम नहीं पळता था। तव आयुष्मान् रेवतने संघको ज्ञापित किया—

ज्ञप्ति "भन्ते! संघ मुझे सुने—हमारे इस विवादके निर्णय करते समय अनर्गल वकवाद उत्पन्न होते हैं०। यदि संघको पसन्द हो, तो संघ इस अधिकरणको उद्वाहिका (=सेलेक्ट कमीटी)से शान्त करे।"

चार प्राचीनक भिक्षु और चार पावेयक भिक्षु चुने गये। प्राचीनक भिक्षुओंमें आयुष्मान् सर्वकामी, आयुष्मान् साढ, आयुष्मान् क्षुद्रशोभित (=खुज्ज सोभित) और आयुष्मान् वार्षभग्रामिक (=वासभगामिक)। पावेयक[1] भिक्षुओंमें आयुष्मान् रेवत, आयुष्मान् संभूत साणवासी, आयुष्मान् यश काकंडपुत्त और आयुष्मान् सुमन। तव आयुष्मान् रेवतने संघको ज्ञापित किया—

ज्ञप्ति "भन्ते! संघ मुझे सुने—हमारे इस विवादके निर्णय करते समय अनर्गल वकवाद उत्पन्न होते हैं०। यदि संघको पसन्द हो, तो संघ चार प्राचीनक···(और) चार पावेयक भिक्षुओंकी उद्वाहिका इस विवादको शमन करनेके लिये चुने—यह ज्ञप्ति है।

---

[1] पश्चिमी युक्तप्रान्तवाले।

अ नु श्रा व ण—"भन्ते ! संघ मुझे सुने—हमारे इस विवादके निर्णय करते समय०। संघ चार प्राचीनक और चार पावेयक भिक्षुओंकी, उ द्वा हि का से इस विवादको शान्त करनेके लिये चुनता है। जिस आयुष्मान्‌को चार प्राचीनक०, चार पावेयक भिक्षुओंकी उद्वाहिकामे इस विवादका शान्त करना पसन्द है, वह चुप रहे, जिसको नहीं पसन्द है वह बोले।···

धा र णा—"संघने मान लिया, संघको पसन्द है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।"

(२) अजित आसन-विज्ञापक हुये

उस समय अजित नामक दशवर्षीय[1] भिक्षु-संघका प्रातिमोक्षोद्देशक (=उपोसथके दिन भिक्षु नियमोंकी आवृत्ति करनेवाला) था। संघने आयुष्मान् अजितको ही स्थविर भिक्षुओंका आसन-विज्ञापक (=आसन विछानेवाला) स्वीकार किया। तब स्थविर भिक्षुओंको यह हुआ—'यह बा लु का रा म रमणीय शब्दरहित=घोप-रहित है, क्यों न हम वालुकाराममें (ही) इस अधिकरणको शान्त करें।'

(३) सङ्गीतिकी कार्यवाही

तब स्थविर भिक्षु उस विवादके निर्णय करनेके लिये वालुकाराम गये। आयुष्मान् रे व त ने संघको ज्ञापित किया—

"भन्ते ! संघ मुझे सुने—यदि संघको पसन्द हो, तो मैं आयुष्मान् सर्वकामीको विनय पूछूँ ?"

आयुष्मान् सर्वकामीने संघको ज्ञापित किया—

"आवुस संघ ! मुझे सुने—यदि संघको पसन्द हो, तो मैं आयुष्मान् रेवत द्वारा पूछे विनयको कहूँ।"

आयुष्मान् रेवतने आयुष्मान् सर्वकामीसे कहा—

(१) "भन्ते ! श्रृंगि-लवण-कल्प विहित है ?"

"आवुस ! श्रृंगि-लवण-कल्प क्या है ?" "भन्ते ! सींगमें०।"

"आवुस ! विहित नहीं है।"

"कहाँ निषेध किया है ?"

"श्रावस्तीमें, सुत्त 'विभंग'[2]में।"

"क्या आपत्ति (=दोष) होती है ?"

"सन्निधिकारक (=संग्रहीत वस्तु)के भोजन करनेमें 'प्राश्चित्तिक' (=पाचित्तिय)[3]।"

"भन्ते ! संघ मुझे सुने—यह प्रथम वस्तु संघने निर्णय किया। इस प्रकार यह वस्तु धर्म-विरुद्ध, विनय-विरुद्ध, शास्ताके शासनसे वाहरकी है। यह प्रथम शलाकाको छोळता हूँ।"

(२) "भन्ते ! द्वयंगुल-कल्प विहित है ?"०।०।

"आवुस ! नहीं विहित है।"

"कहाँ निषिद्ध किया ?"

"राजगृहमें, 'सु त्त वि भं ग'[3]में।"

"क्या आपत्ति होती है ?"

---

[1]उपसम्पदा होकर दश वर्षका। [2]पातिमोक्ख-सुत्तकी प्राचीन व्याख्या भिक्षु-भिक्षुणी-विभंग ही सुत्त-विभंग कहा जाता है। [3]भिक्खुपातिमोक्ख §५।३८ (पृष्ठ २६)।

"विकाल भोजन-विषयक 'पाचित्तिय'[1] की ।"

"भन्ते ! संघ मुझे सुने—यह द्वितीय वस्तु संघने निर्णय किया ।०। यह दूसरी शलाका छोळता हूँ ।"

(३) "भन्ते ! 'ग्रामान्तर-कल्प' विहित है ?०।०।

"आवुस नहीं विहित है ।"

"कहाँ निषिद्ध किया ?"

"श्रा व स्ती में 'सुत्तविभंग'[2] में ।"

"क्या आपत्ति होती है ?"

"अतिरिक्त भोजन विषयक 'पाचित्तिय' ।"

"भन्ते ! संघ मुझे सुने—० ।"

(४) "भन्ते ! 'आवास-कल्प' विहित है ?" ०।०।

"आवुस ! नहीं विहित है ।"

"कहाँ निषिद्ध किया ?" "राजगृहमें 'उपोसथ-संयुत्त'[3] में ।"

"क्या आपत्ति होती है ?"

"विनय (=भिक्षु-नियम) के अतिक्रमणसे दुक्कट (=दुष्कृत) ।"

"भन्ते ! संघ मुझे सुने० ।"

(५) "भन्ते ! 'अनुमति-कल्प' विहित है ?"० ।०। "आवुस ! नहीं विहित है ।"

"कहाँ निषेध किया ?"

"चा म्पे य क वि न य-व स्तु में[4] ।"

"क्या आपत्ति होती है ?"

"विनय-अतिक्रमणसे 'दुक्कट' ।"

"भन्ते ! संघ मुझे सुने० ।"

(६) "भन्ते ! 'आचीर्ण-कल्प' विहित है ?"०।०।

"आवुस ! कोई कोई आचीर्ण-कल्प विहित है, कोई कोई नहीं ।"

"भन्ते ! संघ मुझे सुने० ।"

(७) "भन्ते 'अमथित-कल्प' विहित है ?" ०।० ।

"आवुस ! नहीं विहित है ।"

"कहाँ निषेध किया ?"

"श्रा व स्ती में 'सु त्त-वि भं ग[5] में' ।"

"क्या आपत्ति···है ?"

"अतिरिक्त भोजन करनेमें 'पाचित्तिय' ।"

"भन्ते ! संघ मुझे सुने० ।"

---

[1] वहीं §५।३७ (पृष्ठ २६) । [2] वहीं §५।३५ (पृष्ठ २५) ।

[3] महावग्ग उपोसथ-क्खन्धक (पृष्ठ १३८) ।

[4] चाम्पेय्यक्खन्धक (महावग्ग ९) चम्पेयविनयवस्तु है । सर्वास्तिवादी विनय-पिटकमें महावग्ग और चुल्लवग्गको विनयमहावस्तु और विनयक्षुद्रकवस्तु कहा है ।

[5] भिक्खु-पातिमोक्ख §५।३७ (पृष्ठ २६) ।

(८) "भन्ते ! 'जलोगी-पान' विहित है ?" ०।० ।
"आवुस ! नहीं विहित है ।"
"कहाँ निषेध किया ?"
"कौशाम्बी में, 'सुत्त-विभंग'[1] में ।"
"क्या आपत्ति होती है ?"
"सुरा-मेरय पानमें 'पाचित्तिय' ।"
"भन्ते ! संघ मुझे सुने० ।"

(९) "भन्ते ! 'अदशक-निपीदन' (=विना मगजीका बिछौना) विहित है ?"
"आवुस ! नहीं विहित है ।"
"कहाँ निषेध किया ?"
"श्रावस्तीमें 'सुत्त-विभंग'में ।"
"क्या आपत्ति होता है ?"
"काट डालनेका 'पाचित्तिय'[2] ।"
"भन्ते ! संघ मुझे सुने० ।"

(१०) "भन्ते ! 'जातरूप-रजत' (=सोना-चाँदी) विहित है ?"
"आवुस ! नहीं विहित है ।"
"कहाँ निषेध किया ?"
"राजगृहमें 'सुत्त-विभंग' में[3] ।"
"क्या आपत्ति···है ?"
"जात-रूप-रजत प्रतिग्रहण विषयक 'पाचित्तिय' ।"

"भन्ते ! संघ मुझे सुने—यह दसवीं वस्तु संघने निर्णय की । इस प्रकार यह वस्तु (=बात) धर्म-विरुद्ध, विनय-विरुद्ध, शास्ताके शासनसे बाहरकी है । यह दसवीं शलाका छोळता हूँ ।"

"भन्ते ! संघ मुझे सुने—यह दश वस्तु, संघने निर्णयकी' । इस प्रकार यह वस्तु धर्म-विरुद्ध, विनय-विरुद्ध, शास्ताके शासनसे बाहरकी है ।"

(सर्वकामी)—"आवुस ! यह विवाद निहत हो गया, शांत, उपशांत, सु-उपशांत हो गया । आवुस ! उन भिक्षुओंकी जानकारीके लिये (महा-)संघके बीचमें भी मुझे इन दश वस्तुओंको पूछना ।"

तब आयुष्मान् रेवतने संघके बीचमें भी आयुष्मान् सर्वकामीको यह दस वस्तुयें पूछीं । पूछनेपर आयुष्मान् सर्वकामीने व्याख्यान किया ।

इस विनय-संगीतिमें, न कम, न वेशी सात सौ भिक्षु थे । इसलिये यह विनय-संगीति, 'सप्त-शातिका' कही जाती है ।

बारहवाँ सत्तसतिका क्खन्धक समाप्त ॥१२॥

चुल्लवग्ग समाप्त

---

[1] भिक्खुपातिमोक्ख §५।५१ (पृष्ठ २७) । [2] वहीं §५।८९ (पृष्ट ३१) ।
[3] वहीं §४।१८ (पृष्ठ १९) ।

श्रावस्ती
उत्तर
१००० फुट
जेतवन
राजमहल
पूर्वद्वार (कान्हभारी दरवाजा)
(हनुमनवा)

१—कथा-सूची

(परिशिष्ट १)

—

२—नाम-अनुक्रमणी

३—शब्द-अनुक्रमणी